संस्कृत काव्यधारा

राहुल सांकृत्यायन

कि ता ब म ह ल
इलाहाबाद बम्बई दिल्ली
१९५८

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

प्राक्कथन

संस्कृत के अनेक काव्य हिन्दी कलेवर धारण कर चुके हैं, पर विशाल संस्कृत काव्यभंडार को सुपरिचित करानेवाला कोई एक ग्रंथ नहीं है। यह खटकनेवाली बात थी। दो दशकों पहिले यह विचार मेरे मन में आया था। मैंने अधिकारी मित्रों से करने केलिये कहा। किसी-किसी ने करने की बात भी कही, पर वह पूरी नहीं हो सकी। अंतमें निराश हो मुझे ही यह अनधिकार चेष्टा करनी पड़ी। यही इस पुस्तक का इतिहास है। मैंने अपने दो मित्रों से "पालि काव्यधारा" और "प्राकृत काव्यधारा" लिखने के लिये साग्रह प्रार्थना की है। देखें वह अपना वचन पूरा करते हैं। अपभ्रंशकाव्यधारा को मैं "हिंदीकाव्यधारा" के नाम से लिख चुका हूँ। यदि मेरे रहते उसके दूसरे संस्करण की नौबत आई, तो उसका नाम "अपभ्रंशकाव्यधारा" रखना होगा। मैं चाहता हूँ, भारत की और विश्व की अन्य भाषाओं की भी ऐसी द्विभाषीय काव्यधारायें बननी चाहियें। हिन्दी को मान्यभाषा बनाने केलिये इनकी आवश्यकता है।

इस ग्रंथ में यह ध्यान रक्खा गया है, कि हरेक कवि की इतनी सामग्री दी जाये, जिससे इस कवि का मूल्यांकन कर सकें, उसकी कृतिका आस्वाद ले सकें, साथ ही ग्रंथका बहुत विस्तार भी न होने पाये। मैं इसमें कितना सफल हुआ, इसे विज्ञ पाठक ही बतला सकते हैं। मैं नहीं कह सकता, कि संस्कृत की सभी काव्यकलानिधियों को मैं यहाँ ला सका हूँ, या जिनकी कवितायें यहाँ उद्धृत हुई हैं, उनसे उत्कृष्ट कोई कवि छूटा नहीं है। कालमें मैं ईसाकी सत्रहवीं सदीके मध्यमें रुक गया हूँ, पर संस्कृत में कवि-कर्म अब भी होता है। पिछली तीन सदियोंमें कितने ही सूरियों ने संस्कृत

मे काव्य और महाकाव्य लिखे है। इस सस्करण मे जिनको नही लाया जा सका, उनको दूसरे सस्करण मे लानेकी मै आशा भी नही दिला सकता, क्योंकि मै ६५ वे सालके अंत पर पहुच रहा हूँ।

कवियों की कृतियों को दूसरे क्रम में भी रक्खा जा सकता था, पर मैंने ऐतिहासिक क्रम को ही पसद किया। इस तरह सस्कृत कविता के विकास को समझने का बहुत सुभीता है, यह इस धाराके पाठकों को मालूम होगा। मेरे उल्लिखित कालमे मतभेद हो सकता है, पर काल न देनेसे अधिक देनेमे पाठकों को विकास के समझने मे अधिक आसानी होगी, सस्कृत कविता के कालविभाजन मे भी मैने स्वच्छन्दता से काम लिया है। सस्कृत मातृभाषा के तौर पर बुद्धके समय (ईसा-पूर्व पांचवी-छठी सदीमे) भी नही रह गई थी। उससे सौ-दो-सौ वर्ष पूर्व उसके मातृभाषा होनेकी सभावना है। लेकिन उस समय की सस्कृत वैदिक (छान्दस) भाषा ही हो सकती है। बुद्धवाणी को छान्दस भाषामे कर डालने का सुझाव दो ब्राह्मण शिष्यों ने रक्खा था, जिसका तथागत ने निषेध कर दिया। बुद्ध और उनके बादकी चार पाच सदियॉ पालि की है। पालि यहा व्यापक अर्थ में लेते हुये भारत की वह सभी भाषाये अभिप्रेत है, जो कि प्राकृत के उदय से पहिले बोली जाती थी। इसी प्रकार आगे के कालो को प्राकृत और अपभ्रंश कालमें बाटा गया। आधुनिक भाषाओ के कालकी होने से पाचवा काल "आधुनिक काल" कहा गया। तत्कालीन लोकभाषा की पृष्ठभूमि मे जो सस्कृत कविताये रची गई, उन पर उनका ऋण है, यही नही बल्कि अप्रत्यक्ष रूपेण उन्होंने प्रभाव भी डाला है।

मूलभाषा को भी सम्मिलित करने से ग्रथ का कलेवर दूना हो गया। पर मैं समझता हूँ, इतने कवियों की मूलकृतियों को पढने का एकत्र जो अवसर यहा मिलेगा, वह अच्छा ही समझा जायेगा, क्योंकि कितनी ही कृतियाँ बहुतों के लिये सुलभ नही है। हो सकता है, इससे अनुवाद के साथ मूल पढने की भी लालसा किसी को हो जाये।

अनुवाद में मैंने मूल के समीप रहते हुए उसे सुगम बनाने की भरसक कोशिश की है। जल्दी, अल्पज्ञता और दूसरे कारणों से त्रुटि होने की भी संभावना है, जिसके प्रतीकार का मेरे पास कोई उपाय नहीं है।

काल के अनुसार देखने पर मालूम होगा, कि वैदिक काल में वैसी कविताओं का अभाव सा है, जिसे आजकल काव्य कहा जाता है। पालिकाल के अंतिम भाग में वाल्मीकि रामायण का प्रादुर्भाव हुआ जिसे वस्तुतः काव्य या महाकाव्य कह सकते हैं। सर्व पुरातन होने से इसका "आदिकाव्य" नाम सार्थक है। "महाभारत" में भी काव्यमय स्थल हैं, पर कम ही। प्राकृतकाल (१–५५० ई०) संस्कृत कविता का स्वर्णयुग है। कविता ही नहीं कला, दर्शन, पुराने विज्ञान का भी यह स्वर्णयुग है। अपभ्रंश (५५०–१२०० ई०) कविता के ह्रास का समय है।

सारे ग्रंथ की एक विस्तृत भूमिका लिखना चाहता था, पर ग्रंथ का कलेवर इतना बढ़ गया है कि उसे और बढ़ाना अनुचित होगा। भिन्न-भिन्न काव्यों के ऊपर जो संक्षिप्त प्रस्तावनायें लिखी गई हैं, उन्हीं से पाठकों को संतोष करना चाहिये।

प्रयाग
१९–१–'५८

राहुल सांकृत्यायन

समर्पण

जया और जेताको, जो कभी
अपने पिताकी इस कृतिको पढ़ेंगे

विषय-सूची

१. वैदिक काल

(१२००—१००० ई० पू०)

१. वैदिक काल

संस्कृत की सबसे प्राचीन कविता का नमूना हमें ऋग्वेद में मिलता है। इसमें संदेह है, कि ऋग्वेद के ऋषियों की भाषा ऋचाओं के पाठ में पूरी तौर से सुरक्षित है। आखिर, उन्हें लिपिबद्ध करने में बहुत शताब्दियाँ बीतीं, और इस बीच लोगों की भाषा बदलती रही। यद्यपि, मूलभाषा और उच्चारण को सुरक्षित रखने की पूरी कोशिश की गई, तो भी कुछ परिवर्तन तो स्पष्ट दिखाई देते हैं। ऋग्वेदिक आर्य हिन्दू-यूरोपीय वंश की जिस शतम्‌शाखा के अन्तर्गत थे, उसमें ट वर्ग का उच्चारण बिल्कुल नहीं होता, यह उनके आधुनिक वंशजों स्लावों (रूसी, चेक आदि) और ईरानियों के उच्चारण में देखा जा सकता है। तो भी वह भाषा और उच्चारण में ऋग्वेद के समय बोली जानेवाली भाषा के बहुत नजदीक है।

यद्यपि उषा, नदी-स्तुति जैसे सूक्त काव्य की दृष्टि से भी सुन्दर हैं, किन्तु ऋग्वेद के ऋषियों को कवि होने का अभिमान होते भी आज के अर्थ में काव्य करने की इच्छा नहीं थी। वह अपनी ऋचाओं (स्तुतियों)-द्वारा अपने देवताओं को रिझाना चाहते थे। विश्वामित्र, भरद्वाज या वशिष्ठ में सरस कविता करने की क्षमता नहीं थी, यह नहीं कहा जा सकता। ऋग्वेद काल में क्या, हरेक काल में कविता होती रही, लेकिन दूसरी तरह की कविताओं के संग्रह करने के लिये ऋग्वेद के संग्राहक तैयार नहीं हुए। पुरूरवा-उर्वशी और यम-यमी जैसे प्रेम-काव्य बतलाते हैं, कि उस काल में प्रेम की कविताओं की कमी नहीं थी। लेकिन, इस तरह के काव्य लोक-काव्य रहे होंगे, जिन्हें अपने भीतर जीर्ण होने के लिये छोड़ दिया गया। बहुत कम ऐसे लोक-काव्य हैं, जिनको आल्हा आदि की तरह शताब्दियों तक भाषा-भाव में परिवर्तन करते मुख्य कथानक को अक्षुण्ण रखते जीवित

रखा गया। हिमालय के लोकगीतों के देखने से पता लगता है, कि वहां सौ वर्ष की आयु भी बहुत कम ही को मिलती है। ऋग्वेदकालीन आर्य बहुत कुछ उसी तरह का जीवन बिताते थे, जैसा कि हिमालय की कितनी ही जातियां।

ऋग्वेद से जो कवितायें यहां उद्धृत की गई हैं, उनमें सबका कविता के नाते पर अधिक मूल्य नहीं है, तो भी उनसे उस समय के जीवन को जानने में सहायता मिलती है, जब कि ताम्र-युग में अर्ध-घुमन्तू गो-अश्व-अजा-अवि-पाल आर्य जमुना से लेकर, हिमालय की तराई से राजस्थान की मरु-भूमि तक फैले देश (सप्तसिन्धु) के अपने ग्रामों और अरण्यों में रहते थे।

१. भरद्वाज (१२०० ई० पू०)

ऋग्वैदिक कालके सबसे पुराने और प्रधानमें सबसे बड़े ऋषि थे। ऋषि उस समय उसी अर्थमें प्रयुक्त होता था, जिसमें पिछली शताब्दियोंमें सिद्ध शब्दका प्रयोग होता था। ऋषि और कवि पर्यायवाची शब्द समझे जाते थे, और साथ ही ऋषि कोरे कवि नहीं होते थे। वह देवता का साक्षात्कार करनेवाले तथा कितनी ही बार देवता भी उनके ऊपर आविष्ट होता था। ऋषियोंमें सबसे पहले भरद्वाज का नाम हमारे सामने आता है। इनके पिता बृहस्पति, पितामह लोक और प्रपितामह अंगिरा थे। आंगिरस और बार्हस्पत्य होते भी वह अपने नामसे गोत्रके संस्थापक हैं। वह सप्तसिन्धु (जमुनासे पश्चिम खैबर तककी) भूमिके

छंद—गायत्री, (१-४५), त्रिष्टुप् (४६), अनुष्टुप् (४७-४८)

१ देवता—अग्नि

१. त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः।
देवेभिर्मानुषे जने ॥१॥

२. स नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजा महः।
आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥२॥

३. वेत्था हि वेधो अध्वनः पथश्च देवाञ्जसा।
अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो ॥३॥

४. त्वामीळे अध द्विता भरतो वाजिभिः शुनं।
ईजे यज्ञेषु यज्ञियं ॥४॥

५. त्वमिमा वार्या पुरु दिवोदासाय सुन्वते।
भरद्वाजाय दाशुषे ॥५॥

६. त्वं दूतो अमर्त्य आ वहा दैव्यं जनं।
शृण्वन्विप्रस्य सुष्टुतिं ॥६॥

७. त्वामग्ने स्वाध्यो मर्तासो देववीतये।
यज्ञेषु देवमीळते ॥७॥

१. भरद्वाज (१२०० ई० पू०)

रहनेवाले थे, जिन्हें जबर्दस्ती पीछे प्रयागमें लाकर बैठानेकी कोशिश की गई। इनके पुत्र गर्ग भी प्रतापी और एक गोत्रके प्रवर्तक ऋषि हैं। भरद्वाज सप्तसिन्धुके महान् विजेता भरतजन के नायक दिवोदासके पुरोहित (गुरु और प्रधान-मन्त्री) थे। शंबर आदि पहाड़ी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करनेमें भरद्वाजका बड़ा हाथ था। ऋग्वेदका छठा मंडल भरद्वाजका मंडल कहा जाता है, जिसके ५७ सूक्त (१-१४, १६-३०, ३७-४३ और ५३-७४) इनके रचे हैं। दसवें और नवें मंडलमें भी इनकी रचित आधा दर्जन ऋचायें संगृहीत हैं।

१. अग्निकी प्रशंसा—

१. हे अग्नि, तुम यज्ञोंके होता,[1] सबके हित हो,
देवोंके साथ मानुष लोकमें ।।१।।

२. सो तुम हमारे यज्ञमें अपनी मादक ज्वालाओं द्वारा यजन करो।
देवताओंको लाओ और हव्य दो ।।२।।

३. हे विधाता, तुम कालको और शीघ्रताके पथको जानते हो।
यज्ञोंमें सुकर्मा हो हे अग्नि ।।३।।

४. सुखदायक तुम्हें भरत (जन) (और) मैं दो बार स्तुति करता हूं।
यज्ञोंमें यज्ञीय (तुम्हें) मैं पूजता हूं ।।४।।

५. तुम बहुत (सोम) छाननेवाले दिवोदास को
इन श्रेष्ठ धनोंको भरद्वाजको [illegible] ।।५।।

६. तुम अमर दूत (हो) दिव्य जनको लाओ ;
[illegible] स्तुतियों [illegible] ।।६।।

७. हे अग्नि [illegible] देवताओंके [illegible] यज्ञोंमें [illegible]
(मनुष्य) तुम्हारी स्तुति करते हैं ।।७।।

---

[1] आह्वानकर्ता

८. तव प्र यक्षि संदृशमुत क्रतुं सुदानवः
विश्वे जुषन्त कामिनः ॥८॥

९. त्वं होता मनुर्हितो वह्निरासा विदुष्टरः।
अग्ने यक्षि दिवो विशः ॥९॥

१०. अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये।
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥१०॥

११. तं त्वा समिद्भिरंगिरो घृतेन वर्द्धयामसि।
बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥११॥

१२. स नः पृथु श्रवाय्यमच्छा देव विवाससि।
बृहदग्ने सुवीर्यं ॥१२॥

१३. त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमंथत।
मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥१३॥

१४. तमु त्वा दध्यङ् ऋषिः पुत्र ईधे अथर्वणः।
वृत्रहणं पुरन्दरं ॥१४॥

१५. तमु त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमं।
धनंजयं रणे रणे ॥१५॥

१६. एह्यूषु ब्रवाणि ते ग्न इत्थेतरा गिरः।
एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥१६॥

१७. यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरं।
तत्रा सदः कृणवसे ॥१७॥

१८ नहि ते पूर्तमक्षिपद् भुवन्नेमानां वसो।
अथा दुवो वनवसे ॥१८॥

१९. आग्निरगामि भारतो वृत्रहा पुरुचेतनः।
दिवोदासस्य सत्पतिः ॥१९॥

८. तुम्हारे सुदर्शन और कार्य के लिए सुंदर दानवाले सारे कामनावाले (तुम्हारी) सेवा करते हैं ॥८॥

९. हे अग्नि, तुम होता मननकर्ता हितू वाहक अत्यंत ज्ञानवान् (हो)। द्यौ लोककी प्रजाओंका यजन करो ॥९॥

१०. हे अग्नि, स्तुति किये जाते हव्यदान (और) प्रीतिके लिये आओ। हे होता, तुम यज्ञमें बैठो ॥१०॥

११. हे अंगार, तुम्हें उस घृत समिधासे हम बढ़ाते हैं। हे अतितरुण बड़ी ज्वालावाले ॥११॥

१२. हे देव अग्नि, सो हमें बड़े प्रशंसनीय अच्छे धनको, बृहत् सुंदर पराक्रम को (प्रदान करो) ॥१२॥

१३. हे अग्नि, सबके शिर पुष्करसे अरनी द्वारा, तुम्हें अथर्वाने मथा ॥१३॥

१४. वृत्रमारक पुरध्वंसक उस तुम्हें अथर्वाके पुत्र दधीचि ऋषिने बढ़ाया ॥१४॥

१५. उस भारी दस्युहन्ता हरेक रणमें धन जीतनेवाले तुम्हें पथ-सन्तान वृषाने अच्छी तरह बढ़ाया ॥१५॥

१६. हे अग्नि, आओ सुनो, तुम्हारे लिये ऐसी अन्य वाणियां मैं कहता हूं। इन सोमरसों द्वारा बढ़ो ॥१६॥

१७. और जहां-कहीं तुम्हारा मन रहे, यजमानको उत्तम बनाते हो। वहां स्थान बनाते हो ॥१७॥

१८. हे बसानेवाले, तुम्हारा तेज मानवकी भूमिको न फेंके, और सेवाको स्वीकार करो ॥१८॥

१९. वृत्रहन्ता बहुत चेतनावान् भारतोंका अग्नि आ पहुँचा (जो कि) दिवोदासका सच्चा स्वामी है ॥१९॥

२०. स हि विश्वाति पार्थिवा रयिं दाशन्महित्वना।
वन्वन्नवातो अस्तृतः ॥२०॥

२१. स प्रत्नवन्नवीयसाग्ने द्युम्नेन संयता।
बृहत्ततंथ भानुना ॥२१॥

२२. प्र वः सखायो अग्नये स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया।
अर्चं गाय च वेधसे ॥२२॥

२३. स हि यो मानुषा युगा सीदद्धोता कविक्रतुः।
दूतश्च हव्यवाहनः ॥२३॥

२४. ता राजाना शुचिव्रतादित्यान् मारुतं गणं।
वसो यक्षीह रोदसी ॥२४॥

२५. वस्वी ते अग्ने सन्दृष्टिरिषयते मर्त्याय।
ऊर्जो नपादमृतस्य ॥२५॥

२६. क्रत्वा दा अस्तु श्रेष्ठोद्य त्वा वन्वन्त्सुरेक्णाः।
मर्त आनाश सुवृक्ति ॥२६॥

२७. ते ते अग्ने त्वोता इषयन्तो विश्वमायुः।
तरन्तो अर्यो अरातीर्वन्वन्तो अर्यो अरातीः ॥२७॥

२८. अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विश्वं न्यत्रिणं।
अग्निर्नो वनते रयिं ॥२८॥

२९. सुवीरं रयिमा भर जातवेदो विचर्षणे।
जहि रक्षांसि सुक्रतो ॥२९॥

३०. त्वं नः पाह्यंहसो जातवेदो अघायतः।
रक्षाणो ब्रह्मणस्कवे ॥३०॥

३१. यो नो अग्ने दुरेव आ मर्तो वधाय दाशति।
तस्मान्नः पाह्यंहसः ॥३१॥

२०. वह (अपनी) महिमासे सारी पार्थिव बड़ी संपत्तिको देवे,
अबाधित अङ्गिरस, (शत्रुओंका) नाश करते ॥२०॥

२१. हे अग्नि, पहिले समान नवीन तेजसे तैयार,
प्रकाशसे बृहत् विस्तारित ॥२१॥

२२. हे सखाओ, तुम खूब स्तुति और यज्ञको करो,
विधाताके लिये अर्चन गायन करो ॥२२॥

२३. वह जो कि मनुष्य युगमें होता कवि-कर्ता होकर बैठता है,
और जो हव्य वहन करनेवाला दूत है ॥२३॥

२४. हे चमकनेवाले, शुद्ध व्रतवाले उन आदित्य राजाओंको मरुतोंके गणको
द्यौ-पृथिवी के लिये यहां यजन करो ॥२४॥

२५. हे अग्नि, तुम्हारी वसुवाली सम्यक् दृष्टि मनुष्यको अन्न देती है,
(और) न गिरनेवाले अमृतके तेजको (भी) ॥२५॥

२६. क्रिया दानसे श्रेष्ठ हो जो आज तुम्हें सुदाता चाहते हैं, वह
नई सदा सुन्दर स्तुति (करे) ॥२६॥

२७. हे अग्नि, तुम्हें सारी आयु इच्छा करते वे-वे रक्षित हैं।
अर्य[1] हो शत्रुओंसे पार पाते, अर्य हो शत्रुओंको मारते ॥२७॥

२८. अग्नि तीक्ष्ण तेजसे सारे शत्रुओंको भक्षण करता है।
अग्नि हमें धन देता है ॥२८॥

२९. हे जातवेद,[2] विचरणशील, सुन्दर वीर्योयुक्त धन लाओ।
हे सुकर्मी, राक्षसोंको मारो ॥२९॥

३०. हे जातवेद, [illegible] हमें बचाओ। हे मंत्रके कवि, हमारी
रक्षा करो ॥३०॥

३१. हे अग्नि, जो [illegible] हमारे दानके लिये [illegible] बनाता है।
उस पापसे हमें बचाओ ॥३१॥

---

[1] स्वामी, [2] [illegible]

३२. त्वं तं देव जिह्वया परि बाधस्व दुष्कृतं।
मर्तो यो नो जिघांसति ॥३२॥

३३. **भरद्वाजाय** सप्रथः शर्म यच्छ सहन्त्य।
अग्ने वरेण्यं वसु ॥३३॥

३४. अग्निर्वृत्राणि जंघनद्द्रविणस्युर्विपन्यया।
समिद्धः शुक्र आहुतः ॥३४॥

३५. गर्भे मातुः पितुष्पिता विदिद्युतानो अक्षरे।
सीदन्नृतस्य योनिमा ॥३५॥

३६. ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे।
अग्ने यद् दीदयद्दिवि ॥३६॥

३७. उप त्वा रण्वसन्दृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत।
अग्ने संसृज्महे गिरः ॥३७॥

३८. उप छायामिव घृणेरगन्म शर्म ते वयं।
अग्ने हिरण्यसन्दृशः ॥३८॥

३९. य उग्र इव शर्यहा तिग्मश्रृंगो न वंसगः।
अग्ने पुरो रुरोजिथ ॥३९॥

४०. आ यं हस्ते न खादिनं शिशुं जातं न बिभ्रति।
विशामग्निं स्वध्वरं ॥४०॥

४१. प्र देवं देववीतये भरता वसुवित्तमं।
आ स्वे योनौ निषीदतु ॥४१॥

४२. आ जातं जातवेदसि प्रियं शिशीतातिथिं।
स्योन आ गृहपतिं ॥४२॥

४३. अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः।
अरं वहन्ति मन्यवे ॥४३॥

३२. हे देव, तुम उग्र दुष्कर्मी मनुष्य को (अपनी) ज्वालासे बाधित करो।
जो हमें मारना चाहता है ॥३२॥

३३. हे दमनकर्त्ता अग्नि, भरद्वाजको विपुल सुख
श्रेष्ठ धन दो ॥३३॥

३४. प्रज्वलित आहुत धनेच्छुक, स्तुति द्वारा उज्वल समृद्ध अग्नि,
शत्रुओं को मारे ॥३४॥

३५. (अग्नि) माता[१] के गर्भ में पिता[२] के अक्षय स्थानमें चमकते हुए
सत्यके मूल-स्थानमें आ बैठें ॥३५॥

३६. हे विश्वदर्शक, जातवेद अग्नि प्रजा-सहित धनको लाओ,
जो (अग्नि) द्युलोकको प्रकाशित करता है ॥३६॥

३७. हे अग्नि, बलकारी रमणीय-दर्शन तुम्हें सेवन करते,
हम स्तुतियां सृजन करते हैं ॥३७॥

३८. हे अग्नि, धूपमें मानो छायामें हम तुम्हारी शरणमें आये।
तुम सुवर्ण सदृश हो ॥३८॥

३९. हे अग्नि, बाणोंसे मारनेवाले योद्धाकी तरह, तीखे सींगवाले
सांड़की तरह, तुमने दुर्गोंको भस्म किया ॥३९॥

४०. हाथमें कंकणकी तरह, अल्पज्ञ शिशुकी तरह, सुन्दर यज्ञवाले
प्रजाओंकी अग्निको (ऋत्विक्) धारण करते हैं ॥४०॥

४१. देवोंकी तृप्तिके लिये अत्यंत धनज्ञ देव अग्निको खूब धारण करो।
वह अपने स्थानमें आकर बैठे ॥४१॥

४२. यज्ञमें प्रादुर्भूत प्रिय अतिथि अग्निको ला बैठाओ।
[illegible] स्थानोंमें [illegible] (ने) ॥४२॥

४३. हे देव अग्नि, जो तुम्हारे [illegible] अजर हैं, उन्हें जोड़ो,
(जो कि) [illegible] करते हैं ॥४३॥

---

[१] पृथिवी, [२] द्युलोक।

४४. अच्छा नो याह्या वहाभि प्रयांसि वीतये।
आ देवान्त्सोमपीतये ॥४४॥

४५. उदग्ने भारत द्युमदजस्रेण दविद्युतत्।
शोचा वि भाह्य जर ॥४५॥

४६. वीती यो देवं मर्तो दुवस्येदग्निमीळीताध्वरे हविष्मान्।
होतारं सत्ययजं रोदस्योरुत्तानहस्तो नमसा विवासेत् ॥४६॥
(त्रिष्टुप्)

४७. आ ते अग्न ऋचा हविर्हृदा तष्टं भरामसि।
ते ते भवन्तूक्षण ऋषभासो वशा उत ॥४७॥ (अनुष्टुप्)

४८. अग्निं देवासो अग्रियमिन्धते वृत्रहन्तमं।
येना वसून्याभृता तृह्ळा रक्षांसि वाजिना ॥४८॥त्रि.
—ऋग् ६।१६

त्रिष्टुप् छन्द

२. देवता—उषा

४९. उदु श्रिय उषसो रोचमाना अस्थुरपां नोर्मयो रुशन्तः।
कृणोति विश्वा सुपथा सुगान्यभूदु वस्वी दक्षिणा मघोनी ॥१॥

५०. भद्रा ददृक्ष उर्विया वि भास्युत्ते शोचिर्भानवो द्यामपप्तन्।
आविर्वक्षः कृणुषे शुम्भमानोषो देवि रोचमाना महोभिः ॥२॥

५१. वहन्ति सीमरुणासो रुशन्तो गावः सुभगामुर्विया प्रथानां।
अपेजते शूरो अस्तेव शत्रून्बाधते तमो अजिरो नवो-
ह्ळा ॥३॥

५२. सुगोत ते सुपथा पर्वतेष्ववाते अपस्तरसि स्वभानो।
सा न आ वह पृथुयामन्नृष्वे रयिं दिवो दुहितरिषयध्यै ॥४॥

५३. सा वह योक्षभिरवातोषो वरं वहसि जोषमनु।
त्वं दिवो दुहितर्या ह देवी पूर्वहूतौ मंहना दर्शता भूः ॥५॥

४४. हमारे पास अच्छी तरह आओ, तृप्तिके लिये अभीष्ट वस्तुओंको लाओ। सोमपानके लिये देवताओंको लाओ ॥४४॥

४५. हे भारतोंके अग्नि, तुम निरन्तर द्युतिमान् हो प्रकाशित हो। हे अजर, अपने तेजसे प्रकाशित होओ ॥४५॥

४६. हविवाला मनुष्य स्तुति करता तृप्तिकारक जो मर्द अग्निदेवकी सेवा करे। (उस) सत्यपूजक होता (अग्नि) को द्यौलोक और पृथिवी उत्तान हाथ हो नमस्कारसे सेवें ॥४६॥

४७. हे अग्नि, तुम्हारे लिये ऋचाके साथ हृदयसे बनाये हवि हम ला रहे हैं। वे जैसे गौको सांड़ (वैसे) तुम्हें तृप्तिकारक हों ॥४७॥

४८. शत्रुके अत्यंत हन्ता जिस अग्रणी अग्निको देवलोग प्रज्वलित करते हैं, जो बलसे राक्षसोंको बध कर धन ला ॥४८॥

—ऋक् ६।१६

२. उषाका वर्णन

४९. शोभासे रोचमान उषायें पानीकी लहरोंकी तरह चमकती, चतुर, वसु और धनवाली सबके लिये सुपथ सुगम करती वर्तमान हैं ॥१॥

५०. कल्याणी दिखाई देती विस्तृत [illegible] किरणें आकाश में प्राप्त हैं। हे [illegible] रूपको प्रकाशित करती हो ॥२॥

५१. फैलती सुभगा (उषा)को चमकती अरुण किरणें वहन करती हैं। जैसे फेंके शस्त्रसे शूर शत्रुओंको पीड़ित करता है, वैसे नवागत उषा अंधकार को नाश करती है ॥३॥

५२. पर्वत और निर्वातमें तुम्हारा सुपथ सुगम है, स्वयं तेजस्वी, तुम लोक को पार [illegible] जाती हो। बड़ी रथवाली हे द्यौलोककी कन्या, तुम [illegible] बन दो ॥४॥

५३. हे उषा, जो तुम [illegible] अनिरुद्ध हो [illegible] सुखकर (धन) वहन करती हो। हे [illegible] दुहिता, देवो तुम [illegible] आह्वानमें पूजनीय [illegible] ॥५॥

५४. उत्ते वयश्चिद्वसतेरपप्तन्नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ ।
अमा सते विहसि भूरि वाममुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥६॥

—ऋग्. ६।६४

त्रिष्टुप् छन्द

देवता—उषा,

५५. एषा स्या नो दुहिता दिवोजाः क्षितीरुच्छंती मानुषी-
रजीगः ॥
या भानुना रुशता राम्यास्वज्ञायि तिरस्तमसश्चिद-
क्तून् ॥१॥

५६. वितद्ययुररुणयुग्भिरश्वैश्चित्रं भान्त्युषसश्चंद्ररथाः ।
अग्रं यज्ञस्य बृहतो नयंतीर्वि ता बाधंते तम ऊर्म्यायाः ॥२॥

५७. श्रवो वाजमिषमूर्जं वहंती नि दाशुष उषसो मर्त्याय ।
मघोनीर्वीरवत्पत्यमाना अवो धात विधते रत्नमद्य ॥३॥

५८. इदाहि वो विधते रत्नमस्तीदा वीराय दाशुष उषासः
इदा विप्राय जरते यदुक्था निष्म मावते वहथा पुरा
चित् ॥४॥

५९. इदा हि त उषो अद्रिसानो गोत्रा गवामंगिरसो गृणंति ।
व्यर्केणविभिदुर्ब्रह्मणा च सत्या नृणामभवद्देवहूतिः ॥५॥

६०. उच्छा दिवो दुहितः प्रत्नवन्नो भरद्वाजवद्विधते मघोनि ।
सुवीरं रयिं गृणते रिरीह्युरुगायमधि धेहि श्रवो नः ॥६॥

—ऋग्. ६।६५

५४. तुम्हारे उठने पर पक्षी घोंसलोंसे निकलते, जो अन्न-इच्छुक नर (थे) जाग उठते हैं। हे देवि, दाता मर्त्यको तुम बहुत कमनीय धन देती हो ॥६॥

—ऋक् ६।६४

२. उषा का वर्णन,

५५. सो हमारी द्योसे उत्पन्न पुत्री इस उषाने अन्धकारको हटाने मानुषी (जनता) को जगाया। (वह) जो कि चमकती किरणों द्वारा रातमें अंधकार को दूर कर दीप्तिमानोंको बतलाती है ॥१॥

५६. लाल घोड़ों के साथ उषाके विस्तृत, अद्भुत सुवर्ण-रथ आ गये। वह बृहत् यज्ञको आगे ले जाती रातके तमको हटाती है ॥२॥

५७. हे उषाओ, तुम दाता मनुष्यके लिये यश, बल, अन्न, रस लाती हो। धनवती यात्रिणी, तुम आज दाता वीरको संतान और रत्न दो ॥३॥

५८. हे उषाओ, अब तुम्हारे सेवकको, अब वीर दाताको रत्न है। अब मुझ स्तुतिकारक विप्रके लिये—जिसके पास सक्थ हैं—पहलेकी तरह धन लाओ॥४॥

५९. हे अद्रि-शिखरोंवाली उषा, अब अंगिरा[1] गायोंके गोष्ठमें तुम्हारी स्तुति करते हैं। तेजस्वी मंत्रोंने तुमको स्फुटित किया और मनुष्योंका यज्ञ सत्य हुआ ॥५॥

६०. हे द्यौकी दुहिता, प्राचीनोंकी तरह धनवती भरद्वाज जैसे स्तोताका अन्धकार हटाओ। सुंदर वीरों युक्त धन (उस) स्तुतिकर्त्ताको दो, [illegible] दो ॥६॥

—ऋक् ६।६५

[1] पुरोहित, ब्राह्मण

२. वसिष्ठ (१२०० ई० पू०)

यह भरद्वाज के तरुण-समकालीन तथा दिवोदास-पुत्र सुदास के पुरोहित थे। इनके पिता मित्रावरुण और माता उर्वशी बतलाई जाती हैं, जिसका अर्थ यही है, कि इनके पूर्वजों के नाम आदि के सुरक्षित रखने की कोशिश नहीं की गई। इनके पुत्र शक्ति और पौत्र पराशर थे। शक्ति बहुत गरम-मिजाजके थे। वसिष्ठका सुदास के अभ्युदय में सबसे बड़ा हाथ था। दाशराज्ञयुद्धमें इनके वंशजों और इनकी बुद्धि ने बहुत भारी काम किया था। सुदास इतने अधिक प्रभावशाली व्यक्ति को सहन नहीं कर सकता था, क्योंकि वसिष्ठ के प्रताप के सामने वह धूमिल पड़ जाता था; इसीलिए उस समय के दूसरे प्रभावशाली ऋषि

१. दाशराज्ञ—

१. श्वित्यंचो मा दक्षिणतस्कपर्दा धियं जिन्वासो अभि हि प्रमंदुः।
उत्तिष्ठन्वोचे परि बर्हिषो नृन्न मे दूरादवितवे वसिष्ठाः ॥१॥

२. दूरादिन्द्रमनयन्नासुतेन तिरो वैशंतमतिपांतमुग्रं।
पाशद्युम्नस्य वायतस्य सोमात् सुतादिन्द्रो वृणीता वसिष्ठान् ॥२॥

३. एवेन्नु कं सिन्धुमेभिस्ततारेवेन्नु कं भेदमेभिर्जघान।
एवेन्नु कं दाशराज्ञे सुदासं प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठाः ॥३॥

४. जुष्टी नरो ब्रह्मणा वः पितृणामक्षमव्ययं न किला रिषाथ।
यच्छक्वरीषु बृहता रवेणेंद्रे शुष्ममदधाता वसिष्ठाः ॥४॥

२. वसिष्ठ (१२०० ई० पू०)

विश्वामित्र को उसने अपना पुरोहित बनाया, जिनके प्रधान मंत्रित्व में सुदास ने दिग्विजय और अश्वमेध-यज्ञ करके अपने प्रभाव को यमुना के पूर्ववाले अनार्य राजाओं पर बढ़ाया। सुदास के इस कार्य से वसिष्ठ और विश्वामित्र के घरों में वैमनस्य हो गया। शक्ति ने खुलकर विरोध करना चाहा, जिसके कारण सुदास के हाथों अपने प्राणों को खोने के सिवा और कोई लाभ उसे नहीं हुआ। शक्ति के पुत्र पराशर का व्यास के पिता पराशर से कोई सम्बन्ध नहीं है। वसिष्ठ ने सबसे अधिक अर्थात् १०४ सूक्त रचे हैं, जिनसे ऋग्वेद का सातवां मंडल बना है, इसीलिए इस मंडल को वसिष्ठ-मंडल भी कहते हैं। नवें मंडल में एक दर्जन से ऊपर और दसवें मंडल में भी आधा दर्जन इनकी ऋचायें *संगृहीत हैं। (ऋग्वेद में दस मंडल हैं, हरेक मंडल में बहुत से सूक्त और हरेक सूक्त में बहुत सी ऋचायें हैं।)

१. दाशराज्ञयुद्ध—

१. बुद्धि जीतनेवाले दाहिने जूड़ा रखनेवाले मेरी वसिष्ठ-सन्तानें प्रसन्न हैं। यज्ञसे उठते मैं मनुष्योंको कहता हूं, मेरी वसिष्ठ-सन्तानें दूर न जायें॥१॥

२. वायत-संतान पाशद्युम्नसे अलगकर, चमसमें स्थित बहुतसा सोम पिये उग्र इन्द्रको काले (सोम) से दूर ले गये, इन्द्रने वसिष्ठोंको वरण किया॥२॥

३. इस प्रकार इन्होंके द्वारा इन्द्रने सिन्धुको पार कराया, ऐसे ही इनके द्वारा भेदको मारा। ऐसे ही वसिष्ठो, तुम्हारे मंत्र द्वारा दाशराज्ञ-युद्धमें इन्द्रने सुदासकी रक्षा की॥३॥

४. हे नरो, तुम्हारे मंत्रसे पितरोंकी तृप्ति होती है, अक्षीण धुरीको तुम नष्ट नहीं करते। हे वसिष्ठो, जो कि तुमने शक्वरी ऋचाओंमें बृहद् शब्द द्वारा इन्द्रमें बल दिया॥४॥

५. उदद्ययामिवेत्तृष्णजो नाथितासो दीधयुर्दाशराज्ञे वृतासः ।
वसिष्ठस्य स्तुवत इन्द्रो अश्रोदुरुं तृत्सुभ्यो अकृणोदु
लोकं ॥५॥

६. दण्डा इवेद् गो अजनास आसन् परिच्छिन्ना भरता
अर्भकासः ।
अभवच्च पुर एता वसिष्ठ आदित् तृत्सूनां विशो
अप्रथन्त ॥६॥

७. त्रयः कृण्वन्ति भुवनेषु रेतस्तिस्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्राः ।
त्रयो धर्मास उपसं सचन्ते सर्वां इत्तां अनु
विदुर्वसिष्ठाः ॥७॥

८. सूर्यस्येव वक्षथो ज्योतिरेषां समुद्रस्येव महिमा गभीरः ।
वातस्येव प्रजवो नान्येन स्तोमो वसिष्ठा अन्वेतवे वः ॥८॥

९. त इन्निण्यं हृदयस्य प्रकेतैः सहस्रवल्शमभि संचरंति ।
यमेन ततं परिधिं वयंतोऽप्सरस उपसेदुर्वसिष्ठाः ॥९॥

१०. विद्युतो ज्योतिः परि संजिहानं मित्रावरुणा यदपश्यतां त्वा।
तत्ते जन्मोतैकं वसिष्ठागस्त्यो यत्त्वा विश आजभार ॥१०॥

११. उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन्मनसोधि जातः ।
द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वेदेवाः पुष्करे
त्वाददंत ॥११॥

१२. स प्रकेत उभयस्य प्रविद्वान्त्सहस्रदान उत वा सदानः ।
यमेन ततं परिधिं वयिष्यन्नप्सरसः परिजज्ञे वसिष्ठः॥१२॥

१३. सत्रे ह जाता विषिता नमोभिः कुम्भे रेतः सिषिचतुःसमानं।
ततो ह मान उदियाय मध्यात्ततो जातमृषिमाहुर्वसिष्ठं ॥१३॥

१४. उक्थभृतं सामभृतं बिभर्ति ग्रावाणं बिभ्रत् प्रवदात्यग्रे
उपैनमाध्वं सुमनस्यमाना आ वो गच्छाति प्रतृदो
वसिष्ठः ॥१४॥

—ऋक् ७।३३

५. दाशराज्ञ युद्धमें घिरे हुए (उन्हें), वृष्टि चाहनेवाले उगते (सूर्य) की तरह ऊपर उठाया। स्तुति करते वसिष्ठकी (बात) इन्द्रने सुनी और तृत्सुओंके लिये विशाल लोक बनाया ॥५॥

६. दंडकी (मारी) गौकी तरह भरत छिन्न-भिन्न अल्पजन (तथा) बच्चे (से) थे। वसिष्ठ (जैसे ही) इनके अगुवा हुए, तृत्सुओंकी प्रजायें विशाल हो गईं ॥६॥

७. तीन (अग्नि-वायु-सूर्य) भुवनमें जल बनाते हैं, आर्य प्रजा तीन अग्र-ज्योति हैं। तीन प्रकाशमान उषाका सेवन करते हैं, उन सबको वसिष्ठ-संतान जानती हैं ॥७॥

८. हे वसिष्ठो, इनकी ज्योति सूर्य के समान, महिमा समुद्रके समान गंभीर है, वेग वायुकी तरह। तुम्हारे स्तोमोंके पास दूसरा नहीं आ सकता ॥८॥

९. उन्होंने तो हृदयके ज्ञान द्वारा छिपे सहस्र शाखाओंवाले (लोक) में संचार किया। यम द्वारा फैलाये परिधिको बुनते वसिष्ठ लोग अप्सराओंके पास पहुंचे ॥९॥

१०. हे वसिष्ठ, मित्र और वरुणने ज्योति जगाते जो तुम्हें देखा था, सो तुम्हारा एक जन्म है, अगस्त्यने जो प्रजायें तुम्हें ला दीं ॥१०॥

११. हे ब्रह्मन् वसिष्ठ, तुम मित्र और वरुणके हो, तुम उर्वशीके मनसे जन्मे। जो बिन्दु गिरा, उस तुम्हें विश्वदेवोंने दिव्य मंत्र द्वारा पुष्करमें धारण किया ॥११॥

१२. वह प्राज्ञ दोनोंके महाविद्वान् सहस्र दान अथवा दानसहित, यम द्वारा विस्तृत परिधि बुननेके इच्छुक वसिष्ठ अप्सरासे उत्पन्न हुये ॥१२॥

१३. सत्रमें विद्यमान नमस्कारों द्वारा प्रार्थित मित्र-वरुणने एक साथ कुंभमें वीर्य सिञ्चन किया। उसीके मध्यसे मान उत्पन्न हुआ, वसिष्ठ ऋषिको उसीसे जन्मा कहते हैं ॥१३॥

१४. उक्थभारक सोमभारक शिलखण्ड लिये (वह) सबको उपदेश देते हैं। तृत्सुओ, वसिष्ठ तुम्हारे पास आ रहे हैं, प्रसन्नचित्त इनकी पूजा करो ॥१४॥

—ऋ० ७।३३

२. देवतागृह—

१५. अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन् ।
सखा सुशेव एधि नः ॥१॥

१६. यदर्जुनसारमेय दतः यच्छसे ।
वीव भ्राजंत ऋष्टय उप स्रक्वेषु बप्सतो नि षु स्वप ॥२॥

१७. स्तेनं राय सारमेय तस्कर वा पुनःसर ।
स्तोतॄनिंद्रस्य रायसि किमस्मान्दुच्छुनायसे निषु स्वप॥३॥

१८. त्वं सूकरस्य दर्दृहि तव दर्दर्तु सूकरः ।
स्तोतॄनिंद्रस्य रायसि किमस्मान्दुच्छुनायसे निषु स्वप ॥४॥

१९. सस्तु माता सस्तु पिता सस्तु श्वा सस्तु विश्पतिः ।
ससन्तु सर्वे ज्ञातयः सस्त्वयमभितो जनः ॥५॥

२०. य आस्ते यश्च चरति यश्च पश्यति नो जनः ।
तेषां सं हन्मो अक्षाणि यथेदं हर्म्यं तथा ॥६॥

२१. सहस्रशृंगो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत् ।
तेना सहस्येना वयं नि जनान्त्स्वापयामसि ॥७॥

२२. प्रोष्ठेशया वह्येशया नारीर्यास्तल्पशीवरीः ।
स्त्रियो याः पुण्यगंधास्ताः सर्वाः स्वापयामसी ॥८॥

—ऋक् ७।५५

३. उषा—

२३. व्युषा आवो दिविजा ऋतेनाविष्कृण्वाना महिमानमागात् ।
अप द्रुहस्तम आवरजुष्टमंगिरस्तमा पथ्या अजीगः ॥१॥

२४. महे नो अद्य सुविताय बोध्युषो महे सौभगाय प्रयंधि ।
चित्रं रयिं यशसं धेह्यस्मेदेवि मर्तेषु मानुषि श्रवस्युं ॥२॥

२. गृहदेवता—

(गृह-देवता और इन्द्र का वर्णन, छन्द गायत्री: अनुष्टुप्, बृहती)

१५. हे रोगनाशक गृहरक्षक, सारे रूपोंमें प्रविष्ट सखा, हमारे सुखको बढ़ाओ ॥१॥

१६. हे श्वेत सरमा-पुत्र, जब तुम भूरे दांतोंको दिखलाते हो, तब वह भोजनके समय ओठके पास अस्त्रसे चमकते हैं। सुखसे सो जाओ ॥२॥

१७. हे सारमेय, चोर या डकैतके पास घूम जाओ। इन्द्रके स्तोता हमें क्यों बांधते हो? सुखसे सो जाओ ॥३॥

१८. तुम सूअरको दर्दराओ और सूकर तुझे दर्दरावे। इन्द्रके स्तोता हमें क्यों बांधते हो? सुखसे सो जाओ ॥४॥

१९. माता सोवे, पिता सोवे, श्वान सोवे, विश्पति सोवे। सारे जातिवाले सोवें। यह जन (भी) चारों ओर सोवे ॥५॥

२०. जो स्थित है और जो चलता है और जो जन हमें देखता है। उनकी आंखोंको हम हनन करते हैं, जैसे यह हर्म्य वैसे वह ॥६॥

२१. सहस्र शृंगों (किरणों) वाला वृषभ जो समुद्रसे उठा। उस बलिष्ठ द्वारा हम जनोंको सुला देंगे ॥७॥

२२. आंगनमें सोनेवाले बाहर सोनेवाले जो शय्यापर सोनेवाली नारियाँ हैं, जो पुण्य गंधवाली स्त्रियां हैं, उन सबको हम सुला देंगे ॥८॥

—ऋक् ७।५५

३. उषाका वर्णन—

२३. दीप्तिमती उषा जलमें प्रादुर्भूत हुई, सत्य द्वारा महिमा प्रकट करती आई। अंगिरस्तमाने अप्रिय अन्धकारको हटाकर लोकोंको प्रकाशित किया ॥१॥

२४. हे उषा, आज हमारे सुखके सम्पादनके लिये जागो, महासौभाग्य दो। हे मानुषि देवि, हम मर्त्यों को अद्भुत अन्न यश पूर्ण दो ॥२॥

२५. एते त्ये भानवो दर्शताचाश्चित्रा उषसो अमृतास आगुः ।
जनयंतो दैव्या ने व्रतान्या पृणंतो अंतरिक्षा व्यस्थुः ॥३॥

२६. एषा स्या युजाना पराकात् पंच क्षितीः परि सद्यो जिगाति ।
अभिपश्यंति वयुना जनानां दिवो दुहिता भुवनस्य पत्नी ॥४॥

२७. वाजिनीवती सूर्यस्य योषा चित्रामघा राय ईशे वसूनां ।
ऋषिष्टुता जरयन्ति मघोन्युषा उच्छति वह्निभिर्गृणाना ॥५॥

२८. प्रति द्युतानामरुषासो अश्वाश्चित्रा अदृश्रन्नुषसं वहंतः ।
याति शुभ्रा विश्वपिशा रथेन दधाति रत्नं विधते जनाय ॥६॥

२९. सत्या सत्येभिर्महती महद्भिर्देवी देवेभिर्यजता यजत्रैः ।
रुजद्दृह्ळानि ददुस्त्रियाणां प्रति गाव उषसं वावशंत ॥७॥

३०. नू नो गोमद्वीरवद्धेहि रत्नमुषो अश्वावत् पुरुभोजो अस्मे ।
मा नो बर्हिः पुरुषता निदे कर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८॥

—ऋक् ७।७५

४. इन्द्र-वरुण—

३१. युवां नरा पश्यमानास आप्यं प्राचा गव्यंतः पृथुपर्शवो ययुः ।
दासा च वृत्रा हतमार्याणि च सुदासमिन्द्रावरुणावसावतं ॥१॥

३२. यत्रा नरः समयंते कृतध्वजो यस्मिन्नाजा भवति किं चन प्रियं ।
यत्रा भयंते भुवना स्वर्दृशस्तत्रा न इन्द्रावरुणाधि वोचतम् ॥२॥

२५. दर्शनीय उषाकी ये ये अद्भुत अमृत किरणें आईं। दिव्य व्रतोंको जगाती अंतरिक्षको भरती फैलीं ॥३॥

२६. वह यह उद्योगपरायणा दूरसे तुरन्त पांचों जनोंके पास आती है। द्योकी दुहिता भुवनकी रक्षिका ज्ञान द्वारा जनोंको देखती ॥४॥

२७. अन्नवाली अद्भुत धनवाली हे वसुओंके धनकी स्वामिनी, ऋषियों द्वारा स्तुत जरा करनेवाली धनी यजमानों द्वारा प्रशंसित उषा उगती है ॥५॥

२८. अरुण अद्भुत घोड़े चमकती उषाको वहन करते दिखाई देते हैं। सेवकजनको रत्न देती वह शुभ्र नाना वर्णके रथ द्वारा जाती है ॥६॥

२९. सत्या महती पूज्य देवी सत्य बड़े पूजनीय देवोंके साथ तमको भेदन करती गोचर प्रदान करती है। गायें उषाकी चाहना करती हैं ॥७॥

३०. हे उषा, गायों और वीरों से युक्त रत्न-अश्वसहित बहुत भोग हमें दो। पुरुषोंमें हमारे यशकी निंदा न करो। तुम हमारी सदा स्वस्तिके साथ रक्षा करो ॥८॥

—ऋक् ७।७५

४. इन्द्र और वरुणका वर्णन—

३१. हे नेताओ, प्राप्य तुम दोनोंको देखते गोकी इच्छासे पृथु और पर्शु पूर्वकी ओर गये। दास शत्रुओं और आर्योंको मारने [illegible] और इन्द्र-वरुणने सुदासको रक्षासे रक्षित किया ॥१॥

३२. जहाँ नर ध्वज उठाये मिलते हैं, जिस युद्धमें कुछ भी प्रिय नहीं होता। जहाँ लोग स्वर्गदर्शी होते हैं। वहाँ हे इन्द्र-वरुण, हमारी बातें कहो ॥२॥

३३. सं भूम्या अंता ध्वसिरा अदृक्षतेंद्रावरुणा दिवि घोष आरुहत् ।
अस्थुर्जनानामुप मामरातयो र्वागवसा हवनश्रुता गतं ॥३॥

छन्द—जगती-त्रिष्टुप्

३४. इन्द्रावरुणा वधनाभिरप्रति भेदं वन्वंता प्र सुदासमावतं ।
ब्रह्माण्येषां शृणुतं हवीमनि सत्या तृत्सूनामभवत् पुरोहितः ॥४॥

३५. इन्द्रावरुणावभ्यातपंति माघान्यर्यो वनुषामरातयः ।
युवं हि वस्व उभयस्य राजथो ध स्मा नोवतं पार्ये दिवि ॥५॥

३६. युवां हवन्त उभयास आजिष्विन्द्रं च वस्वो वरुणं च सातये ।
यत्र राजभिर्दशभिर्निबाधितं प्र सुदासमावतं तृत्सुभिः सह ॥६॥

३७. दश राजानः समिता अयज्यवः सुदासमिन्द्रावरुणा न युयुधुः ।
सत्या नृणामद्मसदामुपस्तुतिर्देवा एषामभवन्देवहूतिषु ॥७॥

३८. दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वतः सुदास इन्द्रावरुणावशिक्षतं ।
श्वित्यंचो यत्र नमसा कपर्दिनो धिया धीवंतो असपंत
तृत्सवः ॥८॥

३९. वृत्राण्यन्यः समिथेषु जिघ्नते व्रतान्यन्यो अभि रक्षते सदा ।
हवामहे वां वृषणा सुवृक्तिभिरस्मे इन्द्रावरुणा शर्म
यच्छतं ॥९॥

४०. अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्नं यच्छन्तु महि
शर्म सप्रथः ।
अवध्रज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे ॥१०॥

—ऋक् ७।८३

३३. हे इन्द्र-वरुण, भूमिके अन्त ध्वस्त दिखाई देते हैं, द्युलोकमें कोलाहल उठा है। जनोंके शत्रु मेरे पास खड़े हैं, (मेरी) पुकार सुनकर तुम रक्षा के साथ पास आओ ॥३॥

३४. हे इन्द्र-वरुण, हथियारों द्वारा शत्रु भेद को मारते तुमने सुदासकी रक्षा की। इनके मंत्र सुने, युद्धमें तृत्सुओंका पुरोहित होना (हमारा) सत्य हुआ ॥४॥

३५. हे इन्द्रवरुण, चारों ओरसे मुझे हिंसक शत्रुओंके हथियार सता रहे हैं। तुम दोनों प्रकारके धनोंके स्वामी हो, हमारी युद्धके दिनोंमें रक्षा करो ॥५॥

३६. युद्धमें इन्द्र और वरुण तुम दोनोंको धनकी प्राप्तिके लिये पुकारते हैं। जहां दस राजाओं द्वारा पीड़ित सुदासको तृत्सुओंके साथ तुमने रक्षा की ॥६॥

३७. हे इन्द्र-वरुण, एकत्रित हुये अयज्ञ दस राजा सुदाससे नहीं लड़ सके। अन्नवासी मनुष्योंकी स्तुति सत्य हुई, इनके यज्ञोंमें देव लोग आये ॥७॥

३८. इन्द्र और वरुण, तुमने दाशराज्ञमें चारों ओरसे घिरे सुदासको बल दिया। जहां श्वेतवर्ण जूड़ाधारी तृत्सु लोग नमस्कार और स्तुति-से सेवा करते थे ॥८॥

३९. हे इन्द्र-वरुण, एक (इन्द्र) युद्धमें वृत्रको मारते हो, दूसरा (वरुण) सदा व्रतकी रक्षा करता है। हम तुम अभीष्टदाताओंकी सुन्दर स्तुति करते हैं, हमें सुख प्रदान करो ॥९॥

४०. इन्द्र-वरुण, मित्र, अर्यमा हमें महाधन, निरन्तर सुख प्रदान करें। सन्मार्गगामी अदितिकी ज्योति (अज्ञानिवारक) हो, हम सविता देवताका स्तोत्र गा रहे हैं ॥१०॥

—८।७३

३. विश्वामित्र (१२०० ई० पू०)

यह वसिष्ठ के समवयस्क, और भरद्वाज के तरुण-समकालीन थे। इनके समय में भरद्वाज राजकाज से अवसर-प्राप्त कर चुके थे। वसिष्ठ के प्रताप से जलकर सुदासने विश्वामित्र को अपना पुरोहित बनाया था। दाशराज्ञयुद्ध में भी इनका कुछ हाथ था, पर उतना नहीं, जितना कि बतलाये जाने की कोशिश की जाती है। उदाहरणार्थ दुस्तर नदियों के पार करने की घटना दाशराज्ञयुद्ध में हुई, और इस सफलता का श्रेय वसिष्ठ लेना चाहते हैं, जो ठीक भी है। पर, विश्वामित्र ने व्यास और सतलुजकी जो सुन्दर काव्यमय स्तुति की है, इसका यह अर्थ लगाया जाता है, कि नदियों के पार कराने का काम विश्वामित्र ने किया था। इसमें सन्देह नहीं, इन तीनों प्राचीन

१. नदी स्तुति—

१. प्र पर्वतानामुशती उपस्थादश्वे इव विषिते हासमाने।
गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे विपाट्छुतुद्री पयसा जवेते ।।१।।

२. "इन्द्रेषिते प्रसवं भिक्षमाणे अच्छा समुद्रं रथ्येव याथः।
समाराणे ऊर्मिभिः पिन्वमाने अन्यावामन्यामप्येति
शुभ्रे ।।२।।

३. अच्छा सिन्धुं मातृतमामयासं विपाशमुर्वीं सुभगामगन्म।
वत्समिव मातरा संरिहाणे समानं योनिमनु संचरन्ती"।।३।।

४. "एना वयं पयसा पिन्वमाना अनु योनिं देवकृतं चरन्ती।
न वर्तवे प्रसवः सर्गतक्तः किंयुर्विप्रो नद्यो जोहवीति"।।४।।

५. "रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः।
प्रसिन्धुमच्छा बृहती मनीषावस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः"।।५।।

३. विश्वामित्र (१२०० ई० पू०)

महान् ऋषियों में सबसे अधिक काव्य-प्रतिभा विश्वामित्र को मिली थी।

विश्वामित्र के पिता गाथी, पितामह कुशिक और प्रपितामह इषीरथ थे। इनके पुत्र अष्टक यद्यपि ऋग्वेद में अधिक प्रसिद्ध नहीं हैं, लेकिन बुद्ध ने इन्हें महान् ऋषियों में गिना है। विश्वामित्र के दूसरे पुत्र मधुच्छन्दा बड़े प्रतापी थे, जिनके पुत्र जेताको भी ऋचायें मिलती हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं, कि भरद्वाज, वसिष्ठ की तरह विश्वामित्र भी जमुना से पश्चिम सप्तसिन्धु के निवासी थे। सप्तसिन्धु में उनके लोग सबसे पूर्व सरस्वती की उपत्यका अर्थात् आजकल के हरियाना प्रदेश में रहते थे।

ऋग्वेद का तीसरा मंडल इनका है, जिसमें ४७ सूक्त (१—१२, २४—३०, ३२—५३, ५७—६२) इनके रचे हैं। नवें और दसवें मंडलों में में भी एक दर्जन के करीब इनकी ऋचायें संगृहीत हैं।

व्यास और सतलुजकी प्रार्थना—

१. कामना करती मुक्त घोड़ियोंकी तरह हिनहिनाती, चाटनेकी इच्छावाली दो शुभ्र माताओं (गौओं) सी पर्वतोंकी गोदसे व्यास और सतलुज पय (जल) के साथ दौड़ रही हैं ॥१॥

२. इन्द्र द्वारा प्रेरित, प्रार्थना सुनती तुम दोनों भले रथियोंकी तरह समुद्रको जा रही हो। साथ बहती लहरोंसे भरी हे शुभ्रो, तुम परस्पर साथ जा रही हो ॥२॥

३. मैं मातृतमा सिन्धु (सतलुज) के पास आया, सुभगा विपाश (व्यास)के पास पहुँचा। [illegible] गौओं की एक स्थानमें संचार करती हैं ॥३॥

४. "हम ये दोनों पय (जल) भरी देव-निर्मित स्थानमें अनुचरण कर रही हैं। सृष्टिसे चली आज्ञा बन्द होनेकी नहीं, विप्र, किसलिये तू नदियोंको पुकारता है?" ॥४॥

६. "इन्द्रो अस्माँ अरदद्वज्रबाहुरपाहन् वृत्रं परिधिं नदीनां।
देवो नयत् सविता सुपाणिस्तस्य वयं प्रसवे याम उर्वीः॥६॥

७. प्रवाच्यं शश्वधा वीर्यं तदिन्द्रस्य कर्म यदहिं विवृश्चत्।
वि वज्रेण परिषदो जघानायन्नापोयनमिच्छमानाः"॥७॥

८. "एतद्वचो जरितर्मापि मृष्ठा आयत्ते घोषानुत्तरा युगानि।
उक्थेषु कारो प्रति नो जुषस्व मा नो नि कः पुरुषत्रा
नमस्ते" ॥८॥

९. "ओषु स्वसारः कारवे शृणोत वो दूरादनसा रथेन।
निषू नमध्वं भवता सुपारा अधो अक्षाः सिन्धवः
स्रोत्याभिः" ॥९॥

१०. "आ ते कारो शृणवामा वचांसि ययाथ दूरादनसा रथेन।
नि ते नंसै पीप्यानेव योषा मर्यायेव कन्या शश्वचै ते"॥१०॥

छन्द—अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्

११. "यदंग त्वा भरताः संतरेयुर्गव्यन् ग्राम इषित इन्द्रजूतः।
अर्षादहं प्रसवः सर्गतक्त आ वो वृणे सुमतिं यज्ञियानां ॥११॥

१२. अतारिषुर्भरता गव्यवः समभक्त विप्रः सुमतिं नदीनां।
प्र पिन्वध्वमिषयन्तीः सुराधा आ वक्षणाः पृणध्वं यात
शीभं ॥१२॥

१३. उद्व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुंचत।
मादुष्कृतौ व्येनसाघ्न्यौ शूनमारतां ॥१३॥

—ऋक् ३।३३

५. "हे सत्यवंतियो, मेरे सोम्य वचनके लिए क्षण भर गमनसे रुक जाओ। रक्षाका इच्छुक मैं कुशिकका पुत्र बड़ी स्तुतिसे सिन्धुको बुलाता हूँ" ॥५॥

६. "वज्रबाहु इन्द्रने वृत्रको मारा और हमारे लिये नदियोंकी परिधि खोदी। सुपाणि सविता देव हमें ले जाता है, उसकी आज्ञामें हम फूली जा रही हैं ॥६॥

७. सदा उस पराक्रमका बखान करना चाहिए, इन्द्रका कर्म अहि (मेघ) को मारना है। उसने वज्रसे (शत्रु-) परिषदोंको मारा, तब स्थान की इच्छा करते जल आये ॥७॥

८. हे स्तुतिकारक, इस वचनको न भूलना। आगे युगोंमें तुम्हारा उत्तम घोष (होगा)। हे कवि, उक्थों (स्तुतियों) से हमारी सेवा करो, हमें पुरुष (-अधीन) का न करना, तुम्हें नमस्कार" ॥८॥

९. "हे बहिनो, कविकी सुनो, वह बैलके रथसे तुम्हारे पास दूरसे आया है। नदियो, नीची हो धाराओंसे धुरेके नीचे हो सुपारा हो जाओ" ॥९॥

१०. "हे कवि, तेरे वचनोंको हम सुनती हैं, तू दूरसे बैलके रथसे आया है। दूध पिलानेकी इच्छुक स्त्री (या) पुरुषके लिए युवतीकी तरह हम तेरे लिये नीची हो जाती हैं" ॥१०॥

११. "हे प्रियो, जो गो-इच्छुक इन्द्र-प्रेरित ग्राम इच्छित भारत लोग तुम्हें पार कर जायें, (तो) सृष्टिसे चली आज्ञा पानेसे मैं तुम पूजनीयों की स्तुति करूंगा" ॥११॥

१२. गो-इच्छुक भरत पार हो गये, विप्रने नदियोंकी सुंदर स्तुति की। "अन्न देती सुधनवाली तुम बढ़ती पूरी करती जल्दी जाओ" ॥१२॥

१३. "हे नदियो, तुम्हारी शान्त लहरें बहें, पानी जूयेकी रस्सीको छोड़ दे। निष्पाप निष्कलुष अनिंदनीय (तुम) दोनों मोटी न होओ" ॥१३॥

—३।३३

२. उषा—

१४. उपो वाजेन वाजिनि प्रचेताः स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि ।
पुराणी देवि युवतिः पुरन्धिरनुव्रतं चरसि विश्ववारे ॥१॥
१५. उषो देव्यमर्त्या विभाहि चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती ।
आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णां पृथुपाजसो
ये ॥२॥
१६. उषः प्रतीची भुवनानि विश्वोर्ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतुः ।
समानमर्थं चरणीयमाना चक्रमिव नव्यस्याववृत्स्व ॥३॥
१७. अव स्यूमेव चिन्वती मघोन्युषा याति स्वसरस्य पत्नी ।
स्वर्जनन्ती सुभगा सुदंसा आन्ताद्दिवः पप्रथ आ पृथिव्याः
॥४॥
१८. अच्छा वो देवीमुषसं विभातीं प्र वो भरध्वं नमसा सुवृक्तिम् ।
ऊर्ध्वं मधुधा दिवि पाजो अश्रेत् प्र रोचना रुरुचे
रण्वसन्दृक् ॥५॥
१९. ऋतावरी दिवो अर्कैरबोध्या रेवती रोदसी चित्रमस्थात् ।
आयतीमग्न उषसं विभातीं वाममेषि द्रविणं भिक्षमाणः
॥६॥
२०. ऋतस्य बुध्न उषसामिषण्यन् वृषा मही रोदसी आविवेश ।
मही मित्रस्य वरुणस्य माया चन्द्रेव भानुं विदधे पुरुत्रा ॥७॥

—ऋक् ३।६१

छन्द—त्रिष्टुप

२. उषाका वर्णन—

१४. अन्नसे अन्नवाली, धनवाली प्रचेतनावाली हे उषा, गायकके स्तोत्रको ग्रहण करो। विश्वको पसन्द युवती महिला हे पुरानी देवी, तुम व्रत-अनुसार फिर चलती हो ॥१॥

१५. अमर सुभाषित को प्रेरणा करती सुवर्ण-रथवाली हे देवि उषा, चमको। सुनियंत्रित सुनहले रंगके बड़े शक्तिशाली जो घोड़े हैं, (वह) तुम्हें वहन करें ॥२॥

१६. हे उषा, तुम भुवनोंके सामने, विश्वके ऊपर अमृतके ध्वजके समान रहती हो। एक ही अर्थके लिए विचरण करती (सूर्यके) चक्र सी हे अतिनवीना, तुम चलो ॥३॥

१७. सूर्यकी पत्नी धनवन्ती उषा अंधकारको नष्ट करती हुई सी जा रही है। वह सुभगा सुदर्शना द्युलोकके अंतसे पृथिवी तक प्रकाश उत्पादन करती फैली ॥४॥

१८. "हे (स्तोताओ), अपने सामने चमकती उषाको नमस्कार द्वारा सुन्दर स्तुति अर्पित करो। ऊपर द्यौमें मधुधारिणी तेजको स्थापित करती, रोचना, रमणीय-दर्शना वह (उषा) दीप्त हो रही है ॥५॥

१९. सत्यवंती द्युलोककी किरणोंसे जाती, वह धनवंती द्युलोक और पृथिवीमें विचित्र रूपसे स्थित है। हे अग्नि, चमकती आती उषासे प्रार्थना करते तुम प्रिय धन पाते हो ॥६॥

२०. उषाको प्रेरणा करते सत्य शरीर वृषा (सूर्य) महान् द्यौ-पृथिवीमें प्रवेश करते हैं। मित्र (स्वरूप) वरुणकी महान् उषाने ([illegible]) सोने सी किरणोंको सर्वत्र फैलाया ॥७॥

—३।६१

४. वामदेव (१२०० ई० पू०)

यह गोतम के पुत्र और रहूगण के पौत्र थे। वामदेव यद्यपि आदिम तीन ऋषियों के समान राजनीतिक प्रभाव नहीं रखते थे, लेकिन शुद्ध ऋषि के तौर पर इनका भारी महत्व है। ऋग्वेदका चौथा मंडल प्रायः सारा इन्हींकी कृति है, जिसके ५८ सूक्तों में तीन (४२-४४) छोड़कर सभी इनके हैं। यदि राजनीतिक प्रभाव में ये औरों से पिछड़े हुये थे, तो

१. उषा—

१. इदमु त्यत् पुरुतमं पुरस्ताज्ज्योतिस्तमसो वयुनावदस्थात् ।
नूनं दिवो दुहितरो विभातीर्गातुं कृणवन्नुषसो जनाय ॥१॥

२. अस्थुरु चित्रा उषसः पुरस्तान्मिता इव स्वरवोऽध्वरेषु ।
व्यू व्रजस्य तमसो द्वारोच्छन्तीरव्रञ्छुचयः पावकाः ॥२॥

३. उच्छन्तीरद्य चितयन्त भोजान्राधो देयायोषसो मघोनीः ।
अचित्रे अन्तः पणयः ससन्त्वबुध्यमानास्तमसो विमध्ये॥३॥

४. कुवित् स देवीः सनयो नवो वा यामो बभूयादुषसो वो अद्य ।
येना नवग्वे अंगिरे दशग्वे सप्तास्ये रेवती रेवदूष ॥४॥

५. यूयं हि देवी ऋतयुग्भिरश्वैः परिप्रायाथ भुवनानि सद्यः ।
प्रबोधयन्तीरुषसः ससन्तं द्विपाच्चतुष्पाच्चरथाय
जीवं ॥५॥

६. क्व स्विदासां कतमा पुराणी यया विधाना विदधुर्ऋभूणां ।
शुभं यच्छुभ्रा उषसश्चरन्ति न नि ज्ञायन्ते सदृशीरजुर्याः ॥६॥

छन्द—त्रिष्टुप्

७. ता घा ता भद्रा उषसः पुरासुरभिष्टिद्युम्ना ऋतजातसत्याः ।
यास्वीजानः शशमान उक्थैः स्तुवञ्छंसन्द्रविणं सद्य आप ॥७॥

४. वामदेव

देवता के साक्षात्कार और देवता का आवेश लेने में यह आगे थे। कितनी ही ऋचाओं में देवताओं ने इनके मुख से "मैं" कहकर बुलवाया है। इस प्रकार की स्तुति रचने वाले यही सर्वप्रथम (और शायद अन्तिम भी) ऋषि थे। अपना गोत्र इन्होंने नहीं चलाया। इनके पिता के नाम से यह और इनकी संतानें गोतम प्रसिद्ध हुईं। यह तीनों ऋषियों के समकालीन, किन्तु सबसे तरुण थे।

१. उषा—

१. अन्धकारको नष्ट करती पूर्वमें यह वह अति विशाल ज्योति उठी। निश्चय द्यौकी दुहिता उषायें जनोंको गमनशील करती भासित होती हैं॥१॥

२. यज्ञमें निमित यूपों सी विचित्र उषायें पूर्वमें अवस्थित हुईं। वह अन्धकारके द्वारको खोलती पवित्र किरणोंको प्रकाशित करती हैं॥ २॥

३. आज धनवन्ती उषायें अन्न देनेके लिये भोजोंको चेताती उग रही हैं। अंधकार के बीच न जाग, भीतरसे अविच्छिन्न पणि सो जायें॥ ३॥

४. हे उषा देवियो, जिस रथके द्वारा सप्त मुखवाले नवग्व और दशग्व अंगिराओंको तुमने धनवान् किया; हे धनवंती, वही तुम्हारा नया या पुरातन रथ आज यहां बहुबार आवे॥ ४॥

५. हे देवियो, तुम सत्य से जुड़े घोड़ों द्वारा तुरंत भुवनोंमें व्याप्त हो जाती हो। सोते हुये दो पायों और चौपायोंको जगाती तुम गमनके लिये जीवोंको चलाती हो॥ ५॥

६. इनमें कौन पुरानी [illegible] है, जिनके लिये [illegible] के पास गये। जो कि शुभ्र उषायें [illegible] करती हैं, (इनमें कभी) न पुरानी होनेवाली सुंदरी उषायें नहीं पहचानी जातीं॥ ६॥

७. वही तरुण भद्र उषायें प्राचीनकालसे [illegible] अत्यन्त उज्ज्वल धन दें; जिनको यज्ञकर्ता उक्थों द्वारा प्रशंसा करते स्तुति करते तुरन्त अच्छे धनको पाते हैं॥७॥

८. ता आचरन्ति समना पुरस्तात् समानतः समना पप्रथानाः ।
ऋतस्य देवीः सदसो बुधाना गवां न सर्गा उषसो जरन्ते ॥८॥

९. ता इन्नेव समना समानीरमीतवर्णा उषसश्चरन्ति ।
गूहन्ती रभ्वमसितं रुशद्भिः शुक्रास्तनूभिः शुचयो रुचानाः ॥९॥

१०. रयिं दिवो दुहितरो विभातीः प्रजावन्तं यच्छतास्मासु देवीः ।
स्योनादावः प्रतिबुध्यमानाः सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥१०॥

११. तद्वो दिवो दुहितरो विभातिरुपब्रुव उषसो यज्ञकेतुः ।
वयं स्याम यशसो जनेषु तद्द्यौश्च धत्तां पृथिवी च देवी ॥११॥

—ऋक् ४।५१

२. क्षेत्रपति—

१२. क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि ।
गामश्वं पोषयित्न्वा स नो मृळातीदृशे ॥१॥

१३. क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिं धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व ।
मधुश्चुतं घृतमिव सुपूतमृतस्य नः पतयो मृळयन्तु ॥२॥

१४. मधुमती रोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षं ।
क्षेत्रस्य पतिर्म्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥३॥

१५. शुनं वाहा शुनं नरः शुनं कृषतु लांगलं ।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्टामुदिंगय ॥४॥

१६. शुनासीराविमां वाचं जुषथां यद्दिवि चक्रथुः पयः ।
तेनेमामुपसिंचतं ॥५॥

८. वह (उषायें) पूर्वसे एक समान सर्वत्र फैलती सर्वत्र विचरण करती है। ऋत की देवियां उषायें बुधोंकी सभामें गायों सी मुदित से प्रार्थित होती हैं ॥८॥

९. वह उषायें सुन्दर वर्णोवाली नवीना सी विचरती हैं। (वह) चमकते शुक्ल शरीरों से अन्धकार को हटाती पवित्र रोचमान हैं ॥९॥

१०. प्रकाश करती द्यौ लोक की पुत्री देवियाँ, उषायें हमें प्रजा-सहित धन प्रदान करें। सुखके लिए जागरूक हम सुवीर्यके पति हों ॥१०॥

११. हे द्यौलोककी पुत्रियो, प्रकाशमान उषाओ, यज्ञ याजक।' हम जनोंमें यशस्वी होवें, द्यौ और पृथिवी देवी उसे धारण करें ॥११॥

— ४।५१

२. क्षेत्रपति—

१२. हितैषीकी तरह क्षेत्रपतिके साथ हम जय करें। वह देवता इस प्रकार गौ और अश्वोंका पोषण करता हमें सुखी बनावे ॥१॥

१३. हे क्षेत्रके पति, धेनु जैसे हो वैसे मधुमान् विपुल दूधको हमें दो। अमृत के पति हमें घृतकी तरह तृप्तिकारक मधु स्रावी कर सुखी बनायें ॥२॥

१४. हमारे लिये औषधि, द्यौ और जल मधुर हों, आकाश मधुमान् हो। क्षेत्रपति हमारे लिए मधुमान् हो, हम अपीड़ित हो उसका अनुसरण करें ॥३॥

१५. हे शुनासीर देवता, बहनेवाले (बैल) मंगलकारी हों, नर मंगलकारी हों, हल मंगल जोतें। रस्सी मंगलयुक्त, बंधे कोड़ा मंगलयुक्त प्रेरणा करे ॥४॥

१६. हे शना और सीर, इस मेरे वचनको सेवन करो, द्यौ-लोकमें जो जल बना, उससे मुझे सिंचित करो ॥५॥

१७. अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा।
यथा नः सुभगासति यथा नः सुफलासति ॥६॥
१८. इन्द्रः सीतां निगृह्णातु तां पूषानु यच्छतु।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरा समां ॥७॥
१९. शुनं नःफाला वि कृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभियन्तु वाहैः।
शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तं ॥८॥

—ऋक् ४।५७

५. सुदास (११७५ ई० पू०)

वध्र्यश्व का पौत्र और दिवोदास का पुत्र सुदास सप्तसिन्धु का सबसे बड़ा प्रतापी राजा था, जिसके महान् विजयों में वसिष्ठ और

१. इन्द्र—

१. प्रोष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत।
अभीके चिदु लोककृत् संगे समत्सु वृत्रहास्माकं बोधि चोदिता।
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥१॥
२. त्वं सिन्धुरवासृजो धराचो अहन्नहिं।
अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यं तं त्वा परिष्वजामहे।
नभंतामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥२॥
३. विषु विश्वा अरातयो नशन्त नो धियः।
अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति या ते रातिर्ददिर्वसु।
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥३॥

१७. हे सुभगा (हलवाली) सीता, तुम्हें हम वन्दना करते हैं, तुम हो।
जैसे हमारे लिए तुम सुभगा हो, जैसे हमारे लिए सुफला हो ॥६॥

१८. इन्द्र सीत (हराई) को धारण करे, उषा उसका नियमन करे।
वह जलवाली आगे-आगे आनेवाले वर्षोंमें हमें तृप्त करे ॥७॥

१९. हमारे लिए फाल भूमिको मंगलपूर्वक जोतें, रक्षक बैलोंके साथ मंगलपूर्वक चलें। मेघ मधु जलोंके साथ मंगल करें, शुनासीर (कृषि देवता) हमारा मंगल करे ॥८॥

— ४।५७

५. सुदास (११७५ ई० पू०)

विश्वामित्र ने हाथ बटाया था। इसे ऋषि बनने की जरूरत नहीं थी, तो भी इसके नाम से एक सूक्त ऋग्वेद के दसवें मंडल में (१३३) संगृहीत है, जिसमें हथियार की महिमा बतलाती है, कि यह उन्हीं का धनी था।

१. इन्द्रका वर्णन—

१. जिसकी सेना रथके सामने है, उस इन्द्रकी सुअर्चना करो।
युद्धमें (जो) लोककर्ता संगमें रहता है, वह प्रेरक वृत्र-हन्ता हमारा ख्याल रक्खे। दूसरोंकी प्रत्यंचायें रेगिस्तानोंमें टूट जायें ॥१॥

२. अहिको तुमने मारा और नीचे जानेवाली नदीको मुक्त किया।
हे इन्द्र, तुम शत्रुहीन पैदा हुए, विश्वको पालते हो। उस तुम ओजको हम आलिंगन करते हैं। दूसरोंकी प्रत्यंचायें रेगिस्तानोंमें टूट जायें ॥२॥

३. सारे अदाता हमारी बुद्धियें हट जायें।
हे इन्द्र, जो हमें मारना चाहता है, उस शत्रुका नाश करो। जोकि तेरा धनका देना है। दूसरोंकी प्रत्यंचायें रेगिस्तानोंमें टूट जायें ॥३॥

४. यो न इन्द्राभितो जनो वृकायुरादिदेशति।
अधस्पदं तमीं कृधि विबाधो असि सासहिः।
नभंतामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥४॥

५. यो न इन्द्राभिदासति सनाभिर्यश्च निष्ट्यः।
अव तस्य बलं तिर महीव द्यौरध त्मना।
नभंतामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥५॥

६. वयमिन्द्र त्वायवः सखित्वमारभामहे।
ऋतस्य नः पथा नयाति विश्वानि दुरिता।
नभंतामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥६॥

७. अस्मभ्यं सु त्वमिन्द्र तां शिक्ष या दोहते प्रति वरं जरित्रे।
अच्छिद्रोध्नी पीपयद्यथा नः सहस्रधारा पयसा मही गौः ॥७॥

—ऋक् १०।१३३

६. गर्ग भारद्वाज (११७५ ई० पू०)

भरद्वाज के यह पुत्र और अपने पिता के कामों में सहायक थे। ऋग्वेद के छठे मंडल में इनका सिर्फ एक सूक्त (४७) सुरक्षित है, जिसके अंशों को हमने यहां उद्धृत किया है। दिवोदास और साञ्जय के यह

छन्द-शक्वरी

१. सोमादि देवता—

१. स्वादुष्किलायं मधुमां उतायं तीव्रः किलायं रसवां उतायं।
उतो न्वस्य पपिवांसमिन्द्र न कश्चन सहत आहवेषु ॥१॥

२. अयं स्वादुरिह मदिष्ट आस यस्येन्द्रो वृत्रहत्ये ममाद।
पुरूणि यश्च्योत्ना शंबरस्य वि नवतिं नव च देह्यो
हन् ॥२॥

४. हे इन्द्र, भेड़ियेकी तरह जो जन हमारे चारों तरफ घूमते हैं, उन्हें नीचे स्थान पर मारो। तुम बाधक और अत्यन्त पराक्रमी हो। दूसरोंकी प्रत्यंचायें रेगिस्तानोंमें टूट जायें ॥४॥

५. हे इन्द्र, अपनी जातिका और पराया जो (भी) हमें दास बनाना चाहता। उसके बलको महान् द्योकी तरह नीचा करो। दूसरोंकी प्रत्यंचायें रेगिस्तानोंमें टूट जायें ॥५॥

६. हे इन्द्र, हम तुम्हारे अनुगामी (तुमसे) मित्रता करते हैं। हमें सारी बुराइयोंसे (हटा) सत्यके पथ पर ले चलो। दूसरोंकी प्रत्यंचायें रेगिस्तानोंमें टूट जायें ॥६॥

७. हे इन्द्र, तुम हमें उसे सिखाओ, जो कि स्तुतिकर्ताके मनोरथको पूरा करते हो। महीरूपी गौ सहस्रधार वाले पयसे निरिछद्र हो हमारे लिये दुहाये ॥७॥

६. गर्ग भारद्वाज (१२७५ ई० पू०)

विशेष कृपापात्र थे। दिवोदास के मरने के बाद भरद्वाज-वंश की प्रभुता खतम हो गई, लेकिन गर्गने इसके लिये शक्ति की तरह कोई विरोध प्रदर्शित नहीं किया। हां, सुदास का नाम न लेकर मौन द्वारा अपने असंतोषको प्रकट जरूर किया। यह गर्ग-गोत्र के प्रवर्तक हैं।

१. सोम, रथ, दुन्दुभी, इन्द्रका वर्णन—

१. यह सोम स्वादु और यह मधुर है, यह तीव्र और यह रसवान् है। हे इन्द्र, जिसने इसे पिया, उसके सामने युद्धमें कोई नहीं ठहर सकता ॥

२. यह (सोम) यहाँ स्वादु बहुत मादक है, जिसे (पी) वृत्र-युद्धके समय इन्द्र मस्त हुआ। जिस इन्द्रने बहुत [illegible] शंबर के ९९ पुरों (गढ़ों) को नष्ट किया ॥२॥

३. अयं मे पीत उदियर्ती वाचमयं मनीषामुशतीमजीगः ।
अयं षळुर्वीरमिमीत धीरो न याभ्यो भुवनं कच्चनारे ॥३॥

४. अयं स यो वरिमाणं पृथिव्या वर्ष्माणं दिवो अकृणोदयं सः ।
अयं पीयूषं तिसृषु प्रवत्सु सोमो दाधारोर्वन्तरिक्षं ॥४॥

५. अयं विदच्चित्रदृशीकमर्णः शुक्रसद्मनामुषसामनीके ।
अयं महान्महता स्कम्भनेनोद्यामस्तभ्नाद् वृषभो
मरुत्वान् ॥५॥

६. रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय ।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः
शता दश ॥१८॥

७. युंजानो हरिता रथे भूरि त्वष्टेह राजति ।
को विश्वाहा द्विषतः पक्ष आसत उतासीनेषु सूरिषु ॥१९॥

८. अगव्यूति क्षेत्रमागन्म देवा उर्वी सती भूमिरंहूरणाहूत् ।
बृहस्पते प्र चिकित्सा गविष्टावित्था सते जरित्र इन्द्र
पन्थां ॥२०॥

९. दिवे दिवे सदृशीरन्यमर्धं कृष्णा असेधदप सद्मनो जाः ।
अहन्दासा वृषभोव वस्नयन्तोदव्रजे वर्चिनां शम्बरं च ॥२१

१०. प्रस्तोक इन्नु राधसस्त इन्द्र दशकोशयीर्दश वाजिनो दात् ।
दिवोदासादतिथिग्वस्य राधः शांबरं वसु प्रत्यग्रभीष्म।२२।

११. दशाश्वान्दशकोशान्दश वस्त्राधिभोजना ।
दशो हिरण्यपिण्डान्दिवोदासादसानिषं ॥२३॥

१२. दश रथान्प्रष्टिमतः शतं गा अथर्वभ्यः ।
अश्वत्थः पायवे दात ॥२४॥

३. पीनेपर यह (सोम) मेरी वाणीको उठाता है, यह अभीष्ट बुद्धिको जगाता है। इस धीरने छओं पृथिवियोंको बनाया, (इसके) पास भुवनमें कोई नहीं रह सकता ॥३॥

४. यही वह है, जिसने कि पृथिवीकी श्रेष्ठता (बनाई), और द्योलोक के विस्तारको बनाया, वह यही है। इस सोमने तीनों आधारोंमें विस्तृत अन्तरिक्षमें अमृतको धारण किया ॥४॥

५. इसने श्वेत गृहवाली उषाओंके पास अद्भुत दर्शनवाले सूर्यको प्रकट किया। इस शक्तिशाली इच्छावर्षीने महा स्तम्भ द्वारा स्वर्गको स्थिर किया ॥५॥

६. सो इस (यजमान)को रूप दिखलानेके लिए एक-एक रूपमें वह प्रतिरूप हुआ। मायाओं द्वारा इन्द्र अनेक रूप धारण करता है। इसके दस सौ घोड़े जुड़े होते हैं ॥१८॥

७. रथमें घोड़ोंको जोड़े, त्वष्टा यहाँ सुविराजते हैं।
बैठे स्तुतिकर्ताओंके बीच कौन सब दिन जाकर शत्रुओंके विरुद्ध पक्ष लेता है ॥१९॥

८. देवो, हम ऐसे बिना गायवाले क्षेत्रमें आ गये, विस्तृत होते (भी जो) भूमि दस्युओंकी हैं। हे बृहस्पति, गो-लूट में हमें संचालित करो, इस तरह हे इन्द्र, स्तुतिकर्ताको पथ प्रदान करो ॥२०॥

९. दिन-दिन समान दूसरे आधे (दिन)को प्रकाशित किया और रातको स्थानसे हटाया। उस वृषभने उदव्रजमें बसते दासोंको वर्चिके साथ शम्बरको नष्ट किया ॥२१॥

१०. हे इन्द्र, तेरे स्तुति[illegible] प्रस्तोकने दस कोषोंके साथ दस घोड़े दिये। शम्बर [illegible] अतिथिग्व दिवोदासमें [illegible] हमने ग्रहण किया ॥२२॥

११. दस घोड़े दस [illegible] दस वस्त्रों सहित भोजन,
दस [illegible] दिवोदाससे [illegible] पायें ॥२३॥

१२. अश्वत्थने [illegible] दस रथ और सौ गायें अथर्वोंके लिए पायुको दीं ॥२४॥

१३. महि राधो विश्वजन्यं दधानान्भरद्वाजान् ।
सार्ञ्जयो अभ्ययष्ट ॥२५॥

१४. वनस्पते वीळ्वंगो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः ।
गोभिः सन्नद्धो असि वीळयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि
॥२६॥

१५. दिवस्पृथिव्याः पर्योज उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतं सहः ।
अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रं हविषा
रथं यज ॥२७॥

१६. इंद्रस्य वज्रो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः ।
सेमां नो हव्यदातिं जुषाणो देवरथ प्रति हव्या
गृभाय ॥२८॥

१७. उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं
जगत् ।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद्दवीयो अपसेध शत्रून्॥२९॥

१८. आ क्रंदय बलमोजो न आ धा नि ष्टनिहि दुरिता बाधमानः।
अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुना इत इन्द्रस्य मुष्टिरसि
वीळयस्व ॥३०

१९. आमूरज प्रत्यावर्तयेमाः केतुमद् दुन्दुभिर्वावदीति ।
समश्वपर्णा श्चरंति नरो स्माकमिन्द्र रथिनो
जयन्तु ॥३१॥

—ऋक् ६।४७

छन्द—त्रिष्टुप, अनुष्टुप्, गायत्री और जगती

१३. विश्वजनीन बड़े धनको ग्रहण करते भरद्वाजोंको संजयपुत्रने पूजा ॥२५॥

१४. हे वनस्पति (रथ), दृढ़ अंगोंवाले होओ, हमारे मित्र रक्षक सुवीर होवें। गोचर्मसे तुम बंधे दृढ़ हो। तुमपर बैठनेवाला शत्रुओं को जीतें ॥२६॥

१५. द्यौ और पृथिवीके ओजसे बना वनस्पतियोंके बलसे परिधारित। पानीकी तरह वेगवान् गोचर्मसे आच्छादित इन्द्रके वज्र जैसे (इस) रथको हविसे पूजो ॥२७॥

१६. हे रथदेव, तुम इन्द्रके वज्र (हो) मरुतोंके अग्रगामी मित्र (सूर्य) के गर्भ (हो) और वरुणकी नाभि हो। इस हमारे हव्यदान को सेवन करते हवि ग्रहण करो ॥२८॥

१७. हे दुन्दुभि, पृथिवी और द्यौमें सर्वत्र बजो, स्थावर-जंगम तुझे जाने। इन्द्र और देवताओंके साथ (हो) तुम शत्रुओंको दूरसे दूर हटादो ॥२९॥

१८. हे दुन्दुभि, दुष्ट शत्रुओंको पीड़ित करते चिल्लाओ, हमारेमें बल और ओज धारण कराओ। दुष्टोंको यहाँसे दूर करो। तुम इन्द्रकी मुष्टि हो, हमें दृढ़ करो ॥३०॥

१९. हे इन्द्र, इन हमारी गायोंको लौटाओ, ध्वजा-सहित दुन्दुभी खूब बजती रहे। हमारे नेता घोड़ोंपर संचार करें हमारे रथी विजयी हों ॥३१॥

—६।४७

७. पायु भारद्वाज (११७५ ई० पू०)

यह भरद्वाज के पुत्र और शायद गर्ग के छोटे भाई थे। इनका छठे मंडल में सिर्फ एक सूक्त (७५) और दसवें मंडलमें एक (८७) कुल

१. वर्म, धनु आदि—

१. जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे।
अनाविद्धया तन्वा जय त्वं स त्वा वर्मणो महिमा
पिपर्तु॥१॥

२. धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो
जयेम ॥२॥

३. वक्ष्यन्ती वेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियं सखायं परिषस्वजाना।
योषेव शिङ्क्ते विततावि धन्वन् ज्या इयं समने
पारयंती ॥३॥

४. ते आचरंती समनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे।
अप शत्रून्विध्यतां संविदाने आर्त्नी इमे विष्फुरन्ती
अमित्रान् ॥४॥

५. बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनावगत्य।
इषुधिः संकाः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति
प्रसूतः ॥५॥

६. रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरो यत्र यत्र कामयते सुषारथिः।
अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनु यच्छन्ति
रश्मयः ॥६॥

७. पायु

दो सूक्त मिलते हैं। अतिथिग्व (दिवोदास) के दानकी प्रशंसा इन्होंने की है।

१ वर्म, २ धनुष, ३ ज्या, ४ आर्त्नी, ५ तूणीर, ६ सारथी, लगाम, ७ घोड़ा, ८ रथ, ९ रथ-रक्षक, १० स्तोता, ११,१२ बाण, १३ चाबुक, १४ हस्तत्राण, १५,१६ बाण, १७ युद्धभूमि, १८ कवच, १९ देवगणका वर्णन

१. मेघका प्रतीक होता है, जब वर्मधारी युद्ध-क्षेत्रमें जाता है। तुम अक्षत शरीरसे विजयी होओ, वर्मकी वह महिमा तुम्हारी रक्षा करे ॥१॥

२. धनुषसे गौओंको, धनुषसे युद्धको हम जीतें, धनुषसे तीव्र सेनाओंको जीतें। धनुष शत्रुकी कामनाओंको बेकार करता है। हम धनुषसे सारी दिशायें जीतें ॥२॥

३. प्रिय सखाको आलिंगन करती स्त्रीसी यह ज्या कानमें मधुर बोलती-सी पास आती, युद्ध पार करती है। यह ज्या फैले धनुषमें बाणको आलिंगन करती है ॥३॥

४. यह दोनों आर्त्नियाँ (चापके छोर), शत्रुके प्रति विरक्त स्त्रीकी तरह आचरण करती, पुत्रको माताकी तरह युद्धमें रक्षा करें। जानती हिलती शत्रुओंको छिन्न करें ॥४॥

५. तूणीर बहुतोंका पिता, इसके बहुत-से (बाण) पुत्र हैं। युद्धमें पहुँचकर, यह शब्द करता है। पीठपर बंधा (बाण) प्रसव करता सारी सेनाको जीतता है ॥५॥

६. अच्छा सारथी रथपर बैठा जहाँ-जहाँ चाहता है, (वहाँ वहाँ) घोड़ोंको आगे ले जाता है। लगामोंकी महिमा अपार। लगाम इच्छानुसार घोड़ोंका नियन्त्रण करती है ॥६॥

७. तीव्रान् घोषान् कृण्वते वृषपाणयोऽश्वा रथेभिः सह वाजयन्तः ।
अवक्रामंतः प्रपदैरमित्रान् क्षिणंति शत्रूंरनपव्ययंत: ॥७॥

८. रथवाहनं हविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य वर्म ।
तत्रा रथमुप शग्मं सदेम विश्वाहा वयं सुमनस्यमानाः ॥८॥

९. स्वादुषंसदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तिवंतो गभीराः
चित्रसेना इषुबला अमृध्राः सतो वीरा उरवो व्रातसाहाः ॥९॥

१०. ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा
पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत ॥१०॥

११. सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिः सन्नद्धाः पतति प्रसूता ।
यत्रा नरः सं च वि च द्रवंति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यंसन् ॥११॥

१२. ऋजीते परि वृङ्धि नो'श्मा भवतु नस्तनूः ।
सोमो अधिब्रवीतु नो' दितिः शर्म यच्छतु ॥१२॥

१३. आ जघंति सान्वेषां जघनाँ उप जिघ्नते ।
अश्वाजनि प्रचेतसो' श्वान्समत्सु चोदय ॥१३॥

१४. अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः ।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान्पुमांसं परि-पातु विश्वतः ॥१४॥

१५. आलाक्ता या रुरुशीर्ष्ण्यथो यस्या अयोमुखं ।
इदं पर्जन्यरेतस इष्वै देव्यै बृहन्नमः ॥१५॥

१६. अवसृष्टाः परापत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
गच्छामित्रान् प्र पद्यस्व मामीषां कंचनोच्छिषः ॥१६॥

७. धूल उड़ानेवाले वेग करते रथोंके साथ दौड़ते घोड़े तीव्र घोष करते हैं। (स्वयं) न भागते पैरोंसे शत्रुओंको रौंदते (उन्हें) नष्ट करते हैं ॥७॥

८. जहां इसका आयुध और वर्म रक्खा है, सो रथपर चलती इसका हवि है। हम सब दिन प्रसन्न हो सुखद रथके पास वहाँ जाते हैं ॥८॥

९. स्वादु अन्नवान् आयुष्मान् कठिनाईमें आश्रित शक्तिमान् गम्भीर विचित्र सेनावाले वाणबलवाले अनाशक शत्रु विजेता महान् वीर पितर (हैं) ॥९॥

१०. हे सौम्य पितर, ब्राह्मण, द्यौ और पृथिवी पाप-रहित हो हमारे कल्याणके लिए हों। सत्य बढ़ाते पूषन् पापसे हमारी रक्षा करे, पापी हमारे ऊपर शासन न करे ॥१०॥

११. (वाण) सुन्दर पंख धारता है, इसका मृगका दाँत (फल) गोचर्मसे बंधा फेंकनेपर गिरता है। जहाँ नेता साथ या अलग-अलग दौड़ते हैं, वहां संयत वाण हमें सुख दे ॥११॥

१२. हे वाण, हमें बढ़ाओ, हमारा शरीर पत्थर-सा हो।
सोम हमारी ओर बोले, अदिति हमें सुख दे ॥१२॥

१३. तुमसे समझदार घोड़ोंके पीठपर मारते हैं, जघनपर मारते हैं।
हे चाबुक, अश्वोंको युद्धमें प्रेरित करो ॥१३॥

१४. सर्पकी तरह फणों द्वारा बाहुको लपेटते ज्यासे आघातको रोकते सारे ज्ञेयोंको जानते पुरुषरूपी हस्तघ्न चारों ओरसे पुरुषकी रक्षा करे ॥१४॥

१५. जो विषाक्त और सींगकी शिरवाली है, जिसका मुख लोहेका है। पर्जन्यसे उत्पन्न (उस) इषु (वाण) देवीको यह (हमारा) बड़ा नमस्कार है ॥१५॥

१६. छोड़नेपर मन्त्र-द्वारा तीक्ष्ण किये हुए वाण, तुम दूर गिरो।
जाओ अमित्रोंको प्राप्त होओ, उनमें किसीको न छोड़ो ॥१६॥

१७. यत्र बाणाः संपतन्ति कुमारा विशिखा इव ।
तत्रा नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु,
विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥१७॥

१८. मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सामस्त्वा राजामृतेनानुवस्ताम् ।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयंतं त्वानु देवा मदंतु॥१८॥

१९. यो नः स्वो अरणो निष्ट्यो जिघांसति ।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममांतरं ॥१९॥

—ऋक् ६।७५

८. दिव्य आँगिरस (१००० ई० पू०)

अंगिरा-गोत्र के किन्तु ऋग्वेद के पीछेवाले ऋषियों में हैं। दसवें मंडल का एक सूक्त (१०७) इनका रचा है।

छन्दः अनुष्टुप्, पंक्ति, त्रिष्टुप्—

१. आविरभून्महि माघोनमेषां विश्वं जीवं तमसो निरमोचि ।
महि ज्योतिः पितृभिर्दत्तमागादुरुः पन्था दक्षिणाया
अदर्शि ॥१॥

२. उच्चा दिवि दक्षिणावन्तो अस्थुर्ये अश्वदाः सह ते सूर्येण ।
हिरण्यदा अमृतत्वं भजंते वासोदाः सोम प्रतिरंत
आयुः ॥२॥

३. दैवी पूर्तिर्दक्षिणा देवयज्या न कवारिभ्यो नहि ते पृणंति ।
अथा नरः प्रयतदक्षिणासो' वद्याभिया बहवः पृणंति ॥३॥

४. शतधारं वायुमर्कं स्वर्विदं नृचक्षसस्ते अभिचक्षते हविः ।
ये पृणंति प्र च यच्छंति संगमे ते दक्षिणां
दुहते सप्त-मातरं ॥४॥

१७. शिखाहीन कुमारोंकी तरह जहाँ बाण एकत्र गिरते हैं।
वहाँ ब्रह्मणस्पति हमें सुख दें, अदिति सब दिन सुख दे॥१७॥

१८. तेरे मर्म-स्थानोंको वर्मसे मैं ढाँकता हूँ, तुझे सोमराजा अमृतसे ढाँके। वरुण तुझे श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ करे। तुझ विजयीके लिए देव हर्ष मनावें॥१८॥

१९. जो हमारे अपने और पराये अप्रिय हमारी हिंसा करना चाहते हैं।
उन्हें सारे देवगण मारें, मेरा भीतरी वर्म वेद-मंत्र है॥१९॥

—६।७५

८. दक्षिणाकी प्रशंसा—

१. महान् तेज (सूर्य) इनके लिए प्रगट हुआ, सारे जीवोंको अन्धकारसे निर्मुक्त किया। पितरों द्वारा प्रदत्त महान् ज्योति आई, दक्षिणाके विस्तृत पथको दिखलाया॥१॥

२. दक्षिणावाले उच्च द्युलोकमें रहते हैं। जो अश्वदाता हैं, वे सूर्यके साथ रहते। सुवर्णके दाता अमरताको प्राप्त होते हैं, वस्त्रदाता दीर्घायु हो सोमके समीप पहुँचते हैं॥२॥

३. दक्षिणा देवार्चना दिव्य पूर्ति है। वे (देवता) कंजूसोंको नहीं पूर्ण करते। और दक्षिणारत बहुत-से नर निन्दाके भयसे पूर्ण करते हैं॥३॥

४. नरदर्शी वे शतधार वायुको, सूर्यको, पवमानको हवि देते हैं। जो तर्पण करते दान करते हैं, वे संगममें सात माताओंसे दक्षिणाको दुहते हैं॥४॥

५. दक्षिणावान् प्रथमो हूत एति दक्षिणावान् ग्रामणी-
रग्रमेति।
तमेव मन्ये नृपतिं जनानां यः प्रथमो दक्षिणामा-
विवाय ॥५॥

६. तमेव ऋषिं तमु ब्रह्माणमाहुर्यज्ञन्यं सामगामुक्थशासं।
स शुक्रस्य तन्वो वेद तिस्रो यः प्रथमो दक्षिणया रराध ॥६॥

७. दक्षिणाश्वं दक्षिणा गां ददाति दक्षिणा चन्द्रमुत
यद्धिरण्यं ॥७॥
दक्षिणान्नं वनुते यो न आत्मा दक्षिणां वर्म कृणुते
विजानन् ॥७॥

८. न भोजा ममुर्न न्यर्थमीयुर्न रिष्यंति न व्यथंते ह भोजाः।
इदं यद्विश्वं भुवनं स्वश्चैतत् सर्वं दक्षिणैभ्यो ददाति ॥८॥

९. भोजा जिग्युः सुरभिं योनिमग्रे भोजा जिग्युर्वध्वं या सुवासाः।
भोजा जिग्युरन्तः पेयं सुराया भोजा जिग्युर्ये अहूताः।
प्रयंति ॥९॥

१०. भोजायाश्वं संमृजंत्याशुं भोजायास्ते कन्या शुंभमाना।
भोजस्येदं पुष्करिणीव वेश्म परिष्कृतं देवमानेव
चित्रं ॥१०॥

११. भोजमश्वाः सुष्ठुवाहो वहंति सुवृद्रथो वर्तते दक्षिणायाः।
भोजं देवासो वता भरेषु भोजः शत्रून्समनीकेषु
जेता ॥११॥

—ऋक् १०।१०७

५. दक्षिणा देनेवाला प्रथम निमन्त्रित होता है। दक्षिणावान् ग्रामणी मुखिया बनता है। जो पहले दक्षिणाको देते हैं, उसे ही मैं जनोंका नृपति मानता हूँ ॥५॥

६. उसे ही ऋषि उसीको ब्रह्मा यज्ञपति सामगायक उक्थके वक्ता कहते हैं। वह शुक्र (अग्नि) के तीनों तनुओंको जानता, जिसने कि पहले दक्षिणासे आराधना की ॥६॥

७. दक्षिणा गायको देती है, दक्षिणा मनोहर सोनेको देती है। जो हमारी आत्मा है, उस अन्नको दक्षिणा देती है, जानते हुए दक्षिणा वर्म बनती है ॥७॥

८. भोज (देनेवाले) नहीं मरते न अर्थहीन होते, न हानि उठाते और न भोज लोग पीड़ित होते। यह जो सारा भुवन और यह सब स्वर्ग है, (इन) सबको दक्षिणा इन्हें देती है ॥८॥

९. भोज लोग सुरभिके मूल (गाय) को पहले पाते हैं। भोज सुन्दर वस्त्र-वाली वधूको पाते हैं। भोज सुराके आन्तरिक पेयको पाते हैं। भोज बिना बुलाये आक्रान्ताओंको जीतते हैं ॥९॥

१०. भोजको (लोग) शीघ्रगामी अश्व प्रदान करते हैं, भोजके लिए सुन्दरी कन्या है। भोजका यह घर पुष्करणी-सा परिष्कृत और देव-विमान-सा विचित्र है ॥१०॥

११. भोजको सुन्दर वाहक अश्व वहन करते हैं। दक्षिणासे सुघड़ रथ वर्तमान है। युद्धमें देवगण भोजकी रक्षा करते हैं। भोज युद्धोंमें शत्रुओंका जेता है ॥११॥

—१०।१०७

९. भिक्षु आँगिरस (१००० ई० पू०)

यह भी पीछे के ऋषियों में से है, जिनका एक सूक्त (११७) दसवें मण्डल में संगृहीत है। भिक्षु नाम आर्यों के लिये उस समय विचित्र लगा

१. छन्दः जगति, त्रिष्टुप्—

१. न वा उ देवाः क्षुधमिद्वधं ददुरुताशितमुपगच्छन्ति मृत्यवः ।
उतो रयिः पृणतो नोपदस्यत्युतापृणन्मर्डितारं न विन्दते ॥१॥

२. य आध्राय चकमानाय पित्वोऽन्नवान्त्सन्रफितायोपजग्मुषे ।
स्थिरं मनः कृणुते सेवते पुरोतो चित् स मर्डितारं न विन्दते ॥२॥

३. स इद् भोजो यो गृहवे ददात्यन्नकामाय चरते कृशाय ।
अरमस्मै भवति यामहूता उतापरीषु कृणुते सखायं ॥३॥

४. न स सखा यो न ददाति सख्ये सचाभुवे सचमानाय पित्वः ।
अपास्मात् प्रेयान्न तदोको अस्ति पृणंतमन्यमरणं चिदिच्छेत् ॥४॥

५. पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान् द्राघीयांसमनु पश्येत पन्थां ।
ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रान्यमन्यमुप तिष्ठन्ति रायः ॥५॥

६. मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य ।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी ॥६॥

७. कृषन्नित् फाल आशितं कृणोति यन्नध्वानमपवृंक्ते चरित्रैः ।
वदन् ब्रह्मावदतो वनीयान् पृणन्नापिरपृणंतमभिष्यात् ॥७॥

९. भिक्षु आंगिरस (१००० ई० पू०)

होगा, यद्यपि पीछे यह बहुत सम्मानित परिव्राजकों के लिये प्रयुक्त होने लगा।

१. दानकी महिमा—

१. क्षुधाको देवोंने वध (बनाकर) नहीं दिया, खायेके पास भी मृत्यु जाते हैं। दाताका धन क्षीण नहीं होता और अदाताको सुखी नहीं पाता ॥१॥

२. जो खाता-पीता हो भूखे कामना लिये पास आये याचक के लिए, मन कड़ा करता है; (और) उसके सामने भोजन करता है, वह सुखी नहीं हो सकता ॥२॥

३. वही भोज (दाता) है, जो अन्न-इच्छुक, कृश, विचरण करते घर आयेको देता है। उसे पूरे यज्ञफल होते हैं, और परायोंमें भी वह मित्र बनाता है ॥३॥

४. वह सखा नहीं जो खा-पीकर भी साथ होते सखाको नहीं देता। उससे दूर हट जायें, वह घर नहीं है, दूसरे अच्छे पूर्तिकर्तासे इच्छा करे ॥४॥

५. मांगनेवाले की पूर्ति करनी चाहिए, अत्यन्त लम्बे मार्गको देखना चाहिए। रथके चक्र जैसे ऊपर-नीचे होते हैं, धन भी वैसे ही रहते हैं ॥५॥

६. [illegible] नासमझने व्यर्थ ही अन्न को पाया। सच कहता हूँ, वह उसका वध है। जो न अर्यमा (देवता) को, न सखाको पुष्ट करता है, अकेले भोजन करनेवाला केवल पापी होता है ॥६॥

७. जोतता फाल अन्न लाता है, जो जानेवाले मार्गको बनाता है। बोलता ब्रह्मा न बोलनेवालेसे बढ़कर है, वैसे ही पूर्तिकर्ता अ-पूर्तिकर्तासे बढ़कर है ॥७॥

८. एकपाद् भूयो द्विपदो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येति पश्चात् ।
चतुष्पादेति द्विपदामभिस्वरे संपश्यन् पंक्तीरुपतिष्ठमानः ।।८।।

९. समौ चिद्धस्तौ न समं विविष्टः संमातरा चिन्न समं दुहाते ।
यमयोश्चिन्न समा वीर्याणि ज्ञाती चित् सन्तौ न समं पृणीतः ।।९।।

—ऋक् १०।११७

१०. वसुक्र ऐन्द्र (१००० ई० पू०)

इन्द्र के पुत्र बतलाये जाते हैं, शायद इन्द्र किसी व्यक्ति का नाम हो, या इन्द्र का भक्त होने के कारण इनका यह नाम पड़ा हो। ऋग्वेद के सर्व

१. छन्दः त्रिष्टुप्—

१. असत् सु मे जरितः साभिवेगो यत् सुन्वते यजमानाय शिक्षं ।
अनाशीर्दामहमस्मि प्रहंता सत्यध्वृतं वृजिनायंतमाभुं ।।१।।

२. यदीदहं युधये संनयान्यदेवयन् तन्वा शूशुजानान् ।
अमा ते तुम्रं वृषभं पचानि तीव्रं सुतं पंचदशं निषिंचं ।।२।।

३. नाहं तं वेद य इति ब्रवीत्यदेवयून्त्समरणे जघन्वान् ।
यदावाख्यत् समरणमृघावदादिद्ध मे वृषभा प्र ब्रुवंति ।।३।।

४. यदज्ञातेषु वृजनेष्वासं विश्वे सतो मघवानो म आसन् ।
जिनामि वेत् क्षेम आ सन्तमाभुं प्र तं क्षिणां पर्वते पादगृह्य ।।४।।

८. एक अंशवाला पुनः दो अंशवाला होता है। दो अंशवाला पीछे तीन अंशवाला हो जाता है। चार अंशवाला दो अंशवालोंसे आगेके पास जाता है, इन क्रमोंको देखते सेवन करता है ॥८॥

९. समान भी दोनों हाथ एक समान शक्तिवाले नहीं हैं, (गाय) एक माँवाली भी एक समान दूधनहीं देती। जुड़वाँके भी एक समान पराक्रम नहीं। एक कुल होते हुए भी एक समान दाता नहीं होते ॥९॥

१०. वसुक्र ऐन्द्र (१००० ई० पू०)

मंडल में इनकी तीन ऋचायें हैं (९७। २८-३०) और दसवें मंडल में दो सूक्त (२७, २९) इनके रचे हैं। इनकी पत्नी भी ऋषि थीं, जिन्होंने उसी मंडल के २८वें सूक्त को रचा।

१. इन्द्रकी महिमा—

१. "हे स्तोता, मेरा स्वभाव है, जो (सोम) छानते यजमानको अभीष्ट अप्राप्य फल देता हूँ। सत्य नाशक चारों ओर पाप करते अर्चना करनेवालोंका मैं प्रहन्ता हूँ" ॥१॥

२. "जब मैं देवताओंके न पूजनेवालों स्वार्थियोंके साथ लड़नेके लिए शरीरसे ले जाता हूँ। तो तुम्हारे लिए मैं मोटे बैलको पकाता हूँ और छाने हुए तीव्र पन्द्रहवें (सोम) को तैयार करता हूँ" ॥२॥

३. "मैं ऐसे (आदमी) को नहीं जानता, जो कहता है, कि देव-अपूजकोंको रणमें मैंने मारा। जब युद्धमें उनका संहार करता हूँ, तो वे प्रशंसा करते मुझे साँड़ कहते हैं ॥३॥

४. [illegible] मैं होता, तब सारे महा मघवाको घेर लेते हैं। [illegible] फेंक देता हूँ ॥४॥

५. न वा उ मां वृजने वारयंते न पर्वतासो यदहं मनस्ये ।
मम स्वनात् कृधुकर्णो भयात एवेदनु द्यून् किरणः समे-
जात् ॥५॥

६. दर्शन्न्वत्र शृतपाँ अनिंद्रान् बाहुक्षदः शरवे पत्यमानान् ।
घृषुं वा ये निनिदुः सखायमध्यू न्वेषु पवयो ववृत्युः ॥६॥

७. अभूर्वौक्षीर्व्यु आयुरानड् दर्षन्नु पूर्वो अपरो नु दर्षत् ।
द्वे पवस्ते परि तं न भूतो यो अस्य पारे रजसो विवेष ॥७॥

८. गावो यवं प्रयुता अर्यो अक्षन् ता अपश्यं सहगोपाश्चरंतीः ।
हवा इदर्यो अभितः समायन् कियदासु स्वपतिश्छंदयाते ॥८॥

९. सं यद्वयं यवसादो जनानामहं यवाद उर्वज्रे अंतः ।
अत्रा युक्तो वसातारमिच्छादथो अयुक्तं युनजद्ववन्वान् ॥९॥

१०. अत्रेदु मे मंससे सत्यमुक्तं द्विपाच्च यच्चतुष्पात् संसृजानि ।
स्त्रीभिर्यो अत्र वृषणं पृतन्यादयुद्धो अस्य वि भजानि
वेदः ॥१०॥

११. यस्यानक्षा दुहिता जात्वास कस्तां विद्वां अभि मन्याते
अंधां ।
कतरो मेनिं प्रति तं मुचाते य ईं वहाते य ईं वा वरेयात्
॥११॥

१२. कियती योषा मर्यतो वधूयोः परिप्रीता पन्यसा
वार्येण ।
भद्रा वधूर्भवति यत् सुपेशाः स्वयं सा मित्रं वनुते जने
चित् ॥१२॥

१३. पत्तो जगार प्रत्यंचमत्ति शीर्ष्णा शिरः प्रति दधौ वरूथं ।
आसीन ऊर्ध्वामुपसि क्षिणाति न्यङ्ङुत्तानामन्वेति
भूमिं ॥१३॥

५. यदि मैं चाहूँ तो, मुझे युद्धमें कोई निवारित नहीं कर सकता, पर्वत भी नहीं। मेरी आवाजसे बहरे कानवाले भी भयभीत होते हैं, द्युलोक तक भी किरणें काँपती हैं ॥५॥

६. यहाँ देखते हुए मैं इन्द्र को न माननेवालों छाने सोमको पीनेवालों, बाढ़ भाजनेवालों, हिंसाके लिए आक्रमण करनेवालों, और मुझ जो महान् सखाकी निन्दा करते, उनके ऊपर मैं वज्र गिराता हूँ" ॥६॥

७. "तुमने दर्शन दिया, मर्या भी की, दीर्घायु प्राप्त कराई। पहले भी शत्रुका नाश किया, पीछे भी। विश्वके परे तक वह नहीं, जो इस लोकके पार भाग सकें" ? ॥७॥

८. "गायें जो क्या नहीं हैं, स्वामीके पास गोपोंके साथ चरती उन्हें मैं देखता हूँ, सुनाते ही स्वामीके पासी और वह आ जाती हैं, कितना मित्र स्वामीने उससे प्राप्त किया ॥८॥"

९. गौ जो कि वह जलोंके जो पत्ता वालेवाला विस्तृत आकाशके भीतर जो भक्षक मैं हूँ। मुझ (इन्द्र) यहाँ रक्षा चाहते हैं और अयुक्त पुरुषको साथ करवाते हैं ॥९॥"

१०. "निश्चय जानो कि यहाँ मैंने सब काल लोगायों और चोपायों को मैं सृजन करता हूँ। [illegible] लड़ाता हूँ, उसके मनको बिना युद्ध [illegible] ॥१०॥

११. जिसकी बिना आँखकी बुद्धिया है, कौन जानते हुये उस अन्धीको अपनाता है। और जो बिगाड़ता है या जो चुनता है, कौन उसको पीछा देगा ? ॥११॥

१२. [illegible] हैं। [illegible] (अपने) [illegible] ॥१२॥

१३. [illegible] करते हैं, [illegible] ॥१३॥

१४. बृहन्नच्छायो अपलाशो अर्वा तस्थौ माता विषितो अत्ति गर्भः ।
अन्यस्या वत्सं रिहती मिमाय कया भुवा नि दधे धेनुरूधः ॥१४॥

१५. सप्त वीरासो अधरादुदायन्नष्टोत्तरात्तात् समजग्मिरन्ते ।
नव पश्चातात् स्थिविमन्त आयन्दश प्राक् सानु वि तिरंत्यश्नः ॥१५॥

१६. दशानामेकं कपिलं समानं तं हिन्वंति क्रतवे पार्याय ।
गर्भं माता सुधितं वक्षणास्ववेनन्तं तुषयंती बिभर्ति ॥१६॥

१७. पीवानं मेषमपचंत वीरा न्युप्ता अक्षा अनु दीव आसन् ।
द्वा धनुं बृहतीमप्स्वंतः पवित्रवंता चरतः पुनंता ॥१७॥

१८. वि क्रोशनासो विष्वंच आयन् पचाति नेमो नहि पक्षदर्धः ।
अयं मे देवः सविता तदाह द्र्वन्न इद्वनवत् सर्पिरन्नः ॥१८॥

१९. अपश्यं ग्रामं वहमानमारादचक्रया स्वधया वर्तमानं ।
सिषक्त्यर्यः प्र युगा जनानां सद्यः शिश्ना प्रमिनानो नवीयान् ॥१९॥

२०. एतौ मे गावौ प्रमरस्य युक्तौ मो षु प्र सेधीर्मुहुरिन्ममंधि ।
आपश्चिदस्य वि नशंत्यर्थं सूरश्च मर्क उपरो बभूवान् ॥२०॥

२१. अयं यो वज्रः पुरुधा विवृत्तो वः सूर्यस्य बृहतः पुरीषात् ।
श्रव इदेना परो अन्यदस्ति तदव्यथी जरिमाणस्तरन्ति ॥२१॥

२२. वृक्षेवृक्षे नियता मीमयद् गौस्ततो वयः प्र पतान् पूरुषादः ।
अथेदं विश्वं भुवनं भयात इंद्राय सुन्वदृषये च शिक्षत् ॥२२॥

१४. बिना छायाका बिना पत्तोंका बड़ा वृक्ष स्थित है। द्यौमाता बंधी गर्भ भक्षण करती है। दूसरे बछड़े को चाटती स्थित इस धेनुके किस स्थानमें स्तन पाया ॥१४॥

१५. उसके निचले शरीरसे सात वीर उत्पन्न हुए, उपरलेसे अन्तमें आठ जन्मे, पिछलेसे नौ स्थिरतावाले आये, आगे दस भक्षण करनेवाले ऊँचे बढ़ते हैं ॥१५॥

१६. दसोंमें कपिल वर्णवाले एकको यज्ञ पूरा करनेके लिए प्रेरित करते हैं। द्यौमाता सन्तुष्ट हो अच्छी तरह रक्खे इस गर्भको धारण करे ॥१६॥

१७. वीरोंने मोटे भेड़को पकाया, जूयेके स्थानमें पासे फेंके थे। वह पवित्रवान् दो बड़े धनुपोंसे जलके भीतर पवित्र करते विचरते हैं ॥१७॥

१८. वे कोलाहल करते नाना प्रकारसे आये, आधोंने पकाया और आधोंने नहीं पकाया। 'मुझे इस सवितादेवने उसे कहा ईंधन' घी और भोजनकी कामनावाला ॥१८॥

१९. मैंने दूरसे बिना चक्रके अक्षसे वर्तमान बहनकर्ता ग्रामको देखा। स्वामी जनोंमें दोन्दोको जोड़ता है, शत्रुओंको तुरन्त हनन करता नवीन बनाता है ॥१९॥

२०. मुझ प्रभरके यज्ञ दो बैल जुड़े हैं, इन्हें मत मारो, मुहूर्त भर सन्तुष्ट करो। इसके जल अर्थको नष्ट करते हैं, शोधक वीर ऊपर होता है ॥२०॥

२१. यह जो वज्र सूर्यके बड़े कोनेसे गरुत्‌ वेगसे नीचे गिरता है। इससे परे और भी पद है, उसे स्तुतिकर्ता बिना श्रमके पार हो जाते हैं ॥२१॥

२२. धनुषरूपी वृक्षपर बैठी ज्या शब्द करती है। उससे पक्षी-समान पुरुषभक्षी बाण गिरते हैं, और यह सारा भुवन डरता है। इन्द्रके लिए (सोम) लाना और ऋषिको रक्षा प्रदान करना ॥२२॥

२३. देवानां माने प्रथमा अतिष्ठन् कृन्तत्रादेषामुपरा उदायन् ।
त्रयस्तपन्ति पृथिवीमनूपा द्वा बृबूकं वहतः पुरी-
षम् ॥२३॥

२४. सा ते जीवातुरुत तस्य विद्धि मा स्मैतादृगपगूहः समर्ये ।
आविः स्वः कृणुते गूहते बुसं स पादुरस्य निर्णिजो न
मुच्यते ॥२४॥

—ऋग् १०।२७

११. दमन यामायन (१००० ई० पू०)

यम का पुत्र इन्हें बतलाया गया है, लेकिन इसमें सन्देह है। दसवें मंडल के सोलहवें सूक्त के ये ऋषि हैं, और उसमें मृत्यु तथा अन्त्येष्टि-

१. छन्द : त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्—

१. मैनमग्ने विदहो माभिशोच मास्य त्वचं चिक्षिपो मा
शरीरं ।
यदा शृतं कृणवो जातवेदो,थेमेनं प्र हिणुतात् पितृभ्यः ॥१॥

२. शृतं यदा करसि जातवेदो, थेमेनं परिदत्तात् पितृभ्यः ।
यदा गच्छात्यसुनीतिमेतामथा देवानां वशनीर्भवाति ॥२॥

३. सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च
धर्मणा ।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा
शरीरैः ॥३॥

४. अजो भागस्तपसा तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः ।
यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु
लोकं ॥४॥

२३. देवोंके बनानेमें प्रथम रहे, इन्हें छेदनेसे जल निकले। तीन अनूप पृथिवीको तापित करते हैं, दो प्रिय जल वहन करते हैं ॥ २३॥

२४. वह तुम्हारे लिए जीवधारक है, उसे जानो, यज्ञमें ऐसेको मत छोड़ो। वह (सूर्य) स्वर्गको आविष्कृत करता अन्नको पालता है, शीघ्रक-सी उसकी गति नहीं छूटती ॥२४॥

—१०।२७

११. दमन यामायन (१००० ई० पू०)

क्रिया का वर्णन है, जिसका सम्बन्ध मृत्यु के देवता यम से है। हो सकता है, यामायन उन्हें इसीलिये कहा गया। इनके इस सूक्त से आर्यों की अन्त्येष्टि-क्रिया और मृत्यु के सम्बन्ध के विश्वासों का पता लगता है।

१. अग्निकी महिमा—

१. हे अग्नि, इस (शव) को मत जलाओ मत भूनो। इसके चर्मको और न शरीरको फेंको। हे जातवेदा, जब पका लो, तब इसे पितरोंके पास भेज दो ॥१॥

२. हे जातवेद, जब परिपक्व करो, तब इसे पितरोंको दे दो। जब यह प्राणयुक्त हो जाये, तब यह देवोंके वशमें होगा ॥२॥

३. इसका नेत्र सूर्यको जाये, आत्मा वायुको, (यह) धर्मसे आकाश और पृथिवीपर जाय। यदि वहाँ तेरा हित है, तो जलोंमें जाओ, शरीरोंसे ओषधियोंमें तुम प्रतिष्ठित हो ॥३॥

४. जो अजन्मा भाग है, उसे तुम तापसे तपाओ, उसे तेरा दहन तेरी ज्वाला तपाये। हे जातवेद (अग्नि), जो तुम्हारे शिव-शरीर हैं, उनसे इसे सुकर्मियोंके लोकमें ले जाओ ॥४॥

५. अवसृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधाभिः।
आयुर्वसान उपवेतु शेषः संगच्छतां तन्वा जातवेदः ॥५॥

६. यत्ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः।
अग्निष्टद्विश्वादगदं कृणोतु सोमश्च यो ब्राह्मणां आवि-
वेश ॥६॥

७. अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व सं प्रोर्णुष्व पीवसा मदसा च।
न त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग्विधक्ष्यन् पर्यङ्खयाते॥७॥

८. इममग्ने चमसं मा वि जिह्वरः प्रियो देवानामुत सोम्यानां
एष यश्चमसो देवपानस्तस्मिन्देवा अमृता मादयंते ॥८॥

९. क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः।
इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥९॥

१०. यो अग्निः क्रव्यात् प्रविवेश वो गृहमिमं पश्यन्नितरं जात-
वेदसं।
तं हरामि पितृयज्ञाय देवं स घर्ममिन्वात् परमे सधस्थे ॥१०॥

११. यो अग्निः क्रव्यवाहनः पितॄन्यक्षदृतावृधः।
प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य आ ॥११॥

१२. उशन्तस्त्वा निधीमह्युशन्तः समिधीमहि।
उशन्नुशत आवह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥१२॥

१३. यं त्वमग्ने समदहस्तमु निर्वापया पुनः।
कियाम्ब्वत्र रोहतु पाकदूर्वा व्यल्कशा ॥१३॥

१४. शीतिके शीतिकावति ह्लादिके ह्लादिकावति।
मंडूक्या सु संगम इमं स्वग्निं हर्षय ॥१४॥

—ऋक् १०।१६

५. हे अग्नि, तेरे लिए आहुति दी, जो स्वधाओंके साथ भोजन करता है, उसे पुनः बनाओ। शेष (भाग) जीवन पाकर उठ जाये, हे जातवेद, शरीरके साथ संयुक्त हो जाये ॥५॥

६. तेरे जिस अंगको काले पक्षीने, चींटी, साँप या श्वापदने छेदन किया, उसे अग्नि और ब्राह्मणोंमें आविष्ट सोम सबसे निरोग करे ॥६॥

७. हे अग्नि, गोचर्मसे बने (वर्म) को पहनो, मोटाई और चर्बीसे आच्छादित होओ। बलसे अत्यन्त हर्षित दर्शन करनेके लिए तैयार दुर्धर्ष अग्नि तुम्हें चारों ओरसे नहीं पकड़ेगा ॥७॥

८. हे अग्नि, इस चमसको मत तोड़ना, यह सोमपायी देवोंको प्रिय है। यह जो चमस (पात्र) देवोंका पानपात्र है, उसमें अमरदेव आनन्दित होते हैं ॥८॥

९. मानुष-भक्षक अग्निको मैं दूर भेजता हूँ, वह अप्रिय-वाहक यमराजके पास जाये। यहीं यह दूसरा अग्नि जानते हुए देवोंके लिए हव्य ले जाये ॥९॥

१०. जो अग्नि (श्मशानके) मांससे तुम्हारे घरमें घुसा, इससे दूसरे अग्निको देखता। उस देवको पितृ-यज्ञके लिए लाता हूँ, वह परम लोकमें ले जायेगा ॥१०॥

११. जो क्रव्यवाहक अग्नि सत्यसे बढ़ता पितरोंका यजन करता है। पितरों और देवोंके लिए वह हव्योंको ले जाये ॥११॥

१२. हे अग्नि, कामना करते तुम्हें स्थापित करते हैं, कामना करते तुम्हें प्रज्वलित करते हैं। कामना करते तुम कामना करनेवाले पितरोंको पास भक्षणके लिए हविष ले जाओ ॥१२॥

१३. हे अग्नि, जिसे तुमने जलाया, (उसे) फिर बुझाओ। यहां पानी पूर्ण [illegible] उगें ॥१३॥

१४. हे ठण्डी, ठण्डीवाली, हे आह्लादिके, आह्लादवाली, मेंढकियोंके सुन्दर संगमवाली इस सु-अग्निको प्रसन्न करो ॥१४॥

—१०।१६

१२. सूर्या (१००० ई० पू०)

दसवें मंडलका ८५वां सूक्त इस महिलाका रचा हुआ बतलाया गया है। यह ऋग्वेद के सुन्दर सूक्तों में से है, जिसकी भाषा सरल होने पर भी आकर्षक और भावपूर्ण है।

छन्दः—त्रिष्टुप्—

१. सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः ।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठंति दिवि सोमो अधिश्रितः ॥१॥
२. सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही ।
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः ॥२॥
३. सोमं मन्यते पपिवान् यत् संपिषन्त्योषधिं ।
सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति कश्चन ॥३॥
४. आच्छद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः ।
ग्राव्णामिच्छृण्वंतिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः ॥४॥
५. यत्त्वा देवाः प्रपिबंति तत आप्यायसे पुनः ।
वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः ॥५॥
६. रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी ।
सूर्याया भद्रमिद्वासो गाथयैति परिष्कृतं ॥६॥
७. चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यंजनं ।
द्यौर्भूमिः कोश आसीद्यदयात् सूर्या पतिं ॥७॥
८. स्तोमा आसन् प्रतिधयः कुरीरं छन्द ओपशः ।
सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत् पुरोगवः ॥८॥
९. सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा ।
सूर्यां यत् पत्ये शंसंतीं मनसा सविताददात् ॥९॥
१०. मनो अस्या अन आसीद् द्यौरासीदुत छदिः ।
शुक्रावनड्वाहावास्तां यदयात् सूर्या गृहं ॥१०॥

१. सोम आदिकी महिमा—

१. सत्यसे भूमि थमी है, सूर्यसे द्यौलोक थमा है।
ऋत (सत्य) से आदित्य स्थित हैं, द्यौलोकमें सोम अवस्थित है ।।१।।

२. सोमसे आदित्य बलि हैं, सोमसे पृथिवी बड़ी है ।
और इन नक्षत्रोंके पास सोम रक्खा हुआ है ।।२।।

३. जब इस औषधिको पीसते हैं, तो सोमको पिया मानते हैं।
जिसे ब्राह्मण सोम जानते हैं, उसे कोई नहीं खाता ।।३।।

४. हे सोम, विधानोंसे छिपाकर स्तुतिकर्ता तुम्हें रखते हैं।
पत्थरोंमें तुम रहते हो, पार्थिव (मनुष्य) तुम्हें नहीं खाता ।।४।।

५. हे देव, जो तुम्हें पीते हैं, उससे तुम और भी बढ़ते हो।
वायु सोमका रक्षक है, मास वर्षोंकी आकृति है ।।५।।

६. उसके साथ दी जानेवाली रैभी (ऋचायें) थीं, नाराशंसी ऋचायें
दासी थीं। सूर्याका भद्र वस्त्र गाथा द्वारा परिष्कृत था ।।६।।

७. जब सूर्या पतिके पास गई, तो चेतना (उसकी) चादर हुई।
नेत्र अभ्यंजन हुआ, द्यौ और पृथिवी कोश हुए ।।७।।

८. सूर्याके (चक्कीके) पाट स्तोम थे, ओपश (भूषण) कुरीर छन्द था।
सूर्याके वर थे (दोनों) अश्विनीकुमार और अग्नि पुरोगामी (घटक)
था ।।८।।

९. सोम उसका वधूयु (दुलहा) था, अश्विनीकुमार दोनों वर थे।
मनसे पतिकी प्रशंसा करती सूर्याको सविताने प्रदान किया ।।९।।

१०. मन इसकी गाड़ी थी, और द्यौलोक छत।
दोनों शुक्र (रवि-शशि) बैल थे, जबकि सूर्या घर गई ।।१०।।

११. ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ ते सामनावितः ।
श्रोत्रं ते चक्रे आस्तां दिवि पंथाश्चराचरः ॥११॥

१२. शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः ।
अनो मनस्मयं सूर्यारोहत् प्रयती पतिं ॥१२॥

१३. सूर्याया वहतुः प्रागात् सविता यमवासृजत् ।
अघासु हन्यंते गावोर्जुन्योः पर्युह्यते ॥१३॥

१४. यदश्विना पृच्छमानावयातं त्रिचक्रेण वहतुं सूर्यायाः ।
विश्वे देवा अनु तद्वामजानन् पुत्रः पितरावबृणीत पूषा ॥१४॥

१५. यदयातं शुभस्पती वरेयं सूर्यामुप ।
क्वैकं चक्रं वामासीत् क्व देष्ट्राय तस्थथुः ॥१५॥

१६. द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माण ऋतुथा विदुः ।
अथैकं चक्रं यद्गुहा तदद्धा तया इद्विदुः ॥१६॥

१७. सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च ।
ये भूतस्य प्रचेतस इदं तेभ्यो करं नमः ॥१७॥

१८. पूर्वापरं चरतो माययैतो शिशू क्रीळन्तौ परियातो अध्वरं ।
विश्वान्यन्यो भुवनाभिचष्ट ऋतूरन्यो विदधज्जायते पुनः ॥१८॥

१९. नवो नवो भवति जायमानो ह्नां केतुरुषसामेत्यग्रं ।
भागं देवेभ्यो वि दधात्यायन् प्र चंद्रमास्तिरते दीर्घमायुः ॥१९॥

२०. सुकिंशुकं शल्मलिं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रं ।
आरोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पत्ये वहतुं कृणुष्व ॥२०॥

११. ऋक् और साम द्वारा कथित दोनों बैल (रवि-शशि) तुझे यहाँ से ले जानेवाले थे। तेरे कान दो चक्के थे, आने-जानेका पंथ द्युलोक में था ॥११॥

१२. चक्के तेरे जाते समय शुचि खुले, अक्षमें लगे थे।
पतिके पास जाती सूर्या मनोमय शकटपर चढ़ी ॥१२॥

१३. सूर्याको वह ले चला, जिसे सविता (सूर्य) ने सृजन किया था।
मघा नक्षत्रमें सफेद गायें हाँकी गईं, (उसे) ले गये ॥१३॥

१४. हे अश्विनो, जब त्रिचक्र रथ द्वारा सूर्याके विवाहके लिए पुछार करने तुम आये। तब सारे देवोंने तुम्हारा अनुमोदन किया, तुम्हारे पुत्र पूषन् (सूर्य) ने दोनों पिताओंको वरण किया ॥१४॥

१५. जब शुभपति तुम वर हो सूर्याके पास गये।
तो तुम्हारा एक चक्का कहाँ था, कहाँ (मार्ग) पूछनेके लिए तुम खड़े हुए ॥१५॥

१६. हे सूर्या, ब्राह्मण तेरे चक्कोंको ऋतुके तौरपर जानते हैं।
और एक चक्का जो गुप्त है, उसे विद्वान् ही जानते हैं ॥१६॥

१७. सूर्याके लिये, देवताओंके लिये, मित्रके लिये और वरुणके लिये, जो प्राणियोंका ख्याल रखते हैं, उनके लिये मैं यह नमस्कार करता हूं ॥१७॥

१८. यह दोनों शिशु (रवि-शशि) पूर्व-पश्चिम चलते क्रीड़ा करते यज्ञमें आते हैं। इनमेंसे एक (चन्द्र) सारे भुवनोंको बतलाता है, दूसरा (सूर्य) ऋतुओंको बनाता फिर प्रकट होता है ॥१८॥

१९. उत्पन्न हो दिनको बतलानेवाला (चन्द्र) नया-नया होता, उषाओंके आगे आता है। आकर देवोंके लिये भाग देता है, चन्द्रमा दीर्घ आयु देता है ॥१९॥

२०. हे सूर्ये, सुंदर पलाश फूलसे, सेमलसे नाना रूप सुवर्ण वर्णसे ढँके सुंदर सुचक्रवाले रथपर चढ़। अमर सुखमय लोकमें पतिसे ब्याह कर ॥२०॥

२१. उदीर्ष्वातः पतिवती ह्येषा विश्वावसुं नमसा गीर्भिरीळे।
अन्यमिच्छ पितृषदं व्यक्तां स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि
॥२१॥

२३. अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्था येभिः सखायो यन्ति नो
वरेयं।
समर्यमा सं भगो नो निनीयात् सं जास्पत्यं सुयममस्तु
देवाः ॥२३॥

२४. प्र त्वा मुँचामि वरुणस्य पाशाद्येन त्वाबध्नात् सविता
सुशेवः।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके रिष्टां त्वा सह पत्या
दधामि ॥२४॥

२५. प्रेतो मुंचामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करं।
यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगा सति ॥२५॥

२६. पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्रवहतां रथेन।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा-
वदासि ॥२६॥

२७. इह प्रियं प्रजया ते समृध्यतामस्मिन् गृहे गार्हपत्याय
जागृहि।
एना पत्या तन्वं संसृजस्वाधा जिव्री विदथमा-
वदाथः ॥२७॥

२८. नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते।
एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्बन्धेषु बध्यते ॥२८॥

२९. परा देहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु।
कृत्यैषा पद्वती भूत्वा जाया विशते पतिं ॥२९॥

२१. यहांसे उठो, यह पतिवाली है, मैं नमःवाली वाणीसे विश्वावसुकी स्तुति करता हूं। पिताके यहां रहनेवाली दूसरी व्यक्त कन्याको चाहो, वह तुम्हारे भाग्यमें जन्मी है, उसका पता लगाओ ॥२१॥

२३. सरल अकंटक हों वह मार्ग, जिनसे सखा हमारे बरातमें जाते हैं। अर्यमा, भग अच्छी तरह हमें ले चलें। देव, पति-पत्नी मिलकर रहें ॥२३॥

२४. तुझे वरुणके पाशसे बांधता हूं, जिससे कि तुझे सविताने अच्छी तरह बांधा। सत्यके स्थानमें, सुकृतके लोकमें तुझे पतिके साथ निर्विघ्न रखता हूं ॥२४॥

२५. यहांसे मैं छुड़ाता हूं, वहांसे नहीं। यहां (पतिकुलमें) सुबद्ध करता हूं। हे वर्षक इन्द्र, (वैसे) बरसो जैसे यह सुपुत्रा सुभगा होवे ॥२५॥

२६. पूषा यहांसे तुझे हाथ पकड़कर ले जाये, दोनों अश्विनीकुमार तुझे रथ द्वारा वहन करें। गृहपत्नी हो घर जा, तू घरको ऐसे रख, जिसमें (सबको) वश करनेवाली हो ॥२६॥

२७. यहां संतानके साथ तेरी प्रसन्नता बढ़े। इस घरमें गार्हपत्य (अग्नि) की सेवा कर। यह पतिके साथ शरीरसे एक रह वृद्धा हो घरमें स्वामिनी रहे ॥२७॥

२८. नीललोहित होता है, (यह) कृत्या (जादू) की आसक्तिको प्रकट करता है। इसके बन्धु बढ़ते हैं, पति बन्धनमें बंधता है ॥२८॥

२९. मलिन वस्त्रको दूर हटा, ब्राह्मणोंमें धन बांटे। यह कृत्या चली गई, पत्नी पतिसे मिली ॥२९॥

३०. अश्रीरा तनूभवति रुशती पापयामुया ।
पतिर्यद्वध्वो वाससा स्वमंगमभिधित्सते ।।३०।।

३१. ये वध्वश्चन्द्रं वहतु यक्ष्मा यन्ति जनादनु ।
पुनस्तान्यज्ञिया देवा नयंतु यत आगताः ।।३१।।

३२. मा विदन् परिपंथिनो य आसीदंति दम्पती ।
सुगेभिर्दुर्गमतीतामप द्रान्त्वरातयः ।।३२।।

३३. सुमंगलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत ।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वायाथास्तं वि परेतन ।।३३।।

३४. तृष्टमेतत् कटुकमेदतपाष्ठवद्विषवन्नैतदत्तवे ।
सूर्यां यो ब्रह्मा विद्यात् स इद्वाधूयमर्हति ।।३४।।

३५. आशसनं विशसनमथो अधिविकर्तनं ।
सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मा तु शुंधति ।।३५।।

३६. गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः ।
भगो अर्यमा सविता पुरंधिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय
देवाः ।।३६।।

३७. तां पूषन् छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या वपंति ।
या न ऊरू उशती विश्रयाते यस्यामुशन्त प्रहराम
शेपं ।।३७।।

३८. तुभ्यमग्रे पर्यवहन्सूर्यां वहतुना सह ।
पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ।।३८।।

३९. पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा ।
दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतं ।।३९।।

३०. शरीर अशोभन हो जाता है, वह पापिनी (कृत्या) उसपर आक्रमण करती है। जब कि पति वधूके वस्त्रोंसे अपने अंगको ढांकता है ॥३०॥

३१. वधूकी चादर लेनेवाले जनोंके पीछे जो यक्ष्मा आये। उन्हें यज्ञीय देवता जहांसे आये वहां फिर ले जायें ॥३१॥

३२. जो शत्रु दंपतीके पास आते हैं, वह न आवें। (ये) सुविधासे दुर्गमको पार करें, शत्रु भाग जायें ॥३२॥

३३. यह वधू सुमंगली है, आओ इसे देखो। इसको सौभाग्य देकर जहांसे आये वहां जाओ ॥३३॥

३४. यह दूषित है, यह कटुक है, यह न ग्रहण योग्य है, विषवाला यह खाने लायक नहीं है। जो ब्राह्मण सूर्याको जानता है, वही वधूके वस्त्रके पाने लायक है ॥३४॥

३५. कटे, फटे और बीचसे चिरे सूर्याके रूपोंको देख, उन्हें ब्रह्मा शोधित करता है ॥३५॥

३६. सौभाग्यके लिए तेरे हाथको मैं ग्रहण करता हूं, मुझ पतिके साथ बुढ़ापे तक रह। भग, अर्यमा, सविता देवोंने तुझे गृहस्थीके लिए मुझे दिया ॥३६॥

३७. हे पूषा, उसे तुम अत्यंत कल्याणी बनाओ, जिसमें मनुष्य बीज बोते हैं। जो कामना करता हमारे लिये ऊरुओंको फैलाती, जिसमें कामना करते हम शेपका प्रहार करत हैं ॥३७॥

३८. हे अग्नि, वहतुके साथ सूर्याको पहले तुम्हारे लिये ले जाते हैं। फिर हे अग्नि, प्रजाके साथ जाया तुम पतियोंको देते हो ॥३८॥

३९. अग्नि, आयु और वर्चसके साथ पत्नीको फिर देता है। इसका जो पति है, वह दीर्घायु (हो), सौ शरदों तक जीवे ॥३९॥

४०. सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः ।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥४०॥

४१. सोमो ददद् गंधर्वाय गंधर्वो दददग्नये ।
रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमां ॥४१॥

४२. इहैव स्तं मा वियौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतं ।
क्रीळन्ती पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे ॥४२॥

४३. आ नः प्रजां जनयतु प्रजापतिराजरसायसरामनक्त्वर्यमा ।
अदुर्मङ्गलीः पतिलोकमा विशशं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥४३॥

४४. अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः ।
वीरसूर्देवकामा स्योना शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥४४॥

४५. इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु ।
दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि ॥४५॥

४६. सम्राज्ञी श्वसुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव ।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु ॥४६॥

४७. समंजन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ ।
सं मातरिश्वा संधाता समु देष्ट्री दधातु नौ ॥४७।

—ऋक् १०।८५

४०. सोमने पहले प्राप्त किया, बादमें गन्धर्वने प्राप्त किया। तीसरा तेरा पति अग्नि है, चौथा (पति) तेरा मनुष्योंमें उत्पन्न है ॥४०॥

४१. सोमने गन्धर्वको दिया, गन्धर्वने अग्निको दिया। अग्निने धन और पुत्रको दिया फिर इस पत्नीको (भी) ॥४१॥

४२. तुम दोनों (पति-पत्नी) यहीं रहो, मत वियुक्त होओ, सारे आयुको प्राप्त होओ। पुत्रों-नातियोंके साथ खेलते आनंद करते अपने घरमें रहो ॥४२॥

४३. प्रजापति हमारी प्रजा पैदा करे, अर्यमा बुढ़ापे तक हमें साथ रक्खे। मंगलमयीको प्रदत्त, पति लोकमें प्रवेश करो, हमारे दोपायों और चौपायोंमें शांतिदायिनी होओ ॥४३॥

४४. अघोर-नेत्रा पतिको न हानि करनेवाली होओ, पशुओंके लिए सुमना सुवर्चा, शिवा बनो। वीर-प्रसवनी देवभक्त शुभकारिणी हो, हमारे दोपायों और चौपायोंमें शांतिदायिनी होओ ॥४४॥

४५. हे वर्षक इन्द्र, इसे तुम सुपुत्रा और सुभगा करो। इसमें दस पुत्रोंको दो, पतिको ग्यारहवां करो ॥४५॥

४६. (वधू), तू श्वशुरपर सम्राज्ञी होओ, सासपर सम्राज्ञी होओ। ननदपर सम्राज्ञी होओ, देवरोंपर सम्राज्ञी होओ ॥४६॥

४७. हमारे हृदयोंको सारे देवता, जल देवता (भी) एक करें। वायु एक करे, धाता एक करे और उपदेशक हम दोनोंको एक करें ॥४७॥

—ऋग् १०।८५

१३. अथर्वा आँगिरस (१००० ई० पू०)

अथर्वा (अथर्वण) का नाम ऋग्वेद के लिये भी अपरिचित नहीं है। उसके प्रथम मंडल में (८०।१६, ८३।५) और दूसरी जगहों पर भी अथर्वा नाम आया है, लेकिन इनकी रची कोई ऋचा देखने में नहीं आती। शायद उस समय अथर्वण अग्निकलर पुरोहित को कहा जाता हो, जैसा कि पारसी जंदावस्था में भी इसे देखा जाता है। यदि इस नामका कोई व्यक्ति ऋग्वेदिक काल में रहा हो, तो उसका कोई महत्व नहीं था। अथर्वा अंगिरा के पुत्र या संतान थे। अंगिरा सबसे पुराने ऋषियोंमें थे, लेकिन भरद्वाज-वसिष्ठ-विश्वामित्र के प्रताप के सामने वह विस्मृत हो गये, तो भी ऋग्वेद

छन्दः—त्रिष्टुप्, भूरिक

१. सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः
कृणोतु ॥१॥

२. असंबाधं मध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु।
नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां
राध्यतां नः ॥२॥

३. यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये
दधातु ॥३॥

४. यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।
या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने
दधातु ॥४॥

५. विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो
दधातु ॥६॥

१३. अथर्वा आँगिरस (१००० ई० पू०)

के प्रथम मंडल में अंगिराके वंशजों के बहुत से सूक्त मिलते हैं। उनमें कुत्स एक सम्माननीय ऋषि थे। लेकिन, अथर्वा की विशेषता यह है, कि सारे अथर्ववेद को इन्हींकी रचना माना जाता है। अथर्ववेद चारों वेदों में सबसे पिछला वेद है। बुद्धकाल में अभी इसे वेद में नहीं गिना जाता था। इसमें मंत्र-तंत्र, टोने-टोटके तथा दूसरी कितनी ही बातें हैं, जो आर्य-भिन्न जातियों के प्रभाव को बतलाती हैं। आर्य और आर्यभिन्न के बीच प्रथम समन्वय का प्रयास इसके द्वारा किया गया। ऋषि अथर्वा की वाणियों में पृथिवी सूक्त जैसे सूक्त भी हैं, जो भाव और भाषा में बहुत सुन्दर हैं।

१. पृथिवी-महिमा—

१. बृहद् और उग्र सत्य, दीक्षा, तप, ब्रह्म, यज्ञ पृथिवीको धारण करते हैं। वह भूत और भविष्यकी रक्षिका हमारी पृथिवी, हमारे लिये विस्तृत प्रदेश बनावे ॥१॥

२. मध्यमें जो मानवोंकी भीड़वाली नहीं है। जिसके साथ ही बहुतसे उद्गमन और प्रगमन करते हैं। नाना शक्तिवाली औषधियोंको जो धारण करती है, वह पृथिवी हमें बढ़ाये और तृप्त करे ॥२॥

३. जिसपर समुद्र, नदियां और जल है, जिसमें अन्न और प्रजायें उत्पन्न हुईं। जिसपर यह सांस लेता कांपता जग रहता है, वह भूमि हमें पूर्व पेय दे ॥३॥

४. जिस पृथिवीकी चार दिशायें हैं। जिसमें अन्न और प्रजायें उत्पन्न हुईं। जिसपर यह सांस लेता कांपता जग रहता है, वह पृथिवी हमें हमारे लिये गौ और अन्न धारण करे ॥४॥

५. विश्वंभरा, धनधारिणी, स्थिर, सुवर्ण वक्षवाली जगत्को अपने भीतर रखनेवाली। वैश्वानर अग्निको धारण करती भूमि, हमें अग्नि, इन्द्र, वृषभ और धन दे ॥६॥

६. गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु ।
बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवी-
मिन्द्रगुप्तां ।
अजीतो हतो अक्षतो' ध्यष्ठां पृथिवीमहं ॥११॥

७. यत् ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः
संबभूवुः ।
तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः ।
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ॥१२॥

८. त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं
चतुष्पदः ।
तवेमे पृथिवि पंच मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य
उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति ॥१५॥

९. भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरंकृतं ।
भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः ।
सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु जरदष्टिं मा पृथिवी
कृणोतु ॥२२॥

१०. यस्ते गन्धः पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रुचिः ।
यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषूत हस्तिषु । कन्यायां वर्चो यद्
भूमे तेनास्मां अपि संसृज, मा नो द्विक्षत कश्चन ॥२५॥

११. शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता ।
तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः ॥२६॥

१२. यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा ।
पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छान्वदामसि ॥२७॥

६. हे पृथिवि, तेरे गिरि हिमवान् पर्वत, अरण्य सुखमय हों। भूरी, काली, लाल नाना रूपकी ध्रुव फैली बड़ी इन्द्र द्वारा रक्षित भूमिको बिना पराजित, अहत, अक्षत हो मैं अधिष्ठित करूं ॥११॥

७. हे पृथिवी, जो तेरा मध्य स्थान है, जो नाभिका है, जो तेरे वे तेजस्वी शरीर हुये। उन्हें हमें सामने दो, हमारे लिये पवित्र करो। भूमि माता है, मैं पृथिवीका पुत्र हूं। पर्जन्य (मेघ) पिता है, और वह हमें तृप्त करे ॥१२॥

८. मर्त्य (मर्द) तेरे में उत्पन्न हो, तेरे ही ऊपर विचरण करते हैं। तुम दोपायों और चौपायोंको पालती हो। हे पृथिवी, तेरे लिये पांचों जन हैं, जिन मर्दोंके लिए अमृत-ज्योति उगता सूर्य रश्मियोंसे विस्तार करता है ॥१५॥

९. (जिस) भूमिपर देवोंके लिये लोग यज्ञ और सजी हवि देते हैं। भूमिपर मनुष्य मर्त्य स्वधा और अन्नसे जीते हैं। वह भूमि हमें प्राण और आयु दे, मुझे पृथिवी जरदष्टि करे ॥२२॥

१०. जो तेरा गंध पुरुषोंमें, स्त्रियोंमें, नरोंमें तेज और कांति है। जो अश्वों, वीरों, मृगों और हाथियोंमें। कन्यामें जो तेज है, हे भूमि उनके साथ हमें भी युक्त करो, कोई हमसे द्वेष न करे ॥२५॥

११. शिला, भूमि, पत्थर, धूलि वह अच्छी तरह धारण की हुई भूमि है। उस सुनहुल वक्षवाली पृथिवीको हम नमस्कार करते हैं ॥२६॥

१२. जिसपर वनस्पतियाँ नाना प्रकारके ध्रुव वृक्ष स्थित हैं। उस विश्वको धारण करनेवाली सुदृढ़ पृथिवीकी हम प्रशंसा करते हैं ॥२७॥

१३. यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीर्यास्ते भूमे अधराद्
याश्च पश्चात् ।
स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु मा नि पप्तं भुवने
शिश्रियाणः ॥३१॥

१४. मा नः पश्चान्मा पुरस्तान्नुदिष्ठा मोत्तरादधरादुत ।
स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन् परिपन्थिनो वरीयो यावया
वधं ॥३२॥

१५. ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः ।
ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो
दुहातां ॥३६॥

१६. सा नो भूमिरा दिशतु यद्धनं कामयामहे ।
भगो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्र एतु पुरोगवः ॥४०॥

१७. यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः ।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः ।
सा नो भूमिः प्रणुदतां सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी
कृणोतु ॥४१॥

१८. यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पंच कृष्टयः ।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे ॥४२॥

१९. निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी
ददातु मे ।
वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्य-
माना ॥४४॥

२०. यस्यां कृष्णमरुणं च संहिते अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि ।
वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता सा नो दधातु भद्रया प्रिये
धामनि धामनि ॥५२॥

१३. हे भूमि, जो तेरी पूर्व दिशा है, जो उत्तर दिशा है, जो निचली और जो पश्चिम दिशा है। विचरण करते मेरे लिए वह मंगलमय हो, भवनमें आश्रय लेते भूभार न गिरे ॥३१॥

१४. न मुझे पीछेसे, न मुझे आगेसे, न उत्तरसे, न नीचेसे पीड़ित करे। हे भूमि, हमारे लिये स्वस्ति हो, शत्रु बड़े वेगसे वध न कर सके ॥३२॥

१५. हे भूमि, तेरे ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर, वसंत हैं। तेरे विहित ऋतु, वर्ष, रात-दिन हे पृथिवी, हमारी कामना पूरी करे ॥३६॥

१६. जिस धनको हम चाहते हैं, उसके बारेमें वह भूमि आदेश दे। भगवान् इन्द्र गौओंको सामने किये आवें ॥४०॥

१७. जिस भूमिसे ऐलब मर्द गाते नाचते हैं। जहां चिल्लाते लड़ते हैं, जिसमें दुंदभि बोलती है। वह भूमि हमारे शत्रुओंको हटावे, हमें पृथिवी शत्रुहीन बनाये ॥४१॥

१८. जिसमें अन्न, धान, जौ होते हैं, जिसमें ये पांचों जन हैं। उस मेघ-रक्षिता वर्षासे मोटी हुई भूमिके लिये नमस्कार ॥४२॥

१९. बहुल गुप्त निधिको धारण करती पृथिवी धन, मणि, सोनेको मुझे दे। धन देनेवाली सुप्रसन्न दाता देवी, हमें धन दे ॥४४॥

२०. जिस भूमिके ऊपर काले, लाल और एक दूसरेसे मिले रात दिन बनाये गये। विस्तृत भूमि जो वर्षासे आच्छादित अनाच्छादित है, वह हमें प्रिय धाम धाममें मंगलोंके साथ धारण करे ॥५२॥

२१. अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्यां ।
अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः ।।५४।।

२२. ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्यां ।
ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते ।।५६।।

२३. यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि यदीक्षे तद् वनन्ति मा ।
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान् हन्मि दोधतः ।।५८।।

२४. त्वमस्यावपनी जनानामदितिः कामदुघा पप्रथाना ।
यत् त ऊनं तत् त आ पूरयाति प्रजापतिः प्रथमजा
ऋतस्य ।।६१।।

२५. उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः ।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ६२

२६. भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितं ।
संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्यां ।।६३।।

—अथर्ववेद कां० १२, सू० १

२१. भूमिमें मैं उत्तर नामक तेजस्वी हो दमन करनेवाला हूं। मैं दबानेवाला हूं सबको दबानेवाला दिशा-दिशामें विशेष दबानेवाला ॥५४॥

२२. भूमि पर जो गांव हैं, जो अरण्य हैं, जो सभायें हैं, जो संग्राम हैं, जो समितियां हैं, उनमें हम तेरे लिये सुन्दर बात करेंगे ॥५६॥

२३. जो बोलूंगा, उसे मधुर बोलूंगा, जो देखूंगा, सो मुझे पसन्द करते हैं। मैं तेजवाला हूं, वेगवाला हूं, द्रोह लोभ करनेवाले दूसरोंको मारता हूं ॥५८॥

२४. तू जनोंके लिए दोनेवाली विस्तृत कामधेनु है। जो तेरा कम है, उसको सत्य के प्रथम उत्पन्न प्रजापति पूरा करे ॥६१॥

२५. हे पृथिवि, तेरे स्थल निरोग यक्ष्मा-रहित प्रसवयुक्त हों। हमारी आयु दीर्घ हो, जगकर हम तेरे लिये बलि लानेवाले हों ॥६२॥

२६. हे माता भूमि, मुझे भद्र वस्तुओंके साथ सुप्रतिष्ठित रख। हे कवि, द्विनको जानते हुए मुझे श्री और वैभव दे ॥६३॥

—अथर्ववेद १२।१

भाग २

पालिकाल

(६००—१ ई० पू०)

ऋग्वेद की प्राचीनतम ऋचाओं की रचना आर्यों के सप्तसिन्धु में आने के तीन सौ वर्ष बाद हुई। उसके दो सौ वर्ष बाद तक ऋचायें बनती रहीं। फिर तीन शताब्दियों का वह काल है, जब कि शतपथ, ऐतरेय, तैत्तिरीय आदि ब्राह्मण रचे गये। इस समय के गद्य और कुछ गाथायें (श्लोक) भी सुरक्षित हैं, किन्तु वह काव्य की दृष्टि से विशेष महत्व नहीं रखतीं, यद्यपि दर्शन के सम्बन्ध में उनके भीतर आई उपनिषदों का भारी महत्व है। उपनिषद्-काल के समाप्त होने के बाद ही नई भाषायें अस्तित्व में आईं, जिनका सामूहिक नाम पालि कहा जा सकता है। यद्यपि, पालि नाम मुख्यतः बुद्ध के मुँह से निकली पालियों (पंक्तियों) के लिये ही उपयुक्त हुआ है, लेकिन आधुनिक विद्वानों ने भाषा का नाम पालि रख दिया है, जिसमें स्थविरवाद के त्रिपिटक ही नहीं, बल्कि अशोक और खारवेल के शिलालेख लिखे गये हैं। हमें यहां पालि-भाषा से कुछ नहीं लेना है। इस काल में संस्कृत की जो कवितायें हुईं, उनको समझने के लिए इस काल का जानना जरूरी है। अशोक के समय की ब्राह्मी लिपि ही हमारी सबसे पुरानी लिपि है, और वह इतनी पुष्ट और सुव्यवस्थित है, कि उसके विकसित होने में शताब्दियां लगी होंगी। किन्तु, उस समय भी वैदिक-कालकी तरह ही लिपि और लेखन-सामग्रीका बहुत कम प्रयोग किया जाता था, और जो प्रयोग हुआ भी, उसके लिये तालपत्र जैसे भंगुर साधन इस्तेमाल किये जाते थे, जिसके कारण ही उस समय के अभिलेख हमारे पास तक नहीं पहुंच सके।

इस समय की कवितायें पालि में सुरक्षित हैं। संस्कृत में उनके नमूने महाभारत और रामायण में मिलते हैं, जो कि शताब्दियों तक मौखिक दोहराये जाते मौर्य-वंश के उच्छेदके बाद शुंग-काल में स्थायी रूप लेने लगे। हम महाभारत और रामायण ग्रंथों पर विचार करते समय उनके भीतर आये कथानकों के काल पर निर्णय नहीं देना चाहते। कथानक शताब्दियों पहले के ही सकते हैं। रामायण की मूल कथा "दशरथ" जातक के रूप में हमारे सामने मौजूद है। दशरथ जातकमें दक्षिणापथके भूगोलका

कोई उल्लेख नहीं है। निर्वासित राम-सीता-लक्ष्मणने हिमालय में आकर अपना निर्वासित जीवन बिताया। रामायण और महाभारतमें शुंग-कालके बाद भी क्षेपक होते रहे। पर, उनके सबसे पुराने अंश उसी कालके हैं, जब कि महाभाष्यकार पतंजलि शुंग-वंशके संस्थापक पुष्यमित्रसे यज्ञ करा रहे थे।

वेद-ब्राह्मण-कालके बाद लोगोंकी मातृभाषा संस्कृत नहीं रह गई। अब भिन्न-भिन्न स्थानीय पालियाँ बोली जाती थीं। लेकिन, ब्राह्मण अपने धर्म-ग्रंथोंको वेद और ब्राह्मणकी भाषामें पढ़ते थे। अपने कर्म-काण्डके लिये श्रौतसूत्र, धर्मसूत्र, गृह्यसूत्र बना रहे थे। इन ग्रंथोंको वह लोक-भाषामें नहीं बना सकते थे, क्योंकि तब उनका उपयोग कुछ थोड़े ही लोगोंसे हो सकता था। इसके अध्ययन-अध्यापनके लिये उन्होंने कुछ नियमोंको स्थिर करके एक भाषा संस्कृत (निर्मित) की, जिसे आज "संस्कृत" कहा जाता है। यद्यपि उससे एक शताब्दी बाद पैदा हुए पाणिनि उसे "भाषा" कहते थे, जिसका अर्थ यही है, कि वह संस्कृत उच्चारणोंके अनुरूप बनाई गई लोक-भाषा थी।

इस संस्कृत भाषामें रचित महाभारत और रामायणमें भाषा, और शैलीके विकासकी दृष्टि से देखनेपर महाभारत पुराना मालूम होता है। रामायणमें वह गुण विद्यमान है, जिन्हें हम आज भी कविताके लिये अनिवार्य मानते हैं।

१४. व्यास (२०० ई० पू०)

महाभारतके रूप में हमें उस समयकी संस्कृतकी विशाल सूक्तियोंका संग्रह मिलता है, जब कि संस्कृत मातृभाषा, नहीं रह गई थी। व्यास या पराशर-पुत्र कृष्णद्वैपायनको महाभारत या भारतका कर्ता माना जाता है। वसिष्ठके पौत्र पराशर की सन्तान होनेके लिये व्यासको ईसा-पूर्व ग्यारहवीं शताब्दीमें होना चाहिये, जिसकी भाषा ऋग्वेदमें मिलती है। उसके बादकी शताब्दियोंमें शतपथ, ऐतरेय आदि ब्राह्मणोंकी भाषा आती है। उससे भी महाभारत की भाषा की कोई एकता नहीं है। महाभारतकी कथा पुरानी हो सकती है। इसके अनेक आख्यान बुद्धके समय (ई० पू० ६—५वीं सदी) में भी प्रचलित थे। लेकिन, जिस रूपमें महाभारत आज

१. पति-वरा—

१. स तर्पयित्वा ज्वलनं ब्राह्मणान् स्वस्तिवाच्य च,
वादयामास सर्वाणि वादित्राणि समन्ततः ॥२५॥

२. निःशब्दे तु कृते तस्मिन्, धृष्टद्युम्नो, विशांपते,
कृष्णां आदाय विधिवद्, मेघ-दुन्दुभि-निःस्वनः ॥२६॥

३. रंग-मध्ये गतस्, तत्र मेघ-गम्भीरया गिरा
वाक्यमुच्चैर् जगादेदं, श्लक्ष्णमर्थवदुत्तमम् ॥२७॥

४. "इदं धनुर् लक्ष्यम्, इमे च बाणाः,
शृण्वन्तु मे भू-पतयः समेताः ।
छिद्रेण यन्त्रस्य समर्पयध्वं
लक्ष्ये शितैर् व्योम-चरैर् दशार्धैः ।

५. एतद् महत् कर्म करोति यो वै,
कुलेन रूपेण बलेन युक्तः ।
तस्याद्य भार्या भगिनी ममेयं
कृष्णा भवित्री, न मृषा ब्रवीमि ।"

१४. व्यास (२०० ई० पू०)

हमें मिलता है, उसका सबसे प्राचीन अंश ईसा-पूर्व दूसरी शताब्दीसे पहले नहीं जा सकता। इस प्रकार यह उस कालकी रचना है, जब कि अशोकके शिलालेखोंकी भाषा तत्कालीन अनेक पालियोंमेंसे एक थी। पालि संस्कृतके समीपतम भाषा है, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं। महाभारतमें बहुत पीछे तक क्षेपक डाले जाते रहे, किन्तु साथ ही उसमें बहुत से महत्वपूर्ण प्राचीन अंश भी हैं। द्रौपदी को जबरदस्ती दुःशासन द्वारा खींच कर सभामें लानेका वर्णन यद्यपि बड़ा ही प्रभावपूर्ण है, लेकिन वह असंभव है। सामन्त भला उसे कैसे बर्दाश्त कर सकते थे, जब कि आजकी सबसे पिछड़ी जनजातियोंके लोग भी स्त्रीपर ऐसे अत्याचारको आँखोंके सामने देख नहीं सकते। आज हमारा सारा देश एक गणराज्य है। गणोंके बारेमें महाभारत में जो बातें कही गई हैं, वह आज भी हमारे लिये शिक्षाप्रद हैं।

१. द्रौपदीका स्वयंवर—

१. उसने अग्निमें हवन और ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर,
चारों ओर सारे बाजोंको बजवाया।

२. हे प्रजाओंके स्वामी, उसके चुप कर देनेपर,
[illegible]

३. [illegible]
सुन्दर अर्थयुक्त यह उत्तम वाक्य ऊँचे स्वरसे कहा—

४. "यह धनुष, यह लक्ष्य और यह बाण है।
आये हुये भूपति मेरी सुनें—
[illegible]
[illegible]

५. [illegible]
कुल, रूप और बलसे युक्त (पुरुष) करेगा।
[illegible] मेरी बहिन।
[illegible]।"

६. तान् एवमुक्त्वा, द्रुपदस्य पुत्रः
पश्चाद् इदं तां भगिनीमुवाच ।
नाम्ना च गोत्रेण च कर्मणा च
संकीर्तयन् भूमि-पतीन् समेतान्,—

७. "त्वदर्थमागता, भद्रे, क्षत्रियाः, प्रथिता भुवि ।
विध्येत य इदं लक्ष्यं, वरयेथाः, शुभेऽद्य तम् ।" ॥२१॥

—आदि-पर्व (एकत्रिंशोऽध्यायः)

२. लक्ष्यवेध—

८. तेऽलंकृताः कुण्डलिनो युवानः,
परस्परं स्पर्धमाना नरेन्द्राः ।
अस्त्रं बलं चात्मनि मन्यमानाः,
सर्वे समुत्पेतुरुदायुधास्ते ॥१॥

९. ते क्षत्रिया रंग-गताः समेता,
जिगीषमाणा द्रुपदात्मजां ताम् ।
चकाशिरे, पर्वत-राज-कन्याम्,
उमां यथा देव-गणाः समेताः ।

१०. अथाययुर् देव-गणा विमाने—
रुद्रादित्या वसवोऽथाश्विनौ च ।
साध्याश्च सर्वे मरुतस् तथैव,
यमं पुरस्कृत्य धनेश्वरं च ॥३॥

११. दैत्याः सुपर्णाश्च महोरगाश्च,
देवर्षयो गुह्यकाश्चारणाश्च ।
विश्वावसुर् नारद-पर्वतौ च,
गन्धर्व-मुख्याः सह चाप्सरोभिः ॥४॥

६. उन्हें यह कहकर द्रुपदके पुत्रने
पीछे नाम,
गोत्र और कर्मके साथ,
एकत्रित भूपतियोंका बखान करते उस भगिनी से यह कहा—

७. "भद्रे, तेरे लिये संसारके प्रसिद्ध क्षत्रिय आये हैं।
जो इस लक्ष्यको बेध दे, हे शुभे, आज तू उसे वरण करना।"
—आदिपर्व, अध्याय ३१

२. लक्ष्य-वेध—

८. वे अलंकृत कुंडलधारी सारे तरुण,
नरेन्द्र परस्पर स्पर्धा करते,
अपनेमें अस्त्र और बलका अभिमान करते,
हथियार उठाये आ पड़े।

९. रंगमें पहुँचकर एकत्रित हुये
द्रुपद-कन्याके जीतनेके इच्छुक वे क्षत्रिय
वैसे प्रकाशित हुये, जैसे एकत्रित हुये देवगण,
पर्वतराज-कन्या उमाके (वरणके) लिये।

१०. तब रुद्र, आदित्य, वसु और दोनों अश्विनीकुमार,
देवगण विमानोंसे
और सारे साध्य तथा सकल देवता भी,
यम और कुबेर भी आगे [illegible] आये।

११. दैत्य, सुपर्ण और महानाग,
देवर्षि गुह्यक और चारण,
विश्वावसु, नारद और पर्वत,
गंधर्वों और [illegible] प्रसिद्ध अप्सराओंके साथ (आये)।

१२. हलायुधस्तत्र जनार्दनश्च,
वृष्ण्यन्धकाश्चैव यथा-प्रधानम् ।
प्रेक्षां स्म चक्रुर् यदु-पुंगवास्ते,
स्थिताश्च कृष्णस्य मते महान्तः । ।।५।।

१३. दृष्ट्वा तु तान्, मत्त-गजेन्द्र-रूपान्,
पंचाभिपद्मान् इव वारणेन्द्रान् ।
भस्मावृतांगान् इव हव्य-वाहान्,
कृष्णः प्रदध्यौ यदु-वीर-मुख्यः ।।६।।

१४. शशंस रामाय युधिष्ठिरं स,
भीमं स-जिष्णुं च यमौ च वीरौ ।
शनैः शनैस् तान् प्रसमीक्ष्य रामो,
जनार्दनं प्रीत-मना ददर्श ।।८।।

१५. अन्ये तु वीरा नृप-पुत्र-पौत्राः,
कृष्णा-गतैर् नेत्र-मनः-स्वभावैः ।
व्यायच्छमाना ददृशुर् न तान् वै,
सन्दष्ट-दन्तच्छद-ताम्र-नेत्राः ।।७।।

१६. तथैव पार्थाः पृथु-बाहवस् ते,
वीरौ यमौ चैव महानुभावौ ।
तां द्रौपदीं प्रेक्ष्य, तदा स्म सर्वे,
कन्दर्प-बाणाभिहता बभूवुः ।।९।।

१७. ततस्तु ते राज-गणाः क्रमेण,
कृष्णा-निमित्तं कृत-विक्रमाश्च ।
स-कर्ण-दुर्योधन-शाल्व-शल्याः,
बलेन वीर्येण च नर्दमानाः ।।१०।।

१२. वहाँ बलराम और कृष्ण,
वृष्णि और अंधक लोग भी अपने प्रधानोंके अनुगामी
कृष्णके पक्षमें स्थित महान्,
यदु-कुलके वे मुखिया भी देखने लगे,

१३. मत्त गजेन्द्रके से रूपवाले
पंच शोभायुक्त, गजेन्द्रसे भस्मसे ढंके अग्नियोंकी
तरह उन्हें देखकर,
यदुवीरोंमें प्रधान कृष्णने सोचा।

१४. उन्होंने बलराम से युधिष्ठिर,
अर्जुन सहित भीम और जमल दोनों वीरोंके बारे में कहा।
उन्हें देखकर धीरे-धीरे बलरामने,
प्रसन्न मन हो कृष्णकी ओर देखा।

१५. दूसरे राजाओंके पुत्र-पौत्र वीरों ने।
द्रौपदीमें नेत्र-मन के कारण, में तन्मय होने।
दंतो ओठ काटे ओठ तथा लाल आंखोंवालोंने,
उन्हें नहीं देखा।

१६. उसी तरह स्थूल बाहुवाले उन पृथा-पुत्र,
और अमूर्य दोनों सारे, (पांडव) महानुभाव वीर,
उस द्रौपदीको देखकर उस समय
कामदेव के बाणसे ताड़ित हुये।

१७. [illegible] गन्धर्वोंने सबने,
द्रौपदीके लिये [illegible] किया।
[illegible]
[illegible] और [illegible] नाद करने लगे।

१८. विक्षिप्यमाणा धनुषा नरेन्द्रा,
गतौजसः स्रस्त-किरीट-हाराः,
विनिश्वसन्तः शमयां बभूवुः ।
राज्ञां तदा मण्डलमार्तमासीत् ॥११॥

१९. यदा निवृत्ता राजानो धनुषः सज्य-कर्मणः ।
अथोदतिष्ठद् विप्राणां मध्याज् जिष्णुर् उदार-धीः ॥१२॥

२०. उदक्रोशन् विप्र-मुख्या विधुन्वन्तोऽजिनानि च ।
केचिद् आसन् वि-मनसः, केचिद् आसन् मुदान्विताः ॥१३॥

२१. आहुः परस्परं केचिद्, निपुणा बुद्धि-जीविनः,—
"यत् कर्ण-शल्य-प्रमुखैः क्षत्रियैर् लोक-विश्रुतैः ।
नानतं बलवद्भिर् हि धनुर्वेद-परायणैः ॥१४॥

२२. तत् कथं त्व-कृतास्त्रेण प्राणतो दुर्बलीयसा ।
वटुमात्रेण शक्यं हि सज्यं कर्तुं धनुर् द्विजाः ॥१५॥

२३. यद्येष दर्पाद् धर्षाद् वाप्यथ ब्राह्मण-चा[illegible] ।
प्रस्थितो धनुरायन्तुं, वीर्यतां [illegible]" ॥१६॥

२४. केचिद्-आहुर्, "युवा श्रीमान् नाग-राज-[illegible] ।
पीन-स्कन्धोरु-बाहुश्च, धैर्येण हिमवान् इव ॥१७॥

२५. सिंह-खेल-गतिः श्रीमान् मत्त-नागेन्द्र-विक्रमः,
सम्भाव्यमस्मिन् कर्मेदम्, उत्साहाच्चानुमीयते ।" ॥१८॥

२६. एवं तेषां वि-लपतां विप्राणां विविधा गिरः ।
अर्जुनो धनुषो ऽभ्यासे तस्थौ, गिरिरिवाचलः॥१९॥

२७. अर्जुनः पाण्डव-श्रेष्ठो धृष्टद्युम्नमभाषत,—
"एतद् धनुर् ब्राह्मणानां सज्यं कर्तुमलं नु किम् ?"

२८. तस्य तद् वचनं श्रुत्वा, धृष्टद्युम्नोऽब्रवीद् वचः—
"ब्राह्मणो वाथ राजेन्द्रो वैश्यो वा शूद्र एव वा ॥२१॥

१८. धनुषसे विक्षिप्त होते
तेज-रहित मुकुटहार-अस्त-व्यस्त हुये,
लम्बी सांस लेते वे राजा शान्त हो गये।
तब राजमंडल अभिगत था।
१९. धनुष तैयार करनेके कर्मसे जब राजा निवृत्त हो गये,
तब ब्राह्मणोंके बीचसे उदार बुद्धिवाले अर्जुन खड़े हुये।
२०. मृगछालोंको धुनते ब्राह्मणोंके मुखिया चिल्ला उठे।
कोई उनमें अप्रसन्न थे, कोई प्रसन्नतायुक्त थे।
२१. कुछ निपुण बुद्धिजीवियोंने एक दूसरेसे कहा—
कर्ण शल्य आदि लोक-प्रसिद्ध क्षत्रियों द्वारा,
२२. धनुर्वेद-परायण बलवानों द्वारा भी जो नहीं झुका।
कैसे बिना अस्त्रपर अधिकार किये शरीरसे भी अति दुर्बल,
(इस) ब्राह्मण-पुत्र मात्र द्वारा हे ब्राह्मणो, वह धनुष लगाया जा सकता है?
२३. यदि यह दर्पसे, ढिठाईसे अथवा ब्राह्मण होनेकी चंचलतासे,
धनुष ताननेके लिये चला है, तो रोकें, अच्छा है (जो) न जाये।
२४. कुछने कहा—"तरुण है श्रीमान्, नागराजके शुंडके सदृश,
स्थूल कन्धा, जंघा और बाहुवाला, और धैर्यमें हिमालय जैसा,
२५. सिंहकी खेलनेकी गतिवाला, श्रीयुक्त मत्त-गजेन्द्रके सा परिक्रमवाला है
इसका यह काम संभव है, और उत्साहसे भी अनुमान होता है।"
२६. इस प्रकार जब ब्राह्मणोंके नाना प्रकारकी बात करते समय,
अर्जुन धनुषके पास जा अचल पर्वतकी तरह खड़े हुये।
२७. पांडवोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने तब धृष्टद्युम्नसे कहा—
"यह धनुष ब्राह्मण खींच सकते हैं या नहीं?"
२८. उनके इस वचनको सुनकर धृष्टद्युम्नने यह बात कही—
"ब्राह्मण हो अथवा राजेन्द्र, वैश्य हो या शूद्र,

२९. एतेषां यो धनुः-श्रेष्ठं सज्यं कुर्याद्, द्विजोत्तम ।
तस्मै प्रदेया भगिनी, सत्यमुक्तं मया वचः ।" ॥२२॥

३०. ततः पश्चाद् महातेजाः पाण्डवो रण-दुर्जयः ।
स तद् धनुः परिक्रम्य, प्र-दक्षिणमथाकरोत् ॥२३॥

३१. प्रणम्य शिरसा देवमीशानं वरदं प्रभुम् ।
कृष्णं च मनसा कृत्वा, जगृहे चार्जुनो धनुः ॥२४॥

३२. यत् पार्थिवै रुक्म-सुनीथ-वक्रैः—
राधेय-दुर्योधन-शल्य-साल्वैः ।
तथा धनुर्वेद-परैर् नृ-सिंहैः,
कृतं न सज्यं महतोऽपि यत्नात् ॥२५॥

३३. तद् अर्जुनो वीर्यवतां सदर्पस्,
तद् ऐन्दिर्रिन्द्रावरज-प्रभावः ।
सज्यं च चक्रे निमिषान्तरेण,
शरांश् च जग्राह, दशार्ध-संख्यान् ॥२६॥

३४. विव्याध लक्ष्यं निपपात तच्च्च,
छिद्रेण भूमौ सहसाति-विद्धम् ।
ततोऽन्तरिक्षे च बभूव नादः,
समाज-मध्ये च महान् नि-नादः ॥२७॥

३५. चैलानि विव्यधुस् तत्र ब्राह्मणाश् च सहस्रशः ।
न्यपतंश्चात्र नभसः समन्तात् पुष्प-वृष्टयः ॥२८॥

३६. शतांगानि च तूर्याणि वादकाः समवादयन् ।
सूत-मागध-संघाश् चाप्यस्तुवंस्तत्र सु-स्वराः ॥२९॥

३. राज-समागमः—

३७. ततो युधिष्ठिरो राजा प्रेषयामास पाण्डवम् ।
नकुलं हास्तिनपुरं भीष्माय पुरुषर्षभः,

२९. इनमेंसे जो इस श्रेष्ठ धनुषको चढ़ा दे, हे ब्राह्मणोत्तम,
उसे बहिन दी जायेगी, मैंने सत्य वचन कहा।"

३०. उसके बाद महातेजस्वी रणमें दुर्जय उस पांडवने,
उस धनुषकी परिक्रमा करके तब प्रदक्षिणा की।

३१. सिरसे वरद प्रभु देव शंकरको,
और मनसे कृष्णको प्रणाम कर, अर्जुनने धनुषको पकड़ा।

३२. रुक्म, सुनीथ, वक्र,
कर्ण, दुर्योधन, शल्य, साल्व जैसे,
धनुर्वेद पारंगत नरसिंह राजाओंने,
जो नहीं किया, बड़े यत्नसे भी नहीं प्रत्यंचायुक्त नहीं किया।

३३. वीर अर्जुन जवानोंमें इन्द्र-पुत्र,
विष्णुके समान प्रतापवाले अर्जुनने दर्पके साथ उसे,
पलक मारते ज्यासे युक्त कर दिया, और
गिनतीमें पांच बाणोंको हाथमें पकड़,

३४. बेध दिया और वह अत्यंत बेधा हुआ, लक्ष्य
छिद्रके द्वारा तुरन्त धरतीपर गिर पड़ा।
तब आकाशमें नाद हुआ, और
समाजके मध्यमें महानिनाद हुआ।

३५. वहां सहस्रों ब्राह्मणोंने उत्तरीय लेकर फहराया,
और वहां आकाशसे चारों ओर पुष्पोंकी वृष्टि हुई।

३६. और बाजे वालोंने सैकड़ों प्रकारके बाजे बजाये,
और सूत तथा मागध लोगोंने भी सुस्वरसे, वहां स्तुति की।

—आदिपर्व, अध्याय १२

३. राजाओंका समागम—

३७. तब पुरुषश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरने,
पांडव नकुलको हस्तिनापुर भेजा, भीष्म,

३७. द्रोणाय धृतराष्ट्राय विदुराय कृपाय च ।
भ्रातृणां चैव सर्वेषां, येऽनु-रक्ता युधिष्ठिरं ॥

३९. स गत्वा हास्तिनपुरं, नकुलः समितिंजयः
भीष्ममामन्त्रयाञ्चक्रे धृतराष्ट्रं च पाण्डवः ।

४०. सत्-कृत्यामन्त्रितास् तेन आचार्य-प्रमुखास् ततः
प्रत्ययुः प्रीत-मनसो, यज्ञं, ब्रह्म-पुरःसराः ॥

४१. धृतराष्ट्रश्च भीष्मश्च विदुरश्च महामतिः ।
दुर्योधन-पुरोगाश् च भ्रातरः सर्व एव ते ॥

४२. गान्धार-राजः सुबलः, शकुनिश् च महा-बलः ।
अचलो वृषकश्चैव, कर्णश्च रथिनां वरः ॥

४३. तथा शल्यश्च बलवान्, बाह्[illegible]
सोमदत्तोऽथ कौरव्यो भूरिर् भूरिश्रवाः शलः ॥

४४. अश्वत्थामा कृपो द्रोणः सैन्धवश्च जयद्रथः ।
यज्ञसेनः स-पुत्रश्च, सात्वश्च वसुधाधिपः ॥

४५. प्राग्ज्योतिषश्च भूपतिर् भगदत्तो महारथः ।
स तु सर्वैः सह म्लेच्छैः सागरानूपवासिभिः ॥

४६. पर्वतीयाश्च राजानो राजा चैव बृहद्बलः ।
पौण्ड्रको वासुदेवश्च, वंगः कालिंगकस्तथा ॥

४७. आकर्याः कुन्तलाश्चैव मालवाश्चान्ध्रकास्तथा ।
द्राविड़ाः सिंहलाश्चैव राजा काश्मीरकस्तथा ॥

४८. कुन्तिभोजो महा-तेजाः, पार्थिवो गौर-वाहनः,
विराटः सह पुत्राभ्यां आगच्छन् महाबलः ॥

४९. शिशुपालो महावीर्यः सह पुत्रेण भारत ।
आगच्छत् पाण्डवेयस्य यज्ञं समर-दुर्मदः ॥

३८. द्रोण, धृतराष्ट्र, विदुर और कृपके लिये,
और सभी भ्राताओंके पास जो कि युधिष्ठिरके अनुरक्त थे।

३९. युद्ध-विजेता उस नकुल पाण्डवने हस्तिनापुरमें जाकर,
भीष्म और धृतराष्ट्रसे मंत्रणा की।

४०. सत्कारपूर्वक नकुल द्वारा आमंत्रित आचार्य आदि तब,
प्रसन्न मनसे ब्राह्मणोंके साथ यज्ञमें गये।

४१. धृतराष्ट्र और भीष्म और महामति विदुर,
दुर्योधन आदि सारे ही वे भाई,

४२. गंधारके राजा सबल और महाबली शकुनि,
अचल और वृषक और रथियोंमें श्रेष्ठ कर्ण,

४३. तथा बलवान् शल्य और महाबली बाह्लीक (बलखवाले)
सोम और कुरुवंशी सोमदत्त, भूरि, भूरिश्रवा, शल्य,

४४. अश्वत्थामा, कृप, द्रोण और सिन्धुराज जयद्रथ,
पुत्र-सहित यज्ञसेन और वसुधाधिप साल्व,

४५. आसामके भूपति महारथी भगदत्त,
—वह तो सागरके किनारे बसनेवाले सारे म्लेच्छोंके साथ,

४६. और पहाड़ी राजा, तथा राजा बृहद्बल,
पुंड्रराज वासुदेव और बंग और कलिंगवाले,

४७. आकर, कुंतल और मालव तथा आन्ध्रवाले,
द्राविड़, सिंहलवाले और काश्मीरवाला राजा

४८. महा तेजस्वी कुन्तिभोज और राजा पारवाहन,
दोनों पुत्रके साथ विराट और महाबली मावेल्ल,

४९. हे भारत, पुत्र-सहित महापराक्रमी समरमें दुर्मद,
शिशुपाल पाण्डवोंके यज्ञमें आया।

५०. रामश्चैवानिरुद्धश्च कंकश्च सह-सारणः ।
वृष्णयो निखिलाश्चान्ये समाजग्मुर् महारथाः ॥
५१. एते चान्ये च बहवो राजानो मध्यदेशजाः ।
आजग्मुः पाण्डु-पुत्रस्य राजसूयं महाक्रतुम् ॥
५२. ददुस् तेषाम् आवसथान् धर्मराजस्य शासनात् ।
बहु-भक्ष्यान्वितान्, राजन् दीर्घिका-वृक्ष-शोभितान् ॥
५३. तथा धर्मात्मजः पूजां चक्रे तेषां महात्मनाम् ।
सत्कृताश्च, यथोद्दिष्टान् जग्मुरावसथान् नृपाः ॥
५४. कैलास-शिखर-प्रख्यान् मनोज्ञान् द्रव्य-भूषितान् ।
सर्वतः संवृतान् उच्चैः प्राकारैः सुकृतैः सितैः ।
५५. सुवर्ण-जाल-संवीतान्, मणि-कुट्टिम-भूषितान्,
सुखारोहण-सोपानान्, महासन-परिच्छदान् ॥
५६. स्रग्-दाम-समवच्छन्नान्, उत्तमागुरु-गन्धिनः ।
हंसेन्दु-वर्ण-सदृशान्, आयोजन-सुदर्शनान् ॥
५७. अ-संबाधान् सम-द्वारान् युक्तान् उच्चावचैर् गुणैः ।
बहुधातु-निबद्धांगान् हिमवच्-छिखरान् इव ॥
५८. विश्रान्तास् ते ततोऽपश्यन् भूमिपा भूरि-दक्षिणम् ।
वृतं सदस्यैर् बहुभिर्, धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥
५९. तत् सदः पार्थिवैः कीर्णं ब्राह्मणैश्च महर्षिभिः ।
भ्राजते स्म तदा राजन्, नाक-पृष्ठं यथामरैः ॥

४. देवनम्—

वैशम्पायन उवाच—

६०. उपोह्यमाने द्यूते तु, राजानः सर्व एव ते ।
धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य, विविशुस्तां सभां ततः ॥

५०. बलराम और अनिरुद्ध और सारणके सहित कंक,
और दूसरे सारे महारथी वृष्णि आये।
५१. ये और दूसरे बहुत से मध्यदेशवाले राजा,
पांडुपुत्रके राजसूय महायज्ञमें आये।
५२. हे राजन्, युधिष्ठिरकी आज्ञासे उन्हें बहुत प्रकारके
भोजनोंसे युक्त पुष्करिणी और वृक्षसे शोभित निवास दिये गये।
५३. तथा युधिष्ठिरने उन महात्माओंकी पूजा की,
सत्कार किये जानेके बाद वे राजा अपने निर्दिष्ट आवासोंमें गये,
५४. जो कि (थे) द्रव्योंसे भूषित मनोज्ञ कैलाश शिखरके समान,
चारों तरफ सुन्दर बनाये सफेद ऊंचे प्राकारोंसे घिरे,
५५. सोनेके जाल से घिरे, मणिके चौतरोंसे भूषित,
सुखसे चढ़ने लायक सीढ़ियोंवाले, महाआसन और वस्त्रवाले,
५६. फूलमालासे ढंके उत्तम अगरकी गंधवाले,
हंस और चन्द्रमाके रंगसे, योजनों तक देखनेमें सुन्दर,
५७. बिना भीड़वाले, समान द्वारवाले, नाना प्रकारके गुणोंसे युक्त
बहुत प्रकारके धातुओंसे बंधे अंगोंवाले हिमालयके शिखरों जैसे।
५८. विश्राम करके उन राजाओंने बहुत दक्षिणावाले,
बहुत सदस्योंसे घिरे धर्मराज युधिष्ठिरका दर्शन किया।
५९. राजाओं, ब्राह्मणों और महर्षियोंसे आकीर्ण वह सभा,
हे राजन्, तब ऐसी शोभती थी, जैसे अमरोंसे स्वर्ग।

—सभापर्व, अध्याय ७

४. जूआ खेलना—

वैशम्पायनने कहा—

६०. जूएके उपस्थित होनेपर वे सभी राजा,
धृतराष्ट्रको आगे करके उस सभामें प्रविष्ट हुये।

६१. भीष्मो द्रोणः कृपश्चैव, विदुरश्च महामतिः।
नीति-प्रीतेन मनसा तेऽन्ववर्तन्त भारत॥

६२. ते द्वन्द्वशः पृथक् चैव सिंह-ग्रीवा महौजसः।
सिंहासनानि भूरीणि विचित्राणि च भेजिरे॥

६३. शुशुभे सा सभा राजन्, राजभिस्तैः समागतैः।
देवैर् इव महाभागैः समवेतैस् त्रिविष्टपम्॥

६४. सर्वे वेद-विदः शूराः, सर्वे भास्वर-मूर्तयः।
प्रावर्तत महाराज सुहृद्-द्यूतमनन्तरम्॥

युधिष्ठिर उवाच—

६५. अयं बहु-धनो, राजन् सागरावर्त-सम्भवः।
मणिर् हारोत्तरः श्रीमान् कनकोत्तम-भूषणः॥

६६. एतद्, राजन् मम धनं, प्रति-पणोऽस्ति कस्तव।
येन मां त्वं महाराज, धनेन प्रति-दीव्यसे॥

दुर्योधन उवाच—

६७. सन्ति मे मणयश्चैव, धनानि सुबहूनि च।
मत्सरश्च न मेऽर्थेषु, जयस्वैनं दुरोदरं॥

वैशम्पायन उवाच—

६८. ततो जग्राह शकुनिस्तान् अक्षान् अक्ष-तत्त्व-वित्।
"जितम्"[१] इत्येव शकुनिर् युधिष्ठिरमभाषत॥

युधिष्ठिर उवाच—

६९. मत्तकैतवकेनैव यज् जितोऽस्मि दुरोदरे।
शकुने, हन्त दीव्यामो, ग्लहमानाः परस्परम्॥

७०. सन्ति निष्क-सहस्रस्य भाण्डिन्यो भरिताः शुभाः।
कोषो हिरण्यमक्षय्यं जातरूपम नेकशः॥
एतद् राजन्, मम धनं तेन दीव्याम्यहं त्वया॥

६१. भीष्म, द्रोण, कृप और महामति विदुरने
हे भारत, बे-मनसे (उनका) अनुगमन किया।

६२. सिंह सी गर्दनवाले महापराक्रमियोंने दो-दो ओर अलग-अलग,
विचित्र बहुतसे सिंहासनोंको शोभित किया।

६३. हे राजन्, आये हुए उन राजाओंसे वह सभा ऐसी शोभित हुई,
जैसे एकत्रित हुये महाभाग देवों द्वारा स्वर्ग।

६४. सभी वेद जाननेवाले, शूर, सभी प्रकाशमान मूर्तिवाले थे,
हे महाराज, फिर मित्रोंका जूआ आरंभ हुआ।

युधिष्ठिरने कहा—

६५. हे राजन्, यह बहुत मूल्यका सागरकी धारामेंसे उत्पन्न,
श्रीयुक्त सुवर्णका उत्तम भूषण हारयुक्त-मणि है।

६६. हे राजन्, यह मेरा धन है। तुम्हारा मुकाबिलेका दाव क्या है, जिस
धनसे कि तुम, हे महाराज, मुकाबिलेमें खेल रहे हो?

दुर्योधन बोला—

६७. मेरे पास मणियां हैं, और बहुत अधिक धन है,
धनके सम्बन्धमें मुझे कंजूसी नहीं है, इस दावको जीतो।

वैशम्पायनने कहा—

६८. तब जयके तत्ववेत्ता शकुनिने उन पासोंको हाथमें लिया,
"जीत लिया" यह शकुनिने युधिष्ठिरसे कहा।

युधिष्ठिर बोले—

६९. हे मायावी शकुनि, धोखेसे ही मैं तुमसे जीता गया हूँ, हन्त,
[illegible] (दावों) आपसमें हम खेलें।

७०. हजार [illegible] सुन्दर थैली [illegible] हैं,
कोश, [illegible] अक्षय [illegible] सोना,
हे राजन्, यह मेरा धन है, उससे मैं तुम्हारे साथ खेलता हूं।

वैशम्पायन उवाच—

७२. कौरवाणां कुल-करं ज्येष्ठं पाण्डवमच्युतम् ।
इत्युक्तः शकुनिः प्राह "जितं" इत्येव तं नृपम् ॥

युधिष्ठिर उवाच—

७३. अयं सहस्रसमितो- वैयाघ्रः सु-प्रतिष्ठितः ।
सु-चक्रोपस्करः श्रीमान् किंकिणी-जाल-मण्डितः ॥

७४. संह्लादनो राज-रथो य इहास्मान् उपावहत् ।
अष्टौ यं कुरर-च्छायाः सदश्वा राष्ट्र-सम्मताः ॥

७५. वहन्ति नैषां मुच्येत पदाद् भूमिं उपस्पृशन् ।
एतद् राजन् धनं मह्यं, तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥

वैशम्पायन उवाच—

७६. एवं श्रुत्वा व्यवसितो, निकृतिं समुपाश्रितः ।
"जितं" इत्येव शकुनिर् युधिष्ठिरं अभाषत ॥

युधिष्ठिर उवाच—

७७. शतं दासी-सहस्राणि--तरुण्यो हेम-भद्रिकाः ।
कम्बु-केयूर-धारिण्यो निष्क-कण्ठ्यः स्वलंकृताः ॥

७८. महार्हमाल्याभरणाः सुवस्त्राश्चन्दनोक्षिताः ।
मणीन् हेमं च बिभ्रत्यश्चतुःषष्टि विशारदाः ।
एतद् राजन्, मम धनं, तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥

वैशम्पायन उवाच—

७९. एतच्छ्रुत्वा व्यवसितां, निकृतिं समुपाश्रितः ।
"जितं" इत्येव शकुनिर् युधिष्ठिरं अभाषत ॥

युधिष्ठिर उवाच—

८०. एतावन्ति च दासानां सहस्राण्युत सन्ति मे ।
प्रदक्षिणानुलोमाश्च प्रावार-वसनाः सदा ॥

वैशम्पायन बोले—

७२. कौरवोंके वंशकर न चित्त होनेवाले पांडवको,
ऐसा कहनेपर शकुनिने "जीत लिया", उस राजासे कहा।

युधिष्ठिर बोले—

७३. यह हजार मूल्यका बाघम्बरयुक्त सुप्रतिष्ठित,
सुन्दर नेमकोंसे युक्त श्रीसहित किंकिणीके जालोंसे मंडित,
७४. नाद करनेवाला राजरथ है, जो हमें यहां लाया।
जिसको राष्ट्रमें सम्माननीय श्रेष्ठ कुरर जैसे आठ घोड़े,
७५. वहन करते हैं, इनके चरणोंसे भूमि स्पर्श करते नहीं छूटती,
हे राजन्, यह मेरा धन है, उसके साथ मैं तुमसे खेलता हूं।

वैशम्पायन बोले—

७६. यों सुभकार पांसेका अवलम्ब ले प्रयत्नशील,
शकुनिने "जीत लिया" यही युधिष्ठिरसे कहा।

युधिष्ठिर बोले—

७७. सुवर्ण-भूषित कम्बु-केयूर-धारिणी तरुणियां,
कंठमें मोहरवाली सुअलंकृत एक सौ हजार दासियां,
७८. (जो) महार्घ माला-आभरणवाली सुवस्त्रा, चन्दन-लिप्त, मणि
और सोनेको धारण करती चौंसठ (कलाओं) में विशारद (हैं)।
हे राजन्, यह मेरा धन है, उसके साथ मैं तुमसे खेलता हूं।

वैशम्पायन बोले—

७९. यों सुभकार पांसेका अवलम्ब ले प्रयत्नशील,
शकुनिने "जीत लिया" यही युधिष्ठिरसे कहा।

युधिष्ठिर बोले—

८०. मधुर अनुगामी और राजा प्राकार फाड़नेवाले,
मेरे ये सौ-हजार नाग (हैं)।

८१. प्राज्ञा मेधाविनो दान्ता, युवानो मृष्ट-कुण्डलाः ।
एतद्, राजन्, मम धनं, तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥

वैशम्पायन उवाच—

८२. एतच्छ्रुत्वा व्यवसितो, निकृतिं समुपाश्रितः ।
"जितं" इत्येव शकुनिर् युधिष्ठिरं अभाषत ॥

युधिष्ठिर उवाच—

८३. सहस्र-संख्या नागा मे मत्तास् तिष्ठन्ति सौबल ।
हेम-कक्षाः कृतापीडाः, पद्मिनो हेम-मालिनः ॥

८४. सुदान्ता राज-वहनाः, सर्व-शब्द-क्षमा युधि ।
ईषदन्ता महाकायाः सर्वे चाष्टकरेणवः ॥

८५. सर्वे च पुर-भेत्तारो नव-मेघ-निभा गजाः ।
एतद् राजन्, मम धनं, तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥

वैशम्पायन उवाच—

८६. इत्येवं वादिनं पार्थं, प्रहसन्निव सौबलः ।
"जितं" इत्येव शकुनिर् युधिष्ठिरमभाषत ॥

युधिष्ठिर उवाच—

८७. रथास् तावन्त एवं मे, हेम-दण्डाः पताकिनः ।
हयैर् विनीतैः सम्पन्ना रथिभिश् चित्र-योधिभिः

८८. एकैको यत्र लभते सहस्रपरमां भृतिम् ।
युध्यतोऽयुध्यतो वापि वेतनं मास-कालिकम् ॥
एतद् राजन्, मम धनं, तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥

वैशम्पायन उवाच—

८९. इत्येवं उक्ते वचने, कृत-वैरो दुरात्मवान् ।
"जितं" इत्येव शकुनिर् युधिष्ठिरमभाषत ॥

८१. (जो) प्राज्ञ, मेधावी, आज्ञाकारी, तरुण, चमकते कुंडलवाले हैं,
हे राजन्, यह मेरा धन है, उसके साथ मैं तुमसे खेलता हूं।

वैशम्पायन बोले—

८२. यह सुनकर धोखेका अवलम्ब ले प्रयत्नशील,
शकुनिने "जीत लिया" यही युधिष्ठिरसे कहा।

युधिष्ठिर बोले—

८३. हे सुबल-पुत्र, मेरे हजार मस्त गज हैं, (जो कि) सुवर्णके कमरबन्द
शिरोभूषण-सहित सुवर्ण-मालाधारी पद्मलक्षणवाले,
८४. सुशिक्षित, राजाओंके वहन करने योग्य, युद्धमें सब तरहके शब्दों
को सहनेवाले, हरिण दांत महाकाय और सभी आठ हथिनियोंवाले,
८५. और सभी नगर तोड़नेवाले नवीन मेघ जैसे हैं।
हे राजन्, यह मेरा धन है, उसके साथ मैं तुमसे खेलता हूं।

वैशम्पायन बोले—

८६. ऐसा कहते हुए पृथा-पुत्रसे हंसते से
"जीत लिया" यही शकुनिने युधिष्ठिरसे कहा।

युधिष्ठिर बोले—

८७. उतने ही यह रथ हैं, जो कि सुवर्ण-दंड-पताकावाले,
प्रशिक्षित घोड़ोंसे जुते विचित्र युद्ध करनेवाले योद्धाओंसे युक्त,
८८. जिन (रथियों) मेंसे एक-एक सहस्र तक वेतन पाता है,
युद्ध करते या न युद्ध करते भी (उनका) मासिक वेतन।
हे राजन्, यह मेरा धन है, उसके साथ मैं तुमसे खेलता हूं।

वैशम्पायन बोले—

८९. ऐसा सुनकर [illegible] शकुनिने,
"जीत लिया", यही युधिष्ठिरसे कहा।

युधिष्ठिर उवाच—

९०. अश्वांस् तित्तिरि-कल्माषान्, गान्धर्वान् हेम-मालिनः ।
दद‍ौ चित्ररथस् तुष्टो यांस्तान् गाण्डीव-धन्वने ॥

९१. युद्धे जितः पराभूतः, प्रीति-पूर्वं अरिन्दमः ।
एतद् राजन्, मम धनं, तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥

वैशम्पायन उवाच—

९२. एतच्छ्रुत्वा, व्यवसितो, निकृतिं समुपाश्रितः ।
"जितं" इत्येव शकुनिर् युधिष्ठिरमभाषत ॥

युधिष्ठिर उवाच—

९३. रथानां शकटानां च श्रेष्ठानां चायुतानि मे ।
युक्तान्येव हि तिष्ठन्ति वहिर् उच्चावचैस् तथा ॥

९४. स्वं वर्णस्य वर्णस्य समुच्चीय सहस्रशः ।
यथा समुदिता वीराः, सर्वे वीर-पराक्रमाः ॥

९५. षष्ठिस् तानि सहस्राणि, सर्वे विपुल-वक्षसः ।
एतद् राजन्, मम धनं, तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥

वैशम्पायन उवाच—

९६. एतच्छ्रुत्वा व्यवसितो, निकृतिं समुपाश्रितः ।
"जितं" इत्येव शकुनिर् युधिष्ठिरमभाषत ॥

युधिष्ठिर उवाच—

९७. ताम्र-लोहैः परिवृता निधयो ये चतुःशताः ।
पंच-द्रौणिक एकैकः सुवर्णस्याहतस्य वै ।

९८. जातरूपस्य मुख्यस्य अनर्घेयस्य भारत ।
एतद् राजन्, मम धनं, तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥

युधिष्ठिर बोले—

९०. पुष्ट होकर तीतरकी तरह कबरे सुवर्ण-मालावाले
जो गंधर्वीय घोड़े चित्ररथने अर्जुनको दिये।

९१. युद्धमें पराजित और पराभूत होकर शत्रुमर्दनने, प्रीतिपूर्वक दिया,
हे राजन्, यह मेरा धन है, उसके साथ मैं तुमसे खेलता हूं।

वैशम्पायन बोले—

९२. यह सुनकर धोखेका अवलम्ब ले प्रयत्नशील शकुनिने,
"जीत लिया" यही युधिष्ठिरसे कहा।

युधिष्ठिर बोले—

९३. मेरे एक हजार श्रेष्ठ रथ और शकट,
नाना प्रकारसे जुते हुये ही बाहर अवस्थित हैं।

९४. इस प्रकार एक-एक वर्णके चुनकर हजारों,
इकट्ठा हुये सभी पराक्रमवाले, वीर

९५. वे साठ हजार, जो कि सभी विपुल छातीवाले हैं,
हे राजन्, यह मेरा धन है, उसके साथ मैं तुमसे खेलता हूं।

वैशम्पायन बोले—

९६. यह सुनकर धोखेका अवलम्ब लिये प्रयत्नशील शकुनिने,
"जीत लिया" यही युधिष्ठिरसे कहा।

युधिष्ठिर बोले—

९७. तांबेसे घिरी ढंकी जो चारसौ निधियां हैं,
जिनमें एक-एक [illegible] सुवर्णके पांच द्रोणिकायें हैं,

९८. [illegible] सुवर्णकी [illegible] भारत,
हे राजन्, यह मेरा धन है, उसके साथ मैं तुमसे खेलता हूं।

वैशम्पायन उवाच—

९९. एतच्छ्रुत्वा व्यवसितो, निकृतिं समुपाश्रितः ।
"जितं" इत्येव शकुनिर् युधिष्ठिरमभाषत ॥
—सभापर्व, १८

५. बलात्कारः—

वैशम्पायन उवाच—

१००. ततः समुत्थाय स राजपुत्रः,
श्रुत्वा भ्रातुः शासनं रक्त-दृष्टिः ।
प्रविश्य तद् वेश्म महारथानां,
इत्यब्रवीद् द्रौपदीं राज-पुत्रीम् ॥

१०१. "एह्येहि पांचालि, जितासि कृष्णे,
दुर्योधनं पश्य विमुक्त-लज्जा,
कुरून् भजस्वायत्-पद्म-नेत्रे,
धर्मेण लब्धासिसभां परैहि" ॥

१०२. ततः समुत्थाय सुदुर्मनाः सा,
विवर्णं आमृज्य मुखं करेण ।
आर्ता प्रदुद्राव यतः स्त्रियस्ताः,
वृद्धस्य राज्ञः कुरुपुंगवस्य ॥

१०३. ततो जवेनाभिससार रोषाद्,
दुःशानस्तां अभिगर्जमानः ।
दीर्घेषु नीलेष्वथ चोर्मिमत्सु,
जग्राह केशेषु नरेन्द्र-पत्नीम् ॥

१०४. ये राजसूयावभृथे जलेन, महाक्रतौ मन्त्र-पूतेन सिक्ताः ।
ते पाण्डवानां परिभूय वीर्यं, बलात् प्रमृष्टा धृतराष्ट्रजेन ॥

वैशम्पायन बोले—

९९. यह सुनकर धोखेका आलम्ब ले प्रयत्नशील शकुनिने,
"जीत लिया" यही युधिष्ठिरसे कहा।

—सभा-पर्व १८

५. द्रौपदीका लज्जाहरण—

वैशम्पायन बोले—

१००. तब उठकर लाल आंखोंवाले राजपुत्र दुःशासनने,
भाईकी आज्ञा सुनकर
महारथियोंके उस गृहमें प्रवेश करके
राजपुत्री द्रौपदीसे यह कहा—

१०१. "आ, आ पांचालि कृष्णा, तुझे जीत लिया गया है।
लज्जा छोड़कर दुर्योधनको देख।
पद्म जैसी बड़ी आंखोंवाली, तू कुरुओंकी सेवा कर,
धर्मसे तुझे प्राप्त किया गया है, सभामें चल।"

१०२. उठकर दुःखी हो वह अपने
मुरझाये मुखको हाथसे मलकर
आर्त हो वहां दौड़ी, जहां कि वृद्ध
राजा कुरु-पुंगवकी स्त्रियां थीं।

१०३. तब रोषयुक्त दुःशासनने, वेगसे
गरजते हुए, उसका अनुसरण किया।
और घुंघराले नीले लम्बे
केशोंसे नरेन्द्र-पत्नीको पकड़ लिया,

१०४. जो केश राजसूयके महायज्ञमें
अवभृथ-स्नानके पावन जलसे अभिषिक्त हुये थे,
उन्हें पांडवोंके पराक्रमको निरस्त कर,
धृतराष्ट्र-पुत्रने जबर्दस्ती पकड़ लिया।

१०५. स तां पराकृष्य सभा-समीपम्,
आनीय कृष्णां अति-दीर्घ-केशीम् ।
दुःशासनो नाथवतीं अ-नाथवत्,
चकर्ष वायुः कदलीमिवार्ताम् ॥

१०६. सा कृष्यमाणा नमितांग-यष्टिः,
शनैरुवाचाथ—"रजस्वलास्मि,
एकं च वासो मम मन्दबुद्धे,
नेतुं सभां नार्हसि मां अनार्य ॥"

१०७. ततोऽब्रवीत् तां प्रसभं निगृह्य,
केशेषु कृष्णेषु तदा स कृष्णाम्—
"रजस्वला वा भव याज्ञसेनि,
एकाम्बरा वाऽप्यथवा विवस्त्रा ॥

१०८. द्यूते जिता चासि कृतासि दासी,
दासीषु वासश्च यथोपयोगम् ।"
प्रकीर्णकेशी पतितार्ध-वस्त्रा,
दुःशासनेन व्यव-धूयमाना ॥

१०९. ह्रीमत्य-मर्षेण च दह्यमाना,
शनैरिदं वाक्यमुवाच कृष्णा—
"इमे सभायामुपनीतशास्त्राः,
क्रियावन्तः सर्व एवेन्द्रकल्पाः ॥

११०. गुरु-स्थाना गुरवश्चैव सर्वे,
तेषामग्रे नोत्सहे स्थातुमेवम् ।
नृशंस-कर्मंस्त्वमनार्य-वृत्त,
मा मा विवस्त्रां कुरु मा विकार्षीः ।

१०५. वह अनिन्दितांगी केशवाली द्रौपदीको
खींचकर सभाके समीप लाया,
नाथवालीको अनाथाकी तरह,
वायुसे केलेकी तरह आर्तको दुःशासनने घसीटा।

१०६. शरीर झुकाये घसीटी जाती उसने
धीरेसे कहा—"मैं रजस्वला हूं,
हे मन्दबुद्धि, मैं एकवस्त्रा हूं,
अनार्य, मुझे सभामें मत ले चल।"

१०७. काले केशोंके साथ जबर्दस्ती उसे
पकड़कर तब उसने द्रौपदीसे कहा—
"हे यज्ञसेन-पुत्रि, चाहे रजस्वला,
एकवस्त्रा या बेवस्त्रवाली हो।

१०८. जूयेमें तू जीती, दासी बनाई गई है,
दासियोंका वस्त्र उपयोगके अनुसार होता है।"
बिखरे केशोंवाली आधे हटे वस्त्रवाली,
दुःशासनसे घसीटी जाती,

१०९. अमर्षसे जलती लज्जावती
कृष्णाने धीरेसे यह बात कही—
"सभामें शास्त्र जाननेवाले
कर्मनिष्ठ यह सभी इन्द्र-समान,

११०. और [illegible] [illegible] भी गुरुजन हैं,
उनके सामने इस प्रकार मैं खड़ी नहीं हो सकती।
तू नृशंस अनार्य आचरणवाला है,
मुझे नंगी मत कर, मुझे मत घसीट।

१११. न मर्षयेयुस् तव राजपुत्राः,
सेन्द्रापि देवा यदि ते सहायाः ॥
धर्मे स्थितो धर्म-सुतो महात्मा,
धर्मश्च सूक्ष्मो निपुणोपलक्ष्यः ।

११२. वाचापि भर्तुः परमाणुमात्रं,
इच्छामि दोषं न गुणान् विसृज्य ।
इदं त्व-कार्यं कुरु-वीर-मध्ये,
रजस्वलां यत् परिकर्षसे माम् ॥

११३. न चापि कश्चित् कुरुतेऽत्र कुत्साम्
ध्रुवं तवेदं मतम् अभ्युपेतः ।
धिगस्तु, नष्टः खलु भारतानां,
धर्मस्तथा क्षत्र-विदां च वृत्तम् ॥

११४. यत्र ह्यतीतां कुरु-धर्म-वेलां,
प्रेक्षन्ति सर्वे कुरवः सभायाम् ।
द्रोणस्य भीष्मस्य च नास्ति सत्त्वं,
क्षत्तुस्तथैवास्य महात्मनोऽपि ॥

११५. राज्ञस् तथाह्रीममधर्ममुग्रं,
न लक्षयन्ते कुरु-वृद्ध-मुख्याः ।"
तथा ब्रुवन्ती करुणं सुमध्यमा,
भर्तॄन् कटाक्षैः कुपितान् अपश्यत् ॥

११६. सा पाण्डवान् कोप-परीत-देहान्,
हृतेन राज्येन तथा धनेन ।
रत्नैश्च मुख्यैर्न तथा बभूव,
यथा त्रपा-कोप-समीरितेन ॥

११२. यदि इन्द्र-सहित देवता भी तेरे सहायक हों,
तो भी राजपुत्र तुझे क्षमा नहीं करेंगे।
महात्मा धर्म-पुत्र धर्ममें स्थित हैं,
धर्म सूक्ष्म है, जिसे चतुर ही जान सकते हैं।

११३. वाणीसे भी, गुणोंको छोड़कर भी,
पतिका अणु मात्र दोष मैं नहीं देखती,
यह तो अयुक्त कार्य है, जो कि कुरु-वीरोंके मध्यमें
मुझ रजस्वलाको तू घसीट रहा है।

११३. यहाँ (सभामें) कोई निंदा नहीं कर रहा है,
निश्चय वह तेरी रायको मानते हैं।
धिक्कार है, भारतोंका धर्म और क्षत्रियों के धर्मके
जाननेवालोंका आचार भी नष्ट हो गया,

११४. जहाँ कुरु-धर्मकी मर्यादा उल्लंघित होते
सभामें सारे कुरु देख रहे हैं।
द्रोण और भीष्ममें सत् नहीं है,
उसी तरह महात्मा राजाके इस क्षत्ता (विदुर) में भी।

११५. उसी तरह इस उग्र अधर्मको
कुरुओंके वृद्ध [illegible] नहीं करते।"
इस [illegible] करुणा [illegible] द्रौपदीने,
अपने [illegible] देखा।

११६. पांडवोंको [illegible]
([illegible]), [illegible] और [illegible]
और [illegible] नहीं हुआ था,
दुःख, जैसा कि [illegible] और [illegible]

११७. कृष्णा कटाक्षेण बभूव दुःखम्,
दुःशासनश्चापि समीक्ष्य कृष्णाम् ।
अवेक्षमाणां कृपणान् पतींस्तान्,
आधूय वेगेन विसंज्ञकल्पाम् ॥

११८. उवाच तद् वाक्यमतीव हृष्टः,
सम्पूजयामास हसन् स-शब्दम् ।
गान्धार-राजः सुबलस्य पुत्रस्,
तथैव दुःशासनमभ्यनन्दत् ।

११९. सभ्यास्तु ये तत्र बभूवुरन्ये,
ताभ्यां ऋते धार्तराष्ट्रेण चैव ।
तेषां अभूद् दुःखमतीव, कृष्णां
दृष्ट्वा सभायां परिकृष्यमाणाम् ॥

भीष्म उवाच—

१२०. "न धर्म-सौक्ष्म्यात् सुभगे विवेक्तुं,
शक्नोमि ते प्रश्नमिमं यथावत् ।
अ-स्वाम्य-शक्तः पणितुं पर-स्वं,
स्त्रियाश् च भर्तुर् वशतां समीक्ष्य ।

१२१. त्यजेत सर्वां पृथिवीं समृद्धां,
युधिष्ठिरो धर्ममथो न जह्यात् ।
उक्तं जितोऽस्मीति च पाण्डवेन,
तस्माद् न शक्नोमि विवेक्तुमेतत् ॥

११७. कृष्णाके कटाक्षसे उन्हें हुआ।
दुःशासन भी, दीन पतियोंकी ओर देखती कृष्णाको
वेगसे झकझोर कर बेहोश हुई सी

११८. अत्यंत हर्षित होकर यह वाक्य बोला (भा),
मानो शब्दके साथ हंसते हुए (उसकी) पूजा की।
सुबलके पुत्र गंधारराज शकुनिने भी,
वैसे ही दुःशासनका अभिनन्दन किया।

११९. इन दोनोंको और दुर्योधनको छोड़कर
जो वहां दूसरे सभ्य थे, उन्हें
सभामें कृष्णाको घसीटी जाती
देखकर अत्यंत दुःख हुआ।

भीष्म बोले—

१२०. "हे सुभगे, धर्मकी सूक्ष्मताके कारण
तेरे इस प्रश्नका ठीकसे मैं निर्णय नहीं कर सकता,
दास दूसरे धनको दाव पर नहीं रख सकता,
और स्त्री पतिके वश होती है, इसे भी देखता हूँ।

१२१. युधिष्ठिर, समुद्र सारी पृथिवीको भी
छोड़ देंगे, पर धर्मको नहीं छोड़ेंगे,
युधिष्ठिरने कह दिया है कि मैं "जीत लिया गया"
इसलिये इसका मैं विवेचन नहीं कर सकता।

१२२. द्यूतेऽद्वितीयः शकुनिर् नरेषु,
कुन्ती-सुतस्तेन निसृष्ट-कामः।
न मन्यते तां निकृतिं युधिष्ठिरः,
तस्माद् न ते प्रश्नमिमं ब्रवीमि"॥

द्रौपदी उवाच—

१२३. "आहूय राजा कुशलैर् अनार्यैः,
दुष्टात्मभिर् नैकृतिकैः सभायाम्।
द्यूत-प्रियैः नाति-कृत-प्रयत्नः,
कस्माद् अयं नाम निसृष्ट-कामः॥

१२४. अ-शुद्ध-भावै निकृति-प्रवृत्तैर्,
अ-बुध्यमानाः कुरु-पाण्डवाग्र्यः,
संभूय सर्वैश्च जितोऽपि यस्मात्
पश्चादयं कैतवमभ्युपेतः॥

१२५. तिष्ठन्ति चेमे कुरवः सभायां,
ईशाः सुतानां च तथा स्नुषाणाम्।
समीक्ष्य सर्वं मम चापि वाक्यं,
विब्रूत मे प्रश्नमिमं यथावत्॥

१२६. न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः,
न ते वृद्धाः ये न वदन्ति धर्मम्।
नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति,
न तत् सत्यं यच्छलेनानुविद्धम्॥"

१२२. जूयेके मामलेमें आदमियोंमें शकुनि अद्वितीय है,
उसके साथ खेलनेकी इच्छा कुन्ती-पुत्र ने प्रकट की।
युधिष्ठिर उसे धोखा नहीं मानते,
इसलिये मेरे इस प्रश्नके बारेमें मैं नहीं कह (सक)ता।

द्रौपदी बोली—

१२३. राजा अनार्यों, चालाकों,
कुटों, धोखेबाजों, जूआ-प्रेमियों द्वारा
सभामें बुलाकर नातिप्रयत्न कर (हार) गये
राजा, कैसे सम्मति देनेके इच्छुक हैं?

१२४. अशुद्ध-भाववाले वंचनामें प्रवृत्त सबने
बिना जाने कुरु-पांडवोंमें श्रेष्ठ (युधिष्ठिर) को
एक होकर जीता, इसलिये
उन्होंने यह धोखा खाया?

१२५. सभामें पुत्रों और बहुओंके स्वामी
ये कुरु लोग बैठे हैं,
(आप) सभी मेरे वचनपर विचार करके
मेरे इस प्रश्नका ठीक से जवाब दें।

१२६. वह सभा नहीं, जहां वृद्ध नहीं हैं,
वह वृद्ध नहीं, जो धर्मकी बात नहीं करते,
वह धर्म नहीं, जिसमें सत्य नहीं,
वह सत्य नहीं, जो छलमिश्रित है।

वैशम्पायन उवाच—

१२७. तथा ब्रुवन्तीं करुणं रुदन्तीं,
अवेक्षमाणां कृपणान् पतींस्तान् ।
दुःशासनः परुषाण्यप्रियाणि,
वाक्यान्युवाचामधुराणि चैव ॥

१२८. तां कृष्यमाणां च रजस्वलां च
स्रस्तोत्तरीयाम तदर्हमाणाम्,
वृकोदरः प्रेक्ष्य युधिष्ठिरं च,
चकार कोपं परमार्त-रूपः ।

भीम उवाच—

१२९. "भवन्ति गेहे बन्धक्यः कितवानां युधिष्ठिर ।
न ताभिरुत दीव्यन्ति दया चैवास्ति तास्वपि ॥

१३०. वाहनानि धनं चैव कवचान्यायुधानि च ।
राज्यमात्मा वयं चैव कैतवेन हृतं परैः ।

१३१. न च मे तत्र कोपोऽभूत् सर्वस्येशो हि नो भवान् ।
इमं व्यतिक्रमं मन्ये द्रौपदी यत्र पण्यते ॥

१३२. एषा ह्यनर्हती बाला पाण्डवान् प्राप्य कौरवैः ।
त्वत्-कृते क्लिश्यते क्षुद्रैर्, नृशंसैर-कृतात्मभि ॥

१३३. अस्याः कृते मन्युरयं त्वयि राजन् निपात्यते ।
बाहू तेऽहं प्रधक्ष्यामि सहदेवाग्निमानय" ॥

अर्जुन उवाच—

१३४. "न पुरा, भीम-सेन, त्वमीदृशीः वदिता गिरः ।
परैस्ते नाशितं नूनं नृ-शंसैः धर्म-गौरवम् ॥

१३५. न सकामाः परे कार्या धर्ममेवाचरोत्तमम् ।
भ्रातरं धार्मिकं ज्येष्ठं कोऽतिवर्तितुमर्हति ॥

वैशम्पायन बोले—

१२७. इस तरह कहती सकरुण रोती,
दीन पतियोंकी ओर देखती द्रौपदीको
दुःशासन कठोर अप्रिय
अमधुर वाक्यों में बोला।

१२८. और उस रजस्वलाको घसीटी जाती,
खिसकी चादरवाली उसके अयोग्य इस (बर्ताव) को
और युधिष्ठिरको देखकर
परम व्याकुल हो भीमने कोप किया।

भीम बोले—

१२९. हे युधिष्ठिर, जुआरियोंके घरमें बंधकियां होती हैं,
उनपर भी जूआ नहीं खेलते, उनपर भी दया होती है।

१३०. वाहन, धन, कवच और आयुध
राज्य और स्वयं हमें भी दूसरोंने धोखेसे हर लिया;

१३१. पर उसके विषयमें मुझे कोप नहीं हुआ, आप हम सबके स्वामी हैं।
पर, इसे मैं अनुचित मानता हूं, कि जो द्रौपदी दावपर रक्खी गई।

१३२. इस (बर्ताव) को अपात्र वह बाला पांडवोंको पाकर तुम्हारे कारण,
क्षुद्र नृशंस अकृतात्म कौरवों द्वारा क्लेशित की जा रही है।

१३३. राजन्, इसके लिए यह मेरा क्रोध तेरे ऊपर गिरेगा,
मैं तेरी बाहुओंको जला दूंगा। सहदेव, आग ले आओ।

अर्जुन बोले—

१३४. भीमसेन, तूने ऐसी बात पहले कभी नहीं कही,
जान पड़ता है, नृशंस शत्रुओंने धर्मके प्रति तेरे गौरवको नष्ट
कर दिया।

१३५. शत्रुओंको सफल मत बना, उत्तम धर्म ही का आचरण कर,
धार्मिक बड़े भाईकी आज्ञा कौन उल्लंघन कर सकता है?

१३६. आहूतो हि परै राजा क्षात्रं व्रतमनुस्मरन् ।
दीव्यते पर-कामेण तद् नः कीर्ति-करं महत्" ।

भीम उवाच—

१३७. "एवमस्मिन् कृतं विद्यां यदि नाहं धनंजय ।
दीप्तेऽग्नौ सहितौ बाहू निर्दहेयं बलाद् इव" ॥

—सभापर्व

६. मध्यस्थ—

१३८. अथ दुर्योधनः कृष्णं शकुनिश्चापि सौबलः ।
सन्ध्यां तिष्ठन्तमभ्येत्य दाशार्हम-पराजितम् ॥

१३९. आचक्षेतां तु कृष्णस्य धृतराष्ट्रं सभागतम् ।
कुरूंश्च भीष्म-प्रमुखान् राज्ञः सर्वांश्च पार्थिवान् ॥

१४०. ततः सभां समासाद्य केशवस्यानुयायिनः ।
स-शंखैः वेणु-निर्घोषैः दिशः सर्वा व्यनादयन् ॥

१४१. ततः सा समितिः सर्वा राज्ञाममित-तेजसाम् ।
सम्प्राकम्पत हर्षेण कृष्णागमनकांक्षया ॥

१४२. अवतीर्य रथाच् छौरिः कैलास-शिखरोपमात् ।
महेन्द्र-भवन-प्रख्यां प्रविवेश सभां ततः ॥

१४३. उत्तिष्ठति महा-राजे धृतराष्ट्रे जनेश्वरे ।
तानि राज-सहस्राणि समुत्तस्थुः समन्ततः ॥

१४४. तत्र केशवमानर्चुः सम्यगभ्यागतं सभाम् ।
राजानः पार्थिवाः सर्वे कुरवश्च जनार्दनम् ॥

१४५. ततस्तूष्णीं सर्वमासीद् गोविन्द-गत-मानसम् ।
न तत्र कश्चित् किंचिद् वा व्याजहार पुमान् क्वचित् ।

१३६. क्षत्रियोंके व्रतको ख्याल करके दूसरों द्वारा बुलाये गये राजाने,
पराये की कामनासे जुआ खेला, वह हमारे लिये महाकीर्तिकारी है।

भीमसेन बोले—

१३७. हे अर्जुन, इस विषयमें ऐसे विधेयको यदि मैं न जानता,
तो प्रज्ज्वलित अग्निमें जबर्दस्ती (इनकी) दोनों बाहों को जला डालता।

—सभा-पर्व अध्याय २३

६. समझौतेकी बातचीत—

१३८. तब दुर्योधन और सुबल-पुत्र शकुनिने भी
अजेय पूजनीय कृष्णके संध्या करते समय पास आकर,

१३९. कृष्णसे सभामें मौजूद धृतराष्ट्रके बारेमें
भीष्म आदि कुरुओं, राजाओं और सभी पार्थिवोंके बारेमें कहा।

१४०. तब केशवके अनुयायियोंने सभामें पहुंचकर,
शंख-सहित वंशीके शब्दोंसे सारी दिशाओंको व्याप्त कर दिया।

१४१. तब अनंत तेजवाले राजाओंकी वह सारी समिति,
कृष्णके आगमनकी इच्छासे हर्षित हो कंपित हुई।

१४२. तब कैलाशके शिखर जैसे ऊंचे रथसे कृष्ण
उतरकर, इन्द्र-भवनके समान सभामें प्रविष्ट हुये।

१४३. जनोंके ईश्वर महाराज धृतराष्ट्रके उठनेपर,
चारों ओर हजारों राजा खड़े हो गये।

१४४. सभामें सारे नेताओंकी उन्होंने अच्छी तरह पूजा की।
तब राजा पार्थिव और सारे कुरु जनार्दन

१४५. गोविन्दकी ओर मन लगाये सब चुप रहे,
कोई दूसरा कहीं कुछ भी नहीं बोला।

१४६. तेष्वासीनेषु सर्वेषु तूष्णींभूतेषु राजसु ।
धृतराष्ट्रमभिप्रेक्ष्य समभाषत माधवः—
१४७. "कुरूणां पाण्डवानां च शमः स्यादिति भारत ।
अ-प्रणाशेन वीराणां, एतद् याचितुमागतः ॥
१४८. इदं ह्यद्य कुलं श्रेष्ठं सर्व-राजसु पार्थिव ।
श्रुत-वृत्तोपसम्पन्नं सर्वैः समुदित गुणैः ॥
१४९. कृपानुकम्पा-कारुण्यमानृशंस्यं च भारत ।
तथार्जवं क्षमा सत्यं कुरुष्वेतद् विशिष्यते ॥
१५०. तस्मिन्नेवंविधे राजन् कुले महति तिष्ठति ।
त्वन्-निमित्तं विशेषेण नेह युक्तम-साम्प्रतम् ॥
१५१. त्वं हि धारयिता श्रेष्ठः कुरूणां कुरु-सत्तम ॥
मिथ्या प्रचरतां तात, बाह्येष्वाभ्यन्तरेषु च ।
१५२. ते पुत्राः तव कौरव्य, दुर्योधनपुरोगमाः ।
धर्मार्थौ पृष्ठतः कृत्वा प्रचरन्ति नृशंसवत् ॥
१५३. अ-शिष्टा गत-मर्यादा, लोभेन हृत-चेतसः ।
स्वेषु आपद् महा-घोरा, कुरुष्वेव समुत्थिता ॥
१५४. उपेक्ष्यमाणा कौरव्य, पृथिवीं घातयिष्यति ।
शक्या चेयं शमयितुं त्वं चेद् इच्छसि भारत ॥
१५५. पुत्रान् स्थापय कौरव्य स्थापयिष्याम्यहं परान् ।
आज्ञा तव हि, राजेन्द्र कार्या पुत्रैः सहान्वयैः ॥
१५६. हितं बलवदप्येषां तिष्ठतां तव शासने ।
तव चैव हितं, राजन् पाण्डवानां अथो हितम् ॥
१५७. शमे प्रयतमानस्य तव शासन-कांक्षिणः ।
सहाय-भूता भरतास् तवैव स्युर्जनेश्वर ॥

१४६. उन सभी राजाओंके चुप होकर बैठनेपर,
धृतराष्ट्रकी ओर देखकर माधवने कहा—

१४७. "हे भारत, कुरुओं और पांडवोंमें
वीरोंके नाशके बिना शान्ति हो, यह मांगनेके लिये मैं आया हूं।

१४८. हे पार्थिव, यह (कुरु) कुल आज सभी राजाओंमें श्रेष्ठ है,
विद्या और आचारसे सम्पन्न सभी गुणोंसे युक्त है।

१४९. हे भारत, कृपा, अनुकम्पा, करुणा और उदारता,
तथा ऋजुता, क्षमा, सत्य, यह (गुण) कुरुओंमें विशेष कर हैं।

१५०. हे राजन्, इस प्रकारके उस महाकुलके रहनेपर,
विशेषकर तुम्हारे कारण यहां अनुचित (होना) ठीक नहीं है।

१५१. हे कुरुओं में अत्यन्त सत्पुरुष, तुम कुरुओंके श्रेष्ठ धारक हो,
हे तात, हे कौरव्य, बाह्य और आभ्यन्तर मिथ्याकारी

१५२. तुम्हारे दुर्योधन आदि पुत्र, धर्म की ओरसे
पीठ फेरकर कमीनेकी तरह आचरण करते,

१५३. अशिष्ट, मर्यादा-रहित, लोभसे बुद्धि-भ्रष्ट हैं, (जिससे)
अपने कुरुओं पर महाघोर विपद् उठ खड़ी हुई है।

१५४. जिसकी उपेक्षा करनेपर हे कौरव्य, वह पृथिवीको नष्ट कर देगी।
हे भारत, यदि तुम चाहो, तो शान्ति (स्थापित) की जा सकती है।

१५५. हे कौरव्य, अपने पुत्रोंको तुम रोको, मैं दूसरोंको रोकूंगा।
हे नरेन्द्र, तुम्हारे पुत्र अपने लोगोंके साथ आज्ञाके अनुसार चलें।

१५६. तुम्हारी आज्ञामें रहनेपर उनकी भारी भलाई है,
हे राजन् (इसमें) तुम्हारा और पांडवोंका भी हित है।

१५७. तुम्हारी आज्ञा (धर्म) के इच्छुक शान्तिके लिये प्रयत्न-शील,
सहायक और भरत लोग तुम्हारे ही होंगे, हे जनेश्वर।

१५८. धर्मार्थयोः तिष्ठ राजन् पाण्डवैः अभिरक्षितः ।
न हि त्वां पाण्डवैः जेतुं रक्ष्यमाणं महात्मभिः ॥
१५९. इन्द्रोऽपि देवैः सहितः प्रसहेत कुतो नृपाः ।
लोकेस्येश्वरतां भूयः शत्रुभिः चाप्यधृष्यताम् ॥
१६०. प्राप्स्यसि त्वममित्रघ्न सहितः कुरु-पाण्डवैः ।
तस्य ते पृथिवी-पालास् त्वत्-समाः पृथिवी-पते ॥
१६१. श्रेयांसश्चैव राजानः संधास्यंते परन्तप ।
स त्वं पुत्रैश्च पौत्रैश्च पितृभिःभ्रातृभिस्तथा ॥
१६२. सुहृद्भिः सर्वतो गुप्तः सुखं शक्ष्यसि जीवितुम् ।
एतैर्हि सहितः सर्वैः पाण्डवैः स्वैश्च भारत ।
१६३. अन्यान् विजेष्यसे शत्रून् एष स्वार्थः तवाखिलः ।
तैरेवोपार्जितां भूमिं भोक्ष्यसे च परन्तप ॥
१६४. यदि सम्पत्स्यसे पुत्रैः सहामात्यैः नराधिप ।
संयुगे वै महाराज दृश्यसे सु-महान् क्षयः ।
१६५. क्षये चोभयतो राजन् कं धर्ममनुपश्यसि ।
पाण्डवैः निहतैः सँख्ये पुत्रैर्वापि महाबलैः ॥
१६६. यद् विन्देथाः सुखं राजंस्तद् ब्रूहि, भरतर्षभ ।
शूराश्चापि कृतास्त्राश्च सर्वे युद्धाभिकांक्षिणः ॥
१६७. पाण्डवास् तावकाश् चैव तान् रक्ष महतो भयात् ।
न पश्येम कुरून् सर्वान् पाण्डवांश् चैव संयुगे ॥
१६८. क्षीणान् उभयतः शूरान् रथिनो रथिभिः हतान् ।
समवेताः पृथिव्यां हि राजानो राज-सत्तम ॥
१६९. अमर्ष-वशमापन्ना नाशयेयुरिमाः प्रजाः ।
त्राहि राजन्निमं लोकं न नश्येयुः इमाः प्रजाः ॥

१५८. हे राजन्, पांडवोंसे रक्षित धर्म और अर्थमें तुम स्थित रहो,
महात्मा पांडवों द्वारा रक्षित हुए तुम्हें कोई नहीं जीत सकता।

१५९. देवताओं सहित इन्द्र भी (तुम्हें) दबा नहीं सकता, राजा (की)
तो (बात ही) क्या, शत्रुओं से अजेयत्व को,
लोक के स्वामित्व को तुम और भी अधिक पाओगे।

१६०. हे शत्रुहन्ता, कुरु-पांडवोंके साथ (और)
हे पृथिवीपति, तुम्हारे साथ वे भूपाल,

१६१. हे परंतप, वे बड़े राजा भी तुमसे सन्धि करेंगे,
सो तुम पुत्रों और पौत्रों, पिताओं तथा भाइयों,

१६२. और मित्रों द्वारा चारों ओरसे रक्षित सुखसे रह सकोगे।
हे भारत, इन सबके तथा अपने पांडवोंके साथ (मिल कर),

१६३. तुम दूसरे शत्रुओंको जीतोगे, यह सारा तुम्हारा स्वार्थ है।
हे परंतप, उनके द्वारा उपार्जित भूमिका तुम भोग करोगे।

१६४. हे नराधिप, यदि अमात्यों सहित पुत्रोंके साथ युद्धमें,
शामिल होगे, तो महाराज, (इसमें) अति महानाश दीखता है।

१६५. हे राजन्, युद्धमें महाबली पुत्रों या निहत पांडवों,
दोनों ओरसे नाश होनेमें तुम कौन धर्म देखते हो?

१६६. हे भरतोंमें श्रेष्ठ राजन्, जो सुख पाओगे, उसे कहो।
शूर और हथियार में चतुर और पांडव और तुम्हारे लोग

१६७. युद्ध-इच्छुक हैं, उन्हें महाभयसे बचाओ।
युद्धमें दोनों ओरसे आये कुरुओं और पांडवोंका,

१६८. नष्ट शूरों, रथियों द्वारा रथियोंका मरना हम न देखें।
हे राजेन्द्र, पृथिवीके राजा एकत्रित हुये,

१६९. अमर्षके वशमें पड़ इस प्रजाको नाश कर दें।
हे राजन्, इस लोककी रक्षा करो, जिससे यह प्रजायें नष्ट न हों।

१७०. त्वयि हि प्रकृतिमापन्ने शेषः स्यात् कुरु-नन्दन ।
शुक्ला वदान्या ह्रीमन्त आर्याः पुण्याभिजातयः ॥

१७१. अन्योन्य-सचिवा राजन् तान् पाहि महतो भयात् ।
शिवेनेमे भूमि-पालाः समागम्य परस्परम् ॥

१७२. सह भुक्त्वा च पीत्वा च प्रतियान्तु यथा-गृहम् ।
सु-वाससः स्रग्विणश् च सत्कृताः, भरतर्षभ ॥

१७३. अ-मर्षं च निराकृत्य वैराणि च परन्तप ।
हार्दं यत् पाण्डवेष्वासीत् प्राप्तेऽस्मिन् आयुष क्षये ॥

१७४. तदेव ते भवत्वद्य सन्धत्स्व भरतर्षभ ।
बाला विहीना पित्रा ते त्वयैव परिवर्धिताः ।

१७५. तान् पालय यथा-न्यायं पुत्रांश् च मनुजेश्वर ।
भवतैव हि रक्ष्यास् ते व्यसनेषु विशेषतः ॥

१७६. मा ते धर्मस्तथैवार्थो नश्येत भरतर्षभ ।
आहुस् त्वां पाण्डवा राजन्नभिवाद्य प्रसाद्य च ।----

१७७. भवतः शासनाद् दुःखम् अनुभूतं सहानुगैः ।
द्वादशेमानि वर्षाणि वने निर्व्युषितानि नः ॥

१७८. त्रयोदशं तथाज्ञातैः स-जने परि-वत्सरम् ।
स्थाता न समये तस्मिन् पितेति कृत-निश्चयाः ॥

१७९. नाहास्म समयं तात तच्च नो ब्राह्मणा विदुः ।
तस्मिन् नः समये तिष्ठ स्थितानां भरतर्षभ ॥

१८०. नित्यं संक्लेशिता राजन् स्व-राज्यांशं लभेमहि ॥
पित्रा स्थापयितव्या हि वयमुत्पथमास्थिताः ॥

१७०. तुम यदि ठीक रहो, तो हे कुरु-पुत्र, शेष भी (ठीक) हो जायेगा।
स्वच्छ, उदार, लज्जालु, पवित्र कुलवाले आर्य लोग,

१७१. एक दूसरेके सचिव हैं, हे राजन् उन्हें महान् भय से बचाओ।
(एकत्रित) यह भूपाल शान्तिसे एक दूसरेसे मिलकर,

१७२. साथ खान-पान करके सुन्दर वस्त्र माला पहने सत्कारपूर्वक
अपने-अपने घरोंको जायें, हे भरत-श्रेष्ठ,

१७३. अमर्ष और वैरको छोड़ कर हे परंतपी,
प्राणोंका क्षयकारी इस युद्धके होनेपर। जो पांडवोंके हृदयकी बात है,

१७४. वही आज तुम्हारी भी हो, हे भरत-श्रेष्ठ, सन्धि कर लो।
वे (पांडव) पिताविहीन बालक थे, तुम्हींने उन्हें पाला-पोसा,

१७५. हे मनुजेश्वर, न्यायपूर्वक उनका और पुत्रोंका पालन करो।
तुम्हें ही, खास कर आफत पड़नेपर उनकी रक्षा करनी है।

१७६. हे भरतश्रेष्ठ, तुम्हारा धर्म और अर्थ नष्ट न हो,
हे राजन्, अभिवादन करके और बिनती करके पांडवोंने तुमसे कहा है—

१७७. "अपने अनुयायियोंके साथ हमने आपकी आज्ञासे दुःख भोगा,
ये बारह वर्ष हमारे वनमें बीते।

१७८. तेरहवाँ वर्ष जनोंमें अज्ञात रह,
'हम आपसे [illegible] नहीं' यह निश्चय किया।

१७९. हे तात, हमने नहीं छोड़ी थी, और हमें ब्राह्मण भी जाने,
हमारे उस आचार (को) हे भरतश्रेष्ठ, कायम करो।

१८०. हे राजन्, निश्चय क्लेश पाये हमें अपने राज्यका अंश मिले।
इस प्रकार स्थित हमें (आप) पिता ठीक करें।

१८१. संस्थापय पथिष्वस्मांस् तिष्ठ धर्मे स्व-वर्त्मनि।
आहुश् चेमां परिषदं पुत्रास् ते भरतर्षभ---

१८२. धर्म-ज्ञेषु सभा-सत्सु नेह युक्तम-साम्प्रतम्।
यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च ॥

१८३. हन्यते प्रेक्षमाणानां, हतास् तत्र सभा-सदः।
ये धर्ममनुपश्यन्तस् तूष्णीं ध्यायन्त आसते ॥

१८४. ते सत्यमाहुर् धर्म्यं च न्यायं च भरतर्षभ।
शक्यं किमन्यद् वक्तुं ते दानाद् अन्यज् जनेश्वर ॥

१८५. ब्रुवन्तु वा मही-पालाः सभायां ये समासते।
धर्मार्थौ सम्प्रधार्यैव यदि सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥

१८६. प्रमुंचेमान् मृत्यु-पाशात् क्षत्रियान् पुरुषर्षभ।
पित्र्यं तेभ्यः प्रदायांशं पाण्डवेभ्यो यथोचितम् ।

१८७. ततः स-पुत्रः सिद्धार्थो भुंक्ष्व भोगान् परन्तप।
अ-जात-शत्रुं जानीषे स्थितं धर्मे सतां सदा ॥

१८८. स पुत्रे त्वयि वृत्तिं च वर्तते या नराधिप।
दाहितश्च निरस्तश्च त्वाम् एवोपाश्रितः पुनः।

१८९. इन्द्रप्रस्थं त्वयैवासौ स-पुत्रेण विवासितः।
स तत्र निवसन् सर्वान् वशमानीय पार्थिवान् ॥

१९०. त्वन्-मुखादकरोद् राजन् न च त्वामत्यवर्तत।
तस्यैवं वर्तमानस्य सौबलेन जिहीर्षता ॥

१९१. राष्ट्राणि धन-धान्यं च प्रयुक्तः परमोपधिः।
स तामवस्थां संप्राप्य कृष्णां प्रेक्ष्य सभां गताम् ॥

१९२. क्षत्र-धर्मादमेयात्मा नाकम्पत युधिष्ठिरः ॥
अहं तु तव तेषां च श्रेय इच्छामि भारत ॥

१८१. इन्हें रास्तेपर स्थापित कर अपने धर्मपर तुम रहो।
और हे भरतश्रेष्ठ, तुम्हारे पुत्रोंने इस परिषद्में कहा है,

१८२. "धर्मज्ञ सभासदोंमें अनुचित (बात) ठीक नहीं है।
जहां अधर्मसे धर्म और जहां झूठसे सत्य

१८३. देखनेवालोंके सामने मारा जाता है, वहां (वह) सभासद् मारे गये, जो धर्मको देखते चुपचाप सोचते हैं।

१८४. हे भरतश्रेष्ठ, वे सत्य, धर्मयुक्त और न्याययुक्त बातोंको कहते हैं।
हे जनेश्वर, दान छोड़ तुम्हारे सामने दूसरा क्या कहा जा सकता है?

१८५. सभामें बैठे जो भूपाल हैं, वे धर्म और अर्थको
समझकर बतायें, कि मैं सच कहता हूं।

१८६. हे पुरुषश्रेष्ठ, इन क्षत्रियोंको
पांडवोंको यथोचित पैतृक अंश देकर मौतके फंदेसे छुड़ाओ।

१८७. हे परंतप, फिर पुत्र-सहित सफल मनोरथ हो भोगोंको भोगो।
सत्पुरुषोंके धर्ममें सदा स्थित अजातशत्रु (युधिष्ठिर) को तुम जानते हो।

१८८. हे नराधिप, पुत्रसहित तुम्हारे ऊपर वह जो भाव रखते हैं, उसे भी (जानते हो)। जलाये गये, निर्वासित हुए वह फिर तुम्हारे ही आश्रयमें (आये) हैं।

१८९. तुमने ही पुत्रसहित उन्हें इन्द्रप्रस्थमें बसाया,
वहां बसते सारे राजाओंको अपने वशमें करके उन्होंने,

१९०. हे राजन्, तुम्हारी आज्ञा बजाई, तुम्हारी बातका उल्लंघन नहीं किया।
उनके इस तरहसे रहते शकुनि-पुत्रने हरण करनेकी इच्छासे,

१९१. राज्य और धनधान्यको जुआमें परम छल किया।
सभामें आई उस अवस्थामें कृष्णाको देखकर (भी),

१९२. अमित हिम्मतवाले युधिष्ठिर क्षत्रियोंके धर्मसे चलायमान नहीं हुये।
हे भरत-सन्तान, मैं तुम्हारी और उनकी भलाई चाहता हूं।

१९३. लाभेऽतिप्रसृतान् पुत्रान् निगृह्णीष्व विशां पते।
स्थिताः शुश्रूषितुं पार्थाः स्थिता योद्धुमरिन्दमाः॥
यत् ते पथ्यतमं राजंस् तस्मिंस् तिष्ठ परन्तप॥
—उद्योगपर्व १२

७. विदुला-संवादः—

१९४. अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
विदुलायाश् च संवादं पुत्रस्य च परन्तप॥
१९५. क्षत्र-धर्म-रता दान्ता विदुला दीर्घ-दर्शिनी।
विश्रुता राज-संसत्सु, श्रुत-वाक्या बहु-श्रुता॥
१९६. विदुला नाम राजन्या जगर्हे पुत्रमौरसम्॥
निर्जितं सिन्धुराजेन शयानं दीन-चेतसम्॥

विदुला उवाच—

१९७. "अ-नन्दन मम जात द्विषतां हर्ष-वर्धन,
न मया त्वं न पित्रा च जातः क्वाभ्यागतोह्यसि॥
१९८. उत्तिष्ठ हे का-पुरुष, मा शेष्वैवं पराजितः।
अ-मित्रान् नन्दयन् सर्वान् निर्मानो बन्धु-शोकदः॥
१९९. अप्यहेरा-रुजन् दंष्ट्रां मा श्वेव निधनं व्रज।
अपि वा संशयं प्राप्य जीवितेऽपि पराक्रमेः॥
२००. अप्यरेः श्येनवच् छिद्रं पश्येस् त्वं वि-परिक्रमन्।
विनदन् वाथ वा तूष्णीं व्योम्नि वा परिशङ्कितः॥
२०१. त्वमेवं प्रेतवच् छेषे कस्मान् वज्र-हतो यथा।
उत्तिष्ठ हे कापुरुष, मा स्वाप्सीः शत्रु-निर्जितः॥

१९३. हे प्रजाओंके स्वामी, लोभमें अत्यन्त बढ़े पुत्रोंपर अनुशासन करो। पृथाके पुत्र शुश्रूषा करनेके लिये तैयार हैं, वे शत्रुदमन युद्ध करनेके लिये तैयार हैं। हे राजन्, हे परंतपो, जो तुम्हें सबसे अधिक हितकर जान पड़े, उसमें स्थित हो।

—उद्योग-पर्व अध्याय १३

७. विदुला-संवाद—

१९४. यहां (इस) पुरातन इतिहासको कहते हैं।
हे परंतपो, (यह) विदुला और उसके पुत्रका संवाद (है)।

१९५. विदुला क्षत्रियोंके धर्ममें निरत, संयमी, दीर्घदर्शिनी,
राजसभाओंमें प्रसिद्ध बहुश्रुत थी, लोग उसका वचन सुनते थे।

१९६. विदुला नामकी राजकन्याने सिन्धुराजसे पराजित,
दीन चित हो लेटे अपने औरस पुत्रको धिक्कारा।

विदुला बोली—

१९७. हे अनन्दन, मेरी संतान, शत्रुओंके हर्षको बढ़ानेवाले,
मैंने और न पिताने तुझे जना, तू अपने मनसे आ गया।

१९८. हे कायर, आज, इस तरह पराजित होकर पड़ा लेट,
मत शत्रुओंको आनंदित करता मान-रहित, बन्धुओंका क्षोभक बन,

१९९. थोड़ेसे ही संतोष करता कुत्तेकी तरह तू मत मर जा।
उत्साह और जीवनमें भी संशय जानकर, पराक्रम कर।

२००. क्या तुमें शत्रुके सिरको बाजकी तरह आकाशमें घूमते देखा ?
निनाद करते या चुपचाप परिशंकित होकर,

२०१. तू इस तरह वज्रसे मारा-सा क्यों मुर्देकी तरह सो रहा है ?
उठ हे कायर, शत्रुसे पराजित होकर मत सो।

२०२. मास्तं गमस् त्वं कृपणो विश्रयस्व स्व-कर्मणा।
मा मध्ये, मा जघन्ये त्वं माधो भूस् तिष्ठ गर्जितः"

२०३. अलातं तिन्दुकस्यैव मुहूर्तमपि हि ज्वल।
मा तुषाग्निरिवानर्चिर् धूमायस्व जिजीविषुः।

२०४. मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयो न च धूमायितं चिरम्।
मा ह स्म कस्यचिद् गेहे जनि राज्ञः खरो मृदुः॥

२०५. कृत्वा मानुष्यकं कर्म सृत्वाजिं यावदुत्तमम्।
धर्मस्यानृण्यमाप्नोतिन च ात्मानं विगर्हते।

२०६. अलब्ध्वा यदि वा लब्ध्वा नानुशोचति पण्डितः।
आनन्तर्यमारभते न प्राणानां धनायते॥

२०७. इष्टापूर्तं हि ते क्लीब कीर्तिश् च सकला हृता।
विच्छिन्नं भोग-मूलं ते किं निमित्तं हि जीवसि॥

२०८. शत्रुर् निमज्जता ग्राह्यो जंघायां प्रपतिष्यता।
विपरिच्छन्न-मूलोऽपि न विषीदेत् कथंचन॥

२०९. उद्यम्य धुरमुत्कर्षेद् आजानेय-कृतं स्मरन्।
उद्भावय कुलं मग्नं त्वत्-कृते स्वयमेव हि॥

२१०. आयसं हृदयं कृत्वा मृगयस्व पुनः स्वकम्।
परं विषहते यस्मात् तस्मात् पुरुष उच्यते॥

२११. य आत्मनः प्रिय-सुखे हित्वा मृगयते श्रियम्।
अमात्यानामथ हर्षमादधात्यचिरेण सः"॥

पुत्र उवाच—

२१२. "किं नु ते मामपश्यन्त्याः पृथिव्या अपि सर्वया।
किमाभरण-कृत्यं ते किम् भोगैर् जीवितेन वा॥

२०२. तू दीन होकर मत अस्त हो, अपने कर्मों द्वारा प्रसिद्ध हो ।
मत बीचमें, मत जघन्यमें, मत नीचे तू गरजता हुआ रह।

२०३. फुसकी लुकारीकी तरह क्षण भर भी तू जल,
भुसकी आगकी तरह जीनेकी इच्छासे बिना ज्वाला मत धुंधुआ।

२०४. क्षण भर जलना अच्छा है, देर तक धुआं देना नहीं।
किसी राजाके घरमें कोमल गदहा (बन) न पैदा हो।

२०५. मनुष्योचित कर्म करके उत्तम युद्धमें जाकर,
आदमी धर्मसे उऋण होता है और अपनेको निंदित नहीं करता।

२०६. पंडितजन लाभ या अलाभ की चिन्ता नहीं करता, (वह)
प्राणों पर आफत का काम करता है, धनकी इच्छा नहीं करता।

२०७. हे नपुंसक, तेरे इष्ट और पूर्त,[1] सारी कीर्ति नष्ट हो गई।
तेरे भोगकी जड़ कट गई, तू किसलिये जीता है?

२०८. डूबते हुए कूदकर शत्रुको जंघासे पकड़ना चाहिये,
छिन्नमूल होनेपर भी कभी विषाद नहीं करना चाहिए।

२०९. उत्तम घोड़ेके कामका स्मरण कर धुरेको उठाकर खींचें,
अपने कारण डूबे कुलको स्वयं ही ऊपर उठा।

२१०. लोहेका हृदय करके फिर अपनी वस्तुको ढूंढ़,
चूंकि परको दबाता है, इसीलिये (वह) पुरुष कहा जाता है।

२११. जो अपने प्रिय सुखको छोड़कर श्रीकी खोज करता है,
वह अमात्योंमें जल्दी ही हर्ष लाता है।

पुत्र बोला—

२१२. मर जानेपर मुझे न देख, सारी गौओंसे भी तुझे क्या लेना है?
आभूषणसे भूषित होनेसे भोग और जीवनसे (तुझे) क्या?

---

[1] यज्ञ आदि इष्ट है, और कूयें तालाब आदि का बनाना पूर्त्त कर्म

माता उवाच—

२१३. "किमद्यकानां ये लोका द्विषन्तस् तान् अवाप्नुयुः।
ये त्वादृतात्मानं लोका सुहृदस् तान् व्रजन्तु नः॥

२१४. भृत्यैर् विहीयमानानां परपिण्डोपजीविनाम्।
कृपणानाम सत्वानां मा वृत्तिमनुवतथाः॥

२१५. यदा मां चैव भार्यां च द्रष्टासि भृश-दुर्बलाम्।
न तदा जीवितेनार्थो भविता तव संजय॥

२१६. दास-कर्मकरान् भृत्यान् आचार्यर्त्विक्-पुरोहितान्।
अ-वृत्त्यास्मान् प्रजहतां दृष्ट्वा किं जीवितेन ते॥

२१७. यदि कृत्यं न पश्यामि तवाद्याहं यथा पुरा।
श्लाघनीयं यशस्यं च का शान्तिर् हृदयस्य मे॥

२१८. "वयमाश्रयणीयाः स्म न श्रेतारः परस्य च।"
सान्यमाश्रित्य जीवन्ती परित्यक्षामि जीवितम्॥

२१९. अ-पारे भव नः पारम् अ-प्लव भव नः प्लवः।
कुरुष्व स्थानमास्थाने मृतान् संजीवयस्व नः॥

२२०. एक-शत्रु-बधेनैव शूरो गच्छति विश्रुतिम्।
इन्द्रो वृत्र-बधेनैव महेन्द्रः समपद्यत॥

२२१. यदेव लभते वीरः सु-युद्धेन महद् यशः।
तदैव प्रव्यथन्तेऽस्य शत्रवो विनमन्ति च॥

२२२. नास्मिन् जातु कुले जातो गच्छेद् योऽन्यस्य पृष्ठतः।
न त्वं परस्यानुचरस् तात जीवितुं अर्हसि॥

२२३. यो वै कश्चिदिहाजातः क्षत्रियः क्षत्र-कर्म-वित्।
भयाद् वृत्तिं समीक्ष्यैव न नमेदिह कस्यचित्॥

माता बोली—

२१३. क्या स्वाहाको जो लोग द्वेषी हैं, उन्हें वह प्राप्त करेंगे,
जो कि आदरप्राप्त लोग हैं, हमारे (वह) मित्र वहां जायें।

२१४. नौकरोंसे परित्यक्त दूसरेके दिये पिंडपर जीनेवाले,
दीनों और पस्त-हिम्मतोंकी वृत्तिका तू अनुसरण न कर।

२१५. जब मुझे और अपनी पत्नीको तू अत्यन्त दुर्बल देखेगा,
तब हे संजय, तुझे जीवनसे कोई प्रयोजन नहीं रह जायेगा।

२१६. दास-कर्मकार-भृत्यों, आचार्य-ऋत्विक्-पुरोहितोंको
वृत्ति न होनेसे हमें छोड़ते देख तेरे जीनेसे क्या?

२१७. यदि आज मैं पहले जैसे तेरे कृत्यको श्लाघनीय और यशस्कर
नहीं देखूं, तो मेरे हृदयको क्या शान्ति होगी?

२१८. "हम दूसरोंके आश्रित हैं, और दूसरोंको आश्रय देनेवाले नहीं हैं,"
ऐसा सोच दूसरेका आश्रय लेकर जीनेपर मैं प्राण छोड़ दूंगी।

२१९. तू अपार (सागर) में हमारे लिये पार उतारनेवाला बन,
अनाथमें हमारे लिये नाव बन,
बिना स्थानमें स्थान बन हम मृतोंको संजीवित कर।

२२०. शूर पुरुष एक शत्रुके मारनेसे ही प्रसिद्ध हो जाता है।
इन्द्र वृत्रके वधसे ही महाइन्द्र हो गया।

२२१. जब वीर सुन्दर युद्ध द्वारा महायशको प्राप्त करता है,
तब उसके शत्रु व्यथित और विनम्र होते हैं।

२२२. इस कुलमें उत्पन्न कोई (ऐसा) नहीं हुआ, जो कि दूसरेके पीछे-पीछे
चले हे तात, दूसरेका अनुचर हो तुझे नहीं जीना चाहिए।

२२३. जो कोई इस कुलमें क्षत्रिय (-धर्मता) जाननेवाला क्षत्रिय पैदा हुआ,
वह धर्मका ख्याल करके भयसे किसीके आगे नहीं झुका।

२२४. उद्-यच्छेद् एव न नमेद्, उद्यमो ह्येव पौरुषम् ।
अप्यपर्वाणि भज्येत न नमेतेह कस्यचित्" ॥

पुत्र उवाच—

२२५. कृष्णायसस्येव च ते संहत्य हृदयं कृतम् ।
अहो क्षत्र-समाचारो यत्र मामितरं यथा ॥

२२६. नियोजयसि युद्धाय पर-मातेव मां तथा ।
ईदृशं वचनं ब्रूयाद् भवती पुत्रमेक-जम् ॥

माता उवाच—

२२७. सर्वारम्भा हि विदुषां तात धर्मार्थ-कारणात्
तावेवाभिसमीक्ष्याहं संजय त्वामचूचुदम् ॥

२२८. अस्मिंश् चेदागते काले कार्यं न प्रतिपद्यसे ।
असम्भावित-रूपस् त्वमानृशंस्यं करिष्यसि ॥

२२९. तं त्वाम-यशसा स्पृष्टं न ब्रूयां यदि संजय ।
खरी-वात्सल्यमाहुस् तद् निःसामर्थ्यमहेतुकम् ।

२३०. युद्धाय क्षत्रियः सृष्टः संजयेह जयाय च ।
जयन् वा बध्यमानो वा प्राप्नोतीन्द्र सलोकताम् ॥

२३१. न शक्र-भवने पुण्ये दिवि तद् विद्यते सुखम् ।
यद-मित्रान् रणे हत्वा क्षत्रियः सुखमेधते ॥

२३२. आत्मा वापि परित्याज्यो निपात्याः शत्रवोऽपि वा ।
अतोन्येन प्रकारेण शान्तिरस्य कुतो भवेत् ॥

२३३. अथ त्वां पूजयिष्यामि हत्वा वै सर्व-सैन्धवान् ।
अहं पश्यामि विजयं कृच्छ्र-भावितमेव ते ॥

२२४. (पुरुष) उद्यम करे, झुके नहीं, उद्यम ही पौरुष है।
चाहे असमय टूट जाय, पर संसार में किसीके सामने न झुके।

पुत्र बोला—

२२५. जोड़ कर लोहेसा तेरा हृदय बना है
अहो, जहां क्षत्रियोंका आचार मुझ जैसा दूसरेको (हो)।

२२६. जैसे दूसरेकी मां वैसे तू मुझे युद्धमें भेज रही है,
स्वयं (अपने) इकलौते पुत्रको ऐसा वचन बोल रही है।

माता बोली—

२२७. तात, विद्वानोंके सारे कार्य धर्म और अर्थके लिये होते हैं,
हे संजय, उन्हींको अच्छी तरह देखकर, मैंने तुझे प्रेरित किया।

२२८. ऐसा अवसर प्राप्त होनेपर यदि काम नहीं करेगा,
तो तू अनादर-पात्र नीच हो दया की भीख मांगेगा।

२२९. हे संजय, अपयशसे कलंकित तुझे यदि मैं न कहूं, तो वह गदहीकी वत्सलता है, जो कि अकारण और बिना सामर्थ्यकी होती है।

२३०. हे संजय, इस संसारमें क्षत्रिय युद्धके लिये और जयके लिये बनाया गया है। विजयी होने या मारे जाते वह इन्द्रलोकको प्राप्त होता है।

२३१. स्वर्गमें पवित्र इन्द्र-भवनमें वह सुख मौजूद नहीं है,
जो सुख कि रणमें शत्रुओंको मार कर क्षत्रिय पाता है।

२३२. अपनेको नाश कर देना चाहिए, अथवा शत्रुओंको मार डालना चाहिये, इससे भिन्न उसको शान्ति कहां ?

२३३. सारे सिन्धवालोंको मार डालने पर मैं तुझे पूजूंगी,
कठिनाईसे प्राप्त किये तेरे विजयको ही देखूंगी।

पुत्र उवाच—

२३४. अ-कोषस्या-सहायस्य कुतः सिद्धिर् जयो मम ।
इत्यवस्थां विदित्वेमामात्मनात्मनि दारुणाम् ।।
२३५. राज्याद् भावो निवृत्तो मे विद्रवाद् इव दुष्कृतः ।
ईदृशं भवती कंचित् उपायमनुपश्यति ।।
२३६. तं मे परिणतप्रज्ञे सम्यग् प्र-ब्रूहि पृच्छते ।
करिष्यामि च तत् सर्वं यथावत् अनुशासनम् ।।

माता उवाच—

२३७. पुत्र, नात्मावमन्तव्यः पूर्वाभिरसमृद्धिभिः ।
अ-भूत्वा हि भवन्त्यर्था भूत्वा नश्यन्ति चापरे ।।
२३८. क्रुद्धान् लुब्धान् परिक्षीणान् अवलिप्तान् विमानितान् ।
स्पर्धिनश् चैव ये केचित् तान् युक्त उपधारय ।।
२३९. एतेन त्वं प्रकारेण महतो भेत्स्यसे गणान् ।
महा-वेग इवोद्धतो मातरिश्वा बलाहकान् ।।
२४०. तेषामग्र-प्रदायी स्याः कल्योत्थायी प्रियं-वदः ।
ते त्वां प्रियं करिष्यन्ति पुरो-धास्यन्ति च ध्रुवम् ।।
२४१. यदैव शत्रुर् जानीयात् सपत्नं त्यक्त-जीवितम् ।
तदैवास्माद् उद्विजेत सर्पाद् वेश्म-गताद् इव ।।
२४२. तं विदित्वा पराक्रान्तं वशे न कुरुते यदि ।
निर्वादैर् निर्वदेदेनम्, अन्ततस् तद् भविष्यति ।।
२४३. निर्वादाद् आस्पदं लब्ध्वा धन-वृद्धिर् भविष्यति ।
धनवन्तं हि मित्राणि भजन्ते चाश्रयन्ति च ।।

पुत्र बोला—

२३४. बिना कोश और बिना सहायकोंके जय और सिद्धि मुझे कहांसे
मिलेगी ? अपने विषयमें इस दारुण अवस्थाको जानकर,

२३५. राज्यसे मेरा भाव हट गया है, पापसे पलायनकी तरह
इसके बारेमें क्या आप कोई उपाय देखती हैं ?

२३६. हे परिपक्वप्रज्ञावाली,उसे पूछनेपर मेरे लिये अच्छी तरह बतलाओ।
(तुम्हारे) अनुशासनके अनुसार मैं सब करूंगा।

माता बोली—

२३७. हे पुत्र, पूर्वके अभावोंके कारण आत्म-अपमान नहीं करना चाहिए।
अर्थ न होकर होते हैं, और दूसरे(पदार्थ)होकर नष्ट हो जाते हैं।

२३८. जो कोई क्रुद्ध, लोभी, क्षीण, अभिमानी, अपमानित, और स्पर्धा
करनेवाले (पुरुष) हैं, उन्हें तत्परतासे साथ ले कर।

२३९. इस प्रकारसे तू भारी(शत्रु-) समूहको छिन्न-भिन्न कर देगा।
जैसे मेघोंको बड़े वेगवाला हलचल करता वायु ।

२४०. उन्हें तू आगे देनेवाला बन, और समयके अनुसार (सम्मानार्थ)
उत्थान करनेवाला प्रियवादी बन। वह तेरा प्रिय करेंगे, और
निश्चय (तुझे अपना) मुखिया बनायेंगे।

२४१. जभी प्रतिद्वंद्वी अपने शत्रुको मरा जाने,
तभी वह घरमें स्थित साँप की तरह उद्विग्न होवे है।

२४२. उसे पराक्रम करते जानकर यदि वशमें नहीं करता,
तो निर्वादों[1] से उसे निर्वादित करे, अन्तमें वही होगा।

२४३. निर्वाद से स्थान प्राप्त कर धनकी वृद्धि होगी,
धनवान् मित्र की लोग सेवा करते और आश्रय लेते हैं।

---

[1]साम दाम आदि।

२४४. स्खलितार्थं पुनस् तानि संत्यजन्ति च बान्धवाः।
अप्यस्मिन् नाश्वसन्ते च जुगुप्सन्ते च तादृशम्॥
२४५. नैव राजा दरः कार्यो जातु कस्यांचिदापदि।
अथ चेदपि दीर्णः स्याद्, नैव वर्तेत दीर्णवत्॥
२४६. दीर्णं हि दृष्ट्वा राजानं सर्वमेवानुदीर्यते।
राष्ट्रं बलममात्याश् च पृथक् कुर्वन्ति ते मतीः॥
२४७. शत्रून् एके प्रपद्यन्ते प्रजहत्यपरे पुनः।
अन्ये तु प्रजिहीर्षन्ति ये पुरस्ताद् विमानिताः॥
२४८. य एवात्यन्त-सुहृदस् त एनं पर्युपासते।
अ-शक्तयः स्वस्ति-कामा, बद्ध-वत्सा इला इव॥
२४९. मा दीदरस् त्वं सुहृदो मा त्वां दीर्णं प्रहासिषुः।
कृत्वा सौम्यमिवात्मानं जयायोत्तिष्ठ संजय!
२५०. अस्ति नः कोष-निचयो महान-विदितस् तव।
तमहं वेद नान्यस् तमुपसम्पादयामि ते॥
२५१. सन्ति नैकशता भूयः सुहृदस् तव संजय।
सुख-दुःख-सहा वीर, संग्रामाद-निवर्तिनः॥
२५२. तादृशा हि सहाया वै पुरुषस्य बुभूषतः।
इष्टं जिहीर्षतः किंचित् सचिवाः शत्रु-कर्षण॥

पुत्र उवाच—

२५३. अहं हि वचनं त्वत्तः शुश्रूषुरपरापरम्।
किंचित् किंचित् प्रतिवदन् तूष्णीमासम् मुहुर् मुहुः॥
२५४. अ-तृप्यन्नमृतस्येव कृच्छ्राल् लब्धस्य बान्धवात्।
उद्यच्छाम्येष शत्रूणां नियमार्थं जयाय च॥

—उद्योग-पर्व, १८

२४४. धनहीनको मित्र छोड़ देते हैं, और बान्धव भी
उसपर विश्वास नहीं करते, और वैसेसे घृणा करते हैं।

२४५. राजाको किसी भी आफतमें कभी डरना नहीं चाहिए।
और यदि डरा हो भी, (तो) डरेकी तरह वर्तना नहीं चाहिए।

२४६. राजाको डरा देख कर सभी निडर हो जाते हैं।
राष्ट्र, बल और अमात्य, सभी, भिन्न-मति बन जाते हैं।

२४७. उनमें से कोई शत्रुओंके पास चले जाते हैं, फिर दूसरे छोड़ जाते हैं, जो पहले अपमानित हुए हैं, वे तो छोड़नेकी इच्छा करते (ही) हैं।

२४८. जो अत्यन्त मित्र हैं, वही (ऐसे समय) उसके साथ रहते हैं।
जैसे असमर्थ कल्याणेच्छुक बछड़े से बंधी धेनु।

२४९. तू मित्रोंसे मत डर, भयभीत तुझपर शत्रु मत हँसे,
हे संजय, अपनेको सौम्य सा बना विजयके लिए खड़ा हो जा।

२५०. हमारे पास तुझे ना-मालूम महान् कोश-संग्रह है।
उसे मैं जानती हूँ, दूसरा नहीं, मै उसे तुझे दिखाती हूँ।

२५१. बहुत-से तेरे सुहृद हैं, हे संजय, हे वीर,
जो सुख-दुःख सहनेवाले और संग्रामसे न हटनेवाले (हैं)।

२५२. विभव चाहनेवाले पुरुषके लिए वैसे ही मित्र,
कुछ इष्टके त्याग-इच्छुक पुरुषके सचिव होते हैं।

पुत्र बोला—

२५३. तुमसे सुननेकी इच्छासे और-और बातें,
कुछ-कुछ प्रलाप करता मैं बार-बार चुप हो जाता

२५४. कठिनाईसे बान्धवोंसे प्राप्त था, मानो अमृतसे अतृप्त होता रहा,
शत्रुओंके नियन्त्रण और विजयके लिए (अब) यह मैं उद्युक्त हूँ।

—उद्योगपर्व अध्याय १८

८. सुभद्रा-विलापः—

२५५. सुभद्रा शोकदुःखार्ता विललाप सु-दुःखिता, ।
"हा पुत्र मम मन्दायाः कथं संयुगमेत्य हि ॥

२५६. निधनं प्राप्तवांस् तात, पितुस् तुल्य-पराक्रमः ।
कथमिन्दीवर-श्यामं सु-दंष्ट्रं चारु-लोचनम् ॥

२५७. मुखं ते दृश्यते वत्स, गुण्डितं रण-रेणुना ।
शयनीयं पुराध्युष्य स्पर्ध्यास्तरण-संवृतम् ॥

२५८. भूमावद्य कथं शेषे विप्रविद्धः सुखोचितः ।
योऽन्वास्यत पुरा वीरो वर-स्त्रीभिर् महा-भुजः ॥

२५९. कथमन्वास्यते सोऽद्य शिवाभिः पतितो मृधे ।
अ-तृप्त-दर्शना पुत्र, दर्शनस्य तवानघ ॥

२६०. मन्द-भाग्या गमिष्यामि व्यक्तमद्य यम-क्षयम् ।
धिग् बलं भीमसेनस्य धिक् पार्थस्य धनुष्मताम् ॥

२६१. धिग् वीर्यं वृष्णि-वीराणां, पांचालानां च धिग् बलम् ।
धिक् कैकयांस् तथा चेदीन् मत्स्यांश् चैवाथ संजयान् ॥

२६२. ये त्वां रण-गतं वीरं न शेकुरभिवीक्षितुम् ।
अद्य पश्यामि पृथिवीं शून्यामिव हृत-श्रियम् ॥

२६३. अभिमन्युमपश्यन्ती शोक-व्याकुल-चेतना ।
इमां ते जननीं भार्यां त्वदाधिभिरभिप्लुताम् ॥

२६४. कथं सम्भावयिष्यामि वि-वत्सामिव धेनुकाम् ।
या गतिर् युध्यमानानां शूराणाम-निवर्तिनाम् ॥

२६५. हत्वारीन् निहतानां च संग्रामे तां गतिं व्रज ।
ह्रीमन्तः सर्वशास्त्रज्ञा ज्ञान-तृप्ता जितेन्द्रियाः ।
यां गतिं साधवो यान्ति तां गतिं व्रज पुत्रक ॥"

—द्रोण-पर्व, ८

८. सुभद्रा का विलाप—

२५५. सुभद्रा शोक और दुःखसे आर्त अत्यन्त दुःखित हो विलाप करने लगी। "हाय, मुझ मन्दभागिनीका पुत्र, युद्धमें पहुँचकर कैसे,

२५६. मृत्युको प्राप्त हुआ। हे तात, पराक्रममें तू पिता तुल्य था। नीलकमल जैसा श्यामल, सुन्दर दाँत, सुन्दर लोचनवाला,

२५७. तेरा मुंह हे वत्स, रणकी धूलिसे धूसरित दिखाई दे रहा है? पहले दुर्लभ बिछौनेसे ढंके पलंगपर सोता,

२५८. आज सुखमें पला हुआ हो तू कैसे भूमिपर सो रहा है? जिस महाबाहु वीरकी श्रेष्ठ स्त्रियाँ सेवा करती थीं।

२५९. आज युद्धमें गिरे उसे सियार कैसे सेवित कर रहा है? हे निष्पाप पुत्र, तेरे दर्शनसे मैं अतृप्त-दर्शना हूँ।

२६०. निश्चय आज मैं मन्दभागिनी मृत्युको प्राप्त होऊँगी। भीमसेनके बलको धिक्कार है, अर्जुन और धनुर्धारियों को धिक्कार है।

२६१. वृष्णि वीरोंके पराक्रमको धिक्कार, पांचालोंके बलको धिक्कार, कैकेयों और चेदियों, मत्स्यों और संजयोंको भी धिक्कार है;

२६२. जो कि रणमें आये तुझ वीरकी देखभाल नहीं कर सके। आज पृथिवीको मैं नष्टश्री सूनी-सी देख रही हूँ।

२६३. शोकसे व्याकुल चेतनावाली मैं अभिमन्युको न देख, संतापसे संतप्त इस तेरी तरुणी भार्या (उत्तरा) को,

२६४. [illegible] कैसे जीकर मरूँगी? युद्ध करते हुए पीठ न दिखलानेवाले शूरोंकी जो गति है,

२६५. संग्राममें शत्रुओंको मारकर उन सिद्धोंकी गतिको तू प्राप्त हो। [illegible] आत्मतृप्त जितेन्द्रिय, साधु [illegible] जिस गतिको प्राप्त होते हैं, हे पुत्र, तू उस गतिको प्राप्त हो।

—द्रोण-पर्व अध्याय ८

९. रणाजिर-परिदर्शनम्—

२६६. समासाद्य कुरु-क्षेत्रं, ताः स्त्रियो निहतेश्वराः ।
अपश्यन्त हतांस् तत्र पुत्रान् भ्रातॄन् पितॄन् पतीन् ॥
२६७. क्रव्यादैर् भक्ष्यमाणांश् च गोमायु-बल-वायसैः ।
भूतैः पिशाचै रक्षोभिर् विविधैश् च निशा-चरैः ॥
२६८. रुद्राक्रीड़-निभं दृष्ट्वा तदा शिवसनं स्त्रियः ।
कुरर्य इव शोकार्ता विक्रोशन्त्यो निपेतिरे ॥
२६९. दुःखोपहत-चित्ताभिः समन्तादनुनादितम् ।
दृष्ट्वायोधनमत्युग्रं धर्मज्ञा सुबलात्मजा ॥
२७०. ततः सा पुण्डरीकाक्षमामन्त्र्य पुरुषोत्तमम् ।
कुरूणां वैशसं दृष्ट्वा, इदं वचनमब्रवीत्—
२७१. "पश्यैताः पुण्डरीकाक्ष, स्नुषा मे निहतेश्वराः ।
प्रकीर्ण-केशाः क्रोशन्तीः कुररीरिव माधव ॥
२७२. अमूस् त्वभिसमागम्य स्मरन्त्यो भरतर्षभान् ।
पृथगेवानुपद्यन्ते पुत्रान् भ्रातॄन् पितॄन् पतीन् ॥
२७३. वीर-सूभिर् महा-बाहो हत-पुत्राभिरावृतम् ।
क्वचित् च वीर-पत्नीभिर् हत-वीराभिरावृतम् ॥
२७४. शोभितं पुरुष-व्याघ्रैर् भीष्म-कर्णाभिमन्युभिः ।
द्रोण-द्रुपद-शल्यैश् च ज्वलद्भिरिव पावकैः ॥
२७५. कांचनैः कवचैर् दिव्यैर् मणिभिश् च महात्मनाम् ।
अंगदैर् हस्त-केयूरैः स्रग्भिश् च समलंकृतम् ॥
२७६. वीर-बाहु-विसृष्टाभिः शक्तिभिः परिघैरपि ।
खड्गैश् च विविधैस् तीक्ष्णैः स-शरैश् च शरासनैः ॥

९. रणक्षेत्रका परिदर्शन—

२६६. मृतपतिका उन स्त्रियोंने कुरुक्षेत्रमें पहुँचकर,
वहाँ अपने पुत्रों, भाइयों, बापों और पतियोंको निहत देखा।

२६७. मांसभक्षी सियार, गिद्ध और कौओं द्वारा खाये जाते,
भूतों-पिशाचों-राक्षसों और विविध निशाचरों द्वारा खाये जाते।

२६८. रुद्रके अखाड़ेकी तरह वहाँ के काटने-छेदनेको देखकर कुररियोंकी
तरह चिल्लाती शोकार्त (वह) स्त्रियाँ गिर पड़ीं।

२६९. दुःखसे नष्ट चेतनावाली उन स्त्रियों द्वारा चारों ओर निनादित,
अति उग्र युद्धक्षेत्रको देखकर धर्मज्ञा सुबल-पुत्री (गान्धारी) बोली,

२७०. तब पुरुषोत्तम कमलनयन कृष्णको संबोधित करती,
कुरुओंके हननको देखकर वह यह वचन बोली—

२७१. हे कमलनयन, मृत-पतिका बिखरे केशोंवाली,
कुररीकी तरह क्रन्दन करती मेरी इन बहुओंको देखो। हे माधव,

२७२. यह पास आकर भरतश्रेष्ठोंका स्मरण करती,
पुत्रों, भाइयों, पिताओं और पतियोंको पृथक् (पृथक्) पा रही हैं।

२७३. हे महाबाहु, (यह) युद्धक्षेत्र, वीर-माताओं, निहत-पुत्राओं द्वारा
घिरा और कहीं निहत-वीरोंवाली वीर-पत्नियों द्वारा घिरा,

२७४. भीष्म, कर्ण, अभिमन्यु (जैसे) पुरुषसिंहों द्वारा शोभित,
प्रज्ज्वलित अग्नि समान द्रोण, द्रुपद और शल्यसे,

२७५. महात्माओंके सोनेके गहनों, दिव्य-मणियोंके साथ,
अंगद और हाथके कंकणों और मालाओंसे

२७६. वीर बाहुओंसे छोड़ी शक्तियों, परिघोंसे भी,
विचित्र तीक्ष्ण खड्गों, बाण-सहित धनुषोंसे अलंकृत है।

२७७. क्रव्याद-संघैः सहितैस् तिष्ठद्भिर् विविधैः क्वचित् ।
क्वचिदाक्रीडमानैश् च शयानैरपरैः क्वचित् ॥

२७८. एतदेवं-विधं वीर संपश्यायोधनं विभो ।
पश्यमाना हि दह्यामि शोकेनाहं जनार्दन ॥

२७९. पंचालानां कुरूणां च विनाशे मधु-सूदन ।
पंचानामिव भूतानामहं वधमचिन्तयम् ॥

२८०. तान् सु-पर्णाश् च गृध्राश् च विकर्षन्त्यसृगुक्षितान् ।
प्रगृह्य चरणैर् गृध्रा भक्षयन्ति सहस्रशः ॥

२८१. शयनान्युचिताः सर्वे मृदूनि विमलानि च ।
विपन्नास् तेऽद्य वसुधां विवृतामधिशेरते ॥

२८२. तेषामाभरणान्येते गृध्र-गोमायु-वायसाः ।
आक्षिपन्त्य-शिवा घोरा विनदन्तः पुनः पुनः ॥

२८३. सुरूप-वर्णा बहवः क्रव्यादैरवघट्टिताः ।
ऋषभ-प्रतिरूपाक्षाः शेरते च सहस्रशः ॥

२८४. अपरे पुनरालिंग्य गदाः परिघ-बाहवः ।
शेरतेऽभि-मुखाः शूरा दयिता इव योषितः ॥

२८५. बिभ्रतः कवचान्यन्ये विमलान्यायुधानि च ।
न धर्षयन्ति क्रव्यादा जीवन्तीति जनार्दन ॥

२८६. एते गोमायवो भीमा निहतानां महात्मनाम् ।
कण्ठान्तर-गतान् हारान् आक्षिपन्ति सहस्रशः ॥

२८७. सर्वेष्वपर-रात्रेषु यान् अवन्दन्त वन्दिनः ।
तान् इमाः परिदेवन्ति दुःखार्ताः परमांगनाः ॥

२८८. बह्वयो दृष्ट्वा शरीराणि क्रोशन्ति विपलन्ति च ।
पाणिभिश् चापरा घ्नन्ति शिरांसि मृदु-पाणयः ॥

२७७. कहीं मांसभक्षी विविध प्रकारके जन्तु-समूहोंसे
कहींपर खेलते हुये और कहींपर लेटे हुओंसे,

२७८. हे वीर, हे प्रभु, इस युद्धक्षेत्रको हे जनार्दन,
इस प्रकार, देखती हुई मैं शोकसे जल रही हूँ।

२७९. हे मधुसूदन, पंचालों और कुरुओंके विनाशको,
मैंने पाँचों भूतोंके बध सा माना।

२८०. खूनसे लथपथ उन्हें गरुड़ और गिद्ध खींच रहे हैं।
पैरोंसे पकड़कर हजारों गिद्ध खा रहे हैं।

२८१. जो सब मृदु निर्मल शय्याके योग्य थे,
वे आज मरकर नंगी भूमिपर लेटे हुये हैं।

२८२. उनके आभूषणोंको ये भयंकर घोर गिद्ध, सियार और कौवे,
चिल्लाते हुये फिर-फिर घसीट रहे हैं।

२८३. सुन्दर रूप-वर्णवाले वृषभके समान इन्द्रियोंवाले बहुतेरे (वीर),
हजारों, मांसभक्षी जन्तुओं द्वारा छिन्न-भिन्न किये जाते लेटे हैं।

२८४. और कोई कोई परिघसे विशाल बाहुवाले प्रिय स्त्रियोंकी तरह
गदाओंको आलिंगन करते, सामने करके सो रहे हैं।

२८५. किसी किसी विमल कवच आयुध धारण करनेवालोंको,
हे जनार्दन, जीता समझकर मांसभक्षी नहीं अपमानित करते।

२८६. ये भयंकर सियार हजारोंकी तादादमें निहत महात्माओंके,
कंठमें अवस्थित हारोंको खींच रहे हैं।

२८७. पिछली सारी रातों बंदी जिनकी स्तुति करते थे,
उनके लिये यह दुःखार्त श्रेष्ठ महिलायें रो रही हैं।

२८८. इनके शरीरोंको देखकर बहुतेरी रोती और विलाप करती हैं।
दूसरी कोमल हाथोंवाली (अपने) हाथोंसे सिरोंको धुनती हैं।

२८९. शिरोभिः पतितैर् हस्तैः सर्वांगैः खण्डशः कृतैः।
इतरेतर-संपृक्तैराकीर्णा भाति मेदिनी ॥

२९०. वि-शिरस्कान् अथो कायान् दृष्ट्वा घोराभिनन्दिनः।
मुह्यन्ति सु-चिरं नार्यो वि-देहानि शिरांसि च ॥

२९१. शिरः कायेन सन्धाय प्रेक्षमाणा वि-चेतसः।
अपश्यन्त्योऽपरं तत्र नेदमस्येति दुःखिताः ॥

२९२. बाहूरु-चरणान् अन्यान् विशिखोन्मथितान् पृथक्।
संदधत्योऽसुखाविष्टा मूर्छन्त्येताः पुनः पुनः ॥

२९३. उत्कृत्त-शिरसश् चान्यान् विजग्धान् मृग-पक्षिभिः।
दृष्ट्वा काचिद् न जानन्ति भर्तॄन् भरत-योषितः ॥

२९४. पाणिभिश् चापरा घ्नन्ति शिरांसि मधु-सूदन।
प्रेक्ष्य भ्रातॄन् पितॄन् पुत्रान् पतींश् च निहतान् परैः ॥

२९५. बाहुभिश् च स-खड्गैर् हि शिरोभिश् च स-कुण्डलैः।
अगम्य-कल्पा पृथिवी मांस-शोणित-कर्दमा ॥

२९६. यूथानीव किशोरीणां सु-केशीनां जनार्दन।
स्नुषाणां धृतराष्ट्रस्य पश्य वृन्दान्यनेकशः ॥

२९७. इतो दुःखतरं किं नु केशव, प्रतिभाति मे।
यदिमाः कुर्वते सर्वा रवमुच्चावचं स्त्रियः ॥

२९८. नूनमाचरितं पापं मया पूर्वेषु जन्मसु।
या पश्यामि हतान् पुत्रान् पौत्रान् भ्रातॄंश् च केशव।"

२९९. एवमार्ता विलपती समाभाष्य जनार्दनम्।
गान्धारी पुत्र-शोकार्ता ददर्श निहतं सुतम् ॥

—स्त्री-पर्व, ४

२८९. सिरों, गिरे हाथों, खंड-खंड किये सारे अंगों,
एक दूसरे से मिश्रित पृथिवी पर आकीर्ण दीख रही है।

२९०. सिर-रहित काया और बिना देहके सिरोंको,
देखकर घोर-अभिनन्दन करनेवाली स्त्रियाँ देर तक मूर्छित हो जाती हैं।

२९१. सिरको धड़से जोड़ देख कर चेतनाशून्य हो,
दूसरेको न देख उसमें 'इसका यह नहीं है' कह दुःखित होती हैं।

२९२. बाहु, जाँघ और दूसरे चरणोंको, शिखा-रहित उन्मथित सिरोंको
मुखमें आविष्ट हो अलग, जोड़ती ये फिर-फिर मूर्छित होती हैं।

२९३. मृगों और पक्षियों द्वारा खाये गये कटे सिरोंवाले
पतियोंको देखकर कोई-कोई भरत-स्त्रियाँ नहीं पहचानतीं।

२९४. दूसरी, हे मधुसूदन, शत्रुओं द्वारा भाइयों, पिताओं,
पुत्रों और पतियोंको निहत देखकर (अपने) हाथोंसे सिरोंको पीटती हैं।

२९५. खड्गयुक्त बाहुओं और कुंडलयुक्त सिरोंसे (ढंकी),
मांस और रक्तकी कीचड़वाली (यह) पृथिवी अगम्य हो गई है।

२९६. हे जनार्दन, [illegible],
धृतराष्ट्रकी बहुओंके अनेक वृन्दोंको देखो।

२९७. हे केशव, मेरे लिए इससे बढ़कर दुःख क्या हो सकता है,
कि ये सब स्त्रियाँ नाना प्रकारसे क्रन्दन कर रही हैं।

२९८. निश्चय पूर्व जन्ममें मैंने पाप किया,
जो कि हे केशव, पुत्रों, पौत्रों और भाइयोंको निहत देख रही हूँ।"

२९९. इस प्रकार आर्त हो विलाप करती पुत्र-शोक-पीड़िता,
गान्धारीने कृष्णसे कहकर अपने निहत पुत्रको देखा।

—स्त्री-पर्व अध्याय ४

१०. गण-तन्त्रम्—

युधिष्ठिर उवाच —

३००. गणानां वृत्तिमिच्छामि श्रोतुं मतिमतां वर।
यथा गणाः प्रवर्धन्ते न भिद्यन्ते च भारत॥

३०१. अरींश् च विजिगीषन्ते सुहृदः प्राप्नुवन्ति च।
भेद-मूलो विनाशो हि गणानामुपलक्षये॥
मन्त्र-संवरणं दुःखं बहूनाम् इति मे मतिः।

भीष्म उवाच —

३०२. गणानां च कुलानां च राज्ञां भरत-सत्तम।
वैर-सन्दीपनावेतौ लोभामर्षौ नराधिप॥

३०३. लोभमेको हि वृणुते ततोऽमर्षमनन्तरम्।
तौ क्षय-व्यय-संयुक्तावन्योन्यं च विनाशिनौ॥

३०४. चार-मन्त्र-बलादानैः साम-दान-विभेदनैः।
क्षय-व्यय-भयोपायैः प्रकर्षन्तीतरेतरम्॥

३०५. तत्रादानेन भिद्यन्ते गणाः संघात-वृत्तयः।
भिन्ना वि-मनसः सर्वे गच्छन्त्यरि-वशं भयात्॥

३०६. भेदे गणा विनश्येयुर् भिन्नास् तु सु-जयाः परैः।
तस्मात् संघात-योगेन प्रयतेरन् गणाः सदा॥

३०७. अर्थाश् चैवाधिगम्यन्ते संघात-बल-पौरुषैः।
वाह्याश् च मैत्रीं कुर्वन्ति तेषु संघात-वृत्तिषु॥

३०८. ज्ञान-वृद्धाः प्रशंसन्ति शुश्रूषन्तः परस्परम्।
विनिवृत्ताभिसन्धानाः सुखमेधन्ति सर्वशः॥

३०९. धर्मिष्ठान् व्यवहारांश् च स्थापयन्तश् च शास्त्रतः।
यथावत् प्रतिपश्यन्तो विवर्धन्ते गणोत्तमाः॥

१०. गणतन्त्र—

युधिष्ठिर बोले—

३००. हे मतिमानोंमें श्रेष्ठ, हे भारत, (राज्य) गणोंकी उस वृत्तिको मैं सुनना चाहता हूँ, जिससे कि गण न छिन्न-भिन्न हो बढ़ते हैं।

३०१. वह शत्रुओंको जीतते और मित्रोंको प्राप्त करते हैं,
गणोंका विनाश फूटके कारण है, यह मैं सनमझता हूँ।
बहुत (जनों) के भीतर मन्त्रणाको गुप्त रखना कठिन है, यह मेरी राय है।

भीष्म बोले—

३०२. हे भरतश्रेष्ठ, हे नराधिप, गणों और राजाओंके कुलोंके
वैर बढ़ानेवाले है ये लोभ और ईर्ष्या।

३०३. कोई लोभको पसन्द करता है, उसके अनन्तर ईर्ष्या (अमर्ष) को,
ये दोनों क्षय और हानिसे संयुक्त हो परस्पर विनाशक हैं।

३०४. गुप्तचर, गुप्तमन्त्रणा और सेनाके ग्रहण, साम-दाम और विभेदद्वारा,
क्षय, व्यय, भयके उपायोंसे (वह) एक दूसरेको खींचते हैं।

३०५. एकता स्वभाववाले गण आदान (रिश्वत)से फूटते हैं।
फूटे-बिगड़े मनवाले सभी (लोग) भयसे शत्रुके वशमें चले जाते हैं।

३०६. फूट होनेपर गण नष्ट होते हैं, फूटवाले (वह) शत्रुओं द्वारा आसानीसे जीते जाते हैं। इसलिए गणोंको एकताबद्ध हो प्रयत्न करना चाहिए।

३०७. एकता, बल और पौरुषसे अर्थ (धन) प्राप्त होते हैं।
उन संघातवृत्तियोंसे बाहरवाले (भी) मित्रता करते हैं।

३०८. (ज्ञानी) ज्ञानवृद्ध लोग प्रशंसा करते हैं, परस्पर शुश्रूषा करते हैं। षड्यन्त्रोंकी चालोंसे निवृत्त हो सब तरह सुखसे बढ़ते हैं।

३०९. शास्त्रानुसार धर्मिष्ठ व्यवहारोंकी स्थापना करते,
यथोचित देखभाल करते श्रेष्ठ गण वृद्धिको प्राप्त होते हैं।

३१०. चार-मन्त्र-विधानेषु कोश-संनिचयेषु च।
नित्य-युक्ता महा-बाहो विर्धन्ते सर्वतो गणाः ॥
३११. प्राज्ञान् शूरान् महोत्साहान् कर्मसु स्थिर-पौरुषान्।
मानयन्तः सदा युक्तान् विवर्धन्ते गणा नृप ॥
३१२. द्रव्यवन्तश् च शूराश् च निर्लोभाः शास्त्रपारगाः।
कृच्छ्रास्वापत्सु संमूढान् गणान् सं-तारयन्ति ते ॥
३१३. क्रोधो भेदो भयं दण्डः कर्षणं निग्रहो बधः।
नयत्यरिवशं सद्यो गणान्, भरत-सत्तम ॥
३१४. तस्माद् मानयितव्यास् ते गणमुख्याः प्रधानतः।
लोक-यात्रा समायत्ता भूयसी तेषु पार्थिव ॥
३१५. मन्त्र-गुप्तिः प्रधानेषु चारश् चामित्र-कर्षण।
न गणाः कृत्स्नशो मन्त्रं श्रोतुमर्हन्ति भारत ॥
३१६. गण-मुख्यैस् तु संभूय कार्यं गण-हितं मिथः।
पृथग् गणस्य भिन्नस्य विततस्य ततोऽन्यथा ॥
३१७. अर्थाः प्रत्यवसीदन्ति तथानर्था भवन्ति च।
तेषामन्योन्य-भिन्नानां स्व-शक्तिमनुतिष्ठताम् ॥
३१८. निग्रहः पण्डितैः कार्यः क्षिप्रम् एव प्रधानतः।
गोत्रस्य नाशं कुर्वन्ति गण-भेदस्य कारकम् ॥
३१९. *आभ्यन्तरं भयं रक्ष्यम्, अ-सारं बाह्यतो भयम्।*
आभ्यन्तरं भयं राजन्, सद्यो मूलानि कृन्तति ॥
३२०. अकस्मात् क्रोध-मोहाभ्यां लोभाद् वापि स्व-भावजात्।
अन्योन्यं नाभिभाषन्ते तत् पराभव-लक्षणम् ॥
३२१. जात्या च सदृशाः सर्वे कुलेन सदृशास् तथा।
न चोद्योगेन बुद्ध्या वा रूप-द्रव्येण वा पुनः ॥
३२२. भेदाच् चैव प्रदानाच् च नाम्यन्ते रिपुभिर् गणाः।
तस्मात् संघातमेवाहुर् गणानां शरणं महत् ॥

—शान्ति-पर्व, ११

३१०. गुप्तचर-मन्त्रके विधानोंमें और कोशके संचयोंमें,
हे महाबाहु, नित्य तत्पर गण सब तरह बढ़ते हैं।

३११. हे नृप, बुद्धिमानों, शूरों, महासाहसियों, कामोंमें दृढ़ पौरुषवालों, सदा तत्पर रहनेवालोंका सम्मान करते, गण वृद्धिको प्राप्त करते हैं।

३१२. द्रव्यवाले शूर और शास्त्र-पारंगत वे
कठिन आफतोंमें फंसे गणोंको तारते हैं।

३१३. क्रोध, फूट, भय, दण्ड, घसीटना, निग्रह और बध,
हे भरतश्रेष्ठ, ये तुरन्त गणोंको शत्रुके वशमें कर देते हैं।

३१४. इसलिए गणोंके उन नेताओंको प्रधानतया सम्मानित करना चाहिए।
हे पार्थिव, लोक-निर्वाह अधिकतर उन्हींके हाथमें है।

३१५. हे शत्रु-नाशक, नेताओंमें मन्त्र और गुप्तचर को गुप्त रखना,
हे भारत, गणोंको पूरी तौरसे मन्त्र नहीं सुनना चाहिए।

३१६. गणके मुखियोंको परस्पर इकट्ठा होनेसे गणका हित होता है,
फूट पड़े फैले भिन्न हुये गणका उससे उलटा अहित।

३१७. अर्थ (हित) कम होते हैं और अनर्थ उत्पन्न होते हैं।
परस्पर फूटकर अपनी शक्तिका उपयोग करनेवाले उन गणोंके

३१८. पंडितोंको चाहिए, कि जल्दी और प्रधान द्वारा निग्रह करें।
गणोंमें फूट डालनेवाले (लोग) गोत्रका नाश करते हैं।

३१९. (उन्हें) भीतरी भयसे बचाना चाहिए, बाहरी भय निस्सार है।
हे राजन्, भीतरी भय तुरन्त मूलको काट देता है।

३२०. अकस्मात् क्रोध और मोह, स्वाभाविक लोभके कारण भी (जो)
परस्पर बात नहीं करते, सो पराभवका लक्षण है।

३२१. जातिसे सभी एक समान और कुलसे एक समान होते हैं,
किन्तु उद्योग, बुद्धि या रूप-धनमें (सभी) समान नहीं होते।

३२२. शत्रु फूटसे और रिश्वतसे गणोंको दबाते हैं।
इसलिए गणोंके लिए सबसे बड़ी सुरक्षा एकताको ही कहा गया है।

—शान्ति-पर्व ११

१५. वाल्मीकि (२०० ई० पू०)

यद्यपि महाभारतकी अनगढ़ कविता उस कालकी है, जब कि संस्कृत नहीं पालियां बोल-चालकी भाषायें थीं, किन्तु पीछेके अर्थोंमें जिसे काव्य या महाकाव्य कहा जा सकता है, वह उसी कालकी रचना रामायणके रूपमें हमारे सामने है, इसीलिये यदि उसे "आदि काव्य" (प्रथम काव्य) कहा गया, तो अनुचित नहीं है। रामायणकी कथा भी महाभारतकी कथाकी तरह बहुत पुरानी है? बुद्धके समय भी वह प्रचलित थी। किन्तु उसको

१. अयोध्या—

१. कोसलो नाम मुदितः स्फीतो जनपदो महान्।
निविष्टः सरयूतीरे प्रभूतधनधान्यवान् ॥५॥

२. अयोध्या नाम नगरी तत्रासील्लोकविश्रुता।
मनुना मानवेन्द्रेण या पुरी निर्मिता स्वयम् ॥६॥

३. आयता दश च द्वे च योजनानि महापुरी।
श्रीमती त्रीणि विस्तीर्णा सुविभक्तमहापथा ॥७॥

४. राजमार्गेण महता सुविभक्तेन शोभिता।
मुक्तपुष्पावकीर्णेन जलसिक्तेन नित्यशः ॥८॥

५. तां तु राजा दशरथो महाराष्ट्रविवर्धनः।
पुरीमावासयामास दिवि देवपतिर्यथा ॥९॥

६. कपाटतोरणवतीं सुविभक्तान्तरापणाम्।
सर्वयंत्रायुधवतीमुषितां सर्वशिल्पिभिः ॥१०॥

७. सूतमागधसंबाधां श्रीमतीमतुलप्रभाम्।
उच्चाट्टालध्वजवतीं शतघ्नीशतसंकुलाम् ॥११॥*

१५. वाल्मीकि (२०० ई० पू०)

एक सुन्दर महाकाव्यका रूप इस कृतिके रूपमें दिया गया। जिस समाज और भौगोलिक विस्तारका वर्णन रामायणमें आता है, वह शुंग-कालको सूचित करता है, इस प्रकार इसकी रचना ईसासे डेढ़-दो सौ वर्ष पहले हुई। रचयिताका नाम वाल्मीकि है, जो ठीक भी हो सकता है, किन्तु वाल्मीकिके साथ, जितनी बातें जोड़ दी गई हैं, वह आदि कविकी ऐतिहासिकतापर सन्देह पैदा कर देती हैं। "महाभारत" की तरह यह भी पालियोंके कालकी रचना है।

१. अयोध्या-वर्णन—

१. कोसल नामक सुखी समृद्ध महान् जनपद (देश),
बहुत धनधान्यवाला सरयूके तीर अवस्थित था ॥५॥

२. वहाँ लोक-प्रसिद्ध अयोध्या नामक नगरी थी,
जो पुरी स्वयं मानवेन्द्र मनु द्वारा निर्मित हुई थी ॥६॥

३. वह महापुरी थी दस और दो योजन विस्तृत।
सुविभक्त महापथोंवाली श्रीवाली वह पुरी तीन योजन चौड़ी थी ॥७॥

४. वह सुन्दर तौरसे विभक्त महान् राजमार्गोंसे शोभित थी,
जो कि नित्य छोड़े हुये फूलोंसे आकीर्ण, जलसे सिक्त रहते थे ॥८॥

५. महान् राष्ट्र-वर्धक राजा दशरथने उस पुरीको,
द्यौलोकमें इन्द्र जैसे आवासित किया था ॥९॥

६. (वह पुरी थी) किवाड़-तोरणवाली, भीतरी हाटोंसे सुविभक्त।
सारे यन्त्रों-आयुधोंवाली, सारे शिल्पियों से बसी ॥१०॥

७. सूतों-मागधोंसे भरी, अतुल प्रभावाली श्रीमती,
ऊँची अटारियों-ध्वजोंवाली सैकड़ों शतघ्नियोंसे भरी ॥११॥

८. वधूनाटकसंघैश्च संयुक्तां सर्वतः पुरीम्।
उद्यानाम्रवणोपेतां महतीं सालमेखलाम् ॥१२॥

९. दुर्गगंभीरपरिखां दुर्गामन्यैर्दुरासदाम्।
वाजिवारणसंपूर्णां गोभिरुष्ट्रैः खरैस्तथा ॥१३॥

१०. सामंतराजसंघैश्च बलिकर्मभिरावृताम्।
नानादेशनिवासैश्च वणिग्भिरुपशोभिताम् ॥१४॥

११. प्रासादै रत्नविकृतैः पर्वतैरिव शोभिताम्।
कूटागारैश्च संपूर्णामिन्द्रस्येवामरावतीम् ॥१५॥

१२. चित्रामष्टापदाकारां वरनारीगणैर्युताम्।
सर्वरत्नसमाकीर्णां विमानगृहशोभिताम् ॥१६॥

१३. गृहगाढामविच्छिद्रां समभूमौ निवेशिताम्।
शालितंडुलसंपूर्णामिक्षुकांडरसोदकाम् ॥१७॥

१४. दुंदुभीभिर्मृदंगैश्च वीणाभिः पणवैस्तथा।
नादितां भृशमत्यर्थं पृथिव्यां तामनुत्तमाम् ॥१८॥

१५. विमानमिव सिद्धानां तपसाधिगतं दिवि।
सुनिवेशितवेश्मांतां नरोत्तमसमावृताम् ॥१९॥

१६. ये च बाणैर्न विध्यंति विविक्तमपरापरम्।
शब्दवेध्यं च विततं लघुहस्ता विशारदाः ॥२०॥

१७. सिंहव्याघ्रवराहाणां मत्तानां नदतां वने।
हंतारौ निशितैः शस्त्रैर्बलाद् बाहुबलैरपि ॥२१॥

१८. तादृशानां सहस्रैस्तामभिपूर्णां महारथैः।
पुरीमावासयामास राजा दशरथस्तदा ॥२२॥

८. और वधुओं-नाटकोंकी जमातों चारों ओरसे संयुक्त।
उद्यानों-आम्रवनोंसे युक्त सालोंकी मेखलावाली महती ॥१२॥

९. किलों, गहरी खाइयोंसे दुर्गम, शत्रुओं के हाथमें न आनेवाली।
घोड़ों-हाथियोंसे भरी तथा गौवों-ऊँटों और गदहोंसे खूब संपूर्ण ॥१३॥

१०. सामंत राजाओंके संघोंसे, शुल्कवालोंसे घिरी,
नाना देशके निवासियों बनियों द्वारा उपशोभित ॥१४॥

११. रत्नमय पर्वत समान प्रासादोंसे शोभित,
और इन्द्रकी अमरावती सी कूटागारोंसे संपूर्ण ॥१५॥

१२. विचित्र गुनहली, श्रेष्ठ नारीगणोंसे युक्त,
सारे रत्नोंसे समाकीर्ण, विमानगृहोंसे शोभित ॥१६॥

१३. गृहोंसे घनी अविरल समतल भूमिमें स्थापित,
धानके तंडुलोंसे संपूर्ण, ऊखके रसके जलवाली ॥१७॥

१४. दुन्दुभियों, मृदंगों और वीणाओं तथा नगारोंसे
बराबर निनादित पृथिवीमें अत्यन्त अनुपम ॥१८॥

१५. द्यौलोकमें तपसे प्राप्त सिद्धोंके विमानकी तरह,
अच्छी तरह रक्खे घरोंवाली, उत्तम नरोंसे घिरी ॥१९॥

१६. और जो (नरोत्तम) परस्पर, एकान्तमें वाणोंसे नहीं वेधते, (जो) शब्द वेध और विस्तृत (लक्ष्यमें) कुशल फुर्तीले हाथवाले हैं ॥२०॥

१७. वनमें गरजते मस्त सिंह-बाघ-सूअरोंकी,
तीक्ष्ण शस्त्रों और बाहुबलसे भी मारनेवाले ॥२१॥

१८. ऐसे हजारों महारथियोंसे परिपूर्ण पुरीको
उस समय राजा दशरथने आवासित कर रक्खा था ॥२२॥

१९. तामग्निमद्भिर्गुणवद्भिरावृतां, द्विजोत्तमैर्वेदषडंग-
पारगैः।
सहस्रदैः सत्यरतैर्महात्मभिर्महर्षिकल्पैर्ऋषिभिश्च
केवलैः ॥२३॥
—बालकाण्डे सर्गः ५

२. दशरथ-विलापः—

२०. ततः श्रुत्वा महाराजः कैकय्या दारुणं वचः।
चिंतामभिसमापेदे मुहूर्तं प्रतताप च ॥१॥

२१. "किं नु मेऽयं दिवास्वप्नश्चित्तमोहोऽपि वा मम।
अनुभूतोपसर्गो वा मनसो वाप्युपद्रवः" ॥२॥

२२. इति संचिंत्य तद्राजा नाध्यगच्छत्तदा सुखम्।
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां कैकेयीवाक्यतापितः ॥३॥

२३. व्यथितो विक्लवश्चैव व्याघ्रीं दृष्ट्वा यथा मृगः।
असंवृतायामासीनो जगत्यां दीर्घमुच्छ्वसन् ॥४॥

२४. मंडले पन्नगो रुद्धो मंत्रैरिव महाविषः।
"अहो धिगिति" सामर्षो वाचमुक्त्वा नराधिपः ॥५॥

२५. मोहमापेदिवान् भूयः शोकोपहतचेतनः।
चिरेण तु नृपः संज्ञां प्रतिलभ्य सुदुःखितः ॥६॥

२६. कैकेयीमब्रवीत्क्रुद्धो निर्दहन्निव तेजसा।
"नृशंसे दुष्टचारित्रे कुलस्यास्य विनाशिनि ॥७॥

२७. किं कृतं तव रामेण पापे पापं मयापि वा।
सदा ते जननीतुल्यां वृत्तिं वहति राघवः ॥८॥

२८. तस्यैवं त्वमनर्थाय किंनिमित्तमिहोद्यता।
त्वं मयात्मविनाशाय भवनं एवं निवेशिता ॥९॥

१९. अग्निसेवक गुणवान् षड़ंगवेद-पारंगत उत्तम ब्राह्मणोंने,
सहस्रोंके देनेवाले सत्यरत महर्षि समान महात्माओं और केवल
ऋषियोंसे घिरी पुरीको (राजाने) आवासित किया था॥२३॥

२. दशरथका विलाप—

२०. तब महाराज कैकेयीके दारुण वचनको सुनकर।
चिन्ताको प्राप्त हो मुहूर्त भर संतप्त हुये॥१॥

२१. "क्या यह मेरा दिवास्वप्न है या मेरा चित्त-मोह है।
अनुभव किया उपसर्ग[1] है, या मनका उपद्रव ही है॥२॥

२२. यह सोचते राजाने बादमें होशमें आकर,
कैकेयीके वचनसे संतापित, सुख नहीं पाया, ॥३॥

२३. बाघिनको देखकर मृगकी तरह विकलतासे पीड़ित,
नंगी धरतीपर बैठे लम्बी साँस लेते॥४॥

२४. मन्त्रों द्वारा महाविषैले सर्पकी तरह मण्डलमें रुंधे
"अहो, धिक्कार", यह वचन अमर्षके साथ कह नराधिप॥५॥

२५. शोकसे चेतना लुप्त हुये, फिर मूर्छाको प्राप्त हुये।
देरसे होशमें आकर नृप अति दुखित हो॥६॥

२६. क्रुद्ध होकर तेजसे जलाते हुये से कैकेयीसे बोले—
"कमीनी, दुष्टाचारिणी, इस कुलकी विनाशिका॥७॥

२७. पापिनी, रामने या मैंने ही तेरा क्या बिगाड़ा?
राम तेरे प्रति सदा जननीके समान भाव रखते हैं॥८॥

२८. उसीके अनर्थके लिए तू आज क्यों उद्यत है?
न जाननेके कारण मैंने अपने विनाशके लिये॥९॥

---

[1] प्रेतबाधा।

२९. अविज्ञानान्नृपसुता व्याला तीक्ष्णविषा यथा।
जीवलोको यदा सर्वो रामस्याह गुणस्तवम् ॥१०॥
३०. अपराधं कमुद्दिश्य त्यक्ष्यामीष्टमहं सुतम्।
कौसल्यांच सुमित्रां च त्यजेयमपि वा श्रियम् ॥११॥
३१. जीवितं चात्मनो रामं नत्वेव पितृवत्सलम्।
पराभवति मे प्रीतिर्दृष्ट्वा तनयमग्रजम् ॥१२॥
३२. अपश्यतस्तु मे रामं नष्टं भवति चेतनम्।
तिष्ठेल्लोको विना सूर्यं सस्यं वा सलिलं विना ॥१३॥
३३. नतु रामं विना देहे तिष्ठेत्तु मम जीवितम्।
तदलं त्यज्यतामेष निश्चयः पापनिश्चये ॥१४॥
३४. अपि ते चरणौ मूर्ध्ना स्पृशाम्येष प्रसीद मे।
किमर्थं चिंतितं पापे त्वया परमदारुणाम् ॥१५॥
३५. अथ जिज्ञाससे मां त्वं भरतस्य प्रियाप्रिये।
अस्तु यत्तत्त्वया पूर्वं व्याहृतं राघवं प्रति ॥१६॥
३६. स मे ज्येष्ठसुतः श्रीमान्धर्मज्येष्ठ इतीव मे।
तत् त्वया प्रियवादिन्या सेवार्थं कथितं भवेत् ॥१७॥
३७. तच्छ्रुत्वा शोकसंतप्ता संतापयसि मां भृशम्।
आविष्टासि गृहे शून्ये सा त्वं परवशंगता ॥१८॥
३८. इक्ष्वाकूणां कुले देवि, संप्राप्तः सुमहानयम्।
अनयो नयसंपन्ने यत्र ते विकृता मतिः ॥१९॥
३९. नहि किंचिदयुक्तं वा विप्रियं वा पुरा मम।
अकरोस्त्वं विशालाक्षि तेन न श्रद्दधामि ते ॥२०॥
४०. ननु ते राघवस्तुल्यो भरतेन महात्मना।
बहुशो हि स्म बाले त्वं कथाः कथयते मम ॥२१॥

२९. तेज विषवाली सर्पिणीकी तरह नृपकन्या तुझे अपने भवनमें प्रवेश
कराया। जब सारा जीवलोक रामके गुणकी प्रशंसा करता है, ॥१०॥

३०. तो किस अपराधके लिये मैं प्रिय सुतको प्रत्यागूं ?
कौसल्या और सुमित्रा और लक्ष्मीको भी ॥११॥

३१. और अपने जीवनको भी छोड़ दूं, पर पितृभक्त रामको नहीं।
ज्येष्ठ पुत्रको देखकर मुझे परम प्रसन्नता होती है ॥१२॥

३२. रामको न देख मेरी चेतना नष्ट होजाती है।
बिना सूर्यके लोक, बिना सलिलके सस्य भले ही रहें ॥१३॥

३३. लेकिन रामके बिना मेरे देहमें जीवन नहीं रहेगा।
इसलिए हे बुरे निश्चयवाली, बस कर, इस निश्चयको छोड़
दे ॥१४॥

३४. बल्कि, मैं तेरे चरणोंमें सिर डालता हूँ, मुझपर दया कर।
हे पापिन, किसलिए तूने इस परम दारुण कामकी सोची ॥१५॥

३५. यदि तू भरतके प्रिय या अप्रियकी बात मुझसे जानना चाहती है,
तो राघवके लिये जो तूने पहले कहा, वही होवे ॥१६॥

३६. वह मेरे श्रीमान् ज्येष्ठ पुत्र धर्ममें भी ज्येष्ठ ही हैं।
सो तुझ प्रियवादिनीने सेवाके लिए कहा होगा ॥१७॥

३७. सो सुनकर शोकसंतप्त हो तू मुझे बहुत सता रही है।
सो तू परके वश होकर शून्य घरमें प्रविष्ट हुई ॥१८॥

३८. हे देवि, इक्ष्वाकुओंके कुलमें यह बहुत बड़ा अन्याय,
[illegible] कुलमें अन्याय नया, जब कि तेरी मति बिगड़ी ॥१९॥

३९. हे विशालनेत्रे, तूने पहले कुछभी मेरा अप्रिय या अहित,
नहीं किया, इसीसे तुझपर विश्वास नहीं करता ॥२०॥

४०. राम तेरे लिये निस्संशय महात्मा भरतके तुल्य ही हैं,
हे बाले, तूने बहुत बार यह बात मुझसे कही ॥२१॥

४१. तस्य धर्मात्मनो देवि, वने वासं यशस्विनः ।
कथं रोचयसे भीरु नव वर्षाणि पंच च ॥२२॥

४२. अत्यंतसुकुमारस्य तस्य धर्मे कृतात्मनः ।
कथं रोचयसे वासमरण्ये भृशदारुणे ॥२३॥

४३. रोचयस्यभिरामस्य रामस्य शुभलोचने ।
तव शुश्रूषमाणस्य किमर्थं विप्रवासनम् ॥२४॥

४४. रामो हि भरताद् भूयस्तव शुश्रूषते सदा ।
विशेषं त्वयि तस्मात्तु भरतस्य न लक्षये ॥२५॥

४५. शुश्रूषां गौरवं चैव प्रमाणं वचनक्रियाम् ।
कस्तु भूयस्तरं कुर्यादन्यत्र पुरुषर्षभात् ॥२६॥

४६. बहूनां स्त्रीसहस्राणां बहूनां चोपजीविनाम् ।
परिवादोपवादो वा राघवेनोपपद्यते ॥२७॥

४७. सांत्वयन्सर्वभूतानि रामः शुद्धेन चेतसा ।
गृह्णाति मनुजव्याघ्रः प्रियैर्विषयवासिनः ॥२८॥

४८. सत्त्वेन लोकान् जयति द्विजान्दानेन राघवः ।
गुरूंछुश्रूषया वीरो धनुषा युधि शात्रवान् ॥२९॥

४९. सत्यं दानं तपस्त्यागो मित्रता शौचमार्जवम् ।
विद्या च गुरुशुश्रूषा ध्रुवाण्येतानि राघवे ॥३०॥

५०. तस्मिन्नार्जवसंपन्ने देवि देवोपमे कथम् ।
पापमाशंससे रामे महर्षिसमतेजसि ॥३१॥

५१. न स्मराम्यप्रियं वाक्यं लोकस्य प्रियवादिनः ।
स कथं त्वत्कृते रामं वक्ष्यामि प्रियमप्रियम् ॥३२॥

५२. क्षमा यस्मिंस्तपस्त्यागः सत्यं धर्मः कृतज्ञता ।
अप्यहिंसा च भूतानां तमृते का गतिर्मम ॥३३॥

४१. हे देवि, उस धर्मात्मा यशस्वीका नौ-पाँच वर्ष वनवास,
हे भीरु, तू क्यों पसन्द करती है ॥२२॥

४२. हे अतिदारुणे, अत्यन्त सुकुमार धर्ममें निष्णात उन रामका,
अरण्यमें वास तू कैसे पसन्द करती है ॥२३॥

४३. हे शुभ-लोचने, अपने तेरे शुश्रुषा करनेवाले,
सुन्दर रामका निर्वासन किसलिए चाहती है ॥२४॥

४४. राम तो हमेशा भरतसे भी ज्यादा तेरी शुश्रूषा करते हैं।
तेरे विषयमें तो भरतका विशेष मैं नहीं लखता ॥२५॥

४५. शुश्रूषा, गौरव, प्रमाण और वचन मानना,
पुरुषश्रेष्ठ रामसे अधिक दूसरा कौन करेगा ॥२६॥

४६. बहुत हजार स्त्रियों और बहुत नौकरोंका राघवके विषयमें
निन्दा और चुगली करना संभव नहीं है ॥२७॥

४७. पुरुष-व्याघ्र राम शुद्ध चित्तसे सारे प्राणियोंको सान्त्वना देते,
प्रेमके साथ देशवासियोंको ग्रहण करते हैं ॥२८॥

४८. राघव हिम्मतसे लोगोंको, दानसे द्विजोंको जीतते हैं,
सुश्रूषासे गुरुओंको, धनुषसे युद्धमें शत्रुओंको जीतते हैं ॥२९॥

४९. सत्य, दान, तप, त्याग, मित्रता, शुचिता, अकुटिलता,
विद्या और गुरुओंकी सुश्रूषा यह (गुण) राघवमें अचल हैं ॥३०॥

५०. हे देवि, उन सरल देवोपम महर्षि समान तेजस्वी,
रामके विषयमें, तू क्यों बुरा चाहती है ॥३१॥

५१. जिसका लोगोंके लिये (रामका) अप्रिय बात कहना मुझे याद नहीं,
सो मैं तेरे लिये प्रिय रामको कैसे अप्रिय कहूँगा ॥३२॥

५२. जिसमें क्षमा, तप, त्याग, सत्य, धर्म, कृतज्ञता,
और प्राणियोंके लिये अहिंसा भी है, उसके बिना मेरी क्या गति
होगी ॥३३॥

५३. मम वृद्धस्य कैकेयि गतांतस्य तपस्विनम् ।
दीनं लालप्यमानस्य कारुण्यं कर्तुमर्हसि ॥३४॥
५४. पृथिव्यां सागरांतायां यत्किंचिदधिगम्यते ।
तत्सर्वं तव दास्यामि मा च त्वं मृत्युमाविश ॥३५॥
५५. अंजलिं कुर्मि कैकेयि पादौ चापि स्पृशामि ते ।
शरणं भव रामस्य माऽधर्मो मामिह स्पृशेत्" ॥३६॥
—अयोध्याकांडे सर्गः १२

३. भरतयाच्ञा—

५६. उवाच भरतश्चित्रं धार्मिको धार्मिकं वचः —
"कोहि स्यादीदृशो लोको यादृशस्त्वमरिंदम ॥२॥
५७. न त्वां प्रव्यथयेद् दुःखं प्रीतिर्वा न प्रहर्षयेत् ।
संमतश्चापि वृद्धानां तांश्च पृच्छसि संशयान् ॥३॥
५८. यथा मृतस्तथा जीवन्यथा सति तथाऽसति ।
यस्यैष बुद्धिलाभः स्यात्परितप्येत केन सः ॥४॥
५९. परावरज्ञो यश्च स्याद्यथा त्वं मनुजाधिप ।
स एव व्यसनं प्राप्य न विषीदितुमर्हति ॥५॥
६०. अमरोपमसत्त्वस्त्वं महात्मा सत्यसंगरः ।
सर्वज्ञः सर्वदर्शी च बुद्धिमाँश्चासि राघव ॥६॥
६१. न त्वामेवंगुणैर्युक्तं प्रभवाभवकोविदम् ।
अविषह्यतमं दुःखमासादयितुमर्हसि ॥७॥
६२. प्रोषिते मयि यत्पापं मात्रा मत्कारणात्कृतम् ।
क्षुद्रया तदनिष्टं मे प्रसीदतु भवान्मम ॥८॥
६३. धर्मबंधेन बद्धोऽस्मि तेनेमां नेह मातरम् ।
हन्मि तीव्रेण दंडेन दंडार्हां पापकारिणीम् ॥९॥

५३. हे कैकेयि, (जीवन के) अन्तपर पहुँचे विलाप करते
बेचारे मुझ वृद्ध दीनपर करुणा कर ॥३४॥"

५४. सागर पर्यन्त पृथिवीमें जो कुछ प्राप्य है।
वह सब मैं तुझे दूंगा, लेकिन तू मुझे मृत्युमें न ढकेल ॥३५॥

५५. हे कैकेयि, हाथ जोड़ता हूँ और तेरे पैरोंको छूता हूँ, तू रामके लिए
शरण बन, जिसमें यहाँ धर्म मेरी निन्दा न करे ॥३६॥"

—अयोध्याकाण्ड सर्ग १२

३. भरतकी प्रार्थना—

५६. धार्मिक भरतने अद्भुत धार्मिक वचन कहा।
"हे अरिमर्दन, जैसे तुम हो ऐसा दुनियामें कौन हो सकता है ॥२॥

५७. तुम्हें दुःख नहीं पीड़ित करता, न ही प्रीति हर्षित करती।
वृद्धोंसे भी सम्मानित होते उनसे संशय पूछते हो ॥३॥

५८. जैसे मृत वैसे जीते जैसे होते वैसे न होते,
जिसको ऐसी बुद्धि प्राप्त हो, वह किससे परितप्त होगा ॥४॥

५९. वारपारका ज्ञाता जो हो, (वह वैसा ही हो) जैसे कि हे मनुजाधिप,
तुम हो। वही दुःखको पाकर विषादयुक्त नहीं हो सकता ॥५॥

६०. देवोपम सत्त्ववाले, तुम सत्यवादी महात्मा हो।
हे राघव, तुम सर्वज्ञ सर्वदर्शी और बुद्धिमान् हो ॥६॥

६१. सृष्टि-उत्पत्तिके जानकार ऐसे गुणोंसे युक्त तुम्हें,
असह्य दुःख वशमें नहीं कर सकता ॥७॥

६२. मेरे प्रवासके समय मूढ़ माँने मेरे लिए जो पाप किया,
वह मुझे पसन्द नहीं, मेरे ऊपर आप दया करें ॥८॥

६३. धर्मके बन्धनसे बंधा हुआ हूं, इसीसे यहाँ इस
दण्डनीय पापकारिणी माँको मैं तीव्र दण्डसे नहीं मारता ॥९॥

६४. कथं दशरथाज्जातः शुभाभिजनकर्मणः ।
जानन्धर्ममधर्मं च कुर्यां कर्म जुगुप्सितम् ।।१०।।

६५. गुरुः क्रियावान्वृद्धश्च राजा प्रेतः पितेति नः ।
तातं न परिगर्हेऽहं दैवतं चेति संसदि ।।११।।

६६. को हि धर्मार्थयोर्हीनमीदृशं कर्म किल्बिषम् ।
स्त्रियः प्रियचिकीर्षुः सन्कुर्याद्धर्मज्ञ धर्मवित् ।।१२।।

६७. अंतकाले हि भूतानि मुह्यंतीति पुरा श्रुतिः ।
राज्ञैवं कुर्वता लोके प्रत्यक्षा सा श्रुतिः कृता ।।१३।।

६८. साध्वर्थमभिसंधाय क्रोधान्मोहाच्च साहसात् ।
तातस्य तदतिक्रांतं प्रत्याहरतु तद् भवान् ।।१४।।

६९. पितुर्हि समतिक्रांतं पुत्रो यः साधु मन्यते ।
तदपत्यं मतं लोके विपरीतमतोऽन्यथा ।।१५।।

७०. तदपत्यं भवानस्तु मा भवान्दुष्कृतं पितुः ।
अति यत्तत्कृतं कर्म लोके धीरविगर्हितम् ।।१६।।

७१. कैकेयीं मां च तातं च सुहृदो बांधवांश्च नः ।
पौरजानपदान्सर्वांस्त्रातुं सर्वमिदं भवान् ।।१७।।

७२. क्व चारण्यं क्व च क्षात्रं क्व जटाः क्व च पालनम् ।
ईदृशं व्याहतं कर्म न भवान्कर्तुमर्हति ।।१८।।

७३. एष हि प्रथमो धर्मः क्षत्रियस्याभिषेचनम् ।
येन शक्यं महाप्राज्ञ प्रजानां परिपालनम् ।।१९।।

७४. इदं निखिलमप्यग्र्यं राज्यं पित्र्यमकंटकम् ।
अनुशाधि स्वधर्मेण धर्मज्ञः सह बांधवैः ।।२०।।

७५. इहैव त्वाभिषिंचंतु सर्वाः प्रकृतयः सह ।
ऋत्विजः सवसिष्ठाश्च मंत्रविन्मंत्रकोविदाः ।।२१।।

६४. [illegible] (नया)
धर्मको जानने [illegible] मैं कहूँ ॥१०॥

६५. गुरु, [illegible], मृत पिता और राजा, तथा देवता भी थे,
अतः [illegible] भी निन्दा नहीं करता ॥११॥

६६. धर्म और अर्थसे रहित ऐसा मलिन कर्म,
स्त्रीको प्रसन्न करनेकी इच्छासे धर्मज्ञ और धर्मवित् होते कौन करेगा ॥१२॥

६७. पुरानी कहावत है-अन्तकालमें प्राणी मोहमें पड़ जाते हैं।
ऐसा करके राजाने उसी बातको संसारमें प्रत्यक्ष कर दिया ॥१३॥

६८. अच्छी बात समझकर [illegible] मोह और साहससे,
राजाने जो गलती की, उसको आप हटा दें ॥१४॥

६९. पिताकी गलती जो पुत्र ठीक मानता है,
वह संसारमें पुत्र माना जाता है, नहीं तो उलटा है ॥१५॥

७०. सो आप पिताके आत्मज हों, [illegible] नहीं
जो संसारमें धीरों द्वारा निन्दित अतिकर्म किये ॥१६॥

७१. कैकेयीको मुझे और तातकी सुहृदोंको और हमारे बन्धुओंको,
पुरवासियोंको ग्रामवासियोंको सबको त्राण करनेके लिये
[illegible] करो ॥१७॥

७२. कहाँ वन और कहाँ क्षत्रियत्व? कहाँ जटा और कहाँ प्रजापालन?
ऐसा उलटा काम आपको नहीं करना चाहिए ॥१८॥

७३. अभिषेक करना यही क्षत्रियका प्रथम धर्म है।
[illegible] जाता है ॥१९॥

७४. [illegible]
[illegible]

७५. [illegible]
[illegible]

७६. अभिषिक्तस्त्वमस्माभिरयोध्यां पालने व्रज ।
विजित्य तरसा लोकान्मरुद्भिरिव वासवः ॥२७॥
७७. ऋणानि त्रीण्यपाकुर्वन्दुर्हृदः साधु निर्दहन् ।
सुहृदस्तर्पयन्कामैस्त्वमेवात्रानुशाधि माम् ॥२८॥
७८. अद्यार्य मुदिताः संतु सुहृदस्तेऽभिषेचने ।
अद्य भीताः पलायंतु दुष्प्रदारास्ते दिशो दश ॥२९॥
७९. आक्रोशं मम मातुश्च प्रमृज्य पुरुषर्षभ ।
अद्य तत्र भवंतं च पितरं रक्ष किल्बिषात् ॥३०॥
८०. शिरसा त्वाभियाचेऽहं कुरुष्व करुणां मयि ।
बांधवेषु च सर्वेषु भूतेष्विव महेश्वरः ॥३१॥
८१. अथवा पृष्ठतः कृत्वा वनमेव भवानितः ।
गमिष्यति गमिष्यामि भवता सार्धमप्यहम्" ॥३२॥
८२. तथाभिरामो भरतेन ताम्यता
प्रसाद्यमानः शिरसा महीपतिः ।
न चैव चक्रे गमनाय सत्त्ववान्
मतिं पितुस्तद्वचने प्रतिष्ठितः ॥३३॥
—अयोध्याकांडे सर्गः १०[illegible]

४. वियोगी रामः—

८३. "सौमित्रे, शोभते पंपा वैदूर्यविमलोदका ।
फुल्लपद्मोत्पलवती शोभिता विविधैर्द्रुमैः ॥२॥
८४. सौमित्रे, पश्य पंपायाः काननं शुभदर्शनम् ।
यत्र राजंति शैला वा द्रुमाः सशिखरा इव ॥४॥
८५. मां तु शोकाभिसंतप्तमाधयः पीडयंति वै ।
भरतस्य च दुःखेन वैदेह्या हरणेन च ॥५॥

७६. हमारे साथ अभिषिक्त होकर प्रजापालनके लिये तुम अयोध्या आओ। मरुतोंके साथ इन्द्रकी तरह पराक्रमसे लोकोंपर विजय करने के लिये ॥२७॥

७७. तीनों ऋणोंको हटाते दुष्टोंको अच्छी तरह दमन करते,
सुहृदोंकी कामनाओंको पूरा करते, तुम्हीं यहाँ मुझे शिक्षा दो ॥२८॥

७८. हे आर्य, आज तुम्हारे अभिषेकसे मित्र लोग मुदित हों।
तुम्हारे शत्रु आज भयभीत हो दसों दिशाओंमें भागें ॥२९॥

७९. हे पुरुषसिंह, मेरे और माँके अपयशको मार्जित कर,
आज पिताको भी पापसे बचाओ ॥३०॥

८०. मैं (अपना) सिर (पैरों पर) रख याचना करता हूँ, मेरे ऊपर करुणा करो। और प्राणियोंके ऊपर महेश्वरकी तरह सारे बान्धवों पर करुणा करो ॥३१॥

८१. अथवा पीठ फेरकर यहाँसे यदि आप वन ही
जायेंगे, तो आपके साथ मैं भी जाऊँगा ॥३२॥"

८२. इस प्रकार संतप्त भरत द्वारा सिर झुकाकर मनाये जाते सुन्दर महीपति, सत्त्ववान् रामने पिताके उस वचनमें प्रतिष्ठित रह लौटनेका विचार नहीं किया ॥३३॥

—अयोध्याकाण्ड सर्ग १०६

४. वियोगी राम—

८३. "हे सौमित्रि, देखो धीरे निर्मल जलवाली पंपा सोह रही है।
फूले पद्म [illegible], नाना प्रकारके वृक्षोंसे शोभित ॥३॥

८४. सौमित्रि, पंपाके वनको देखो देखो।
जहाँ [illegible] दिखलाते हैं ॥४॥

८५. शोकसे संतप्त मुझे [illegible] पीड़ित कर रही हैं,
भरतके दुःख और वैदेहीके हरणके कारण ॥५॥

८६. शोकार्तस्यापि मे पंपा शोभते चित्रकानना।
व्यवकीर्णा बहुविधैः पुष्पैः शीतोदका शिवा ॥६॥

८७. नलिनैरपि संछन्ना ह्यत्यर्थशुभदर्शना।
सर्पव्यालानुचरिता मृगद्विजसमाकुला ॥७॥

८८. अधिकं प्रविभात्येतन्नीलपीतं तु शाद्वलम्।
द्रुमाणां विविधैः पुष्पैः परिस्तोमैरिवार्पितम् ॥८॥

८९. पुष्पभारसमृद्धानि शिखराणि समंततः।
लताभिः पुष्पिताग्राभिरुपगूढानि सर्वतः ॥९॥

९०. सुखानिलोऽयं सौमित्रे कालः प्रचुरमन्मथः।
गंधवान्सुरभिर्मासो जातपुष्पफलद्रुमः ॥१०॥

९१. पश्य रूपाणि सौमित्रे वनानां पुष्पशालिनाम्।
सृजतां पुष्पवर्षाणि वर्षतोयमुचामिव ॥११॥

९२. प्रस्तरेषु च रम्येषु विविधा काननद्रुमाः।
वायुवेगप्रचलिताः पुष्पैरवकिरंति गाम् ॥१२॥

९३. पतितैः पतमानैश्च पादस्थैश्च मारुतः।
कुसुमैः पश्य सौमित्रे क्रीडतीव समंततः ॥१३॥

९४. विक्षिपन्विविधाः शाखा नगानां कुसुमोत्कटाः।
मारुतश्चलितः स्थानैः षट्पदैरनुगीयते ॥१४॥

९५. मत्तकोकिलसन्नादैर्नर्तयन्निव पादपान्।
शैलकंदरनिष्क्रांतं प्रगीत इव चानिलः। ॥१५॥

९६. तेन विक्षिपताऽत्यर्थं पवनेन समंततः।
अमी संसक्तशाखाग्रा ग्रथिता इव पादपाः ॥१६॥

९७. स एव सुखसंस्पर्शो वाति चंदनशीतलः
गंधमभ्यवहन्पुण्यं श्रमापनयनोऽनिलः ॥१७॥

८६. शोक-पीड़ित भी मुझे विचित्र वनोंवाली पंपा सुन्दर लग रही है—
बहुत प्रकारके पुष्पोंसे आकीर्ण शीतल जलवाली कल्याणी पंपा ॥६॥

८७. कमलोंसे भी आच्छादित अत्यन्त शुभदर्शना,
सर्प-हिंस्रजन्तुओंकी विचरण-भूमि मृगों और पक्षियोंसे समाकीर्ण ॥७॥

८८. यह नीली-पीली हरियाली अधिक प्रकाश रही है।
मानो वृक्षोंके नाना प्रकारके पुष्पोंके गुच्छोंसे अर्पित ॥८॥

८९. चारों ओर यहाँ पुष्पभारसे समृद्ध पर्वत-शिखर हैं,
जो चारों ओर फूली लताओंसे ढंके हुये हैं ॥९॥

९०. सौमित्रे, सुखद वायुवाला यह समय अधिक कामोत्तेजक है।
गन्धवान् सुगन्धित उत्पन्न पुष्प-फलवाले वृक्ष हैं ॥१०॥

९१. सौमित्रे, पुष्पशाली वनोंके रूपोंको देखो,
(जो) बादलोंकी वर्षाकी तरह पुष्पोंकी वर्षा करते हैं ॥११॥

९२. और रमणीय पत्थरोंपर नाना प्रकारके वनवृक्ष,
वायुके वेगसे चालित पृथिवीपर फूल बिखेरते हैं ॥१२॥

९३. सौमित्रे, गिरे और गिर रहे तथा वृक्षपर स्थित कुसुमोंके साथ,
मानो वायु चारों ओर क्रीड़ा सा कर रहा है ॥१३॥

९४. पर्वतोंकी प्रफुल्लित नाना शाखाओंको हिलाते,
स्थानसे चलित वायुका भ्रमर अनुगान कर रहे हैं ॥१४॥

९५. मत्त कोकिलोंके नादोंसे वृक्षोंको नचाते हुये से,
पर्वत-कंदरासे निकला वायु मानो गा रहा है ॥१५॥

९६. चारों ओर जोरसे फेंकते उस पवन द्वारा,
मानो लगे यह वृक्ष गुँथे से हैं ॥१६॥

९७. वही चंदन सा शीतल शुभ्र स्पर्शवाला पवित्र गन्ध
बहुत [illegible] श्रमहर [illegible] अनिल बह रहा
है ॥१७॥

९८. अमी पवनविक्षिप्ता विनंदतीव पादपाः।
षट्पदैरनुकूजद्भिर्वनेषु मधुगंधिषु ॥१८॥
९९. गिरिप्रस्थेषु रम्येषु पुष्पवद्भिर्मनोरमैः।
संसक्तशिखराः शैला विराजंति महाद्रुमैः ॥१९॥
१००. पुष्पसंछन्नशिखरा मारुतोत्क्षेपचंचलाः।
अमी मधुकरोत्तंसाः प्रगीता इव पादपाः ॥२०॥
१०१. सुपुष्पितांस्तु पश्यैतान्कर्णिकारान्समंततः
हाटकप्रतिसंछन्नान्नरान्पीतांबरानिव ॥२१॥
१०२. अयं वसंतः सौमित्रे, नानाविहगनादितः।
सीतया विप्रहीणस्य शोकसंदीपनो मम ॥२२॥
१०३. मां हि शोकसमाक्रांतं संतापयति मन्मथः।
हृष्टं प्रवदमानश्च समाह्वयति कोकिलः ॥२३॥
१०४. एष दात्यूहको हृष्टो रम्ये मां वननिर्झरे।
प्रणदन्मन्मथाविष्टं शोचयिष्यति लक्ष्मण ॥२४॥
१०५. श्रुत्वैतस्य पुरा शब्दमाश्रमस्था मम प्रिया।
मामाहूय प्रमुदिता परमं प्रत्यनंदत ॥२५॥
१०६. एवं विचित्राः पतगा नानारावविराविणः।
वृक्षगुल्मलताः पश्य सम्पतन्ति समंततः ॥२६॥
१०७. विमिश्रा विहगाः पुंभिरात्मव्यूहाभिनंदिताः।
भृङ्गराजप्रमुदिताः सौमित्रे मधुरस्वराः ॥२७॥
१०८. अस्याः कूले प्रमुदिताः संघशः शकुनास्त्विह।
दात्यूहरतिविक्रन्दैः पुंस्कोकिलरुतैरपि ॥२८॥
१०९. स्वनंति पादपाश्चैमे ममानंगप्रदीपकाः।
अशोकस्तवकांगारः षट्पदस्वननिःस्वनः ॥२९॥

९८. पवनसे झकोरे जाते यह वृक्ष मधुर गन्धवाले वनोंमें कूजन करते
भ्रमरों द्वारा मानो हाव कर रहे हैं ॥१८॥

९९. रमणीय गिरिभूमिमें पुष्पयुक्त मनोरम महावृक्षोंसे,
लगे शिखरवाले शैल विराज रहे हैं ॥१९॥

१००. पुष्पसे ढंके शिखरदार, हवाके उठानेसे चंचल,
मधुकर-आभूषणवाले ये वृक्ष गाते से मालूम होते हैं ॥२०॥

१०१. इन सुपुष्पित कर्णिकारोंको चारों ओर देखो,
मानो सुवर्णसे ढंके पीत-वस्त्रवाले नर हैं ॥२१॥

१०२. सौमित्रे, नाना पक्षियोंसे निनादित यह वसन्त,
सीतासे वियुक्त मेरे लिए शोक-उत्तेजक है ॥२२॥

१०३. कामदेव शोकसे पीड़ित मुझे संतप्त कर रहा है।
बोलता कालकंठ हर्षित हो पुकार रहा है ॥२३॥

१०४. हे लक्ष्मण, रमणीय वन-निर्झरमें यह कोयल हर्षित हो,
नाद करती कामपीड़ित मुझे शोकाकुल करेगी ॥२४॥

१०५. पहले आश्रममें स्थित मेरी प्रिया इसके शब्दको सुनकर,
मुझे पुकारकर प्रमुदित हो अत्यन्त प्रसन्न होती थी ॥२५॥

१०६. देखो, इस प्रकारके नाना कलरव करनेवाले विचित्र पक्षी,
वृक्षों, झाड़ियों, लताओं पर चारों ओरसे आकर जमा हैं ॥२६॥

१०७. सौमित्रे, अपने समूहके नरोंसे मिश्रित विहग आनन्दित,
मीठे स्वरसे भृङ्गराज प्रमुदित हैं ॥२७॥

१०८. इस (पम्पा) के [illegible] यहाँ [illegible] पक्षी प्रमुदित हैं,
[illegible] ॥२८॥

१०९. यह वृक्ष [illegible] शब्द कर रहे हैं।
भ्रमरकी ध्वनिकी आवाज, [illegible] अंगार ॥२९॥

११०. मां हि पल्लवताम्रार्चिर्वसंताग्निः प्रधक्ष्यति।
नहि तां सूक्ष्मपद्माक्षीं सुकेशीं मृदुभाषिणीम् ॥३०॥

१११. अपश्यतो मे सौमित्रे, जीवितेऽस्ति प्रयोजनम्।
अयं हि रुचिरस्तस्याः काले रुचिरकाननः ॥३१॥

११२. कोकिलाकुलसीमंतो दयितायाः ममानघ।
मन्मथायाससंभूतो वसंतगुणवर्धितः ॥३२॥

११३. अयं मां धक्ष्यति क्षिप्रं शोकाग्निर्न चिरादिव।
अपश्यतस्तां वनितां पश्यतो रुचिरान्द्रुमान् ॥३३॥

११४. ममायमात्मप्रभवो भूयस्त्वमुपयास्यति।
अदृश्यमाना वैदेही शोकं वर्धयतीह मे ॥३४॥

११५. दृश्यमानो वसंतश्च स्वेदसंसर्गदूषकः।
मां हि सा मृगशावाक्षी चिंताशोकबलात्कृतम् ॥३५॥

११६. संतापयति सौमित्रे क्रूरश्चैत्रवनानिलः।
अमी मयूरा शोभंते प्रनृत्यंतस्ततस्ततः ॥३६॥

११७. स्वैः पक्षैः पवनोद्धूतैर्गवाक्षैः स्फाटिकैरिव।
शिखिनीभिः परिवृतास्त एते मदमूर्छिताः ॥३७॥

११८. मन्मथाभिपरीतस्य मम मन्मथवर्धनाः।
पश्य लक्ष्मण, नृत्यंतं मयूरमुपनृत्यति ॥३८॥

११९. शिखिनी मन्मथार्तैषा भर्तारं गिरिसानुनि।
तामेव मनसा रामां मयूरोऽप्यनुधावति ॥३९॥

१२०. वितत्य रुचिरो पक्षौ रुतैरुपहसन्निव।
मयूरस्य वने नूनं रक्षसा न हृता प्रिया ॥४०॥

१२१. तस्मान्नृत्यति रम्येषु वनेषु सह कांतया।
मम त्वयं विना वासः पुष्पमासे सुदुःसहः ॥४१॥

११०. पल्लवकी लालज्वालावाली वसन्तकी आग, मुझे अवश्य जलायेगी।
उस सूक्ष्म पल्कोंवाली सुकेशी मृदुभाषिणीको, ॥३०॥

१११. बिना देखे हे सौमित्रे, जीवनका प्रयोजन नहीं है,
उसके (रहते) समय मेरे लिये यह सुन्दर कानन रुचिर था ॥३१॥

११२. हे निष्पाप, मेरी प्रियाका कोकिलाओंके सीमन्त
कामदेवके प्रयाससे उत्पन्न वसन्तके गुणोंसे वर्धित ॥३२॥

११३. यह शोकाग्नि तुरन्त बिना देर किये ही मुझे जलायेगी।
उस वनिताको बिना देखे सुन्दर वृक्षोंको देखते ॥३३॥

११४. यह कामदेव मुझे अधिकताको प्राप्त होगा।
न दीखती वैदेही मेरे शोकको अब बढ़ायेगी ॥३४॥

११५. और स्वेदके संसर्गसे दूषित करनेवाला दीखता वसन्त,
वह मृग छौनोंसी आँखोंवाली,

११६. चैतका क्रूर वन-पवन हे सौमित्रे, चिन्ता-शोकके शिकार मुझे संतप्त कर रहा है
जहाँ-तहाँ नाचते यह मोर शोभा दे रहे हैं ॥३५, ३६॥

११७. स्फटिकके गीखोंकेसे पवनसे कंपते अपने पंखों द्वारा,
मयूरियोंसे घिरे यह (मयूर) मदमें मूर्छित हैं ॥३७॥

११८. मन्मथसे आविष्ट मेरे मन्मथको बढ़ानेवाले,
लक्ष्मण, देखो, पर्वतके सानुपर नाचते पति-मयूरके पास ॥३८॥

११९. यह कामार्त मयूरी नाच रही है।
मयूर भी उसी सुन्दरीके पीछे-पीछे दौड़ रहा है ॥३९॥

१२०. रुचिर पंखोंको फैलाकर शब्दोंसे उपहाससे करते,
मयूरके वनमें निश्चय राक्षसने प्रियाको नहीं हरा ॥४०॥

१२१. [illegible] रमणीय वनोंमें कान्ताके साथ यह नाच रहा है।
फूलोंके महीनेमें उस (प्रिया) के बिना मेरा यह निवास अति-दुस्सह है ॥४१॥

१२२. पश्य लक्ष्मण, संरागस्तिर्यग्योनिगतोऽप्यपि ।
अधुना शिखिनी कामाद् भर्तारमभिवर्तते ॥४२॥

१२३. समाप्येवं विशालाक्षी जानकी जातसंभ्रमा ।
मदनेनाभिवर्तेत यदि नापहृता भवेत् ॥४३॥

१२४. पश्य लक्ष्मण, पुष्पाणि निष्फलानि भवंति मे ।
पुष्पभारसमृद्धानां वनानां शिशिरात्यये ॥४४॥

१२५. रुचिराण्यपि पुष्पाणि पादपानामतिश्रिया ।
निष्फलानि महीं यांति समं मधुकरोत्करैः ॥४५॥

१२६. नदंति कामं शकुना मुदिताः संघशः कलम् ।
आह्वयंत इवान्योन्यं कामोन्मादकरा मम ॥४६॥

१२७. वसंतो यदि तत्रापि यत्र मे वसति प्रिया ।
नूनं परवशा सीता सा हि शोचत्यहं यथा ॥४७॥

१२८. नूनं न तु वसंतस्तं देशं स्पृशति यत्र सा ।
कथं ह्यसितपद्माक्षी वर्तयेत्सा मया विना ॥४८॥

१२९. अथवा वर्तते तत्र वसंतो यत्र मे प्रिया ।
किं करिष्यति सुश्रोणी सा तु निर्भर्त्सिता परैः ॥४९॥

१३०. श्यामा पद्मपलाशाक्षी मृदुभाषा च मे प्रिया ।
नूनं वसंतमासाद्य परित्यक्ष्यति जीवितम्" ॥५०॥

—किष्किन्धाकांडे सर्गः १

५. वर्षा—

१३१. स तदा वालिनं हत्वा सुग्रीवमभिषिच्य च ।
वसन्माल्यवतः पृष्ठे रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥१॥

१२२. लक्ष्मण, हैवानोंमें भी राग देखो।
अब मयूरी कामवश पतिका पीछा कर रही है ॥४२॥

१२३. विशालाक्षी मेरी जानकी भी जल्दी-जल्दी,
मदन परवशा होती, यदि हरी न जाती ॥४३॥

१२४. लक्ष्मण, देखो, मेरे लिये फूल निष्फल हैं।
शिशिरके अन्तमें पुष्पभारसे समृद्ध वनोंके ॥४४॥

१२५. वृक्षोंके अतिशोभासे रुचिर पुष्प भी,
मधुकरोंके समूह के साथ निष्फल हो पृथिवीपर गिर जाते हैं ॥४५॥

१२६. मुदित पक्षी संघबद्ध हो भले ही मधुर नाद करें।
एक दूसरेको पुकारते मेरे लिये तो वह काम-उन्माद करनेवाले हैं ॥४६॥

१२७. यदि वसन्त वहाँ भी है, जहाँ मेरी प्रिया बसती है, तो
निश्चय परवशा वह सीता भी मेरी तरह शोकार्त होगी ॥४७॥

१२८. निश्चय जहाँ वह है, उस स्थानको वसन्त नहीं छूता।
पद्मों जैसी काली आँखोंवाली वह मेरे बिना कैसे रहती होगी ॥४८॥

१२९. अथवा जहाँ मेरी प्रिया है, वहाँ वसन्त वर्तमान है।
पर, दूसरोंसे त्रासित वह सुअंगी क्या करे ॥४९॥

१३०. श्यामा पद्मपत्राक्षी और मृदुभाषिणी मेरी प्रिया,
निश्चय वसन्तको प्राप्त कर वह जीवन छोड़ देगी" ॥५०॥

—किष्किंधाकाण्ड सर्ग १

५. वर्षा—

१३१. तब बालीको मारकर और सुग्रीवका अभिषेक कर,
माल्यवान् पर्वतकी पीठपर बसते उन (राम)ने लक्ष्मणसे कहा ॥१॥

१३२. "अयं स कालः संप्राप्तः समयोऽद्य जलागमः।
संपश्य त्वं नभो मेघैः संवृतं गिरिसंनिभैः ॥२॥
१३३. नवमासधृतं गर्भं भास्करस्य गभस्तिभिः।
पीत्वा रसं समुद्राणां द्यौः प्रसूते रसायनम् ॥३॥
१३४. शक्यमंबरमारुह्य मेघसोपानपंक्तिभिः।
कुटजार्जुनमालाभिरलंकर्तुं दिवाकरः ॥४॥
१३५. संध्यारागोत्थितैस्ताम्रैरंतेष्वपि च पांडुभिः।
स्निग्धैरभ्रपटच्छेदैर्बद्धव्रणमिवांबरम् ॥५॥
१३६. मंदमारुतनिःश्वासं संध्याचंदनरंजितम्।
आ पांडुजलदं भाति कामातुरमिवांबरम् ॥६॥
१३७. एषा धर्मपरिक्लिष्टा नववारिपरिप्लुता।
सीतेव शोकसंतप्ता मही बाष्पं विमुंचति ॥७॥
१३८. मेघोदरविनिर्मुक्ताः कर्पूरदलशीतलाः।
शक्यमंजलिभिः पातुं वाताः केतकगंधिनः ॥८॥
१३९. एष फुल्लार्जुनः शैलः केतकैरभिवासितः।
सुग्रीव इव शांतारिर्धाराभिरभिषिच्यते ॥९॥
१४०. मेघकृष्णाजिनधरा धारायज्ञोपवीतिनः।
मारुतापूरितगुहाः प्राधीता इव पर्वताः ॥१०॥
१४१. कशाभिरिव हैमीभिर्विद्युद्भिरभिताडितम्।
अंतस्तनितनिर्घोषं संवेदनमिवांबरम् ॥११॥
१४२. नीलमेघाश्रिता विद्युत्स्फुरंती-प्रतिभाति मे।
स्फुरंती रावणस्यांके वैदेहीव तपस्विनी ॥१२॥
१४३. इमास्ता मन्मथवतां हिताः प्रतिहता दिशः।
अनुलिप्ता इव घनैर्नष्टग्रहनिशाकराः ॥१३॥

१३२. "यह वह काल आ गया, आज वर्षाका समय है।
देखो, गिरि सदृश मेघोंसे आकाश ढंका है ॥२॥
१३३. समुद्रोंके रसको पीकर भास्करकी किरणों द्वारा,
नौ मास गर्भमें धारण किये द्यौलोक रसायन प्रसव कर रहा है ॥३॥
१३४. अम्बरपर चढ़कर मेघरूपी सीढ़ीकी पंक्तियों द्वारा,
कुटज और अर्जुनकी मालाओंसे दिवाकरको अलंकृत करने को ॥४॥
१३५. और इनमें भी सन्ध्या-रागसे उठे लाल और पाण्डुर,
चिकने मेघपटोंके टुकड़ोंसे घाव-बंधा अम्बर ॥५॥
१३६. मन्द वायुके निःश्वास द्वारा सन्ध्या रूपी चन्दनसे रंगा,
थोड़ा पाण्डु मेघवाला अम्बर कामातुर सा मालूम होता है ॥६॥
१३७. घामसे क्लेशित नये जलसे लथपथ,
शोक-संतप्त सीता सी यह पृथिवी आँसू बहा रही है ॥७॥
१३८. मेघके उदरसे निकले, कपूरके दलसे शीतल,
केवड़ेके गन्धवाले वायु अंजलियोंसे पिये जा सकते हैं ॥८॥
१३९. फूले अर्जुनवाला केवड़ोंसे वासित यह शैल,
शमित-शत्रुवाले सुग्रीवसे धाराओं द्वारा अभिषिक्त हो रहे हैं ॥९॥
१४०. मेघरूपी काले मृगचर्मको धारण करनेवाले, धारारूपी यज्ञोपवीत वाले, मारुतसे भरी गुहाओंवाले यह पर्वत मानो अध्ययन कर रहे हैं ॥१०॥
१४१. सुनहले चाबुकों जैसी बिजलियों द्वारा ताड़ित,
भीतर कड़कके घोषवाला पीड़ित सा है अम्बर ॥११॥
१४२. नील मेघमें आश्रित काँपती बिजली रावणकी गोदमें,
बेचारी वैदेही सी काँपती मुझे जान पड़ती है ॥१२॥
१४३. यह काम-पीड़ितोंकी हत-प्रतिहत दिशायें,
बादलोंसे अनुलिप्त मानो ग्रह-शून्य चन्द्रमावाली हैं ॥१३॥

१४४. क्वचिद्बाष्पाभिसंरुद्धान्वर्षागमसमुत्सुकान् ।
कुटजान्पश्य सौमित्रे, पुष्पितान्गिरिसानुषु ।
मम शोकाभिभूतस्य कामसंदीपनान्स्थितान् ॥१४॥

१४५. रजः प्रशांतं सहिमोऽद्य वायुर्निदाघदोषप्रसराः प्रशांताः ।
स्थिता हि यात्रा वसुधाधिपानां
प्रवासिनो यांति नराः स्वदेशान् ॥१५॥

१४६. संप्रस्थिता मानसवासलुब्धाः
प्रियान्विताः संप्रति चक्रवाकाः ।
अभीक्ष्णवर्षोदकविक्षतेषुयानानिमार्गेषुनसंपतंति ॥१६॥

१४७. क्वचित्प्रकाशं क्वचिदप्रकाशं नभः प्रकीर्णाम्बुधरं
विभाति । क्वचित्क्वचित्पर्वतसंनिरुद्धं
रूपं यथा शांतमहार्णवस्य ॥१७॥

१४८. व्यामिश्रितं सर्जकदंबपुष्पैर्नवं जलं पर्वतधातुताम्रम् ।
मयूरकेकाभिरनुप्रयातं शैलापगाः शीघ्रतरं वहंति ॥१८॥

१४९. रसाकुलं षट्पदसंनिकाशं प्रभुज्यते जंबुफलं प्रकामम् ।
अनेकवर्णं पवनावधूतं भूमौ पतत्याम्रफलं विपक्वम् ॥१९॥

१५०. विद्युत्पताकाः सबलाकमालाः शैलेंद्रकूटाकृतिसंनिकाशाः ।
गर्जन्ति मेघाः समुदीर्णनादा
मत्ता गजेंद्रा इव संयुगस्थाः ॥२०॥

१५१. वर्षोदकाप्यायितशाद्वलानि प्रवृत्तनृत्तोत्सवबर्हि-
णानि ।
वनानि निर्वृष्टबलाहकानि
पश्यापराह्णेष्वधिकं विभांति ॥२१॥

१४४. हे सौमित्रे, पर्वतोंके सानुओंपर कहीं चारों ओर रुद्ध,
वर्षाके आनेसे उत्सुक फूले कुटजोंको देखो, (जो) ।
शोक-पीड़ित मुझे कामोद्दीपन करते खड़े हैं ॥१४॥

१४५. धूलियाँ दब गईं, आज वह वायु शीतल है, वर्षाके दोषका फैलाव
प्रशान्त है। राजाओंकी यात्रा थम गई, प्रवासी नर अपने देशोंको
लौट रहे हैं ॥१५॥

१४६. अब मानसके निवासके लोभी चक्रवाक प्रियासहित प्रस्थान
कर चुके। बराबर बरसते पानीसे टूटे मार्गों पर यान नहीं
चलते ॥१६॥

१४७. कहीं सप्रकाश और कहीं अप्रकाश नभ मेघोंसे भरा दीख रहा है।
कहीं-कहीं वह पर्वतकी तरह रुका शान्त महासागर के रूप
सा है ॥१७॥

१४८. सर्ज-कदंबके पुष्पोंसे मिश्रित पर्वतके धातुओंसा लाल नवीन जल है,
मयूरोंकी ध्वनियोंसे अनुगमन की जाती पहाड़ी नदियाँ अधिक
तेजीसे बहती हैं ॥१८॥

१४९. भ्रमर समान वर्णवाले रससे भरे जामुनके फलको खूब खा रहा है।
पवनसे हिला अनेक रंगोंका पक्व आम्रफल भूमिपर गिर रहा है ॥१९

१५०. विद्युत्की पताका, बगुलोंकी माला सहित महापर्वतके शिखरके
आकारसे, ऊँचे गरजते मस्त गजेन्द्रोंसे युद्ध करते से मेघ गरज रहे
हैं ॥२०॥

१५१. वर्षाके जलसे तृप्त तृणोंवाले, नृत्योन्मत्तों लगे मोरोंवाले, नवरसे मे-
घवाले वनोंको देखो, वह अपराह्णमें अधिक शोभा दे रहे हैं ॥२१॥

१५२. बगुले वाले मेघ सलिलके भारी भारको ढोते, नाद करते,
पर्वतोंके बड़े-बड़े शिखरोंपर विश्राम कर-करके फिर प्रयाण
कर रहे हैं ॥२२॥

१५२. समुद्वहंत: सलिलातिभारं बलाकिनो वारिधरा नदंत: ।
महत्सु श्रृंगेषु महीधराणां
विश्रम्य विश्रम्य पुन: प्रयांति ॥२२॥

१५३. मेघाभिकामा परिसंपतंती
संमोदिता भाति बलाकपंक्ति: ।
वातावधूता वरपौंडरीकी
लंबेव माला रुचिरांबरस्य ॥२३॥

१५४. बालेंद्रगोपांतरचित्रितेन विभाति भूमिर्नवशाद्वलेन ।
गात्रानुपृक्तेन शुकप्रभेण
नारीव लाक्षोक्षितकंबलेन ॥२४॥

१५५. निद्रा शनै: केशवमभ्युपैति द्रुतं नदी सागरमभ्युपैति ।
हृष्टा बलाका घनमभ्युपैति
कांता सकामा प्रियमभ्युपैति ॥२५॥

१५६. जाता वनांता: शिखिसुप्रनृत्ता
जाता कदंबा: सकदंबशाखा:
जाता वृषा गोषु समानकामा
जाता मही सस्यवनाभिरामा ॥२६॥

१५७. वहंति वर्षंति नदंति भांति
ध्यायंति नृत्यंति समाश्वसंति ॥
नद्यो घना मत्तगजा वनांता:
प्रियाविहीना: शिखिन: प्लवंगमा: ॥२७॥

१५८. प्रहर्षिता: केतकिपुष्पगंधमाघ्राय मत्ता वननिर्झरेषु ।
प्रपातशब्दाकुलिता गजेंद्रा:
सार्धं मयूरै: समदा नदंति ॥२८॥

१५९. धारानिपातैरभिहन्यमाना: कदंबशाखासु विलंबमाना: ।
क्षणार्जितं पुष्परसावगाढं शनैर्मदं षट्चरणास्त्यजंति ॥२९

१५३. मेघकी कामनावाली सम्मोदित बगलोंकी पांती चारों ओरसे इकट्ठा हो शोभा देती है। मानो हवासे कम्पित श्रेष्ठ श्वेतकमलों की लटकती रुचिर अम्बरकी माला हैं॥२३॥

१५४. शिशु वीरबहूटी द्वारा भीतर चित्रित नये तृणोंसे युक्त भूमि, मानो गात्रके लगे तोतेके रंगवाले लाखसे रंगे दुशाले युक्त नारी है॥२४॥

१५५. विष्णुके पास धीरे-धीरे निद्रा आ रही है, नदी शीघ्र सागरके पास जा रही है। हर्षित बगले मेघके पास जा रहे हैं, संतुष्ट कान्ता प्रियाके पास जा रही है॥२५॥

१५६. वन, मयूरोंके सुन्दर नृत्यवाले हो गये, कदंब शाखा-मुक्त हो गये। वृषभ गौओंमें एक सी कामनावाले हैं, सस्यवाले वनोंसे पृथिवी अभिराम हो गई है॥२६॥

१५७. नदियाँ, मेघ, मस्त गज, वनावली, प्रियावियुक्त मोर और वानर बहती, बरसते हैं, नाद करते हैं, प्रकाशित होते हैं, ध्यान करते हैं, नाचते हैं, समाश्वास पाते हैं॥२७॥

१५८. वनोंके निर्झरोंमें केतकीके फूलके गन्धको सूंघकर मतवाले प्रहर्षित, जल-प्रपातके शब्दोंसे व्याकुल गजेन्द्र मोरोंके साथ नशेमें हो नाद कर रहे हैं॥२८॥

१५९. धाराके गिरनेसे ताड़ित कदम्बकी शाखाओंमें लटकते भ्रमर क्षणभरके लिये पुष्परससे गाढ़े मदको धीरे-धीरे छोड़ रहे हैं॥२९॥

१६०. अंगारचूर्णोत्करसंनिकाशैः फलैः सुपर्याप्तरसैः समृद्धैः ।
जंबूद्रुमाणां प्रविभांति शाखा
निपीयमाना इव षट्पदौघैः ॥३०॥

१६१. तडित्पताकाभिरलंकृतानामुदीर्णगंभीरमहारवाणाम् ।
विभांति रूपाणि बलाहकानां
रणोत्सुकानामिव वानराणाम् ॥३१॥

१६२. मार्गानुगः शैलवनानुसारी संप्रस्थितो मेघरवं निशम्य ।
युद्धाभिकामः प्रतिनादशंकी
मत्तो गजेंद्रः प्रति संनिवृत्तः ॥३२॥

१६३. क्वचित्प्रगीता इव षट्पदौघैः
क्वचित्प्रनृत्ता इव नीलकंठैः ।
क्वचित्प्रमत्ता इव वारणेन्द्रै
विभांत्यनेकाश्रयिणो वनांताः ॥३३॥

१६४. कदंबसर्जार्जुनकंदलाढ्या वनांतभूमिर्मधुवारिपूर्णा ।
मयूरमत्ताभिरुतप्रनृत्तै
रापानभूमिप्रतिभा विभाति ॥३४॥

१६५. मुक्तासमाभं सलिलं पतद्वै सुनिर्मलं पत्रपुटेषु लग्नम् ।
हृष्टा विवर्णच्छदना विहंगाः
सुरेंद्रदत्तं तृषिताः पिबंति ॥३५॥

१६६. षट्पादतंत्रीमधुराभिधानं
प्लवंगमोदीरित कंठतालम् ।
आविष्कृतं मेघमृदंगनादै
र्वनेषु संगीतमिव प्रवृत्तम् ॥३६॥

१६७. क्वचित्प्रनृत्तैः क्वचिदुन्नदद्भिः
क्वचिच्च वृक्षाग्र निषण्णकायैः ।
व्यालंबबर्हाभरणैर्मयूरैर्वनेषु संगीतमिव प्रवृत्तम् ॥३७॥

१६०. अंगारके चूर्णके समूह जैसे बहुत रसीले फलोंसे समृद्ध, भ्रमरों द्वारा पी जाती सी जामुनकी शाखायें सोह रही हैं ॥३०॥

१६१. विद्युत्‌की पताकाओंसे अलंकृत, उठे गम्भीर महाशब्द-सहित, मेघोंके रूप रणोत्सुक वानरोंके रूप से दीख रहे हैं ॥३१॥

१६२. मार्ग-अनुगामी पर्वतीय वनका अनुसरण करनेवाला चल पड़ा मेघके शब्दोंको सुनकर युद्ध-इच्छुक विरोधी नादकी शंका युक्त मस्त गजेन्द्र लौटा ॥३२॥

१६३. कहीं भ्रमर समूहोंसे गाती हुई, कहीं नीलकण्ठोंसे नाचती हुई, कहीं गजेन्द्रोंसे मस्त सी अनेक आकारवाली वनावलियाँ दीख रही हैं ॥३३॥

१६४. कदम्ब-सर्ज-अर्जुन-कन्दलसे घनी-मधुर जलसे पूर्ण वनान्त भूमि, मोरोंके मत्त गीत नृत्योंसे मदिरालय समान प्रतीत होती है ॥३४॥

१६५. मुक्तासे चमकते सुनिर्मल सलिलको गिराते पत्रपुटोंमें लगे, इन्द्रके दिये जलको हर्षित हो खुले पंखोंवाले तृषित पक्षी पी रहे हैं ॥३५॥

१६६. भ्रमरोंकी वीणाके मधुर आलापवाला, वानरोंके कथनरूपी कंठ-तालवाला, मेघरूपी मृदंगोंके नादोंसे वनोंमें संगीत सा होता प्रकट हो रहा है ॥३६॥

१६७. कहीं नृत्योंसे, कहीं उन्माद करनेसे और कहीं वृक्षों के छोरपर समूहसे बैठे, लटकते पिच्छरूपी आभरणोंवाले मोरोंसे वनोंमें संगोल सा हो रहा है ॥३७॥

१६८. स्वनैर्घनानां प्लवगाः प्रबुद्धा
विहाय निद्रां चिरसंनिरुद्धाम् ।
अनेकरूपाकृतिवर्णनादा
नवांबुधाराभिहता नदंति ॥३८॥

१६९. नद्यः समुद्वाहितचक्रवाकास्,
तटानि शीर्णान्यपवाहयित्वा ।
दृप्ता नवप्रावृतपूर्णभोगा
द्रुतं स्वभर्तारमुपोपयांति ॥३९॥

१७०. नीलेषु नीला नववारिपूर्णा
मेघेषु मेघाः प्रतिभांति सक्ताः ।
दवाग्निदग्धेषु दवाग्निदग्धाः
शैलेषु शैला इव बद्धमूलाः ॥४०॥

१७१. प्रमत्तसन्नादितबर्हिणानि सशक्रगोपाकुलशाद्वलानि ।
चरंति नीपार्जुनवासितानि
गजाः सुरम्याणि वनांतराणि ॥४१॥

१७२. नवांबुधाराहतकेसराणि ध्रुवं परिष्वज्य सरोरुहाणि ।
कदंबपुष्पाणि सकेसराणि
नवानि हृष्टा भ्रमराः पिबंति ॥४२॥

१७३. मत्ता गजेंद्रा मुदिता गवेंद्रा वनेषु विक्रांततरा मृगेन्द्राः ।
रम्या नगेंद्रा विभृता नरेंद्राः
प्रक्रीडिता वारिधरैः सुरेंद्रः ॥४३॥

१७४. मेघाः समुद्भूतसमुद्रनादा महाजलौघैर्गगनावलंबाः ।
नदीस्तटाकानि सरांसि वापी
महीं च कृत्स्नामपवाहयंति ॥४४॥

१७५. वर्षप्रवेगा विपुलाः पतंति प्रवान्ति वाताः समुदीर्णवेगाः ।
प्रणष्टकूलाः प्रवहंति शीघ्रं
नद्यो जलैर्विप्रतिपन्नमार्गाः ॥४५॥

१६८. मेघोंके शब्दोंसे देरसे रोकी निद्राको छोड़कर बानर जगे,
अनेक रूप, आकार, वर्ण तथा नादवाले (वह) नयी जलधारामें प्रताड़ित हो नाद कर रहे हैं ॥३८॥

१६९. चक्रवाकोंको बहाती नदियाँ गिरे तटोंको बहा ले जाती
नये वस्त्र तथा पूर्ण भोगसे आदृत (पत्नी सी) अपने पतिके पास जा रही हैं ॥३९॥

१७०. नये जलसे भरे नीले मेघोंमें संसक्त मेघ नीले से दीखते हैं।
वनाग्नि से जले पर्वतोंमें वनाग्निसे दग्ध पर्वत जैसे जड़ बांधे (खड़े) हैं ॥४०॥

१७१. मस्त उठाये पिच्छवाले मोर, वीरबहुटीके समूहसे युक्त, तृणवाले,
नीम-अर्जुनसे सुवासित रमणीय वनोंमें गज विचर रहे हैं ॥४१॥

१७२. ये भ्रमर हर्षित होकर नई जलधारासे ताड़ित केसरवाले कमलों को आलिंगन कर केसर-सहित कदम्बके नये पुष्पोंको पी रहे हैं ॥४२॥

१७३. मस्त गजेन्द्र, मुदित वृषभ, वनमें अतिपराक्रमी सिंह,
रमणीय पर्वतराज, भरण किये नरेन्द्र, मेघोंसे खेलाये जाते सुरेन्द्र (से हैं) ॥४३॥

१७४. उठते समुद्रसे नादवाले, महाजलसमूहोंसे आकाश अवलम्बन करते मेघ नदियोंको, तालाबोंको, सरोंको, वापियोंको और सारी पृथिवीको बहाये लिये आ रहे हैं ॥४४॥

१७५. वर्षाका वेग विपुल हो गिर रहा है, वायु बड़े वेगसे चल रहे हैं,
जलसे मार्गको तोड़फोड़कर नदियाँ तेजी से बह रही हैं ॥४५॥

१७६. नरैर्नरेंद्रा इव पर्वतेंद्राः सुरेंद्रनीतैः पवनोपनीतैः ।
घनांबुकुंभैरभिषिच्यमाना
रूपश्रियं स्वामिव दर्शयंति ॥४६॥

१७७. घनोपगूढं गगनं न तारा न भास्करो दर्शनमभ्युपैति ।
नवैर्जलौघैर्धरणी वितृप्ता
तमोविलिप्ता न दिशः प्रकाशाः ॥४७॥

१७८. महांति कूटानि महीधराणां
धाराविधौतान्यधिकं विभांति ।
महाप्रमाणैर्विपुलैः प्रपातै
र्मुक्ताकलापैरिव लंबमानैः ॥४८॥

१७९. शैलोपलप्रस्खलमानवेगाः शैलोत्तमानां विपुलाः प्रपाताः ।
गुहासु सन्नादितबर्हिणासु
हारा विकीर्यन्ति इवाव-भांति ॥४९॥

१८०. शीघ्रप्रवेगा विपुलाः प्रपाता निर्धौतश्रृंगोपतला गिरी-
णाम् ।
मुक्ताकलापप्रतिमाः पतंतो महागुहोत्संगतलैर्धयंते ॥५०॥
—किष्किन्धाकांडे सर्गः २८

६. मन्दोदरीविलापः —

१८१. दशग्रीवं हतं दृष्ट्वा रामेणाचिंत्यकर्मणा ।
पतिं मंदोदरी तत्र कृपणा पर्यदेवयत् ॥२॥

१८२. "ननु नाम महाबाहो, तव वैश्रवणानुज ।
क्रुद्धस्य प्रमुखे स्थातुं त्रस्यत्यपि पुरंदरः ॥३॥

१८३. ऋषयश्च महांतोऽपि गंधर्वाश्च यशस्विनः ।
ननु नाम तवोद्वेगाच्चारणाश्च दिशो गताः ॥४॥

१८४. स त्वं मानुषमात्रेण रामेण युधि निर्जितः ।
न व्यपत्रपसे राजन्, किमिदं राक्षसेश्वर ॥५॥

१७६. नरोंसे नरेन्द्रकी तरह इन्द्र द्वारा लाये पवन से पास लाये पर्वत-राज, मेघके जलघटोंसे अभिषिक्त होते अपनी रूपशोभा दिखला रहे हैं ॥४६॥

१७७. घनसे आकाश ढंका हुआ है, न तारा, न सूर्य दिखलाई देते हैं। नये जलसमूहसे धरणी तृप्त है, अन्धकारसे लिप्त दिशायें प्रकाशित नहीं हैं ॥४७॥

१७८. धारासे धुले पर्वतोंके बड़े-बड़े शिखर बहुत शोभा दे रहे हैं। (वह) भारी आकारके विपुल जलपातोंसे लटकते हुये मुक्तासमूहों जैसे दीखते हैं ॥४८॥

१७९. पत्थरोंसे गिरनेके वेगवाले उच्च शैलोंके विपुल प्रपात सुन्दर नाद करनेवाले मयूरोंवाली गुहाओंमें बिखरते हारसे प्रतीत होते हैं ॥४९॥

१८०. शीघ्र वेगवाले विपुल जलप्रपात धुले पर्वतोंके शिखर-तल, से मुक्ता-समूह से गिरते महागुहाओंकी गोदोंमें धारित होते है ॥५०॥

—किष्किन्धाकाण्ड सर्ग २८

६. मन्दोदरी-विलाप—

१८१. अचिंतनीय कर्मवाले राम द्वारा (अपने) पति दशग्रीव को निहत देख कर, अभागिनी मंदोदरी वहां विलाप करने लगी ॥२॥—

१८२. "हे महाबाहु, कुबेरके छोटे भाई, क्या क्रुद्ध होने पर,
तुम्हारे सामने इन्द्र भी खड़ा होनेमें डरता नहीं था ॥३॥

१८३. बड़े ऋषि और यशस्वी गन्धर्व और
सिद्ध भी क्या तुम्हारे उद्वेगसे दिशाओंमें नहीं भागे ॥४॥

१८४. सो तुम केवल मानुष रामसे युद्धमें हार गये।
हे राजन्, राक्षसेश्वर, क्या इसके लिये तुम लज्जित नहीं होते ॥५॥

१८५. कथं त्रैलोक्यमाक्रम्य श्रिया वीर्येण चान्वितम् ।
अविषह्यं जघान त्वां मानुषो वनगोचरः ॥६॥

१८६. मानुषाणामविषये चरतः कामरूपिणः ।
विनाशस्तव रामेण संयुगे नोपपद्यते ॥७॥

१८७. न चैतत्कर्म रामस्य श्रद्दधामि चमूमुखे ।
सर्वतः समुपेतस्य तव तेनाभिमर्षणम् ॥८॥

१८८. अथवा रामरूपेण कृतांतः स्वयमागतः ।
मायां तव विनाशाय विधायाप्रतितर्किताम् ॥९॥

१८९. अथवा वासवेन त्वं धर्षितोऽसि महाबल ।
वासवस्य तु का शक्तिस्त्वां द्रष्टुमपि संयुगे ॥१०॥

१९०. यदैव नगरीं लंकां दुष्प्रवेशां सुरैरपि ॥१७॥
प्रविष्टो हनुमान्वीर्यात्तदैव व्यथिता वयम् ।
क्रियतामविरोधश्च राघवेणेति यन्मया ॥१८॥

१९१. उच्यमानं न गृह्णासि तस्येयं व्युष्टिरागता ।
अकस्माच्चाभिकामोऽसि सीतां राक्षसपुंगव ॥१९॥

१९२. ऐश्वर्यस्य विनाशाय देहस्य स्वजनस्य च ।
अरुंधत्या विशिष्टां तां रोहिण्याश्चापि दुर्मते ॥२०॥

१९३. सीतां धर्षयता मान्यां त्वया ह्यसदृशं कृतम् ।
वसुधाया हि वसुधां श्रियाः श्रीं भर्तृवत्सलाम् ॥२१॥

१९४. सीतां सर्वानवद्यांगीमरण्ये विजने शुभाम् ।
आनयित्वा तु तां दीनां छद्मनात्मस्वदूषणम् ॥२२॥

१९५. अप्राप्य तं चैव कामं मैथिलीसंगमे कृतम् ।
पतिव्रतायास्तपसा नूनं दग्धोऽसि मे प्रभो ॥२३॥

१८५. त्रैलोक्यको आक्रान्त कर लक्ष्मी और बलके धनी,
दुर्दम्य तुम्हें (इस) वन मानुषने मारा ॥६॥

१८६. मानुषोंके अप्राप्य स्थानमें स्वेच्छापूर्वक विचरण करनेवाले,
युद्धमें राम द्वारा तुम्हारा विनाश उचित नहीं ॥७॥

१८७. सेनाके सामने मैं (कहती हूं---) यह रामका काम है, इसपर मैं
विश्वास नहीं करती, (कि) सब तरहसे संपन्न तुम्हारा उनके
द्वारा दमन (हुआ) ॥८॥

१८८. अथवा रामके रूपमें स्वयं मृत्यु ही तुम्हारे विनाशके
लिये अतर्कित मायाको धारण कर आई ॥९॥

१८९. अथवा हे महाबल, इन्द्रने तुम्हें दबाया,
लेकिन युद्धमें तुम्हारी ओर देखनेकी भी इन्द्रमें कहां शक्ति है॥१०॥

१९०. सुरों द्वारा भी दुष्प्रवेशा लंकानगरीमें जभी ॥१७॥
अपने पराक्रमसे हनूमान् प्रविष्ट हुआ, तभी हम डर गये।
'राघवके साथ विरोध न करो' मेरे इस ॥१८॥

१९१. कथनको नहीं माना, इसीका यह परिणाम हुआ।
और हे राक्षस-पुंगव अकस्मात् तुमने सीताकी कामना की ॥१९॥

१९२. यह तो ऐश्वर्य, देह और स्वजनके विनाशके लिये हुआ।
अरुंधती और रोहिणीसे भी बढ़कर उस ॥२०॥

१९३. माननीया सीताको तिरस्कृत करने हे दुर्मति, तुमने अनुचित किया।
वसुधाकी वसुधा, श्रीकी श्री भी पतिव्रता ॥२१॥

१९४. अरे निर्दोष अंगोंवाली शुभा दीना सीताको निर्जन वनमें।
धोखेसे लाकर (तुमने) अपनेको दूषित किया ॥२२॥

१९५. अपनेको दूषित करनेवाली उस कामनाको मैथिलीके समागमसे प्राप्त
कर, मेरे प्रभु, तुम जरूर पतिव्रताकी तपस्यासे दग्ध हुए ॥२३॥

१९६. तदैव यन्न दग्धस्त्वं धर्षयंस्तनुमध्यमाम् ।
देवा बिभ्यति ते सर्वे सेंद्राः साग्निपुरोगमाः ॥२४॥
१९७. अवश्यमेव लभते फलं पापस्य कर्मणः ।
भर्तुः पर्यागते काले कर्ता नास्त्यत्र संशयः ॥२५॥
१९८. शुभकृच्छुभमाप्नोति पापकृत्पापमश्नुते ।
बिभीषणः सुखं प्राप्तस्त्वं प्राप्तः पापमीदृशम् ॥२६॥
१९९. संत्यन्याः प्रमदास्तुभ्यं रूपेणाभ्यधिकास्ततः ।
अनंगवशमापन्नस्त्वं तु मोहान्न बुध्यसे ॥२७॥
२००. सर्वदा सर्वभूतानां नास्ति मृत्युरलक्षणः ।
तव तद्वदयं मृत्युर्मैथिलीकृतलक्षणः ॥२९॥
२०१. सीतानिमित्तजो मृत्युस्त्वया दूरादुपाहृतः ।
मैथिली सह रामेण विशोका विहरिष्यति ॥३०॥
२०२. अल्पपुण्या त्वहं घोरे पतिता शोकसागरे ।
कैलासे मंदरे मेरौ तथा चैत्ररथे वने ॥३१॥
२०३. देवोद्यानेषु सर्वेषु विहृत्य सहिता त्वया ।
विमानेनानुरूपेण या याम्यतुलया श्रिया ॥३२॥
२०४. पश्यंती विविधान्देशांस्तांस्तांश्चित्रस्रगंबरा ।
भ्रंशिता कामभोगेभ्यः सास्मि वीर, वधात्तव ॥३३॥
२०५. सैवान्येवास्मि संवृत्ता धिग्राज्ञां चंचलां श्रियम् ।
हा राजन्, सुकुमारं ते सुभ्रसुत्वक्समुन्नसम् ॥३४॥
२०६. कांतिश्रीद्युतिभिस्तुल्यमिन्दुपद्मदिवाकरैः ।
किरीटकूटोज्ज्वलितं ताम्रास्यं दीप्तकुंडलम् ॥३५॥
२०७. मदव्याकुललोलाक्षं भूत्वा यत्पानभूमिषु ।
विविधस्रग्धरं चारु वल्गुस्मितकथं शुभम् ॥३६॥

१९६. उसी समय, पतली कमरवाली (सीता) को बेइज्जत करके तुम जो नहीं दग्ध हुये, सो इसीलिए, कि इन्द्र और अग्नि-सहित सारे देवता तुमसे डरते थे ॥२४॥

१९७. हे स्वामी, पाप कर्मका फल समय आनेपर कर्ताको
अवश्य ही मिलता है, इसमें संशय नहीं ॥२५॥

१९८. शुभ करनेवाला शुभको पाता है, पाप करनेवाला पापको पाता है।
विभीषणने सुख पाया और तुमने पाप पाया ॥२६॥

१९९. रूपमें अधिक (सुंदरी) दूसरी स्त्रियां तुम्हारे लिये थीं।
किंतु कामदेवके वशमें पड़े तुमने मोहके मारे नहीं समझा ॥२७॥

२००. सारे जीवोंके लिए मृत्यु कभी बिना कारण नहीं आती।
उसी तरह तुम्हारे लिये यह मृत्यु मैथिलीके कारण हुई ॥२९॥

२०१. सीताके कारण उत्पन्न मृत्युको तुम दूरसे लाये।
अब वह मैथिली रामके साथ निर्द्वंद्व विहार करेगी ॥३०॥

२०२. मैं पुण्यहीना तो घोर शोकसागरमें गिरी।
कैलासपर, मन्दरपर और चैत्ररथ वनमें ॥३१॥

२०३. देवताओंके सारे उद्यानोंमें तुम्हारे साथ विहार करने के लिये,
जो मैं अतुलश्रीके साथ अनुकूल विमान द्वारा जाती थी ॥३२॥

२०४. विचित्र माला और वस्त्र धारे उन-उन विविध देशोंको देखती थी। हे वीर, सो मैं तुम्हारे वधके कारण काम-भोगोंसे वंचित हो गई॥३३॥

२०५. वही मैं अब दूसरी हो गई। चंचला राजलक्ष्मीको धिक्कार। हा राजन्, तुम्हारा शरीर सुकुमार, सौ-वर्ग-नाभिका से सुंदर था ॥३४॥

२०६. कान्ति-शोभा-द्युतिमें नक्ष-पद्म-सूर्यके तुल्य, किरीट मुकुटके शिखरसे उज्ज्वल अरुण मुख, मुक्त कुंडल राजित ॥३५॥

२०७. जो पानगोष्ठियोंमें मदसे आकुल चंचल आंखोंयुक्त, विविध मालाओंको धारण करनेवाला चारु मधुर मुस्कान कथनयुक्त शुभ था ॥३६॥

२०८. तदेवाद्य तवैवं हि वक्त्रं न भ्राजते प्रभो।
रामसायकनिर्भिन्नं रक्तं रुधिरविस्रवैः ॥३७॥
२०९. विशीर्णमेदोमस्तिष्कं रूक्षं स्पंदनरेणुभिः।
हा पश्चिमा मे संप्राप्ता दशा वैधव्यदायिनी ॥३८॥
२१०. या मयासीन्न संबुद्धा कदाचिदपि मंदया।
पिता दानवराजो मे भर्ता मे राक्षसेश्वरः ॥३९॥
पुत्रो मे शक्रनिर्जेता इत्यहं गर्विता भृशम्।

—युद्धकांडे सर्गः ११

२०८. हे प्रभु, वही तुम्हारा मुख आज नहीं चमक रहा है।
रामके बाणोंसे क्षत-विक्षत खूनके बहनेसे लाल॥३७॥

२०९. चर्बी निकली मस्तिष्कवाला हो, रथकी धूलियोंसे रूखा है।
हा, वैधव्य देनेवाली मेरी अंतिम दशा प्राप्त हो गई॥३८॥

२१०. जिसे मैं मन्दमतिने कभी नहीं सोचा था।
मेरा पिता दानवोंका राजा, मेरा पति राक्षसोंका ईश्वर॥३९॥
मेरा पुत्र इन्द्रका जीतनेवाला, यह सोचकर मैं बहुत गर्व करती थी।

—युद्धकांड सर्ग ११

भाग ३

प्राकृत-काल

(१–५५० ई०)

प्राय: छ शताब्दियोंके धीरे-धीरे परिवर्तनके बाद ईसवी-सन् के आरम्भ-के साथ हमारी भाषायें एक नया रूप लेती हैं, जिसे हम प्राकृत कहते हैं। पालियों और पीछे अपभ्रंशोंका अनेक भाषाओं का सामूहिक नाम होना सभी नहीं स्वीकार करते, किन्तु प्राकृतके बारेमें यह बात नहीं है। आधे दर्जन प्राकृतोंका उल्लेख हमारे प्राचीन ग्रंथकारोंने भी किया है, और वह उनसे भी अधिक रही होंगी, इसमें सन्देह नहीं। ग्रंथकारोंने सिर्फ उन्हीं प्राकृतोंका उल्लेख किया या उनके व्याकरण बनाये, जिनका साहित्य लिपिबद्ध हो गया था। यद्यपि शुंग-कालमें वैदिक-युगके पुन: लौटानेकी कोशिश की गई थी, जिसका सुफल "महाभारत" और "रामायण" हैं, किन्तु लोक-भाषायें उपेक्षित नहीं की गई थीं। गुप्त-कालके आनेसे पहले तक प्राकृतका अभिलेखोंमें उपयोग यही बतलाता है, कि राजकाजमें प्राकृतोंका काफी स्थान था। ब्राह्मण-भिन्नधर्म तो उसे अपनी धार्मिक भाषा भी मानते थे। इसी कारण जैन आगम प्राकृतमें सुरक्षित हुये। कुछ बौद्ध निकाय (सम्प्रदाय) भी अपने पिटकोंको प्राकृतमें पढ़ते थे। दुर्भाग्य-से उनका कोई अवशेष नहीं मिलता, किन्तु चीनी पर्यटकोंने उल्लेख किया है।

प्राकृत-काल संस्कृत-कविताका सुवर्ण-युग है। इस सुवर्ण-युग के पीछे ही से प्राकृत छींटे "गाथासप्तशती", "सेतुबंध" आदि के रूपमें हमारे ऊपर पड़े। इस युगकी संस्कृत कविताका आरम्भ अश्वघोषसे, चरम उत्कर्ष कालिदाससे और अन्त भारविसे होता है। आरम्भिक कालके कवि अश्वघोष, भास, आर्यशूरकी वाणी कितनी ही जगहों पर अनगढ़ सी मालूम होती है, लेकिन उसका स्वाभाविक सौंदर्य अपना अलग आकर्षण रखता है। इस अनगढ़पनको कालिदासने दूर किया, साथ ही उसकी स्वाभाविकताको बहुत हद तक कायम रक्खा। प्राकृत-कालके बाद के काव्योंको जिस तरह अस्वाभाविक और जटिल होते हम देखते हैं, उससे प्रश्न होता है, कि प्राकृत-कालमें वैसा क्यों नहीं हुआ? इसका एक कारण लोक-भाषा भी थी। प्राकृत अपने उच्चारणमें भारी भेद रखते हुये भी व्याकरणमें

संस्कृत से बहुत नजदीक थी। कोई प्राकृतभाषी यदि संस्कृत के उच्चारणोंका बोध रखता, तो उसे संस्कृतके समझने में कोई दिक्कत नहीं थी। दोनोंके सुबन्त-तिङन्तके रूप एक तरह से चलते थे। इस कालके कवियोंको यह ध्यान रखना था, कि हमारी कविता थोड़े से वैयाकरणों या अपनी गोष्ठीवाले लोगों तक ही सीमित न रहे, बल्कि उसकी कदरदानी करनेवाले समाजके अधिकसे अधिक लोग हों। इसके लिये जरूरी था, कि व्याकरण और भाषाके अपरिचित नियमों और अप्रचलित प्रयोगोंको लानेकी कोशिश न की जाये। प्राकृत कविता स्वयं भी शातवाहन-कालमें ऊंचा स्थान प्राप्त कर चुकी थी, इसलिये संस्कृत-के कवि उसकी तरफ नाक-भौं नहीं सिकोड़ सकते थे। दरबारी और कदर-दान भी अभी अपरिचित और अप्रयुक्त शब्दोंको देखकर वाह-वाह नहीं करते थे, इसलिये भी कवियों पर अंकुश था। लेकिन, इस कालके अन्तमें भारविने इस तरफ कदम बढ़ा दिया था। एक बार कदम बढ़ जाने पर अंकुश रखना मुश्किल था, और इसका अन्त श्रीहर्षके साथ होना ही था।

इस कालमें नाटक और पद्य-काव्य रचे गये। भास और आर्यशूरके समकालीन रुद्रदामा के गिरनारवाले शिलालेखसे पता लगता है, कि गद्य-काव्यकी ओर भी अच्छी प्रवृत्ति हो चुकी थी। आर्यशूरकी कृति तो वस्तुतः चम्पूकी तरह गद्य-पद्य-मिश्रित है।

१६. अश्वघोष (५० ई० पू०)

पालियोंके बाद ईसवी सन्‌के आरंभके साथ हम प्राकृतकालमें प्रवेश करते हैं। इसी समय हम इतिहासके अनिश्चित कालसे निश्चित कालमें प्रवेश करते हैं। संस्कृत (वैदिक) और पालियोंके बाद प्राकृत, भाषा-साहित्यमें समृद्ध सामग्रीके साथ ही अवतीर्ण नहीं होती, बल्कि इस समय अब लेखनके साधनों—स्याही, ताल-पत्र या भोजपत्र— का अधिक इस्तेमाल होने लगा, तथा शताब्दियोंसे कंठस्थ करके लाये गये ग्रंथोंको लिपिबद्ध करनेके साथ नये ग्रंथोंको भी पत्रपर उतारनेका रवाज चल

१. सौन्दरनन्द—

(१) गमन-प्रार्थना

१. स चक्रवाक्येव हि चक्रवाकस्,
तया समेतः प्रियया प्रियार्हः ।
नाचिन्तयद्वैश्रवणं न शक्रं
तत्स्थानहेतोः कुत एव धर्मम् ॥२॥

२. लक्ष्म्या च रूपेण च सुन्दरीति
स्तम्भेन गर्वेण च मानिनीति ।
दीप्त्या च मानेन च भामिनीति
यातो बभाषे त्रिविधेन नाम्ना ॥३॥

३. सा हासहंसा नयनद्विरेफा पीनस्तनात्युन्नतपद्मकोशा ।
भूयो बभासे स्वकुलोदितेन
स्त्रीपद्मिनी नन्ददिवाकरेण ॥४॥

४. रूपेण चात्यन्तमनोहरेण रूपानुरूपेण च चेष्टितेन ।
मनुष्यलोके हि तदा बभूव
सा सुन्दरी स्त्रीषु नरेषु नन्दः ॥५॥

१६. अश्वघोष (५० ई० पू०)

पड़ा। इस युगके प्रथम कवि अश्वघोष हैं। वह दार्शनिक और कवि हैं। कवितामें भी वह महाकाव्य और नाटकोंके रचयिता हैं। उनका नाटक "राष्ट्रपाल", "सारिपुत्र प्रकरण" से भी अधिक सम्मानित था, यह "वाद-न्याय" में धर्मकीर्ति (६०० ई०) के उल्लेखसे ज्ञात है। अश्वघोष बौद्ध-जगत्‌के लिए अतिसुपरिचित हैं। उनके कालके लिए भी कोई सन्देह नहीं। वह कनिष्कके समकालीन थे, जिनका चलाया शक-संवत् आज भी प्रचलित है। उनके "सौंदरनन्द" और "बुद्धचरित" से यहां कितने ही अंश दिये गए हैं।

१. सौन्दरनन्द—

(१) पत्नीसे अनुमति माँगना

१. चक्रवाकी सहित चक्रवाकी तरह उस प्रियासे युक्त प्रियतमाके योग्य नन्द न वैश्रवणको न इन्द्रको (न) उनके स्थानकी (प्राप्ति के) लिये सोचता, धर्मकी तो (बात ही) क्या ? ।।२।।

२. श्री और रूपके कारण सुंदरी, हठ और गर्वके कारण मानिनी। तेज और मानके कारण भामिनी, इस प्रकार तीन नामोंसे वह (नंदा) पुकारी जाती थी ।।३।।

३. वह हासमें हंसिनी, नयनमें भ्रमरी, स्थूल स्तनों से उन्नत पद्मकोश-वाली, वह नारी रूपी पद्मिनी अपने कुलमें उगे नंदरूपी दिवाकरके साथ और अधिक भासित होती थी ।।४।।

४. तब अत्यंत मनोहर रूपके अनुसार नेत्रोंके कारण, मनुष्य लोककी स्त्रियोंमें वह सुंदरी थी, नरोंमें नंद सुन्दर था ।।५।।

५. सा देवता नन्दनचारिणीव कुलस्य नन्दीजननश्च नन्दः ।
अतीत्य मर्त्याननुपेत्य देवान्
सृष्टावभूतामिव भूत-धात्रा ॥६॥

६. तां सुन्दरीं चेन्न लभेत नन्दः सा वा निषेवेत न तं नतभ्रूः ।
द्वन्द्वं ध्रुवं तद्विकलं न शोभे
उतान्योन्यहीनाविव रात्रिचन्द्रौ ॥७॥

७. कन्दर्परत्योरिव लक्ष्यभूतं प्रमोदनान्द्योरिव नीडभूतम् ।
प्रहर्षतुष्ट्योरिव पात्रभूतं
द्वन्द्वं सहारंस्त मदान्धभूतम् ॥८॥

८. परस्परोद्वीक्षणतत्पराक्षं परस्परव्याहृतसक्तचित्तम् ।
परस्पराश्लेषहृतांगरागं परस्परं तन्मिथुनं जहार ॥९॥

९. भावानुरक्तौ गिरिनिर्झरस्थौ
तौ किंनरीकिंपुरुषाविवोभौ ।
चिक्रीडतुश्चाभिविरेजतुश्च
रूपश्रियान्योन्यमिवाक्षिपन्तौ ॥१०॥

१०. अन्योन्यसंरागविवर्धनेन तद्द्वन्द्वमन्योन्यमरीरमच्च ।
क्लमान्तरेऽन्योन्यविनोदनेन
सलीलमन्योन्यममीमदच्च ॥११॥

११. विभूषयामास ततः प्रियां स
सिषेविषुस्तां न मृजावहार्थम् ।
स्वेनैव रूपेण विभूषिता हि
विभूषणानामपि भूषणं सा ॥१२॥

१२. दत्वाथ सा दर्पणमस्य हस्ते "ममाग्रतो धारय तावदेनम् ।
विशेषकं यावदहं करोमी"
त्युवाच कान्तं स च तं बभार ॥१३॥

५. वह नंदनवनमें विचरनेवाली देवता थी और आनंदजनक कुलमें नंद, भूतोंके धाताने मनुष्योंको अतिक्रमण कर देवताओंको न प्राप्त कर दोनोंको बनाया था ॥६॥

६. उस सुंदरीको अगर नंद न पाता, या वह तिरछी भौंहोंवाली उसे न सेवती; तो निश्चय एक दूसरेसे विहीन रात्रि और चन्द्रमाकी तरह दोनों विकल हो न शोभते ॥७॥

७. कामदेव और रतिकी तरह स्वस्थ हो प्रमोद और नान्दीसे नीड रूपी, हर्ष और तुष्टिके मानों पात्र, मदांध होकर दोनों साथ रमण करते ॥८॥

८. एक दूसरेके देखनेमें लगी आंखोंवाली, एक दूसरेसे बात करनेमें आसक्त-चित्तवाली, एक दूसरेके आलिंगनसे मिटे अंगरागवाली, वह जोड़ी एक दूसरेको खींचती थी ॥९॥

९. पर्वतके झरने पर अवस्थित किन्नर-किन्नरीकी तरह भावसे अनुरक्त वे दोनों, रूप और श्रीसे एक दूसरेको चुनौती देते क्रीड़ा करते शोभा देते थे ॥१०॥

१०. वह जोड़ी परस्पर प्रेमको बढ़ाते रमण करती, थकावटमें परस्पर विनोद द्वारा लीलापूर्वक एक दूसरेको और मस्त करती थी ॥११॥

११. तब उसने सजानेके लिये नहीं, बल्कि सेवा करनेकी इच्छासे उस प्रियाको विभूषित किया (और) अपने रूपोंसे ही विभूषित वह विभूषणों का भी भूषण थी ॥१२॥

१२. तब उसने हाथमें दर्पण देकर [illegible] बोली "मेरे सामने इसे पकड़ो, जब तक मैं तिलक लगा लूं" और उसने उसे पकड़ा ॥१३॥

१३. पत्युस्ततो दर्पणसक्तपाणेर्मुहुर्मुहुर्वक्त्रमवेक्षमाणा।
तमालपत्रार्द्रतले कपोले समापयामास विशेषकं तत् ।२०।

१४. तस्या मुखं तत्सतमालपत्रं ताम्राधरौष्ठं चिकुरायताक्षम्।
रक्ताधिकाग्रं पतितद्विरेफं
सशैवलं पद्ममिवाब भासे ।।२१।।

१५. विमानकल्पे स विमानगर्भे ततस्तथा चैव ननन्द नन्दः।
तथागतश्चागतभैक्षकालो
भैक्षाय तस्य प्रविवेश वेश्म ।।२४।।

१६. कृत्वांजलिं मूर्धनि पद्मकल्पं
ततः स कान्तां गमनं ययाचे।
"कर्तुं गमिष्यामि गुरौ प्रणामं
मामभ्यनुज्ञातुमिहार्हसीति" ।।३२।।
—सर्गः ४

(२) नन्द-प्रव्रज्या

१७. ततो हृते भर्तरि गौरवेण प्रीतौ हृतायामरतौ कृतायाम्।
तत्रैव हर्म्योपरि वर्तमाना न सुन्दरी सैव तदा बभासे ।।१।।

१८. सा भर्तुरभ्यागमनप्रतीक्षा गवाक्षमाक्रम्य पयोधराभ्याम्।
द्वारोन्मुखी हर्म्यतलाल्ललम्बे
मुखेन तिर्यङ्नतकुण्डलेन ।।२।।

१९. विलम्बहारा चलयोक्त्रका सा
तस्माद्विमानाद्विनता चकाशे।
तपः क्षयादप्सरसां वरेव च्युतं
विमानात्प्रियमीक्ष माणा ।।३।।

२०. सा खेदसंस्विन्नललाटकेन निःश्वासनिष्पीतविशेषकेण।
चिन्ताचलाक्षेण मुखेन तस्थौ भर्तारमन्यत्र विशंकमाना ।।४।।

१३. तब दर्पणमें लगे हाथवाले पतिके मुखको बार-बार देखती हुई, तमाल-पत्र जैसे गीले तलवाले कपोलपर उसने तिलक लगाया ॥२०॥

१४. उसका वह तमालपत्र-सहित लाल ओष्ठ, चंचल-विशाल आंखें, अधिक-लाल-अग्रभाग-गिरते-भ्रमरोंवाला मुख शैवल-युक्त पद्म सा भासित हुआ ॥२१॥

१५. तब देव-विमान समान प्रासादके भीतर उसके साथ नंद आनंद करने लगा। भिक्षाका काल आने पर (बुद्ध) उसके घरमें प्रविष्ट हुए ॥२४॥

१६. तब पद्म-अंजलिको सिरपर करके उसने पत्नीसे जानेकी प्रार्थना की "मैं गुरुको प्रणाम करनेके लिये जाऊंगा, मुझे आज्ञा दो" ॥३२॥

—सर्ग ४

(२) नन्दका संन्यास

१७. तब पतिके हर लिये जानेपर गौरवके कारण प्रीतिके हर जाने तथा उदासीन होने पर, वहीं महलके ऊपर विद्यमान वह सुंदरी शोभित नहीं हुई ॥१॥

१८. वह पतिके आगमनकी प्रतीक्षिका हो दोनों स्तनोंको जंगलेपर रखकर, टेढ़े लटके कुंडलोंवाले वदनसे द्वारकी तरफ मुख किये महलपर झुकी ॥२॥

१९. लटकते हारों चंचल जूड़ेवाली झुकी सी वह उस महलपर प्रकाशित हुई, मानो श्रेष्ठ रमणी तपके क्षय होनेसे अप्सराओंके विमानोंसे गिरे प्रियको देख रही है ॥३॥

२०. स्वेदसे भींगे ललाट, श्वाससे मिटे तिलकवाले, चितासे चंचल आंखों वाले मुखसे वह पतिके अन्यत्र होनेकी शंका करती खड़ी रही ॥४॥

२१. ततश्चिरस्थानपरिश्रमेण स्थितैव पर्यङ्कतले पपात।
तिर्यक्च शिश्ये प्रविकीर्णहारा
सपादुकैकार्धविलम्ब पादा ॥५॥

२२. अथात्र काचित्प्रमदा सबाष्पां
तां दुःखितां द्रष्टुमनी प्समाना।
प्रासादसोपानतलप्रणादं
चकार पद्भ्यां सहसा रुदन्ती ॥६॥

२३. तस्याश्च सोपानतलप्रणादं श्रुत्वैव तूर्णं पुनरुत्पपात।
प्रीत्या प्रसक्तैव च संजहर्ष
प्रियोपयानं परिशंकमाना ॥७॥

२४. तामंगनां प्रेक्ष्य च विप्रलब्धा निःश्वस्य भूयः शयनं प्रपेदे।
विवर्णवक्त्रा न रराज चाशु
विवर्णचन्द्रेव हिमागमे द्यौः ॥९॥

२५. तस्या मुखं पद्मसपत्नभूतं पाणौ स्थितं पल्लवरागताम्रे।
छायामयस्याम्भसि पंकजस्य
बभौ नतं पद्ममिवो परिष्टात् ॥११॥

२६. सा स्त्रीस्वभावेन विचिन्त्य तत्तद्
दृष्टानुरागेऽभिमुखेऽपि पत्यौ।
धर्माश्रिते तत्त्वमविन्दमाना
संकल्प्य तत्तद्विललाप तत्तत् ॥१२॥

२७. "एष्याम्यनाश्यानविशेषकायां
त्वयीति कृत्वा मयि तां प्रतिज्ञाम्।
कस्मान्नु हेतोर्दयितप्रतिज्ञः
सोऽद्य प्रियो मे वितथ प्रतिज्ञः ॥१३॥

२८. रतिप्रियस्य प्रियवर्तिनो मे प्रियस्य नूनं हृदयं विरक्तम्।
तथापि रागो यदि तस्य ही स्यान्
मच्चित्तरक्षी न स नागतः स्यात् ॥१५॥

२१. तब देर तक खड़े रहने की थकावट से खड़ी खड़ी पलंगके ऊपर गिर पड़ी। (और) बिखरे हारोंवाली जूतियों सहित पैरको आधा लटकाये तिरछी लेट गई ॥५॥

२२. तब यहां आंसू बहाती उस दुःखिताको देखनेकी न इच्छा करती किसी स्त्रीने रोते हुये एकाएक पैरोंसे महलकी सीढ़ियोंके ऊपर आवाज की ॥६॥

२३. और उसके सीढ़ीके ऊपर की आहट सुनते ही वह जल्दी फिर उठ गई, प्रियके आनेकी शंका करती, खुशीमें विभोर-सी वह हर्षित हुई ॥७॥

२४. उस स्त्रीको देख, धोखा खा सांस लेती वह फिर शयनपर जा पड़ी। फीके मुखवाली वह हिमकालके आकाशमें फीके चन्द्रकी तरह शीघ्र शोभित नहीं हुई ॥९॥

२५. पद्मकी ईर्ष्याका पात्र उसका मुख, पल्लवके रंगसे लाल हाथमें स्थित, जलमें छायारूप ऊपरसे झुके हुये पद्मकी तरह नहीं शोभित हुआ ॥११॥

२६. स्त्री स्वभावसे उन-उन देखे हुये अनुरागवाले सामने (स्थितसे) पतिके विषयमें सोचती हुई, धर्म-आश्रित तत्वको न जानकर उस-उसकी कल्पना करती वह विलाप करने लगी ॥१२॥

२७. "तिलकके मलिन होनेसे पहले ही तेरे पास मैं आ जाऊंगा" यह प्रतिज्ञा करके सो किस कारण प्रियप्रतिज्ञा करनेवाले तुम आज मुझसे झूठी प्रतिज्ञावाले हुये ॥१३॥

२८. रति-प्रिय प्रिय करनेवाले मेरे प्रियका हृदय निश्चय विरक्त हो गया। तो भी यदि उनको प्रेम होता, तो मेरा चित्त रखने के लिये वह आये बिना न रहते ॥१५॥

२९. सेवार्थमादर्शनमन्यचित्तो विभूषयन्त्या मम धारयित्वा।
विभर्ति सोऽन्यस्य जनस्य तं चे
न्नमोऽस्तु तस्मै चलसौ हृदाय॥१८॥

३०. नेच्छन्ति याः शोकमवाप्तुमेवं
श्रद्धातुमर्हन्ति न तां नराणाम्"॥१९॥

३१. स तु त्वदर्थं गृहवासमीप्सन्
जिजीविषुस्त्वत्परितो षहेतोः।
भ्रात्रा किलार्येण तथागतेन
प्रव्राजितो नेत्रजला र्द्रवक्त्रः॥२३॥

३२. श्रुत्वा ततो भर्तरि तां प्रवृत्ति सवेपथुः सा सहसोत्पपात।
प्रगृह्य बाहू विरुराव चोच्चै
र्हृदीव दिग्धाभिहता करेणुः॥२४॥

३३. सा रोदनारोषितरक्तदृष्टिः
संतापसंक्षोभितगात्र यष्टिः।
पपात शीर्णाकुलहारयष्टिः
फलातिभारादिव चूत यष्टिः॥२५॥

३४. संचिन्त्य संचिन्त्य गुणांश्च भर्तु
र्दीर्घं निशश्वास तताम चैव।
विभूषणश्रीनिहितप्रकोष्ठे ताम्रे
कराग्रे च विनिर्दुधाव॥२७॥

३५. "न भूषणार्थो मम संप्रती"ति सा दिक्षु चिक्षेप विभूषणानि।
निर्भूषणा सा पतिता चकाशे
विशीर्णपुष्पस्तबका लतेव॥२८॥

३६. "धृतः प्रियेणायमभून्ममे"ति रुक्मत्सरुं दर्पणमालिलिंगे।
यत्नाच्च विन्यस्ततमालपत्रौ
रुष्टेव धृष्टं प्रममार्ज गण्डौ॥२९॥

२९. शृंगार करती अन्यत्र चित्त हो मेरी सेवाके लिये दर्पण धारण करके, यदि वह अन्य जनके लिये धारण किये थे, तो अस्थिर स्नेहवाले उन्हें नमस्कार है ॥१८॥

३०. जो (नारी) ऐसे शोकको पानेकी इच्छा नहीं रखती, वह पुरुषों पर विश्वास नहीं कर सकतीं। कहां मेरे प्रति उनकी वह पहलेकी अनुरक्ति और कहां यह क्षणभरमें साधारण जनकी तरह त्यागना" ॥१९॥

३१. वे तो तेरे संतोषके लिये तेरे वास्ते गृहवासकी इच्छा करते जीना चाहते थे। पर (उनके) भाई आर्य तथागतने आंसू-भीगे-मुखवाले उन्हें साधु बना दिया" ॥२३॥

३२. तब पतिके सम्बन्धमें इस समाचारको सुनकर वह कांपती हुई एकाएक उछल पड़ी, और हृदयमें विषाक्त बाणसे बिंधी हथिनीकी तरह दोनों बाहोंको पकड़कर जोरसे रोने लगी ॥२४॥

३३. रोनेसे लाल हुई आंखोंवाली [illegible] शरीरवाली, बिखरे व्याकुल हारवाली [illegible] आम वृक्षकी तरह गिर पड़ी ॥२५॥

३४. पतिके गुणोंकी सोच [illegible] वह लम्बी सांस लेती मूर्छित हो, भूषणकी शोभासे [illegible] हाथों और लाल हुई अंगुलियोंको कंपाने लगी ॥२७॥

३५. "अब मुझे आभूषणोंका प्रयोजन नहीं" यह सोच उसने आभूषणोंको चारों ओर फेंक दिया। बिना भूषणकी पड़ी हुई वह बिखरे फूलोंके गुच्छोंवाली लताकी तरह मालूम होने लगी ॥२८॥

३६. "मेरे प्रियने इसे पकड़ा था" यह सोच सोनेके मियानवाले दर्पणको आलिंगन करने लगी और यत्नसे लगाये तमालपत्रवाले कपोलको कष्टसी हो (उसने) जोरसे पोंछ दिया ॥२९॥

३७. सा चक्रवाकीव भृशं चुकूज श्येनाग्रपक्षक्षतचक्रवाका।
विस्पर्धमानेव विमानसंस्थैः
पारावतैः कूजनलोलकण्ठैः ॥३०॥

३८. विचित्रमृद्धास्तरणेऽपि सुप्ता वैडूर्यवज्रप्रतिमण्डितेऽपि।
रुक्मांगपादे शयने महार्हे न शर्म लेभे परिचेष्टमाना ॥३१

३९. संदृश्य भर्तुश्च विभूषणानि
वासांसि वीणाप्रभृतींश्च लीलाः।
तमो विवेशाभिननाद चोच्चैः
पंकावतीर्णेव च संससाद ॥३२॥

४०. सा सुन्दरी श्वासचलोदरी हि वज्राग्निसंभिन्नदरीगुहेव।
शोकाग्निनान्तर्हृदि दह्यमाना
विभ्रान्तचित्तेव तदा बभूव ॥३३॥

४१. रुरोद मम्लौ विरुराव जग्लौ
बभ्राम तस्थौ विललाप दध्यौ।
चकार रोषं विचकार माल्यं
चकर्त वक्त्रं विचकर्ष वस्त्रम् ॥३४॥
—सर्ग ६

२. बुद्धचरित—

(१) अन्तःपुर-विहार

४२. "किंचिन्मनः क्षोभकरं प्रतीपं
कथं न पश्येदि"ति सोऽनुचिन्त्य।
वासं नृपो व्यादिशति स्म तस्मै
हर्म्योदरेष्वेव न भू- प्रचारम् ॥२८।

४३. ततः शरत्तोयदपाण्डुरेषु भूमौ विमानेष्विव रंजितेषु।
हर्म्येषु सर्वर्तुसुखाश्रयेषु
स्त्रीणामुदारैर्विजहार तूर्य ॥२९॥

३७. बाजके अगले पंखोंसे घायल चक्रवाकवाली चक्रवाकीकी तरह वह बहुत कूजने लगी। महलमें स्थित कूजनके लिये चंचल कंठवाले कबूतरोंसे मानो होड़ लगा रही थी ॥३०॥

३८. हीरेसे प्रतिमंडित विचित्र कोमल शय्यायुक्त सोनेके पांवोंवाले, महार्घ शयनपर सोती भी छटपटाती उसने चैन नहीं पाया ॥३१॥

३९. और पतिके आभूषणों-वस्त्रों-वीणा आदि लीला-वस्तुओंको देखकर मूर्छामें प्रविष्ट हो और जोरसे चिल्लाती, तथा पंकमें गिरी फंस सी गई ॥३२॥

४०. वह सांससे चंचल-उदरवाली सुंदरी, वज्र-अग्निसे फटे गुहावाली सी, शोकाग्निसे हृदयके भीतर जलती उद्भ्रांत चित्तवाली सी हो गई ॥३३॥

४१. वह रोई, मलिन हुई, चिल्लाई, खिन्न हुई, घूमी, खड़ी विलाप करने लगी, चिंतित हुई, रोषित हुई। मालाओंको उसने बिगाड़ा, मुखको नोचा, वस्त्रको खींचा ॥३४॥

—सर्ग ६

२. बुद्धचरित—

(१) अन्तःपुर-विहार

४२. "मनको क्षोभ करनेवाले किसी विरुद्ध (वस्तु) को क्यों नहीं देखता" [illegible] महलोंके भीतरही वासकी आज्ञा [illegible] ॥२८॥

४३. तब शरद्के बादलों सी सफेद रंगे विमानोंकी सी भूमिपर, सारे ऋतुओंके लिये सुखमय प्रासादोंमें स्त्रियोंके उत्तम वाद्योंके साथ कुमारने विहार किया ॥२९॥

४४. कलैर्हि चामीकरबद्धकक्षैर्नारीकराग्राभिहतैर्मृदंगैः।
वराप्सरानृत्यसमैश्च नृत्यैः
कैलासवत्तद्भवनं रराज ॥३०॥

४५. वाग्भिः कलाभिर्ललितैश्च हावैर्मदैः सखेलैर्मधुरैश्च हासैः
तं तत्र नार्यो रमयाम्बभूवुर्भ्रूवंचितैरर्धनिरीक्षितैश्च ॥३१॥

४६. नृपस्तु तस्यैव विवृद्धिहेतोस्तद्भाविनार्थेन च चोद्यमानः।
शमेऽभिरेमे विरराम पापाद्
भेजे दमं संविबभाज साधून् ॥३३॥

४७. नाधीरवत्कामसुखे ससंजे न संररंजे विषमं जनन्याम्।
धृत्येन्द्रियाश्वाश्चपलान्विजिग्ये
बन्धूंश्च पौरांश्च गुणैर्जिगाय ॥३४॥

४८. नाध्यैष्ट दुःखाय परस्य विद्यां
ज्ञानं शिवं यत्तु तदध्यगीष्ट।
स्वाभ्यः प्रजाभ्यो हि यथा तथैव
सर्वप्रजाभ्यः शिवमाशशंसे ॥३५॥

४९. सान्त्वं बभाषे न च नार्थवद्यज्
जजल्प तत्त्वं न च विप्रियं यत्।
सान्त्वं ह्यतत्त्वं परुषं च तत्त्वं
ह्रिया शकन्नात्मन एव वक्तुम् ॥३८॥

५०. आर्षाण्यचारीत्परमव्रतानि
वैराण्यहासीच्चिर संभृतानि।
यशांसि चापद्गुणगन्धवन्ति
रजांस्यहार्षीन्मलिनीकराणि ॥४३॥

४४. स्त्रियोंके कर-पल्लवोंसे बजते मधुर-स्वर सोनेसे मढ़े मृदंगों द्वारा, उत्तम अप्सराओंके नृत्यके समान नाचों युक्त और कैलासके समान उस भवनमें कुमार विराजा ।।३०।।

४५. कलापूर्ण वाणियों, ललित हाव-भावों, मदजनक खेल और मधुर परिहासोंके साथ, वहां नारियोंने भ्रू-कुंचनों और अधखुली दृष्टियोंसे उससे रमण कराया ?।।३१।।

४६. राजाने तो उसकी ही वृद्धिके लिये और उसके भावी अर्थसे प्रेरित हो, शान्तिमें रत, पापसे विरत, दमन-युक्त हो, साधुओंको दान दिया ।।३३।।

४७. (वह) अधीरकी तरह काम-सुखमें लिप्त नहीं हुआ, न जननीमें विषम आचारमें संरक्त हुआ । उसने धैर्य चपल इन्द्रियरूपी घोड़ोंको और गुणोंसे बंधुओं तथा पुरवासियोंको जीता ।।३४।।

४८. उसने दूसरे के दुःखके लिये विद्या नहीं पढ़ी, जो मंगलमय ज्ञान था, उसे (ही) जाना, जैसे अपनी प्रजाओंमें वैसे ही वह सारी प्रजाओंमें कल्याणकी कामना करता ।।३५।।

४९. सान्त्वनाकी बात करता, पर अनर्थयुक्त नहीं; तत्वकी बात करता, पर जो अप्रिय है उसे नहीं, तत्वहीन सान्त्वना और परुषतत्वको लज्जासे अपने लिये भी न कह सकता ।।३८।।

५०. उसने ऋषियोंके श्रेष्ठ व्रतका पालन करते, चिरसंचित बैरोंको छोड़ा, आपद्के गुण-लेशवाले यशोंको, मलिन करनेवाले रजोंको हटाया ।।४३।।

५१. न चाजिहीर्षीद् बलिमप्रवृत्तं
न चाचिकीर्षीत्परवस्त्वभिध्याम् ।
न चाविवक्षीद् द्विपतामधर्मं
न चाविवक्षीद्धृदयेन मन्युम् ॥४४॥

५२. तस्मिंस्तथा भूमिपतौ प्रवृत्ते
भृत्याश्च पौराश्च तथैव चेरुः ।
शमात्मके चेतसि विप्रसन्ने
प्रयुक्तयोगस्य यथेन्द्रियाणि ॥४५॥

५३. काले ततश्चारुपयोधरायां
यशोधरायां स्वयशोधरायाम् ।
शौद्धोदनो राहुसपत्नवक्त्रो
जज्ञे सुतो राहुल एव नाम्ना ॥४६॥

—सर्गः २

(२) संवेगोत्पत्ति

५४. ततः "कुमारः खलु गच्छतीति
श्रुत्वा स्त्रियः प्रेष्यजनात्प्रवृत्तिम् ।
दिदृक्षया हर्म्यतलानि जग्मु
र्जनेन मान्येन कृताभ्यनुज्ञाः ॥१३॥

५५. ताः स्रस्तकांचीगुणविघ्नितास्च
सुप्तप्रबुद्धाकुल लोचनाश्च ।
वृत्तान्तविन्यस्तविभूषणाश्च
कौतूहलेनानिभृताः परीयुः ॥१४॥

५६. प्रासादसोपानतलप्रणादैः कांचीरवैर्नूपुरनिःस्वनैश्च ।
वित्रासयन्त्यो गृहपक्षिसंघा-
नन्योन्यवेगांश्च समाक्षिपन्त्यः ॥१५॥

५१. अप्रचलित टैक्स लेना, दूसरेकी वस्तुमें लोभ करना नहीं चाहा, न शत्रुओंको अधर्म कहना चाहा तथा न हृदयमें क्रोध रखना चाहा ॥४४॥

५२. उस भूमिपाल (शुद्धोधन) के ऐसा आचरण करते सेवक और पुरवासी भी वैसा ही आचरण करते, जैसे शमयुक्त स्वच्छ-चित्त योगी के होनेपर (उसकी) इन्द्रियां (होती हैं) ॥४५॥

५३. तब काल पाकर अपने यशको धारण करनेवाली सुस्तनी यशोधराने, सिद्धार्थको राहुल नामक चन्द्रमुख पुत्र जना ॥४६॥

—सर्ग २

(२) वैराग्यकी उत्पत्ति

५४. तब "कुमार जा रहा है" यह समाचार सेवकोंसे सुनकर देखनेकी इच्छासे स्त्रियां, मान्यजनों की अनुमतिसे महलके कोठोंपर (चढ़) गईं ॥१३॥

५५. खिसकी कर्धनीकी जंजीरसे बाधित, सोकर जगे व्याकुल लोचन वाली, कुतूहलके साथ चंचल होकर वृत्तान्त सुन आभूषण धारे गईं ॥१४॥

५६. (वह) प्रासादके सोपानतलके शब्दों, कांचीके रवों और पाजेबकी [illegible] त्रस्त करती एक दूसरेसे जल्दी करनेपर आक्षेप करती (गयीं) ॥१५॥

५७. कासांचिदासाँ तु वरांगनानां
जातत्वराणामपि सोत्सुकानाम्।
गतिं गुरुत्वाज्जगृहुविशाला:
श्रोणीरथा: पीनपयोधराश्च ॥१६॥

५८. शीघ्रं समर्थापि तु गन्तुमन्या
गतिं निजग्राह ययौ न तूर्णम्।
ह्रिया प्रगल्भा विनिगूहमाना
रह:प्रयुक्तानि विभूषणानि ॥१७॥

५९. परस्परोत्पीडनपिण्डितानां
संमर्दसक्षोभितकुण्डलानाम्
तासां तदा सस्वनभूषणानां
वातायनेष्वप्रशमो बभूव ॥१८॥

६०. वातायनेभ्यस्तु विनि:सृतानि
परस्परायासितकुण्डलानि।
स्त्रीणां विरेजुर्मुखपंकजानि
सक्तानि हर्म्येष्विव पंकजानि ॥१९॥

६१. ततो विमानैर्युवतीकरालै: कौतूहलोद्घाटितवातयानै:।
श्रीमत्समन्तान्नगरं बभासे
वियद्विमानैरिव साप्सरोभि: ॥२०॥

६२. वातायनानामविशालभावाद-
न्योन्यगण्डार्पितकुण्डलानाम्।
मुखानि रेजु: प्रमदोत्तमानां,
बद्धा: कलापा इव पंकजानाम् ॥२१॥

६३. तं ता: कुमारं पथि वीक्षमाणा:
स्त्रियो बभुर्गामिव गन्तुकामा:।
ऊर्ध्वोन्मुखाश्चैनमुदीक्षमाणा
नरा बभुर्द्यामिव गन्तुकामा: ॥२२॥

५७. उत्सुकतायुक्त जल्दी करती इन सुंदर स्त्रियोंमेंसे किन्हीं-किन्हीं की गतिको, भारी होनेसे विशाल नितम्बों और पीन पयोधरोंने रोका ॥१६॥

५८. शीघ्र जानेमें समर्थ हुई किसी दूसरीने गतिको रोका, लज्जासे (वह) संकुचित हो एकान्तमें पहने आभूषणोंको छिपाती हुई जल्दी नहीं गई ॥१७॥

५९. तब परस्पर उत्पीड़नके साथ एकत्रित हुई, धक्कासे चंचल कुंडलवाली, ध्वनियुक्त भूषणोंवाली उन स्त्रियोंको खिड़कियोंमें अशान्ति मालूम हुई ॥१८॥

६०. स्त्रियोंके मुख-कमल जंगलोंसे निकले परस्पर आन्दोलित कुंडलों-वाले, महलोंमें संसक्त कमलों जैसे शोभा देते थे ॥१९॥

६१. तब युवतियोंसे घिरे कौतूहलसे उघाड़े वातायनोंवाले महलों द्वारा, कपिलवस्तु नगर अप्सराओं-सहित आकाश-विमानोंकी तरह चारों ओर श्रीयुक्त (हो) चमकने लगा ॥२०॥

६२. वातायनोंके विशाल न होनेसे एक दूसरेके कपोलोंको छूते कुंडलवाले उत्तम स्त्रियोंके मुख, पंकजोंकी बंधी मालाकी तरह विराजते थे ॥२१॥

६३. कुमारको पथमें देखती वह स्त्रियाँ मानो पृथिवी पर जानेकी इच्छुक थीं, और जो ऊपर मुँह किये देखते पुरुष मानो स्वर्ग जानेके इच्छुक थे ॥२२॥

६४. दृष्ट्वा च तं राजसुतं स्त्रियस्ता जाज्वल्यमानं वपुषा-
श्रिया च ।
"धन्यास्य भार्ये" ति शनैरवोचं शुद्धैर्मनोभिः खलु
नान्यभावात् ॥२३॥
—सर्गः ३

(३) स्त्री-निवारण

६५. स तस्मिन् कानने रम्ये जज्वाल स्त्रीपुरः सरः ।
आक्रीड इव विभ्राजे विवस्वानप्सरोवृतः ॥२८॥

६६. मदेनावर्जिता नाम तं काश्चित्तत्र योषितः ।
कठिनैः पस्पृशुः पीनैः संहतैर्वल्गुभिः स्तनैः ॥२९॥

६७. स्रस्तांसकोमलालम्बमृदुबाहुलताबला ।
अनृतं स्खलितं काचित्कृत्वैनं सस्वजे बलात् ॥३०॥

६८. काचित्ताम्राधरोष्ठेन मुखेनासवगन्धिना ।
विनिशश्वास कर्णेऽस्य "रहस्यं श्रूयता"मिति ॥३१॥

६९. काचिदाज्ञापयन्तीव प्रोवाचार्द्रानुलेपना ।
"इह भक्ति कुरुष्वेति" हस्तसंश्लेषलिप्सया ॥३२॥

७०. मुहुर्मुहुर्मदव्याजस्रस्तनीलांशुकापरा ।
आलक्ष्यरशना रेजे स्फुरद्विद्युदिव क्षपा ॥३३॥

७१. काश्चित्कनककांचीभिर्मुखराभिरितस्ततः ।
बभ्रमुर्दर्शयन्त्योऽस्य श्रोणीस्तन्वंशुकावृताः ॥३४॥

७२. चूतशाखां कुसुमितां प्रगृह्यान्या ललम्बिरे ।
सुवर्णकलशप्रख्यान्दर्शयन्त्यः पयोधरान् ॥३५॥

७३. काचित्पद्मवनादेत्य सपद्मा पद्मलोचना ।
पद्मवक्त्रस्य पार्श्वेऽस्य पद्मश्रीरिव तस्थुषी ॥३६॥

६४. शरीर और शोभासे जाज्वल्यमान राजकुमारको देखकर उन स्त्रियोंने, "इसकी भार्या धन्य है" यह धीरेसे शुद्ध मनसे कहा, न कि दूसरे भावसे ॥२३॥

—सर्ग ३

(३) स्त्रियोंका रोकना

६५. वह (सिद्धार्थ कुमार) स्त्रियों-सहित उस रम्य काननमें शोभायमान थे, मानो प्रांगणमें अप्सराओंसे युक्त सूर्य शोभा दे रहा था ॥२८॥

६६. वहां मदके वशमें पड़ किन्हीं स्त्रियोंने, कठिन संश्लिष्ठ सुंदर पीन स्तनोंसे कुमारका स्पर्श किया ॥२९॥

६७. मृदु बाहुलतासे शिथिल कन्धेका कोमल आलम्ब ले किसी अबलाने, झूठ ही गिरनेका बहाना करके हठपूर्वक आलिंगन किया ॥३०॥

६८. 'रहस्य बात सुनिये' यह कह किसीने लाल अधरोष्ठयुक्त, मद्य-गंधवाले मुखसे कुमारके कानमें सांस छोड़ी ॥३१॥

६९. भीगे लेपनवाली किसीने हाथ मिलानेके लोभसे, "यहां भक्ति करो" यह आज्ञा देती सी कहा ॥३२॥

७०. बार-बार मदके बहाने खिसके नील वस्त्रोंवाली दूसरी युवती, करधनीको किंचित् दिखाती, चमकती बिजलीवाली रात्रिकी तरह शोभायमान हुई ॥३३॥

७१. कोई सूक्ष्म वस्त्रसे ढंके मुखर सुवर्ण करधनियोंके साथ नितम्बोंको दिखलाती, दूसरी इधर-उधर घूमती थीं ॥३४॥

७२. कोई पूर्ण आम्र-शाखाओंको पकड़कर, सुवर्ण-कलश समान स्तनोंको दिखलाती झुक रही थी ॥३५॥

७३. पद्मवनसे पद्मसहित कोई पद्मलोचना इस पद्ममुखके पास आकर पद्म-लक्ष्मीकी तरह खड़ी हुई ॥३६॥

७४. मधुरं गीतमन्वर्थं काचित्साभिनयं जगौ।
तं स्वस्थं चोदयन्तीव "वंचितोऽसी"त्यवेक्षितैः ॥३७॥

७५. शुभेन वदनेनान्या भ्रूकार्मुकविकर्षिणा।
प्रावृत्यानुचकारास्य चेष्टितं धीरलीलया ॥३८॥

७६. पीनवल्गुस्तनी काचिद्धासाघूर्णितकुण्डला।
उच्चैरवजहासैनं "समाप्नोतु भवा"निति ॥३९॥

७७. अपयान्तं तथैवान्या बबन्धुर्माल्यदामभिः।
काश्चित्साक्षेपमधुरैर्जगृहुर्वचनांकुशैः ॥४०॥

७८. प्रतियोगार्थिनी काचिद् गृहीत्वा चूतवल्लरीम्।
"इदं पुष्पं तु कस्ये"ति पप्रच्छ मदविक्लवा ॥४१॥

७९. काचित्पुरुषवत्कृत्वा गतिं संस्थानमेव च।
उवाचैनं "जितः स्त्रीभिर्जय भो पृथिवीमिमाम्" ॥४२॥

८०. अथ लोलेक्षणा काचिज्जिघ्रन्ती नीलमुत्पलम्।
किंचिन्मदकलैर्वाक्यैर्नृपात्मजमभाषत ॥४३॥

८१. "पश्य भर्तश्चितं चूतं कुसुमैर्मधुगन्धिभिः।
हेमपंजररुद्धो वा कोकिलो यत्र कूजति ॥४४॥

८२. अशोको दृश्यतामेष कामिशोकविवर्धनः।
रुवन्ति भ्रमरा यत्र दह्यमाना इवाग्निना ॥४५॥

८३. चूतयष्ट्या समाश्लिष्टो दृश्यतां तिलकद्रुमः।
शुक्लवासा इव नरः स्त्रिया पीतांगरागया ॥४६॥

८४. फुल्लं कुरबकं पश्य निर्मुक्तालक्तकप्रभम्।
यो नखप्रभया स्त्रीणां निर्भर्त्सित इवानतः ॥४७॥

८५. बालाशोकश्च निचितो दृश्यतामेष पल्लवैः।
योऽस्माकं हस्तशोभाभिर्लज्जमान इव स्थितः ॥४८॥

७४. अभिनयपूर्वक अर्थसहित मधुर गीतको किसीने मानो संकेतोंसे "तू वंचित है" यह प्रेरणा करते धीरके लिये गाया ॥३७॥

७५. किसीने खिंचे हुए भ्रू रूपी धनुषवाले शुभ मुखसे घूमकर धीर लीला द्वारा कुमारकी चेष्टाका अनुकरण किया ॥३८॥

७६. पीन कोमलस्तनी, हाससे घूमते कुंडलवाली, कोई "आप समाप्त करें" यह कहती उस पर ऊंचे हंसी ॥३९॥

७७. दूसरियोंने हटते हुये कुमारको मालाकी रस्सियोंसे बांधा, और कुछने आक्षेपयुक्त मधुर वचनरूपी अंकुशोंसे (उसे) पकड़ा ॥४०॥

७८. विरोधकी इच्छावाली किसीने आम्र-वल्लरीको पकड़कर, मदसे विकल हो "यह पुष्प किसका है" यह पूछा ॥४१॥

७९. किसीने पुरुषकी तरह गति और आकार करके, उससे कहा: "स्त्रियों द्वारा जीते गये, तुम इस पृथिवीको जीतो" ॥४२॥

८०. तब कोई चंचल-नेत्रा नीलकमलको सूंघती, कुछ मद से सुन्दर वाक्यों द्वारा राजपुत्रसे बोली ॥४३॥

८१. "हे स्वामी, मधुर गंधवाले फूलोंसे संचित (इस) आमको देखो, जहां सोनेके पिंजड़ेमें बंधी कोयल कूक रही है ॥४४॥

८२. कामियोंके शोकको बढ़ानेवाले इस अशोकको देखो, जहां भ्रमर मानो अग्निसे जलते गुनगुना रहे हैं ॥४५॥

८३. आमके तनेमें रागालिंगित तिलक-वृक्षको देखो, मानो पीत-अंग-रागवाली स्त्रीसे आलिंगित शुक्लांबर पुरुष है ॥४६॥

८४. निचोड़े अलक्तकी प्रभावाले फूले कुरबकको देखो, जो स्त्रियोंके नखकी प्रभासे लज्जित हो झुका हुआ सा है ॥४७॥

८५. और पल्लवोंसे संचित इस तरुण अशोकको देखो, जो हमारे हाथोंकी शोभासे लजाता सा खड़ा है ॥४८॥

८६. दीर्घिकां प्रावृतां पश्य तीरजैः सिन्दुवारकैः।
पाण्डुरांशुकसंवीतां शयानां प्रमदामिव ॥४९॥

८७. दृश्यतां स्त्रीषु माहात्म्यं चक्रवाको ह्यसौ जले।
पृष्ठतः प्रेष्यवद् भार्यामनुवर्त्यनुगच्छति ॥५०॥

८८. मत्तस्य परपुष्टस्य रुवतः श्रूयतां ध्वनिः।
अपरः कोकिलोऽन्वक्षं प्रतिश्रुत्वेव कूजति ॥५१॥

८९. अपि नाम विहंगानां वसन्तेनाहृतो मदः।
न तु चिन्तयतोऽचिन्त्यं जनस्य प्राज्ञमानिनः" ॥५२॥

९०. इत्येवं ता युवतयो मन्मथोद्दामचेतसः।
कुमारं विविधैस्तैस्तैरुपचक्रमिरे नयैः ॥५३॥

—सर्गः ४

(४) अन्तःपुर-विलाप

९१. ततस्तुरंगावचरः स दुर्मनास्तथा वनं भर्तरि निर्ममे गते।
चकार यत्नं पथि शोकनिग्रहे
तथापि चैवाश्रु न तस्य चिक्षिये ॥१॥

९२. यमेकरात्रेण तु भर्तुराज्ञया जगाम मार्गं सह तेन वाजिना।
इयाय भर्तुर्विरहं विचिन्तयं-
स्तमेव पन्थानमहोभिरष्टभिः ॥२॥

९३. हयश्च सौजा विचचार कन्थकस्
तताम भावेन बभूव निर्मदः।
अलंकृतश्चापि तथैव भूषणै-
रभूद् गतश्रीरिव तेन वर्जितः ॥३॥

९४. निवृत्य चैवाभिमुखस्तपोवनं भृशं जिहेषे करुणं मुहुर्मुहुः।
क्षुधान्वितोऽप्यध्वनि शष्पमम्बु वा
यथा पुरा नाभिननन्द नाददे ॥४॥

८६. तीरके सिंदुवारोंसे घिरी पुष्करणीको देखो, मानो पीत-अंशुक पहने प्रमदा लेटी है ।।४९।।

८७. स्त्रियोंके बड़प्पनको देखो, जलमें यह चकवा, सेवककी तरह पीछे पीछे भार्याका अनुवर्तन करता जा रहा है ।।५०।।

८८. मस्त बोलती कोयलकी ध्वनि को सुनो, दूसरा कोयल (उसके) पीछे-पीछे प्रतिध्वनिकी तरह कूक रहा है ।।५१।।

८९. वसंत विहंगोंमें भी मद ला सकता है, पर अचिंत्यकी चिन्ता करते प्राज्ञ अभिमानी आदमीमें नहीं" ।।५२।।

९०. इस प्रकार कामसे उद्दाम चित्तवाली युवतियोंने उन-उन नाना उपायोंसे कुमारको खींचना चाहा ।।५३।।

—सर्ग ४

(४) रनिवास का विलाप

९१. तब निर्मम स्वामीके वन जानेपर वैसे दुःखी साईस (छंदक) ने, रास्तेमें शोक रोकनेका यत्न किया, तो भी उसका आंसू बन्द नहीं हुआ ।।१।।

९२. स्वामीकी आज्ञासे उसी घोड़ेके साथ जिस मार्गको वह एक रातमें गया था, उसी पथको स्वामीके विरहकी चिन्ता करते उसने आठ दिनमें पूरा किया ।।२।।

९३. और ओजस्वी घोड़ा (कंथक) मनमें खिन्न और मद-रहित हो भूषणोंसे वैसे अलंकृत भी स्वामीके बिना शोभा-रहित सा था ।।३।।

९४. तपोवनकी ओर मुंह करके मुड़कर वह बार-बार करुणा-सहित हिनहिनाता, भूखा होते भी मार्गमें उसने तृण या जलको न पहलेकी तरह पसन्द किया, न ग्रहण किया ।।४।।

९५. ततो विहीनं कपिलाह्वयं पुरं महात्मना तेन जगद्धितात्मना
क्रमेण तौ शून्यमिवोपजग्मतुर्
दिवाकरेणेव विनाकृतं नभः ॥५॥

९६. सपुण्डरीकैरपि शोभितं जलै-
रलंकृतं तं पुष्पधरैर्नगैरपि
तदेव तस्योपवनं वनोपमं गतप्रहर्षैर्न रराज नागरैः ॥६॥

९७. ततो भ्रमद्भिर्दिशि दीनमानसैरनुज्ज्वलैर्बाष्पहृतेक्षणैर्नरैः
निवार्यमाणाविव तावुभौ पुरं
शनैरपस्नातमिवाभिजग्मतुः ॥७॥

९८. निशाम्य च स्रस्तशरीरगामिनौ
विनागतौ शाक्यकुलर्षभेण तौ ।
मुमोच बाष्पं पथि नागरो जनः
पुरा रथे दाशरथेरिवागते ॥८॥

९९. अथ ब्रुवन्तः समुपेतमन्यवो
जनाः पथि च्छन्दकमागताश्रवः ।
"क्व राजपुत्रः पुरराष्ट्रनन्दनो
हृतस्त्वयासा"विति पृष्ठतोऽन्वयुः ॥९॥

१००. ततः स तान् भक्तिमतोऽब्रवीज्जना-
न्नरेन्द्रपुत्रं न परित्यजाम्यहम्" ॥१०॥

१०१. इदं वचस्तस्य निशम्य ते जनाः
"सुदुष्करं खल्वि"ति निश्चयं ययुः ।
पतद्धि जहृुः सलिलं न नेत्रजं
मनो निनिन्दुश्च फलोत्थमात्मनः ॥११॥

१०२. अथोचु"रद्यैव विशाम तद्वनं गतः स यत्र द्विपराजविक्रमः ।
जिजीविषा नास्ति हि तेन नौ विना
यथेन्द्रियाणां विगमे शरीरिणाम् ॥१२॥

९५. तब उस जगत्-हितैषी महात्मासे विहीन शून्य से कपिलवस्तु नगरमें, क्रमशः वे दोनों मानो सूर्यके बिना आकाशमें पहुंचे, ।।५।।

९६. कमलयुक्त जलसे शोभित पुष्पधारी वृक्षोंसे अलंकृत भी, राजकुमार का वह हर्षहीन उपवन वन-समान पुरवासियोंसे शोभा नहीं दे रहा था ।।६।।

९७. तब दीन-मन मलिन आंसूसे उपहत नेत्रोंवाले दिशाओंमें घूमते मनुष्यों द्वारा निवारित होते, वे दोनों मृतक-स्नान किये से नगरमें धीरे-धीरे पहुंचे ।।७।।

९८. शाक्य-कुल ऋषभके बिना (ही) थके शरीरसे चलते आये उन दोनोंको सुनकर, रास्तेमें पुरवासी जनोंने वैसे ही आंसू बहाया, जैसे पुराने समय में रामके रथके आनेपर ।।८।।

९९. तब संतप्त आंसू ला लोग मार्गमें छंदकसे "पुर और राष्ट्रके आनंद-दायक उस राजपुत्रको तू कहां ले गया" यह कहते पीछे-पीछे लगे ।।९।।

१००. तब उसने उन भक्तिमान् जनोंसे कहा—"मैंने नरेंद्र-पुत्रको नहीं छोड़ा। निर्जन वनमें रोते हुए मुझे और गृहस्थ-वेषको उन्होंने छोड़ दिया" ।।१०।।

१०१. उसके इस वचनको सुनकर उन लोगोंने "अतिदुष्कर निस्संदेह" यह निश्चय किया, और आंसुओंको गिरनेसे नहीं रोका और अपने स्वार्थपरतावाले मनकी निंदा की ।।११।।

१०२. तब वह बोले "आज ही हम उस वनमें प्रवेश करेंगे जहां वह गजराज-पराक्रमी गया, उसके बिना हमें जानेकी इच्छा नहीं, जैसे इन्द्रियोंके चले जानेपर शरीरधारियोंकी ।।१२।।

१०३. इदं पुरं तेन विवर्जितं वनं वनं च तत्तेन समन्वितं पुरम् ।
न शोभते तेन हि नो विना पुरं
मरुत्वता वृत्रबधे यथा दिवम् ॥१३॥

१०४. पुनः "कुमारो विनिवृत्त" इत्यथो
गवाक्षमालाः प्रतिपेदिरेऽङ्गनाः ।
विविक्तपृष्ठं च निशम्य वाजिनं
पुनर्गवाक्षाणि पिधाय चुक्रशुः ॥१४॥

१०५. प्रविष्टदीक्षस्तु सुतोपलब्धये व्रतेन शोकेन च खिन्नमानसः
जजाप देवायतने नराधिप-
श्चकार तास्ताश्च यथाशयाः क्रियाः॥१५॥

१०६. ततः स बाष्पप्रतिपूर्णलोचनस्तुरंगमादाय तुरंगमानुगः ।
विवेश शोकाभिहतो नृपक्षयं
युधापनीते रिपुणेव भर्तरि ॥१६॥

१०७. विगाहमानश्च नरेन्द्रमन्दिरं विलोकयन्नश्रुवहेन चक्षुषा ।
स्वरेण पुष्टेन रुराव कन्थको
जनाय दुःखं प्रतिवेदयन्निव॥१७

१०८. ततः खगाश्च क्षयमध्यगोचराः
समीपबद्धास्तुरगाश्च सत्कृताः ।
हयस्य तस्य प्रतिसस्वनुः स्वनं
नरेन्द्रसूनोरुपयानशंकिनः ॥१८॥

१०९. जनाश्च हर्षातिशयेन वंचिता
जनाधिपान्तः पुरसंनिकर्षगाः ।
"यथा हयः कन्थक एष हेषते
ध्रुवं कुमारो विशती"ति मेनिरे ॥१९॥

११०. अतिप्रहर्षादथ शोकमूर्छिताः कुमारसन्दर्शनलोललोचनाः ।
गृहाद्विनिश्चक्रमुराशया स्त्रियः
शरत्पयोदादिव विद्युतश्चलाः ॥२०॥

१०३. उसके बिना यह पुर वन है और उससे युक्त वह वन पुर है। उसके बिना हमारा पुर शोभा नहीं देता, जैसे वृत्रके वधके समय इंद्रके बिना स्वर्ग" ॥१३॥

१०४. फिर "कुमार लौटा" यह सुन स्त्रियां वातायनोंपर पहुंचीं, घोड़ेको नंगी पीठ देखकर फिर गवाक्षोंको बन्द कर वह रोने लगीं ॥१४॥

१०५. पुत्रकी प्राप्तिके लिए शोकसे खिन्न-मन दीक्षा ले व्रतके साथ राजा देवमन्दिरोंमें जप और अभिलाषानुरूप उन-उन क्रियाओंको कर रहा था ॥१५॥

१०६. तब घोड़ेको ले उसके पीछे-पीछे चलते अश्रुनेत्र छन्दकने, शोकयुक्त हो नृपगृहमें प्रवेश किया, मानो युद्धमें रिपुने स्वामीको छीन लिया हो ॥१६॥

१०७. राजमन्दिरमें चलते आंसू बहानेवाली आंखोंसे उसे देखते, लोगोंके सामने दुःख प्रकट करते कंथक ऊंचे स्वरसे चिल्लाने लगा ॥१७॥

१०८. तब घरके पक्षियों और पास बंधे उत्तम घोड़ोंने,
उस घोड़ेकी आवाजपर राजपुत्रके आगमनकी आशंकासे प्रतिशब्द किया ॥१८॥

१०९. राजाके अन्तःपुरके पासवाले लोगोंने अत्यन्त हर्षसे उछलते समझा—"यह कंथक घोड़ा हिनहिना रहा है, तो अवश्य कुमार प्रवेश कर रहे हैं" ॥१९॥

११०. फिर कुमारके दर्शनकी अभिलाषा भरी नेत्रोंवाली अत्यन्त हर्ष-शोकसे मूर्छित स्त्रियाँ घरसे शरद्के चंचल बिजलियोंकी तरह मेघसे निकलीं, (वह जैसी थीं) ॥२०॥

१११. विलम्बकेश्यो मलिनांशुकाम्बरा
निरंजनैर्बाष्पहतेक्षणैर्मुखैः ।
स्त्रियो न रेजुर्मजया विनाकृता
दिवीव तारा रजनीक्षयारुणाः ॥२१॥

११२. अरक्तताम्रैश्चरणैरनूपुरैरकुण्डलैरार्जवकन्धरैर्मुखैः ।
स्वभावपीनैर्जघनैरमेखलै-
रहारयोक्त्रैर्मुषितैरिव स्तनैः ॥२२॥

११३. निरीक्ष्य ता बाष्पपरीतलोचना
निराश्रयं छन्दकमश्वमेव च ।
विषण्णवक्त्रा रुरुदुर्वरांगना
वनान्तरे गाव इवर्षभोज्झिताः ॥२३॥

११४. ततः सबाष्पा महिषी महीपतेः
प्रनष्टवत्सा महिषीव वत्सला ।
प्रगृह्य बाहू निपपात गौतमी
विलोलपर्णी कदलीव कांचनी ॥२४॥

११५. हतत्विषोऽन्याः शिथिलांसबाहवः
स्त्रियो विषादेन विचेतना इव ।
न चुक्रुशुर्नाश्रु जहुर्न शश्वसु-
र्न चेलुरासुर्लिखिता इव स्थिताः ॥२५॥

११६. अधीरमन्याः पतिशोकमूर्छिता
विलोचनप्रस्रवणैर्मुखैः स्त्रियः ।
सिषिचिरे प्रोषितचन्दनान् स्तनान्धराधरः प्रस्रवणै-
रिवोपलान् ॥२६॥

११७. मुखैश्च तासां नयनाम्बुताडितै रराज तद्राजनिवेशनं तदा।
नवाम्बुकालेऽम्बुदवृष्टिताडितैः
स्रवज्जलैस्तामरसैर्यथा सरः ॥२७॥

१११. दीर्घ-केशी मलिन-वस्त्र-धरा अंजनहीना अश्रु-रुद्ध नेत्रों सहित मुखोंवाली, बिना शृंगार किये स्त्रियाँ रात बीतनेसे आकाशमें पीले पड़े तारों जैसी ॥२१॥

११२. लालिमाहीन नूपुर बिना चरणोंवाला कुंडल-रहित भूषित कंधेवाले मुखोंसे, मेखला-रहित स्वभावतः पीन नितम्बोंसे युक्त, हार बिना चुराये हुये से स्तनोंके साथ ॥२२॥

११३. उन आँसुओंसे भरी आंखोंवालियोंने छंदक और अश्वको असहाय देखा तो विषादयुक्त मुखवाली वरांगनायें वनान्तरमें वृषभ-परित्यक्त गायकी तरह रोने लगीं ॥२३॥

११४. नष्ट बच्चेवाली वत्सला महिषीकी तरह राजाकी अश्रुयुक्त महिषी, गौतमी दोनों बाहोंको पकड़कर चंचल पत्तेवाले सोनेके केलेकी तरह गिर पड़ी ॥२४॥

११५. प्रभाहीन शिथिल-कंधा-बाहुवाली विषादसे निश्चेतन सी दूसरी स्त्रियाँ न चिल्लाईं, न आँसू बहाईं, न लम्बी साँस लीं, न हिली-डुलीं, मानो चित्रलिखितसी खड़ी रहीं ॥२५॥

११६. पति-शोकसे मूर्छित, नेत्र से अश्रु बहाते मुखोंवाली दूसरी स्त्रियाँ अधीर होकर, चन्दन-मिटे स्तनोंको मानो पर्वत के झरनों द्वारा पाषाणोंको सींचने लगीं ॥२६॥

११७. अश्रु-ताड़ित उनके मुखोंसे वह राजभवन उस समय वैसे शोभित था, जैसे नवीन मेघकालमें मेघकी वृष्टिसे ताड़ित बहुते जलचुए कमलोंसे सरोवर ॥२७॥

११८. सुवृत्तपीनांगुलिभिर्निरन्तरैरभूषणैर्गूढसिरैर्वरांगनाः ।
उरांसि जघ्नुः कमलोपमैः करैः
स्वपल्लवैर्वातचला लता इव ॥२८॥

११९. करप्रहारप्रचलैश्च ता बभुस्तथापि नार्यः सहितोन्नतैः स्तनैः
वनानिलाघूर्णितपद्मकम्पितै
रथांगनाम्नां मिथुनैरिवापगाः ॥२९॥

१२०. यथा च वक्षांसि करैरपीडयं-
स्तथैव वक्षोभिरपीडयन् करान् ।
अकारयंस्तत्र परस्परं व्यथाः
कराग्रवक्षांस्यबला दयालसाः ॥३०॥

१२१. ततस्तु रोषप्रविरक्तलोचना
विषादसंबन्धिकषायगद्गदम् ।
उवाच निःश्वासचलत्पयोधरा
विगाढशोकाश्रुधरा यशोधरा ॥३१॥

१२२. "निशि प्रसुप्तामवशां विहाय मां
गतः क्व सच्छन्दक मन्मनोरथः ।
उपागते च त्वयि कन्थके च मे
समं गतेषु त्रिषु कम्पते मनः ॥३२॥

१२३. अनार्यमस्निग्धममित्रकर्म मे
नृशंस कृत्वा किमिहात्र रोदिषि ।
नियच्छ बाष्पं भव तुष्टमानसो
न संवदत्यश्रु च तच्च कर्म ते ॥३३॥

१२४. प्रियेण वश्येन हितेन साधुना
त्वया सहायेन यथार्थकारिणा ।
गतोऽर्यपुत्रो ह्यपुनर्निवृत्तये
रमस्व दिष्ट्या सफलः श्रमस्तव॥३४॥

११८. वरांगनायें भूषण-रहित छिपी नसोंवाली सुगोल घनी अंगुलियोंयुक्त कमल समान अपने हाथोंसे छातीको वायुसे चालित पल्लवों युक्त लता सी पीटने लगीं ।।२८।।

११९. हाथके प्रहारसे चंचल, एक साथ उन्नत स्तनोंसे वह नारियाँ, वन-वायु द्वारा हिलाये पद्मोंसे कम्पित चक्रवाकों के जोड़ों युक्त नदीकी तरह जान पड़ती थीं ।।२९।।

१२०. उन्होंने जैसे हाथोंसे छातियोंको वैसे ही छातियोंसे हाथोंको पीड़ित किया। दयासे अलस अबलाओंने (अपने) करपल्लवों और छातियों को परस्पर उस समय व्यथित किया ।।३०।।

१२१. तब रोषसे अतिरक्त लोचनवाली, लम्बी साँससे चलते स्तनोंवाली, भारी शोकसे अश्रु बहाती यशोधरा विषादकी कटुतासे गद्गद् हो बोली ।।३१।।—

१२२. "हे छंदक, रातको सोई बेबस मुझे छोड़ वह मेरा मनोरथ कहाँ गया ? तीनों साथ गये, तेरे और कंथकके आनेपर मेरा मन काँप रहा है ।।३२।।

१२३. हे नीच, अनार्य, स्नेहरहित शत्रुका काम करके अब तू क्यों रो रहा है ? आँसू रोक, तुष्ट मन हो, तेरा आँसू तेरे उस कर्मके अनुसार नहीं है ।।३३।।

१२४. प्रिय, वशंवद, हित, यथार्थकारी आर्यपुत्र तुझ साधुमित्रके साथ, फिर न लौटनेके लिये चले गये। खुश हो, अहो तेरा श्रम सफल हुआ ।।३४।।

१२५. वरं मनुष्यस्य विचक्षणो रिपुर्न मित्रमप्राज्ञमयोगपेशलम् ।
सुहृद्ब्रुवेण ह्यविपश्चिता त्वया
कृतः कुलस्यास्य महानुपप्लवः ॥३५॥

१२६. इमा हि शोच्या व्यवमुक्तभूषणाः
प्रसक्तबाष्पाविलरक्तलोचनाः ।
स्थितेऽपि पत्यौ हिमवन्महीसमे
प्रनष्टशोभा विधवा इव स्त्रियः ॥३६॥

१२७. इमाश्च विक्षिप्तविटंकबाहवः
प्रसक्तपारावतदीर्घनिःस्वनाः ।
विनाकृतास्तेन सहावरोधनै
र्भृशं रुदन्तीव विमानपंक्तयः ॥३७॥

१२८. अनर्थकामोऽस्य जनस्य सर्वथा
तुरंगमोऽपि ध्रुवमेष कन्थकः ।
जहार सर्वस्वमितस्तथा हि मे
जने प्रसुप्ते निशि रत्नचौरवत् ॥३८॥

१२९. यदा समर्थः खलु सोढुमागता-
निषुप्रहारानपि किं पुनः कशाः ।
गतः कशापातभयात्कथं न्वयं
श्रियं गृहीत्वा हृदयं च मे समम् ॥३९॥

१३०. अनार्यकर्मा भृशमद्य हेषते नरेन्द्रधिष्ण्यं प्रतिपूरयन्निव ।
यदा तु निर्वाहयति स्म मे प्रियं
तदा हि मूकस्तुरगाधमोऽभवत् ॥४०॥

१३१. यदि ह्यहेषिष्यत बोधयन् जनं
खुरैः क्षितौ वाप्यकरिष्यत ध्वनिम् ।
हनुस्वनं वा जनयिष्यदुत्तमं
न चाभविष्यन्मम दुःखमीदृशम्" ॥४१॥

१२५. मनुष्यके लिये होशियार शत्रु अच्छा है, (पर) युक्तिमें अचतुर अप्राज्ञ मित्र नहीं। अपने को सुहृद् कहनेवाले तुझ मूर्खने इस कुलका महान् अहित किया ॥३५॥

१२६. भूषणरहित आँसू बहाती मलिन लाल नेत्रोंवाली यह स्त्रियाँ, हिमालय-पृथिवीके समान पतिके रहते भी नष्ट-शोभा विधवाओंकी तरह शोचनीय हैं ॥३६॥

१२७. और यह फैली कपोत-स्थानोंरूपी बाहोंवाली बैठे कबूतरोंके लम्बे शब्दवाली, प्रासाद-पंक्तियाँ अन्तःपुरिकाओं के साथ प्रिय-विहीन अत्यन्त रो सी रही हैं ॥३७॥

१२८. इस जनका सर्वथा निश्चय अनर्थ-इच्छुक कंथक तुरंग है, जो कि रातको जनोंके सोते समय रत्न-चोरकी तरह मेरे सर्वस्वको यहाँसे हर ले गया ॥३८॥

१२९. जो पड़ते बाणोंके प्रहारोंको सहनेमें भी समर्थ था, (उस कंथकके लिये) कोड़ा क्या था? कोड़े की मारके भयसे कैसे यह हृदयके साथ मेरी शोभा को लेकर चला गया ॥३९॥

१३०. अनार्यकर्मा यह आज नरेन्द्र-भवनको भरता हुआ सा हिनहिना रहा है, (पर) जब मेरे प्रियको ले जा रहा था, तब यह अधम अश्व मूक रहा ॥४०॥

१३१. यदि लोगोंको जगाते भी हिनहिनाता या खुरोंसे पृथिवीपर शब्द करता, अथवा हनुसे गर्जन करता, तो आज मुझे ऐसा दुःख न होता" ॥४१॥

१३२. इतीह देव्याः परिदेविताश्रयं
निशम्य बाष्पग्रथिताक्षरं वचः।
अधोमुखः साश्रुकलः कृतांजलिः
शनैरिदं छन्दक उत्तरं जगौ ॥४२॥

१३३. "विगर्हितुं नार्हसि देवि, कन्थकं
न चापि रोषं मयि कर्तुमर्हसि।
अनागसौ स्वः समवेहि सर्वशो
गतो नृदेवः स हि देवि देववत्" ॥४३॥

१३४. इमं प्रलापं करुणं निशम्य ता
भुजैः परिष्वज्य परस्परं स्त्रियः।
विलोचनेभ्यः सलिलानि तत्यजु-
र्मधूनि पुष्पेभ्य इवेरिता लताः ॥५९॥

१३५. ततो धरायामपतद्यशोधरा विचक्रवाकेव रथांगसाह्वया।
शनैश्च तत्तद्विललाप विक्लवा
मुहुर्मुहुर्गद्गदरुद्धया गिरा ॥६०॥

१३६. "स मामनाथां सहधर्मचारिणी-
मपास्य धर्मं यदि कर्तुमिच्छति।
कुतोऽस्य धर्मः सहधर्मचारिणीं
विना तपो यः परिभोक्तुमिच्छति॥६१॥

१३७. शृणोति नूनं स न पूर्वपार्थिवा
न्महासुदर्शप्रभृतीन् पितामहान्।
वनानि पत्नीसहितानुपेयुष-
स्तथा हि धर्मं मदृते चिकीर्षति ॥६२॥

१३८. मखेषु वा वेदविधानसंस्कृतौ
न दंपती पश्यति दीक्षितावुभौ।
समं बुभुक्षू परतोऽपि तत्फलं
ततोऽस्य जातो मयि धर्ममत्सरः ॥६३॥

१३२. इस प्रकार देवीके रोदनयुक्त अश्रु-बद्ध अक्षरोंवाली वाणीको सुन आँसू बहाते अधोमुख हो हाथ जोड़कर छंदकने धीरे से यह उत्तर दिया ॥४२॥

१३३. "हे देवि, कंथककी निन्दा मत करो, और न मेरे ही ऊपर रोष करो। हम दोनोंको निरपराध जानो, सब तरहसे वह नरदेव देवोंके समान गये" ॥४३॥

१३४. इस करुण प्रलापको सुनकर उन स्त्रियोंने बाहोंसे एक-दूसरेको आलिंगन कर, हिलाई लता जैसे पुष्पोंसे मधुको, वैसे ही नेत्रोंसे आँसू बहाया ॥५९॥

१३५. तब चक्रवाकसे रहित चक्रवाकीकी तरह यशोधरा पृथिवीपर गिर पड़ी। और शनैः गद्‌गद् रुद्ध स्वरसे विकल हो बार बार विलाप करने लगी ॥६०॥—

१३६. "मुझ अनाथा सहधर्मचारिणीको छोड़कर यदि प्रिय धर्म करना चाहते हैं तो सहधर्मचारिणीके बिना उनको क्या धर्म होगा, जो कि तप भोगना चाहते हैं ॥६१॥

१३७. निश्चय उन्होंने महासुदर्शन आदि पितामह पुराने राजाओंके बारेमें सुना नहीं, जो कि पत्नी-सहित वन गये, तभी तो मेरे बिना वह धर्म करना चाहते हैं ॥६२॥

१३८. क्योंकि वेद-विहित संस्कारवाले दीक्षित दोनों दम्पतीको क्या नहीं देखते, जो परलोकमें भी फलको एक साथ भोगनेकी इच्छा करते हैं, या कि उनकी मेरे प्रति धर्म-ईर्ष्या हुई ॥६३॥

१३९. ध्रुवं स जानन्मम धर्मवल्लभो
मनः प्रियेर्ष्याकलहं मुहुर्मिथः।
सुखं विभीर्मामपहाय रोषणां
महेन्द्रलोकेऽप्सरसो जिघृक्षति ॥६४॥

१४०. इयं तु चिन्ता मम कीदृशं नु ता
वपुर्गुणं बिभ्रति तत्र योषितः।
वने यदर्थं स तपांसि तप्यते
श्रियं च हित्वा मम भक्तिमेव च ॥६५॥

१४१. न खल्वियं स्वर्गसुखाय मे स्पृहा
न तज्जनस्यात्मवतोपि दुर्लभम्।
स तु प्रियो मामिह वा परत्र वा
कथं न जह्यादिति मे मनोरथः ॥६६॥

१४२. अभागिनी यद्यहमायतेक्षणं
शुचिस्मितं भर्तुरुदीक्षितुं मुखं।
न मन्दभाग्योऽर्हति राहुलोऽप्ययं
कदाचिदंके परिवर्तितुं पितुः ॥६७॥

१४३. अहो नृशंसं सुकुमारवर्चसः सुदारुणं तस्य मनस्विनो मनः।
कलाप्रलापं द्विषतोऽपि हर्षणं
शिशुं सुतं यस्त्यजतीदृशं बत ॥६८॥

१४४. ममापि कामं हृदयं सुदारुणं
शिलामयं वाप्ययसोऽपि वा कृतम्।
अनाथवच्छ्रीरहिते सुखोचिते
वनं गते भर्तरि यन्न दीर्यते" ॥६९॥

१४५. इतीह देवी पतिशोकमूर्छिता
रुरोद दध्यौ विललाप चासकृत्।
स्वभावधीरापि हि सा सती शुचा
धृतिं न सस्मार चकार नो ह्रियम् ॥७०॥

१३९. निश्चय मेरे धर्म-वल्लभ क्षण भरके पारस्परिक प्रिय ईर्ष्या-कलह युक्त मनको जानकर, सुखसे डरके मुझ क्रोधनाको छोड़ इन्द्रलोक की अप्सराओंको प्राप्त करना चाहते हैं ॥६४॥

१४०. मुझे तो यह चिन्ता है, कि वहाँ की वह स्त्रियाँ कैसे शरीर और गुणोंको धारण करती हैं, जिनके लिये वह राजलक्ष्मी और मेरी भक्तिको भी छोड़कर वनमें तप कर रहे हैं ॥६५॥

१४१. स्वर्गके सुखके लिये मेरी इच्छा नहीं है, वह संयमीके लिये दुर्लभ (भी) नहीं है, प्रियतम मुझे यहाँ या परलोकमें कैसे भी न छोड़ें, यही है मेरा मनोरथ ॥६६॥

१४२. दीर्घ-नेत्र शुद्ध मुस्कानयुक्त स्वामीके मुखको देखनेकी यदि मैं अभागिनी हूँ। तो यह मन्दभाग्य राहुल भी क्या कभी पिताकी गोदमें पौढ़ने योग्य नहीं है ॥६७॥

१४३. सुकुमार तेजवाले उन मनस्वीका मन अहो नृशंस और अतिदारुण है, जो कि हाय वह शत्रुको भी हर्षित करनेवाले मधुर-आलापी शिशुपुत्र को छोड़ गये ॥६८॥

१४४. मेरा भी यह अतिदारुण हृदय जरूर शिलामय या लौह-निर्मित है, जो कि अनाथकी तरह शोभारहित सुख-योग्य स्वामीके वन जाने पर भी विदीर्ण नहीं होता" ॥६९॥

१४५. इस प्रकार वहाँ पतिके शोकसे मूर्छित देवी चिन्ता करती बार-बार विलाप करती, स्वभावसे धीर भी सती शोकके कारण धैर्यको भूल संकोच छोड़ बैठी थी ॥७०॥

१४६. ततस्तथा शोकविलापविक्लवां
यशोधरां प्रेक्ष्य वसुंधरागताम् ।
महारविन्दैरिव वृष्टिताडितै
र्मुखैः सबाष्पैर्वनिता विचुक्रुशुः ॥७१॥
—सर्गः ८

१७. मातृचेट (५० ई० पू०)

यह अश्वघोष और कनिष्कके समकालीन थे। कनिष्कके प्रयत्नसे जो बौद्ध महापरिषद् कश्मीरमें बैठी थी, उसमें इन्हें भी कनिष्कने निमंत्रित किया था, लेकिन वृद्धावस्थाके कारण उसमें योग देनेसे असमर्थता प्रकट करते हुए इन्होंने एक पत्र—"राजा कनिष्क लेख" लिखा था, जिसका अनुवाद तिब्बती भाषामें अब भी प्राप्य है। कनिष्क जिस बौद्ध-धर्मके

१. बुद्धकी महिमा—

१. स्वयंभुवे नमस्तेऽस्तु प्रभूताद्भुतधर्मणे ।
यस्य संख्याप्रभावाभ्यान्न गुणेष्वस्ति निश्चयः ॥८॥
२. इयन्त इति नास्त्यन्तः चेदृशा इति का कथा ।
पुण्या इत्येव तु गुणान् प्रति ते मुखरा वयम् ॥९॥
३. विषह्यमविषह्यं वेत्यवधूय विचारणाम् ।
स्वयमभ्युपपन्नन्ते निराक्रन्दमिदं जगत् ॥१॥
४. अव्यापारितसाधुस्त्वं त्वमकारणवत्सलः ।
असंस्तुतसखश्च त्वमनवस्कृतबान्धवः ॥२॥
५. स्वमांसान्यपि दत्तानि वस्तुष्वन्येषु का कथा ।
प्राणैरपि त्वया साधो मानितः प्रणयी जनः ॥३॥
६. स्वैः शरीरैः शरीराणि प्राणैः प्राणाः शरीरिणां ।
जिघांसुभिरुपात्तानां क्रीतानि शतशस्त्वया ॥४॥

१४६. तब शोक-विलापसे विकल धरतीपर पड़ी यशोधराको उस तरह देखकर, वर्षासे ताड़ित महाकमलोंसी अश्रुपूर्णमुखी वनितायें क्रंदन करने लगीं ॥७१॥

—सर्ग ८

१७. मातृचेट (ईसवी प्रथम शताब्दी)

माननेवाले थे, वह "सर्वास्तिवाद" था। उस समय अन्तः सलिला नदीकी तरह महायानके कितने ही विचार जहां-तहां भले ही प्रचलित होने लगे हों, लेकिन अभी उसे यह नाम भी नहीं मिला था, न गंधार-कश्मीरकी तरफ उसका पता था। अश्वघोष, मातृचेट दोनों सर्वास्तिवादी थे। उनका महायानसे कोई सम्बन्ध नहीं था, हां महायानियोंने भी उनका हमेशा सम्मान किया। मातृचेटका "अध्यर्धशतक" प्रसिद्ध ग्रंथ है।

१. बुद्धकी महिमा—

१. बहुत अद्भुत गुणोंवाले हे स्वयंभू, नमस्ते।
जिसके कि गुणोंकी गणना और प्रभावोंका निरूपण नहीं है ॥८॥

२. "इतना"का तो अन्त नहीं है, "ऐसा" इसकी बात ही क्या?
पवित्र हैं, इतना ही तुम्हारे गुणोंके बारे में हम कह सकते हैं ॥९॥

३. सह्य असह्य इस कल्पनाको हटाकर,
तुमने कष्टपूर्ण इस जगत्को स्वयं जाना ॥१॥

४. बिना उपकार-व्यापारके साधु, बिना कारणके तुम वत्सल हो।
बिना प्रशंसाके मित्र और न छोड़नेवाले बन्धु हो ॥२॥

५. तुमने अपने मांसको भी दे डाला, दूसरी वस्तुओंकी तो बात ही क्या? हे साधु, तुमने अपने प्राणों से भी प्रेमीजनोंका मान किया ॥३॥

६. अपने शरीरसे देहधारियोंके शरीरोंको, अपने प्राणोंसे प्राणोंको। घातकोंके हाथमें गायोंको सैकड़ों बार तुमने खरीदा ॥४॥

७. न दुर्गतिभयान्नेष्टामभिप्रार्थयता गतिम् ।
केवलाशयशुद्ध्यैव शीलं सात्मीकृतं त्वया ॥५॥

८. जिह्मानां नित्यविक्षेपादृजूनान्नित्यसेवनात् ॥
कर्म्मणां परिशुद्धानां त्वमेकायनतां गतः ॥६॥

९. पीड्यमानेन बहुशस्त्वया कल्याणचेतसा ।
क्लेशेषु विवृतन्तेजो जनः क्लिष्टोनुकम्पितः ॥७॥

१०. परार्थे त्यजतः प्राणान् या प्रीतिरभवत्तव ।
न सा नष्टोपलब्धेषु प्राणिषु प्राणिनाम्भवेत् ॥८॥

११. कदाचित् निरपेक्षस्य च्छिद्यमानस्य ते सकृत् ।
वधकेष्वपि सत्त्वेषु कारुण्यमभवत् प्रभो ॥९॥

१२. सम्यक्सम्बोधिबीजस्य चित्तरत्नस्य तस्य ते ।
त्वमेव धीर, सारज्ञो दूरे तस्येतरो जनः ॥१०॥

१३. नाकृत्वा दुष्करं कर्म्म दुर्लभं लभ्यते पदं ।
इत्यात्मनिरपेक्षेण वीर्यं सम्वर्द्धितं त्वया ॥११॥

१४. विशेषोत्कर्षनियमो न कदाचिदभूत्तव ।
अतस्त्वयि विशेषाणां च्छिन्नस्तरतमक्रमः ॥१२॥

१५. सुसुखेष्वपि संगोभूत् सफलेषु समाधिषु ।
न ते नित्यानुबद्धस्य महाकरुणया हृदि ॥१३॥

१६. त्वादृशान् पीडयत्येव नानुगृह्णाति तत्सुखं ।
प्रणीतमपि सद्वृत्तं यदसाधारणं परैः ॥१४॥

१७. विमिश्रात् सारमादत्तं सर्व्वं पीतमकल्मषम् ।
त्वया भुक्तं न भुक्तं तु विषवत् परिवर्जितम् ॥१५॥

१८. क्रीणितं रत्नसारज्ञ, प्राणैरपि सुभाषितम् ।
पराक्रान्तं त्वया बोधौ तासु तासूपपत्तिषु ॥१६॥

७. न दुर्गतिके भयसे और न सुगतिकी इच्छासे,
केवल हृदय-शुद्धिके लिये ही तुमने शीलको आत्मसात् किया ॥५॥

८. कुटिल कर्मोंको नित्य छोड़ते सरल कर्मोंको नित्य सेवन करते,
परिशुद्ध कर्मोंके तुम एक-आश्रय हुये ॥६॥

९. मंगलचित्तवाले पीड़ित होते तुमने बहुत बार,
क्लेशों (मलों)के विषयमें अपने तेजको प्रकट किया और क्लेशयुक्त जनपर अनुकम्पा की ॥७॥

१०. दूसरेके लिये प्राणोंको छोड़ते जो खुशी तुम्हें हुई,
वह नष्ट हो फिर मिले प्राणियोंके विषयमें भी नहीं हो सकती ॥८॥

११. हे प्रभो, बिना स्वार्थके काटे जाते तुम्हारे प्रति अनेक बार,
हिंसक प्राणियोंके हृदयमें भी करुणा हो आई ॥९॥

१२. हे धीर, उस परम ज्ञानके बीजवाले तुम्हारे
चित्तरत्नके तुम ही सारज्ञ हो, दूसरे जन उससे दूर हैं ॥१०॥

१३. दुष्कर कर्म किये बिना दुर्लभ पद नहीं मिलता,
यह सोच अपनी भी पर्वाह न कर तुमने पराक्रम बढ़ाया ॥११॥

१४. विशेष (पुण्य)के उत्कर्षका नियम कभी भी तुम्हारे मनमें नहीं आया,
इसलिए तुम्हारे भीतरसे विशेषोंके कम-अधिकका ख्याल छिन्न हो गया ॥१२॥

१५. सुन्दर सफल समाधियोंमें सुन्दर सुखोंमें, नित्य-तत्पर
हृदयमें महाकरुणाके कारण तुम्हें आसक्ति नहीं हुई ॥१३॥

१६. यह गुण (भी) तुम्हारे वैरियोंपर अनुग्रह नहीं पीड़न ही करता है,
[illegible] जो कि दूसरोंके लिये असाधारण है ॥१४॥

१७. तुमने शिक्षित वस्तुओंमें से सारको ग्रहण किया, और निर्मल मार्गको लिया। तुमने निन्द्ययुक्त भोगको छोड़ दिया ॥१५॥

१८. हे [illegible], प्राणोंको देकर भी तुमने सुभाषितको खरीदा।
परज्ञानके लिये तुमने नाना उपायोंसे पराक्रम किया ॥१६॥

१८. भास (२०० ई० पू०)

भास संस्कृतके ख्यातनामा प्राचीन नाटककार हैं। यद्यपि इनका नाम अपरिचित नहीं था, लेकिन इनकी कृतियां—वर्तमान शताब्दी में ही प्रकाश में आईं। इनके नाटकों में कितने ही महाभारत और रामायण की कथाओं को लेकर लिखे गये हैं, कुछ वत्सराज उदयन से सम्बन्ध रखते हैं, और कुछ दूसरी कथाओं को लेकर।

१. महाभारत-सम्बन्धी—(१) बाल चरित, (२) पंचरात्र, (३) मध्यमव्यायोग, (४) दूतवाक्य, (५) दूतघटोत्कच, (६) कर्णभार, (७) उरुभंग।

(ततः प्रविशति पद्मिनिका)

१. पद्मिनिका—मधुकरिके, मधुकरिके, आगच्छ तावच्छीघ्रम्।

२. मधुकरिका—हला, इयमस्मि। किं क्रियताम्।
पद्मिनिका—हला, किं न जानासि त्वं, भर्तृदारिका पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखितेति।

३. मधुकरिका—हा धिक्।
पद्मिनिका—हला, गच्छ शीघ्रम्, आर्यामावन्तिकां शब्दय। केवलं भर्तृदारिकायाः शीर्षवेदनामेव निवेदय, ततः स्वयमेवागमिष्यति।

४. मधुकरिका—हला, किं सा करिष्यति ?
पद्मिनिका—सा खल्विदानीं मधुराभिः कथाभिः भर्तृदारिकायाः शीर्षवेदनां विनोदयति।

५. मधुकरिका—युज्यते। कुत्र शयनीयं रचितं भर्तृदारिकायाः।
पद्मिनिका—समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा। गच्छेदानीं त्वं। अहमपि भर्त्रे निवेदनार्थमार्यवसन्तकमन्वेषे।

१८. भास (२०० ई० पू०)

२. रामायण---(८) प्रतिमा, (९) अभिषेक।

३. उदयन-सम्बन्धी---(१०) स्वप्नवासवदत्ता, (११) प्रतिज्ञा-यौगंधरायण।

४. अन्य---(१२) अविमारक, (१३) दरिद्रचारुदत्त।

इनके नाटकों में स्वप्नवासवदत्त और प्रतिज्ञायौगंधरायण सबसे श्रेष्ठ हैं।

स्वप्नवासवदत्तं

(तब पद्मिनिका प्रवेश करती है)

१. पद्मिनिका---मधुकरिके, मधुकरिके, आ तो जल्दीसे।

(प्रवेश करके)

२. मधुकरिका---अरी, यह हूँ मैं, क्या करना है?
पद्मिनिका---अरी, क्या तू नहीं जानती, कि भर्तृदारिका (स्वामि-पुत्री) पद्मावती सिरदर्दसे दुःखी है।

३. मधुकरिका---हा, धिक्कार।
पद्मिनिका---अरी, जल्दी आ, आर्या अवन्तिकाको बुला। केवल भर्तृ-दारिकाके सिरदर्दको ही अर्ज करना है, वह स्वयं ही आ जायेंगी।

४. मधुकरिका---अरी, वह क्या करेंगी?
पद्मिनिका---वह इस समय मधुर कथाओंसे भर्तृदारिकाके सिरदर्द-को भुलवायेंगी।

५. मधुकरिका---ठीक है। भर्तृदारिकाकी शय्या कहाँ लगाई?
पद्मिनिका---समुद्रकुटीमें शय्या लगी है। जा इस समय तू। मैं भी स्वामीको निवेदन करनेके लिये आर्य वसन्तकको ढूंढ़ती हूँ।

६. मधुकरिका—एवं भवतु। (निष्क्रान्ता)
पद्मिनिका—कुत्रेदानीमार्यवसन्तकं प्रेक्षे ?

७. विदूषकः—(पद्मिनिकां विलोक्य) अद्य खलु देवीवियोगविधुरहृदयस्य तत्र भवतो वत्सराजस्य पद्मावतीपाणिग्रहणसमीहितस्यात्यन्तसुखावहे मंगलोत्सवे मदनाग्निदाहोऽधिकतरं वर्धते। (ततः प्रविशति विदूषकः) अयि पद्मिनिके, पद्मिनिके, किमिह वर्तसे ?
पद्मिनिका—आर्य, वसन्तक, किं न जानासि त्वं, भर्तृदारिका पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखितेति।

८. विदूषकः—भवति, सत्यं, न जानामि ?
पद्मिनिका—तेन हि भर्त्रे निवेदयैनाम्। यावदहमपि शीर्षानुलेपनार्थं त्वरयामि।
विदूषकः—कुत्र शयनीयं रचितं पद्मावत्याः ?
पद्मिनिका—समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा।

९. विदूषकः—गच्छतु भवती। यावदहमपि तत्र भवते निवेदयिष्यामि।

(निष्क्रान्तौ)

(ततः प्रविशति राजा।)

१०. राजा—

श्लाघ्यामवन्तिनृपतेः सदृशीं तनूजां,
कालक्रमेण पुनरागतदारभारः।
लावण्यके हुतवहेन हृतांगयष्टिं,
तां पद्मिनीं हिमहतामिव चिन्तयामि॥१॥

(प्रविश्य)

६. मधुकरिका—ऐसा ही हो। (निकल गई)
पद्मिनिका—कहाँ इस समय आर्य वसन्तकको देखू ?

(तब विदूषक प्रवेश करता है)

७. विदूषक—आज देवीके वियोगसे दुःखित-हृदयवाले आप वत्सराज को पद्मावतीके पाणिग्रहणके अतिसुखद मंगलोत्सवमें कामाग्निका दाह अत्यधिक बढ़ रहा है। (पद्मिनिकाको देखकर) अरी पद्मिनिके, अरी पद्मिनिके, तू कैसे यहाँ है ?
पद्मिनिका—आर्य वसन्तक, क्या तुम नहीं जानते, भर्तृदारिका पद्मावती सिरदर्दसे दुःखी हैं ?

८. विदूषक—भवति (आप), सचमुच, मैं नहीं जानता !
पद्मिनिका—तो यह बात स्वामीसे अर्ज करो। तब तक मैं भी सिर-के लेपके लिये जल्दी कर रही हूँ।
विदूषक—पद्मावतीकी शय्या कहाँ लगाई ?
पद्मिनिका—समुद्रकुटीमें सेज बिछी है।

९. विदूषक—आप जाइये, मैं भी तब तक आप (महाराज) को निवेदन करूँ।

(दोनों बाहर चले गये)

(प्रवेशक समाप्त)

(तब राजा प्रवेश करता है)

१०. राजा—
कालक्रमसे फिर पत्नीके भारवाला (मैं) लावाणक (गाँव) में आगसे छिने शरीरवाली, अवन्तिराजकी श्लाघनीय-समानरूपा पुत्री उस पद्मिनी (वासवदत्ता) के लिये मैं हिमसे निहतपद्मिनीकी तरह सोचता हूँ ॥१॥

(प्रवेश करके)

११. विदूषकः—त्वरतां त्वरतां तावत् भवान्।
राजा—किमर्थम् ?

१२. विदूषकः—तत्र भवती पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखिता
राजा—कैवमाह ?

१३. विदूषकः—पद्मिनिकया कथितम्।
राजा—भोः, कष्टम्—

रूपश्रियासमुदितां गुणतश्च युक्तां,
लब्ध्वा प्रियां मम तु मन्द इवाद्य शोकः।
पूर्वाभिघातसरुजोऽप्यनुभूतदुःखः,
पद्मावतीमपि तथैव समर्थयामि ॥२॥
अथ कस्मिन् प्रदेशे वर्तते पद्मावती ?

१४. विदूषकः—समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा।
राजा—तेन हि तस्य मार्गमादेशय।

१५. विदूषकः—एत्वेतु भवान्।
(उभौ परिक्रामतः)
विदूषकः—इदं समुद्रगृहम्। प्रविशतु भवान्।
राजा—पूर्वं प्रविश।

१६. विदूषकः—भोः, तथा। (प्रविश्य) अविहा तिष्ठतु तिष्ठतु तावत् भवान्।
राजा—किमर्थम् ?
विदूषकः—एष खलु दीपप्रभावसूचितरूपो वसुधातले परिवर्तमानः काकोदरः।

११. विदूषक—आप जल्दी करें, जल्दी करें।

राजा—क्यों ?

१२. विदूषक—पद्मावती सिरदर्दसे पीड़ित है।

राजा—किसने यह कहा ?

१३. विदूषक—पद्मिनिकाने कहा।

राजा—हा कष्टम्—

रूपकी शोभासे संपन्न और गुणसे संयुक्त प्रियाको पाकर आज तो मेरा शोक मन्द हुआ था।

पहलेके आघातसे रुग्ण दुःख अनुभव किये मैं, पद्मावतीको भी उसी तरह मानता हूँ ॥२॥

तो पद्मावती किस स्थानमें है ?

१४. विदूषक—समुद्रकुटीमें शय्या बिछी है।

राजा—तो उसका रास्ता बतलाओ।

१५. विदूषक—आइये, आइये आप।

(दोनों परिक्रमा करते हैं)

विदूषक—यह समुद्रकुटी है। आप प्रवेश करें।

राजा—पहले तुम प्रवेश करो।

१६. विदूषक—हे, अच्छा (प्रवेश करके)। हो-हो, ठहरें आप।

राजा—क्यों ?

विदूषक—यह दीपके प्रकाशसे सूचित होते शरीरवाला हिलता साँप धरती पर है।

१७. राजा—(प्रविश्यावलोक्य सस्मितम्) । अहो सर्पव्यक्ति-
वैधेयस्य ।

ऋज्वायतां हि मुखतोरणलोलमालां,
भ्रष्टां क्षितौ त्वमवगच्छसि मूर्ख, सर्पम् ।
मन्दानिलेन निशि या परिवर्तमाना,
किञ्चित् करोति भुजगस्य विचेष्टितानि ।।३।।

१८. विदूषकः—(निरूप्य) सुष्टु भवान् भणति । न खल्वयं काकोदरः । (प्रविश्यावलोक्य) तत्र भवती पद्मावती इहागत्य निर्गता भवेत् ।

राजा—वयस्य, अनागतया भवितव्यम् ।

१९. विदूषकः—कथं भवान् जानाति ?

राजा—किमत्र ज्ञेयम् ? पश्य—

शय्या नावनता तथाऽऽस्तृतसमा न व्याकुलप्रच्छदा,
न क्लिष्टं हि शिरोपधानममलं शीर्षाभिघातौषधैः ।
रोगे दृष्टिविलोभनं जनयितुं शोभा न काचित् कृता,
प्राणी प्राप्य रुजा पुनर्न शयनं शीघ्रं स्वयं मुंचति ।।४।।

२०. विदूषकः—तेन ह्यस्यां शय्यायां मुहूर्तकमुपविश्य तत्र भवतीं प्रतिपालयतु भवान् ।

राजा—बाढम् । (उपविश्य) वयस्य, निद्रा मां बाधते । कथ्यतां काचित् कथा ।

विदूषकः—अहं कथयिष्यामि । हुंकृतिं करोतु अत्र भवान् ।

राजा—बाढम् ।

१७. राजा——(प्रवेश कर देखकर, मुस्कुराते हुये) अहो, मूर्खकी सर्पकी पहचान !

प्रधान द्वारकी जमीनपर गिरी चंचल सीधी,
लम्बी मालाको मूर्ख, तू सर्प समझता है।
जो कि रातको मन्द वायुमे हिलती,
कुछ साँपका अनुकरण करती है ॥३॥

१८. विदूषक——(देखकर) आप ठीक कहते हैं। (प्रवेश करके देखकर) पद्मावती यहाँ आकर चली गई होंगी।

राजा——मित्र, शायद अभी न आई हो।

१९. विदूषक——आप कैसे जानते हैं ?

राजा——यहाँ जाननेको क्या है ? देखो——

शय्या झुकी नहीं है और बिछी चादर अस्तव्यस्त नहीं है,
सिरके लेपकी औषधोंसे निर्मल तकिया मलिन नहीं हुआ है।
रोगमें दृष्टि-लोभ पैदा करनेके लिये कोई सजावट नहीं की गई,
शय्यापर पहुँचकर प्राणी रोगसे स्वयं उसे शीघ्र नहीं छोड़ता ॥४॥

२०. विदूषक——तो इस शय्यापर क्षणभर बैठकर आप उनकी प्रतीक्षा करें।

राजा——अच्छा (बैठकर) मित्र, नींद मुझे सता रही है। कोई कथा कहो।

विदूषक——मैं कहूँगा, आप उसपर हुँकार भरें।

राजा——अच्छा।

२१. विदूषकः—अस्ति नगर्युज्जयिनी नाम। तत्राधिकरमणीयान्युदकस्नानानि वर्तन्ते किल।
राजा—कथमुज्जयिनी नाम?

२२. विदूषकः—यद्यनभिप्रेतैषा कथा, अन्यां कथयिष्यामि।
राजा—वयस्य, खलु नानभिप्रेतैषा कथा। किन्तु,

स्मराम्यवन्त्याधिपतेः सुतायाः,
प्रस्थानकाले स्वजनं स्मरन्त्याः।
बाष्पं प्रवृद्धं नयनान्तलग्नं,
स्नेहान्ममैवोरसि पातयन्त्याः ॥५॥

अपि च

बहुशोऽप्युपदेशेषु यया मामीक्षमाणया।
हस्तेन स्रस्तकोणेन कृतमाकाशवादितम् ॥६॥

२३. विदूषकः—भवतु, अन्यां कथयिष्यामि। अस्ति नगरं ब्रह्मदत्तं नाम। तत्र किल काम्पिल्यो नाम राजा।
राजा—किमिति? किमिति?

२४. विदूषकः—(पुनस्तदेव पठति)
राजा—मूर्ख, राजा ब्रह्मदत्तः, नगरं काम्पिल्यमित्यभिधीयताम्।

२५. विदूषकः—किं राजा ब्रह्मदत्तः, नगरं काम्पिल्यम्?
राजा—एवमेतत्।

२६. विदूषकः—राजा ब्रह्मदत्तः, नगरं काम्पिल्यम् (इति बहुशः तदेव पठित्वा) इदानीं श्रृणोतु भवान्। अयि सुप्तोऽत्र भवान्। अतिशीतलेयं वेला। आत्मनः प्रावारकं गृहीत्वागमिष्यामि। (निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति वासवदत्ता अवन्तिकावेषेण चेटी च)
चेटी—एत्वेत्वार्या। दृढं खलु भर्तृदारिका शीर्षवेदनया दुःखिता।

२१. विदूषक—उज्जयिनी नामक नगरी है। वहाँ अतिरमणीय पानीके स्नान हैं।
राजा—क्या उज्जयिनी ?

२२. विदूषक—यदि यह कथा पसन्द नहीं है, तो दूसरी कहूँगा।
राजा—मित्र, यह कथा अप्रिय नहीं है, किन्तु—
मैं प्रस्थानके समय अवन्तिराजकी सुताको,
स्वजनोंका स्मरण करते याद करता हूँ।
आँखके छोरमें बढ़े हुये आँसुओंको वह
स्नेहसे मानो मेरे ही हृदयपर गिरा रही थी ॥५॥
और भी,
बहुत प्रकार के संगीत-उपदेशोंके समय मुझे देखती हुई जिसने मिजराब-युक्त हाथोंसे सूना वादन बजाया था ॥६॥

२३. विदूषक—रहने दो, दूसरी कहूँगा। ब्रह्मदत्त नामक नगर है। वहाँ काम्पिल्य नामक राजा है।
राजा—क्या, क्या ?

२४. विदूषक—(फिर उसीको कहता है)
राजा—मूर्ख, राजा ब्रह्मदत्त, नगर काम्पिल्य ऐसा कहो।

२५. विदूषक—क्या राजा ब्रह्मदत्त, नगर काम्पिल्य ?
राजा—हाँ, ऐसा ही है यह।

२६. विदूषक—राजा ब्रह्मदत्त, नगर काम्पिल्य (बहुत बार उसीको दोहराते) अब आप सुनिये। अरे, आप यहाँ सो गये। यह बड़ी ठंडी बेला है। अपनी दुशालेको लेकर आता हूँ। (निकल गया)।
(तब आवन्तिकाके भेसमें वासवदत्ता और दासी प्रवेश करती हैं)
चेटी (दासी)—आइये, आइये आर्या। भर्तृदारिका सिरदर्दसे बहुत पीड़ित हैं।

२७. वासवदत्ता—हा धिक्, कुत्र शयनीयं रचितं पद्मावत्याः।
चेटी—समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा।
वासवदत्ता—तेन ह्यग्रतो याहि।
(उभे परिक्रामतः)
चेटी—इदं समुद्रगृहकम्। प्रविशत्वार्या। यावदहमपि शीर्षानुलेपनार्थं त्वरयामि। (निष्क्रांता)

२८. वासवदत्ता—(शयनं नाटयति) अहो अकरुणाः खल्वीश्वरा मे। विरहपर्युत्सुकस्यार्यपुत्रस्य विश्रामस्थानभूतेयमपि नाम पद्मावत्यस्वस्था जाता। यावत् प्रविशामि। (प्रविश्यावलोक्य) अहो परिजनस्य प्रमादः। अस्वस्थां पद्मावतीं केवलं दीपसहायां कृत्वा परित्यजति। इयं पद्मावत्यवसुप्ता। यावदुपविशामि। अथवान्यासन-परिग्रहेणाल्प इव स्नेहः प्रतिभाति। तदस्यां शय्याया-मुपविशामि। (उपविश्य) किंनु खल्वेतया सहोपविशन्त्या अद्य प्रह्लादितमिव मे हृदयम्? दिष्ट्या विच्छिन्नसुख-निःश्वासा। निवृत्तरोगया भवितव्यम्। अथवैकदेशसं-विभागतया शयनीयस्य सूचयति मामालिंगेति। यावच्छ-यिष्ये। (शयनं नाटयति)
राजा—(स्वप्नायते) हा वासवदत्ते!

२९. वासवदत्ता—(सहसोत्थाय) हम् आर्यपुत्रः, न खलु पद्मावती। किन्नु खलु दृष्टास्मि! महान् खल्वार्ययौगन्ध-रायणस्य प्रतिज्ञाभारो मम दर्शनेन निष्फलः संवृत्तः।
राजा—हा अवन्तिराजपुत्रि,

२७. वासवदत्ता——हा धिक्। कहाँ बिछौना किया पद्मावतीके लिये।

चेटी——समुद्रकुटीमें शय्या लगाई है।

वासवदत्ता——तो आगे-आगे चल।

(दोनों परिक्रमा करती है)

चेटी——यह समुद्रकुटी है। आर्या प्रवेश करें। जब तक मैं भी सिरके लेपको जल्दी लाती हूँ। (निकल गई)

२८. वासवदत्ता——अहो मेरे देवता निष्ठुर हैं। बिरह-उत्सुक आर्य-पुत्रके विश्राम-स्थानसी यह पद्मावती भी ऐसी अवस्थाको प्राप्त हुई। (प्रवेश करके देखकर) अहो, परिजनोंकी भूल। अस्वस्था पद्मावतीको केवल दीपकको साथी बना छोड़ दिया है। यह पद्मावती सोई हुई है। तो मैं भी बैठती हूँ।

अथवा दूसरा आसन ग्रहण करनेसे थोड़ा ही स्नेह मालूम होता है, इसलिये इसी शय्यापर बैठती हूँ। (बैठकर) इसके साथ बैठनेमें आज क्यों मेरा हृदय आह्लादित सा है। अहो, (यह तो) निरन्तर तथा सुखपूर्वक साँस ले रही है। तो रोग हट गया होगा। अथवा एक ओर की हुई शय्या "मुझे आलिंगन कर" को सूचित कर रही है। तो सोती हूँ। (सोनेका अभिनय करती है)

राजा——(सपनाता है,) हा वासवदत्ते,

२९. वासवदत्ता——([illegible] उठकर) हाय! आर्यपुत्र हैं, पद्मावती नहीं। मैंने क्या देख लिया? आर्य यौगन्धरायण द्वारा मेरे ऊपर रक्खा प्रतिज्ञा का भारी भार मेरे (इस) देखने से निष्फल हो गया।

राजा—— हा, अवन्तिराजपुत्री,

३०. वासवदत्ता—दिष्ट्या स्वप्नायते खल्वार्यपुत्रः। नात्र कश्चिज्जनः यावन्मुहूर्तकं स्थित्वा दृष्टिं हृदयं च तोषयामि
राजा—हा प्रिये, हा प्रियशिष्ये, देहि मे प्रतिवचनम्।

३१. वासवदत्ता—आलपामि भर्तः आलपामि।
राजा—किं कुपितासि ?

३२. वासवदत्ता—नहि नहि, दुःखितास्मि।
राजा—यद्यकुपिता, किमर्थं नालंकृतासि ?

३३. वासवदत्ता—इतः परं किम् ?
राजा—किं विरहिकां स्मरसि ?

३४. वासवदत्ता—आ अपेहि, इहापि विरहिका।
राजा—तेन हि विरहिकार्थं भवतीं प्रसादयामि।
(हस्तौ प्रसारयति)

३५. वासवदत्ता—चिरं स्थितास्मि कोऽपि मां पश्येत्। तद् गमिष्यामि। अथवा, शय्यावलम्बितमार्यपुत्रस्य हस्तं शयनीये आरोप्य गमिष्यामि। (तथा कृत्वा निष्क्रान्ता)
राजा—(सहसोत्थाय) वासवदत्ते, तिष्ठ तिष्ठ। हा धिक्—

निष्क्रामन् संभ्रमेणाथ द्वारपक्षेण ताडिता।
ततो व्यक्तं न जानामि भूतार्थोऽयं मनोरथः ॥७॥

(प्रविश्य)

३६. विदूषकः—अयि प्रतिबुद्धोऽत्र भवान्।
राजा—वयस्य, प्रियमावेदय, धारयते खलु वासवदत्ता।

३०. वासवदत्ता---अहो, आर्यपुत्र सपना रहे हैं। यहाँ कोई आदमी नहीं है। तो क्षण भर ठहर कर नेत्र और हृदयको तुष्ट कर लूं।
राजा---हा प्रिये शिष्ये, मुझे उत्तर दो।

३१. वासवदत्ता---बोलती हूँ, स्वामी, बोलती हूँ।
राजा---क्या कुपित हो?

३२. वासवदत्ता---नहीं, नहीं, दुःखित हूँ।
राजा---यदि कुपित नहीं हो, तो क्यों आभूषण-अलंकृत नहीं हो?

३३. वासवदत्ता---इसके बाद क्या (कहूँ)?
राजा---क्या विरहिका को याद करती हो?

३४. वासवदत्ता---(रोपके साथ) आह, हटो, यहाँ भी विरहिका की बात?
राजा---तो विरहिकाके लिये आपसे क्षमा माँगता हूँ। (दोनों हाथोंको फैलाता है)

३५. वासवदत्ता---देरसे खड़ी हूँ। कोई मुझे देख लेगा। तो जाऊँगी, अथवा आर्यपुत्रके नीचे लटकते हाथको बिस्तरेपर रखकर जाऊँगी। (वैसा करके गई) राजा---(एकाएक उठकर) वासवदत्ते, ठहर, ठहर। हा धिक्कार। जल्दी-[illegible] किवाड़से ताड़ित हुई थी। उससे साफ नहीं [illegible] है ॥७॥

(प्रवेश करके)

३६. विदूषक---अरे आप जाग गये?
राजा---मित्र, खुशीकी बात तुझे बतलाता हूँ, वासवदत्ता जीती है।

३७. विदूषकः—अविहा वासवदत्ता। कुत्र वासवदत्ता?
चिरात् खलूपरता वासवदत्ता।
राजा—वयस्य? मा मैवं,
शय्यायामवसुप्तं मां बोधयित्वा सखे गता।
दग्धेति ब्रुवता पूर्वं वंचिताऽस्मि रुमण्वता ॥८॥

३८. विदूषकः—अविहा असंभावनीयमेतत्। उदकस्नाना-संकीर्तनेन तत्र भवतीं चिन्तयता सा स्वप्ने दृष्टा भवेत्।
राजा—एवम्—
यदि तावदयं स्वप्नो धन्यमप्रतिबाधनम्।
अथायं विभ्रमो वा स्याद्विभ्रमो ह्यस्तु मे चिरम् ॥९॥

३९. विदूषकः—भो वयस्य, अस्मिन् राजकुलेऽवन्ति-सुन्दरी नाम यक्षिणी प्रतिवसति। सा त्वया दृष्टा भवेत्।

४०. राजा—न न,
स्वप्नस्यान्ते विबुद्धेन नेत्रविप्रोक्षितांजनम्।
चारित्रमपि रक्षन्त्या दृष्टं दीर्घालकं मुखम् ॥१०॥
अपि च वयस्य, पश्य पश्य,
योऽयं सन्त्रस्तया देव्या तया बाहुर्निपीडितः।
स्वप्नेऽप्युत्पन्नसंस्पर्शो रोमहर्षं न मुंचति ॥११॥

४१. विदूषकः—मेदानीं भवाननर्थं चिन्तयित्वा। एत्वेतु भवान्, चतुःशालं प्रविशावः।

३७. विदूषक—अहो वासवदत्ता ! कहाँ वासवदत्ता ? चिर हुआ. वासवदत्ता तो मर गई।

राजा—मित्र, नहीं ऐसा नही ।

शय्यापर सोये हुये मुझे जगाकर गई, मित्र।
पहिले "जल गई" यह कहकर रुमण्वान्‌ने मुझे धोखा दिया ॥८॥

३८. विदूषक—अविहा, यह असम्भव नहीं है। हाँ, उदकस्नानके कथन से उनकी चिन्ता करते आपको वह स्वप्नमें दिखी होगी।

राजा—ऐसा ?

यदि यह स्वप्न है, तो न जागना ही धन्य होता।
अथवा यदि यह मतिभ्रम है, तो यह भ्रम चिरतक रहता ॥९॥

३९. विदूषक—हे मित्र, इस राजमहलमें अवन्तिसुन्दरी नामक एक यक्षिणी रहती है, उसे तुमने देखा होगा।

४०. राजा—ना, ना,

स्वप्नके अन्तमें जाग नेत्रसे पुंछे अंजनवाली,
सदाचारकी रक्षा करती उसके लम्बे केशोंवाले मुखको मैंने देखा ॥१०॥

और भी मित्र, देखो देखो,
उस संत्रस्त देवीने जो स्वप्नमें भी छुआ
यह बाहु रोमांच नहीं छोड़ता ॥११॥

४१. विदूषक—इस समय आप अनर्थ चिन्तन न करें। आइये, आइये आप। चतुःशालामें प्रवेश करें।

(प्रवेश करके)

४२. कांचुकीयः—जयत्वार्यपुत्रः। (प्रविश्य) अस्माकं महाराजो दर्शको भवन्तमाह—एष खलु भवतोऽमात्यो रुमण्वान् महता बलसमुदयेनोपयातः खल्वारुणिमभिघातयितुम्। तथा हस्त्यश्वरथपदातीनि मामकानि विजयांगानि सन्नद्धानि। तदुत्तिष्ठतु भवान्। अपि च—

भिन्नास्ते रिपवो, भवद्गुणरताः पौराः समाश्वासिताः।
पार्ष्णी यापि भवत्प्रयाणसमये तस्या विधानं कृतम्।
यद्यत् साध्यमरिप्रमाथजननं तत्तन्मयानुष्ठितं,
तीर्णा चापि बलैर्नदी त्रिपथगा वत्साश्च हस्ते तव ॥१२॥

४३. राजा—(उत्थाय) बाढम्। अयमिदानीं—

उपेत्य नागेन्द्रतुरंगकीर्णं,
तमारुणिं दारुणकर्मदक्षम्।
विकीर्णबाणौघतरंगभंगे,
महार्णवाभे युधि नाशयामि ॥१३॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

(इति पंचमोऽकः)

४२. कंचुकी---जय हो आर्यपुत्रकी। हमारे महाराज दर्शक आपसे कहते है---"आपके अमात्य रुमण्वान् बड़ी सेना के साथ आरुणीको मारनेके लिये आये। वैसे ही मेरे हाथी-घोड़े, रथ और पैदल की विजय-सेनाएँ तैयार है। सो आप उठें। और भी---

तुम्हारे रिपु छिन्न-भिन्न हो गये, आपके गुणमें अनुरक्त पुरवासी धैर्ययुक्त हुये। आपके प्रयाणके समयके हरावलका भी विधान कर दिया। शत्रुके उच्छेदनके लिये जो-जो करणीय था, सो-सो मैंने कर दिया। सेनायें गंगा नदी पार हो गई और वत्सदेश तुम्हारे हाथमें है"॥१२॥

४३. राजा---उठकर अच्छा, अब यह,---

गजेन्द्रराजों और तुरंगोंसे आकीर्ण
बिखरे हुये बाणोंके उग्र तरंग-भंगोंवाले,
महासमुद्र जैसे युद्धमें पहुँचकर,
उस आरुणिका मैं नाश करता हूँ॥१३॥

(सब निकल गये)

(पंचम अंक समाप्त)

१९. आर्यशूर (२०० ई० पू०)

आर्यशूर ने जातकोंकी कथाओं को लेकर संस्कृतमें गद्य-पद्यमय "जातकमाला" लिखी। इसमें ३८ जातक सुन्दर काव्य शैली तथा भव्य साहित्यिक भाषा में लिखे गये हैं। इनकी एक दूसरी पुस्तक 'पारमितासमास'

जातकमाला

सुपारगजातकम्

१. बोधिसत्त्वभूतः किल महासत्त्वः परमनिपुणमतिर्नौसारथिर्बभूव। धर्मता ह्येषा बोधिसत्वानां प्रकृतिमेधावित्वाद्यदुत यं यं शास्त्रातिशयं जिज्ञासन्ते कलाविशेषं वा, तस्मिंस्तस्मिन्नधिकतरा भवन्ति मेधाविनो जगतः। अथ स महात्मा विदितज्योतिर्गतित्वाद्दिग्विभागेष्वसंमूढमतिः, परिविदितनियतागन्तुकौत्पातिकनिमित्तः, कालाकालक्रमकुशलो, मीनतोयवर्णभौमप्रकारशकुनिपर्वतादिभिश्चिह्नैः सूपलक्षितसमुद्रदेशः, स्मृतिमान्विजिततन्द्रानिद्रः, शीतोष्णवर्षादिपरिखेदसहिष्णुरप्रमादी, धृतिमानाहरणापहरणकुशलत्वादीप्सितं देशं प्रापयिता वणिजामासीत्। तस्य परमसिद्धयात्रत्वात्सुपारग इत्येव नाम बभूव। तदध्युषितं च पत्तनं सुपारगमित्येवाख्यातमासीत्, यदेतर्हि सुपारगमिति ज्ञायते। सोऽपि मंगलसम्मतत्वाद् वृद्धत्वेऽपि सांयात्रिकैर्यात्रासिद्धिकामैर्वहनमभ्यर्थनसत्कारपुरःसरमारोप्यते स्म।

२. अथ कदाचिद् भरुकच्छादभिप्रयाताः सुवर्णभूमिवणिजो यात्रासिद्धिकामाः सुपारगं पत्तनमुपेत्य तं महासत्वं वहनारोहणार्थमभ्यर्थयामासुः।

१९. आर्यशूर (२०० ई० पू०)

पारमिताओं पर छ सर्गों, ३६४ श्लोकों में "सरल तथा सुबोध शैली में" रची गई है।

(१. हारवर्ड प्राच्य ग्रंथमालामें डा० कर्न द्वारा सम्पादित, २. रोमसे अनाली लतेरानेंसी, जिल्द १०, १९५० में प्रकाशित।)

जातकमाला

सुपारग जातक

१. उस समय महापुरुष बोधिसत्त्व हो अत्यन्त निपुणबुद्धिवाले नाविक सार्थवाह थे। स्वभावतः मेधावी होनेसे बोधिसत्त्वोंकी यह धर्मता (प्रकृति) है, जो कि वह जिस-जिस विशेष शास्त्र या विशेष कलाको जानना चाहते हैं, उस-उसमें संसारमें अति मेधावी होते हैं। तब वह महात्मा ताराकी गतिके जानकार होनेसे दिशाओंके पहचाननेमें न भ्रम करनेवाले, नियमपूर्वक या आकस्मिक उत्पातके लक्षणोंके जानकार, काल-अकालके क्रममें कुशल, मछली-जलके रंग, भूमिके प्रकार, पक्षी-पर्वत आदि चिन्हों द्वारा समुद्रके देशोंको अच्छी तरह जानते याद रखनेवाले, तन्द्रा-निद्रा जीते, शीत-उष्ण-वर्षा आदिके खेदको सहनेवाले, प्रमादरहित, धैर्यवान्, लेने-छोड़नेमें चतुर होनेसे बनियोंको इच्छित देशमें पहुँचानेवाले थे। गाथामें प्रसिद्ध होनेसे "सुपारग" यही उनका नाम पड़ गया था। उनके और उनके निवास-वाले बन्दरगाहको सुपारग यही कहकर (पुकारा) जाता था, जोकि आजकल सुपारा (सूपारा) के नामसे ज्ञात है। मंगल माने जानेके कारण उन्हें बुढ़ापेमें भी यात्राकी सिद्धि चाहनेवाले पोत-वणिक् प्रार्थना-सत्कार-सहित पोत-वहनके कार्यमें लगाते थे।

२. एक समय भड़ौंचसे प्रस्थान किये सागरके बनियोंने यात्राकी सिद्धिकी कामनासे सुपारगपत्तनमें आकर उस महापुरुषसे पोतपर आरोहण करनेके लिए प्रार्थना की।

स तानुवाच—

३. "जराज्ञया संह्रियमाणदर्शने श्रमाभिपातैः प्रतनूकृतस्मृतौ।
स्वदेहकृत्येऽप्यवसन्नविक्रमे सहायता का परिशंक्यते मयि" ॥१॥

४. वणिज ऊचुः—"विदितेयस्माकं युष्मच्छरीरावस्था। सत्यपि च वः पराक्रमासहत्वे नैवं वयं कर्मविनियोगेन युष्मानायासयितुमिच्छामः। किं तर्हि

५. त्वत्पादपंकजसमाश्रयसत्कृतेन,
मांगल्यतामुपगता रजसा त्वियं नौः।
दुर्गे महत्यपि च तोयनिधावमुष्मिन्,
स्वस्ति व्रजेदिति भवन्तमुपागताः स्म" ॥२॥

६. अथ स महात्मा तेषामनुकम्पया जराशिथिलशरीरोऽपि तद्वहनमारुरोह। तदधिरोहणाच्च प्रमुदितमनसः सर्व एव ते वणिजो बभूवुर्- "नियतमस्माकमुत्तमा यात्रा सिद्धिरि"ति। क्रमेण चावजगाहिरे विविधमीनकुलविचरितमनिभृतजलकलकलारावमनिलबलविलासप्रविचलिततरंगं बहुविधरत्नैर्भूमिविशेषैरर्पिततरंगं फेनावलीकुसुमदामविचित्रमसुरबलभुजगभवनं दुरापपातालमप्रमेयतोयं महासमुद्रम्।

७. अथेन्द्रनीलप्रकराभिनीलं सूर्यांशुतापादिव खं विलीनम्।
समन्ततो ऽन्तर्हिततीरलेखमगाधमम्भोनिधिमध्यमीयुः ॥३॥

८. तेषां तत्रानुप्राप्तानां सायाह्नसमये मृदुभूतकिरणचक्रप्रभावे सवितरि महदौत्पातिकं परमभीषणं प्रादुरभूत्।

९. विभिद्यमानोर्मिविकीर्णफेनश्चण्डानिलास्फालनभीमनादः।
नैभृत्यनिर्मुक्तसमग्रतोयः क्षणेन रौद्रः समभूत्समुद्रः ॥४॥

सुपारगने उनसे कहा —

३. "बुढ़ापेकी आज्ञासे दृष्टि-क्षीण, थकावटके जोरसे स्मृति-क्षीण, अपने देहकृत्यमें भी शक्तिहीन मुझसे तुम किस सहायताकी आशा रखते हो ॥१॥"

४. बनियोंने कहा—"तुम्हारी ऐसी शारीरिक अवस्था हमें विदित है। आपके परिश्रमके न सह सकने पर भी हम इस तरह काम में लगाकर तकलीफ देना नहीं चाहते। फिर क्यों—

५. तुम्हारे चरणकमलके आश्रयसे पूजित धूलिसे, यह नौका मंगलमय हो गई। इस दुर्गम महान् सागरमें भी, मंगलपूर्वक यात्रा हो, यह सोच हम आपके पास आये" ॥२॥

६. तब वह महात्मा बुढ़ापेसे शिथिल-शरीर भी उनपर कृपा करते उनके पोतपर आरूढ़ हुए। उनके चढ़नेसे यह सोचकर वे सभी बनिये मुदित-मन हुए, कि "अवश्य हमारी यात्रा की सिद्धि उत्तम होगी।" क्रमशः नाना मीनोंके विचरणस्थान, निरन्तर जलके कलरवसे युक्त, वायुके बलके विलाससे चलित तरंग सहित, बहुत प्रकारके रत्नों तथा विशेष भूमियोंसे पाये रंगवाले फेनोंकी कुसुममालासे विचित्र, असुरों-भुजंगोंके भवन, तल-रहित अपरिमित जलवाले महासमुद्रको उन्होंने अवगाहन किया।

७. फिर वह नीलम-समूहसे अतिनील-सूर्य-किरणोंके तापसे मानो आकाशमें विलीन, चारों ओर छिपी तीरलेखावाले अगाध समुद्रके मध्यमें पहुँचे ॥३॥

८. उनके वहाँ पहुँचनेपर शामके समय सूर्य-किरणोंके प्रभावके नष्ट होनेके समान अतिभयानक महान् उत्पात प्रकट हुआ।

९. फूटती तरंगों द्वारा बिखेरे फेनोंवाला, प्रचंड वायुके हिलानेका भयंकर नाद, बिल्कुल मुक्त, सारे जलवाला समुद्र एक क्षणमें ऐसा विकराल हो गया ॥४॥

१०. उत्पातवाताकलितैर्महद्भिस्तोयस्थलैर्भीमरयैर्भ्रमद्भिः
युगान्तकालप्रचलाचलेव भूमिर्बभूवोग्रवपुः समुद्रः ॥५॥

११. विद्युल्लतोद्भासुरलोलजिह्वा नीला भुजंगा इव नैकशीर्षाः
आवव्रुरादित्यपथं पयोदाः प्रसक्तभीमस्तनितानुनादाः ॥६॥

१२. घनैर्घनैरावृतरश्मिजालः सूर्यः क्रमेणास्तमुपारुरोह।
दिनान्तलब्धप्रसरं समन्तात्तमो घनीभावमिवाजगाम ॥७॥

१३. धाराशरैराच्छुरितोर्मिचक्रे महोदधावुत्पततीव रोषात्।
भीतेव नौरभ्यधिकं चकम्पे विषादयन्ती हृदयानि तेषाम् ॥८॥

१४. ते त्रासदीनाश्च विषादमूका धीराः प्रतीकारससम्भ्रमाश्च।
स्वदेवतायार्चनतत्पराश्च भावान्धयासत्त्वगुणं विवव्रुः ॥९॥

१५. अथ ते सांयात्रिकाः पवनबलचलितसलिलवेगवशगया नावा परिभ्रम्यमाणा बहुभिरप्यहोभिर्नैव कुतश्चित्तीरं ददृशुर्न च यथेप्सितानि समुद्रचिह्नानि। अपूर्वैरेव तु समुद्रचिह्नैरभिवर्धमानवैमनस्या भयविषादव्याकुलतामुपजग्मुः। अथैतान्सुपारगोबोधिसत्वो व्यवस्थापयन्नुवाच—"आश्चर्यं खलु महासमुद्रमध्यमवगाढानामौत्पातिकक्षोभपरिक्लेशः। तदलमत्र भवतां विषादानुवृत्या। कुतः —

१६. नापत्प्रतीकारविधिर्विषादस्तस्मादलं दैन्यपरिग्रहेण।
धैर्यात्तु कार्यप्रतिपत्तिदक्षाः कृच्छ्राण्यकृच्छ्रेण समुत्तरन्ति ॥१०॥

विषाददैन्यं व्यवधूय तस्मात्कार्यावकाशं क्रिययाभजध्वम्।
प्राज्ञस्य धैर्यज्वलितं हि तेजः सर्वार्थसिद्धिग्रहणाग्रहस्तः ॥११॥

१०. उत्पातके वायुसे युक्त महान् जलस्थान भीषण वेगसे चक्कर खाता, प्रलयके समय तेज चलते पर्वतोंवाली पृथिवीकी तरह समुद्र उग्र-शरीर हो गया ॥५॥

११. बिजलीकी लतासे भासुर, चंचल जिह्वावाले अनेक सिरवाले नीले भुजंगोंकी तरह, भयंकर कड़ककी आवाजसे युक्त मेघोंने सूर्यके पथको ढांक दिया ॥६॥

१२. घने मेघोंसे ढंके किरणोंवाला सूर्य क्रमशः अस्त हो गया, सन्ध्याके अवकाश पानेपर चारों ओर अन्धकार घना हो गया ॥७॥

१३. धाराके बाणोंसे उछलती तरंगोंवाले, रोषसे मानो ऊपर कूदते समुद्रमें, उनके हृदयोंको विषादित करती भयभीत सी नौका अधिक काँपने लगी ॥८॥

१४. वे धीर बनिये त्राससे दीन, विषादसे मूक हो, उपायके लिये उद्विग्न, अपने देवताओंकी प्रार्थनामें तत्पर, भावोंसे भिन्न गुणको प्रकट करने लगे ॥९॥

१५. तब उन जहाजी व्यापारियोंने पवनके बलसे चंचल जलके वेगमें पड़ी नावपर घूमते बहुत दिनोंतक कहीं भी न तीरको और न अभिलषित सामुद्रिक चिन्होंको देखा। अपरिचित समुद्र-चिन्होंसे बढ़ी चिन्तासे युक्त वह भय और विषादमें व्याकुल हो गये। तब उन्हें बोधिसत्व सुपारगने सान्त्वना देते कहा—"महासमुद्रके मध्यमें पड़े (तुम्हारा), उत्पातसे क्षुब्ध और चलित होना आश्चर्य (की बात) नहीं है। पर आपका विषाद करना बेकार है। क्योंकि—

१६. विषाद करना आपत्तिका प्रतिकारक उपाय नहीं है, इसलिये दीनता दिखलाना व्यर्थ है। धैर्यसे कार्य करनेमें दक्ष (पुरुष) कठिनाइयोंको आसानीसे पार होते हैं ॥१०॥

इसलिये विषाद और दीनता को छोड़कर कार्यके समय क्रियामें तत्पर होओ। बुद्धिमान्का धैर्य द्वारा प्रज्वलित तेज सारी अर्थ-सिद्धिको पानेका कारणरूप है ॥११॥

१७. तद्यथाधिकारावहिता भवन्तु भवन्तः" इति। ते सांयात्रिकास्तेन महात्मना धीरीकृतमनसः कूलदर्शनोत्सुकमतयः समुद्रमवलोकयन्तो ददृशुः पुरुषविग्रहाना-मुक्तरूप्यकवचानिवोन्मज्जतो निमज्जतश्च। सम्यक् चैषामाकृतिनिमित्तमुपधार्य सविस्मयाः सुपारगाय "अपूर्वं खल्विदमिह समुद्रे चिह्नमुपलभ्यते—महा-त्मन्यवेदयन्त। एते खलु—

१८. आमुक्तरूप्यकवचा इव दैत्ययोधा,
घोरेक्षणाः खुरनिकाशविरूपघोणाः।
उन्मज्जनावतरणस्फुरणप्रसंगात्,
क्रीडामिवार्णवजलेऽनुभवन्ति केपि ॥१२॥

१९. सुपारग उवाच—"नैते मानुषा अमानुषा वा मीना खल्वेते। अतो न भेतव्यमेभ्यः, किन्तु—

२०. सुदूरमपकृष्टाः स्मः पत्तनद्वितयादपि।
खुरमाली समुद्रोऽयं तद्यतध्वं निवर्तितुम्" ॥१३॥

२१. चण्डवेगवाहिना सलिलनिवहेनैकान्तहरेण च पाश्चात्येन वायुना समाक्षिप्तनया न ते सांयात्रिकाः शेकुर्विनिवर्तितुम्।
अथावगाहमानाः क्रमेण रूप्यप्रभावभासितमनीलफेनततनिचयपाण्डुरमपरं समुद्रमालोक्य सविस्मयाः सुपारगमूचुः—

२२. "स्वफेनमग्नैरिव कोऽयमम्बुभिर्महार्णवः शुक्लदुकूलवानिव।
द्रवानिवेन्दोः किरणान्समुद्वहन्समन्ततो हास इव प्रसर्पति" ॥१४॥

१७. सो अपने अधिकारके अनुसार आप लोग सावधान हो जायें। महात्माके ऐसा कहनेपर उन पोतारोहियोंके मनमें धीरज बंधा। किनारा देखनेको उत्सुक मनवाले उन्होंने समुद्रको देखते चाँदीकी कवच धारे पुरुष-शरीरोंको डूबते-उतराते देखा। उनके आकार-चिन्होंको अच्छी तरह समझ कर विस्मयके साथ उन्होंने सुपारगसे निवेदन किया—"यहाँ महासमुद्रमें अपूर्वचिन्ह मिल रहा है। ये तो—

१८. चाँदीकी कवच धारण किये दैत्य योद्धाओंसे, घोर-नेत्र, खुर समान कुरूप नाकोंवाले, डूबते-उतराते अपनी गतिके प्रसंग द्वारा समुद्र-जलमें खेल रहे हैं" ॥१२॥

१९. सुपारग बोले—"ये मनुष्य या अमनुष्य[१] नहीं हैं, बल्कि ये मछलियाँ हैं। अतः इनसे डरना नहीं चाहिए, बल्कि (अब)—

२०. हम दुहरे पत्तनसे अति दूर आ गये हैं। यह खुरमाली समुद्र है, सो लौटनेकी कोशिश करो" ॥१३॥

२१. (पर) तीव्र वेगसे बहनेवाले जलसे एक ओर खिंचते, पछुआँ हवाके खिंचावके कारण (बढ़ते) पोतारोही नहीं लौट सके। सब अवगाहन करते क्रमशः रुपहले प्रभावसे भासित अनील फेनों-युक्त दूसरे श्वेत समुद्रको देखकर विस्मयके साथ उन्होंने सुपारगसे कहा—

२२. अपने फेनमें डूबे जलोंको सफेद दुकूलवाला यह कौन सा महासागर है, जो चन्द्रमाकी पिघली किरणोंको वहन करते हासकी तरह चारों ओर फैला है" ॥१४॥

---

१. देवता, राक्षस।

२३. "क्षीरार्णव इति ख्यात उदधिर्दधिमाल्यसौ।
क्षमं नातः परं गन्तुं शक्यते चेन्निवर्तितुम्" ॥१५॥

२४. वणिज ऊचुः—"न खलु शक्यते विलम्बयितुमपि वहनं कुत एव सन्निवर्तयितुमतिशीघ्रवाहित्वाद्वहनस्य प्रतिकूलत्वाच्च मारुतस्येति"।

अथ व्यतीत्य तमपि समुद्रं सुवर्णप्रभानुरंजितमचलोर्मिमालमग्निज्वालकपिलसलिलमपरं समुद्रमालोक्य विस्मयकौतूहलास्ते वणिजः **सुपारगं** पप्रच्छुः—

२५. "बालार्कलक्ष्म्येव कृतांगरागैः समुन्नमद्भिः सलिलैरनीलैः।
ज्वलन्महानग्निरिवावभाति को नाम तस्माच्च महार्णवोऽयम्" ॥१६॥

२६. **सुपारग** उवाच—
"अग्निमालीति विख्यातः समुद्रोऽयं प्रकाशते।
अतीव खलु साधु स्यान्निवर्त्तेमहि यद्यतः" ॥१७॥

२७. इति स महात्मा नाममात्रमकथयत्तस्य सरित्पतेर्न तोयवैवर्ण्यकारणं दीर्घदर्शित्वात्।

अथ ते सांयात्रिकास्तमपि समुद्रमतीत्य पुष्परागेन्द्रनीलप्रभोद्योतितसलिलं परिपक्वकुशवननिकाशवर्णं समुद्रमालोक्य कौतूहलजाताः **सुपारगं** पप्रच्छुः—

२८. "परिणतकुशपर्णवर्णतोयः सलिलनिधिः कतमोन्वयं विभाति।
सकुसुम इव फेनभक्तिविचित्रैरनिलजवाकलितैस्तरंगभंगैः" ॥१८॥

२९. **सुपारग** उवाच—"भोः सार्थवाहाः, निवर्तनं प्रति यत्नः क्रियताम्। न खल्वतः क्षमते परं गन्तुम्।

२३. "यह क्षीरसागर नामसे प्रसिद्ध दधिमाली सागर है। इससे आगे नहीं जाना चाहिये, यदि हो सके तो लौटाओ" ॥१५॥

२४. बनियोंने कहा—"पोतका धीमा भी नहीं किया जा सकता, लौटने की तो बात ही क्या, क्योंकि पोत बड़ी तेजीसे बह रहा है और वायु प्रतिकूल है।"

तब उस समुद्रको भी पारकर सुवर्णकी प्रभा से अनुरंजित निश्चल तरंग-मालावाले अग्निकी ज्वाला समान भूरे जलवाले दूसरे समुद्र को देखकर कौतूहलयुक्त उन बनियोंने सुपारगसे पूछा—

२५. "बालसूर्यकी शोभासे मानो अंगराग लगाये, उठते अनील जलोंसे प्रज्ज्वलित, महान् अग्निकी तरह भासित होता यह कौन नामवाला महासागर है" ॥१६॥

२६. सुपारग बोले—

"अग्निमाली नामसे विख्यात यह समुद्र भास रहा है। बहुत अच्छा हो, यदि यहाँसे हम लौट चलें" ॥१७॥

२७. इस प्रकार उस महापुरुषने उस सागरका नाम मात्र बतलाया, दीर्घ-दर्शिताके कारण जलके भिन्न वर्णके होनेकी वजह नहीं बतलाई। तब उन पोतारोहियोंने उस समुद्रको भी पार कर पद्मराग-इन्द्रनील की प्रभा जैसे चमकते जलवाले पके कुशके जंगलके समान वर्णवाले समुद्रको देखकर कौतूहलवश सुपारगसे पूछा—

२८. "पके कुशके पत्तोंके रंग जैसे जलवाला यह कौन सा सागर भास रहा है, (जो) फेनकी किनारीसे विचित्र वायुके वेगसे बनी तरंग-भंगों द्वारा सुन्दर कुसुम जैसा है" ॥१८॥

२९. सुपारग बोले—"हे सार्थवाहो, लौटनेके लिये प्रयत्न करो। इससे आगे जाना ठीक नहीं।

३०. कुशमाली समुद्रोऽयमत्यंकुश इव द्विपः।
प्रसह्यासह्यसलिलो हरन् हरति नो रतिम्" ॥१९॥

३१. अथ ते वाणिजकाः परेणापि यत्नेन निवर्तयितुमशक्नुवन्तस्तमपि समुद्रमतीत्य वंशरागवैडूर्यप्रभाव्यतिकरहरितसलिलमपरं समुद्रमालोक्य सुपारगमपृच्छन्——

३२. "मरकतहरितप्रभैर्जर्वहति नवामिव शाद्वलश्रियम्।
कुमुदरुचिफेनभूषणः सलिलनिधिः कतमोऽयमीक्ष्यते" ॥२०॥

३३. अथ स महात्मा तेन वणिग्जनस्य व्यसनोपनिपातेन दह्यमानहृदयो दीर्घमुष्णमभिनिश्वस्य शनैरुवाच——

३४. "अतिदूरमुपेताः स्थ दुःखमस्मान्निवर्तितुम्।
पर्यन्त इव लोकस्य नलमाल्येष सागरः" ॥२१॥

३५. अथ ते वाणिजका विषादोपरुध्यमानमनसो विस्रस्यमानगात्रोत्साहा निश्वसितमात्रपरायणास्तत्रैव निषेदुः। व्यतीत्य च तमपि समुद्रं सायाह्नसमये विलम्बमानरश्मिमण्डले सलिलनिधिमिव प्रवेष्टुकामे दिवसकरे समुद्वर्तनस्येव सलिलनिधेरशनीनामिव च सम्पतताां वेणुवनानामिव चाग्निपरिगतानां विस्फुटतां तुमुलमतिभीषणं श्रुतिहृदयविदारणं समुद्रध्वनिमश्रोषुः। श्रुत्वा च सन्त्रासवशगाः स्फुरन्मनसः सहसैवोत्थाय समन्ततोऽनुविलोकयन्तो ददृशुः प्रपात इव श्वभ्र इव च महति तमुल्कौघं निपतन्तं दृष्ट्वा च परमभयविषादविह्वलाः सुपारगमुपेत्योचुः

३६. "निर्भिन्दन्निव नः श्रुतीः प्रतिभयश्चेतांसि मथ्नन्निव
क्रुद्धस्येव सरित्पतेर्ध्वनिरयं दूरादपि श्रूयते।
भीमे श्वभ्र इवार्णवस्य निपतत्येतत्समग्रं जलं,
तत्कोऽसावुदधिः किमत्र च परं कृत्यं भवान्मन्यते" ॥२२॥

३०. अंकुशसे न रुकनेवाले गज-सा यह कुसुमाली समुद्र है, जबर्दस्त असह्य जलवाला (यह) खींचते हमारी प्रसन्नताको खींच रहा है" ॥१९॥

३१. तब उन बनियोंने जबर्दस्त प्रयत्न द्वारा भी लौटनेमें असमर्थ हो उस समुद्र को पार कर बाँस के रंग के हीरे की प्रभा युक्त हरे जलवाले दूसरे समुद्रको देखकर सुपारगसे पूछा—

३२. "पन्ना जैसी हरी प्रभावाले जलके साथ, नवीन हरीतिमा शोभा-धारक, कुमुद जैसा रुचिर फेन भूषणधारी, यह कौन सा जलनिधि दिखाई देता है" ॥२०॥

३३. तब बनियोंके उस आफतसे दग्ध-हृदय हो महात्माने लम्बी साँस ले धीरेसे कहा—

३४. "दुःखमें हम बहुत दूर आ गये, यहाँसे लौटना चाहिये। दुनियाके अन्त सा यह नलमाली सागर है" ॥२१॥

३५. तब वे बनिये विषादसे रुद्ध-मन हो शरीरके उत्साहको छोड़ साँस भर लेते वहीं बैठ गये। उस समुद्रको भी पार कर शामको समुद्रमें प्रवेश करनेके इच्छुक होते, समुद्रके उठानेको ही मानो गिरती बिजलियों जैसी सूर्य-किरणोंके लटकते समय आगकी लपटमें आकर फूटते बाँसके जंगलोंके तुमुल भीषण कान फाड़नेवाली समुद्र-ध्वनि सुनी। चारों ओर देखते पर्वत-प्रभातकी तरह, खड्डकी तरह भारी तुमुल प्रवाहसे गिरते चारों ओर देखकर अत्यन्त भय और विषादसे विह्वल हो त्राससे होश उड़ते हो एकाएक उठकर सुपारगके पास आकर उन्होंने कहा—

३६. "हमारे कानोंको फाड़ती सी, मनोंको मथन करती सी भयद, मानो क्रुद्ध सागर ही की यह ध्वनि दूरसे सुनाई दे रही है। मानो समुद्रका यह सारा जल भयंकर खड्डमें गिर रहा है। सो यह कौन सा समुद्र है और यहाँ आप क्या करना अच्छा मानते हैं" ॥२२॥

३७. अथ स महात्मा ससम्भ्रमः कष्टं "कष्टमि"त्युक्त्वा समुद्रमालोकयन्नुवाच—

३८. यत्प्राप्य न निवर्तन्ते मृत्योर्मुखमिवामुखम्।
अशिवं समुपेताः स्थत तदेवद्वडवामुखम् ॥२३॥

३९. तदुपश्रुत्य ते वाणिजका "वडवामुखमुपेता वयमिति" त्यक्तजीविताशा मरणभयविक्लवीभूतमनसः—

४०. सस्वरं रुरुदुः केचिद्विलेपुरथ चुक्रुशुः।
न किञ्चित्प्रत्यपद्यन्त केचित्त्रासविचेतसः ॥२४॥

४१. विशेषतः केचिदभिप्रणेमुर्देवेन्द्रमार्तिप्रहतैर्मनोभिः।
आदित्यरुद्रांश्च मरुद्वसूंश्च प्रपेदिरे सागरमेव चान्ये ॥२५॥

४२. जेपुश्च मन्त्रानपरे विचित्रानन्ये तु देवीं विधिवत्प्रणेमुः।
सुपारगं केचिदुपेत्य तत्तद्विचेष्टमानाः करुणं विलेपुः ॥२६॥

४३. "आपद्गतत्रासहरस्य नित्यं परानुकम्पागुणसम्भृतस्य।
अथ प्रभावातिशयस्य तस्य तवाभ्युपेतो विनियोगकालः ॥२७॥

४४. आर्ताननाथाञ्छरणागतान्नस्त्वं त्रातुमावर्जय धीर चेतः।
अयं हि कोपाद्वडवामुखेन चिकीर्षति ग्रासमिवार्णवोऽस्मान् ॥२८॥

४५. नोपेक्षितुं युक्त मयं जनस्ते विपद्यमानः सलिलौघमध्ये।
नाशां तवात्येति महासमुद्रस्तद्वार्यतामप्रशमोऽयमस्य" ॥२९॥

४६. अथ स महात्मा महत्या करुणया समापीड्यमानहृदयस्तान् वाणिजकान् व्यवस्थापयन्नुवाच—"अस्त्यत्रापि नः कश्चित्प्रतीकारविधिः प्रतिभाति। तत्तावत्प्रयोक्ष्ये। यतो मुहूर्तं धीरास्तावद् भवन्तु भवन्त" इति।

३७. तब वह महात्मा "कष्ट-कष्ट" यह कहते समुद्रको देखकर बोले—

३८. खुले मृत्युके मुखकी तरह जहाँ पहुँचकर लौटा नहीं जा सकता। सो इस अमंगल बड़वामुखमें तुम पहुँच गये ॥२३॥

३९. यह सुनकर वे बनिये "हम बड़वामुखमें पहुँच गये" यह सोच जीवनकी आशा छोड़ मरणके भयसे विकल हो गये—

४०. कुछ स्वर के साथ रोने, विलाप और चिल्लाहट करने लगे। कोई त्रासके मारे बेहोश हो कुछ नहीं समझ पाते थे ॥२४॥

४१. किसीने विशेषतः आर्त-मनसे इन्द्रको प्रणाम किया। दूसरोंने सूर्य, रुद्र और मरुतों, वसुओं और सागरकी ही प्रार्थना की ॥२५॥

४२. औरोंने विचित्र मन्त्रोंको जपा। अन्योंने देवीको विधिपूर्वक प्रणाम किया। कुछने नाना प्रकारकी चेष्टा करते सुपारगके पास आकर करुण विलाप किया ॥२६॥

४३. "आपद्में पड़ोंके त्रासको नित्य हरनेवाले परानुकम्पासे युक्त, अतिशय प्रभाववाले तुम्हारे उस विनियोगका काल आ गया ॥२७॥

४४. हे धीर, हम आर्तों-अनाथों-शरणागतोंकी रक्षाके लिये मन लगाओ। कोपसे यह समुद्र बड़वामुखका हमें ग्रास बनाना चाहता है ॥२८॥

४५. अपार जलके बीच मारे जाते इन लोगोंकी उपेक्षा करना ठीक नहीं। समुद्र तुम्हारी आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करेगा, सो इसकी इस अशान्ति को रोको" ॥२९॥

४६. तब उस महात्माने महती करुणासे मनमें पीड़ित हो उन बनियोंको सान्त्वना देते कहा—"यहाँ प्रतिकार का एक उपाय है, यह मुझे मालूम पड़ता है। सो मैं उसका प्रयोग करूंगा। इसके लिये क्षणभर आप लोग धीरज धरें"।

४७. अथ ते वाणिजका "अस्त्यत्रापि किल प्रतीकारविधि"-रित्याशया समुपस्तम्भितधैर्यास्तदवहितमनसस्तूष्णीं बभूवुः। अथ सुपारगो बोधिसत्व एकांसमुत्तरासंगं कृत्वा दक्षिणेन जानुमण्डलेनाधिष्ठाय नावं समावर्जितसर्वभावः प्रणम्य तथागतेभ्यस्तान्सांयात्रिकानामन्त्रयते स्म—"शृण्वन्त्वत्र भवन्तः सांयात्रिकाः सलिलनिधिव्योमाश्रयाश्च देवविशेषाः—

४८. स्मरामि यत आत्मानं यतः प्राप्तोऽस्मि विज्ञताम्।
नाभिजानामि संचिन्त्य प्राणिनं हिंसितुं क्वचित्॥३०॥

४९. अनेन सत्यवाक्येन मम पुण्यबलेन च।
बडवामुखमप्राप्य स्वस्ति नौर्विनिवर्तताम्"॥३१॥

५०. अथ तस्य महात्मनः सत्याधिष्ठानबलात् पुण्यतेजसा सह सलिलजवेन स मारुतो व्यावर्तमानस्तां नावं निवर्तयामास। निवृत्तां तु तां नावमभिसमीक्ष्य ते वाणिजकाः परमविस्मयप्रहर्षोद्धतमानसा "निवृत्ता नौरिति" प्रणामसभाजनपुरस्सरं सुपारगाय न्यवेदयन्त। अथ स महात्मा तान्वाणिजकानुवाच—"स्थिरीभवन्तु भवन्तः शीघ्रमारोप्यन्तां शीतानि।" इति च तेन समादिष्टाः प्रमोदादुद्भूतबलोत्साहास्ते तदधिकृतास्तथा चक्रुः।

५१. अथ मुदितजनप्रहासनादा प्रविततपाण्डुरशीतचारुपक्षा।
सलिलनिधिगता रराज सा नौर्गतजलदे नभसीव राजहंसी॥३२॥

४७. तब वे बनिये "यहाँ प्रतिकार का उपाय है" यह मनमें कर धैर्य धर उनकी ओर ध्यान लगाये चुप हो गये।
तब सुपारग बोधिसत्वने चादरको एक कंधेपर कर दाहिने घुटनेपर बैठ नावपर सारे मनको एकत्रित कर तथा बुद्धोंको प्रणाम कर उन पोतारोहियों को सम्बोधित किया—"आप पोतारोही तथा समुद्र-आकाशमें रहनेवाले देवता लोग (मेरी) सुनें।

४८. चूंकि मैं अपनेको याद करता हूँ, चूंकि मैंने विज्ञता प्राप्त की है। सोचने पर भी मुझे याद नहीं, कि मैंने कभी प्राणियोंकी हिंसा की हो ॥३०॥

४९. सो इस सत्यवचन और मेरे पुण्यबलसे, यह नाव बड़वामुख में न जा स्वस्ति से लौट जाये" ॥३१॥

५०. तब उस महात्माके सत्य-संकल्पके बलसे पुण्य तेजके साथ जलके वेग से लौटाये वायुने उस नावको लौटा दिया। नावको लौटी देखकर बनियों ने अत्यन्त विस्मय और हर्षसे उद्धत-मन हो प्रणामपूर्वक सुपारगसे निवेदन किया "नाव लौट चली"। तब उस महात्माने उन बनियोंसे कहा—"आप स्थिर हो जायें, जल्दी पाल चढ़ावें।" ऐसा कहके आदेश देनेपर प्रमोद से बलोत्साहयुक्त हो अधिकारियोंने वैसा ही किया।

५१. तब मुदित जनोंके हास-नादवाली, फैले श्वेत पालरूपी सुन्दर पक्ष-वाली, यह नाव समुद्रमें मेघ-रहित आकाशमें राजहंसीकी तरह शोभा दे रही थी ॥३२॥

५२. निवृत्तायां तु तस्यां नात्यनुकूलसलिलमारुतायां विमानलीलया स्वेच्छयैव चाभिप्रयातायां नातिश्यामीभूतसन्ध्यांगरागासु प्रवितन्यमानतमोवितानास्वालक्षितनक्षत्रभूषणासु दिक्षु किंचिदवशेषप्रभे दिवसकरमार्गे प्रवृत्तक्षणदाधिकारे सुपारगस्तान्वाणिजकानुवाच—"भोः सार्थवाहा नलमालिप्रभृतिभ्यो यथादृष्टेभ्यः समुद्रेभ्यो बालुकाः पाषाणश्च वहनमारोप्यन्तां यावत्सहते एवमिदं यानपात्रं निर्घातिभराक्रान्तं न च पार्श्वानि दास्यति, मंगलसम्मताश्चैते बालुका पाषाणा नियतं लाभसिद्धये वो भविष्यन्तीति।"

अथ ते सांयात्रिकाः सुपारगप्रेमबहुमानावर्जितमतिभिर्देवताभिरनुप्रदर्शितेभ्यः स्थलेभ्य आदाय बालुकापाषाणबुद्ध्या वैडूर्यादीनि रत्नानि वहनमारोपयामासुः। तेनैव चैकरात्रेण सा नौ भरुकच्छमुपजगाम।

५३. अथ प्रभाते रजतेन्द्रनीलवैडूर्यहेमप्रतिपूर्णनौकाः।
स्वदेशतीरान्तमुपागतास्ते प्रीत्या तमानर्चुरुदीर्णहर्षाः ॥३३॥

५४. तदेवं धर्माश्रयं सत्यवचनमप्यापदं नुदति प्रागेव तत्फलमिति धर्मानुवर्तिना भवितव्यम्। कल्याणमित्राश्रयवर्णेऽपि वाच्यमेवं कल्याणमित्राश्रिताः श्रेयः प्राप्नुवन्तीति।

५२. जब अनुकूल जलवायुयुक्त हो वह नाव स्वेच्छासे लौट विमान लीलाके साथ चली, तो दिशायें अतिश्यामल न हो सन्ध्याके अंग-रागयुक्त, फैलते अन्धकारके वितानवाली, जब थोड़ा दिखाई देते तारोंकी भूषण वाली थी, आकाशमें थोड़ी प्रभा बची थी, जब रातका अधिकार जारी हो गया था; तब सुपारगने उन बनियोंसे कहा—"हे सार्थवाहो, नलमाली आदि देखे हुये समुद्रोंसे बालू और पत्थर लेकर पोतपर रख लो, जिसमें कि इस प्रकार चपेटेके बलसे आक्रान्त हो पोत एक करवट न हो जाये। ये बालू और पत्थर मंगल माने जाते हैं, यह तुम्हारी लाभसिद्धिके लिये निश्चय कार्यकारी होंगे।"

तब सुपारगके प्रति प्रेम और बहुमानयुक्त पोतारोहियोंने मत फेरे देवताओं द्वारा प्रदर्शित स्थलोंसे बालू और पत्थरके विचारसे हीरा आदि रत्नोंको पोतपर रख लिया। उसी रातमें वह जहाज भड़ौंच आ पहुँचा।'

५३. तब प्रभातके समय चाँदी, नीलम, हीरा, सोनासे भरी नौकावाले (बनियोंने) अतिहर्षित हो स्वदेशके तटपर आ महात्माकी पूजा की ॥३३॥

५४. सो इस प्रकार धर्मयुक्त सत्यवचन अपने फलसे पहले ही आपत् को हटाता है, (यह) सोचकर धर्मानुवर्ती होना चाहिये। भले मित्रके आश्रयकी प्रशंसामें भी कहना है, कि कल्याण-मित्रका अवलम्ब लेनेवाले इस प्रकार श्रेय प्राप्त करते हैं।

भाग ३

प्राकृत काल (२)

(उत्तरकाल ३००-५५० ई० पू०)

२०. कालिदास (४०० ई०)

यह संस्कृतके सर्वश्रेष्ठ महाकवि संभवतः उज्जयिनी (अवन्ती) के रहने वाले थे। संस्कृतकी कविताओंके लिये प्राकृतकाल सबसे समृद्ध काल है, और उसमें भी संस्कृत काव्यको उन्नतिके सर्वोच्च शिखरपर पहुंचानेवाली कालिदासकी निम्न कृतियां हैं—

१. ऋतुसंहार, २. मेघदूत, ३. कुमारसंभव, ४. रघुवंश, ५. मालविकाग्निमित्र (नाटक), ६. विक्रमोर्वशीय (नाटक), ७. अभिज्ञानशाकुन्तल (नाटक)।

१. मेघदूतम्

(१) मेघयाञ्चा

१. कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात् प्रमत्तः,
शापेनास्तंगमितमहिमा वर्षभोग्येन भर्तुः।
यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु,
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ॥१॥

२. तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्तः स कामी
नीत्वा मासान् कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः।
आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानु,
वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श ॥२॥

३. तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतुकाधानहेतो-
रन्तर्बाष्पश्चिरमनुचरो राजराजस्य दध्यौ।
मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः,
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे ॥३॥

२०. कालिदास (४०० ई०)

कालिदास गुप्त-सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य (३७५-४१४ ई०) के सम्मानित महाकवि थे। प्राकृतका "सेतुबंध" महाकाव्य यद्यपि वाकाटक-राजा प्रवरसेनकी कृतिके नामसे प्रसिद्ध है, किन्तु इस किंवदन्तीमें सत्यका अंश है, कि उसके वास्तविक रचयिता कालिदास थे। चन्द्रगुप्तकी पुत्री प्रभावतीका ब्याह वाकाटक-वंशमें होना भी कालिदासके साथ उस वंशके सम्पर्कको बतलाता है, और अवन्ती देश वाकाटकोंकी भूमि (विदर्भ) के समीप भी था।

१. मेघदूत

(१) मेघसे प्रार्थना

१. कान्ताके विरहके भारसे युक्त अपने अधिकारसे मस्त, स्वामीके वर्ष भर भोगे जानेवाले शापसे अस्त हुई महिमावाले, किसी यक्षने जानकीके स्नानके पवित्र जल-सहित स्निग्ध छाया युक्त वृक्षोंवाले रामगिरि-आश्रममें वास किया ॥१॥

२. उस पहाड़में कुछ महीने बिताकर स्त्री-वियोगी सुवर्ण वलयके गिर जाने से नंगी कलाईवाले उस कामीने, आषाढ़के प्रथम दिन शिखर-लग्न वप्रके उखाड़नेकी क्रीड़ामें प्रौढ़ हाथी जैसे दर्शनीय मेघको देखा ॥२॥

३. कैसे ही उसके सामने खड़ा होकर कौतुक उत्पादनके कारण राजराज (कुबेर) के अनुचरने (मेघोंके) भीतर आंसू रखे देर तक सोचा। मेघके दर्शन होनेपर दूसरी वृत्तिवाला चित्त भी दुःखी हो जाता है। कंठ आलिंगनके इच्छुक परदेशी जनके बारेमें तो कहना ही क्या ॥३॥

४. प्रत्यासन्ने नभसि दयिताजीविताअलम्बनार्थी,
जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन् प्रवृत्तिम्।
स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै,
प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार ॥४॥

५. "संतप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद, प्रियायाः;
संदेशं मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य।
गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां,
बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या ॥७॥

६. त्वामारूढं पवनपदवीमुद्गृहीतालकान्ताः,
प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिताः प्रत्ययादाश्वसन्त्यः।
कः संनद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां,
न स्यादन्योऽप्यहमिव जनो यः पराधीनवृत्तिः ॥८॥

७. तां चावश्यं दिवसगणनातत्परामेकपत्नी-
मव्यापन्नामविहतगतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम्।
आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यंगनानां
सद्यः पाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ॥१०॥

८. त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविलासानभिज्ञैः,
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः।
सद्यः सीरोत्कषणसुरभि क्षेत्रमारुह्य मालं
किंचित्पश्चाद् व्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण ॥१६॥

(२) अवन्ति देशः

९. वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां,
सौधोत्संगप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः।
विद्युद्दामस्फुरितचकितैस्तत्र पौरांगनानां,
लोलापांगैर्यदि न रमसे लोचनैर्वंचितोऽसि ॥२७॥

४. श्रावणके समीप होते समय प्रियाके जीवनके अवलंबके इच्छुक उसने मेघ द्वारा अपने कुशल-मंगलके समाचारको भेजते हुए, अभिनव कुटजके फूलोंसे अर्घ दे प्रसन्न हो प्रीति-सहित वचनसे उसके लिये स्वागत कहा ।।४।।

५. "हे मेघ, संतप्तोंके तुम शरण हो, सो प्रियाके लिये कुबेरके क्रोधसे वियोगी बने मेरा सन्देश ले जाओ । तुम्हें यक्षेश्वरोंकी बस्ती अलकाको जाना है, जिसके प्रासाद बाहरी उद्यानमें स्थित तथा शिवके शिरकी चंद्रिका जैसे उज्वल हैं ।।७।।

६. पवनके मार्ग पर आरूढ़ विश्वाससे ढारस पाती केशोंको थामे पथिक-वनितायें ऊपरकी ओर तुम्हें देखेंगी । तुम्हारे तैयार होजाने पर कौन है, जो विरह-पीड़ित पत्नीकी उपेक्षा कर सकता है, यदि वह जन मेरे जैसा पराधीन वृत्तिवाला न हो ।।८।।

७. और दिन गिननेमें लगी न मरी (अपनी) उस भाभीको अबाध-गति तुम अवश्य देखोगे । स्त्रियोंका आशा बन्धन, प्रायः फूलसा है जो तुरन्त गिरनेवाले प्रेमी-हृदयको वियोगमें रोक रखता है ।।१०।।

८. "तुम्हारे आधीन ही कृषिका फल है" यह सोच भौंहोंके विलाससे अनभिज्ञ, प्रीतिसे स्निग्ध, ग्रामीण-बहुओंके नेत्रों द्वारा पीये जाते तुम तुरन्त हलके जोतनेसे सोंधी माल खेतपर आरूढ़ होकर कुछ पीछे फिर जल्दी-जल्दी चलते उत्तरकी ओर (बढ़) चलना ।।१६।।

(२) मालव

९. उत्तरकी ओर प्रस्थान किये आपके लिये यद्यपि मार्ग टेढ़ा होगा । (तो भी) उज्जयिनीके महलोंकी गोदवाले प्रेम से विमुख न होना । नगरकी स्त्रियोंके विद्युत्मालाकी तरह फड़फड़ाते और चकित चंचल पलकोंवाले नेत्रोंसे यदि (तुमने) नहीं रमण किया तो तुम अभागे हो ।।२७।।

१०. प्राप्यावन्तीमुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्,
पूर्वोद्दिष्टामनुसर पुरीं श्रीविशालां विशालाम्।
स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानां,
शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः कान्तिमत्खण्डमेकम् ।।३०।।

११. दीर्घीकुर्वन्पटु मदकलं कूजितं सारसानां,
प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः।
यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमंगानुकूलः
शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः ।।३१।।

१२. अप्यन्यस्मिन् जलधर, महाकालमासाद्य काले
स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः।
कुर्वन्संध्याबलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीयां,
आमन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम् ।।३४।।

१३. गच्छन्तीनां रमणवसतिं योषितां तत्र नक्तं,
रुद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यैस्तमोभिः।
सौदामिन्या कनकनिकषस्निग्धया दर्शयोर्वीं,
तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो मा स्म भूर्विक्लवास्ताः ।।३७।।

१४. तां कस्यांचिद् भवनवलभौ सुप्तपारावतायां,
नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात्खिन्नविद्युत्कलत्रः।
दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान्वाहयेदध्वशेषं,
मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः ।।३८।।

१५. आराध्यैनं शरवणभवं देवमुल्लंघिताध्वा
सिद्धद्वन्द्वैर्जलकणभयाद्वीणिभिर्मुक्तमार्गः।
व्यालम्बेथाः सुरभितनयालम्भजां मानयिष्यन्
स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्तिम् ।।४५।।

१०. अवन्तिदेशमें पहुँच उदयनकी कथाके पंडित गांवके वृद्धोंसे पूर्वोक्त लक्ष्मीसे विशाल पुरीका अनुसरण करना, सुकर्मके फलोंके अत्यन्त होनेसे पृथिवीपर आये स्वर्गीय जनों के अवशिष्ट पुण्योंसे जिसने स्वर्गलोककी कान्तिका मानो एक अंश हर लिया है ॥३०॥

११. जहां सारसों के स्पष्ट मस्त मधुर कूजनको लम्बा करते, प्रात:काल फूले कमलके गन्धके सम्पर्कसे कषाययुक्त शिप्रा नदीका वायु प्रार्थनाके लिए चाटुकारी प्रियतमकी तरह अंगानुकूल हो, स्त्रियोंके सुरत खेदका अपहरण करता है ॥३१॥

१२. हे मेघ, दूसरे कालमें भी महाकालको पा कर जब तक सूर्य चला नहीं जाये, तब तक तुम नयनके विषय रहना। (तब) त्रिशूलधारीकी प्रशंसनीय संध्याकालीन पूजाके नगारेका रूप लेते, कुछ गम्भीर गर्जनोंका पूरा फल तुम पाओगे ॥३४॥

१३. वहां रातको प्रियतमके निवासको जाती स्त्रियोंके लिये, घने अन्धकारके कारण रुके प्रकाशवाले राजमार्गपर कनक कसौटी-जैसी चिकनी बिजली द्वारा पृथिवीको दिखलाना। वह विकल हैं, (अत:) जलके त्यागकी कड़कसे मुखर न होना ॥३७॥

१४. किसी भवनकी सोये कबूतरोंवाली अटारीपर उस रातको बिता, चिर-विलासके कारण खेदयुक्त विद्युत्-स्त्रीवाले आप सूर्य देखने पर फिर बचे मार्गको पूरा करें। मित्रोंके प्रयोजनके कार्य (भार) को स्वीकार कर पुरुष सुस्त नहीं हुआ करते ॥३८॥

१५. कार्तिकेय देवकी पूजा करके रास्ता पार करते, छींटेके भयसे वीणा-वादक सिद्ध-दंपतीके छोड़े मार्गपर हो, भूमिपर धाराके रूपमें प्रकट हुई रंतिदेवकी कीर्ति, गौओंके हननसे उत्पन्न (चम्बल) का मान करते (उसका) नजारा लेना ॥४५॥

१६. त्वय्यादातुं जलमवनते शार्ङ्गिणो वर्णचौरे
तस्याः सिन्धोः पृथुमपि तनुं दूरभावात्प्रवाहम् ।
प्रेक्षिष्यन्ते गगनगतयो नूनमावर्ज्य दृष्टी-
रेकं मुक्तागुणमिव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम् ।।४६।।

१७. तामुत्तीर्य व्रज परिचितभ्रूलताविभ्रमाणां,
पक्ष्मोत्क्षेपादुपरिविलसत्कृष्णशारप्रभाणाम् ।
कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषामात्मबिम्बं,
पात्रीकुर्वन्दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम् ।।४७।।

(३) **कुरुदेशः**

१८. **ब्रह्मावर्तं** जनपदमथच्छायया गाहमानः
क्षेत्रं क्षत्रप्रधनपिशुनं कौरवं तद् भजेथाः ।
राजन्यानां सितशरशतैर्यत्र गाण्डीवधन्वा,
धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यवर्षन्मुखानि ।।४८।।

१९. हित्वा हालामभिमतरसां रेवतीलोचनांकां,
बन्धुप्रीत्या समरविमुखो लांगली याः सिषेवे ।
कृत्वा तासामभिगममपां सौम्य सारस्वतीनां,
अन्तः शुद्धस्त्वमपि भविता वर्णमात्रेण कृष्णः ।।४९।।

(४) **कनखलः**

२०. तस्माद् गच्छेरनु**कनखलं** शैलराजावतीर्णां
जह्नोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपान पंक्तिम् ।
गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनां या विहस्येव फेनैः,
शंभोः केशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता ।।५०।।

१६. कृष्णके वर्णके चोर झुके हुए तुम्हारेमेंसे जल लेनेके लिये, आकाश-गामी (सिद्ध लोग) अवश्य दृष्टि घुमाकर उस सिन्धुके बड़े प्रवाहको दूर होनेके कारण छोटा, मध्यमें स्थूल इन्द्रनील-मणिसा, भूमिके एक मुक्ता-सूत्रका सा देखेंगे ।।४६।।

१७. उसको उतर कर परिचित भ्रूलताओंके सौंदर्यवाली, पलक उठानेसे ऊपर सोहती, मृगकी द्युतियोंवाली, कुन्द पुष्पके अनुगामी मधुकरकी शोभा चुरानेवाले, **दशपुरकी** बधुओंके नेत्रोंके कुतूहलोंको अपनी छायाका पात्र बनाते आगे जाना ।।४७।।

(३) कुरुदेश

१८. तब अपनी छायासे ब्रह्मावर्त देशको पार होते क्षत्रियोंके विनाशके लिये दुःख्यात उस **कुरुक्षेत्रको** जाना, जहांपर **गांडीवधारीने** सैकड़ों, श्वेत-बाणों की वर्षाकी धारा गिरा, राजन्योंके मुखों पर (वैसी) वर्षा की, जैसी कि कमलों पर तुम ।।४८।।

१९. **रेवतीके** लोचन सी प्रिय रसवती मदिराको छोड़कर बन्धुओं की खुशीके लिये युद्धमें विमुख हो **बलभद्रने** जिनका सेवन किया, उन सरस्वती के जलोंको प्राप्त कर हे सौम्य, तुम भी रंगमात्रसे कृष्ण (रह) भीतरसे शुद्ध हो जाओगे ।।४९।।

(४) कनखल

२०. वहांसे **कनखलके** पास पर्वतराजसे उतरी, **सगर-तनयोंके** लिये स्वर्गकी सीढ़ियों जैसी गंगाको जाना; जिसने **गौरीके** मुखकी टेढ़ी भौं रचनेको हंसकर ही चन्द्रमें लगी लहरों रूपी हाथों वाली अपनी फेनोंसे शंभुके केशोंको पकड़ लिया ।।५०।।

(५) हिमालयः

२१. तं चेद्वायौ सरति सरलस्कन्धसंघट्टजन्मा
बाधेतोल्काक्षपितचमरीबालभारो दवाग्निः ।
अर्हस्येनं शमयितुमलं वारिधारासहस्रै-
रापन्नार्तिप्रशमनफलाः संपदो ह्युत्तमानाम् ॥५३॥

२२. गत्वा चोर्ध्वं दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसंघः,
कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथिः स्याः ।
शृङ्गोच्छ्रायैः कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थितः खं,
राशीभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः ॥५८॥

२३. हेमाम्भोजप्रसवि सलिलं मानसस्याददानः,
कुर्वन्कामं क्षणमुखपटप्रीतिमैरावतस्य ।
धुन्वन्कल्पद्रुमकिसलयान्यंशुकानीव वातै-
र्नानाचेष्टैर्जलद, ललितैर्निर्विशेस्तं नगेन्द्रम् ॥६२॥

२४. तस्योत्संगे प्रणयिन इव स्रस्तगंगादुकूलां,
न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन् ।
या वः काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना,
मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम् ॥६३॥

२. कुमारसंभवम्

(१) हिमालयः

२५. अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः
पूर्वापरौ तोयनिधीविगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मान-
दण्डः ॥१॥

२६. यं सर्वशैलाः परिकल्प्य वत्सं मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे ।
भास्वन्ति रत्नानि महौषधीश्च पृथूपदिष्टां दुदुहुर्धरित्रीम्
॥२॥

(५) हिमालय

२१. यदि वायु चलते समय देवदारुकी शाखाओंकी रगड़से उत्पन्न चिंगारी से चंवरीकी पूंछको नष्टकर जंगलकी आग हिमालयको पीड़ित कर रही हो, तो हजारों जलधाराओंसे उसे शांत करनेमें तुम समर्थ होना। उत्तम जनोंकी सम्पत्ति का फल शरणापन्नोंकी पीड़ाका शमन है॥५३॥

२२. और ऊपर जा, रावणकी भुजा द्वारा बिलगाये शिखरोंकी संधिवाले स्वर्गकी वनिताओंके दर्पण (जैसे) कैलासके अतिथि होना, जो कि शंकरके प्रतिदिनके अट्टहासकी राशि सा, श्वेत कमल जैसे निर्मल (अपने) शिखरोंकी ऊंचाइयोंसे आकाशमें फैला खड़ा है ॥५८॥

२३. मानसरोवरके कनक-कमलोंके उत्पादक जलको लेते, क्षण भर ऐरावतके मुखके अंशुककी यथेच्छ प्रसन्नता करते, हवाओंसे कल्पद्रुमके पत्रोंको वस्त्रोंकी तरह कंपित करते, हे मेघ, नाना ललित चेष्टाओंके साथ उस पर्वत-राजमें प्रवेश करना ॥६२॥

२४. हे इच्छाबिहारी, कैलासकी गोदमें प्रियतमकी तरह शिथिलित गंगारूपी दुकूलवाली अलका को फिर देखे बिना तुम नहीं जानोगे। जो ऊंचे महलों वाली मेघकालमें जल उगलनेवाले मेघ-समूहोंकी मोतियां गुथी अलकोंको कामिनीकी तरह धारण करती है ॥६३॥

२. कुमारसंभव

(१) हिमालय

२५. उत्तर दिशामें देवतारूपी हिमालय नामक पर्वतराज है। जो पूर्वी पश्चिमी सागरोंको अवगाहता पृथिवीके मान-दण्ड सा खड़ा है ॥१॥

२६. दुहनेमें दक्ष दोहक मेरुके रहते भी जिस हिमालयको बछड़ा बनाकर सारे पर्वतोंने पृथु द्वारा उपदिष्ट पृथिवीसे प्रकाशमान रत्नों और महौषधियोंको दुहा ॥२॥

२७. अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम् ।
एको हि दोषो गुणसंनिपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विव-
वांकः ॥३॥

२८. यश्चाप्सरोविभ्रममण्डनानां संपादयित्रीं शिखरैर्विभर्ति
बलाहकच्छेदविभक्तरागामकालसंध्यामिव धातुमत्ताम् ॥४॥

२९. आमेखलं संचरतां घनानां छायामधः सानुगतां निषेव्य ।
उद्वेजिता वृष्टिभिराश्रयन्ते शृङ्गाणि यस्यातपवन्ति
सिद्धाः ॥५॥

३०. पदं तुषारस्रुतिधौतरक्तं यस्मिन्नदृष्ट्वापि हतद्विपानाम् ।
विदन्ति मार्गं नखरन्ध्रमुक्तैर्मुक्ताफलैः केसरिणां
किराताः ॥६॥

३१. न्यस्ताक्षरा धातुरसेन यत्र भूर्जत्वचः कुंजरबिन्दुशोणाः
व्रजन्ति विद्याधरसुन्दरीणामनंगलेखक्रिययोपयोगम् ॥७॥

३२. यः पूरयन्कीचकरन्ध्रभागान् दरीमुखोत्थेन समीरणेन ।
उद्गास्यतामिच्छति किंनराणां तानप्रदायित्वमिवो-
पगन्तुम् ॥८॥

३३. कपोलकण्डूः करिभिर्विनेतुं विघट्टितानां सरलद्रुमाणाम् ।
यत्र स्रुतक्षीरतया प्रसूतः सानूनि गन्धः सुरभीकरोति ॥९॥

३४. लांगूलविक्षेपविसर्पिशोभैरितस्ततश्चन्द्रमरीचिगौरैः ।
यस्यार्थयुक्तं गिरिराजशब्दं कुर्वन्ति वालव्यजनै-
श्चमर्यः ॥१३॥

३५. यत्रांशुकाक्षेपविलज्जितानां यदृच्छया किंपुरुषांगनानाम् ।
दरीगृहद्वारविलम्बिबिम्बास्तिरस्करिण्यो जलदा भवन्ति १४

३६. भागीरथीनिर्झरसीकराणां वोढा मुहुः कम्पितदेवदारुः ।
यद्वायुरन्विष्टमृगैः किरातैरासेव्यते भिन्नशिखण्डिबर्हः १५
—सर्गः १

२७. अनन्त रत्नोंके उत्पादक जिसके लिये हिम (बर्फ) सौभाग्य-विलोपक नहीं हुआ। चंद्रमाकी किरणोंमें लांछनकी तरह बहुतसे गुणोंके होनेसे एक दोष विलीन हो जाता है ।।३।।

२८. जो अपने शिखरों द्वारा अप्सराओंके विलास-आभूषणोंको प्राप्त करानेवाली, मेघके खंडोंसे लगाये रंगवाली अकाल संध्याकी तरह धातु-धारक है ।।४।।

२९. मेखला तक संचरण करनेवाले मेघोंकी नीचे सानुपर पड़ी छायाको सेवन कर वर्षासे उद्विग्न सिद्ध-लोग जिसके धूपवाले शिखरोंका आश्रय लेते हैं ।।५।।

३०. हिमके गलनेसे मृत-गजोंके धुले लाल पैरोंको जहां न देखकर भी सिंहों के नखों द्वारा बखेरे मोतियों से किरात लोग मार्गका पता पाते हैं ।।६।।

३१. जहां धातुके रस से लिखित, गजोंके रक्त-बिन्दुओं सी लाल भुर्ज छालें, विद्याधरोंकी सुन्दरियोंके प्रेम-पत्र लिखनेके लिये उपयुक्त होती हैं ।।७।।

३२. जो गुहाओंके मुंहसे उठे वायु द्वारा बजनेवाले बांसोंके छिद्रोंको भरते, गानेवाले किन्नरोंके लिये तान देनेवाला बननेकी इच्छा करता है ।।८।।

३३. जहां गालकी खुजलीको हटानेके लिये गजोंसे रगड़े देवदारुओंके बहे दूधसे उत्पन्न गन्ध शिखरोंको सुगन्धित करती है ।।९।।

३४. पूंछके कंपानेकी शोभावाले, जहां-तहां चन्द्र-किरणों जैसे सफेद, अपने चंवरों द्वारा चमरियां जिसके गिरिराज नामको सार्थक करती हैं ।।१३।।

३५. जहां अकस्मात् वस्त्रके खिंचनेसे लज्जित किन्नरियोंके लिये गुहाके द्वारपर उड़के मेघ पर्दा बन जाते हैं ।।१४।।

३६. भागीरथीके निर्झरकी फुहारोंको ले जाते फिर-फिर देवदारुओंको कंपाते, बिखराये मोरके पिच्छोंवाले जिसके वायुको मृगखोजी किरात सेवन करते हैं ।।१५।।

—सर्ग १

(२) रति-विलाप

३७. अथ मोहपरायणा सती विवशा कामवधूर्विबोधिता।
विधिना प्रतिपादयिष्यता नववैधव्यमसह्यवेदनम् ॥१॥

३८. "अयि जीवितनाथ, जीवसीत्य" भिधायोत्थितया तया पुरः।
ददृशे पुरुषाकृति क्षितौ हरकोपानलभस्म केवलम् ॥३॥

३९. अथ सा पुनरेव विह्वला वसुधालिंगनधूसरस्तनी।
विललाप विकीर्णमूर्धजा समदुःखामिव कुर्वती स्थलीम् ॥४॥

४०. "उपमानमभूद्विलासिनां करणं यत्तव कान्तिमत्तया।
तदिदं गतमीदृशीं दशां न विदीर्ये कठिनाः खलु स्त्रियः॥५॥

४१. क्व नु मां त्वदधीनजीवितां विनिकीर्य क्षणभिन्नसौहृदः।
नलिनीं क्षतसेतुबन्धनो जलसंघात इवातिविद्रुतः ॥६॥

४२. कृतवानसि विप्रियं न मे प्रतिकूलं न च ते मया कृतम्।
किमकारणमेव दर्शनं विलपन्त्यै रतये न दीयते ॥७॥

४३. हृदये वससीति मत्प्रियं यदवोचस्तदवैमि कैतवम्।
उपचारपदं न चेदिदं त्वमनंगः कथमक्षता रतिः ॥९॥

४४. परलोकनवप्रवासिनः प्रतिपत्स्ये पदवीमहं तव।
विधिना जन एष वंचितस्त्वदधीनं खलु देहिनां सुखम्।१०।

४५. रजनीतिमिरावगुण्ठिते पुरमार्गे घनशब्दविक्लवाः।
वसतिं प्रिय, कामिनां प्रियास्त्वदृते प्रापयितुं क ईश्वरः११

४६. नयनान्यरुणानि घूर्णयन्वचनानि स्खलयन्पदे पदे।
असति त्वयि वारुणीमदः प्रमदानामधुना विडम्बना ॥१२॥

४७. अवगम्य कथीकृतं वपुः प्रियबन्धोस्तव निष्फलोदयः।
बहुलेऽपि गते निशाकरस्तनुतां दुःखमनंग, मोक्ष्यति ॥१३॥

(२) रतिका विलाप

३७. तब मूर्छिता परवशा काम-बधू (रति) को आकर असह्य पीड़ाकर नवीन वैधव्य देनेवाले विधाताने होशमें किया ॥१॥

३८. "हे प्राणनाथ, तुम जीते हो" यह कहकर उठके उसने सामने पृथिवी पर शिवकी कोपाग्निसे (जलकर) भस्म-मात्र बचे पुरुष-आकारको देखा ॥३॥

३९. तब पृथिवी पर लोटनेसे धूसर स्तनवाली, विह्वल हो केश बिखेरे, वह (रति) उस स्थलीको अपने समान दुःखित करती बिलापने लगी ॥४॥

४०. अत्यन्त सौन्दर्यके कारण जो तुम्हारा शरीर विलासियोंके लिये उपमा (की वस्तु) था। सो इसे ऐसी दशामें देख मैं फट जाती— नहीं (हाय) कठोर स्त्रियां ॥५॥

४१. जीवनाधार मुझे फेंक क्षणभरमें सौहार्द छोड़ तुम कहां हो? टूटे बांध वाले जलसमूहकी तरह नलिनी (छोड़) तुम कहां भाग गये ॥६॥

४२. तुमने कभी मेरा अप्रिय नहीं किया और न मैंने ही तुम्हारे विरुद्ध कुछ किया। फिर बिलखती रतिको अकारण ही क्यों नहीं दर्शन देते ॥७॥

४३. "तू (मेरे) हृदयमें बसती है" यह जो मुझसे प्रिय वाक्य कहते थे, उसे मैं वंचना समझती हूं। यदि यह दिखावेकी बात न थी, तो कैसे (आज) तुम अंगहीन और रति अक्षत-शरीरा हैं ॥९॥

४४. परलोककी ओर (जाते) नये यात्री, मैं तेरे मार्गका अनुगमन करूंगी। दैवनेइस जनको वंचित कर दिया, प्राणियोंका सुख तो तेरे ही अधीन है ॥१०॥

४५. हे प्रिय, रातके अन्धकारसे ढंके नगर-मार्गमें मेघके शब्दसे भयभीत कामिनियोंको प्रियाओंको तेरे बिना (अब) कौन (प्रियतमकी) बस्तीमें पहुंचा सकेगा ॥११॥

४६. लाल नेत्रोंको घुमाते पद-पदपर बातोंको बहकाते मदि-राओंका मादकपना गया तेरे बिना अब केवल विडंबना है ॥१२॥

४७. हे अनंग, प्रिय बन्धु, तेरे शरीरको कथा-मात्र अवशिष्ट जानकर निष्फल-उदयवाला चन्द्रमा कृष्णपक्षमें क्षीणताको प्राप्त होते दुःख से नहीं छूटेगा ॥१३॥

४८. हरितारुणचारुबन्धनः कलपुंस्कोकिलशब्दसूचितः ।
वद संप्रति कस्य बाणतां नवचूतप्रसवो गमिष्यति ॥१४॥

४९. प्रतिपद्य मनोहरं वपुः पुनरप्यादिश तावदुत्थितः ।
रतिदूतिपदेषु कोकिलां मधुरालापनिसर्गपण्डिताम् ॥१६॥

५०. मदनेन विनाकृता रतिः क्षणमात्रं किल जीवितेति मे ।
वचनीयमिदं व्यवस्थितं रमण,त्वामनुयामि यद्यपि"॥२१॥
—सर्गः ४

(३) कुमारक्रीडा

५१. महेश्वरः शैलसुता च हर्षात्सतर्षमेकेन मुखेन गाढम् ।
अजातदन्तानि मुखानि सूनोर्मनोहराणि क्रमतश्चुचुम्ब४१।

५२. क्वचित्स्खलद्भिः क्वचिदस्खलद्भिः क्वचित्प्रकम्पैः क्वचिदप्रकम्पैः ।
बालः स लीलाचलनप्रयोगैस्तयोर्मुदं वर्धयति स्म पित्रोः ॥४२॥

५३. अहेतुहासच्छुरिताननेन्दुर्गृहांगणक्रीडनधूलिधूम्रः ।
मुहुर्वदन्किंचिदलक्षितार्थं मुदं तयोरंकगतस्ततान ॥४३॥

५४. किंचित्कलं भंगुरकंधरस्य नमज्जटाजूटधरस्य शंभोः ।
प्रलम्बमानं किल कौतुकेन चिरं चुचुम्बे मुकुटेन्दुखण्डम्४८

५५. इत्थं शिशोः शैशवकेलिवृत्तैर्मनोभिरामैर्गिरजागिरीशौ ।
मनोविनोदैकरसप्रसक्तौ दिवानिशं नाविदतां कदाचित् ॥४९॥
—सर्गः ११

४८. हरे लाल रंगके सुन्दर वृन्तवाली, कोयलके मीठे शब्दों द्वारा ज्ञापित, नये आमकी नई मंजरी, बताओ अब किसका बाण बनेगी ॥१४॥

४९. मनोहर शरीर धार उठकर फिर आदेश दो। रतिकी दूतिकाओंमें मीठे आलापमें स्वाभाविक पण्डित कोयलोंको आज्ञा दो ॥१६॥

५०. हे प्रिय, मदनसे बिछड़ी रति क्षण भर जीती रही यह निन्दा, मेरे ऊपर आ पड़ी, यद्यपि मैं तेरा अनुगमन करूंगी" ॥२१॥

—सर्ग ४

(३) शिशु कार्तिकेय

५१. शंकर और पार्वतीने हर्षसे लालसाके साथ एक मुख द्वारा क्रमशः पुत्रके बिना दांतवाले मनोहर छओं मुखोंको चूमा ॥४१॥

५२. वह बालक कहीं डगमगाते कहीं न डगमगाते, कहीं कांपते, कहीं न कांपते, लीला-सहित चलनेके प्रयोगों द्वारा पिता-माताकी प्रसन्नताको बढ़ा रहा था ॥४२॥

५३. बिना कारणकी हंसीसे मिश्रित मुँहवाले, घरके आंगनमें खेलते, धूलिसे धूसरित, अस्पष्ट अर्थवाली कुछ बात बोलते दोनोंकी गोदमें स्थित उस शिशु कुमारने प्रसन्नता पैदा की ॥४३॥

५४. पड़े कन्धेवाले, झुके जटाजूटको धारण करनेवाले, शंकरके से आलम्बयुक्त मुकुटके कुछ मधुर चन्द्रखण्डको कुतूहलसे देर तक चूमने लगा ॥४८॥

५५. इस प्रकार शिशुके मनोहर शैशवकी क्रीड़ाओं द्वारा मनोविनोद रूपी एकमात्र रसमें आसक्त गिरिजा और गिरीश कभी दिन और रात बीतने का पता भी नहीं पाते थे ॥४९॥

—सर्ग ११

३. रघुवंशम्

(१) रघुदिग्विजयः

५६. स सेनां महतीं कर्षन्पूर्वसागरगामिनीम् ।
बभौ हरजटाभ्रष्टां गंगामिव भगीरथः ॥३२॥

५७. पौरस्त्यानेवमाक्रामंस्तांस्ताञ्जनपदाञ्जयी ।
प्राप तालीवनश्याममुपकण्ठं महोदधेः ॥३४॥

५८. अनम्राणां समुद्धर्तुस्तस्मात्सिन्धुरयादिव ।
आत्मा संरक्षितः सुह्मैर्वृत्तिमाश्रित्य वैतसीम् ॥३५॥

५९. वंगानुत्खाय तरसा नेता नौसाधनोद्यतान् ।
निचखान जयस्तम्भान्गंगास्रोतोन्तरेषु सः ॥३६॥

६०. स तीर्त्वा कपिशां सैन्यैर्बद्धद्विरदसेतुभिः ।
उत्कलादर्शितपथः कलिंगाभिमुखो ययौ ॥३८॥

६१. प्रतिजग्राह कालिंगस्तमस्त्रैर्गजसाधनः ।
पक्षच्छेदोद्यतं शक्रं शिलावर्षीव पर्वतः ॥४०॥

६२. स सैन्यपरिभोगेन गजदानसुगन्धिना ।
कावेरीं सरितां पत्युः शंकनीयामिवाकरोत् ॥४५॥

६३. दिशि मन्दायते तेजो दक्षिणस्यां रवेरपि ।
तस्यामेव रघोः पाण्ड्याः प्रतापं न विषेहिरे ॥४९॥

६४. ताम्रपर्णीसमेतस्य मुक्तासारं महोदधेः ।
ते निपत्य ददुस्तस्मै यशः स्वमिव संचितम् ॥५०॥

६५. स निर्विश्य यथाकामं तटेष्वालीनचन्दनौ ।
स्तनाविव दिशस्तस्याः शैलौ मलयदर्दुरौ ॥५१॥

६६. असह्यविक्रमः सह्यं दूरान्मुक्तमुदन्वता ।
नितम्बमिव मेदिन्याः स्रस्तांशुकमलंघयत् ॥५२॥

३. रघुवंश

(१) रघु-दिग्विजय

५६. वह (रघु) **पूर्वी** सागर गामिनी **बड़ी** सेनाको ले जाता, शंकरकी जटासे भ्रष्ट गंगाको (ले जाते) **भागीरथ** सा मालूम पड़ा ॥३२॥

५७. उन-उन पूर्वी देशोंको इस प्रकार आक्रान्त करते वह विजयी, महासागरके श्यामल तालके वनोंवाले तटपर पहुंचा ॥३४॥

५८. न झुकनेवालोंको निर्मूल करनेवाले रघुसे, नदीके वेगसे बेतके झुकनेके स्वभावका आश्रय लेकर, **सुह्म**देशियोंने अपनी रक्षा की ॥३५॥

५९. पोतों-साधनोंके साथ तैयार **बंग**-राजको बलपूर्वक उन्मूलन कर उस नेताने **गंगाके** प्रवाहके बीच जयस्तम्भ स्थापित किया ॥३६॥

६०. गजों-बंधे सेतुओंवाली सेनाओंके साथ **कपिशा** नदीको पार कर, **उत्कलों** द्वारा दिखाये पथसे वह **कलिंग**की ओर गया ॥३८॥

६१. गजोंके साधनवाले कलिंग-राजने अस्त्रोंसे उसका मुकाबला किया जैसे पंख [illegible] ॥४०॥

६२. उसने [illegible] कर) नदी-पतिके लिये कावेरीको अविश्वसनीय बना दिया ॥४५॥

६३. दक्षिण दिशा (में जाड़ों) में सूर्यका भी तेज मन्द हो जाता है। उसी दिशामें **पांड्य** (लोग) रघुके प्रतापको नहीं सह सके ॥४९॥

६४. ताम्रपर्णीके संगमवाले महासागरकी श्रेष्ठ मोतियोंको उन्होंने अपने संचित यशकी तरह प्रणिपात करके प्रदान किया ॥५०॥

६५. तदनंतर फैले चन्दनवाले उस दिशाके स्तन समान **मलय** और **दर्दुर** पर्वतोंका यथेच्छ उपभोग कर ॥५१॥

६६. सागरसे दूर हटे पृथिवीके शिथिल वस्त्रवाले नितम्ब जैसे सह्याद्रिका लंघन असह्य-पराक्रमी (रघुने) किया ॥५२॥

६७. तस्यानीकैर्विसर्पद्भिरपरान्तजयोद्यतैः।
रामास्त्रोत्सारितोऽप्यासीत्सह्यलग्न इवार्णवः ॥५३॥

६८. भयोत्सृष्टविभूषाणां तेन केरलयोषिताम्।
अलकेषु चमूरेणुश्चूर्णप्रतिनिधीकृतः ॥५४॥

६९. अवकाशं किलोदन्वान् रामायाभ्यर्थितो ददौ।
अपरान्तमहीपालव्याजेन रघवे करम् ॥५८॥

७०. पारसीकांस्ततो जेतुं प्रतस्थे स्थलवर्त्मना।
इन्द्रियाख्यानिव रिपूंस्तत्त्वज्ञानेन संयमी ॥६०॥

७१. यवनीमुखपद्मानां सेहे मधुमदं न सः।
बालातपमिवाब्जानामकालजलदोदयः ॥६१॥

७२. संग्रामस्तुमुलस्तस्य पाश्चात्यैरश्वसाधनैः।
शार्ङ्गकूजितविज्ञेयप्रतियोधे रजस्यभूत ॥६२॥

७३. भल्लापवर्जितैस्तेषां शिरोभिः श्मश्रुलैर्महीम्।
तस्तार सरघाव्याप्तैः स क्षौद्रपटलैरिव ॥६३॥

७४. अपनीतशिरस्त्राणाः शेषास्तं शरणं ययुः।
प्रणिपातप्रतीकारः संरम्भो हि महात्मनाम् ॥६४॥

७५. विनयन्ते स्म तद्योधा मधुभिर्विजयश्रमम्।
आस्तीर्णाजिनरत्नासु द्राक्षावलयभूमिषु ॥६५॥

७६. ततः प्रतस्थे कौबेरीं भास्वानिव रघुर्दिशम्।
शरैरुस्रैरिवोदीच्यानुद्धरिष्यन् रसानिव ॥६६॥

७७. विनीताध्वश्रमास्तस्य सिंधुतीरविचेष्टनैः।
दुधुवुर्वाजिनः स्कन्धाँल्लग्नकुंकुमकेसरान् ॥६७॥

७८. तत्र हूणावरोधानां भर्तृषु व्यक्तविक्रमम्।
कपोलपाटलादेशि बभूव रघुचेष्टितम् ॥६८॥

६७. **अपरान्त** देशके जयके लिये तैयार हुई उसकी सेनाओंने परशुरामके अस्त्रसे दूर हटाये सागरको **सह्याद्रि**से सटासा दिया ॥५३।

६८. उसने भयसे भूषणरहित **केरल**-स्त्रियोंके अलकोंमें सेनाकी धूलिको (रखते) सुवासित चूर्णका रूप दिया ॥५४॥

६९. (जिस) सागरने प्रार्थना करनेपर रामको स्थान दिया था, उसीने **अपरान्त**के राजाके बहाने **रघुको** कर दिया ॥५८॥

७०. तब **पारसीकों**को जीतनके लिए स्थल-मार्गसे (वैसेही) प्रस्थान किया, जैसे संयमी (पुरुष) इन्द्रियरूपी रिपुओंको तत्वज्ञानसे ॥६०॥

७१. **यवनियों**के मुखकमलके मद्यके नशेको उसने (वैसेही) सहन नहीं किया; जैसे, अकाल मेघोंका उदय कमलोंकी कोमल धूपको ॥६१॥

७२. घोड़ेके साधनवाले पारसीकोंके साथ धनुषके शब्दोंसे सूचित प्रतिभटों वाली धूलिमें उनका तुमुल संग्राम हुआ ॥६२॥

७३. उनके भालोंसे कटे दाढ़ी-मूछवाले सिरोंसे उसने पृथिवीको मधुमक्खियोंसे व्याप्त मधुके छत्तोंकी तरह ढांक दिया ॥६३॥

७४. बाकी बचे हुए सैनिक शिरस्त्राणको हटा उसकी शरण में गये। (आखिर) महात्माओंके कोपका प्रतिकार प्रणिपात ही है ॥६४॥

७५. उसके योद्धाओंने महार्घ चर्मोंसे बिछी द्राक्षालताओंकी भूमियोंमें अंगूरकी मदिरा द्वारा विजयके खेदको मिटाया ॥६५॥

७६. तब **रघुने** सूर्यकी तरह किरणों द्वारा रसको उठाते, बाणों द्वारा उत्तरदेशियोंका उन्मूलन करते उत्तर दिशाको प्रस्थान किया ॥६६॥

७७. **सिन्धु** नदीके तीरपर लोटनेसे मार्गके खेदको हटाते उसके घोड़ोंने कन्धेपर लगे केसरसे पीले (अपने) केसरोंको हिलाया ॥६७॥

७८. वहां जगह जगह स्वामियोंके ऊपर प्रकट **रघुके** पराक्रमकी चेष्टाने **हूणों**की अन्तःपुरिकाओंके कपोलोंको लाल करनेका आदेश दिया ।६८

७९. काम्बोजाः समरे सोढुं तस्य वीर्यमनीश्वराः।
गजालानपरिक्लिष्टैरक्षोटैः सार्धमानताः ॥६९॥

८०. तेषां सदश्वभूयिष्टास्तुंगा द्रविणराशयः।
उपदा विविशुः शश्वन्नोत्सेकाः कोसलेश्वरम् ॥७०॥

८१. ततो गौरीगुरुं शैलमारुरोहाश्वसाधनः।
वर्धयन्निव तत्कूटानुद्धूतैर्धातुरेणुभिः ॥७१॥

८२. भूर्जेषु मर्मरीभूताः कीचकध्वनिहेतवः।
गंगाशीकरिणो मार्गे मरुतस्तं सिषेविरे ॥७३॥

८३. सरलासक्तमातंगग्रैवेयस्फुरितत्विषः।
आसन्नोषधयो नेतुर्नक्तमस्नेहदीपिकाः ॥७५॥

८४. तस्योत्सृष्टनिवासेषु कण्ठरज्जुक्षतत्वचः।
गजवर्ष्म किरातेभ्यः शशंसुर्देवदारवः ॥७६॥

८५. तत्र जन्यं रघोर्घोरं पर्वतीयैर्गणैरभूत्।
नाराचक्षेपणीयाश्मनिष्पेषोत्पतितानलम् ॥७७॥

८६. शरैरुत्सवसंकेतान्स कृत्वा विरतोत्सवान्।
जयोदाहरणं बाह्वोर्गापयामास किन्नरान् ॥७८॥

८७. परस्परेण विज्ञातस्तेषूपायनपाणिषु।
राज्ञा हिमवतः सारो राज्ञः सारो हिमाद्रिणा ॥७९॥

८८. चकम्पे तीर्णलौहित्ये तस्मिन्प्राग्ज्योतिषेश्वरः।
तद्गजालानतां प्राप्तैः सह कालागुरुद्रुमैः ॥८१॥

८९. तमीशः कामरूपाणामत्याखण्डलविक्रमम्।
भेजे भिन्नकटैर्नागैरन्यानुपरुरोध यैः ॥८३॥

७९. समरमें उसके पराक्रमको सहनेमें असमर्थ **कम्बोज** देशीय भी हाथी, बांधनेसे परिक्लेशित अखरोटोंके साथ आकर झुक गये ॥६९॥

८०. गर्व ही नहीं उनकी अधिकांश अच्छे घोड़ोंवाली बड़ी धन-राशियां भेंटके रूपमें **कौसलेश्वरको** बराबर प्राप्त हुईं ॥७०॥

८१. तब अश्व-सेनायुक्त (रघु) गौरीके पिता (हिमाचल) पर, उठी धातु-धूलियोंसे उसके शिखरोंको बढ़ाता सा चढ़ा ॥७१॥

८२. भुर्ज वृक्षोंमें मर्मर बजनेवाले बांसोंकी ध्वनिके कारण, गंगाके फुहार-वाले वायुओंने मार्गमें रघुकी सेवा की ॥७३॥

८३. देवदारमें लगे गजोंकी कंठ-शृंखलाओंमें प्रतिबिंबित किरणोंवाली औषधियां रातको नेता (रघु) के लिए बिना तेलकी मशालें बनीं ॥७५॥

८४. निवासोंमें गजोंके छोड़े कंठों-रस्सोंसे छिले छालवाले देवदारोंने किरातोंको गजोंका पता दिया ॥७६॥

८५. वहां वाणके फेंकने, पत्थरके टकरानेसे, उठी अग्नि के साथ रघुका पर्वतीय गणोंके साथ घोर संग्राम हुआ ॥७७॥

८६. उसने वाणोंसे **उत्सव-संकेतवाले** किन्नरोंको उत्सव-विरत करके अपनी भुजाओंके जयका उदाहरण दिखलाया ॥७८॥

८७. भेंट लिये हाथों सहित उन लोगोंसे, हिमालयका सार राजाको, और राजा का सार हिमालयको परस्पर मालूम हुआ ॥७९॥

८८. उसके **लौहित्य**[1] पार होनेपर **प्राग्ज्योतिष**[2] का राजा रघुके गजोंके लगने बने कालागुरुके वृक्षोंके साथ कांप उठा ॥८१॥

८९. इन्द्रसे भी बढ़कर पराक्रमवाले रघुको, कामरूपके राजाने, मद बहते गजोंको दे सेवा की, साथ ही दूसरोंसे भी वैसा करनेका अनुरोध किया ॥८३॥

---

१. ब्रह्मपुत्र, २. आसाम

९०. कामरूपेश्वरस्तस्य हेमपीठाधिदेवताम् ।
रत्नपुष्पोपहारेण छायामानर्च पादयोः ॥८४॥

९१. इति जित्वा दिशो जिष्णुर्न्यवर्तत रथोद्धतम् ।
रजो विश्रामयन् राज्ञां छत्रशून्येषु मौलिषु ॥८५॥

—सर्गः ४

(२) इन्दुमती-स्वयंवरः

९२. तत्र स्वयंवरसमाहृतराजलोकं,
कन्याललामकमनीयमजस्य लिप्सोः ।
भावावबोधकलुषा दयितेव रात्रौ,
निद्रा चिरेण नयनाभिमुखी बभूव ॥६४॥

९३. तं कर्णभूषणनिपीडितपीवरांसं,
शय्योत्तरच्छदविमर्दकृशांगरागम् ।
सूतात्मजाः सवयसः प्रथितप्रबोधं,
प्राबोधयन्नुषसि वाग्भिरुदारवाचः ॥६५॥

९४. "रात्रिर्गता मतिमतां वर, मुंच शय्यां,
धात्रा द्विधैव ननु धूर्जगतो विभक्ता ।
तामेकतस्तव बिभर्ति गुरुर्विनिद्रस्,
तस्या भवानपरधुर्यपदावलम्बी ॥६६॥

९५. निद्रावशेन भवताप्यनवेक्षमाणा,
पर्युत्सुकत्वमबला निशि खण्डितेव ।
लक्ष्मीर्विनोदयति येन दिगन्तलम्बी,
सोऽपि त्वदाननरुचिं विजहाति चन्द्रः ॥६७॥

९६. वृन्ताच्छ्लथं हरति पुष्पमनोकहानां,
संसृज्यते सरसिजैररुणांशुभिन्नैः ।
स्वाभाविकं परगुणेन विभातवायुः,
सौरभ्यमीप्सुरिव ते मुखमारुतस्य ॥६९॥

९०. कामरूपेश्वरने सुवर्ण पीठपर स्थित देवता की तरह, उसके पैरोंकी छायाकी रत्न-पुष्पोंके उपहारसे पूजा की ॥८४॥

९१. इस प्रकार (सभी) दिशाओंको जीतकर रथसे उठी धूलियोंको छत्र-शून्य राजाओंके सिरोंपर विश्राम कराते विजयी (रघु) लौटा ॥८५॥ —सर्ग ४

(२) इन्दुमती-स्वयंवर

९२. वहां स्वयंवरके लिये एकत्रित राजा लोगों वाली
कमनीया कन्याके लाभके इच्छुक अजकी
भाव जानती प्रियाकी तरह रातमें, निद्रा
देरसे नैनोंके पास आई ॥६४॥

९३. कर्ण-भूषणसे दबे स्थूल कन्धोंवाले,
शय्याकी चादरकी रगड़से मिटे अंगरागवाले **अजको**
समान आयु-उदार, वचन सहित सूत-पुत्रोंने उस प्रसिद्ध
प्रबोधवाले उषाकालमें (अपनी) वाणियोंसे जगाया ॥६५॥

९४. "हे मतिमानों में श्रेष्ठ, रात बीत गई, शय्या छोड़ो।
विधाताने तो संसारके भारको दो ही हिस्सोंमें बांटा है।
जिनमेंसे एकको जागते हुए तुम्हारे पिता धारण करते हैं,
उसके दूसरे भारके अवलम्ब आप हैं ॥६६॥

९५. निद्रालीन आपके द्वारा उपेक्षिता,
रात्रिमें खण्डिता अबलासी (अपनी) उत्सुकताको,
लक्ष्मी जिससे हटाती, वह चन्द्र भी, दिगन्तको पकड़
तुम्हारे मुख जैसी शोभा को छोड़ रहा है ॥६७॥

९६. सवेरेगत वायु वृक्षोंके वृन्तासे शिथिल पुष्पोंको हर रहा है।
लाल किरणोंसे प्रस्फुटित कमलोंके साथ,
दूसरेके गुणसे स्वाभाविक गुणको मिला रहा है।
मानो तुम्हारी श्वासकी सुगन्धिके पानेका इच्छुक है ॥६८॥

९७. यावत्प्रतापनिधिराक्रमते न भानु-
र्ह्नाय तावदरुणेन तमो निरस्तम्।
आयोधनाग्रसरतां त्वयि वीर याते,
किं वा रिपूस्तव गुरुः स्वयमुच्छिनत्ति ॥७१॥

९८. शय्यां जहत्युभयपक्षविनीतनिद्राः,
स्तम्भेरमा मुखरशृङ्खलकर्षिणस्ते।
येषां विभान्ति तरुणारुणरागयोगाद्,
भिन्नाद्रिगैरिकतटा इव दन्तकोशाः ॥७२॥

९९. दीर्घेष्वमी नियमिताः पटमण्डपेषु,
निद्रां विहाय वनजाक्षवनायुदेश्याः।
वक्त्रोष्मणा मलिनयन्ति पुरोगतानि,
लेह्यानि सैन्धवशिलाशकलानि वाहाः ॥७३॥

१००. भवति विरलभक्तिर्म्लानपुष्पोपहारः,
स्वकिरणपरिवेषोद्भेदशून्याः प्रदीपाः।
अयमपि च गिरं नस्त्वत्प्रबोधप्रयुक्ता-
मनुवदति शुकस्ते मंजुवाक्पंजरस्थः'' ॥७४॥

१०१. इति विरचितवाग्भिर्वन्दिपुत्रैः कुमारः,
सपदि विगतनिद्रस्तल्पमुज्झांचकार।
मदपटुनिनदद्भिर्बोधितो राजहंसैः,
सुरगज इव गांगं सैकतं सुप्रतीकः ॥७५॥

—सर्गः ५

(३) अजविलापः

१०२. पतिरंकनिषण्णया तया करणापायविभिन्नवर्णया।
समलक्ष्यत विभ्रदाविलां मृगलेखामुषसीव चन्द्रमाः ॥४२

९७. जब तक प्रताप-निधि भानु नहीं ऊपर उठा,
तब तक अरुणने तुरन्त अन्धकारको निरस्त कर दिया।
हे वीर, युद्धोंमें अग्रसर होनेपर,
तुम्हारे पिता रिपुओंको स्वयं क्यों उच्छिन्न करेंगे ।।७१।।

९८. दोनों बगलोंमें निद्रा छोड़े,
शब्दायमान जंजीरें खींचते तुम्हारे गज शय्या छोड़ रहे हैं।
जिनके दन्तकोश नव अरुण-रंगके संसर्गसे,
टूटे पहाड़के गेरूवाले तट जैसे दीख पड़ते हैं ।।७२।।

९९. हे कमलनयन, लम्बे तम्बुओंमें बँधे,
ये पारसीक घोड़े निद्राको छोड़ कर,
चाटनेके लिए रखे सेंधा पत्थरके टुकड़ोंको,
मुखकी भापसे मलिन कर रहे हैं ।।७३।।

१००. विरल गूंथोंवाला मुर्झाये पुष्पोंका उपहार हो रहा है।
प्रदीप अपनी किरणोंके घिरावेसे अभिन्न हो रहा है।
और तुम्हें जगानेके लिए प्रयुक्त हमारी वाणीको,
पिंजड़ेमें स्थित मधुरभाषी यह तोता भी दुहरा रहा है ।।७४।।

१०१. इस प्रकार बन्दि-पुत्रोंकी रचित वाणीसे कुमार (अज) ने,
निद्रा-रहित हो (वैसे) शय्या को तुरन्त छोड़ दिया।
जैसे राजहंसोंके मत्त मधुर निनादसे,
सुप्रतीक देवगज-गंगाकी बालूको ।।७५।।

—सर्ग ५

(३) अज-विलाप—

१०२. प्राणोंके चले जानेसे, बे-रंग गोदमें पड़ी इन्दुमतीके साथ उसके पति (अज), मानों उषाकालमें मलिन मृग-लांछनको धारण किये चन्द्रमा-सा दीख पड़ रहे थे ।।३८।।

१०३. विललाप स बाष्पगद्गदं सहजामप्यहाय धीरताम् ।
अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु ।।४३

१०४. "कुसुमान्यपि गात्रसंगमात्प्रभवन्त्यायुरपोहितुं यदि ।
न भविष्यति हन्त साधनं किमिवान्यत्प्रहरिष्यतो विधेः ।।४४।।

१०५. अथवा मृदु वस्तु हिंसितुं मृदुनैवारभते प्रजान्तकः ।
हिमसेकविपत्तिरत्र मे नलिनी पूर्वनिदर्शनं मता ।।४५।।

१०६. स्रगियं यदि जीवितापहा हृदये किं निहिता न हन्ति माम् ।
विषमप्यमृतं क्वचिद् भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया।।४६।।

१०७. अथवा मम भाग्यविप्लवादशनिः कल्पित एष वेधसा ।
यदनेन तरुर्न पातितः क्षपिता तद्विटपाश्रिता लता ।।४७।।

१०८. कृतवत्यसि नावधीरणामपराद्धेऽपि यदा चिरं मयि ।
कथमेकपदे निरागसं जनमाभाष्यमिमं न मन्यसे ।।४८।।

१०९. ध्रुवमस्मि शठः शुचिस्मिते विदितः कैतववत्सलस्तव ।
परलोकमसंनिवृत्तये यदनापृच्छ्य गतासि मामितः ।।४९।।

११०. मनसापि न विप्रियं मया कृतपूर्वं तव किं जहासि माम् ।
ननु शब्दपतिः क्षितेरहं त्वयि मे भावनिबन्धना रतिः ।।५१।।

१११. कुसुमोत्खचितान्वलीभृतश्चलयन्भृङ्गरुचस्तवालकान् ।
करभोरु करोति मारुतस्त्वदुपावर्तनशंकि मे मनः ।।५३।।

११२. इदमुच्छ्वसितालकं मुखं तव विश्रान्तकथं दुनोति माम् ।
निशि सुप्तमिवैकपंकजं विरताभ्यन्तरषट्पदस्वनम्।।५५।

१०३. अपनी सहज धीरताको भी छोड़कर वह अश्रु रुँधे कण्ठसे विलाप करने लगे। संतप्त (होने पर) लोहा भी मृदु हो जाता है, शरीर-धारियोंकी तो बात ही क्या ॥४३॥

१०४. "यदि शरीरको छूकर फूल भी जीवनको खतम कर सकते हैं, तो हन्त, प्रहार-इच्छुक दैवका दूसरा साधन क्यों नहीं होगा ॥४४॥

१०५. अथवा काल मृदु वस्तुको मृदु द्वारा ही मारा करता है। यहाँ पालेके अभिषेकसे मरती कमलिनी प्रथम उदाहरण दीखती है ॥४५॥

१०६. यदि यह माला जीवनघातिका है, तो हृदयपर रक्खी मुझे क्यों नहीं मारती? (सच है) ईश्वरकी इच्छासे विष भी कहीं अमृत और अमृत भी विष हो जाता है ॥४६॥

१०७. अथवा मेरे उलटे भागके कारण ब्रह्माने इसे बिजली बना दिया, जो कि इसने आश्रित लताको नष्ट कर दिया, पर वृक्षको नहीं गिराया ॥४७॥

१०८. जब अपराध करनेपर भी चिरकाल तक तुमने मेरी अवज्ञा नहीं की, तो क्यों एकाएक इस निरपराध जनको बात करने योग्य नहीं समझतीं ॥४८॥

१०९. हे [illegible], मैं झूठा स्नेह दिखलानेवाला शठ हूँ, यह तुम्हें [illegible]। तभी तो मुझसे बिना पूछे ही तुम न लौटनेके लिए यहाँसे परलोक चली गईं ॥४९॥

११०. मैंने मनसे भी कभी तुम्हारा अप्रिय नहीं किया, (फिर) क्यों मुझे छोड़ रही हो? निश्चय मैं नामके लिए पृथिवीका पति हूँ, भावोंसे युक्त मेरा प्रेम तो तुझमें है ॥५१॥

१११. हे हरिणीलोचन उरुवाली, फूल गुँथे घुँघराले भ्रमरकी कान्ति वाले तेरे अलकोंको वायु हिलाता मेरे मनमें तेरे लौट आने का सन्देह पैदा कर रहा है ॥५२॥

११२. यह हिलते अलकोंवाला तेरा मौन मुख मुझे (वैसे ही) संतप्त कर रहा है, जैसे रात्रिमें भीतर भ्रमरके शब्दसे रहित सोया अकेला कमल ॥५५॥

११३. शशिनं पुनरेति शर्वरी दयिता द्वन्द्वचरं पतत्रिणम् ।
इति तौ विरहान्तरक्षमौ कथमत्यन्तगता न मां दहेः ।।५६।।

११४. नवपल्लवसंस्तरेऽपि ते मृदु दूयेत यदंगमर्पितम् ।
तदिदं विषहिष्यते कथं वद वामोरु चिताधिरोहणम् ।।५७।।

११५. कलमन्यभृतासु भाषितं कलहंसीषु मदालसं गतम् ।
पृषतीषु विलोलमीक्षितं पवनाधूतलतासु विभ्रमाः ।।५९

११६. त्रिदिवोत्सुकयाप्यवेक्ष्य मां निहिताः सत्यममी गुणास्त्वया
विरहे तव मे गुरुव्यथं हृदयं न त्ववलम्बितुं क्षमाः ।।६०।।

११७. कुसुमं कृतदोहदस्त्वया यदशोकोऽयमुदीरयिष्यति ।
अलकाभरणं कथं नु तत्तव नेष्यामि निवापमाल्यताम् ।।६२

११८. तव निःश्वसितानुकारिभिर्बकुलैरर्धचितां समं मया ।
असमाप्य विलासमेखलां किमिदं किंनरकण्ठि सुप्यते ।।६४

११९. धृतिरस्तमिता रतिश्च्युता विरतं गेयमृतुर्निरुत्सवः ।
गतमाभरणप्रयोजनं परिशून्यं शयनीयमद्य मे ।।६६।।

१२०. गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कला-
विधौ ।
करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किं न मे
हृतम् ।।६७।।

१२१. विभवेऽपि सति त्वया विना सुखमेतावदजस्य गण्यताम् ।
अहृतस्य विलोभनान्तरैर्मम सर्वे विषयास्त्वदाश्रयाः" ।।६९।

१२२. विलपन्निति कोसलाधिपः करुणार्थग्रथितं प्रियां प्रति ।
अकरोत्पृथिवीरुहानपि स्रुतशाखारसबाष्पदूषितान् ।।७०

—सर्गः ८

११३. चन्द्रमाके पास फिर रात्रि आती है, चकवा पक्षीके पास फिर उसकी प्रिया आती है। इस प्रकार वे दोनों विरहके कालको सह सकते हैं, (पर) सदा के लिए चली गई तू मुझे क्यों न संतप्त करेगी ॥५६॥

११४. तेरा जो शरीर नव-पल्लवके बिस्तरे पर भी रखने पर संतप्त होता था,हे सुंदर उरुवाली,बोल,सो यह कैसे चितापर चढ़ना सहेगा ॥५७॥

११५. तेरा मधुर भाषण कोयलोंमें, मदसे अलस गमन कलहंसियोंमें, चंचल दृष्टि हरिनियोंमें, विलास पवन-कम्पित लताओंमें ॥५९॥

११६. सचमुच ही स्वर्ग जानेकी लालसावाली तूने मेरे ख्यालसे ये गुण बाँट दिये। लेकिन वे (भी) तेरे विरहमें अति व्यथित मेरे हृदयको नहीं थाम सकते ॥६०॥

११७. तेरा दोहद बना यह अशोक जब फूलेगा, तब तेरे अलकोंके उस आभरणको कैसे मैं श्राद्धकी माला बनाऊँगा ॥६२॥

११८. तेरे श्वासोंका अनुकरण [illegible] गुंथी, इस विलास-मेखला [illegible] यह क्यों सो रही ॥६४॥

११९. मेरा धैर्य अस्त हो गया, खेल छूट गया, गान विरत हो गया, ऋतु मेरे लिये उत्सवहीन हो गया। आभूषणका प्रयोजन चला गया, आज मेरी शय्या तेरे बिना परिशून्य है ॥६६॥

१२०. तू ही गृहिणी, सचिव, सखी, ललित-कलाओंके बारेमें परस्पर प्रिय-शिष्या रही है। निष्ठुर कालने तुझे हरते, बोल, मेरा क्या नहीं हर लिया ॥६७॥

१२१. त्रिभुवन होनेपर भी तेरे बिना अजका सुख इतना ही गिनो, कि दूसरे प्रलोभनोंसे न आकृष्ट मेरे सारे भोग तेरे अधीन हैं ॥६९॥”

१२२. इस प्रकार प्रियाके प्रति करुणापूर्ण विलाप करते कोसलाधिपने, वृक्षोंको भी शाखाओंसे गिरते रसरूपी आँसुओंसे मलिन कर दिया ॥७०॥

—सर्ग ८

(४) रामप्रत्यावर्तनम्

१२३. अथात्मनः शब्दगुणं गुणज्ञः पदं विमानेन विगाहमानः ।
रत्नाकरं वीक्ष्य मिथः स जायां रामाभिधानो हरि-
रित्युवाच ॥१॥

१२४. वैदेहि पश्यामलयाद्विभक्तं मत्सेतुना फेनिलमम्बुराशिम् ।
छायापथेनेव शरत्प्रसन्नमाकाशमाविष्कृतचारुतारम् ॥२॥

१२५. गर्भं दधत्यर्कमरीचयोऽस्माद्विवृद्धिमत्राश्नुवते वसूनि ।
अविन्धनं वह्निमसौ बिभर्ति प्रह्लादनं ज्योतिरजन्य-
नेन ॥४॥

१२६. तां तामवस्थां प्रतिपद्यमानं स्थितं दश व्याप्य दिशो
महिम्ना ।
विष्णोरिवास्यानवधारणीयमीदृक्तया रूपमियत्तया
वा ॥५॥

१२७. मुखार्पणेषु प्रकृतिप्रगल्भः स्वयं तरंगाधरदानदक्षः ।
अनन्यसामान्यकलत्रवृत्तिः पिबत्यसौ पाययते च
सिन्धुः ॥९॥

१२८. ससत्त्वमादाय नदीमुखाम्भः संमीलयन्तो विवृताननत्वात् ।
अमी शिरोभिस्तिमयः सरंध्रैरूर्ध्वं वितन्वन्ति जल-
प्रवाहान् ॥१॥-

१२९. मातंगनक्रैः सहसोत्पतद्भिर्भिन्नान्द्विधा पश्य समुद्रफेनान् ।
कपोलसंसर्पितया य एषां व्रजन्ति कर्णक्षणचाम-
रत्वम् ॥११॥

१३०. वेलानिलाय प्रसृता भुजंगा महोर्मिविस्फूर्जथुनिर्विशेषाः ।
सूर्यांशुसंपर्कसमृद्धरागैर्व्यज्यन्त एते मणिभिः
फणस्थैः ॥१२॥

(४) रामका अयोध्या लौटना

१२३. तब गुणज्ञ राम नामक हरिने विमानसे आकाशको अवगाहन करते, समुद्रको देखकर पत्नीसे कहा ॥१॥

१२४. "वैदेहि, मलय तक मेरे सेतु द्वारा विभक्त फेनिल सागरको देख, मानो आकाशगंगासे (विभक्त) उगे सुन्दर तारों वाला शरत्-कालका निर्मल आकाश है ॥२॥

१२५. सागरसे सूर्यकी किरणें जलरूपी गर्भ धारण करती हैं, यहाँ धन वृद्धिको प्राप्त होते हैं। यह जल-ईंधनवाली (बड़वा) अग्निको धारण करता है, इसने आह्लादक चन्द्रमाको पैदा किया ॥४॥

१२६. नाना अवस्थाओंको प्राप्त करते यह अपनी महिमासे दशों दिशाओंमें व्याप्त होकर स्थित है। विष्णुकी तरह इसका रूप ऐसा या इतना कह कर समझाया नहीं जा सकता ॥५॥

१२७. तरंगरूपी अधरके देनेमें दक्ष, पत्नीमें अनन्य सामान्य प्रेम रखनेवाला, स्वभावसे ही ढीठ यह समुद्र नदियों को स्वयं पीता-पिलाता है ॥९॥

१२८. नदीके मुहानेके प्राणियों सहित जलको खुले मुंह हो रगड़ते, ये तिमि मत्स्य अपने छिद्रवाले सिरोंसे जलके प्रवाहोंको ऊपर उछाल रहे हैं ॥१०॥

१२९. गजाकार नाकोंके एकाएक ऊपर उछलनेसे समुद्रके फेनोंको दो टुकड़े होता देखो, वे इनके गालोंके पास होनेसे क्षणभरके लिये कानोंके चंवर बन जाते हैं ॥११॥

१३०. तटकी हवा पीनेके लिए बड़ी लहरोंके वेगसे अभिन्न फैले साँप, सूर्यकी किरणोंके सम्पर्कसे बढ़े रंगवाली फणस्थित मणियोंसे व्यक्त होते हैं ॥१२॥

१३१. तवाधरस्पर्धिषु विद्रुमेषु पर्यस्तमेतत्सहसोर्मिवेगात्।
ऊर्ध्वांकुरप्रोतमुखं कथंचित्क्लेशादपक्रामति शंख-
यूथम् ।।१३।।

१३२. प्रवृत्तमात्रेण पयांसि पातुमावर्तवेगाद् भ्रमता घनेन।
आभाति भूयिष्ठमयं समुद्रः प्रमथ्यमानो गिरिणेव
भूयः ।।१४।।

१३३. दूरादयश्चक्रनिभस्य तन्वी तमालतालीवनराजिनीला।
आभाति वेला लवणाम्बुराशेर्धारानिबद्धेव कलंक-
रेखा ।।१५।।

१३४. कुरुष्व तावत्करभोरु, पश्चान्मार्गे मृगप्रेक्षिणि दृष्टिपातं,
एषा विदूरीभवतः समुद्रात्सकानना निष्पततीव -
भूमिः ।।१८।।

१३५. क्वचित्पथा संचरते सुराणां क्वचिद्घनानां पततां
क्वचिच्च।
यथाविधो मे मनसोऽभिलाषः प्रवर्तते पश्य तथा
विमानम् ।।१९।।

१३६. असौ महेन्द्रद्विपदानुगन्धिस्त्रिमार्गगावीचिविमर्दशीतः।
आकाशवायुर्दिनयौवनोत्थानाचामति स्वेदलवा-
न्मुखे ते ।।२०।।

१३७. सैषा स्थली यत्र विचिन्वता त्वां भ्रष्टं मया नूपुरमेक-
मुर्व्याम्।
अदृश्यत त्वच्चरणारविन्दविश्लेषदुःखादिव बद्ध-
मौनम् ।।२३।।

१३८. त्वं रक्षसा भीरु, यतोऽपनीता तं मार्गमेता कृपया-
लता मे। अदर्शयन्वक्तुमशक्नुवत्यः शाखाभिरावर्जि-
तपल्लवाभिः ।।२४।।

१३१. तेरे अधरकी स्पर्धा करनेवाले लहरोंके वेगसे एकाएक फेंके हुये ऊपरी अंकुरों सहित मूंगोंसे गुंथे मुखवाले शंखोंके समूह जैसे कैसे कठिनाईसे दूर जा रहे हैं ॥१३॥

१३२. भँवरके वेगसे घूमते जलको पीनेमें लगे मेघ द्वारा, यह समुद्र, पर्वत द्वारा फिर अत्यधिक मथा जाता दीख पड़ रहा है ॥१४॥

१३३. लवणसागरकी धारासे बंधी बारीक तमाल-तालकी वन-पंक्तियोंसे नीला तट, दूरसे लोहेके चक्केके सदृश (और) लवणसागरकी जल-धारा स्याहीकी रेखा सी दीख पड़ती है ॥१५॥

१३४. हे गज सी उरुवाली, मृगनयनी, जरा पीछे रास्तेपर दृष्टिपात करो। कानन-सहित यह भूमि दूर होते समुद्रसे भाग सी रही है ॥१८॥

१३५. कहीं देवताओंके पथसे और कहीं, पक्षियों कहीं बादलोंके पथसे मेरे मनकी अभिलाषाके अनुसार देखो विमान जा रहा है ॥१९॥

१३६. यह महेन्द्रके गजके मदजलकी गन्धवाला, गंगाकी लहरके सम्पर्कसे शीतल, आकाश का वायु, मध्यान्हमें निकले तेरे मुखके स्वेद-कणों को पी रहा है ॥२०॥

१३७ यही वह स्थल है, जहाँ तुझे खोजते पृथिवीपर गिरे एक नूपुरको मैंने देखा, जो मानो तेरे चरण-कमलके वियोगके दुःखसे मौन था ॥२३॥

१३८. हे भीरु, जिस मार्गसे राक्षस तुझे ले गया, उसे कृपा करके, बोलनेमें असमर्थ [illegible] पल्लवोंयुक्त शाखाओंसे इन लताओंने मुझे बतलाया ॥२४॥

१३९. मृग्यश्च दर्भांकुरनिर्व्यपेक्षास्तवागतिज्ञं समबोधयन्माम् ।
व्यापारयन्त्यो दिशि दक्षिणस्यामुत्पक्ष्मराजीनि विलो-
चनानि ॥२५॥

१४०. एतद्गिरेर्माल्यवतः पुरस्तादाविर्भवत्यम्बरलेखि शृङ्गम् ।
नवं पयो यत्र घनैर्मया च त्वद्विप्रयोगाश्रु समं विसृ-
ष्टम् ॥२६॥

१४१. उपान्तवानीरवनोपगूढान्यालक्ष्यपारिप्लवसारसानि ।
दूरावतीर्णा पिबतीव खेदादमूनि पम्पासलिलानि
दृष्टिः ॥३०॥

१४२. इमां तटाशोकलतां च तन्वीं स्तनाभिरामस्तबका-
भिनम्राम् ।
त्वत्प्राप्तिबुध्या परिरब्धुकामः सौमित्रिणा साश्रुरहं
निषिद्धः ॥३२॥

१४३. धारास्वनोद्गारिदरीमुखोऽसौ शृङ्गाग्रलग्नाम्बुदव-
प्रपंकः ।
बध्नाति मे बन्धुरगात्रि चक्षुर्दृप्तः ककुद्मानिव चित्र-
कूटः ॥४७॥

१४४. एषा प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा सरिद्विदूरान्तरभावतन्वी ।
मन्दाकिनी भाति नगोपकण्ठे मुक्तावली कण्ठगतेव
भूमेः ॥४८॥

१४५. क्वचित्प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलैर्मुक्तामयी यष्टिरिवानु-
विद्धा ।
अन्यत्र माला सितपंकजानामिन्दीवरैरुत्खचितान्त-
रेव ॥५४॥

१३९. और तृणांकुरोंकी उपेक्षा कर हरिनियोंने तेरे जानेसे अनभिज्ञ मुझे संबोधित करते, ऊपर उठी पलकोंकी पंक्तिवाले नेत्रोंको दक्षिण दिशामें कर दिया ॥२५॥

१४०. **माल्यवान्** गिरिके आगे आकाशचुम्बी यह शिखर प्रकट हो रहा है, जहाँपर मेघोंके साथ मैंने तेरे वियोगमें नया अश्रु-जल छोड़ा ॥२६॥

१४१. पासमें बेलोंके वनोंसे आच्छादित, सारसोंसे दोलित पम्पाके इस जल को दूरसे उतरी दृष्टि खिन्न हो पी सी रही है ॥३०॥

१४२. स्तन जैसे सुन्दर गुच्छोंसे झुकी, तटके अशोककी पतली लताको तुझे पाया समझ अश्रु बहाते आलिंगनके इच्छुक मुझे लक्ष्मणने रोका ॥३२॥

१४३. हे सुतनु, धाराकी आवाज उगलनेवाली गुहारूपी मुख और शिखरके अग्रभागपर लगे मेघके क्रीड़ा-पंकवाला यह **चित्रकूट** दर्पयुक्त हो सांड़की तरह मेरी आँखोंको खींच रहा है ॥४७॥

१४४. पर्वतके पास निर्मल निश्चल प्रवाहवाली दूर होनेसे पतली यह **मन्दाकिनी** नदी भूमिके कण्ठमें पड़ी मुक्तावलि सी प्रतीत हो रही है ॥४८॥

१४५. कहीं प्रभाके लेपन करनेवाले नीलोंसे मिश्रित हो मुक्तामय यष्टि सी, कहीं नील कमलोंके भीतर खचित श्वेत पंकजोंकी माला सी ॥५४॥

१४६. क्वचित्खगानां प्रियमानसानां कादम्बसंसर्गवतीव पंक्तिः।
अन्यत्र कालागुरुदत्तपत्रा भक्तिर्भुवश्चन्दनकल्पितेव ।।५५।।

१४७. क्वचित्प्रभा चान्द्रमसी तमोभिश्छायाविलीनैः शबलीकृतेव।
अन्यत्र शुभ्रा शरदभ्रलेखा रन्ध्रेष्विवालक्ष्य नभःप्रदेशा ।।५६।।

१४८. क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव भस्मांगरागा तनुरीश्वरस्य।
पश्यानवद्यांगि, विभाति गंगा भिन्नप्रवाहा यमुनातरंगैः ।।५७।।

१४९. समुद्रपत्न्योर्जलसंनिपाते पूतात्मनामत्र किलाभिषेकात्।
तत्त्वावबोधेन विनापि भूयस्तनुत्यजां नास्ति शरीरबन्धः ।।५८।।

१५०. जलानि या तीरनिखातयूपा वहत्ययोध्या मनुराजधानीम्।
तुरंगमेधावभृथावतीर्णैरिक्ष्वाकुभिःपुण्यतरीकृतानि।।६१।।

१५१. असौ पुरस्कृत्य गुरुं पदातिः पश्चादवस्थापितवाहिनीकः।
वृद्धैरमात्यैः सह चीरवासा मामर्घ्यपाणिर्भरतोऽभ्युपैति ।।६६।।

—सर्गः १३

(५) परित्यक्ताऽयोध्या

१५२. तमब्रवीत्सा गुरुणानवद्या या नीतपौरा स्वपदोन्मुखेन।
तस्याः पुरः संप्रति वीतनाथां जानाहि राजन्नधिदेवतां माम् ।।९।।

१४६. कहीं मानसप्रेमी पक्षियोंके समूहके सम्पर्कवाली पंक्ति सी, कहीं कालागुरुसे दिये हुये पत्रांकनवाली चन्दन निर्मित पृथिवीकी भक्ति सी ॥५५॥

१४७. कहीं छायामें विलीन अन्धकारोंसे चन्द्रभाकी कालिमा लगी प्रभा सी, कहीं छिद्रोंसे दिखाई देते नील आकाशमें शरद्के शुभ्र मेघ-पंक्तियों सी ॥५६॥

१४८. कहीं भस्म-चूर्ण लगे काले सर्पोंके भूषणवाले शंकरके शरीर सी। हे निर्दोषशरीरे, देख जमुनाके तरंगोंसे मिश्रित गंगाका प्रवाह दिखलाई दे रहा है ॥५७॥

१४९. समुद्रकी पत्नियों गंगा-जमुनाके संगमपर स्नान करने से, पवित्र हुये को, तत्वज्ञानके बिना भी मरनेपर शरीरका बन्धन नहीं रहता ॥५८॥

१५०. तीरपर गाड़े यज्ञस्तम्भोंवाली सरयू अयोध्या राजधानीके पाससे जिस जलको बहाती है, उसे अश्वमेधके स्नानके लिये उतारकर इक्ष्वाकुओंने पवित्र किया है ॥६१॥

१५१. (देखो) गुरुको आगे, सेनाओंको पीछे किये वृद्ध अमात्योंके साथ, यह चीरधारी भरत अर्घ्य हाथमें लिये मेरे पास आ रहे हैं ॥६६॥

—सर्ग १३

५. ध्वस्त अयोध्या

१५२. "मैं हूँ अपने पदसे ऊर्ध्वगामी, तुम्हारे पिताके अधीन नागरिकोंवाली थी।" यह कुशसे बोली, हे राजन्, इस समय उसी अनाथपुरी (अयोध्या) की मुझे अधिदेवता जानो ॥२॥

१५३. विशीर्णतल्पाट्टशतो निवेशः पर्यस्तशालः प्रभुणा विना मे।
विडम्बयत्यस्तनिमग्नसूर्यं दिनान्तमुग्रानिलभिन्नमेघम् ॥११॥

१५४. निशासु भास्वत्कलनूपुराणां यः संचरोऽभूदभिसारिकाणाम्।
नदन्मुखोल्काविचितामिषाभिः स वाह्यते राजपथः शिवाभिः ॥१२॥

१५५. आस्फालितं यत्प्रमदाकराग्रैर्मृदंगधीरध्वनिमन्वगच्छत्।
वन्यैरिदानीं महिषैस्तदम्भः शृङ्गाहतं क्रोशति दीर्घिकाणाम् ॥१३॥

१५६. वृक्षेशया यष्टिनिवासभंगान्मृदंगशब्दापगमादलास्याः।
प्राप्ता दवोल्काहतशेषबर्हाः क्रीडामयूरा वनबर्हिणत्वम् ॥१४॥

१५७. सोपानमार्गेषु च येषु रामा निक्षिप्तवत्यश्चरणान्सरागान्।
सद्यो हतन्यंकुभिरस्रदिग्धं व्याघ्रैः पदं तेषु निधीयते मे ॥१५॥

१५८. स्तम्भेषु योषित्प्रतियातनानामुत्क्रान्तवर्णक्रमधूसराणाम्।
स्तनोत्तरीयाणि भवन्ति संगान्निर्मोकपट्टाः फणिभिर्विमुक्ताः ॥१७॥

१५९. कालान्तरश्यामसुधेषु नक्तमितस्ततो रूढतृणांकुरेषु।
त एव मुक्तागुणशुद्धयोऽपि हर्म्येषु मूर्च्छन्ति न चन्द्रपादाः ॥१८॥

१५३. स्वामीके बिना सैकड़ों गिरे-पड़े हाटों तथा ध्वस्त शालावाले मेरे गृह हैं, (जो) शामको उग्र वायुसे छिन्न-भिन्न मेघों-सहित डूबते सूर्य जैसे मालूम होते हैं ॥११॥

१५४. चमकते सुन्दर नूपुर पहिने अभिसारिकायें जहाँ रातोंमें गमनागमन करती थीं। वह राजमार्ग मुखकी मशालसे मांस चुनती चिल्लाती गीदड़ियोंका गमन-स्थान है ॥१२॥

१५५. ललनाओंके हाथोंसे मृदंगकी धीर-ध्वनिका जो अनुकरण करता था, आलोड़ित होता था, वह दीर्घियोंका जल अब बनैले भैंसोंके सींगोंसे आहत होकर चिल्ला रहा है ॥१३॥

१५६. सीकचोंके निवासोंके टूट जाने से मृदंगके शब्दोंके बिना नृत्य रहित हो वृक्षोंपर रहनेवाले, वनाग्निकी [illegible] क्रीड़ा-मयूर अब वनमयूर हो गये हैं ॥१४॥

१५७. और रमणियोंने महावर लगे चरणोंका जिनपर निक्षेप किया था, उन मेरे सोपानमार्गोंपर तुरन्त मारे मृगोंके रक्तसे लिप्त व्याधोंके पद रक्खे जाते हैं ॥१५॥

१५८. मिटे रंगके अंगवाले धूसर स्त्रियोंकी प्रतिमाओंके लिये, स्तम्भोंमें अटकी रहनेसे साँपोंकी छोड़ी केंचुलें (आज) स्तन ढाकने की चादरें होती हैं ॥१७॥

१५९. समय बीतनेसे काले पड़े चूनेवाले जहाँ-तहाँ उगे तृण-अंकुरोंवाले प्रासादोंमें, चन्द्रमाकी मोती सी स्वच्छ वही किरणें (पूर्ववत्) प्रतिबिम्बित नहीं होतीं ॥१८॥

१६०. आवर्ज्य शाखाः सदयं च यासां पुष्पाण्युपात्तानि विला-
सिनीभिः।
वन्यैः पुलिन्दैरिव वानरैस्ताः क्लिश्यन्त उद्यानलता
मदीयाः ॥१९॥

१६१. रात्रावनाविष्कृतदीपभासः कान्तामुखश्रीवियुता
दिवापि।
तिरस्क्रियन्ते कृमितन्तुजालैर्विच्छिन्नधूमप्रसरा
गवाक्षाः ॥२०॥

१६२. बलिक्रियावर्जितसैकतानि स्नानीयसंसर्गमनाप्नुवन्ति
उपान्तवानीरगृहाणि दृष्ट्वा शून्यानि दूये सरयू-
जलानि ॥२१॥

१६३. तदर्हसीमां वसतिं विसृज्य यामभ्युपेतुं कुलराजधानीम्।
हित्वा तनुं कारणमानुषीं तां यथा गुरुस्ते परमात्म-
मूर्तिम् ॥२२॥
—षोडशः सर्गः

४. अभिज्ञानशाकुन्तलम्

(१) शकुन्तला-परित्यागः

१६४. राजा—(आरुह्य परिजनांसावलम्बी तिष्ठति) वेत्रवति,
किमुद्दिश्य भगवता काश्यपेन मत्सकाशमृषयः प्रेषिताः
स्युः ? किं तावद् व्रतिनामुपोढतपसां विघ्नैस्तपो दूषितं,
धर्मारण्यचरेषु केनचिदुत प्राणिष्वसच्चेष्टितम्।
आहोस्वित्प्रसवो ममापचरितैर्विष्टम्भितो वीरुधां,
इत्यारूढबहुप्रतर्कमपरिच्छेदाकुलं मे मनः ॥९॥

प्रतीहारी—सुचरितनन्दिन ऋषयो देवं सभाजयितुमागता
इति तर्कयामि।

१६०. जिनकी शाखाओंसे स्नेहके साथ पकड़कर विलासिनियोंने पूजाके फूल उतारे थे, वह मेरी उद्यान-लतायें जंगली भीलों जैसे बानरों द्वारा पीड़ित हो रही हैं ॥१९॥

१६१. रातको दीपककी रोशनीसे शून्य, दिनमें भी ललनाओंकी मुख-शोभासे रहित, बिना धूयेंवाले गवाक्ष मकड़ियोंके जालोंसे ढांके जा रहे हैं ॥२०॥

१६२. पूजा-कर्मसे रहित बालुकामय, स्नानीय चूर्णोंसे वंचित, पासमें बेंत-र घरवाले सरयूके शून्य जलों को देखकर मैं संतप्त हो उठती हूँ ॥२१॥

१६३. इसलिये इस (श्रावस्ती) बस्तीको छोड़कर (अपनी) कुलराजधानी अयोध्यामें चलो ॥२२॥

—सर्ग १६

४. अभिज्ञानशाकुन्तल

१. शकुन्तलाका परित्याग

१६४. राजा—(द्वारके कोठेपर चढ़कर परिजनके कन्धेका आसरा लिये खड़े हैं) वेत्रधारिणी, किसलिये भगवान् काश्यपने मेरे पास ऋषियों को भेजा होगा—

क्या बड़े व्रतवालोंके तप में विघ्न पड़ा,
या धर्मारण्यमें रहनेवाले प्राणियोंपर अत्याचार हुआ,
अथवा मेरे पापोंसे वन-लताओंका फूलना-फलना रुक गया,
इस तरह बहुत तर्क-वितर्क करके निश्चय न कर मेरा मन व्याकुल है ॥९॥

प्रतिहारी—मैं सोचती हूँ, सदाचार-प्रेमी ऋषि महाराजका अभिनन्दन करनेके लिये आये हैं।

(गौतमीके साथ शकुन्तलाको आगे करके मुनि लोग प्रवेश करते हैं, उनके आगे-आगे कंचुकी और पुरोहित हैं)।

कंचुकी[1]—आप लोग इधर-इधर आयें।

[1] ख्वाजासरा, अन्तःपुरचारी वृद्ध ब्राह्मण।

(ततः प्रविशन्ति गौतमीसहिताः शकुन्तलां पुरस्कृत्य मुनयः पुरश्चैषां कंचुकी पुरोहितश्च)

कंचुकी—इत इतो भवन्तः।

१६५. शार्ङ्गरवः—शारद्वत,

महाभागः कामं नरपतिरभिन्नस्थितिरहो,
न कश्चिद्वर्णानामपथमपकृष्टोऽपि भजते।
तथापीदं शश्वत्परिचितविविक्तेन मनसा,
जनाकीर्णं मन्ये हुतवहपरीतं गृहमिव ॥१०॥

१६६. शकुन्तला—(निमित्तं सूचयित्वा)। अहो, किं मे वामेतरन्नयनं विस्फुरति।

गौतमी—जाते, प्रतिहतममंगलम्। सुखानि ते भर्तृकुल-देवा वितरन्तु। (इति परिक्रामति।)

१६७. पुरोहितः—(राजानं निर्दिश्य) भो भोस्तपस्विनः असावत्र भवान्वर्णाश्रमाणां रक्षिता प्रागेव मुक्तासनो वः प्रतिपालयति। पश्यतैनम्।

१६८. शार्ङ्गरवः—भो महाब्राह्मण, काममेतदभिनन्दनीयं तथापि वयमत्र मध्यस्थाः। कुतः—

भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमैर्,
नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः,
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ॥१२॥

प्रतीहारी—देव, प्रसन्नमुखवर्णा दृश्यन्ते। जानामि विश्रब्धकार्या ऋषयः।

१६९. राजा—(शकुन्तलां दृष्ट्वा) अथात्र भवती—

का स्विदवगुण्ठनवती नातिपरिस्फुटशरीरलावण्या।
मध्ये तपोधनानां किसलयमिव पाण्डुपत्राणाम् ॥१३॥

१६५. शार्ङ्गरव—शारद्वत,
अहो महाभाग राजा चाहे न्यायपर दृढ़ हो,
वर्णोंमें कोई भी कुमार्गपर चलता हो,
तो भी सदा एकान्तमें अभ्यस्त मनसे,
यह जनाकीर्ण स्थान मुझे आगसे घिरे घर सा मालूम होता है ॥१०॥

१६६. शकुन्तला—(असगुन देखकर) अहो, मेरा दाहिना नेत्र क्यों फड़क रहा है ?
गौतमी—पुत्रि, (तेरा) अमंगल नष्ट हो गया है। पतिके कुलदेवता तुझे सुख प्रदान करें। (परिक्रमा करके)

१६७. पुरोहित—(राजाको दिखलाकर) हे तपस्वियो, वर्णाश्रमों के रक्षक यहाँ आप पहले ही से आसन को छोड़ आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, उन्हें देखें।

१६८. शार्ङ्गरव—हे महाब्राह्मण, चाहे यह अभिनन्दनीय हो, तो भी हम इस विषयमें उदासीन हैं। क्योंकि—
फलके आनेपर वृक्ष नम्र होते हैं,
नये जलवाले मेघ दूर तक लटकते हैं।
सत्पुरुष समृद्धिसे उच्छृंखल नहीं होते,
परोपकारियोंका यही स्वभाव है ॥१२॥
प्रतिहारी—महाराज, यह प्रसन्नमुख दिखाई दे रहे हैं। मैं समझती हूँ, ऋषि आश्वस्त हैं।

१६९. राजा—(शकुन्तलाको देखकर) और यह आप—
शरीरकी अत्यन्त अस्फुट सौन्दर्यसे युक्त अवगुण्ठनवती,
तापसियोंके बीच पीले पत्तोंके बीच नवपल्लवों सी कौन है ॥१३॥

१७०. प्रतीहारी—देव, कुतूहलगर्भोपहितो न मे तर्कः प्रसरति। ननु दर्शनीया पुनरस्या आकृतिर्लक्ष्यते।
राजा—भवतु। अनिर्वर्णनीयं परकलत्रम्।

१७१. शकुन्तला—(हस्तमुरसि कृत्वा। आत्मगतम्) हृदय, किमेवं वेपसे? आर्यपुत्रस्य भावमवधार्य धीरं तावद् भव।

१७२. पुरोहितः—(पुरो गत्वा) एते विधिवदर्चितास्तपस्विनः। कश्चिदेषामुपाध्यायसंदेशः। तं देवःश्रोतुमर्हति।
राजा—अवहितोऽस्मि।

१७३. ऋषयः—(हस्तानुद्यम्य) विजयस्व राजन्।
राजा—सर्वानभिवादये।
ऋषयः—इष्टेन युज्यस्व।
राजा—अपि निर्विघ्नतपसो मुनयः?

१७४. ऋषयः—

कुतो धर्मक्रियाविघ्नः सतां रक्षितरि त्वयि।
तमस्तपति घर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति॥१४॥

१७५. राजा—अर्थवान्खलु मे राजशब्दः। अथ भगवांल्लोकानुग्रहाय कुशली कण्वः?
ऋषयः—स्वाधीनकुशलाः सिद्धिमन्तः। स भवन्तमनामयप्रश्नपूर्वकमिदमाह—
राजा—किमाज्ञापयति भगवान्?

१७६. शार्ङ्गरव—यन्मिथः समयादिमां मदीयां दुहितरं भवानुपायंस्त, तन्मया प्रीतिमता युवयोरनुज्ञातम्। कुतः, तदिदानीमापन्नसत्वा प्रतिगृह्यतां सहधर्मचरणायेति।

१७०. प्रतिहारी—महाराज, कौतूहलमें पड़ा मेरा तर्क काम नहीं दे रहा। हाँ इसका रूप दर्शनीय मालूम होता है।

राजा—अस्तु, दूसरेकी स्त्रीको नहीं देखना चाहिये।

१७१. शकुन्तला—(छातीपर हाथ रख अपने आपसे) हृदय, क्यों इस तरह काँपता है। आर्यपुत्रके अभिप्रायको जानकर धीरज धर।

१७२. पुरोहित—(आगे जाकर) इन तपस्वी (महात्माओं) की विधिवत् पूजा कर दी गई है। इनके उपाध्यायका कोई सन्देश है, उसे महाराज सुनें।

राजा—मैं सावधान हूँ।

१७३. ऋषि लोग—(हाथ उठाकर) राजन् तुम्हारी विजय हो।

राजा—मैं सबको अभिवादन करता हूँ।

ऋषि लोग—तुम्हारी अभिलाषा पूरी हो।

राजा—मुनि लोगोंकी तपस्या निर्विघ्न तो है?

१७४. ऋषि लोग—

तुम्हारे रक्षक होते कैसे संतोंके धर्म-कार्यमें विघ्न हो सकता है?
सूर्य के तपते समय कैसे अन्धकार प्रकट हो सकता है॥१४॥

१७५. राजा—मेरा राजाका नाम सार्थक है। अच्छा, भगवान् कण्व लोक पर अनुग्रह करनेके लिये कुशलपूर्वक तो हैं?

ऋषि लोग—सिद्धिप्राप्त पुरुषोंका कुशल (उनके) स्वाधीन होता है। उन्होंने कुशल-मंगल पूछकर यह कहा है।

राजा—भगवान् क्या आज्ञा देते हैं?

१७६. शार्ङ्गरव—"आपसमें शर्त करके मेरी कन्याके साथ आपने ब्याह किया, सो प्रसन्नताके साथ मैंने आप दोनोंके कार्यको स्वीकार किया। अब यह गर्भिणी है, इसे साथ रख धर्माचरणके लिये ग्रहण कीजिये"।...

१७७. शकुन्तला—(आत्मगतम्) किं नु खल्वार्यपुत्रो भणति ?

राजा—किमिदमुपन्यस्तम् ?

१७८. शकुन्तला—(आत्मगतम्) पावकः खलु वचनोपन्यासः

शार्ङ्गरवः—कथमिदं नाम ? भवन्त एव सुतरां लोक-वृत्तान्तनिष्णाताः

गौतमी—

नापेक्षितो गुरुजनो नो खलु पृष्टश्च बन्धुजनः।
परस्परस्मिन्नेव चरिते भणामि किमेकैकम् ॥१६॥
सतीमपि ज्ञातकुलैकसंश्रयां जनोऽन्यथा भर्तृमतीं विशंकते।
अतः समीपे परिणेतुरिष्यते प्रियाप्रिया च प्रमदा स्व-
बन्धुभिः ॥१७॥

राजा—किं चात्र भवती मया परिणीतपूर्वा ?

शकुन्तला—(सविषादम्, आत्मगतम्) हृदय, सांप्रतं त आशंका।

१७९. गौतमी—जाते, मुहुर्तं मा लज्जस्व। अपनेष्यामि तावत्तेऽवगुण्ठनम्। ततस्त्वां भर्ताभिज्ञास्यति। (इति यथोक्तं करोति)।

१८०. राजा—शकुन्तलां निर्वर्ण्य। (आत्मगतम्)—

इदमुपनतमेवं रूपमक्लिष्टकान्ति,
प्रथमपरिगृहीतं स्यान्न वेति व्यवस्यन्।
भ्रमर इव विभाते कुन्दमन्तस्तुषारं।
न च खलु परिभक्तुं नैव शक्नोमि हातुम् ॥१९॥
(इति विचारयन्स्थितः)

१७७. शकुन्तला—(अपने आपसे) देखें, आर्यपुत्र क्या बोलते हैं?
राजा—आपने यह क्या कहा?

१७८. शकुन्तला—(अपने आपसे)। यह वचन आग-जैसा है।
शार्ङ्गरव—यह कैसे? आप ही लोकवृत्तान्तके अधिक ज्ञाता हैं।
इसने गुरुजनोंकी अपेक्षा नहीं की, और न बन्धुजनोंसे पूछा।
परस्पर किये कामके विषयमें एक-एकको क्या कहूँ ॥१६॥
मायकेमें ही केवल रहनेवाली सधवा सतीके बारेमें भी लोग शंका करते हैं। इसलिये प्रिया या अप्रिया स्त्रीको बन्धुजन पतिके पास रख देना चाहते हैं ॥१७॥
राजा—क्या मैंने इन आपसे पहले व्याह किया है?
शकुन्तला—(विषादके साथ अपने आपसे) हृदय, तेरी शंका उचित है।

१७९. गौतमी—पुत्रि, जरा लज्जा न कर। तेरे घूंघटको हटाती हूँ, तब तुझे पति पहचानेंगे।

१८०. राजा—(शकुन्तलाको अच्छी तरह देखकर अपने आपसे)—
ऐसा निर्मल कमनीय रूप (पर) आया है,
इसे पहले ग्रहण किया या नहीं, यह सोचते,
भीतर तुषारयुक्त कुन्दको सबेरे जैसे भ्रमर,
(वैसे ही) मैं न भोग सकता न छोड़ सकता ॥१९॥
(यह विचारते खड़ा रहा)।

१८१. प्रतीहारी—अहो धर्मापेक्षिता भर्तुः। ईदृशं नाम सुखोपनतं रूपं दृष्ट्वा कोऽन्यो विचारयति।
शार्ङ्गरवः—भो राजन्, किमिति जोषमास्यते ?

१८२. राजा—भोस्तपोधन, चिन्तयन्नपि न खलु स्वीकरणमत्रभवत्याः स्मरामि। तत्कथमिमामभिव्यक्तसत्त्वलक्षणां प्रत्यात्मानं क्षेत्रिणमाशंकमानः प्रतिपत्स्ये ?

१८३. शकुन्तला—(अपवार्य) आर्यस्य परिणय एव संदेहः। कुत इदानीं मे दूराधिरोहिण्याशा।

१८४. शार्ङ्गरवः—मा तावत्—

कृताभिमर्षामनुमन्यमानः सुतां त्वया नाम मुनिर्विमान्यः।
मुष्टं प्रतिग्राहयता स्वमर्थं पात्रीकृतो दस्युरिवासि येन ॥२०॥

१८५. शारद्वतः—शार्ङ्गरव, विरम त्वमिदानीम्। शकुन्तले, वक्तव्यमुक्तमस्माभिः। सोऽयमत्र भवानेवमाह। दीयतामस्मै प्रत्ययप्रतिवचनम्।

१८६. शकुन्तला—(अपवार्य) इदमवस्थान्तरं गते तादृशेऽनुरागे किं वा स्मारितेन। आत्मेदानीं मे शोचनीय इति व्यवसितमेतत् (प्रकाशं) आर्यपुत्र, (इत्यर्धोक्ते) संशयित इदानीं परिणये नैष समुदाचारः। पौरव, न युक्तं नाम ते तथा पुराऽऽश्रमपदे स्वभावोत्तानहृदयमिमं जनं समयपूर्वं प्रतार्येदृशैरक्षरैः प्रत्याख्यातुम्।

१८७. राजा—(कर्णौ पिधाय) शान्तं पापम्।

व्यपदेशमाविलयितुं किमीहसे जनमिमं च पातयितुम्।
कूलंकषेव सिन्धुः प्रसन्नमम्भस्तटतरुं च ॥२१॥

१८१. प्रतिहारी—अहो, स्वामीका धर्मपर ध्यान। ऐसे सुलभ रूपको देख कर कौन है दूसरा, (जो) हिचकिचाता।

शार्ङ्गरव—राजन्, आप क्यों चुप हैं?

१८२. राजा—हे तपोधन, सोच कर भी इनके ग्रहणकी बात मुझे याद नहीं आती। फिर कैसे प्रकट गर्भिणी इनके प्रति अपनेको क्षेत्री बनाऊं।

१८३. शकुन्तला—(एकान्तमें) व्याहके विषयमें भी आर्यको सन्देह है? अब कहाँ से मैं दूरवाली सीढ़ीकी आशा कर सकती हूँ?

१८४. शार्ङ्गरव—ऐसा मत कहो—

(तुमसे) अपनी सुताको संबंधित मानते (उस) मुनिको अपमानित न करो। जिसने चुराये धनको चोरको देते तुम्हें पात्र बनाया ॥२०॥

१८५. शारद्वत—शार्ङ्गरव, जरा तुम ठहरो। शकुन्तले, जो कहना था, हमने कह दिया। और आप ऐसा कह रहे हैं। इन्हें विश्वास दिलाओ।

१८६. शकुन्तला—(एकान्तमें) उस तरहके अनुरागके उलट जाने पर याद करानेसे क्या? मुझे अब अपनेपर शोक करना है, यही निश्चित है। (प्रकट) आर्यपुत्र, (आधा ही कहकर, विवाहके संदिग्ध होनेपर यह संबोधन ठीक नहीं) पुरु-संतान, पहले आश्रममें स्वभावतः सरल हृदयवाले इस जनको प्रतिज्ञापूर्वक वंचित कर ऐसे शब्दों द्वारा प्रत्याख्यान करना तुम्हारे लिये उचित नहीं है।

१८७. राजा—(दोनों कानोंपर हाथ रखकर) शान्त पापम् क्या (मेरी) कीर्तिको मलिन करना और इस जनको गिराना चाहती हो। जैसे किनारा तोड़नेवाली नदी निर्मल जल और तटके वृक्षको (गिराती है) ॥२१॥

१८८. शकुन्तला—भवतु। यदि परमार्थतः परपरिग्रह-शंकिना त्वयैवं वक्तुं प्रवृत्तं, तदभिज्ञानेनानेन तवाशंका-मपनेष्यामि।
राजा—उदारः कल्पः।

१८९. शकुन्तला—(मुद्रास्थानं परामृश्य) हा धिक्। अंगुलीयकशून्या मेंऽगुलिः। (इति सविषादं गौतमीमवेक्षते)।
गौतमी—नूनं ते शक्रावताराभ्यन्तरे शचीतीर्थसलिलं वन्दमानायाः प्रभ्रष्टमंगुलीयकम्।

—अंकः ५

(२) **अभिज्ञान-लाभः**

(ततः प्रविशति नागरिकः श्यालः, पश्चाद्बद्धपुरुषमादाय रक्षिणौ च)

१९०. रक्षिणौ—(ताडयित्वा) अरे कुम्भीरक, कथय कुत्र त्वयैतन्मणिबन्धनोत्कीर्णनामधेयं राजकीयमंगुलीयकं-मासादितम्?
पुरुषः—(भीतिनाटितकेन) प्रसीदन्तु भावमिश्राः। अहं नेदृशकर्मकारी।

१९१. प्रथमः—किं शोभनो ब्राह्मण इति कलयित्वा राज्ञा प्रतिग्रहो दत्तः?
पुरुषः—शृणुतेदानीम्। अहं शक्रावताराभ्यन्तरवासी धीवरः।

१९२. द्वितीयः—पाटच्चर, किमस्माभिर्जातिः पृष्ठा?
उभौ—यदावुत्त आज्ञापयति, कथय।

१८८. शकुन्तला—अस्तु, यदि पराईके स्वीकारके भयसे तुम वस्तुतः ऐसा कहते हो, तो इस अभिज्ञान से तुम्हारी शंका मिटाती हूँ।

राजा—बहुत ठीक।

१८९. शकुन्तला—(अंगूठीके स्थानको छूकर) हा धिक्, मेरी अंगुली में अंगूठी नहीं है। (यह कह खिन्न हो गौतमीको देखती है)।

गौतमी—निश्चय, शक्रावतारमें शची तीर्थकी वंदना करते तेरी अंगूठी गिरी होगी।

—अंक ५

(प्रवेशक)

२. स्मारक अंगूठी का लाभ

(कोतवाल हाथ पीछे बंधे पुरुष और दो पुलिस सिपाहियोंको लेकर प्रवेश करता है।)

१९०. दोनों सिपाही—(पीटकर) अरे चोर, बता यह नामांकित राजकीय अंगूठी तूने कहाँ पाई?

पुरुष—(भयका अभिनय करते) हुजूर, दया करें। मैं ऐसा काम करनेवाला नहीं हूँ।

१९१. प्रथम सिपाही—तो क्या भला ब्राह्मण समझकर राजाने (इसे) तुझे दान दिया।

पुरुष—सुनिये अब। मैं शक्रावतारमें रहनेवाला धीवर हूँ।

१९२. दूसरा सिपाही—लुटेरे, क्या हमने तुझसे जाति पूछी?

कोतवाल—सूचक, इसे सब कहने दो, बीचमें मत टोको।

१९३. पुरुषः —अहं जालोद्गालादिभिर्मत्स्यबाधनोपायैः कुटुम्बभरणं करोमि। एकस्मिन्दिवसे खण्डशो रोहितमत्स्यो मया कल्पितो, यावत् तस्योदराभ्यन्तर इदं रत्नभासुरमंगुलीयं दृष्ट्वा पश्चादहं तस्य विक्रयाय दर्शयन्गृहीतो भावमिश्रैः। मारयत वा मुंचत वा, अयमस्यागमवृत्तान्तः।

१९४. श्यालः —जानुक, विस्रगन्धी गोधादी मत्स्यबन्ध एव निःसंशयम्। अंगुलीयकदर्शनमस्य विमर्शयितव्यम्। राजकुलमेव गच्छामः

रक्षिणौ—तथा। गच्छ अरे गण्डभेदक।

(सर्वे परिक्रामन्ति)

१९५. श्यालः —सूचक, इमं गोपुरद्वारेऽप्रमत्तौ प्रतिपालयतं यावदिदमंगुलीयकं यथागमनं भर्तुर्निवेद्य ततः शासनं प्रतीक्ष्य निष्क्रमामि

१९६. उभौ—प्रविशत्वावुत्तः स्वामिप्रसादाय

(इति निष्क्रान्तः श्यालः)

प्रथमः —जानुक, चिरायते खल्वावुत्तः।

द्वितीयः —नन्ववसरोपसर्पणीया राजानः।

१९७. प्रथमः —जानुक, प्रस्फुरतो मम हस्तावस्य वधार्थं सुमनसः पिनद्धुम् (इति पुरुषं निर्दिशति)।

१९८. पुरुषः —नार्हति भावोऽकारणमारणं भावयितुम्।

द्वितीयः —(विलोक्य) एष नौ स्वामी पत्रहस्तो राजशासनं प्रतीक्ष्येतोमुखो दृश्यते। गृध्रबलिर्भविष्यति, शुनो मुखं वा द्रक्ष्यसि।

(प्रविश्य)

१९३. पुरुष—मैं जाल फेंकने आदि मछली फंसानेके उपायोंसे कुटुम्बका पोषण करता हूँ। एक दिन रोहू मछलीको मैं खंड-खंड काट रहा था। उसी समय उसके पेटके भीतर इस रत्न जैसी प्रकाशमान अंगूठीको देखकर फिर मैं बेचनेके लिये इसे दिखला रहा था, तभी हुजूर लोगोंने मुझे पकड़ लिया। मारिये या छोड़िये, इसकी प्राप्तिकी यही बात है।

१९४. कोतवाल—जानुक यह निस्सन्देह विसाइन बसाता गोह-भक्षक धीवर है। अंगूठी कैसे पाया, यह सोचना है। दरबारमें ही चलते हैं।

दोनों सिपाही—ठीक, चल रे पाकेटमार।

(सब परिक्रमा करते हैं)

१९५. कोतवाल—सूचक, दरबारके फाटकपर इसे सावधानीसे तब तक रक्खो, जब तक कि अंगूठी कैसे प्राप्त हुई, इसके बारेमें स्वामीको निवेदन कर उनसे आज्ञा लेकर मैं न आजाऊँ।

१९६. दोनों सिपाही—बाबू, स्वामीकी कृपा पानेके लिये प्रवेश करें।

(कोतवाल निकल गया)

प्रथम सिपाही—जानुक, बाबू देर कर रहे हैं।

दूसरा सिपाही—राजा लोगोंके पास अवसर पाकर ही पहुंचना होता है।

१९७. प्रथम सिपाही—जानुक, वध के लिये इसपर फूल बांधनेके वास्ते मेरे हाथ फड़क रहे हैं।

(ऐसा कहते पुरुषकी ओर इशारा करता है।)

१९८. पुरुष—हुजूर, अकारण मरवाना नहीं चाहिये।

दूसरा सिपाही—(देखकर) यह हमारे स्वामी हाथमें पत्र लिये राजाज्ञा पा इधर ही आते दिखाई दे रहे हैं। रे, (अब) तू गिद्धोंको बलि होगा, या कुत्तेका मुंह देखेगा।

(प्रवेश करके)

१९९. श्यालः—सूचक, मुच्यतामेष जालोपजीवी। उपपन्नः खल्वंगुलीयस्यागमः।
सूचकः—यथावुत्तो भणति।
द्वितीयः—एष यमसदनं प्रविश्य प्रतिनिवृत्तः। (इति पुरुषं परिमुक्तबन्धनं करोति)।

२००. पुरुषः—(श्यालं प्रणम्य) भर्तः, अथ कीदृशो म आजीवः ?
श्यालः—एष भर्त्रंगुलीयकमूल्यसंमितः प्रसादोऽपि दापितः (इति पुरुषाय स्वं प्रयच्छति)।

२०१. पुरुषः—(सप्रणामं प्रतिगृह्य) भर्तः, अनुगृहीतोऽस्मि
सूचकः—एष नामानुग्रहो यच्छूलादवतार्य हस्तिस्कन्धे प्रतिष्ठापितः।
जानुकः—आवुत्त, परितोषं कथय। तेनांगुलीयकेन भर्तुः संमतेन भवितव्यम् ?

२०२. श्यालः—न तस्मिन्महार्हं रत्नं भर्तुर्बहुमतमिति तर्कयामि। तस्य दर्शनेन भर्तुरभिमतो जनः स्मारितः। मुहूर्तं प्रकृतिगम्भीरोऽपि पर्युत्सुकनयन आसीत्।

२०३. सूचकः—सेवितं नामावुत्तेन।
जानुकः—ननु भण। अस्य कृते मात्स्यिकभर्तुरिति (इति पुरुषमसूयया पश्यति)।

२०४. पुरुषः—भट्टारक, इतोऽर्धं युष्माकं सुमनोमूल्यं भवतु।
जानुकः—एतावद्युज्यते।

२०५. श्यालः—धीवर, महत्तरस्त्वं प्रियवयस्यक इदानीं मे संवृत्तः। कादम्बरीसाक्षिकमस्माकं प्रथमसौहृदमिष्यते। तच्छौण्डिकापणमेव गच्छामः।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

—अंकः ६

१९९. कोतवाल—सूचक, धीवरको छोड़ दो। अंगूठी (जैसे) मिली (वह) ठीक है।

सूचक—जैसी बाबूकी आज्ञा।

दूसरा सिपाही— यमराजके घरमें पहुँचकर यह लौट आया।

२००. पुरुष—(कोतवालको प्रणाम कर) स्वामी, तो कैसा रहा मेरा पेशा?

कोतवाल—स्वामीने अंगूठीके मूल्यके बराबर यह इनाम दिलवाया है। (पुरुषको धन देता है)।

२०१. पुरुष—(प्रणाम सहित ले कर) मालिक, बड़ा अनुगृहीत हूँ।

सूचक—इसीको अनुग्रह कहा जाता है, जो सूलीसे उतारकर हाथी के कन्धेपर बैठाना।

जानुक—बाबू, इनाम की बात कही। वह अंगूठी स्वामीको बहुत प्रिय होगी।

२०२. कोतवाल—मैं समझता हूँ, महार्घ रत्न सोचकर वह स्वामीको प्रिय नहीं है, उसके दर्शनसे स्वामीको अपने प्रियजनकी याद हो आई। स्वभावतः गम्भीर भी स्वामी क्षणभर कातर-नयन हो गये।

२०३. सूचक—तो बाबूने सेवा बजा दी।

जानुक—तो बतलाओ, इसके बारेमें धीवरको (पुरुषको ईर्ष्यासे देखता है)।

२०४. पुरुष—भट्टारक, इसका आधा तुम लोगोंके लिये फूलका दाम रहे।

जानुक—इतना ठीक है।

२०५. कोतवाल—धीवर महतो, तू अब मेरा प्रिय मित्र हो गया। पहिला शुभ कार्य, हमारा शराबसे मित्र बनना ठीक है, सो कलालकी दूकानमें चलें।

(सब निकल गये)

—अंक ६

२१. कुमारदास (५०० ई० पू०)

यह सिंहलके राजा थे, जिनकी मृत्यु ५२४ ई० में हुई थी। सिंहल-परंपरा कुमारदासको कालिदासका समकालीन और प्रिय मित्र बतलाती है और यह भी, कि किसी वेश्याने लोभके कारण कालिदासको मार डाला। जब इसकी खबर कुमारदासको लगी, तो महाकविकी चितामें राजाने भी अपनेको जला दिया। इस कथामें जितनी मात्रामें भावुकता है, उतनी सत्यता नहीं। तो भी कालिदाससे एक शताब्दी बाद पैदा हुए कुमारदास उनके बहुत ही भक्त थे। बृहत्तर भारतके यव, कम्बुज आदि देशोंमें संस्कृतका बहुत मान था। वहां उसके अनेक पंडित भी हुए। अच्छे कवि

जानकीहरणम्

(१) अयोध्या

१. आसीदवन्यामतिभोगभाराद् दिवावतीर्णा नगरीव
दिव्या ।
क्षत्रानलस्थानशमी समृद्धया, पुरामयोध्येति पुरी
पराध्या ॥१॥

२. यत्सौधशृंगाग्रसरोजराग-रत्नप्रभाविच्छुरितः शशांकः ।
पौरांगनावक्त्रकृतावमानो, जगाम रोषादिव लोहि-
तत्वम् ॥२॥

३. कृत्वाऽपि सर्वस्य मुदं समृद्ध्या, हर्षाय नाभूदभिसा-
रिकाणाम् ।
निशासु या कांचनतोरणस्थ-रत्नांशुभिर्भिन्नत-
मिस्रराशिः ॥३॥

४. चीनांशुकैरञ्चितमुदग्र,-शृंगाग्रभागोपहितैर्गृहाणाम् ।
वितंसकोतिस्खलितेन्द्रसूत्र,-निर्मोकपट्टैरिव
याऽवभासे ॥४॥

२१. कुमारदास (५०० ई०)

भी हुए होंगे, लेकिन सिंहलके इस महान् कविको ही भारतमें पूरी प्रतिष्ठा मिली। इसकी सूक्तियोंको हमारे साहित्यकारोंने उद्धृत किया, और "जानकीहरण" का नाम बड़ी इज्जतके साथ लिया गया। राजशेखर (दसवीं शताब्दी) के अनुसार यह कालिदासकी शैलीके माननेवाले थे। "जानकीहरण" भारतसे लुप्त हो गया, लेकिन सौभाग्यसे सिंहलमें सिंहली भाषामें उसकी एक टीका मिल गई, जिसमें व्याख्या करते समय मूल पद उद्धृत किये गये थे। इन्हीं पदोंको जोड़कर "जानकीहरण" का उद्धार इन पंक्तियोंके लेखकके गुरु श्री धर्मानन्द महास्थविरके गुरु श्री धर्माराम महास्थविरने किया।

जानकीहरण

१. अयोध्या-वर्णन

१. अत्यन्त भोगों सहित स्वर्गलोकसे पृथ्वीपर उतरी दिव्य नगरीसी, क्षत्रियरूपी अग्नि-स्थानकी शमीसी, पुरियोंमें समृद्ध अयोध्या नामक नगरी थी ।।१।।

२. जिसके महलोंके शिखरोंके अग्रभागपर स्थित पद्मराग-मणिकी प्रभासे प्रतिबिंबित चन्द्रमा, मानो नगर की अंगनाओंके मुखोंसे पराजित हो कोपसे लाल हो गया ।।२।।

३. अपनी समृद्धिसे सबको आनन्दित करके भी वह नगरी अभिसारिकाओं को हर्षदायक नहीं हुई; (क्योंकि) रातको सोनेके तोरणोंमें अवस्थित रत्नोंकी किरणोंसे वहाँ अन्धाकार-समूह नष्ट हो जाता था ।।३।।

४. आकाशचुम्बी गृहोंके ऊँचे शिखरोंके अग्रभागपर रक्खे, वेदीके छोरपर खिसके, इन्द्र निर्मित केंचुल जैसे वस्त्रोंसे जो प्रकाशित थी ।।४।।

५. दिदृक्षुरन्तः सरसीमलंघ्यं, यत्खातहंसः समुदीक्ष्य वप्रम्।
सस्मार नूनं दृढक्रौंचकुंज,-भागच्छिदं भार्गवमार्गणस्य ॥५॥

६. रथ्यासु यस्यां रदिनो गृहाणा,-मादर्शभिन्नं कृतबध्यघाताः।
स्वबिंबमालोक्य ततं प्रमाणं, चक्रुर्मदामोदमरिद्विपानाम् ॥६॥

७. लग्नैकभागं सितहर्म्यशृंगे, विकृष्य मन्देन समीरणेन।
दीर्घीकृतं बालमृणालशुभ्रं, करोति यंत्रध्वजकृत्यमभ्रम् ॥७॥

८. यस्यां युवत्यो विहिता विधात्रा, रत्नैरिवापूर्वपुषः प्रकर्षम्।
प्रवालशीर्षी वदनं सुवर्णं, मुक्तामयांगावयवान्वहन्त्यः ॥८॥

९. आलिंग्य तुंगं वलभीविटंकं, विश्राणितात्मध्वनिपुष्करेषु
यत्सौधकान्तेरिव संविभागं, वव्रे सितं शारदमभ्रवृन्दम् ॥९॥

१०. प्रभाविवृत्तिर्विततता पताका,-स्वासन्नजीमूतघटासु यस्याम्।
विद्युन्निभा कांचनपिंजरासु, ततान तोषं शिखिनामुदग्रम् ॥१०॥

—सर्गः १

५. जिसकी परिखाका हंस, सरोवरके भीतर देखनेके इच्छुक अलंघनीय प्रकारको ऊपर देखकर, भार्गवके वाणके दृढ़ क्रौंच-कुंजके भागका छेदना याद करता था ।।५।।

६. जिसकी सड़कोंपर के हाथी घरोंके दर्पणमें निकले अपने प्रतिबिंबको देखकर बंध्य घात किये गज शत्रुओंके गजोंके मदकी गन्ध का पता पाते ।।६।।

७. सफेद महलके शिखरके एक छोरपर फंसा, मन्द वायुसे खिंचा, नव मृणाल जैसा श्वेत लम्बा बना मेघ, पताकेका काम देता था ।।७।।

८. जहाँ ब्रह्माने युवतियोंको रत्नोंकी तरह सुन्दर शरीर, मूंगे जैसे सिरवाले सुनहले मुख, मुक्तामय शरीरावयव वाली बनाया ।।८।।

९. अटारीकी ऊँची वेदीका आलिंगन कर, पोखरोंमें अपनी ध्वनिको बांट कर, शरत्कालके श्वेत मेघने जिसके महलोंकी कान्ति को स्वीकार सा किया ।।९।।

१०. जिस नगरीमें समीपस्थ मेघकी घटाओं में बिजली-सी पताकाओंमें फैली प्रभाने, सोनेके पिंजड़ोंमें स्थित मोरोंको बहुत प्रसन्न किया ।।१०।।

—सर्ग १

(२) वसन्तः

११. अथो वसन्तः सुमनस्समृद्ध्या, पूर्वावतीर्णो भुवनं ततान।
तस्य श्रियः प्राणसमस्य सम्यग्, ज्ञात्वा विवक्षामिव मर्त्यधाम ॥१॥

१२. भ्रान्त्वा विवस्वानथ दक्षिणाशां, आलंब्य सर्वत्र करप्रसारी।
ऋद्धिविक्ततो निःस्व इव प्रतस्थे, यत्रोपलब्धौ धनदस्य वासः ॥२॥

१३. रूपं वितेनुर्नवकुड्मलाढ्याः, वृक्षा मनोज्ञद्युतिचंपकाख्याः
न्यस्ता वसन्तस्य वनस्थलीभिः, सहस्रदीपा इव दीप-वृक्षाः ॥३॥

१४. संपिडितात्मावयवा उदीयुः, पद्मानवाः कंटकितोर्ध्व-दंडाः।
अन्तर्जलावासविरूढशीत,-त्रस्ता वसन्तातपका-म्ययैव ॥४॥

१५. कर्णे कृतो दीर्घविलोचनानां, आलोलदृष्टिद्युति-भिन्नरागः।
बालोऽप्यशोकप्रभवः प्रवालः, कान्तिं प्रपेदे परि-णामगम्यम् ॥५॥

१६. प्रादुर्बभूवुर्नवकुड्मलानि, स्फुरन्ति कान्त्या करवीरजानि
प्रवासिनां शोणितपाटलानि, नीरीफलानीव मनो-भवस्य ॥६॥

१७. वन्ध्योपि सालक्तकपादघातं, लब्ध्वा रणन्नूपुरमंग-नानाम्
उद्भूतरोमांच इवातिहर्षात्, पुष्पांकुरैरास नवैर-शोकः ॥७॥

२. वसन्त-वर्णन

११. तब वसन्त फूलोंकी समृद्धिके साथ पहले उतरकर भुवनमें फैल गया। उसकी प्राणसम शोभाको भली प्रकार जानकर मर्त्यलोक में रहनेकी इच्छासे मानो ॥१॥

१२. सूर्यने दक्षिणायन भ्रमणकर सर्वत्र किरणोंको बिखेर, अधिक दानसे मानो धनहीन हो, कुबेरका जहाँ वास है, वहाँ उसे पानेके लिये प्रस्थान किया ॥२॥

१३. मनोहर द्युतिवाले चम्पक वृक्ष नवीन कलियोंसे समृद्ध हो सौन्दर्य बढ़ा रहे थे। वनस्थलियोंने वसन्तके हजार दीपवाले झाड़को मानो स्थापित किया था ॥३॥

१४. अपने शरीरको संकुचित किये, कण्टकित ऊपरी नालवाले, नवीन पद्म उगे थे। मानो जलके भीतर वास करनेसे बढ़ी सर्दीसे डरकर वसन्तकी धूपकी कामनासे ही (यह कह रहे थे) ॥४॥

१५. विशाल-नेत्रियोंके कानोंमें स्थापित अशोकसे मूंगारूपी नव-अंकुरने चंचल नेत्रकी आभासे रंगसे मिश्रित हो उनकी कान्तिको धारण किया ॥५॥

१६. करवीरकी नवीन कलियाँ प्रादुर्भूत हुईं, अपनी कान्तिसे चमकने लगीं। मानो कामदेवके लाल नोकीले फल विरहियोंके रक्तसे रंजित हैं ॥६॥

१७. वन्ध्या होते भी अंगनाओंके झँकृत नूपुरवाले गहानर सहित पैरोंके आघातसे, मानो वन्ध्या अशोक अति हर्षसे नवीन पुष्पांकुरोंके मिससे रोमांचित है ॥७॥

१८. महीध्रमूर्ध्नि भ्रमरेंद्रनीलै,-र्विभक्तशोकः शिखि-
कंठनीलैः ।
गृहीतभास्वन्मुकुटानुकारः, ततान कान्तिं नवकर्णि-
कारः ॥८॥

१९. वासंतिकस्यांशुचयेन भानोर्, हेमन्तमालोक्य हतप्रभावम्
रम्यं जहासे धृतकंटकेन, प्रीत्या वनेनेव सरोरुहाणाम् ॥९॥

२०. समीरणानर्तितमंजरीके, चूते निसर्गेण निषक्तभावाः ।
पुष्पावतंसेषु पदं न चक्रु,-र्दीप्तेष्विवाशोकवनेषु
भृंगाः ॥१०॥

२१. विनिद्रपुष्पाभरणः पलाशः, समुल्लसन् कुन्दलतावनद्धः ।
उद्भूतभस्मा मधुनेव रेजे, राशीकृतो मन्मथदाह-
वह्निः ॥११॥

२२. वसन्तदीप्तातपखेदितानां, महीरुहां वातचलाः प्रवालाः ।
जिह्वा यथा विद्रुमभंगताम्रा, निष्कासिता रेजुरति-
श्रमेण ॥१२॥

२३. प्रालेयकालप्रियविप्रयोग,—ग्लानेव रात्रिः क्षय-
माससाद ।
जगाम मन्दं दिवसो वसन्ते, क्रूरातपश्रान्त इव
क्रमेण ॥१३॥

२४. ततःस्मरस्याहवधामकल्पं,क्षोणी (गत) भ्रान्तशिलीमुखा-
कम् । उद्यानमासेवत रक्तदीप्ति,— सन्तानभास्वत्-
करवीरकीर्णम् ॥१४॥

२५. रम्याणि रामानुगताविभंग,—पक्षानिलानर्तितपल्लवानि ।
उद्भ्रांतभृंगाणि लतागृहाणि, संभावयामास रहो
विहारैः ॥१५॥

१८. पर्वतके शिखरपर भंवरों, मोरके कण्ठों-जैसे नीले गहरे नीलम द्वारा शोक-रहित सूर्यके मुकुटका अनुकरण करनेवाला नवीन कर्णिकार कान्तिका प्रसार कर रहा था ।।८।।

१९. वसन्तकालके सूर्यकी किरणोंसे हेमन्तको अशक्त देख कर, कमलोंके कण्टकित वनसे प्रसन्न होकर मानो (वसन्त) हंस रहा था ।।९।।

२०. वायुसे नाचती मंजरीवाले आम्रमें स्वभावतः आसक्ति रखनेवाले भंवरे, अशोक-वनोंको प्रज्ज्वलित (अग्नि) सा समझ फूलोंके ऊपर पैर नहीं रखते थे ।।१०।।

२१. अंङहुल-कुसुमसे भूषित, कुन्दकी लतासे बद्ध, उल्लसित पलाश, कामदेवकी दाह-अग्नि की राशिसे उठी मधुर भस्मसा शोभित (हो रहा) था ।।११।।

२२. वसन्तकी उद्दीप्त धूपसे खिन्न, हवा से चलते वृक्षोंके पल्लव, जान पड़ते थे, मानो (वह) अत्यन्त श्रमके कारण अपनी मूंगे सी लाल जिह्वायें निकाले हैं ।।१२।।

२३. प्रलयकालके प्रिय-वियोगसे खिन्न सी रात क्षीण हो गई, वसन्तमें क्रूर आतपसे पीड़ित-सा हो दिन धीरे-धीरे मन्द हो गया ।।१३।।

२४. तब कामदेवके युद्धके प्रकाश सा, मूंगसे भ्रमरोंके मुखोंके चिन्हवाला, लाल दीप्तियोंसे चमकते करवीरोंसे आकीर्ण-उद्यानका सेवन किया ।।१४।।

२५. रमणियोंके साथ हवासे नाचते पल्लवोंवाले, मस्त भृंगोंसे रम-णीय लतागृहोंमें वह एकान्त विहार करते थे ।।१५।।

२६. "त्वमप्रमादं कुरु नूपुरांघ्रौ, भर क्षणं कांचिनितंबभारम् ।"
इतीव तस्मिन् विहरन् नृपस्त्री–,कक्ष्या तुलाकोटि-
पुटैर्निनेदे ॥१६॥

२७. चिक्षेप बाला मुहुरर्धदृष्टिं, पत्यावनंगक्षतधैर्यवृत्तिः ।
दूरस्थपुष्पस्तवकावभंग–,व्याजेन सन्दर्शितबाहुमूलं । १७

२८. पत्या परस्याः प्रविधीयमाने, विलासवत्याश्चरणान्तरागे ।
अन्यत्र युक्तोऽपि बबन्ध रागं,लाक्षारसस्तत्प्रतिपक्षनेत्रे।१८

२९. पातुं सुदत्या वदनारविन्द–,मादाय दृष्टो ललनाभि-
रीशः ।
अपुष्परेणुव्यथितेऽपि तस्या–,श्चिक्षेप नेत्रे मुखगन्धवाहम्।१९

३०. पुष्पावभंगे निजहस्तकान्त्या, विन्यस्तरागं कठिनं पलाशम् ।
प्रवालकृत्ये विनियोजयन्ति, भर्त्रा परा सस्मितमालि-
लिंगे ॥२०॥

३१. स्निग्धद्विजाली रुचिरं प्रियंगु–,श्यामाद्युतिश्चारु-
तमालकान्ता ।
विभर्षि गन्धाहृतभृंगचक्रं, सन्माधवीमंडपमेतदास्यम् ।२१।

३२. मध्ये ललाटं तिलकस्य वृत्ति–, रोष्ठद्युतिर्भाति च पाट-
लेयम् ।
पुन्नागसंयोगविभूषितायाः–,श्चेतःसमायातमशोक-
तांते ॥२२॥

३३. "किं कौतुकेन श्रमकारिणा ते, सृजत्वमुद्यानविहाररागम् ।
बाले त्वमस्योपवनस्य लक्ष्मी–" रित्येवमूचे ललना
सखीभिः ॥२३॥

३४. प्रियेण तन्व्या विनिवेशितस्य, कर्णे न चाशोकदलस्य राग
आनीलया नेत्ररुचा निरस्ता,–स्तस्या जगामैव विव-
र्णचक्षुः ॥२४॥

२६. "तू (अपने) नूपुरवाले चरणोंमें सावधानी रख, क्षणभर मेखलायुक्त नितम्बके भारको संभाल," यही कहते मानो वहाँ विहरते वह रानियोंकी करधनोंकी तुलाके पलड़ोंसे शब्द कर रहा था ॥१६॥

२७. कामदेवद्वारा धैर्य नष्ट हुई बालाने दूरस्थ फूलके गुच्छेके तोड़नेके बहाने अपने बाहुमूलोंको दिखाते क्षणभर पतिपर आधी नजर डाली ॥१७॥

२८. दूसरी ललनाके चरणपर पतिको राग करते देख, दूसरी जगह लगा महावर उसके रोषयुक्त नेत्रमें लग गया ॥१८॥

२९. सुन्दर दांतवालीका मुखकमल पीनेके इच्छुक राजा को, ललनाने देखा, तो पुष्परजसे अ-पीड़ित उसके नेत्रने मुखसे सुगन्धित सांस छोड़ी ॥१९॥

३०. फूल तोड़ते समय अपने हाथकी कान्तिसे कठिन पलासको रंगती जब वह, मूंगेकी कारीगरी कर रही थी, तभी स्वामीने मुस्कुरा कर दूसरीको आलिंगन किया ॥२०॥

३१. चिकने दन्त-[illegible] [illegible] श्यामल रुचिर द्युतिवाली, सुन्दर तमाल-सा कमनीया, गन्धस भृंगोंकी आकर्षिका, इस सुन्दर माधवी मंडप जैसा तेरा मुख है ॥२१॥

३२. ललाटके बीचमें तिलक और यह ओठोंकी लाल द्युति चमक रही है। पुन्नागके संपर्कसे विभूषित यह अशोकताके अन्तमें आ गया ॥२२॥

३३. "थकानेवाले कौतूहलसे तुझे क्या (लेना), तू उद्यान-बिहारकी लालसा छोड़। बाले, तू इस उपवनकी लक्ष्मी है", यही सखियोंने उस ललनासे कहा ॥२३॥

३४. तन्वंगीके कानोंमें लगाये प्रियके अशोक पल्लवका राग, नील-नेत्र किरणोंसे निरस्त और उसका नेत्र उलटा हो गया ॥२४॥

३५. विलोकयाक्ष्णोः शितिकान्तिजालै--,रदन्यया वारि-
विगाहितायाः ।
रक्तोत्पलं तन्निकटप्ररूढमिन्दीवरत्वंगमितं हरिण्यः ।।२८।।

(३) जलक्रीडा

३६. ततः सलीलं सलिलं विभिन्दन्, एवं वदन्नेव वरांगनाभिः ।
वृतो वृषेन्द्रोपमखेलगामी,स दीर्घिकां दीर्घभुजो जगाहे।।३२

३७. तस्योरसि क्षत्रकुलैककेतोस् , तरंगदोषा कमलाकरेण ।
न्यस्ता मुहुः पंकजरेणुपंक्तिः, सौवर्णसूत्रश्रियमाततान।।३३

३८. पद्माकरो वारि विगाहमानं, कामीव रामाजनमूरुदघ्नम् ।
वीची-कराग्रेण नितंबभागे, व्यास्फालयामास, शनैः
सशब्दम् ।।३४

३९. तस्यावगाहे वनिताजनस्य, दूरीकृतः पीननितंबचक्रैः ।
लब्धप्रवेशस्तनुपूदरेषु, स्तनैरुदासेऽथ सरस्तरंगः ।।३५।।

४०. क्रीडापरिक्षोभरयेण तासां, उत्सारिते पंकजरेणुजाले ।
कुसुम्भरक्तादिव कंचुकान्तं, कृष्टं बभासेऽम्बुरुहा-
करान्भः ।।३६।।

४१. निरुद्धहासस्फुरिताधरोष्ठः, सद्यः समाविष्कृतरोमहर्षः ।
जलावगाहप्रमदोपगूढै--,रुद्भासकस्तस्य बभूव गंडः।।४३।।

४२. फुल्लं यदीदं कमलं किमेवं, अत्रैव नीलोत्पलयोर्विकाशः ।
इत्यात्तशंको वदनं सुदत्या, हंसः सिषेवे न
सरस्तरन्त्याः ।।४४।।

४३. मत्स्येन चीनांशुकपृष्ठलक्ष्य--,कांचीमणिग्रासकुतूहलेन ।
आघ्राय मुक्तोपनितंबमेका, संत्रासभुग्नभ्रु चिरं
चकम्पे ।।४६।।

३५. देख, नेत्रोंकी श्वेत प्रभासे जल अवगाहित उदन्या से, उसके निकट उगा रक्त कमल, हरनियोंके लिये नीलकमल हो गया ॥२८॥

३. जलक्रीडा—

३६. तब लीला-सहित जलको फाड़ते वरांगनाओंसे घिरे, यह कहते महावृषभ समान खेलते वह दीर्घभुज, (राजा) दीर्घीमें अवगाहन करने लगे ॥३२॥

३७. उस क्षत्रिय-वंश-ध्वजके वक्षस्थलपर, तरंगित सरोवर द्वारा रक्खी, कमलरजकी पंक्तिने क्षण भर सुवर्ण-सूत्रकी शोभा धारण की ॥३३॥

३८. सरोवरमें जांघ भर जलमें अवगाहन करते, ललनाओंको कामीकी तरह, तरंगरूपी हाथसे नितम्ब स्थलपर शब्द-सहित हिलाया ॥३४॥

३९. वनिताओंके अवगाहन करते समय उनके स्थूल नितम्बोंसे दूर हटाई तरंगोंने, सूक्ष्म उदरोंमें प्रवेश करनेका अवसर पाई सरोवर-तरंगोंको स्तनोंने उछाल दिया ॥३५॥

४०. उनकी क्रीड़ाके चांचल्यके वेगसे कमलोंके केसर उड़ाये जानेपर, कुसुम्भसे लाल खिंचे कंचुकके छोरसा सरोवर-जल प्रकाशित हो उठा ॥३६॥

४१. रुके हाससे फरफराते अधरके वात से तुरन्त रोमांचित, जलमें मग्न कामिनियोंके आलिंगनसे उसका कपोल भासमान हुआ ॥४३॥

४२. "अगर यह कमल फूला है, तो क्यों न यहीं दो नीलकमल खिले," इस शंकासे हंसते सरोवरमें तैरती सुन्दरीने भ्रमरका रोकन नहीं किया ॥४४॥

४३. रेशमी वस्त्रयुक्त पीठपर दीखती कटिमेखलाकी मणिको खानेकी इच्छासे मछलीने, सूंघकर छोड़ दिया, इससे त्रस्त हो वह तिरछी भौंहे देखती देर तक काँपती रही ॥४६॥

४४. प्रियोऽपरस्या गलितान्तरीये, व्यापरायामास दृशो नितंबे
तद्धस्तयंत्रच्युतवारिधारा, नालं बभूवास्य मुखार-
विन्दे ॥४७।

४५. सायं समादाय निकामपीत--,सुप्तद्विरेफं मुकुलं
सरोजम्
काचित् तरास्फालितदीर्घदंडा, भर्तुर्भुवः कूजयतिस्म
कर्णे ॥५०।

४६. सरः सहंसं सहकामिनीभिर्, विभाय तुल्यो वृषबाहनस्य।
विभूषितो लंभितभूषणानि--,रध्यास्त सौधं वसुधाधि-
नाथः ॥६२॥

४७. विलासवत्यो मदघूर्णिलोचनाः, निरूपयन्त्यः शुचिरौ-
प्यभाजने।
स्थितस्य मुग्धा मधुनो न जज्ञिरे, स्वरूपमिन्दुप्रतिरूप-
गोपितम् ॥७४॥

४८. विधूयमाना अपि पूर्वमासवः, प्रवृद्धवामत्वमनस्यसाधितम्।
स्मरं नु तासां हृदये विलोचने, बबन्ध रागं नु मुखेऽनुसौ-
रभम् ॥७५॥

(४) **प्रबोधस्तुतिः**

४९. इति प्रबन्धाहितपानकातरं, प्रियां च तल्पे कथितं निशा-
त्यये
व्यबोधयन् मंगलवन्ति वन्दिनो, विधाय वाक्यानि विधा-
नृतं जयम् ॥७६॥

५०. जहीहि शयनमुद्गमस्य कालः, समुपयत्यनुरक्तमंड-
लस्य।
ध्रुवशिरसि कीर्णपादधाम्नो, भुवन इव क्षततामसस्य
भानोः ॥७७॥

४४. प्रियतमने दूसरीके हटे चादरवाले नितम्बके ऊपर नजर डाली, जिससे उसके हाथकी पिचकारीसे छूटी जल-धारा उसके मुखारविन्दपर शोभित नहीं हुई ।।४७।।

४५. सायंकालको खूब पीकर सोये भंवरसे युक्त कमलकी कलीको लेकर, कोई लम्बे दण्डको खूब हिलाती भूपतिके कानमें कूजन करती थी ।।५०।।

४६. कामिनियों सहित हंस-युक्त सरोवरको शंकरके समान विभासित कर, आभूषणोंसे अलंकृत हो वसुधानाथ महलपर बैठे ।।६२।।

४७. मद्यसे घूर्णित नेत्रोंवाली मुग्धा विलासवतियोंने शुद्ध रौप्य पात्रमें स्थित, चन्द्रमाके प्रतिबिंबसे छिपाये मद्यके रूपको नहीं जाना ।।७४।।

४८. उन्हें कंपित करते भी दूसरी सजावट के बिना बढ़े सौन्दर्यको स्मरण करते मद्यने पहिले उनके हृदय और नेत्रोंमें, फिर सुगन्धयुक्त मुखमें राग (लालिमा) प्रदान किया ।।७५।।

४. **प्रभातकी स्तुति—**

४९. इस प्रकार पानसे कातर शय्यापर सोये (राजा) और प्रियाको रात्रिके अन्तमें, वन्दियोंने मंगल-युक्त वचनोंको गाते जय करते जगाया ।।७६।।

५०. "हे, बिस्तर छोड़ें, भुवन के सिरपर किरण-प्रकाश बिखेरे, अन्धकार-नाशक रक्तमण्डल प्रभाके भवन जैसे सूर्यके उगनेका काल (अब) समीप है ।।७७।।

५१. विरामः शर्वर्या हिमरुचिरवाप्तोऽस्तशिखरम् ।
किमद्यापि स्वापस्तव मुकुलितांभोरुहदृशः ।
इतीवायं भानुः प्रमदवनपर्यन्तसरसीं ।
करेणाताम्रेण प्रहरति विबोधाय तरुतः ।।७८।।

५२. समुत्तिष्ठन्त्येते निगडकृतझंकारमपरं ।
शनैराकर्षन्तः करटनटलीनालिविततिं ।
निरस्यन्तो हेला विधुतपृथुकर्णान्तपवनैर्,
द्विपास्ते दन्ताग्रस्थितकरमुदस्याननतटम् ।।७९।।

५३. पादेनैकेन तिष्ठन् पटुपटहरवैर्बोधितस्ते मयूरः ।
पश्चात् पक्षेण सार्धं चिरशयनगुरुं पादमन्यं वितत्य ।
उत्फुल्लोद्धूतपक्षच्युतहिमकणिकावृष्टिरावातयष्ट्यां,
दृष्ट्वामार्तण्डधामोदयमुदितमुदोजृम्भते तांडवार्थी ।।८०।।

५४. पूर्वाद्रौ सूर्यपादे चरति विसृजता चन्द्रपादावदातं ।
कल्पं तेनानुचक्रे मलयतरुरसामोदितांसद्वयेन ।
उन्निद्रश्वेतपद्मप्रकरपरिकरच्छन्नवीचीवितानाद् ।
उद्यन् मन्दं सरस्तस्सलिलगुरुबृहत्पक्षतिर्मल्लि
काक्षः ।।८१।।

—सर्गः २

(५) वर्षा

५५. अथ तत्र भूधरशिरस्यधिकां, समनुव्रजन् मनुकुलप्रभवः ।
विरहानलक्षततनुस्तनुतां, गमयांबभूव निवसन् दिव-
सान् ।।१।।

५६. अधिकुंजमस्य निपतद्धरितां, अनुरंजितः शुकमुख-
द्युतिभिः । खुरधूतधातुकनिकानिकरैः, तरुणायते परिण-
तोऽपि रविः ।।२।।

५१. रात्रिका अन्त हुआ, चन्द्रमा अस्ताचलके शिखरपर पहुँच गये मुकुलित कमल से नयनोंवाले क्या आज भी तेरा सोना (रहा) है। इसी तरह यह तरुण सूर्य बनितोद्यानकी छोरवाली पुष्करणी जगानेके लिये किंचित् लाल करों (किरणों)से प्रहार कर रहा है ॥७८॥

५२. यह तेरे गज दूसरे जंजीरोंकी झंकारको,
धीरेसे खींचते, गंडमें विलीन भंवरोंकी पांतीको,
कंपित बड़े कानोंके पवनसे अप्रयास हटाते,
दांतके छोरपर स्थित शुंडयुक्त मुखको ऊपर उठा रहे हैं ॥७९॥

५३. तुम्हारा मोर नगाड़ेकी जोरकी आवाजसे जगकर एक पैर पर खड़ा,
देर तक सोनेसे भारी हुये दूसरे पैरको पंखके साथ फैलाकर,
फुल्ल-कंपित पंखसे गिरे ओसकी बूंदोंकी वृष्टियुक्त यष्टिपर,
सूर्यके प्रकाशके उदयको देख मुदित हो नाचनेका इच्छुक उठकर
जम्हाई ले रहा है ॥८०॥

५४. उदयाचलपर सूर्यकी किरणोंके बिचरते समय, चन्द्रमाकी किरणों जैसे उज्ज्वल, कल्पको छोड़ते, चन्दनके रससे सुगन्धित दोनों कन्धों सहित, फूले श्वेत कमलके घेरेसे ढँकी लहरोंवाले, सरोवरके जलसे भारी, बड़े पक्षवाला हंस धीरेसे उठ रहा है ॥८१॥

—सर्ग २

५. वर्षा—

५५. तब वहाँ पर्वतके शिखरपर चलते बिरहानलसे क्षीण-शरीर, मनु-संतान (राम)ने अधिक क्षीण होते दिन बिताये ॥१॥

५६. इसके दौड़ते घोड़ोंकी शुन-मुख सी द्युतिवाले, खुरोंसे उठाई धातुकी कनिकाओंसे रंगा कुंजमें प्रौढ़ भी सूर्य तरुण हो रहा था ॥२॥

५७. इममातपे रविमणिप्रभव–,ज्वलनाभिदीपिततनुं सकलम् ।
शशिकान्तरत्ननिसृतै रजनी, शिशिरीकरोति पयसां निकरैः ॥१०॥

५८. प्रतिनाग इत्यवगतस्सरसी, मदहस्तिहस्तहतजर्जरितः ।
इह तत्प्रकोपहृतमुग्धतया, सलिलानि मुंचति यथा जलदः ॥११॥

५९. अवजित्य खर्ववपुषः शिखरैर्, हसतीव सोऽयमितरान-चलान् ।
स्फुटधातुलोहितदरीवदन–,स्थितहंसपंक्तिदशनद्यु-तिभिः ॥१२॥

६०. स्रुतधातुपंकिलतनुर्धरणी–,धरणक्षमो हरिवराहरुचम् ।
अयमुद्वहत्यभिमुखापतिते, दशनाकृतौ हिमरुचिः शकले ॥१३॥

६१. इह धातुसानुषु निषण्णदृशः शिरसि स्थितासितघना-वलिषु ।
मृगयोषितो जहति मुग्धधियो, दवकृष्णपद्धतिभयं न चिरम् ॥१४॥

६२. अधिगशृंमस्य रुचिभिः स्फुरित–,ग्रहवृन्दसक्तशिर-सस्तरवः ।
परिफुल्लनीपतरुषण्डरुचां, जनयन्ति चेतसि मदं शिखिनाम् ॥१५॥

६३. शिखरेषु पंकजमणिप्रकरे, द्युतिरंजितच्छदभृतो दधते ।
इह भूरिभूरुहलताततयः, समये गलेऽप्यरुणपल्ल-वताम् ॥१६॥

६४. अयमेष सोदकदरीवदन–,स्रुतधातुधौतकटकावयवः ।
प्रविभात्यसृक्सुपिशंगितनुर्, युधिदानवद्विप इव प्रहृतः ॥१७॥

५७. धूपमें सूर्य (-कान्त) मणिसे उत्पन्न अग्नि द्वारा दीप्त तनुवाले (राम) को, चन्द्रकान्त मणिसे निकले जलोंसे रात ठंडा करती थी ॥१०॥

५८. "यह प्रतिद्वंद्वी गज है" यह समझ मत्त गजके हाथके प्रहारसे जर्जरित सरोवर, यहाँ उसके प्रकोपकी ज्वाला हटानेके लिये मेघ सा जल छोड़ रहा है ॥११॥

५९. अपने शिखरोंसे खर्वशरीर दूसरे पहाड़ोंको जीतकर यह मानो धातुसे साफ लाल गुहामुखमें अवस्थित हंसोंकी पंक्तिरूपी अपने दांतोंकी द्युतिसे हंस सा रहा है ॥१२॥

६०. बहती (गेरु) धातुसे पंकिल-शरीर, पृथिवीके धारणमें समर्थ, सामने आ पड़े, दन्ताकार पाषाण-खंडोंमें यह सुवर्ण सा चमकता विष्णुके वराह-रूप सा है ॥१३॥

६१. यहाँ सिरपर अवस्थित काली मेघ-पंक्तियोंसे युक्त धातु-सानुओंपर बैठी, मुग्ध-बुद्धि हरिनियाँ वनाग्निके काले मार्गका भय देरतक नहीं छोड़ पातीं ॥१४॥

६२. इसके शिखरपर (अपनी) प्रभासे जगमगाते, फूले नीम-वृक्षके वनके शोभायुक्त वृक्ष, नक्षत्रोंमें लगे सिरवाले मोरोंके हृदयमें मस्ती उत्पन्न करते हैं ॥१५॥

६३. यहाँ कमल-मणियों वाले शिखरोंपर द्युतिसे रंगे पत्रोंको धारण करते भारी वृक्ष-लता-समूह समयके बीतनेपर भी लाल पल्लववाले हैं ॥१६॥

६४. यह यहाँ जलपूर्ण गुहाके मुखपर बहते गेरूसे धुले कटुवा अंगयुक्त, रुधिर जैसे लाल शरीरवाले, युद्धमें मरे दानव-राज सा दिखाई पड़ रहा है ॥१७॥

६५. अयमर्कतापिततनुः शशिनः, परिणीय सामृतकणानचलः।
पुनरुद्वहत्युरुदरीवदन–, स्रुतनिर्झरच्छलहृतः किर-
णान् ॥१८॥

६६. भृशमस्य गोपतिमणिप्रभव–,ज्वलदग्निदग्धविपिने
शिरसि।
चलनादुपाहितमसीमलिनं, वहतीव शीतकिरणैः
करणम् ॥१९॥

६७. स्रुतधातुलोहितममी जलदाः, अमितं निपीय सलिलं
सरसः।
अथ कल्पयन्त्यरुणकान्तिहृतः, स्थितसंध्यया परिगतं
गगनम् ॥२१॥

६८. परिधावतः शिखरिणः शिखरे, वत दन्तिनः प्रतिरिपु-
द्विरदम्।
पवनैरसावुपहितो वदने, जलदः क्षणं मुखपटो
भवति ॥२२॥

६९. गजभिन्नगैरिकरसारुणिताः, सितपंकजैरनुगतास्सरितः।
नवबद्धरक्तवसनाकृतयः, प्रविभान्त्यमूर्गिरिनितंब-
गताः ॥२३॥

७०. शिखरैकभागनिरतः पवनै–, रुपनीयतेऽयमुदधिं जलदः।
अवगाहपानविषये समदः, प्रविमुच्य वृक्षत इव
द्विरदः ॥२४॥

७१. रदनक्षतक्षितिधरक्षतज–, स्रवसन्निभैरुषिता रदिनः।
कटकेषु धातुभिरिमे दधते, तरुणारुणावृतपयोद-
रुचः ॥२५॥

७२. इति भास्वतः सुतवरे वदति, न्यपतत् पयोधरपथादभित-
मधुकाननं हृतमधु प्रसभं, प्रविधाय वेदितधृतिर्हनु-
मान् ॥२६॥

६५. सूर्यसे शरीर तपाया यह पर्वत चन्द्रके अमृत-कणोंको पीकर, विशाल गुहाके मुखपर बहते चश्मेके व्याजसे फिरसे किरणोंको धारण कर रहा है।।१८।।

६६. सूर्यकान्त मणिसे उत्पन्न प्रज्ज्वलित अग्निसे दग्ध वनोंवाले इसके शिखरपर, चलनेसे मसी जैसे काले अंगको शीघ्र ठंडी किरणोंद्वारा वहन सा कर रहा है।।१९।।

६७. सरोवरसे बहती (गेरु) धातुसे लाल जलोंको अत्यधिक पी, लाल हो, उपस्थित सन्ध्यासे मेघ आकाशको व्याप्त करते हैं।।२१।।

६८. पर्वतके शिखरपर शत्रु-गजके सामने दौड़ते हाथीका, वायुसे आनीत मेघ, क्षण भरके लिये (गज का) मुखपट बन जाता है।।२२।।

६९. हाथियोंसे तोड़े गेरुके रससे लाल, सफेद कमलोंसे युक्त नदियाँ, पर्वत-नितम्बमें नये बंधे लाल वस्त्र सी सोहती हैं।।२३।।

७०. शिखरके एक भागमें लग्न इस मेघको, वायु समुद्रके पास ला रहे हैं। मानो वृक्षसे खोलकर नहाने और पिलानेके लिये मस्त हाथी जा रहे हैं।।२४।।

७१. दांतसे क्षत पर्वतके घावसे निकलती धाराओं द्वारा लाल रंगे ये हाथी, धातुओं द्वारा कटकोंमें तरुण-अरुण आच्छादित मेघका रूप धारण कर रहे हैं।।२५।।

७२. इस प्रकार सूर्यके श्रेष्ठ पुत्र (राम) के कहते समय, सामने मेघ-मार्गसे मधुर मनको बलात् मधु-वंचित कर, प्रकट धैर्यवाले हनुमान उतर पड़े।।२६।।

७३. रविदग्धपक्षतियुगं विहगं, प्रतिपद्य रावणगमे विदिते।
मकराकरं सपदि लंघयितुं, मलयादगामथ महेन्द्र-
नगम् ॥२९॥
—सर्गः १३

(६) सागरसेतुः

७४. नियतमेष पयोधिमहाधिपः, पिबति सर्वमसंख्यगुहामुखैः।
इति चिराय सविस्मयमीक्षितो, नृपसुतेन समीरण-
नन्दनः ॥२३॥

७५. अथ ससर्प ससर्ज वनाकुलं, द्युतिमदभ्रमदभ्रमदद्विपम्।
भयसरोगसरोगतपन्नगं, पथि घनस्य घनस्यदना-
दितम् ॥२४॥

७६. तटयुगानतवारिदपक्षतिर्, गुरुदरीमुखलंबितपन्नगः।
अनुचकार पतत्पतिमुत्पतन्, फणधरोद्धरणे धरणी-
धरम् ॥२५॥

७७. अभिहतो गिरिणा वडवानल-प्रबलरोषधरो जलधिद्विपः।
रचयतिस्म सुवेलमहातरौ, नियमितस्थित एव गता-
गतम् ॥२७॥

७८. उपलसंकटकैः कटकैस्ततः, कपिबलेन नगाननगान्नगाः।
पथि रवे रविना रवितांडवाः, कृतरवं समुदा समुदा-
सिरे ॥२८॥

७९. हतसमुत्पतितोदकसन्तति–,स्फटिकदंडयुतंक्षणमाबभौ।
किरणमौक्तिकजालवृतं सदा, सकलचन्द्रसितातप-
वारणम् ॥३०॥

८०. प्रथमसमुद्गतवारिततिःपतद्, गिरितटाहतकोटिरुदन्वतः।
क्षणमरोचत वृष्टिषु बिभ्रतो, भुज इवाद्रिवरं सुर-
विद्विपः ॥३१॥

७३. सूर्य द्वारा जलाये पंखोंवाले पक्षी (संपाती) से रावणके गमनको जान लेने पर (राम) तुरन्त सागरको लांघनेके लिए मलयगिरिसे महेंद्रगिरिपर पहुंचे ॥२९॥

—सर्ग १३

६. सागर-सेतु—

७४. निश्चय ही यह पयोधि-राज असंख्य गुहा-मुखोंसे सबको पीता है, यह सोचते राजपुत्रने पवन-पुत्रके साथ देर तक विस्मयसे (समुद्रको) देखा ॥२३॥

७५. तब प्रकाशमान मेघके अति मदसे मस्त गज वाले, भयसे रुग्ण सरोवरस्थित सांपवाले वनोंको, मेघ-मार्गपर मेघके चलनेसे निनादित पाया और छोड़ा ॥२४॥

७६. दोनों तटोंपर झुके मेघ-पंखोंवाले, भारी गुहा-मुखपर लटकते सर्पसे हनूमान्, सांप उठानेमें पक्षिराजसे उड़ते पर्वतसे जान पड़ते थे ॥२५॥

७७. पर्वत द्वारा कहे जाने पर बड़वानल जैसे प्रबल रोजको धारण करने-वाला समुद्ररूपी गज, नियमित रूपसे खड़ा ही सुबेल रूपी महावृक्ष पर गमनागमन करता था ॥२७॥

७८. पाषाण-समूहवाले कटकोंसे विस्तृत, कपि-सेना द्वारा पर्वतके मुख-शरीरपर स्थित, सूर्यके मार्गपर सूर्यके साथ शब्द करते आनंदके साथ उड़े ॥२८॥

७९. आहत होकर उछला जल क्षण भर स्फटिक-दंडसे युक्त सा, सदा पूर्णचन्द्रसे श्वेत छत्रयुक्त किरणरूपी मोतियोंके जालसे आच्छादित भासित हुआ ॥३०॥

८०. पर्वतके तटपर आहत छोरवाली सागरकी ऊपर उठी गिरी, जल-संचित पहले वृष्टिमें श्रेष्ठ (गोवर्धन) पर्वत-धारी कृष्णकी भुजाकी तरह क्षण भर शोभित हुई ॥३१॥

८१. अथ निरीक्ष्य चिरं हरिचेष्टितं, सपदि बन्ध्यमबन्ध्य-
पराक्रमः।
इदमुवाच गभीरतया जित--,क्षुभितसिन्धुरवं नृवरो
वचः ॥४५॥

८२. इह गिलन्ति तिमिंगिलपंक्तयः, क्षुभितसम्पतितास्ति-
मिशंकया।
सलिलधौ तिमितं तिमितं नगं, त्यजत सेतुविधान-
मनोरथम् ॥४६॥

८३. अयमुपाहितसेतुरकंपित--,स्थितमहातिमिदेहमहीधरैः।
बलमिदं सकलं शरताडितो, नयतु वारिधिरेव परं
तटम् ॥४८॥

८४. इति गिरा चलितो दृढकीलन--,ध्वतिनकंपितदिग्वि-
दिशो नलः।
मलयकुंजदरीषु महीभृतः, पृथुरुतः प्रथमं समवेशयत् ॥५१

८५. अपहसन्निव फेनरुचा चिरं, गिरिहतोदितकन्ततिबाहुना।
अभिजघान पयोनिधिरुद्धतः, कुसुमभाजि सुवेल-
शिरस्तटे ॥५२।

८६. विततधातुरसं धरणीधर--,क्षतकृतव्रणचक्रमिबांबुधेः।
अभिचकर्त नलोऽनलभासुरः, सलिलपृष्ठतटं गिरि-
सेतुना ॥५४॥

८७. अवसितो नगसेतुरलक्ष्यत, क्षिपति विष्णुवराहरदे भुवि।
विषमकृष्टतया जलपृष्ठतः, समुदितः क्षितिपार्श्वं
इवैकतः ॥५५॥

८८. अथ निवारयितुं दृढमन्तरा, प्रथगपदिक्जलसागरविग्रहम्।
विपुलमद्रियुगेन महीयसा, विरचितं नु भुजद्वय-
बन्धनम्॥६१॥

८१. तब हरि (हनूमान) की चिर चेष्टाको निष्फल देखकर अनिष्फल पराक्रमवाले, पुरुषोत्तमने क्षुभित समुद्रके घोषको हरानेवाले इस वचनको गम्भीरताके साथ कहा ॥४५॥

८२. यहां तिमिंगलोंकी पंक्तियां क्षुब्ध हो गिरी हुई तिमिके सन्देहसे, समुद्रमें विलीन तिमि बने पर्वत (हैं)। सेतु-निर्माणके मनोरथको छोड़ दो ॥४६॥

८३. यह पास स्थापित सेतुवाला शरसे ताड़ित समुद्र ही, अकंपित खड़े महातिमिके देह सदृश पर्वतोंके साथ इस सारी सेनाको दूसरे तटपर ले जावे ॥४८॥

८४. इस तरह वाणीसे संचालित दृढ़ कील गाड़नेसे दिशा-विदिशाको ध्वनित कंपित करनेवाले नलने मलयगिरिके कुंजोंकी गुहाओंमें घोर शब्द करते प्रथम पर्वतको स्थापित किया ॥५१॥

८५. उद्धत सागरने फेन-सदृश देर तक मानो हंसते हुए कुसुम-युक्त सुबेलके शिरोभागपर पर्वतके आघातसे उछली जल-समुदाय रूपी बाहुसे ताड़न किया ॥५२॥

८६. विस्तृत धातुरसवाले पर्वतके घावसे सागरके व्रणों सा, अनल तुल्य प्रकाशमान नलने जलके पृष्ठ तलको पर्वतके सेतु से ढांक दिया ॥५४॥

८७. तैयार पर्वत-सेतु जान पड़ता था, विष्णुवराहके दांत पर लटकी भूमि पर जलके तलसे पृथिवीका पार्श्व ही विषम आकर्षणसे एक ओरसे उत्पन्न हुआ है ॥५५॥

८८. तब भीतरसे पूरी तरह दृढ़तासे निवारण करनेके लिये प्रथम पश्चिमी सागरकी देह पर दो भुजाओंके बन्धन की तरह अतिमहान् दो पर्वतोंसे विपुल पुल बनाया ॥६१॥

८९. अतिनिमग्नमदीयमहाशर--,व्रणरुजा कृतकार्श्यविभावितम्।
लवणसागरदानवदन्तिनः, प्रकटमस्थि नु वंशसमुद्भवम् ॥७०॥

९०. मदगजैरगजैरगनिर्जर--,ध्वनितबृंहित सम्मित सूचितैः।
सरसि तैरसितैरपि वारिदैः, प्रविततं सततं सभयः कर्णैः ॥७५॥

९१. निकषणेन युगस्य हिरण्मय--,ज्वलितरूपधरस्य विघृष्टया।
कटकभित्तिषु कांचनरेखया, रविगतं प्रथयन्तमुदारया ॥७६॥

९२. ज्वलितरत्नचयेन नभस्पृशा, गगनलग्नदवानलसंशयात्।
अधिरुरोह सुवेलमलं विभुः, प्रतिजनं जनयन्नतिसौरतम् ॥८०॥

९३. तत्र स्थित्वा किरणनिकरन्यस्तरंगैस्तरंगैर्,
भास्वत्तोयं वरुणनिलयं वैद्रुमाणां द्रुमाणाम्।
पश्यन् रेमे सततसलिलभ्रंशमुक्तं समुक्तं,
शक्रत्रस्तक्षितिधरशतस्थानदंतं तदन्तम् ॥८१॥

—सर्गः १४

८९. अत्यन्त घुसे मेरे महाबाणके व्रणकी बाधासे हुये दुबलेपन द्वारा लवण-सागररूपी दानव-गजकी पृष्ठवंशसे उत्पन्न अस्थि मानो प्रकट हुई थी ॥७०॥

९०. पर्वतोत्पन्न पहाड़ी झरनोंकी भारी आवाजसे सूचित पर्वतीय मस्त गजोंसे, सागरमें उन काले मेघों द्वारा निरंतर जल कण फैलाये गये ॥७५॥

९१. सुवर्णमय उज्ज्वल रूप-धारी दोनोंके कसौटीके घर्षणसे, कटककी भित्तियोंमें स्थूल सुवर्ण-रेखा द्वारा रविके मार्गको प्रकट करते ॥७६॥

९२. आकाश छूनेवाले जलते रत्नोंसे गगनमें लगे दावानलका सन्देह पैदा करनेवाले सुबेल पर्वतपर विभु (राम) सबके (मनमें) बहुत आनन्द उत्पन्न करते चढ़े ॥८०॥

९३. खड़े हो मूंगेके वृक्षोंके किरणोंसे रंगी तरंगों द्वारा चमचमाते सागरको देखकर, निरन्तर जलके गिरनेसे छुटते मुक्ता-सहित, इन्द्रसे त्रस्त सैकड़ों पर्वतोंके स्थान रूपी दन्तवाले उसके अन्तको देखनेका आनंद लिया ॥८१॥

—सर्ग १४

२२. शूद्रक (५४० ई० पू०)

"मृच्छकटिक" संस्कृतके सर्वोत्कृष्ट नाटकोंमें है। इसके रचयिताका नाम शूद्रक बतलाया जाता है। शायद शूद्रक विदिशाका राजा था, जैसा कि बाणकी "कादम्बरी" में संकेत मिलता है। इस कविकी यही एक ही कृति प्राप्य है। इसका कथानक भासके "दरिद्रचारुदत्त" का है, लेकिन यह उससे

१. मृच्छकटिकम्

(१) वसन्तसेना-हृदयम्

(ततः प्रविशति चेटी)

१. चेटी—कथमद्याप्यार्या न विबुध्यते? भवतु, प्रविश्य प्रतिबोधयिष्यामि। (इति नाट्येन परिक्रामति)
(ततः प्रविशत्याच्छादितशरीरा प्रसुप्ता वसन्तसेना)

२. चेटी—(निरूप्य) उत्तिष्ठतूत्तिष्ठत्वार्या। प्रभातं संवृतम्।
वसन्तसेना—(प्रतिबुध्य) कथं रात्रिरेव प्रभातं संवृतम्?
चेटी—अस्माकमेष प्रभातः, आर्यायाः पुनः रात्रिरेव।

३. वसन्तसेना—चेटि, कुतः पुनर्युष्माकं द्यूतकरः?
चेटी—आर्ये, वर्धमानकं समादिश्य पुष्पकरंडकं जीर्णोद्यानं गत आर्यचारुदत्तः।

४. वसन्तसेना—किं समादिश्य?
चेटी—योजय रात्रौ प्रवहणं, वसन्तसेना गच्छत्विति।

५. वसन्तसेना—चेटि, कुत्र मया गन्तव्यम्?
चेटि—आर्ये, यत्र चारुदत्तः।

२२. शूद्रक (५४० ई० पू०)

कहीं अधिक पूर्ण और सुन्दर है। शूद्रकका नाम चाहे यों ही इस नाटकके साथ जोड़ा गया हो, पर इस कृतिका महत्त्व उससे कम नहीं होता। "मृच्छकटिक" से तत्कालीन भारतीय समाजपर जितना प्रकाश पड़ता है, उतना और किसी नाटकसे नहीं पड़ता।

१. मृच्छकटिक

१. वसन्तसेनाका हृदय—

(तब दासी प्रवेश करती है)

१. चेटी—क्या अब भी आर्या नहीं जाग रही है? अच्छा, भीतर चलकर जगाती हूं। (अभिनयके साथ घूमती है)

(तब शरीर ढांके सोई वसंतसेना प्रवेश करती है)

२. चेटी—(देखकर) उठिये, उठिये आर्या, सबेरा हो गया।

वसंतसेना—(जगकर) क्या रात ही सबेरा हो गया?

चेटी—हमारा यह सबेरा है, आर्याकी तो रात ही है।

३. वसंतसेना—चेटि, तुम्हारा जुआरी कहां है?

चेटी—आर्या, वर्धमानकको आज्ञा दे, पुष्पकरंडक जूने उद्यान आर्य चारुदत्त गये।

४. वसंतसेना—क्या आज्ञा देकर?

चेटी—"रातमें रथ जोड़ के, वसंतसेना जायेगी।"

५. वसंतसेना—चेटि, मुझे कहां जाना है?

चेटी—आर्या, जहाँ चारुदत्त हैं।

६. वसन्तसेना—(चेटीं परिष्वज्य) चेटि, सुष्ठु न निध्याता रात्रौ, तदयं प्रत्यक्षं प्रेक्षिष्ये? चेटि, किं प्रविष्टाहमिहा-भ्यन्तरचतुःशालकम्?
चेटी—न केवलमभ्यन्तरचतुःशालकं, सर्वजनस्यापि हृदयं प्रविष्टा।

७. वसन्तसेना—अपि सन्तप्यते चारुदत्तस्य परिजनः?
चेटी—संतप्स्यसि।
वसन्तसेना—कदा?
चेटी—यदार्या गमिष्यति।

८. वसन्तसेना—(सानुनयम्) तदा मया प्रथमं संतप्तव्यम्। चेटि, गृहाण तां रत्नावलीम्। मम भगिन्या आर्याधूतायै गत्वा समर्पय। वक्तव्यं च—"अहं श्रीचारुदत्तस्य गुण-निर्जिता दासी, तदा युष्माकमपि। तदेषा तवैव कण्ठा-भरणं भवतु रत्नावली।"
चेटी—आर्ये, कुपिष्यति चारुदत्त आर्यायै तावत्।

९. वसन्तसेना—गच्छ, न कुपिष्यति।
चेटी—(गृहीत्वा निष्क्रम्य, पुनः प्रविशति) आर्ये, भणत्यार्या धूता—"आर्यपुत्रेण युष्माकं प्रसादीकृता, न युक्तं ममैतां ग्रहीतुम्। आर्यपुत्र एव ममाभरणविशेष इति जानातु भवती।"
(ततः प्रविशति दारकं गृहीत्वा रदनिका)

१०. रदनिका—एहि वत्स, शकटिकया क्रीडावः।
दारक—(सकरुणम्) रदनिके, किं ममैतया मृत्तिका-शकटिकया? तामेव सौवर्णशकटिकां देहि।

६. वसंतसेना—(चेटीको आलिंगन करके) चेटि, अच्छी तरह रातको नहीं ध्यान दिया, सो उन्हें प्रत्यक्ष देखूंगी। क्या मैं यहां चतुःशालाके भीतर प्रविष्ट हुई हूं ?

चेटी—केवल चतुःशालाके भीतर ही नहीं, बल्कि सभी जनोंके हृदयके भीतर भी प्रविष्ट हैं।

७. वसंतसेना—चारुदत्तका परिवार संतप्त तो नहीं हो रहा है ?

चेटी—संतप्त होगा।

वसंतसेना—कब ?

चेटी—जब आर्या जायेंगी।

८. वसंतसेना—(खेदके साथ) तब मैं ही पहले संतप्त होऊंगी। चेटि, इस रत्नावलीको ले। मेरी बहिन आर्या धूताको ले जाकर अर्पित कर। और कहना : "मैं श्री चारुदत्तके गुणों द्वारा जीती गई दासी, आपकी भी (दासी) हूं। सो यह रत्नावली आपही का कंठ-भूषण हो।"

चेटी—आर्य चारुदत्त आर्यापर कुपित होंगे।

९. वसंतसेना—जा, नहीं कुपित होंगे।

चेटी—जो आज्ञा देती हैं। (लेकर बाहर जा फिर प्रवेश करती है) आर्या, आर्या धूता कहती हैं : "आर्यपुत्रने तुमको भेंट किया है, सो इसे मेरा ग्रहण करना उचित नहीं है। आप समझें कि आर्यपुत्र ही मेरे विशेष आभरण हैं।"

(बच्चेको लिये रदनिका प्रवेश करती है)

१०. रदनिका—आ बच्चा, शकटिका (खिलौने की गाड़ी) से खेलें।

बच्चा—(दुःखके साथ) रदनिके, इस मिट्टीकी गाड़ीसे मुझे क्या ? वही सोनेकी शकटिकाको दे।

११. रदनिका—(सनिर्वेदं निःश्वस्य उपसृत्य) जात, कुतोऽस्माकं सुवर्णव्यवहारः? तातस्य पुनरपि ऋद्धया सुवर्णशकटिकया क्रीडिष्यसि। तद्यावद्विनोदयाम्येनम्। आर्यावसन्तसेनायाः समीपमुपसर्पिष्यामि। आर्ये, प्रणमामि।

१२. वसन्तसेना—रदनिके, स्वागतं ते, कस्य पुनरयं दारकः? अनलंकृतशरीरोऽपि चन्द्रमुख आनन्दयति मम हृदयम्।
रदनिका—एष खल्वार्यचारुदत्तस्य पुत्रो रोहसेनो नाम।

१३. वसन्तसेना—(बाहू प्रसार्य) अनुकृतमनेन पितू रूपम्। (इत्यंकं उपवेश्य) एहि मे पुत्रक, आलिंग।
रदनिका—न केवलं रूपं, शीलमपि तर्कयामि। एतेनार्यचारुदत्त आत्मानं विनोदयति।

१४. वसन्तसेना—अथ किंनिमित्तमेष रोदिति?
रदनिका—एतेन प्रातिवेशिकगृहपतिदारकस्य सुवर्णशकटिकया क्रीडितम्। तेन च सा नीता। ततः पुनस्तां याचतो मयेयं मृत्तिकाशकटिका कृत्वा दत्ता। ततो भणति—"रदनिके, किं ममैतया मृत्तिकाशकटिकया? तामेव सौवर्णशकटिकां देहि" इति।

१५. वसन्तसेना—हा धिक् हा धिक्, अयमपि नाम परसंपत्त्या संतप्यते। भगवन्कृतान्त, पुष्करपत्रपतितजलबिन्दुसदृशैः क्रीडसि त्वं पुरुषभागधेयैः। (सासूयं) जात मा रुदिहि। सौवर्णशकटिकया क्रीडिष्यसि।
दारकः—रदनिके, कैषा?

११. रदनिका—(दुःखके साथ उसास ले, पास आकर) पुत्र, कहां हम लोगोंके यहां सोनेका व्यवहार है। तातके पास फिर संपत्ति होने पर सोनेकी शकटिका से तू खेलेगा। इसे बहलाऊं। आर्या वसंतसेनाके पास जाऊं। आर्या, प्रणाम करती हूं।

१२. वसंतसेना—रदनिका, तेरा स्वागत है। किसका यह बच्चा है, जो बिना भूषित-शरीर भी चांदसे मुखड़ेवाला मेरे हृदयको आनंदित कर रहा है।
रदनिका—यह आर्य चारुदत्तका पुत्र रोहसेन है।

१३. वसंतसेना—(हाथ फैलाकर) आ मेरे पुतवा, आलिंगन कर। (गोदमें बैठाकर) पिताके जैसा इसका रूप है।
रदनिका—केवल रूप ही नहीं, शीलको भी, मैं सोचती हूं। इससे आर्य चारुदत्त अपना मनोविनोद करते हैं।

१४. वसंतसेना—तो, किसलिये यह रोता है?
रदनिका—यह पड़ोसी वैश्यके लड़केकी सोनेकी शकटिकासे खेलता था। उसने उसे ले लिया। फिर उसे मांगा, तो मैंने मिट्टीकी शकटिका बनाकर दी। इसपर कहता है: "रदनिका, इस मिट्टीकी शकटिकासे मुझे क्या? उसी सोनेकी शकटिका को दे।"

१५. वसंतसेना—(खेदके साथ) हा धिक्, हा धिक्, यह भी दूसरेकी सम्पत्तिसे संतप्त है। हे भगवान् विधाता, कमल-पत्रपर गिरे जल-बिन्दुके समान पुरुषके सौभाग्यसे तुम खेलते हो। (खेदके साथ) पुत्र, मत रो। सोनेकी शकटिकासे खेलोगे।
बच्चा—रदनिका, यह कौन है?

१६. वसन्तसेना—ते पितुर्गुणनिर्जिता दासी।
रदनिका—जात, आर्या ते जननी भवति।
दारकः—रदनिके, अलीकं त्वं भणसि, यदस्माकमार्या जननी, तत् किमर्थमलंकृता ?

१७. वसन्तसेना—जात, मुग्धेन मुखेनातिकरुणं मन्त्रयसि। (नाट्येनाभरणान्यवतार्य रुदती) एषेदानीं ते जननी संवृत्ता, तद्गृहाणैनमलंकारं, सौवर्णशकटिकां कारय।
दारकः—अपेहि न गृहीष्यामि, रोदिषि त्वम्।

१८. वसन्तसेना—(अश्रूणि प्रमृज्य) जात, न रोदिष्यामि। गच्छ, क्रीड। (अलंकारैर्मृच्छकटिकां पूरयित्वा) जात, कारय सौवर्णशकटिकाम्।

(इति दारकमादाय निष्क्रान्ता रदनिका)
प्रविश्य प्रवहणाधिरूढः)

१९. चेटः—रदनिके, निवेदयार्यायै वसन्तसेनायै—पक्षद्वारके सज्जं प्रवहणं तिष्ठति।

(प्रविश्य)

रदनिका—आर्ये, एष वर्धमानको विज्ञापयति—"पक्षद्वारे सज्जं प्रवहणम्" इति।

२०. वसन्तसेना—चेटि, तिष्ठतु मुहूर्तकं, यावदहमात्मानं प्रसाधयामि।
रदनिका—(निष्क्रम्य) वर्धमानक, तिष्ठ मुहूर्तकं, यावदार्यात्मानं प्रसाधयति।
चेटः—ही ही भोः, मयापि यानास्तरणं विस्मृतम्। तद्यावद् गृहीत्वागच्छामि। एतौ नासिकारज्जुकटुकौ बलीवर्दौ। भवतु, प्रवहणेनैव गतागतिं करिष्यामि।

(इति निष्क्रान्तश्चेटः)

१६. वसंतसेना—तेरे पिता के गुणोंसे जीती गई दासी।
रदनिका—पुत्र, यह आर्या तेरी जननी होती हैं।
बच्चा—रदनिका, तू झूठ बोलती है, यदि आर्या हमारी जननी है, तो क्यों जेवर पहने हैं?

१७. वसंतसेना—पुत्र, भोले मुंह से अत्यंत करुण बात कह रहे हो। (अभिनयके साथ आभूषणों को उतार कर रोती) यह अब मैं तेरी जननी हो गई, सो इस आभूषणको ले, सोनेकी शकटिका बनवा ले।
बच्चा—हट परे, नहीं लूंगा, तू रोती है।

१८. वसंतसेना—(आंसुओंको पोंछ कर) पुत्र, नहीं रोऊंगी। जा, खेल। (आभूषणोंसे मिट्टीकी शकटिकाको भर कर) पुत्र, सोनेकी शकटिका बनवा ले।

(बच्चेको लेकर रदनिका निकल गई)

(रथपर चढ़ा प्रवेश करके)

१९. चेट—रदनिका, आर्या वसंतसेनाको निवेदन कर: ढँका हुआ रथ पाखके छोटे दरवाजे पर तैयार खड़ा है।

(प्रवेश करके)

रदनिका—आर्या, यह बर्धमानक अर्ज करता है, कि पाख द्वारपर रथ तैयार है।

२०. वसंतसेना—चेटि, जरा सा ठहर, जब तक मैं अपनेको सजा लेती हूं।
रदनिका—(निकल कर) वर्धमानक, जरा सा ठहर, जब तक आर्या अपनेको सजाती हैं।
चेट—हां-हां है, मैं भी गाड़ीके बिछौनेको भूल गया हूं, तो तब तक उसे लाता हूं। यह बैल के नाथकी रस्सीके कड़े हैं। अच्छा, रथसे ही जाना-आना करता हूं। (चेट निकल गया)

२१. वसन्तसेना—चेटी उपनय मे प्रसाधनं, आत्मानं प्रसाधयिष्यामि। (प्रसाधयन्ती स्थिता) —अंकः ६

२. अधिकरणम्—

(ततः प्रविशति शोधनकः)

२२. शोधनकः—आज्ञप्तोऽस्म्यधिकरणभोजकैः—"अरे शोधनक, व्यवहारमण्डपं गत्वाऽऽसनानि सज्जीकुरु" इति। तद्यावदधिकरणमण्डपं सज्जितुं गच्छामि। (परिक्रम्यावलोक्य) एषोऽधिकरणमण्डपः। एष प्रविशामि। (प्रविश्य संमार्ज्यासनमाधाय) विविक्तः कारितो मयाधिकरणमण्डपःविरचितानि मयासनानि। तद्यावदधिकरणिकानां पुनर्निवेदयामि। (परिक्रम्यावलोक्य च) कथमेष राष्ट्रियश्यालो दुष्टदुर्जनमनुष्य इत एवागच्छति? तद्दृष्टिपथं परिहृत्य गमिष्यामि।

(इत्येकान्ते स्थितः)

(ततः प्रविशत्युज्ज्वलवेषधारी शकारः)

२३. शकारः—

स्नातोऽहं सलिलजलैः पानीयैरुद्यान उपवनकानने निषण्णः।
नारीभिः बहुयुवतिभिः स्त्रीभिर्गन्धर्वैः सुविहितैरंगकैः॥
क्षणेन ग्रन्थिः क्षणजूलिका मे क्षणेन बालाः क्षणकुन्तला वा।
क्षणेन मुक्ताः क्षणमूर्ध्वचूडाश्चित्रो विचित्रोऽहं राजश्यालः॥

(तथा स्थितः)

२४. शोधनकः—(अन्यतः परिक्रम्य, पुरो दृष्ट्वा) एतेऽधिकरणिका आगच्छन्ति, तद्यावदुपसर्पामि। (इत्युपसर्पति)

(ततः प्रविशति श्रेष्ठिकायस्थादिपरिवृतोऽधिकरणिकः)

अधिकरणिकः—भो भोः श्रेष्ठिकायस्थौ,

श्रेष्ठिकायस्थौ—आज्ञापयत्वार्यः।

२१. वसंतसेना—चेटि, ला मेरे प्रसाधन, अपनेको सजाऊंगी। (सजाती रही)

—अंक ६

२. न्यायालय—

(शोधनक प्रवेश करता है)

२२. शोधनक (झाड़ूदार)—अदालतके अधिकारियोंने आज्ञा दी है : अरे शोधनक न्यायमंडपमें जाकर आसन लगा। सो न्यायमंडपको तैयार करने जाता हूं। (परिक्रमा करके, देखकर) यह अदालतका मंडप है, प्रवेश करता हूं। (प्रवेश करके झाड़ू देकर आसन रखकर) अदालतके मंडपको मैंने साफ कर दिया, आसन लगा दिये। सो अब अधिकरणिकों (अफसरों) से अर्ज करता हूं। (परिक्रमा करके और देखकर) क्यों यह राष्ट्रिय शाला दुष्ट दुर्जन मनुष्य इधर ही आ रहा है, इसकी नजर बचाकर जाऊं।

(एक ओर खड़ा)

(तब उज्ज्वल-वेषधारी शकार प्रवेश करता है)

२३. शकार—

मैं सलिल जल पानीसे स्नान कर उद्यान-उपवन-काननमें बैठा, नारियों, युवतियों, स्त्रियों, गंधर्वों, सुसज्जित शरीरवालोंके साथ। क्षणमें गांठ और क्षणमें मेरी जूड़ा, क्षणमें बाल और क्षणमें कुंतल, क्षणमें मोती, क्षणमें ऊपर चूड़ा, मैं चित्र-विचित्र राजाका साला हूं।

(वैसे ही खड़ा)

२४. शोधनक—(दूसरी ओर परिक्रमा करके सामने देखकर) यह अधिकरणिक आ रहे हैं, सो पास जाता हूं। (पास जाता है)

(श्रेष्ठी, कायस्थ आदिसे अफसर प्रवेश करता है)

अफसर—हे, हे श्रेष्ठि-कायथो।

श्रेष्ठि और कायथ—आज्ञा दें, आर्य।

२५. अधिकरणिकः—अहो, व्यवहारपराधीनतया दुष्करं खलु परचित्तग्रहणमधिकरणिकैः

छन्नं कार्यमुपक्षिपन्ति पुरुषा न्यायेन दूरीकृतं,
स्वान्दोषान्कथयंति नाधिकरणे रागाभिभूताः स्वयम्।
तैः पक्षापरपक्षवर्धितबलैर्दोषैर्नृपः स्पृश्यते,
संक्षेपादपवाद एव सुलभो द्रष्टुर्गुणो दूरतः ॥३॥

२६. अपि च,—

छन्नं दोषमुदाहरन्ति कुपिता न्यायेन दूरीकृताः,
स्वान्दोपान्कथयन्ति नाधिकरणे सन्तोऽपि नष्टा ध्रुवम्।
ये पक्षापरपक्षदोपसहिताः पापानि संकुर्वते,
संक्षेपादपवाद एव सुलभो द्रष्टुर्गुणोदूरतः॥४॥

२७. यतोऽधिकरणिकः खलु।

शास्त्रज्ञः कपटानुसारकुशलो वक्ता न च क्रोधनस्,
तुल्यो मित्रपरस्वकेषु चरितं दृष्ट्वैव दत्तोत्तरः।
क्लीवान्पालयिता शठान्व्यथयिता धर्म्यो न लोभान्वितो
द्वार्भावे परतत्वबद्धहृदयो राज्ञश्च कोपापहः ॥५॥

२८. श्रेष्ठिकायस्थौ—आर्यस्यापि नाम गुणे दोष इत्युच्यते। यद्येवं, तदा चन्द्रालोकेऽप्यन्धकार इत्युच्यते।

२९. अधिकरणिकः—भद्र शोधनक, अधिकरणमण्डपस्य मार्गमादेशय।

शोधनकः—एत्वेत्वधिकरणभोजक, एतु

(इति परिक्रामन्ति)

२५. अधिकरणिक—अहो न्यायके पराधीन होनेसे अधिकरणिकों (न्यायाधीशों) के लिये दूसरेके चित्तको अनुकूल करना दुष्कर है—
न्यायसे हटाये छिपे कार्यको पुरुष ला धरते हैं,
रागमें लिप्त स्वयं अपने दोषोंको अदालतमें नहीं कहते।
पक्ष-विपक्षके बढ़ाये बलवाले दोषोंसे राजा लिप्त होता है,
संक्षेपमें द्रष्टाका गुण दूर अपवादरूपसे ही सुलभ है ॥३॥

२६. और भी—
कुपित होकर न्यायसे हटे असत्यसे ढंके दोषको बतलाते हैं,
अपने दोषोंको अदालतमें नहीं कहते, होते भी नष्ट हो जाते।
जो पक्ष-विपक्षके दोषोंके साथ हो पाप लिप्त होते हैं,
संक्षेपमें द्रष्टाका गुण दूरसे अपवाद रूपसे ही सुलभ है ॥४॥

२७. क्योंकि अधिकरणिक (न्यायाधीश) तो—
शास्त्रज्ञ होते भी कपटके अनुसरणमें कुशल, वक्ता किंतु क्रोधी नहीं,
मित्र और स्वकीयमें समान आचरण देखकर ही उत्तर देनेवाला।
नपुंसकोंका पालक शठोंका पीड़क धर्मानुसारी और निर्लोभ,
द्वार बन परम तत्वमें आबद्ध हृदय और राजाके कोपको दूर करनेवाला ॥५॥

२८. श्रेष्ठि और कायस्थ—आर्यके भी गुणमें दोष कहा जावे? यदि ऐसा तो चांदनीमें भी अन्धकार कहा जावे।

२९. अधिकरणिक—भद्र शोधनक, अधिकरण-मंडप (न्यायालय) का मार्ग बतला।

शोधनक—आयें, आर्य अधिकरणभोजक, आयें।

(परिक्रमा करते हैं)

३०. शोधनकः—अयमधिकरणमण्डपः, तत्प्रविशन्त्वधिकरण-भोजकाः।

(सर्वे च प्रविशन्ति)

अधिकरणिकः—भद्र शोधनक, बहिर्निष्क्रम्य ज्ञायतां—"कः कः कार्यार्थी" इति।

३१. शोधनकः—यदार्य आज्ञापयति। (इति निष्क्रम्य) आर्याः, अधिकरणिकाः भणन्ति "क क इहकार्यार्थी"इति।

शकारः—(सहर्षम्) उपस्थिता अधिकरणिकाः (साटोपं परिक्रम्य) अहं वरपुरुषो मनुष्यो वासुदेवो राष्ट्रियश्यालो राजश्यालः कार्यार्थी।

३२. शोधनकः—(ससंभ्रमम्) हन्त, प्रथममेव राष्ट्रियश्यालः कार्यार्थी। भवतु, आर्य, मुहूर्तं तिष्ठ, तावदधिकरणिकानां निवेदयामि। (उपगम्य) आर्याः, एष खलु राष्ट्रियश्यालः कार्यार्थी व्यवहारमुपस्थितः।

३३. अधिकरणिकः—कथं प्रथममेव राष्ट्रियश्यालः कार्यार्थी! यथा सूर्योदये उपरागो महापुरुषनिपातमेव कथयति। शोधनक, व्याकुलेनाद्य व्यवहारेण भवितव्यम्। भद्र, निष्क्रम्योच्यताम्—"गच्छाद्य, न दृश्यते तव व्यवहार" इति।

३४. शोधनकः—यदार्या आज्ञापयतीति। (निष्क्रम्य, शकार-मुपगम्य) आर्य, अधिकरणिका भणन्ति—"अद्य गच्छ न दृश्यते तव व्यवहारः।"

शकारः—(सक्रोधम्) आः किं न दृश्यते मम व्यवहारः। यदि न दृश्यते, तदावुत्तं, राजानं पालकं भगिनीपतिं विज्ञाप्य भगिनीं मातरं च विज्ञाप्यैतमधिकरणिकं दूरी-कृत्यात्रान्यमधिकरणिकं स्थापयिष्यामि।

(इति गन्तुमिच्छति)

३०. शोधनक—यह अधिकरणमंडप है, सो अधिकरणभोजक प्रवेश करें।

(सब प्रवेश करते हैं)

अधिकरणिक—भद्र शोधनक, बाहर निकल कर जानो, "कौन-कौन वादी हैं।"

३१. शोधनक—जो आर्य आज्ञा देते हैं। (बाहर निकलकर) आर्यो, अधिकरणिक कहते हैं "कौन-कौन यहां वादी हैं।"

शकार—(हर्षके साथ) आ गये अधिकरणिक ? (अभिमान के साथ परिक्रमा करके) मैं श्रेष्ठ पुरुष मनुष्य वासुदेव राष्ट्रियशाल (राजशाला) वादी हूं।

३२. शोधनक—(घबड़ाया सा) हन्त, पहले ही राष्ट्रियशाल मुकदमे-वाला! अच्छा, आर्य, क्षण भर ठहरो, तब तक अधिकरणिकोंको अर्ज करता हूं। (पास आकर) आर्यो, यह राष्ट्रियशाल वादी न्यायके लिये उपस्थित है।

३३. अधिकरणिक—क्यों, पहले ही राष्ट्रियशाल वादी, जैसे सूर्योदयके समय ग्रहण किसी महापुरुषके मरनेको ही बतलाता है। शोधनक, आज मुकदमा गड़बड़ होगा। भद्र, जाकर कह : "जा, आज तेरा मुकदमा नहीं देखा जायेगा।"

३४. शोधनक—जो आर्य आज्ञा देते हैं। (निकलकर शकारके पास जाकर) आर्य, अधिकरणिक कहते हैं : "जा, आज तेरा मुकदमा नहीं देखा जायेगा।"

शकार—(क्रोधके साथ) आह, क्या मेरा मुकदमा नहीं देखा जायेगा! यदि नहीं देखा जायेगा, तो भगिनी-पति जीजा राजा पालक से अर्ज करके, भगिनी और मांको अर्ज करके इस अधिकरणिकको हटा कर इस पद पर दूसरे अधिकरणिकको स्थापित कराऊंगा।

(जाना चाहता है)

३५. शोधनकः—आर्य, राष्ट्रियश्यालः। मुहूर्तं तिष्ठ, तावदधिकरणिकानां निवेदयामि। (अधिकरणिकं उपगम्य) एष राष्ट्रियश्यालः कुपितो भणति (इति तदुक्तं भणति)
अधिकरणिकः—सर्वमस्य मूर्खस्य संभाव्यते। भद्र, उच्यताम् —"आगच्छ, दृश्यते तव व्यवहारः।"

३६. शोधनकः—(शकारमुपगम्य) आर्य, अधिकरणिका भणन्ति—"आगच्छ, दृश्यते तव व्यवहारः", तत्प्रविशत्वार्यः
शकारः—ह्री, प्रथमं भणन्ति न दृश्यते, सांप्रतं दृश्यत इति। तन्नामभीतभीता अधिकरणभोजकाः, यद्यहं भणिष्यामि तत्प्रत्याययिष्यामि। भवतु, प्रविशामि। (प्रविश्योपसृत्य) सुसुखमस्माकं, युष्माकमपि सुखं ददामि न ददामि च।

३७. अधिकरणिकः—(स्वगतम्) अहो, स्थिरसंस्कारता व्यवहारार्थिनः। (प्रकाशम्) उपविश्यताम्।
शकारः—आं, आत्मीयैषा भूमिः। तद्यत्र मह्यं रोचते तत्रोपविशामि। (श्रेष्ठिनं प्रति) एष उपविशामि (शोधनकं प्रति) नन्वत्रोपविशामि। (इत्यधिकरणिक-मस्तिष्के हस्तं दत्वा) एष उपविशामि। (इति भूमौ उपविशति)

३८. अधिकरणिकः—भवान्कार्यार्थी ?
शकारः—अथ किं ?
अधिकरणिकः—तत्कार्यं कथय।

३९. शकारः—(कर्णे कार्यं कथयिष्यामि) एवं मल्लक प्रमाणस्य कुलेऽहं जातः।

राजश्वशुरो मम पिता राजा तातस्य भवति जामाता।
राजश्यालोऽहं ममापि भगिनिपती राजा॥६॥

३५. शोधनक—आर्य राष्ट्रियशाल, क्षण भर जरा ठहरें। अधिकरणिक से निवेदन करता हूं। (अधिकरणिकके पास जाकर) यह राष्ट्रियशाला कुपित होकर कहता है, (उसके कहेको दुहराता है)।
अधिकरणिक—यह मूर्ख सब कर सकता है। भद्र, कह: "आओ, तेरा मुकदमा देखा जायेगा।"

३६. शोधनक—(शकारके पास जाकर) आर्य, अधिकरणिक कहते हैं: "आओ, तेरा मुकदमा देखा जायेगा।" तो आर्य प्रवेश करें।
शकार—ही-ही, पहले कहते हैं, नहीं देखा जायेगा, (अब कहते हैं) देखा जायेगा। सो अधिकरणिभोजक, भयभीत हैं जो-जो मैं कहूंगा, वह-वह पतिययाऊँगा। अच्छा, प्रवेश करता हूं। (प्रवेश करके पास जाकर) हमें सुसुख है, तुम्हें भी सुख देता हूं और नहीं देता हूं।

३७. अधिकरणिक—(अपने आपसे) अहो, वादीका एक सा ही संस्कार (होता) है। (प्रकट) बैठिये।
शकार—हां, अपनी ही यह भूमि है। सो जहां मुझे पसन्द है, वहीं बैठता हूं। (श्रेष्ठीसे) यहां बैठता हूं। (शोधनकसे) तो यहां बैठता हूं। (अधिकरणिकके मत्थेपर हाथ देकर) यह बैठता हूं। (भूमिपर ही बैठता है)

३८. अधिकरणिक—आप वादी हैं?
शकार—और क्या?
अधिकरणिक—तो मुकदमा (कार्य) बतलायें।

३९. शकार—कानमें कार्य बतलाऊंगा। ऐसे बड़े मल्लक प्रमाणके कुलमें मैं जनमा हूं।
मेरा पिता राजाका सचिव है, राजा तातका जमाई है।
मैं राजाका साला हूं, मेरा भी भगिनीपति राजा है॥३॥

४०. अधिकरणिकः—सर्वं ज्ञायते,

किं कुलेनोपदिष्टेन शीलमेवात्र कारणम्।
भवन्ति नितरां स्फीताः सुक्षेत्रे कण्टकिद्रुमाः ॥७॥

तदुच्यतां कार्यम्।

४१. शकारः—एवं भणामि, अपराद्धस्यापि न च मे किमपि करिष्यति, ततस्तेन भगिनीपतिना परितुष्टेन मे क्रीडितुं रक्षितुं सर्वोद्यानानां प्रवरं पुष्पकरण्डकजीर्णोद्यानं दत्तम्। तत्र च प्रेक्षितुमनुदिवसं शुष्कं कारयितुं पुष्टं कारयितुं लूनं कारयितुं गच्छामि। दैवयोगेन पश्यामि, न पश्यामि वा, स्त्रीशरीरं निपतितम्।

४२. अधिकरणिकः—अथ ज्ञायते का स्त्री विपन्नेति?
शकारः—अहो अधिकरणभोजकाः, किमिति न जानामि? तां तादृशीं नगरमण्डनां कांचनशतभूषणां केनापि कुपुत्रेण आर्थकल्यवर्तस्य कारणाच्छून्यं पुष्पकरण्डकं जीर्णोद्यानं प्रवेश्य बाहुपाशबलात्कारेण वसन्तसेना मारिता, न मया। (इत्यर्धोक्ते मुखमावृणोति)

४३. अधिकरणिकः—अहो नगररक्षिणां प्रमादः। भोः श्रेष्ठिकायस्थौ "न मयेति" व्यवहारपदमभिलिख्यताम्,
कायस्थः—यदार्य आज्ञापयति। (तथा कृत्वा) आर्य, लिखितम्।

४४. शकारः—(स्वगतं) आश्चर्यम्, त्वरां कुर्वाणेनैव पायसपिण्डारकेणाय मयात्मैव विनाशितः, भवतु। एवं तावत् (प्रकाश्य) अहो अधिकरणभोजकाः, ननु भणामि, मयैव दृष्टा किं कोलाहलं कुरुत? (इति) पादेन लिखितं प्रों छति,
अधिकरणिकः—कथं त्वया ज्ञातं यथा खल्वर्थनिमित्तं बाहुपाशेन व्यापादिता?

४०. अधिकरणिक—सब मालूम है।
कुल बतलानेसे क्या, यहां शील ही कारण है।
सुन्दर क्षेत्रमें अति स्पष्ट बबूलके वृक्ष (भी) होते हैं ॥७॥
सो कार्य बतलाइये ?

४१. शकार—ऐसा कहता हूं। अपराधी होने पर भी मेरा (कोई) कुछ नहीं कर सकता। संतुष्ट होकर भगिनीपतिने खेलने और रखनेके लिये मुझे सारे उद्यानोंमें श्रेष्ठ पुष्पकरंडक जले जीर्ण-उद्यानको दिया। वहां प्रतिदिन देखनेके लिये, सूखा करनेके लिये, शोधन कराने, साफ करानेके लिये, पुष्ट करानेके लिये, छेदन करानेके लिये जाता हूं। दैवयोगसे देखता या नहीं देखता हूं, पड़े हुए स्त्रीके शरीरको।
अधिकरणिक—फिर क्या जानते हो, कौन सी स्त्री मरी ?

४२. शकार—अहो अधिकरणभोजक, क्यों नहीं जानता हूं, वैसी नगरकी मंडन सैकड़ों सोनेके भूषणोंवाली वसंतसेनाको किसी कपूतने धनके कारण शून्य पुष्पकरंडक जूने उद्यान में ले जाकर हाथके फंदेसे बलात्कारके साथ मार दिया, मैंने नहीं। (आधा ही कह मुंह ढांक लेता है)

४३. अधिकरणिक—अहो, नगरके पुलिसवालोंकी गलती।
श्रेष्ठी और कायस्थ, "मैं नहीं" इस अभियोग-वाक्यको पहले लिखिये।
कायस्थ—जो आर्य आज्ञा देते हैं। (वैसा करके) आर्य, लिख लिया।

४४. शकार—(अपने आपसे) अहो जल्दी करते हुये आज खीरपिंडके लोभी मैंने अपने ही को नाश कर लिया। अच्छा, तो यह, (प्रकट) हे अधिकरणिभोजको, मैं कहता हूं, मैंने ही देखा। क्यों हल्ला मचाते हो। (लिखे हुए को पैरसे पोंछ देता है)
अधिकरणिक—कैसे तुमने जाना, कि धनके कारण बाहुपाशसे उसे मारा ?

४५. शकारः—हंहो, नूनं परिशून्यया मोघस्थानया श्रीवालिक-
या सुवर्णकैराभरणस्थानैस्तर्कयामि ।
श्रेष्ठिकायस्थौ—युज्यत इव ।

४६. शकारः—(स्वगतम्) दिष्ट्या प्रत्युज्जीवितोऽस्मि ।
श्रेष्ठिकायस्थौ—भोः, कमेष व्यवहारोऽवलम्बते ?
अधिकरणिकः—इह हि द्विविधो व्यवहारः ।
श्रेष्ठिकायस्थौ—कीदृशः ?

४७. अधिकरणिकः—वाक्यानुसारेण, अर्थानुसारेण च ।
स यस्तावद्वाक्यानुसारेण, खल्वर्थिप्रत्यर्थिभ्यः,
यश्चार्थानुसारेण स चाधिकरणिकबुद्धिनिष्पाद्यः ।
श्रेष्ठिकायस्थौ—तद्वसन्तसेनामातरमवलम्बते व्यवहारः ।

४८. अधिकरणिकः—एवमिदम् । भद्र शोधनक, वसन्तसेना-
मातरमनुद्वेजयन्नाह्वय ।
शोधनकः—तथा, (इति निष्क्रम्य, गणिकामात्रा सह
प्रविश्य) एत्वेत्वार्या ।

४९. वृद्धा—गता मे दारिका मित्रगृहमात्मनो यौवनमनुभवितुम् ।
एष [illegible] "[illegible] किरणिक आह्वयति"
तत् [illegible] । हृदयं मे प्रकम्पते
आर्य, आदिश मह्यमधिकरणमण्डपस्य मार्गम् ।

५०. शोधनकः—एत्वेत्वार्या ।

(उभौ परिक्रामतः)

शोधनकः—एषोऽधिकरणमण्डपः । अत्र प्रविशत्वार्या ।

(इत्युभौ प्रविशतः)

५१. वृद्धा—([illegible]) [illegible]खं युष्माकं भवतु [illegible]मिश्राणाम् ।
[illegible]—[illegible]द्रे, स्वागतम्, आस्यताम् ।
वृद्धा—तथा । (इत्युपविष्टा)

४५. शकार—बिना सुवर्णवाले आभरणसे खाली छूछी गर्दनसे अनुमान करता हूं।

श्रेष्ठी और कायस्थ—संभव सा है।

४६. शकार—(अपने आपसे) खूब, फिर जी गया।

श्रेष्ठी और कायस्थ—हे, किसके ऊपर यह व्यवहार (अभियोग) है?

अधिकरणिक—यहां दो प्रकारका व्यवहार होता है।

श्रेष्ठी और कायस्थ—कैसा?

४७. अधिकरणिक—वाक्यके अनुसार और अर्थके अनुसार। जो वाक्यके अनुसार होता है, वह वादी-प्रतिवादियोंसे और जो अर्थके अनुसार, वह अधिकरणिककी बुद्धिसे तैयार होता है।

श्रेष्ठी और कायस्थ—तो यह व्यवहार (मुकदमा) वसंतसेनाकी मांसे सम्बन्ध रखता है।

४८. अधिकरणिक—यह ऐसा ही। भद्र शोधनक, वसंतसेनाकी मांको बिना उद्वेजित किये बुला लाओ।

शोधनक—अच्छा। (निकल कर गणिकाकी मांके साथ प्रवेश करके) आओ, आओ आर्या।

४९. वृद्धा—मेरी लड़की मित्रके गृहमें अपना यौवन भोगने गई। पर, यह चिरंजीवी बोलता है: "अधिकरणिक बुला रहे हैं", सो मोह-परवश अनुभव कर रही हूं। मेरा हृदय कांप रहा है। आर्य, मुझे अधिकरण मंडपका मार्ग बतला।

५०. शोधनक—आओ, आओ, आर्या।

(दोनों परिक्रमा करते हैं)

शोधनक—यह अधिकरणमंडप है। यहां आर्या बैठो।

(दोनों प्रवेश करते हैं)

५१. वृद्धा—(पास जाकर) तुम महानुभावों, सुखी होओ।

अधिकरणिक—भद्रे, स्वागतम्, बैठिये।

वृद्धा—अच्छा। (बैठ गई)

५२. शकारः—(साक्षेपम्) आगतासि वृद्धकुट्टनि, आगतासि ?
अधिकरणिकः—अये, त्वं किल वसन्तसेनाया माता ?
वृद्धा—अथ किं।
अधिकरणिकः—अथेदानीं वसन्तसेना क्व गता ?
वृद्धा—मित्रगृहम्।

५३. अधिकरणिकः—किंनामधेयं तस्या मित्रम् ?
वृद्धा—हा धिक् हा धिक्, अतिलज्जनीयं खल्विदं। जनस्य पृच्छनीयोऽयमर्थः, न पुनरधिकरणिकस्य।

५४. अधिकरणिकः—अलं लज्जया, व्यवहारस्त्वां पृच्छति।
श्रेष्ठिकायस्थौ—व्यवहारः पृच्छति। नास्ति दोषः,कथय।

५५. वृद्धा—कथं व्यवहारः ? यद्येवं, तदा शृण्वन्त्वार्यमिश्राः। स खलु सार्थवाहविनयदत्तस्य नप्ता, सागरदत्तस्य तनयः सुगृहीतनामधेय आर्यचारुदत्तो नाम, श्रेष्ठिचत्वरे प्रातिवसति। तत्र मे दारिका यौवनसुखमनुभवति।

५६. शकारः—श्रुतमार्यैः ? लिख्यन्तामेतान्यक्षराणि। चारुदत्तेन सह मम विवादः।
श्रेष्ठिकायस्थौ—चारुदत्तो मित्रमिति नास्ति दोषः

५७. अधिकरणिकः—व्यवहारोयं चारुदत्तमवलम्बते।
श्रेष्ठिकायस्थौ—एवमिव।

५८. अधिकरणिकः—धनदत्त, वसन्तसेनार्यचारुदत्तस्य गृहं गतेति लिख्यतां व्यवहारस्य प्रथमः पादः। कथमार्यचारुदत्तोऽप्यस्माभिराह्वयितव्यः ? अथवा व्यवहारस्तमाह्वयति। भद्र शोधनक, अगच्छ, आर्यचारुदत्तं स्वैरमसंभ्रान्तमनुद्विग्नं सादरमाहूय प्रस्तावेन—"अधिकरणिकस्त्वां द्रष्टुमिच्छति" इति।

५२. शकार—(आक्षेपपूर्वक) आ गई बूढ़ी कुटनी, आ गई?
अधिकरणिक—अये, तुम वसंतसेनाकी मां हो?
वृद्धा—और क्या?
अधिकरणिक—तो इस समय वसंतसेना कहां गई है?
वृद्धा—मित्रके गृह।

५३. अधिकरणिक—क्या नाम है उसके मित्र का?
वृद्धा—हा धिक्, हा धिक्, यह अत्यन्त लज्जास्पद है। लोगों के पूछनेकी यह बात है, अधिकरणिकके पूछनेकी नहीं।

५४. अधिकरणिक—लज्जा छोड़ो, व्यवहार (मुकदमा) तुमसे पूछता है।
श्रेष्ठी और कायस्थ—व्यवहार पूछता है। कोई दोष नहीं, बताओ।

५५. वृद्धा—क्यों व्यवहार? यदि ऐसा, तो आर्य लोग सुनें। सार्थवाह विनयदत्तके नाती, सागरदत्तके पुत्र सुन्दर नामवाले आर्य चारुदत्त जो सेठ चौतरेमें बसते हैं, मेरी लड़की वहां यौवन-सुख अनुभव करती है।

५६. शकार—सुना आर्योंने? इन अक्षरोंको लिखिये। चारुदत्त के साथ मेरा विवाद है।
श्रेष्ठी और कायस्थ—चारुदत्त मित्र है, इसमें दोष नहीं।

५७. अधिकरणिक—यह मामला अब चारुदत्तसे सम्बन्ध रखता है।
श्रेष्ठी और कायस्थ—ऐसा ही।

५८. अधिकरणिक—धनदत्त, वसंतसेना आर्य चारुदत्तके गृह गई, यह व्यवहारका प्रथम चरण है, (इसे) लिखिये। क्या आर्य चारुदत्तको भी हमें बुलाना होगा। अथवा व्यवहार उन्हें बुला रहा है। भद्र शोधनक, जा, आर्य चारुदत्तको स्वेच्छासे बिना शंका और उद्वेगके आदरपूर्वक इस प्रस्तावके साथ बुला ला : "अधिकरणिक तुम्हारा दर्शन चाहते हैं।"

५९. शोधनकः—(इति निष्क्रान्तः) यदार्य आज्ञापयति।
(चारुदत्तेन सह प्रविश्य) एत्वेत्वार्यः।

६०. चारुदत्तः—(विचिन्त्य)

परिज्ञातस्य मे राज्ञा शीलेन च कुलेन च।
यत्सत्यमिदमाह्वानमवस्थामभिशंकते ॥८॥

६१. (सवितर्कं, स्वगतम्)

ज्ञातो नु किं स खलु बन्धनविप्रयुक्तो,
मार्गागतः प्रवहणेन मयापनीतः।
चारेक्षणस्य नृपतेः श्रुतिमागतो वा,
येनाहमेवमभियुक्त इव प्रयामि ॥९॥

अथवा किं विचारितेन ? अधिकरणमण्डपमेव गच्छामि। भद्र शोधनक, अधिकरणस्य मार्गमादेशय।

६२. शोधनकः—एत्वेत्वार्यः।
(इति परिक्रामतः)

६३. चारुदत्तः—(सशंकम्) तत्किमपरम् ?

रूक्षस्वरं वाशति वायसोऽय-
ममात्यभृत्या मुहुराह्वयन्ति।
सव्यं च नेत्रं स्फुरति प्रसह्य,
ममानिमित्तानि हि खेदयन्ति॥१०॥

शोधनकः—एत्वेत्वार्यः स्वैरमसंभ्रान्तम्।

६४. चारुदत्तः—(परिक्रम्याग्रतोऽवलोक्य च)

शुष्कवृक्षस्थितो ध्वांक्ष आदित्याभिमुखस्तथा।
मयि चोदयते वामं चक्षुर्घोरमसंशयम्॥११॥

५९. शोधनक—जो आर्य आज्ञा देते हैं। (निकलकर चारुदत्तके साथ प्रवेश करके) आओ, आओ आर्य।

६०. चारुदत्त—(सोचते)
शील और कुलके साथ (मुझसे) राजा परिचित है, मेरा,
यह बुलाया जाना सचमुच ही शंकास्पद है॥८॥

६१. (तर्क करते अपने आपसे)
क्या उसे बन्धन-मुक्त जान लिया।
मैंने रास्तेमें रथसे हटाया।
या गुप्तचर आंखोंवाले राजाके कानमें पड़ा,
जिससे कि मैं इस तरह अभियुक्त की तरह (ले जाया) जा रहा हूं॥९॥
अथवा विचारनेसे क्या फायदा? अधिकरण-मंडप ही जा रहा हूं। भद्र शोधनक, अधिकरण (न्यायालय) का मार्ग बतला।

६२. शोधनक—आयें, आयें, आर्य।
(दोनों परिक्रमा करते हैं)

६३. चारुदत्त—(शंकायुक्त) तो और दूसरा क्या?
यह कौआ रूखे स्वरसे बोल रहा है,
फिर अमात्यके नौकर बुला रहे हैं।
और मेरी बाईं आंख जोरसे फड़क रही है,
मेरे अपशकुन (मुझे) खिन्न कर रहे हैं॥१०॥
शोधनक—आयें, आयें आर्य, स्वच्छन्द निश्चिन्त।

६४. चारुदत्त—(परिक्रमा करके और देखकर)
सूखे वृक्षपर बैठा तथा सूर्यकी ओर मुंह किये कौआ है। और मेरा बायां नेत्र निश्चय घोर (नाश) बतला रहा है॥११॥

६५. (पुनरन्यतोऽवलोक्य) अये, कथमयं सर्पः ?

मयि विनिहतदृष्टिर्भिन्ननीलांजनाभः,
स्फुरितविततजिह्वः शुक्लदंष्ट्राचतुष्कः।
अभिपतति सरोषो जिह्मिताध्मातकुक्षि-
र्भुजगपतिरयं मे मार्गमाक्रम्य सुप्तः ॥१२॥

६६. अपि च, इदम्

स्खलति चरणं भूमौ न्यस्तं न चार्द्रतमा मही,
स्फुरति नयनं वामो बाहुर्मुहुश्च विकम्पते।
शकुनिरपरश्चायं तावद्विरौति हि नैकशः,
कथयति महाघोरं मृत्युं न चात्र विचारणा ॥१३॥

सर्वथा देवताः स्वस्ति करिष्यन्ति।
शोधनकः—एत्वेत्वार्यः। इममधिकरणमण्डपं प्रविशत्वार्यः।

६७. चारुदत्तः—(प्रविश्य, समन्तादवलोक्य) अहो, अधिकरण-मण्डपस्य परा श्रीः। इह हि—

चिन्तासक्तनिमग्नमन्त्रिसलिलं दूतोर्मिशंखाकुलम्,
पर्यन्तस्थितचारनक्रमकरं नागाश्वहिंस्राश्रयम्।
नानावाशकवंकपक्षिरचितं कायस्थसर्पास्पदं,
नीतिक्षुण्णतटं च राजकरणं हिंस्रैः समुद्रायते॥१४॥

भवतु। (प्रविशं छिरोभिघातमभिनीय, सवितर्कम्) अहह इदमपरम्—

सव्यं मे स्पन्दते चक्षुर्विरौति वायसस्तथा।
पन्थाः सर्पेण रुद्धोयं स्वस्ति चास्मासु दैवतः ॥१५॥

तावत्प्रविशामि। (इति प्रविशति)

६५. (फिर दूसरी ओर देखकर) अये, क्यों यह सांप :
अंजन सा अतिनील हिलती फैली जिह्वावाला,
सफेद चार दाढ़ोंयुक्त कुपित,
कुटिल हांफती कांखवाला महाभुजंग,
मेरे ऊपर नजर गड़ाये मेरे मार्गको रोककर लेटा है ॥१२॥

६६. और यह भी—
भूमिपर पड़ा (मेरा) चरण डगमगाता है और पृथिवी गीली नहीं है। नेत्र फड़क रहा है, और बाईं बाहु बार-बार कांप रही है। यह दूसरा पक्षी बार-बार चिल्ला रहा है, (जो) महाघोर मृत्युको बतला रहा है, इसमें शक नहीं ॥१३॥
सर्वथा देवता मंगल करें।
शोधनक—आयें, आयें आर्य। इस अधिकरणमंडपमें प्रवेश करें आर्य।

६७. चारुदत्त—(प्रवेश करके चारों ओर देखकर) अहो, अधिकरण मंडपकी परम शोभा—
यहां तो—
चिंतासक्त निमग्न मन्त्री रूपी सलिलवाला, दूतरूपी लहरोंकी आकुल शंकासे चारों ओर स्थित गुप्तचररूपी नाक-मगरवाला, गज-अश्वरूपी हिंसकोंका आश्रय। नाना कांव-कांव करने वाले नाना पक्षीसे बना, कायस्थरूपी सर्पोंका निवास, राजनीतिसे ध्वस्त किये तटवाला, यह अधिकरण हिंसकों से समुद्र सा है ॥१४॥
अच्छा (चलते हुए सिरपर धक्काका अभिनय करके सोचते) अहो, यह दूसरा (अशगुन)—
मेरी बाईं आंख फड़क रही है, और कौआ बोल रहा है।
यह मार्ग सांपसे रुद्ध है, देवता हमारा मंगल करें ॥१५॥
तो प्रवेश करूँ। (प्रवेश करता है)

६८. अधिकरणिकः—अयमसौ चारुदत्तः । य एष—

घोणोन्नतं मुखमपांगविशालनेत्रं
नैतद्धि भाजनमकारणदूषणानाम्।
नागेषु गोषु तुरगेषु तथा नरेषु
न ह्याकृतिः सुसदृशं विजहाति वृत्तम् ॥१६॥

६९. चारुदत्तः—भोः, अधिकृतेभ्यः स्वस्ति । हंहो नियुक्ताः अपि कुशलं भवताम् ?
अधिकरणिकः—(ससंभ्रमम्) स्वागतमार्यस्य । भद्र शोधनक, आर्यस्यासनमुपनय ।

७०. शोधनकः—(आसनमुपनीय) इदमासनम् । अत्रोपविशत्वार्यः ।

(चारुदत्त उपविशति)

शकारः—(सक्रोधं) आगतोऽसि रे स्त्रीघातक, आगतोऽसि। अहोऽधर्म्यो व्यवहारः, यदेतस्मै स्त्रीघातकायासनं दीयते । भवतु, ननु दीयताम् ।

७१. अधिकरणिकः—आर्य चारुदत्त, अस्ति भवतोऽस्या आर्याया दुहित्रा सह प्रसक्तिः प्रणयः प्रीतिर्वा ?
चारुदत्तः—कस्याः ?

७२. अधिकरणिकः—अस्याः (इति वसन्तसेनामातरं दर्शयति)
चारुदत्तः—उत्थाय आर्ये, अभिवादये ।
वृद्धा—जात, चिरं मे जीव । (स्वगतं) अयं स चारुदत्तः सुनिक्षिप्तं खलु दारिकया यौवनम् ।

७३. अधिकरणिकः—आर्य, गणिका तव मित्रम् ?

(चारुदत्तो लज्जां नाटयति)

६८. अधिकरणिक—सो यह चारुदत्त है, जो कि यह—

ऊँची नाकवाला मुख, पलकयुक्त विशालनेत्र,
अकारण यह दोषी नहीं हो सकते।
नागों, बैलों, घोड़ों और मनुष्योंमें (उनका)
आकार सुन्दर शीलको नहीं छोड़ता ॥१६॥

६९. चारुदत्त—भो, अधिकारियोंके लिए स्वस्ति। अहो नियुक्त (पुरुषो), आप लोगोंका कुशल तो है?

अधिकरणिक—(घबड़ाहटके साथ) आर्यका स्वागत है। शोधनक, आर्यके लिए आसन लाओ।

७०. शोधनक—(आसन लाकर) यह आसन है। आर्य यहाँ बैठें।

(चारुदत्त बैठते हैं)

शकार—(क्रोधके साथ) आ गया रे स्त्रीघातक, आ गया? अहो, धर्मानुसारी व्यवहार, जो कि इस स्त्रीघातकको आसन दिया जा रहा है। (गर्वके साथ) अच्छा, तो दीजिए।

७१. अधिकरणिक—आर्य चारुदत्त, इस आर्याकी लड़कीके साथ आपकी प्रसक्ति, प्रणय या प्रीति है?

चारुदत्त—किसकी?

७२. अधिकरणिक—इसकी (वसन्तसेनाकी माँको दिखलाता है)।

चारुदत्त—(उठकर) आर्ये, अभिवादन करता हूँ।

बूढ़ी—मेरे पुत्र, चिरञ्जीव। (अपने आपसे) यही वह चारुदत्त है। बेटीने (अपने) यौवनको सुन्दर जगह अर्पण किया।

७३. अधिकरणिक—आर्य, गणिका तुम्हारी प्रेमिका है?

(चारुदत्त लज्जा प्रदर्शित करता है)

७४. शकारः—

लज्जया भीरुतया वा चारित्रमलीकं निगूहितुम्।
स्वयं मारयित्वार्थकारणादिदानीं गूहति न तद्धि भट्टकः। १७।

श्रेष्ठिकायस्थौ—आर्य चारुदत्त, भण ? अलं लज्जया। व्यवहारः खल्वेषः।

७५. चारुदत्तः—(सलज्जम्) भो अधिकृताः, मया कथमीदृशं वक्तव्यम्—"यथा गणिका मम मित्र" मिति ? अथवा यौवनमत्रापराध्यति, न चारित्र्यम्।

७६. अधिकरणिकः—

व्यवहारः सविघ्नोऽयं त्यज्य लज्जां हृदि स्थिताम्।
ब्रूहि सत्यमलं धैर्यं छलमत्र न गृह्यते ॥१८॥

७७. अलं लज्जया, व्यवहारस्त्वां पृच्छति।

चारुदत्तः—अधिकृत, केन सह मम व्यवहारः ?

शकारः—(साटोपम्) मया सह व्यवहारः।

७८. चारुदत्तः—त्वया सह मम व्यवहारः सुदुःसहः।

शकारः—अरे स्त्रीघातक, तां तादृशीं रत्नशतभूषणां वसन्तसेनां मारयित्वा, सांप्रतं कपटकापटिको भूत्वा, निगूहसि ?

७९. चारुदत्तः—असंबद्धः खल्वसि।

अधिकरणिकः—आर्य चारुदत्त, अलमनेन, ब्रूहि सत्यम्। अपि गणिका तव मित्रम्।

८०. चारुदत्तः—एवमेव।

अधिकरणिकः—आर्य, वसन्तसेना क्व ?

८१. चारुदत्तः—गृहं गता।

श्रेष्ठिकायस्थौ—कथं गता, कदा गता, गच्छन्ती वा केनानुगता ?

७४. शकार—

लज्जा या भीरुतासे अनुचित आचरणको छिपानेके लिये,
धनके लिये स्वयं मारकर उसे अब भंडुआ छिपाता है ॥१७॥

श्रेष्ठी और कायस्थ—आर्य चारुदत्त, कहें लज्जा छोड़ें। यह व्यवहार है।

७५. चारुदत्त—(लज्जापूर्वक) हे अधिकारियो, मैं कैसे कहूँ, कि गणिका मेरी मित्र है। अथवा यह यौवनका अपराध है, चरित्रका नहीं।

७६. अधिकरणिक—

यह खतरनाक व्यवहार है, मनकी लज्जा छोड़ो।
सच बोलो, धीरता रहने दो, यहाँ छल नहीं चलता ॥१८॥

७७. लज्जा रहने दो, व्यवहार तुमसे पूछता है।

चारुदत्त—अधिकारी, किसके साथ मेरा व्यवहार (मुकदमा) है?

शकार—(फूलकर) अरे, मेरे साथ व्यवहार है।

७८. चारुदत्त—तेरे साथ मेरा व्यवहार, बहुत मुश्किल है।

शकार—अरे स्त्रीघातक, वैसी सौ रत्नोंकी भूषणवाली वसन्तसेनाको मार कर अब कपट-कपटी बनकर छिपाता है?

७९. चारुदत्त—फजूल है तू।

अधिकरणिक—आर्य चारुदत्त, इसे रहने दो, सच बोलो। क्या गणिका तुम्हारी मित्र है?

८०. चारुदत्त—ऐसा ही है।

अधिकरणिक—आर्य, वसन्तसेना कहाँ है?

८१. चारुदत्त—घर गई।

श्रेष्ठी और कायस्थ—कैसे गई, कब गई, और जाती हुई किसके साथ गई?

८२. चारुदत्तः—(स्वगतम्) किं प्रच्छन्नं गतेति ब्रवीमि?
श्रेष्ठिकायस्थौ—आर्य, कथय।

८३. चारुदत्तः—गृहं गता किमन्यद् ब्रवीमि?
शकारः—मदीयं पुष्पकरण्डकजीर्णोद्यानं प्रवेश्यार्थनिमित्तं बाहुपाशबलात्कारेण मारिता। अये, साम्प्रतं वदसि गृहं गतेति?

८४. चारुदत्तः—आः, असंबद्धप्रलापिन्—

अभ्युक्षितोऽसि सलिलैर्न बलाहकानां,
चाषाग्रपक्षसदृशं भृशमन्तराले।
मिथ्यैतदाननमिदं भवतस्तथा हि,
हेमन्तपद्ममिव निष्प्रभतामुपैति॥१९॥

८५. अधिकरणिकः—(जनान्तिकम्)

तुलनं चाद्रिराजस्य समुद्रस्य च तारणम्।
ग्रहणं चानिलस्येव चारुदत्तस्य दूषणम्॥२०॥

८६. (प्रकाशम्) आर्यचारुदत्तः खल्वसौ कथमिदानीं अकार्यं करिष्यति?
शकारः—किं पक्षपातेन? व्यवहारो दृश्यते।

८७. अधिकरणिकः—अपेहि मूर्ख,

वेदार्थान्प्राकृतस्त्वं वदसि, न च ते जिह्वा निपतिता,
मध्याह्ने वीक्षसेऽर्कं, न तव सहसा दृष्टिर्विचलिता।
दीप्ताग्नौ पाणिमन्तः क्षिपसि, स च ते दग्धो भवति नो,
चारित्र्याच्चारुदत्तं चलयसि, न ते देहं हरति भूः॥२१॥

८८. आर्यचारुदत्तः कथमकार्यं करिष्यति?

कृत्वा समुद्रमुदकोच्छ्रयमात्रशेषं,
दत्तानि येन हि धनान्यनपेक्षितानि।
स श्रेयसां कथमिवैकनिधिर्महात्मा,
पापं करिष्यति धनार्थमवैरिजुष्टम्॥२२॥

८२. चारुदत्त—(अपने आपसे) क्या छिपकर गई यह कहूँ ?
श्रेष्ठी और कायस्थ—आर्य कहें।

८३. चारुदत्त—घर गई, और क्या बतलाऊँ ?
शकार—मेरे पुष्पकरंडक जूने उद्यानमें ले जाकर धनके लिये बाहुपाशसे बलात् मार डाला। अये, अब कहता है घर गई ?

८४. चारुदत्त—आह, बकवास करनेवाले,
बादलोंके जलसे तू धुला नहीं है,
चाशके अगले पंखके समान भीतरसे,
यह आपका मुख अत्यन्त झूठा है,
जो जाड़ेके कमलकी तरह निष्प्रभ हो रहा है ॥१९॥

८५. अधिकरणिक—(अपनोंमें)
पर्वतराजको तोलने और समुद्र पार होने,
और वायुको पकड़ने जैसा ही चारुदत्तके ऊपर दोष लगाना है ॥२०॥

८६. (प्रकट) आर्य चारुदत्त हैं, कैसे यह अकरणीय करेंगे।
शकार—पक्षपात करनेसे क्या लाभ ? व्यवहार (साफ) दिखाई दे रहा है।

८७. अधिकरणिक— हट रे, मूर्ख—
शकार तू वेदके अर्थको कह रहा है, और तेरी जीभ नहीं गिरती, मध्याह्नमें सूर्यको देख रहा है, तेरी दृष्टि सहसा विचलित नहीं होती। प्रज्वलित अग्निके भीतर हाथ डाल रहा है, और वह तेरा दग्ध नहीं होता। सदाचारसे चारुदत्तको विचलित कर रहा है, और धरती तेरी देहको नहीं हरती ॥२१॥

८८. आर्य चारुदत्त कैसे यह अकार्य करेंगे ?
समुद्रके जलकी ऊँचाई मात्र बचा रखकर,
जिसने बेपर्वाह ही धन दे डाला।
वह भलाइयोंका एक मात्र निधि महात्मा,
धनके लिये कायरोंका सा पाप करेगा ॥२२॥

८९. वृद्धा—हताश, यस्तदानीं न्यासीकृतं सुवर्णभाण्डं रात्रौ चौरैरपहृतमिति तस्य कारणाच्चतुःसमुद्रसारभूतां रत्नावलीं ददाति, स इदानीमर्थकल्यवर्तस्य कारणादिदमकार्यं करोति ? हा जाते, एहि मे पुत्रि, (इति रोदिति)
अधिकरणिकः—आर्यचारुदत्त, किमसौ पद्भ्यां गता, उत प्रवहणेनेति ?

९०. चारुदत्तः—ननु मम प्रत्यक्षं न गता। तन्न जाने किं पद्भ्यां गता, उत प्रवहणेनेति।

(प्रविश्य, सामर्षः)

वीरकः—

पादप्रहारपरिभवविमाननाबद्धगुरुकवैरस्य।
अनुशोचत इयं कथमपि रात्रिः प्रभाता मे ॥२३॥

तद् यावद् अधिकरणमण्डपं उपसर्पामि (प्रविष्टकेन) सुखं आर्यमिश्राणाम् ?

९१. अधिकरणिकः—अये, नगररक्षाधिकृतो वीरकः। किमागमन-प्रयोजनम् ?
वीरकः—ही, बन्धनभेदनसंभ्रमे आर्यकमन्वेषयन्, अपवारितं प्रवहणं व्रजतीति विचारं कुर्वन्नन्वेषयन्, "अरे ! त्वयाप्यालोकितं, मयाप्यालोकितव्यं" इति भणता चन्दनमहत्तरकेण पादेन ताडितोऽस्मि। एतच्छ्रुत्वा आर्यमिश्राः प्रमाणम्।

९२. अधिकरणिकः—भद्र, जानीषे कस्य तत्प्रवहणमिति ?
वीरकः—अस्यार्यचारुदत्तस्य। वसन्तसेनारूढा पुष्पकरण्डकजीर्णोद्यानं क्रीडितुं नीयत इति प्रवहणवाहकेन कथितम्।
शकारः—पुनरपि श्रुतमार्यैः।

८९. वृद्धा—हताश, जो उस समय अमानत रक्खे सोनेके आभूषणको रातमें चोरों द्वारा चुराये जानेपर उसकी जगह चारों समुद्रोंका सार रत्नावली दे देता है, वह अब धनके लिये इस अकार्यको करेगा ? हा बेटी, आ मेरी पुत्री। (रोती है)

अधिकरणिक—आर्य चारुदत्त, क्या वह पैदल गई या रथसे ?

९०. चारुदत्त—मेरे सामने नहीं गई, सो नहीं जानता, पैदल गई या रथसे।

(प्रवेश करके क्रोधके साथ)

वीरक—पाद प्रहारके अपमानसे पीड़ित भारी बैरसे।
सोचते हुये मेरी यह रात कैसे करके सवेरा हो गई ॥२३॥

सो अधिकरणमण्डपमें जाता हूँ। (प्रवेश करके) सुख तो है आर्योंको ?

९१. अधिकरणिक—अये, नगररक्षाधिकारी वीरक. वीरक, (तुम्हारे) आनेका क्या प्रयोजन है ?

वीरक—हाँ, बन्दीखाना टूटनेके उतावलेपनमें आर्यकको ढूंढते, "ढँका हुआ रथ जा रहा है", यह विचार तलाशी लेने "अरे तूने भी देखा, मैंने भी देखा" यह कहते चन्दनने मुझे लात मारी। यह सुनकर अब (आप) आर्य जो उचित समझें, (सो करें)।

९२. अधिकरणिक—भद्र, जानते हो, किसका वह रथ था ?

वीरक—हाँ आर्य चारुदत्तका। "वसन्तसेना चढ़कर पुष्पकरण्डक जीर्ण उद्यानमें विहारके लिये ली जा रही है", रथवानने कहा।

शकार—फिरभी सुना आर्योंने ?

९३. अधिकरणिकः—

एष भो निर्मलज्योत्स्नो राहुणा ग्रस्यते शशी ॥
जलं कूलावपातेन प्रसन्नं कलुषायते ॥२४॥

वीरकः—पश्चादिह भवतो न्यायं द्रक्ष्यामः। य एषोऽधिकरणद्वार्यश्वस्तिष्ठति, तमेनमारुह्य गत्वा पुष्पकरण्डकोद्यानं दृश्यतामस्ति तत्र काचिद् विपन्ना स्त्री न वेति।

९४. वीरकः—यदार्य आज्ञापयति। (इति निष्क्रम्य, प्रविश्य च) गतोऽस्मि तत्र। दृष्टं च मया स्त्रीकलेवरं श्वापदैर्विलुप्यमानम्।

श्रेष्ठिकायस्थौ—कथं त्वया ज्ञातं स्त्रीकलेवरमिति ?

९५. वीरकः—सावशेषैः केशहस्तपाणिपादैरुपलक्षितं मया।

अधिकरणिकः—अहो, धिक् वैषम्यं लोकव्यवहारस्य-

यथा यथैवं निपुणं विचार्यते, तथा तथा संकटमेव दृश्यते ।
अहो सुसन्ना व्यवहारनीतयो, मतिस्तु गौः पंकगतेव सीदति ॥२५॥

९६. चारुदत्तः—(स्वगतम्)

दुष्टात्मा परगुणमत्सरी मनुष्यो रागान्धः परमिह हन्तुकामबुद्धिः
किं यो यद्वदति मृषैव जातिदोषात् ग्राह्यं भवति न तद्विचारणीयं ॥२७॥

९७. अपि च,—

यो हि लतां कुसुमितामपि पुष्पहेतोराकृष्य नैव कुसुमावचयंकरोमि
सोऽहं कथं भ्रमरपक्षरुचौ सुदीर्घे केशे प्रगृह्य रुदतीं प्रमदां निहन्मि ॥२८॥

९३. अधिकरणिक—

भो, यह निर्मल चांदनीवाला चन्द्रमा राहुसे ग्रसा जा रहा है।
तट के गिरनेसे स्वच्छ जल मलिन हो रहा है ॥२४॥

वीरक, आपके न्याय (मुकदमे) को पीछे देखेंगे। अधिकरणके दरवाजेपर जो यह घोड़ा खड़ा है, उसपर चढ़ जाकर पुष्पकरंडक उद्यानको देखें, वहाँ कोई मरी स्त्री है या नहीं।

९४. वीरक—जो आर्य आज्ञा देते हैं। (बाहर जाकर और फिर प्रवेश कर) वहाँ गया था। मैंने जानवरोंसे विलुप्त किये जाते स्त्रीशरीरको देखा।

श्रेष्ठी और कायस्थ—कैसे तुमने जाना, कि स्त्रीशरीर है?

९५. वीरक—बचे हुये केश, हाथ, पाणि, पैरोंसे मैंने समझा।

अधिकरणिक—अहो, लोक-व्यवहारकी विषमताको धिक्कार है।
जैसे-जैसे इसे अच्छी तरह विचारते हैं, वैसे-वैसे संकट ही दिखाई दे रहा है। अहो सुगठित व्यवहारकी नीतियाँ, जहाँ बुद्धि पंकमें पड़ी गौकी तरह फंस जाती है ॥२५॥

९६. चारुदत्त—(अपने आपसे)

दुष्टात्मा दूसरेके गुणोंमें ईर्ष्यालु रागसे अन्धा मनुष्य दूसरेको मारने की इच्छासे जो कहता है, जातिके दोषसे वह झूठ ही क्या ग्राह्य होता है, वह विचारणीय नहीं ॥२७॥

९७. और भी—

जो मैं फूली लताको फूलके लिये झुकाकर नहीं चुनता।
सो मैं भंवरेके पंखों से (काले) लम्बे केशोंको पकड़कर रोती स्त्रीको मारूँगा ॥२८॥

९८. शकारः—हंहो अधिकरणभोजकाः, किं यूयं पक्षपातेन व्यवहारं पश्यथः, येनाद्याप्येष हताशश्चारुदत्त आसने धार्यते ?

अधिकरणिकः—भद्र शोधनक, एवं क्रियताम्।

(शोधनकस्तथा करोति)

९९. चारुदत्तः—विचार्यताम्। भोः अधिकृताः, विचार्यताम् (इत्यासनादवतीर्य भूमावुपविशति)

शकारः—(स्वगतं, सहर्षं नर्तित्वा) ही, अनेन मया कृतं पापमन्यस्य मस्तके निपतितम्। तद्यत्र चारुदत्त उपविशति तत्राहमुपविशामि। (तथा कृत्वा) चारुदत्त, पश्य-पश्य माम्। तद् भण भण मया मारितेति।

१००. चारुदत्तः—भो अधिकृताः (दुष्टात्मा इत्यादि पठति) (सनिःश्वासं, स्वगतम्)

मैत्रेय भोः, किमिदमद्य ममोपघातो,
हा ब्राह्मणि, द्विजकुले विमले प्रसूता।
हा रोहसेन, हि न पश्यसि मे विपत्तिं,
मिथ्यैव नन्दसि परव्यसनेन नित्यम्॥२१॥

प्रेषितश्च मया तद्वार्तान्वेषणाय मैत्रेयो वसन्तसेनासकाशं शकटिकानिमित्तं च तस्य मस्तान्यलंकरणानि प्रत्यर्पयितुं, तत्कथं चिरयते।

(ततः प्रविशति गृहीताभरणो विदूषकः)

९८. शकार—हे हो अधिकरणभोजको, क्यों तुम पक्षपात से व्यवहारको देख रहे हो, जो अब भी इस अभागे चारुदत्तको आसनपर बैठाये हुये हो ?

अधिकरणिक—भद्र शोधनक, ऐसा (ही) करो।

(शोधनक वैसा करता है)

९९. चारुदत्त—विचार कीजिये, हे अधिकारियो, विचार कीजिये। (आसनसे उठ कर जमीनपर बैठ जाता है)

शकार—(हर्षके साथ नाच कर) ही इस तरह अपने किये पापको दूसरे के मत्थे डाला। सो जहाँ चारुदत्त बैठा है, वहीं (मैं भी) बैठता हूँ। (वैसा करके) चारुदत्त, देख-देख (तो) मुझे। सो कह-कह, कि मैंने मारा।

१००. चारुदत्त—हे अधिकारियो, (दुष्टात्मा आदि पढ़ता है)

(उसास लेकर अपने आपसे)

हे मैत्रेय, क्या आज यह मेरा मरण है,
विमल द्विजकुलमें जनमी हा ब्राह्मणी,
हा रोहसेन, मेरी विपद्को नहीं देख रहा है।
दूसरेके दुःखसे झूठ ही तू आनन्दित होता है।।२९।।

मैंने उसका पता लगानेके लिये मैत्रेयको, वसन्तसेना द्वारा शकटिकाके लिये दिये आभूषणोंको लौटानेके वास्ते भेजा था। सो वह क्यों देर कर रहा है ?

(आभरण बगलमें दाबे विदूषक प्रवेश करता है)

१०१. विदूषकः—प्रेषितोऽस्म्यार्यचारुदत्तेन वसन्तसेनासकाशम्, तत्रालंकरणानि गृहीत्वा यथा "आर्य मैत्रेय, वसन्तसेनया वत्सो रोहसेन आत्मनोऽलंकारेणालंकृत्य जननीसकाशं प्रेषितः। अस्य आभरणं दातव्यं, न पुनर्गृहीतव्यम्, तत्समर्पय" इति। तद्यावद्वसन्तसेनासकाशमेव गच्छामि।

(परिक्रम्यावलोक्य च आकाशे) कथं भावरेभिलः? भो भावरेभिल, किंनिमित्तं त्वमुद्विग्न उद्विग्न इव लक्ष्यसे? (आकर्ण्य) किं भणसि "प्रियवयस्यश्चारुदत्तोऽधिकरणमण्डप आहूत इति"? तन्न खल्वल्पेन कार्येण भवितव्यम्। (विचिन्त्य) तत्पश्चाद् वसन्तसेनासकाशं गमिष्यामि, अधिकरणमण्डपं तावद् गमिष्यामि। अयमधिकरणमण्डपः। तद्यावत्प्रविशामि। (प्रविश्य) सुखमधिकरणभोजकानाम्। कुत्र मम प्रिय वयस्यः?

१०२. अधिकरणिकः—नन्वेष तिष्ठति।

विदूषकः— वयस्य, स्वस्ति ते।

चारुदत्तः—भविष्यति।

१०३. विदूषकः—अपि क्षेमं ते?

चारुदत्तः—एतदपि भविष्यति।

विदूषक—भो वयस्य, किंनिमित्तमुद्विग्न उद्विग्न इव लक्ष्यसे? कुतो वाऽऽहूतः?

१०४. चारुदत्तः—वयस्य—

मया खलु नृशंसेन परलोकमजानता।
स्त्री रतिर्वा विशेषेण शेषमेषोऽभिधास्यति॥२०॥

विदूषकः—किं किम्?

१०१. विदूषक—आर्य चारुदत्तने मुझे वसन्तसेनाके पास अलंकार देकर भेजा, "आर्य मैत्रेय वसन्तसेनाने वत्स रोहसेनको अपने अलंकारसे अलंकृत करके मां के पास भेजा था। उसे आभरण देना चाहिये, न कि (उससे) लेना चाहिये, सो (इसे) दे आओ।" सो वसन्तसेनाके पास जा रहा हूँ। (परिक्रमा करते आकाशकी ओर देख) क्यों श्री रेभिल हैं? हे श्री रेभिल, क्यों तुम उद्विग्नसे दिखाई देते हो। (सुनकर) क्या कहते हो: "प्रिय मित्र चारुदत्त अधिकरणमण्डपमें बुलाये गये?" यह छोटा-मोटा काम नहीं होगा। (सोचकर) तो वसन्तसेना के पास पीछे जाऊँगा। अधिकरणमण्डपमें (पहिले) चलूं। यह अधिकरणमण्डप है, सो प्रवेश करता हूँ। (प्रवेश करके) अधिकरण भोजकोंको सुख तो है? कहाँ है मेरा प्रिय मित्र?

१०२. अधिकरणिक—यह रहे।

विदूषक—वयस्य, स्वस्ति तुम्हें।

चारुदत्त—होगी।

१०३. विदूषक—तुम्हारा क्षेम तो है?

चारुदत्त—यह भी होगा।

विदूषक—हे मित्र, किसलिये उद्विग्नसे दिखाई दे रहे हो? और किसलिये (यहाँ) बुलाये गये?

१०४. चारुदत्त—मित्र,

परलोकके न जाननेवाले मुझ नृशंसने,
स्त्री या विशेष करके रतिको, शेष यह कहेगा ॥६७॥

विदूषक—क्या-क्या?

१०५. चारुदत्तः—(कर्णे) एवमेवम्
विदूषकः—क एवं भणति ?
१०६. (संज्ञया शकारं दर्शयति) नन्वेष तपस्वी हेतुभूतः कृतान्तो मां व्याहरति।
विदूषकः—(जनान्तिकम्) एवं किमर्थं न भण्यते गृहं गतेति।
१०७. चारुदत्त :—उच्यमानमप्यवस्थादोषान्न गृह्यते।
१०८. विदूषकः—भो भो आर्याः, येन तावत्पुरस्थापनविहारारामदेवालयतडागकूपयूपैरलंकृता नगर्युज्जयिनी, सोऽनीशोऽर्थकल्यवर्तकारणादीदृशमकार्यमनुतिष्ठतीति ? अरे रे कुलटापुत्र, राजश्यालसंस्थानक, उच्छृंखल, कृतजनदोषभाण्डबहुसुवर्णमण्डितमर्कटक, भण भण ममाग्रतः, य इदानीं मम प्रियवयस्यः कुसुमितां माधवीलतामप्याकृष्य कुसुमावचयं न करोति, कदाऽप्याकृष्टतया पल्लवच्छेदो भवतीति, स कथमीदृशमकार्यमुभयलोकविरुद्धं करोति ? तिष्ठ रे कुट्टिनीपुत्र, तिष्ठ, यावदेतेन कुटिलेन दण्डकाष्टेन तव मस्तकं शतखण्डं करोमि।
१०९. शकारः—(सक्रोधम्) शृण्वन्तु शृण्वन्त्वार्यमिश्राः, चारुदत्तेन सह मम विवादो व्यवहारो वा, तत्किमर्थमेष काकपदशीर्षमस्तको मम शिरः शतखण्डं करोति ? मा तावत्, रे दास्याः पुत्र दुष्टवटुक।
(विदूषको दण्डकाष्ठमुद्यम्य पूर्वोक्तं पठति, शकारः सक्रोधमुत्थाय ताडयति, विदूषकः प्रतीपं ताडयति, अन्योऽन्यं ताडयतः विदूषकस्य कक्षदेशादाभरणानि पतन्ति)

१०५. चारुदत्त---(कानमें) ऐसा-ऐसा।
विदूषक---कौन ऐसा कहता है?

१०६. चारुदत्त---(संकेतसे शकारको दिखलाता है) यही बेचारा हेतु बन यमराज सा मुझपर मुकदमा कर रहा है।
विदूषक---(आपसमें) क्यों नहीं कहते, कि घर गई है।

१०७. चारुदत्त---कहनेपर भी परिस्थितिके दोषके कारण नहीं माना जा सकता।

१०८. विदूषक---भो, भो आर्यो, जिसने कि पुरकी स्थापनामें विहार, आराम, देवालय, तड़ाग, कूप और यज्ञयूपोंसे उज्जयिनी नगरीको अलंकृत किया, वह बेचारा धनके लिये ऐसा कार्य करेगा? (क्रोधके साथ) अरे रे, छिनालके बेटे, राजाके साले संस्थानक, उजड्ड, लोगोंपर किये दोषोंके भांड, बहुत सोनेसे मण्डित बानर, कह, कह मेरे सामने, जो मेरा मित्र फूली चमेलीकी लताको खींचकर फूल नहीं चुनता, कि खींचनेपर पल्लव टूट जायगी; वह दोनों लोकोंके विरुद्ध ऐसे अकार्यको कैसे करेगा? ठहर रे कुटनीके बेटे, ठहर, जब तक कि इसी बीच में इस टेढ़े डण्डेसे तेरे सिरको सौ खण्ड नहीं बना देता।

१०९. शकार---(क्रोधके साथ) सुनें, सुनें आर्यो, चारुदत्तके साथ मेरा विवाद या व्यवहार है, सो यह सिर-मस्तकपर चुटियावाला मेरे सिरको क्यों सौ खण्ड बनाता है? मत रे दासीके बेटे, दुष्ट बटुक। (विदूषक डण्डेको उठाकर पहिलेकी तरह कहता है, शकार क्रोधके साथ उठाकर मारता है। विदूषक उलटे मारता है। दोनों एक दूसरेको पीटते हैं, विदूषकको काँखसे आभूषण गिर जाते हैं)

११०. शकारः—(तानि गृहीत्वा, दृष्ट्वा ससाध्वसं) पश्यन्तु पश्यन्त्वार्याः, एते खलु तस्यास्तपस्विन्या अलंकाराः। अस्यार्थकल्यवर्तस्य कारणादेषा मारिता व्यापादिता च।

(अधिकृताः सर्वेऽधोमुखाः स्थिताः)

१११. चारुदत्तः—(जनान्तिकम्)

अयमेवंविधे काले दृष्टो भूषणविस्तरः।
अस्माकं भाग्यवैषम्यात्पतितः पातयिष्यति ॥३१॥

विदूषकः—भोः, किमर्थं भूतार्थो न निवेद्यते ?

११२. चारुदत्तः—वयस्य !

दुर्बलं नृपतेश्चक्षुर्नैतत्तत्त्वं निरीक्षते।
केवलं वदतो दैन्यमश्लाघ्यं मरणं भवेत् ॥३२॥

११३. अधिकरणिकः—कष्टं भो, कष्टम्,

अंगारकविरुद्धस्य प्रक्षीणस्य बृहस्पतेः।
ग्रहोऽयमपरः पार्श्वे धूमकेतुरिवोत्थितः ॥३३॥

श्रेष्ठिकायस्थौ—(विलोक्य, वसन्तसेनामातरमुद्दिश्य) अवहिता तावदार्येदं सुवर्णभाण्डमवलोकयतु तदेवेदं न वेति ?

११४. वृद्धा—(अवलोक्य) सदृशमेतद्, न पुनस्तत्।

शकारः—आः, वृद्धकुट्टनि, अक्षिभ्यां मन्त्रितं वाचा मूकितम्।

वृद्धा—हताश, अपेहि।

श्रेष्ठिकायस्थौ—अप्रमत्तं कथय, तदेवैतन्न वेति ?

११५. वृद्धा—आर्य, शिल्पिकुशलतयावबध्नाति दृष्टिम्, न पुनस्तत्।

अधिकरणिकः—भद्रे, अपि जानास्येतान्याभरणानि ?

११६. वृद्धा—ननु भणामि, न खलु न खल्वनभिज्ञातः। अथवा कदापि शिल्पिना घटितो भवेत्।

११०. शकार—(उन्हें ले देखकर जल्दीमें) देखें, देखें आर्यं, यह उसी बेचारीके आभूषण हैं, इसीके लिये वह मारी और व्यापादित की गई (सारे अधिकारी मुंह नीचा कर लेते हैं)।

१११. चारुदत्त—(आपसमें)
ऐसे समय हमारे भाग्यकी विषमतासे।
गिरा और देखा गया यह भूषण (मुझे) गिरायेगा ॥३१॥
विदूषक—हे, क्यों असली बात नहीं बतलाते?

११२. चारुदत्त—मित्र,
राजाकी आँख दुर्बल होती है, वह वास्तविकताको नहीं देखती।
(और) सिर्फ दीनता दिखलानेवालेका मरण अश्लाघनीय होता है ॥३२॥

११३. अधिकरणिक—कष्टं भो कष्टं,
मंगल (ग्रह) विरुद्ध होने, क्षीण बृहस्पतिके होने पर,
पासमें यह दूसरा (ग्रह) धूमकेतुकी तरह उग आया ॥३३॥
श्रेष्ठी और कायस्थ—(देखकर वसन्तसेनाकी मांसे) ध्यानसे आर्या, इस सोनेके आभूषणको देखें, यह वही है या नहीं?

११४. वृद्धा—(देखकर) समान है, किन्तु वही नहीं है।
शकार—हाँ, बूढ़ी कुटनी, आँखोंसे सलाह करती, मुंहसे मौन।
वृद्धा—हताश, हट परे।
श्रेष्ठी और कायस्थ—ठीकसे कहो, यह वही है या नहीं।

११५. वृद्धा—आर्य, शिल्पकारकी चतुरताके कारण आँखको भ्रम होता है, पर वह नहीं है।
अधिकरणिक—भद्रे, क्या इन आभरणोंको पहचानती है?

११६. वृद्धा—कह तो रही हूँ। नहीं, नहीं, यह बे-पहिचानके नहीं हैं। अथवा शायद शिल्पीने (वैसा) गढ़ा हो!

११७. अधिकरणिकः—पश्य श्रेष्ठिन् !

वस्त्वन्तराणि सदृशानि भवन्ति नूनं,
रूपस्य भूषणगुणस्य च कृत्रिमस्य।
दृष्ट्वा क्रियामनुकरोति हि शिल्पिवर्गः,
सादृश्यमेव कृतहस्ततया च दृष्टम् ॥३४॥

११८. श्रेष्ठिकायस्थौ—आर्यचारुदत्तीयान्येतानि।

चारुदत्तः—न खलु न खलु।

श्रेष्ठिकायस्थौ—तदा कस्य ?

चारुदत्तः—न खलु न खलु, इहात्र भवत्या दुहितुः।

११९. श्रेष्ठिकायस्थौ—कथमेतानि तस्या वियोगं गतानि ?

चारुदत्तः—एवं गतानि। आं, इदम्।

१२०. श्रेष्ठिकायस्थौ—आर्यचारुदत्त, अत्र सत्यं वक्तव्यम्, पश्य पश्य—

सत्येन सुखं खलु लभ्यते सत्यालापेन भवति पातकम्।
सत्यमिति द्वे अप्यक्षरे मा सत्यमलीकेन गूहय ॥३५॥

१२१. चारुदत्तः—आभरणान्याभरणानीति न जाने, किंत्व-स्मद्गृहादानीति जाने।

शकारः—उद्यानं प्रवेश्य प्रथमं मारयसि कपटकापटिकतया सांप्रतं निगूहसि ?

१२२. अधिकरणिकः—आर्यचारुदत्त, सत्यमभिधीयताम्—

इदानीं सुकुमारेऽस्मिन्निःशंकं कर्कशाः कशाः।
तव गात्रे पतिष्यन्ति सहास्माकं मनोरथैः ॥३६॥

११७. अधिकरणिक—देखो श्रेष्ठी—
भिन्न-भिन्न वस्तुयें भी एक समान होती हैं,
रूपको और कृत्रिम भूषण-गुणको,
देखकर शिल्पी लोग कारीगरीका अनुकरण करते हैं,
निपुणताके कारण समान दीखते हैं॥३४॥

११८. श्रेष्ठी और कायस्थ—आर्य चारुदत्तके हैं यह?
चारुदत्त—नहीं, नहीं, (ये) आपकी लड़कीके हैं।

११९. श्रेष्ठी और कायस्थ—कैसे यह उससे अलग हुये?
चारुदत्त—ऐसे हुये, हाँ यह।

१२०. श्रेष्ठी और कायस्थ—सच कहो, देखो, देखो—
सत्यसे ही सुख मिलता है, सत्यके अपलापसे पातक होता है।
सत्य यह दोनों अक्षर हैं, सत्यको झूठसे मत छिपाओ॥३५॥

१२१. चारुदत्त—आभरण, आभरण मैं नहीं जानता, किन्तु ये हमारे घरसे लाये गये हैं, यह जानता हूँ।
शकार—उद्यानमें ले जाकर पहले मारता है, फिर कपटकपटीपन दिखलाते अब छिपाता है?

१२२. अधिकरणिक—आर्य चारुदत्त, सच कहो—
अब तुम्हारे इस सुकुमार शरीरपर निर्दय,
कर्कश कोड़े हमारे मनोरथोंके साथ पड़ेंगे॥३६॥

१२३. चारुदत्तः—

अपापानां कुले जाते मयि पापं न विद्यते।
यदि संभाव्यते पापमपापेन च किं मया? ॥३७॥

(स्वगतम्) न च मे वसन्तसेनाविरहितस्य जीविते कृत्यम्। (प्रकाशम्) भोः, किं बहुना—

मया किल नृशंसेन लोकद्वयमजानता।
स्त्रीरत्नं च विशेषेण शेषमेषोऽभिधास्यति॥३८॥

१२४. शकारः—व्यापादिता। अरे, त्वमपि भण, मया व्यापादितेति।

चारुदत्तः—त्वयैवोक्तम्।

१२५. शकारः—शृणुत शृणुत भट्टारकाः। एतेन मारिता। एतेनैव संशयश्छिन्नः।

अधिकरणिकः—शोधनक, गृह्यतामयं चारुदत्तः।

—अंकः ९

२३. भारवि (५५० ई०)

भारविके नामका उल्लेख ६३४ ई० (शकाब्द ५५६) में उत्कीर्ण ऐहोड़ (जिला बीजापुर) के शिलालेख में मिलता है। वह कालिदासके बादके महाकवियोंमें बहुत ऊँचा स्थान रखते हैं। एक परम्पराके अनुसार यह दक्षिणापथके राजा पुलकेशी द्वितीयके छोटे भाई विष्णुवर्धनके दरबारी कवि थे। सम्भव है, दक्षिणापथ के ही रहनेवाले हों। यह दण्डीके

१२३. चारुदत्त—

निष्पाप कुलमें उत्पन्न मुझमें पाप नहीं है।

यदि पाप सम्भव है, तो मेरे निष्पाप होनेसे क्या ?॥३७॥

(अपने आपसे) (अब) मुझे वसन्तसेना के बिना जीवनसे काम नहीं। (प्रकट) भो, अधिक क्या—

दोनों लोकोंका न ख्याल करते मुझ नृशंसने,

और विशेष कर स्त्रीरत्नको. . .बाकी यह कहेगा॥३८॥

१२४. शकार—मारा। अरे, तू भी कह, कि मैंने मारा।

चारुदत्त—तूने ही कह दिया।

शकार—सुनो, सुनो भट्टारको (साहबो), इसने मारा। इससे ही सन्देह दूर हो गया।

१२५. अधिकरणिक—शोधनक, चारुदत्त को पकड़ लो।

—अंक ९

२३. भारवि (५५० ई०)

परदादा दामोदरके मित्र थे, इन्हींकी सहायतासे दामोदर चालुक्यराजा विष्णुवर्धनके दरबारमें पहुँचे । यद्यपि इनकी कवितामें प्रसादगुण का ह्रास है, लेकिन उतना नहीं, जितना कि बादके अपभ्रंशकालीन कवियोंमें उसे देखा जाता है। भारविकी सिर्फ एक ही कृति (किरातार्जुनीय) १८ सर्गोंमें मिलती है।

किरातार्जुनीयम्

(१) गुप्तचराभिहिता प्रवृत्तिः—

१. श्रियः कुरूणामधिपस्य पालनीं प्रजासु वृत्तिं यमयुंक्त वेदितुम् ।
स वर्णिलिंगी विदितः समाययौ युधिष्ठिरं द्वैतवने वनेचरः ॥१॥

२. कृतप्रणामस्य महीं महीभुजे जितां सपत्नेन निवेदयिष्यतः ।
न विव्यथे तस्य मनो नहि प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः ॥२॥

३. द्विषां विघाताय विधातुमिच्छतो रहस्यनुज्ञामधिगम्य भूभृतः ।
स सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीं विनिश्चितार्थामिति वाचमाददे ॥३॥

४. "क्रियासु युक्तैर्नृप चारचक्षुषो न वंचनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः ।
अतोऽर्हसि क्षन्तुमसाधु साधु वा हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ॥४॥

५. स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपं हितान्न यः संशृणुते स किंप्रभुः ।
सदानुकूलेषु हि कुर्वते रतिं नृपेष्वमात्येषु च सर्वसंपदः॥५॥

६. विशंकमानो भवतः पराभवं नृपासनस्थोऽपि वनाधिवासिनः ।
दुरोदरच्छद्मजितां समीहते नयेन जेतुं जगतीं सुयोधनः ।७।

किरातार्जुनीयम्

१. गुप्तचरने युधिष्ठिरसे कहा—

१. कुरुओंके राजाकी राजलक्ष्मीके पालनव्यवहारको जाननेके लिये प्रजामें जिसे नियुक्त किया (गया था), वह ब्रह्मचारी वेषधारी वन-घुमन्तू किरात पता लगाकर द्वैतवनमें (आ) युधिष्ठिरसे मिला ॥१॥

२. प्रणाम करके शत्रुसे जीती पृथिवीके बारेमें राजाको निवेदन करते-करते, वह दुखी नहीं हुआ, हितैषी लोग झूठे प्रियवाक्य कहना नहीं पसंद करते ॥२॥

३. शत्रुओंके नाशके लिये काम करनेकी इच्छावाले राजा युधिष्ठिरकी अनुज्ञा पा, एकान्तमें उसने भली, उदार और विशेषयुक्त निश्चित अर्थवाली वाणीको इस प्रकार कहना शुरू किया ॥३॥

४. "राजन्, कार्यमें नियुक्त अनुजीवियोंको चाहिये कि गुप्तचररूपी आंखवाले प्रभुओंको वंचित न करें। अतः अच्छा हो या बुरा, मेरे कहे को क्षमा करें, क्योंकि हित और मनोहर वचन दुर्लभ है ॥४॥

५. जो सखा स्वामीको उचित नहीं कहता वह कैसा सखा? जो हितकी (बातें) नहीं सुनता वह कैसा प्रभु? अनुकूल नृपों और अमात्योंपर ही सारी सम्पदायें अनुरक्त होती हैं ॥५॥

६. सिंहासनासीन भी दुर्योधन वननिवासी आपसे पराजयकी शंका करता, जूये से जीते संसारको नीतिसे जीतना चाहता है ॥७॥

७. तथापि जिह्मः स भवज्जिगीषया तनोति शुभ्रं गुणसंपदा यशः।
समुन्नयन्भूतिमनार्यसंगमाद्वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः ॥८॥

८. कृतारिषड्वर्गजयेन मानवीमगम्यरूपां पदवीं प्रपित्सुना।
विभज्य नक्तंदिवमस्ततन्द्रिणा वितन्यते तेन नयेन पौरुषम् ॥९॥

९. सखीनिव प्रीतियुजोऽनुजीविनः समानमानान्सुहृदश्च बन्धुभिः।
स संततं दर्शयते गतस्मयः कृताधिपत्यामिव साधु बन्धुताम् ॥१०॥

१०. अनेकराजन्यरथाश्वसंकुलं तदीयमास्थाननिकेतनाजिरम्।
नयत्ययुग्मच्छदगन्धिरार्द्रतां भृशं नृपोपायनदन्तिनां मदः ॥१६॥

११. न तेन सज्यं क्वचिदुद्यतं धनुः कृतं न वा कोपविजिह्ममाननम्।
गुणानुरागेण शिरोभिरुह्यते नराधिपैर्माल्यमिवास्य शासनम् ॥२१॥

१२. तदाशु कर्तुं त्वयि जिह्ममुद्यतं विधीयतां तत्र विधेयमुत्तरम्।
परप्रणीतानि वचांसि चिन्वतां प्रवृत्तिसाराः खलु मादृशां गिरः" ॥२५॥

(२) द्रौपदी-सम्मतिः—

१३. निशम्य सिद्धिं द्विषतामपाकृतीस्ततस्ततस्त्या विनियन्तुमक्षमा।
नृपस्य मन्युव्यवसायदीपिनीरुदाजहार द्रुपदात्मजा गिरः ॥२७॥

७. तो भी वह कुटिल (दुर्योधन) आपको जीतनेकी इच्छासे गुण-सम्पदा युक्त उज्ज्वल यश बढ़ा रहा है। क्योंकि वैभवको ऊपर उठाते महात्माओंके साथ विरोध भी अनार्योंके संसर्गसे अच्छा है॥८॥

८. काम-क्रोधादि छ प्रकारके शत्रुओंपर जय पा मनु-उपदेशित दुर्लभ-नीतिको पानेकी इच्छासे आलस्य छोड़ वह इसीलिये तत्परतासे रात और दिनको बांटकर नीतिके साथ प्रयत्न कर रहा है॥९॥

९. सदा निरहंकार हो परिहास छोड़ वह नौकरोंके प्रति प्रिय मित्रों सा और मित्रोंको भाइयों सा मानते आधिपत्य किये बन्धुओंको भली प्रकार दिखलाता है॥१०॥

१०. राजाओंके भेंट दिये छतिबनके फूलकी तरह की गन्धवाले गजोंके मदसे, अनेक सामन्तों, रथों, घोड़ोंसे भरा उसके दरबारगृहका आँगन अत्यन्त गीला रहता है॥१६॥

११. उसने कहीं भी ज्या चढ़ाये धनुषको नहीं उठाया, मुखको कोपसे कुटिल नहीं किया। गुण-अनुरागसे राजा लोग उसकी आज्ञाको शिरपर मालाकी तरह धारण करते हैं॥२१॥

१२. सो तुम्हारे साथ छल करनेमें तत्पर उसके साथ करने लायक प्रतिकार करें। दूसरोंकी बातोंको ढूंढनेवाले मेरे जैसोंकी बातें समाचार भर सार रखती हैं"॥२५॥

२. द्रौपदीकी सलाह—

१३. तब शत्रुओंकी सिद्धि सुनकर तत्सम्बन्धी विकारोंको रोकनेमें असमर्थ द्रौपदी राजाके क्रोध और साहसको उत्तेजित करनेवाली वाणी बोली॥२७॥

१४. भवादृशेषु प्रमदाजनोदितं भवत्यधिक्षेप इवानुशासनम्।
तथापि वक्तुं व्यवसाययन्ति मां निरस्तनारीसमया दुरा-
धयः ॥२८॥

१५. "व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न
मायिनः।
प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधानसंवृतांगान्निशिता
इवेषवः ॥३०॥

१६. गुणानुरक्तामनुरक्तसाधनः कुलाभिमानी कुलजां नरा-
धिपः।
नरैस्त्वदन्यः क इवापहारयेन्मनोरमामात्मवधूमिव
श्रियम् ॥३१॥

१७. परिभ्रमंल्लोहितचन्दनोचितः पदातिरन्तर्गिरि रेणुरूषितः।
महारथः सत्यधनस्य मानसं दुनोति नो कच्चिदयं
वृकोदरः ॥३४॥

१८. विजित्य यः प्राज्यमयच्छदुत्तरान्कुरूनकुप्यं वसु वासवोपमः।
स वल्कवासांसि तवाधुना हरन्करोति मन्युं न कथं
धनंजयः ॥३५॥

१९. वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती कचाचितौ विष्वगिवागजौ
गजौ।
कथं त्वमेतौ धृतिसंयमौ यमौ विलोकयन्नुत्सहसे न
बाधितुम् ॥३६॥

२०. विहाय शान्तिं नृप, धाम तत्पुनः प्रसीद संधेहि वधाय
विद्विषाम्।
व्रजन्ति शत्रूनवधूय निःस्पृहाः शमेन सिद्धिं मुनयो न
भूभृतः ॥४२॥

१४. "(यद्यपि) आप जैसोंके सामने स्त्रीजनोंका कथन आज्ञा देने की तरह तिरस्कारसा (ही) है, तथापि नारीके रीतिभावको हटानेवाली मनकी व्यथायें मुझे कहनेको प्रेरित कर रही हैं ॥२८॥

१५. वे मूढ़बुद्धि पराजित होते हैं, जो कि मायावियोंके प्रति मायावी नहीं होते। वैसे कवचहीन अंगवालोंके भीतर तीक्ष्ण बाणोंकी तरह शठ लोग घुसकर मारते हैं ॥३०॥

१६. अनुरक्त साधनोंवाले कुलाभिमानी तुमसे भिन्न कौन सा राजा (होगा जो) गुणोंमें अनुरक्त, पैतृक मनोरमा लक्ष्मीको अपनी बहू की तरह शत्रुओं द्वारा अपहरण करायेगा ॥३१॥

१७. लाल चन्दन (लगाने) के अभ्यासी, रथोंपर चलनेवाला (आज) धूल-धूसरित, पर्वतोंमें पैदल भटकता यह सत्यवादी भीमसेन क्या आपके मनको दुखित नहीं करता ॥३४॥

१८. इन्द्र-समान जिसने उत्तर-कुरुओंको जीतकर श्रेष्ठ धन प्रदान किया। वह धनञ्जय आज तुम्हारे वल्कल-वस्त्रोंको ले चलते क्या तुम्हें क्रोधयुक्त नहीं करता ॥३५॥

१९. वन्य गजोंकी तरह वनभूमियोंमें सोनेसे कठोर देहवाले, चारों ओरसे उलझे केशोंवाले इन जुड़वों (नकुल-सहदेव)को देखते तुम कैसे धैर्य और संयमको हटानेका उत्साह नहीं करते ॥३६॥

२०. हे नृप, कृपया शान्ति छोड़ तेजको शत्रुओंके वधके लिये फिर अंगीकार करो। निस्पृह मुनि लोग शत्रुओंको हरा शान्तिसे सिद्धि प्राप्त करते हैं, राजा नहीं ॥४२॥

२१. अथ क्षमामेव निरस्तविक्रमश्चिराय पर्येषि सुखस्य साधनम् ।
विहाय लक्ष्मीपतिलक्ष्म कार्मुकं जटाधरः संजुहुधीह पावकम्'' ॥४४॥

—सर्गः १

(३) हिमालय-वर्णनम्—

२२. अथ जयाय नु मेरुमहीभृतां रभसया नु दिगन्तदिदृक्षया ।
अभिययौ स हिमाचलमुच्छ्रितं समुदितं न विलंघयितुं नभः ॥१॥

२३. तपनमण्डलदीपितमेकतः सततनैशतमोवृतमन्यतः ।
हसितभिन्नतमिस्रचयं पुरः शिवमिवानुगतं गजचर्मणा ॥२॥

२४. भुजगराजसितेन नभःश्रिताः कनकराजिविराजितसानुना ।
समुदितं निचयेन तडिद्वतीं लघयता शरदम्बुदसंहतिम् ॥४॥

२५. मणिमयूखचयांशुकभासुराः सुरवधूपरिभुक्तलतागृहाः ।
दधतमुच्चशिलान्तरगोपुराः पुर इवोदितपुष्पवना भुवः ।५।

२६. अविरतोज्झितवारिविपाण्डुभिर्विरहितैरचिरद्युतितेजसा ।
उदितपक्षमिवारतनिःस्वनैः पृथुनितम्बविलम्बिभिरम्बुदैः ॥६॥

२७. दधतमाकरिभिः करिभिः क्षतैः समवतारसमैरसमैस्तटैः ।
विविधकामहिता महिताम्भसः स्फुटसरोजवना जवना नदीः ॥७॥

२८. नवविनिद्रजपाकुसुमत्विषां द्युतिमतां निकरेण महाश्मनाम् ।
विहितसांध्यमयूखमिव क्वचिन्नचितकांचनभित्तिषु सानुषु ॥८॥

२१. यदि पराक्रम छोड़ चिरकाल तक क्षमाको ही सुखका साधन समझते हो, तो राज-चिन्ह धनुषको छोड़ जटाधारी हो यहां अग्निमें होम करो" ॥४४॥

—सर्ग १

छन्द—द्रुतविलंबित

३. हिमालय-वर्णन—

२२. तब वह (अर्जुन) मेरुपर्वतके जीतनेके लिये देशोंके देखने की प्रबल इच्छासे, आकाश लांघनेके लिये मानो ऊपर उठे उन्नत हिमाचल में गया ॥१॥

२३. (जो था) एक भागमें सूर्यमंडलसे प्रकाशित, दूसरी जगह रातके अन्धकारसे निरन्तर आच्छादित, सामने अट्टहाससे अन्धकार-समूह को नष्ट करते, गज-चर्म पहिने शंकरकी तरह ॥२॥

२४. शेषनाग जैसे सफेद, गगनचुम्बी सुवर्णरेखाओंसे शोभित शिखर-वाले, बिजली सहित शरद्के मेघ-समूहको नीचा दिखाते शिखर समूहोंसे समुन्नत ॥४॥

२५. मणि-किरण-समूहरूपी वस्त्रोंसे प्रकाशमान, देवांगनाओं द्वारा सेवित लतागृहोंयुक्त, ऊँची शिलाओंरूपी पुर-द्वारोंवाली उदित, फूले पुष्प युक्त वनोंवाली भूमिको नगरसा धारण किये ॥५॥

२६. निरन्तर छोड़ते जलसे पीली विद्युतके तेजसे युक्त, गर्जनोंसे स्थूल नितम्बोंपर लटकते मेघों द्वारा मानो उगे पंखोंवाले ॥६॥

२७. उच्चजातीय गजों द्वारा क्षत घाटोंपर समतल-असमतल तटों द्वारा, पूज्य जलवाली विविध कामनाओंके योग्य, फूले कमल-वनोंवाली वेगवती नदियोंके धारक ॥७॥

२८. प्रकाशमान महार्घ पत्थरोंसे नये फूले अँड़हुलके पुष्पकी कान्तिवाले, कहीं पर खचित सुवर्ण-भित्तिवाले सानुओंमें सन्ध्याकी किरण बनाये से ॥८॥

२९. पृथुकदम्बकदम्बकराजितं ग्रथितमालतमालवनाकुलम् ।
लघुतुषारतुषारजलच्युतं धृतसदानसदाननदन्तिनम् ॥९॥

३०. ससुरचापमनेकमणिप्रभैरपपयोविशदं हिमपाण्डुभिः ।
अविचलं शिखरैरुपबिभ्रतं ध्वनितसूचितमम्बुमुचां चयम् ॥१२॥

३१. विकचवारिरुहं दधतं सरः सकलहंसगणं शुचि मानसम् ।
शिवमगात्मजया च कृतेर्ष्यया सकलहंसगणं शुचिमानसम् ॥१३॥

३२. विततशीकरराशिभिरुच्छ्रितैरुपलरोधविवर्तिभिरम्बुभिः ।
दधतमुन्नतसानुसमुद्धतां धृतसितव्यजनामिव जाह्नवीम् ॥१५॥

३३. रुचिरपल्लवपुष्पलतागृहैरुपलसज्जलजैर्जलराशिभिः ।
नयति संततमुत्सुकतामयं धृतिमतीरुपकान्तमपि स्त्रियः ॥१९॥

३४. अखिलमिदममुष्य गौरीगुरोस्त्रिभुवनमपि नैति मन्ये तुलाम् ।
अधिवसति सदा यदेनं जनैरविदितविभवो भवानीपतिः ॥२१॥

३५. कुररीगणः कृतरवस्तरवः कुसुमानताः सकमलं कमलम् ।
इह सिन्धवश्च वरणावरणाः करिणां मुदे सनलदानलदाः ॥२५॥

३६. येनापविद्धसलिलः स्फुटनागसद्मा,
देवासुरैरमृतमंबुनिधिर्ममन्थे ।
व्यावर्तनैरहिपतेरयमाहितांकः,
खं व्यालिखन्निव विभाति स मन्दराद्रिः ॥३०॥

२९. गुच्छेवाले स्थूल कदम्बसे शोभित गूंथी माला जैसे तमालवनोंसे आकीर्ण, अल्प शीतल हिमजल बरसानेवाले, मद-युक्त सुमुख गजोंको धारण किये ॥९॥

३०. नाना मणि-प्रभायुक्त हिमश्वेत शिखरों, इन्द्रधनुष-सहित निर्जल-विशद, निश्चल पर ध्वनि द्वारा सूचित मेघोंके समूहको धारण करते ॥१२॥

३१. फूले कमलों और हंसों सहित निर्मल मानस सरको धारण करते, ईर्ष्या किये पार्वतीके साथ कलहयुक्त गणों सहित पवित्र मन वाले शिवको धारण किये ॥१३॥

३२. शिलाकी रोकसे लौट पड़े जलों द्वारा विस्तृत उड़ते फुहारपुंजों वाले, श्वेत व्यजन सा उन्नत सानुओंपर बहती गंगाको धारण किये ॥१५॥

३३. यह हिमालय रुचिर पल्लव-पुष्प-लतागृहोंवाला (अपने) शोभाय-मान सरोवरों द्वारा, कान्तके समीप धैर्यवती स्त्रियोंको भी निरन्तर उत्सुक करता है ॥१९॥

३४. इस गौरीके पिता (हिमालय) की समानता सारा त्रिभुवन नहीं कर सकता, यह मैं मानता हूँ; क्योंकि लोक-अज्ञात-महिमावाले भवानी-पति सदा यहां निवास करते हैं ॥२१॥

३५. यहां कुररियाँ शब्द करती, वृक्ष फूलोंसे झुके, जल कमलयुक्त। वृक्षावृत्त खस-सहित अग्नि-संतापहारिणी नदियां गजोंके आनन्दके लिये हैं ॥२५॥

३६. दास और असुरोंने जिसके द्वारा नाग-निवास अखिल जल सागरसे अमृत मथा, उस वासुकि नागके लपेटनेके चिन्हवाला, वही मन्दर-गिरि आकाशको फोड़ता सा दीखता है ॥३०॥

३७. अस्मिन्नगृह्यत पिनाकभृता सलील-
मावद्धवेपथुरधीरविलोचनायाः ।
विन्यस्तमंगलमहौषधिरीश्वरायाः—
स्रस्तोरगप्रतिसरेण करेण पाणिः ॥३३॥

—सर्गः ५

(४) जलक्रीडा—

३८. अथ स्फुरन्मीनविधूतपंकजा विपंकतीरस्खलितोर्मिसंहतिः ।
पयोऽवगाढुं कलहंसनादिनी समाजुहावेव वधूः सुरापगा ॥२७॥

३९. प्रशान्तघर्माभिभवः शनैर्विवान्विलासिनीभ्यः परिमृष्टपंकजः ।
ददौ भुजालम्बमिवात्तशीकरस्तरंगमालान्तरगोचरोऽनिलः ॥२८॥

४०. गतैः सहावैः कलहंसविक्रमं कलत्रभारैः पुलिनं नितम्बिभिः ।
मुखैः सरोजानि च दीर्घलोचनैः सुरस्त्रियः साम्यगुणान्निरासिरे ॥२९॥

४१. विभिन्नपर्यन्तगमीनपंक्तयः पुरो विगाढा सखिभिर्मरुत्वतः ।
कथंचिदापः सुरसुन्दरीजनैः सभीतिभिस्तत्प्रथमं प्रपेदिरे ॥३०॥

४२. विगाढमात्रे रमणीभिरम्भसि प्रयत्नसंवाहितपीवरोरुभिः ।
विभिद्यमाना विससार सारसानुदस्य तीरेषु तरंगसंहतिः ॥३१॥

३७. यहां पिनाकधारी (शिव) ने चकित-नयना,
गौरीके मंगल-महौषधि-लगे काँपते,
हाथको शिथिल सर्पके कंकणयुक्त,
अपने हाथोंमें लीला-सहित ग्रहण किया ।।३३।।

—सर्ग ५

४. जल-क्रीड़ा-वर्णन—

३८. तब चंचल मछलियों द्वारा कंपित, कमलोंवाली, पंकरहित तीरमें गिरती लहरियोंवाली, कलहंसोंसे निनादित गंगाने मानो देव-बन्धुओंको जल-क्रीड़ा के लिए बुलाया ।।२७।।

३९. प्रशान्त धूपकी बाधावाले पंकजको मींजते, फुहार लिये, तरंगमालाओंके मध्यमें स्थित धीरे बहते वायुने विलासिनियोंको हस्तावलम्ब दिया ।।२८।।

४०. अप्सराओंने हाव-भावयुक्त चेष्टाओं द्वारा कलहंसोंकी लीलाको, नितम्बयुक्त पत्नियोंके भारोंसे तटको, दीर्घलोचनवाले मुखों द्वारा और सरोजोंको, समान गुणतासे निरस्त किया ।।२९।।

४१. सामने विभिन्न ओर जानेवाली मीन-पंक्तियों वाले जलको, सखियों सहित पहले प्रविष्ट भयभीत सुर-सुन्दरियोंने किसी तरह अवगाहन किया ।।३०।।

४२. प्रयत्नसे संचालित स्थूल जंघोंवाली रमणियोंसे अवगाहित जलमें बिखर गई तरंग-पंक्तियां सारसोंको उड़ाकर तीरपर फैल गईं ।।३१।।

४३. शिलाघनैर्नाकिसदामुरःस्थलैर्बृहन्निवेशैश्च वधूपयोधरैः।
तटाभिनीतेन विभिन्नवीचिना रुषेव भेजे कलुषत्व-
मम्भसा ॥३२॥

४४. विधूतकेशाः परिलोलितस्रजः सुरांगनानां प्रविलुप्त-
चन्दनाः।
अतिप्रसंगाद्विहितागसो मुहुः प्रकम्पमीयुः सभया
इवोर्मयः ॥३३॥

४५. विपक्षचित्तोन्मथना नखव्रणास्तिरोहिता विभ्रममण्ड-
नेन ये।
हृतस्य शेषानिव कुंकुमस्य तान्विकत्थनीयान्दधुरन्यथा
स्त्रियः ॥३४॥

४६. सरोजपत्रे नु विलीनषट्पदे विलोलदृष्टेः स्विदमू विलोचने।
शिरोरुहाः स्विन्नतपक्ष्मसंततेर्द्विरेफवृन्दं नु निशब्द-
निश्चलम् ॥३५॥

४७. अगूढहासस्फुटदन्तकेसरं मुखं स्विदेतद्विकसन्नु पंकजम्।
इति प्रलीनां नलिनीवने सखीं विदांबभूवुः सुचिरेण
योषितः ॥३६॥

४८. प्रियेण संग्रथ्य विपक्षसंनिधावुपाहितां वक्षसि पीवरस्तने।
स्रजं न काचिद्विजहौ जलाविलां वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न
वस्तुनि ॥३७॥

४९. असंशयं न्यस्तमुपान्तरक्ततां यदेव रोद्धुं रमणीभिरंजनम्।
हृतेऽपि तस्मिन्सलिलेन शुक्लतां निरास रागो नयनेषु
न श्रियम् ॥३८॥

५०. विपत्रलेखा निरलक्तकाधरा निरंजनाक्षीरपि बिभ्रतीः
श्रियम्।
निरीक्ष्य रामा बुबुधे नभश्चरैरलंकृतं तद्वपुषैव मण्ड-
नम् ॥४०॥

४३. स्वर्ग-वासियोंके शिला-तुल्य कठिन वक्षस्थलों, और अतिस्थूल वधुओंके स्तनों द्वारा, तटपर ढकेले गये टूटी लहरोंवाले जलने मानो क्रोधसे मलिनता धारण की ॥३२॥

४४. केश उलझाने वाली माला डुलाने, चन्दन मिटाने के अतिप्रसंग से, देवांगनाओंका अपराध किये सी तरंगें भय सहित बारबार कांप रही थीं ॥३३॥

४५. सौतोंके चित्तको व्यथित करनेवाले नखक्षतको, सौन्दर्य-मण्डनको, घुल गये केसरके श्लाघनीय अवशेषोंकी तरह स्त्रियोंने उलटे धारण किया ॥३४॥

४६. चंचलनयनीके नेत्र मानो भ्रमरों से लीन कमलपत्र हैं, झुके पलकों वालीके केश मानो नीरव निश्चल भवरोंके झुण्ड हैं ॥३५॥

४७. स्पष्ट हाससे प्रकट दन्तरूपी केसरवाला मुख नहीं, (बल्कि) फूल कमल है। इस प्रकार कमलिनीवनमें छिपी सखीको स्त्रियां देरतक देखती रहीं ॥३६॥

४८. किसी ललनाने प्रियकी गूंथी, सौतोंके स्थूल स्तनवाले वक्षस्थल पर रक्खी, जलसे मलिन, मालाको नहीं छोड़ा; क्योंकि गुण प्रेममें बसते हैं, वस्तुमें नहीं ॥३७॥

४९. रमणियोंने जो अंजन डाला था, सो निस्संशय आंखके दोनों कोरोंपर लालिमा लगानेके लिये ही। उसके जलसे धुल जाने पर रागने भी नयनोंकी सफेदीको हटाया, न कि शोभाको ॥३८॥

५०. खौर बिना, अधरराग-रहित ओठोंवाली, अंजनहीन आंखोंवाली सोहती, ललनाओंको देखकर सुरोंने उनके शरीरोंसे ही आभूषण को अलंकृत जाना ॥४०॥

५१. शुभानना: साम्बुरुहेषु भीरवो विलोलहाराश्चलफेन-
पंक्तिषु।
नितान्तगौर्यो हृतकुंकुमेष्वशं न लेभिरे ताः परभाग-
मूर्मिषु ॥४२॥

५२. ह्रदाम्भसि व्यस्तवधूकराहतं रवं मृदंगध्वनिधीरमुज्झति।
मुहुः स्तनैस्तालसमं समाददे मनोरमं नृत्यमिव प्रवेपितम्
॥४३॥

५३. श्रिया हसद्भिः कमलानि सस्मितैरलंकृताम्बुः प्रतिमागतै-
र्मुखैः।
कृतानुकूल्या सुरराजयोषितां प्रसादसाफल्यमवाप जान्हवी
॥४४॥

५४. परिस्फुरन्मीनविघट्टितोरवः सुरांगनास्त्रासविलोलदृष्टयः
उपाययुः कम्पितपाणिपल्लवाः सखीजनस्यापि विलोकनी-
यताम् ॥४५॥

५५. भयादिवाश्लिष्य झषाहतेऽम्भसि प्रियं मुदा नन्दयतिस्म
मानिनी।
अकृत्रिमप्रेमरसाहितैर्मनो हरन्ति रामाः कृतकैरपीहितैः
॥४६॥

५६. तिरोहितान्तानि नितान्तमाकुलैरपां विगाहादलकैः प्रसा-
रिभिः।
ययुर्वधूनां वदनानि तुल्यतां द्विरेफवृन्दान्तरितैः सरोरुहैः
॥४७॥

५७. करौ धुनाना नवपल्लवाकृती पयस्यगाधे किल जातसंभ्रमा।
सखीषु निर्वाच्यमधाष्ट्र्यदूषितं प्रियांगसंश्लेषमवाप
मानिनी ॥४८॥

५१. सुमुखी चंचल-हारवाली अत्यंत गोरी भीरु स्त्रियों ने चंचल फन-पंक्तियोंवाली, झागयुक्त फूल बहाती लहरों में तृप्ति नहीं प्राप्त की। ।।४२।।

५२. बहुओं के फैलाये हाथों द्वारा ताड़ित सरोवर के जल में मृदंग सी गंभीर ध्वनि छोड़ने पर क्षण भर स्तनों ने ताल के साथ मनोरम नृत्यकी तरह कंपन शुरू किया ।।४३।।

५३. अपनी शोभा-सहित मुस्कुराहट से कमलों पर हंसती, प्रतिबिंबित मुखों द्वारा शोभित जलवाली, अनुकूल बनाई गंगा, देवराज की स्त्रियों की प्रसन्नता को पाने में सफल हुई ।।४४।।

५४. चारों ओर डोलती मछलियों से घर्षित जंघोंवाली, भय से चंचल नेत्रोंवाली, कांपते पाणिपल्लवोंवाली, देवांगनायें अपनी सखियों के लिये भी दर्शनीय हो गईं ।।४५।।

५५. मछली द्वारा ताड़ित पानी में भयभीत मानिनी, मद से प्रिय को आलिंगन कर आनंदित करती थी; ललनायें अकृत्रिम प्रेमरस-युक्त कृत्रिम चेष्टाओं से भी मन हर लेती हैं ।।४६।।

५६. जल के अवगाहन से अत्यंत अस्त-व्यस्त बिखरीं-फैली अलकों से ढंके छोरवाले, बधुओं के मुख, मेघों में छिपे कमलों से मालूम होते थे ।।४७।।

५७. अगाध जल में भयभीत नवपल्लव समान दोनों हाथ कंपाती मानिनी ने सखियों के लिये कमनीय धृष्टता से अनुचित प्रिय का अंग-आलिंगन प्राप्त किया ।।४८।।

५८. प्रियैः सलीलं करवारिवारितः प्रवृद्धनिःश्वासविकम्पित-
स्तनः।
सविभ्रमाधूतकराग्रपल्लवो यथार्थतामाप विलासिनीजनः
॥४९॥

५९. उदस्य धैर्यं दयितेन सादरं प्रसादितायाः करवारिवारितम्।
मुखं निमीलन्नयनं नतभ्रुवः श्रियः सपत्नीवदनादिवाददे
॥५०॥

६०. निरंजने साचिविलोलिकं दृशावयावकं वेपथुरोष्ठपल्लवम्।
नतभ्रुवो मण्डयति स्म विग्रहे बलिक्रिया चातिलकं तदा-
स्पदम् ॥५२॥
—सर्गः ८

(५) चन्द्रिका—

६१. रंजिता नु विविधास्तरुशैला नामितं नु गगनं स्थगितं नु।
पूरितं नु विषमेषु धरित्री संहृता नु ककुभस्तिमिरेण ॥१५॥

६२. रात्रिरागमलिनानि विकासं पंकजानि रहयन्ति विहाय।
स्पष्टतारकमियाय नभःश्रीर्वस्तुमिच्छति निरापदि सर्वः
॥१६॥

६३. व्यानशे शशधरेण विमुक्तकेतकीकुसुमकेसरपाण्डुः।
चूर्णमुष्टिरिव लम्भितकान्तिर्वासवस्य दिशमंशुसमूहः।१७।

६४. उज्झती शुचमिवाशु तमिस्रामन्तिकं व्रजति तारकराजे।
दिक्प्रसादगुणमण्डनमूहे रश्मिहासविशदं मुखमैन्द्री ॥१८॥

६५. नीलनीरजनिभे हिमगौरं शैलरुद्धवपुषः सितरश्मेः।
खे रराज निपतत्करजालं वारिधेः पयसि गांगमिवाम्भः
॥१९॥

५८. लीला से प्रिया के हाथ के जल द्वारा रोकी, बराबर सांस लेने से कंपित स्तनोंवाली, सुंदरता से हिलते करपल्लवयुक्त विलासिनियों ने यथार्थता प्राप्त की ।।४६।।

५९. प्रिय ने धैर्य को हटा आदर-सहित प्रसन्न की हुई, झुकी भौंहोंवाली (प्रिया) के अंजलि-जल से निवारित, मुंदे नयनवाले मुख को मानों सौत के मुंह से शोभा को ले लिया ।।५०।।

६०. अंजन-रहित लोचन में तिरछी नजर सोहती थी, बिना अधरराग के अधरपल्लव को कंपन सोहाता था, तिलक-रहित उसके ललाट को रेखांकन मंडित करता था ।।५२।।

—सर्ग ८

५. चाँदनी-रात—

६१. अंधकारने नाना वृक्षों और पर्वतोंको अपने रंगसे रंग दिया, गगनको ढंककर मानो झुका दिया। पृथ्वी को ऊंचे-नीचे स्थानोंमें भर दिया, दिशाओंको मानो लुप्त कर दिया ।।१५।।

६२. रात्रिके रंगसे मुरझाये पंकज खिलना छोड़कर रह गये। आकाश स्पष्ट तारों से युक्त हुआ। सभी निरापद स्थानमें रहना चाहते हैं ।।१६।।

६३. चन्द्र द्वारा फेंका केवड़े के फूलके केसर सा श्वेत किरण-समूह मानो चूर्णमुष्टिसा पूर्व दिशा में व्याप्त हुआ ।।१७।।

६४. वह पूर्व दिशा तारापतिके पास जाती, अंधकारको विरह-शोककी तरह जल्दी छोड़ती, प्रसन्नता गुणरूपी मुंडनसे युक्त, किरणोंके हाससे विशद मुख को धारण करती थी ।।१८।।

६५. शैल (उदयाचल) में छिपे बिंबवाले चन्द्रकी हिम-श्वेत चांदनी नीलनभलसे आकाशमें फैलती, समुद्रके जलमें गंगाके पानीके मिलनेकी तरह शोभा दे रही थी ।।१९।।

६६. द्यां निरुन्धदतिनीलघनाभं ध्वान्तमुद्यतकरेण पुरस्तात् ।
क्षिप्यमाणमसितेतरभासा शंभुनेव करिचर्म चकासे ॥२०॥

६७. अन्तिकान्तिकगतेन्दुविसृष्टे जिह्मतां जहति दीधितिजाले ।
निःसृतस्तिमिरभारनिरोधादुच्छ्वसन्निव रराज दिगन्तः ।२१

६८. दीपयन्नथ नभः किरणौघैः कुंकुमारुणपयोधरगौरः ।
हेमकुम्भ इव पूर्वपयोधेरुन्ममज्ज शनकैस्तुहिनांशुः ॥२३॥

६९. उद्‌गतेन्दुमवभिन्नतमिस्रां पश्यति स्म रजनीमवितृप्तः ।
व्यंशुकस्फुटमुखीमतिजिह्मां व्रीडया नववधूमिव लोकः ॥२४॥

७०. न प्रसादमुचितं गमिता द्यौर्नोद्धृतं तिमिरमद्रिवनेभ्यः ।
दिङ्‌मुखेषु च धाम विकीर्णं मूषितैव रजनीहिमभासा ॥२५॥

७१. मानिनीजनविलोचनपातानुष्णवाष्पकलुषान्प्रतिगृह्‌णन् ।
मन्दमन्दमुदितः प्रययौ खं भीतभीत इव शीतमयूखः ॥२६॥

७२. प्रेरितः शशधरेण करौघः संहृतान्यपि नुनोद तमांसि ।
क्षीरसिन्धुरिव मन्दरभिन्नः काननान्यविरलोच्च-
तरूणि ॥२८॥

७३. आतपे धृतिमता सह वध्वा यामिनीविरहिणा विहगेन ।
सेहिरे न किरणा हिमरश्मेर्दुःखिते मनसि सर्वमसह्यम् ॥३०॥

७४. गन्धमुद्धतरजःकणवाही विक्षिपन्विकसतां कुमुदानाम् ।
आदुधाव परिलीनविहंगा यामिनीमरुदपां
वनराजीः ॥३१॥

—सर्गः ९

(६) युधिष्ठिरोक्तिः—

७५. स लेशमुल्लंघितशात्रवेंगितः कृती गिरां विस्तरतत्त्वसंग्रहः ।
अयं प्रमाणीकृतकालसाधनः प्रशान्तसंरम्भ इवाददे
वचः ॥२॥

६६. आकाशको आच्छादित करते अतिनील घन जैसे अंधकार, चन्द्रमाके उगते किरणों द्वारा, प्राचीमें फेंका जाता, शंकरके द्वारा फेंके गज-चर्म सा प्रतीत होता था ।।२०।।

६७. अत्यन्त समीप पहुंचे चन्द्रमा द्वारा छोड़े किरणोंके संकोच छोड़ने पर अंधकारके भार के हटने से निकली दिशायें सांस लेती सी सोहती थीं ।।२१।।

६८. तब किरणों से आकाशको प्रकाशित करते केसरसे अरुण पयोधरयुक्त गौरवर्ण हिमांशु, पूर्वसागरसे मानो सुवर्ण-कलशसा धीरे-धीरे ऊपर उठा ।।२३।।

६९. चन्द्रमावाली, नष्ट-अंधकारवाली रजनीको, लोग अंशुक-रहित खुले मुखवाली, लज्जासे अति सकुचाती नववधूकी तरह अतृप्त हो देख रहे थे ।।२४।।

७०. चन्द्रमा द्वारा आकाशको उचित स्वच्छता नहीं प्राप्त हुई, पर्वतों-वनोंसे तिमिर नहीं हटा, और दिशाओंमें तेज फैला, (जिससे) रजनी चन्द्र द्वारा अलंकृत ही हुई ।।२५।।

७१. उष्ण अश्रुसे मलिन मानिनियोंके आंसुओंको स्वीकार करते, भयभीत सा हिमांशु धीरे-धीरे उगकर आकाशमें प्राप्त हुआ ।।२६।।

७२. चन्द्र द्वारा प्रेरित किरणोंने सघन अंधकारको भी, मन्दर से मथित क्षीरसागर की तरह ऊंचे वृक्षोंवाले सघन वनोंसे दूर किया ।।२८।।

७३. आतपमें वधूके साथ संतुष्ट रात्रि-विरही चकवा पक्षीने हिमांशुकी किरणें नहीं सहन कीं—दुखित मनमें सब असह्य लगता है ।।३०।।

७४. रजकण वाहक फूलते कुमुदोंके गंध फेंकते तो यामिनीके वायुने सोये पक्षियोंवाली बनालियोंको थोड़ा कंपित किया ।।३१।।

—सर्ग ९

६. युधिष्ठिरका गम्भीर उद्गार—

७५. शत्रुकी सकल प्रकट चालोंको जानते वाणीके विस्तारपूर्वक तत्त्व-संग्रही अर्थसंक्षेप, कालको प्रधान साधन मानने वाले प्रशांतचेष्टा-युक्त युधिष्ठिर बोले ।।२।।

७६. विविक्तवर्णाभरणा सुखश्रुतिः प्रसादयन्ती हृदयान्यपि द्विषाम् ।
प्रवर्तते नाकृतपुण्यकर्मणां प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती ॥३॥

७७. भवन्ति ते सभ्यतमा विपश्चितां मनोगतं वाचि निवेशयन्ति ये ।
नयन्ति तेष्वप्युपपन्ननैपुणा गभीरमर्थं कतिचित्प्रकाशताम् ॥४॥

७८. स्तुवन्ति गुर्वीमभिधेयसंपदं विशुद्धिमुक्तेरपरे विपश्चितः ।
प्रागल्भमात्मा धुरि धुर्य, वाग्मिनां वनेचरेणापि सताधिरोपितः ॥६॥

७९. विरोधि सिद्धेरिति कर्तुमुद्यतः स वारितः किं भवता न भूपतिः ।
हिते नियोज्यः खलु भूतिमिच्छता सहार्थनाशेन नृपोऽनुजीविना ॥८॥

८०. यदि प्रमाणीकृतमार्यचेष्टितं किमित्यदोषेण तिरस्कृता वयम् ।
अयातपूर्वा परिवादगोचरं सतां हि वाणी गुणमेव भाषते ॥११॥

८१. वनाश्रयाः कस्य मृगाः परिग्रहाः शृणोति यस्तान्प्रसभेन तस्य ते ।
प्रहीयतामत्र नृपेण मानिता न मानिता चास्ति भवन्ति च श्रियः ॥१३॥

८२. न वर्त्म कस्मैचिदपि प्रदीयतामिति व्रतं मे विहितं महर्षिणा ।
जिघांसुरस्मान्निहतो मया मृगो व्रजाभिरक्षा हि सतामलंक्रिया ॥१४॥

७६. स्पष्ट-वर्णाभिरणा, कर्णसुखा, शत्रुओंके हृदयोंको भी प्रसन्न करनेवाली स्पष्ट गम्भीर पदोंवाली वाणी न-पुण्यकर्माकी नहीं होती ॥३॥

७७. जो विद्वानोंके बीच अति सभ्य हैं, जो मनके भीतरके अर्थको वाणीमें प्रवेश कराते हैं। उनमें भी निपुण कुछ (लोग) गम्भीर अर्थको (वाणीसे) प्रकाशित करते हैं ॥४॥

७८. हे धुरंधर, कोई भारी अर्थरूपी संपत्ति को प्रशंसते हैं, दूसरे विद्वान् वचन की शुद्धताको, तुमने वनचर होते भी अपनेको वाग्मियोंमें अग्रणी साबित किया ॥६॥

७९. "सिद्धिका विरोधी है" यह सोच कर्म करनेके लिये उद्यत राजाको आपने क्यों नहीं रोका? अभिवृद्धि-इच्छुक अर्थ-नाश में सहभागी नौकरको चाहिये कि राजाको हितमें नियुक्त करे ॥८॥

८०. यदि श्रेष्ठोंके चरित्रको माना, तो हम निर्दोष तिरस्कृत हुये, इससे क्या? निन्दामें कभी न प्रवृत्त सत्पुरुषोंकी वाणी गुणको ही कहती है ॥११॥

८१. वनमें रहनेवाले वे मृग किसकी प्रजा हैं, जो कि उन्हें बलपूर्वक (पुरुष) मारता है। नृपको अभिमान छोड़ना चाहिये, जिसे ममता नहीं है, (उसकी ही) लक्ष्मियां होती हैं ॥१३॥

८२. "किसीको मौका नहीं दो" यह व्रत महर्षि (व्यास) ने मेरे लिये विहित किया। इसी कारण हिंस्र मृगको मैंने मारा, उनकी रक्षा करना सत्पुरुषों की शोभा है ॥१४॥

८३. यदात्थ कामं भवता स याच्यतामिति क्षमं नैतदनल्पचेतसाम् ।
कथं प्रसह्याहरणैषिणां प्रियाः परावनत्या मलिनीकृताः श्रियः ॥१८॥

८४. वयं क्व वर्णाश्रमरक्षणोचिताः क्व जातिहीना मृगजीवितच्छिदः ।
सहापकृष्टैर्महतां न संगतं भवन्ति गोमायुसखा न दन्तिनः ॥२२॥

—सर्गः १४

२४. विशाखदत्त (५५० ई०)

संस्कृतके ऐतिहासिक नाटकोंका एक अति सुन्दर नमूना "मुद्राराक्षस" है, जिसके रचयिता विशाखदत्त हैं। विशाखदत्त सम्भवतः स्वयं सामन्त थे, और प्राकृत कालके अन्त समयमें उत्तरी भारतके किसी स्थानमें पैदा हुए थे। इनके कालके बारेमें मतभेद है। कुछ विद्वान् इन्हें कालिदास और चन्द्रगुप्तका समकालीन मानते हैं, दूसरे नवीं शताब्दीमें खींचते हैं। "मुद्राराक्षस" की प्रस्तावनाके एक श्लोकमें जिस चन्द्रग्रहणका उल्लेख है, उसे याकोबीने

मुद्राराक्षसम्

(१) कौमुदीमहोत्सवनिषेधः—

(ततः प्रविशति कंचुकी)

१. कंचुकी—

रूपादीन् विषयान् निरूप्य करणैः यैरात्मलाभस्त्वया,
लब्धस्तेष्वपि चक्षुरादिषु हताः स्वार्थावबोधक्रियाः ।
अंगानि प्रसभं त्यजन्ति पटुतामाज्ञाविधेयानि मे ।
न्यस्तं मूर्ध्नि पदं तवैव जरया, तृष्णे ! मुधा माद्यसि[1] ॥१॥

१. शार्दूलविक्रीडितम् ।

८३. "उस राजा से यथेच्छ आप मांगें" यह जो कहा, वह बुद्धिमानोंके लिये उचित नहीं। बलात् हरनेके इच्छुकोंको दूसरेके सामने झुकनेसे मलिन हुई लक्ष्मियां कैसे प्रिय हो सकती हैं ।।१८।।

८४. वर्ण-आश्रमके रक्षक कहां हम राजा और कहां मृगोंको मारनेवाले नीच व्याध। निकृष्टोंके साथ उत्कृष्टोंकी संगति नहीं हो सकती, गज सियारोंके मित्र नहीं होते ।।२२।।

—सर्ग १४

२४. विशाखदत्त (५५० ई०)

२ दिसम्बर ८६० ई० का माना है, और इसके कारण उन्हें नवीं सदीका ठहराया है।

"मुद्राराक्षस"के अतिरिक्त "देवीचन्द्रगुप्त" नामक एक दूसरे नाटककी भी रचना इन्होंने की थी, जिसका खण्डित अंश मिलता है, और जिसमें समुद्रगुप्तके बाद रामगुप्तको हटाकर चन्द्रगुप्तके गद्दीपर बैठनेका उल्लेख है।

मुद्राराक्षस

१. कौमुदी महोत्सवका निषेध—

(कंचुकी प्रवेश करता है)

१. कंचुकी—

रूप आदि विषयोंको जिन इन्द्रियोंसे निरूपण करके तुमने आत्मलाभ किया, उन नेत्र आदिमें भी अपने अर्थके जाननेकी शक्ति नष्ट हो गई। आज्ञा-वशवर्ती मेरे अंग सहसा पटुताको छोड़ रहे हैं, हे तृष्णे, जराने तेरे सिरपर पैर रख दिया, तू क्यों बढ़ रही है ।।१।।

२. (परिक्रम्य आकाशे) भो भोः सुगांगप्रासादाधिकृताः पुरुषाः, सुगृहीतनामा देवः चन्द्रगुप्तो वः समाज्ञापयति। यथा—"प्रवृत्तकौमुदीमहोत्सवरमणीयतरं कुसुमपुरं अवलोकयितुं इच्छामि, तत् संस्क्रियन्ताम् अस्मद्दर्शनयोग्याः सुगांगप्रासादस्य उपरि भूमयः" इति। तत् किं चिरयन्ति भवन्तः ? (आकाशे आकर्ण्य) किं ब्रूथ "आर्य ! किम् अविदित एवायं देवस्य चन्द्रगुप्तस्य कौमुदीमहोत्सवप्रतिषेधः" इति ? आः दैवोपहताः, किमनेन वः प्राणहरेण कथोद्घातेन ? शीघ्रं इदानीम्,—

आलिंगन्तु गृहीतधूपसुरभीन् स्तम्भान् पिनद्धस्रजः,
सम्पूर्णेन्दुमयूखसंहतिरुचां सच्चामराणां श्रियः।
सिंहांकासनधारणाच्च सुचिरं संजातमूर्च्छामिव,
क्षिप्रं चन्दनवारिणा सकुसुमः सेकोऽनुगृह्णातु गाम् ॥२॥[१]

३. (आकाशे) किं कथयन्ति भवन्तः ? "एते त्वरामहे" इति ? भद्राः, त्वरध्वम्, अयमागत एव देवः चन्द्रगुप्तः। य एषः—

सुविश्रब्धैरंगैः पथिषु विषमेष्वप्यचलता,
चिरं धुर्येणोढा गुरुरपि भुवो याऽस्य गुरुणा।
धुरं तामेवोच्चैर्नववयसि वोढुं व्यवसितो,
मनस्वी दम्यत्वात् स्खलति न च, दुःखं वहति च ॥३॥[२]

(नेपथ्ये)। इत इतो देवः।

(ततः प्रविशति राजा प्रतीहारी च)

४. राजा—(स्वगतम्) राज्यं हि नाम राजधर्मानुवृत्तिपरतन्त्रस्य भूपतेः महदप्रीतिस्थानम्। यतः—

परार्थानुष्ठाने जडयति नृपं स्वार्थपरता,
परित्यक्तान्यार्थो नियतमयथार्थः क्षितिपतिः।
परार्थैश्चेत् स्वार्थादभिमततरो, हन्त परवान्,
परायत्तः प्रीतेः कथमिव रसं वेत्तु पुरुषः ॥४॥

१. हरिणी। २. शिखरिणी।

२. (परिक्रमा कर आकाशकी ओर) हे हे सुगांग महलके अफसर-पुरुषो, सुगृहीतनाम महाराज **चन्द्रगुप्त** तुम्हें आज्ञा देते हैं, कि "हो रहे इस कौमुदी महोत्सवसे मैं **पटना**को अधिक रमणीय देखना चाहता हूँ, सो **सुगांग-प्रासाद**की ऊपरवाली मंजिलों को हमारे देखने लायक ठीकठीक करो।" सो आप क्यों देर कर रहे हैं? (आकाशकी ओर सुनकर) क्या कहते हो—"आर्य, क्या यह नहीं मालूम है, कि महाराज चन्द्रगुप्तके **कौमुदी-महोत्सव**का निषेध हो गया है।" आह भाग्यके मारे, तुम्हारे इस प्राणहारक बात कहनेका क्या मतलब? जल्दी, अब—धूप सुगंध लिये माला बंधे स्तम्भोंका आलिंगन पूर्ण-चन्द्रकी कान्तिवाले अच्छे चंवरोंकी शोभायें करें। सिंहासनके धारणसे बहुत चिरसे मानो मूर्छित सी पृथिवीको जल्दी कुसुम-सहित चन्दन-जलका अभिषेक अनुगृहीत करें ।।२।।

३. (आकाशकी ओर) आप क्या कह रहे हैं—"यह हम जल्दी कर रहे हैं?" भद्रजनो, जल्दी करो, यह महाराज चन्द्रगुप्त आ ही गये। जो कि यह—

विषम मार्गों में भी सुविश्वस्त अंगोंसे न विचलित होते, इसके पिताने पृथिवीके भारी जूयेको चिरकाल तक वहन किया, उसी बड़े जूयेको जवानीमें उठानेके लिये उद्यत, मनस्वी (चन्द्रगुप्त) विनम्र होने से न खिन्न होता है, और न दुःखी ।।३।।

(पर्देमें) इधर-इधर महाराज (राजा और अंगरक्षक प्रवेश करते हैं।)

४. राजा—(अपने आपसे) राजधर्मके अनुवर्तनमें तत्पर नृपतिके लिये राज्य तो सचमुच बड़ी अप्रिय वस्तु है। क्योंकि—

पराये अर्थके करनेमें स्वार्थपरता राजाको निश्चेष्ट करती है, दूसरे अर्थोंको छोड़ वह निकम्मा ही [illegible] पृथिवीपति है। अपने स्वार्थसे परार्थ यदि अधिक पसन्द है, तो अहो परवश, पराधीन वह प्रीति-रसको कैसे जान सकता है ।।४।।

५. अपि च। दुराराध्या हि राजलक्ष्मीः आत्मवद्भिः अपि राजभिः। कुतः—

तीक्ष्णादुद्विजते, मृदौ परिभवत्रासान्न सन्तिष्ठते,
मूर्खान् द्वेष्टि न गच्छति प्रणयितामत्यन्तविद्वत्स्वपि।
शूरेभ्योऽप्यधिकं बिभेत्युपहसत्येकान्तभीरूनहो।
श्रीर्लब्धप्रसरेव वेशवनिता दुःखोपचर्या भृशम् ।।५।।[1]

६. अन्यच्च। कृतककलहं कृत्वा, स्वतन्त्रेण त्वया कंचित् कालं व्यवहर्त्तव्यमित्यार्योपदेशः। स च कथमपि मया पातकम् इवाभ्युपगतः। अथवा शश्वद् आर्योपदेशसंस्क्रियमाणमतयः सदा एव अस्वतन्त्रा वयम्। कुतः ?—

इह हि रचयन् साध्वीं शिष्यः क्रियां न निवार्यते
त्यजति तु यदा मार्गं मोहात् तदा गुरुरंकुशः।
विनयरुचयस्तस्मात् सन्तः सदैव निरंकुशाः,
परतरमतः स्वातन्त्र्येभ्यो वयं हि पराङ्मुखाः ।।६।।[2]

(प्रकाशम्) आर्य वैहीनरे, सुगांगप्रसादमार्गं आदेशय।

कंचुकी—इत इतो देवः।

७. राजा—(परिक्रामति)।

कंचुकी—(परिक्रम्य) अयं सुगांगप्रासादः, शनैः आरोढुमर्हति आर्यः।

८. राजा—(नाट्येन आरुह्य दिशोऽवलोक्य) अहो, शरत्समय-सम्भृतशोभाविभूतीनां दिशां अतिरमणीयता ! कुतः ?—

शनैः शान्ता भूताः सितजलधरच्छेदपुलिनाः,
समन्तादाकीर्णाः कलविरुचिभिः सारसकुलैः।
चिताः चित्राकारैर्निशि विकचनक्षत्रकुमुदैः,
नभस्तः स्यन्दन्ते सरित इव दीर्घा दश दिशः[3] ।।७।।

१. स्रग्धरा। २. वसन्ततिलका। ३. शिखरिणी।

५. और भी, संयमी राजाओं के लिये राजलक्ष्मीका सेवन दुष्कर है। क्योंकि (वह) उग्र पुरुष से उद्विग्न होती है, अपमानके डरसे कोमल के पास नहीं ठहरती, मूर्खोंसे द्वेष करती, अत्यन्त विद्वानोंकी भी प्रेमिका नहीं होती। शूरोंसे भी अधिक डरती है, बिल्कुल डरपोकोंसे अही उपहास करती है, हाथ आई वेश्या स्त्री सी लक्ष्मी का सेवन बहुत दुष्कर है ।।५।।

६. और भी, बनावटी कलह करके कुछ काल तक स्वतन्त्र व्यवहार करना यह आर्य चाणक्य का उपदेश है। और उसे जैसे-कैसे भी मैंने पापकी तरह स्वीकार किया। अथवा आर्यके उपदेशका अनुकरण करनेकी मतिवाले हम सदा ही परतन्त्र हैं, क्योंकि—
इस दुनिया में अच्छा काम करते शिष्य को रोका नहीं जा सकता, जब मोहसे वह मार्गको छोड़ता है, तब गुरु अंकुश (बनता) है। इसलिये विनयमें रुचिवाले संत सदा ही निरंकुश हैं। अतः हम स्वतंत्रता से बहुत ही दूर हैं ।।६।।
(प्रकट) आर्य वैहीनरि, सुगांग-प्रासादका मार्ग बतलाइये।
कंचुकी—इधर-इधर महाराज।

७. राजा—(परिक्रमा करता है)
कंचुकी—(परिक्रमा करके) यह सुगांग-प्रासाद है, आर्य धीरेसे चढ़ें।

८. राजा—(अभिनयपूर्वक चढ़कर, चारों ओर देखकर) अहो! शरत्काल द्वारा प्रदत्त शोभा-संपत्तिवाली दिशाओंकी अतिरमणीयता। क्योंकि—
सफेद मेघखंडोंके तटवाली, चारों ओर मधुर शब्दवाले सारसोंसे आकीर्ण, रातमें विचित्र आकारवाले फूल तारारूपी कमलोंसे शोभित लम्बी नदियों सी आकाशको दसों दिशायें बह रही हैं ।।७।।

९. अपि च—

अपामुद्वृत्तानां निजमुपदिशन्त्या स्थितिपदं,
दधत्या शालीनामवनतिमुदारे सति फले।
मयूराणामुग्रं शरविषमिव हरन्त्या मदमहो,
कृतः कृत्स्नस्यायं विनय इव लोकस्य शरदा[1]॥८॥

१०. अपि च—

भर्तुस्तथा कलुषितां बहुवल्लभस्य,
मार्गे कथंचिदवतार्य तनूभवन्तीम्।
सर्वात्मना रतिकथाचतुरेव दूती,
गंगा शरन्नयति सिन्धुपतिं प्रसन्नाम्[2]॥९॥

(समन्तात् नाट्येन अवलोक्य) अये, कथं अप्रवृत्त-कौमुदीमहोत्सवं कुसुमपुरं पश्यामि? आर्य वैहीनरे, अथ त्वया अस्मद्वचनाद् आघोषितः कुसुमपुरे कौमुदीमहोत्सवः?

कंचुकी—देव, अथ किम्। आघोषितो देवस्य आज्ञया कुसुमपुरे कौमुदीमहोत्सवः।

राजा—आर्य, तदेव किं न परिगृहीतं अस्मद्वचनं पौर-जनेन?

११. कंचुकी—(कर्णौ पिधाय) देव, शान्तं पापं, शान्तं पापं, पृथिव्यां अस्खलितपूर्वं देवस्य शासनं, कथं पौरेषु स्खलितु-मर्हति?

१२. राजा—आर्य वैहीनरे, तत् कथं अप्रवृत्तकौमुदीमहो-त्सवं अधुनाऽपि कुसुमपुरं पश्यामि? पश्य,—

धूर्तैरन्वीयमानाः स्फुटचतुरकथाकोविदैर्वेशनार्यो,
नालंकुर्वन्ति रथ्याः पृथुजघनभराक्रान्तिमन्दैः प्रयातैः।
अन्योन्यं स्पर्द्धमाना न च गृहविभवैः स्वामिनो मुक्तशंकाः,
साकं स्त्रीभिर्भजन्ते विधिमभिलषितं पार्वणंपौरमुख्याः[3]।१०।

---

१. शिखरिणी। २. प्रहर्षिणी। ३. शार्दूलविक्रीडितम्।

९. और भी—

भंवराते जलोंको अपनी मर्यादाका उपदेश करती, उदार फल होनेपर धानोंके झुकनेको धारती, मोरोंके उग्र शर विष जैसे मदको हरण करती, अहो, शरद्‌ने इस सारे लोकको विनय (युक्त) सा कर दिया ।।८।।

१०. और भी—

बहु पत्नीवाले स्वामी की जैसी कलुषित मार्ग पर किसी तरह क्षीण होती, रतिकी कथामें सर्वथा चतुर दूतीसी, शरद् स्वच्छ गंगाको सागरके पास ले जा रही है ।।९।।

(चारों ओर अभिनय के साथ देखकर) अये, पटनाको कौमुदी-महोत्सव-रहित देख रहा हूँ ? आर्य वैहीनरि, क्या हमारे वचनसे कुसुमपुरमें तुमने **कौमुदी-महोत्सव**की घोषणा की ?

११. कंचुकी—(दोनों कानोंको ढांककर) महाराज, शान्तं पापं, शान्तं पापं (घोर अनर्थ), पृथिवीपर महाराजका शासन कभी बाधित नहीं हुआ, वह कैसे नागरिकोंमें बाधित हो सकता है ?

१२. राजा—आर्य **वैहीनरि**, तो अब भी **कुसुमपुर**को कौमुदी-महोत्सवके, बिना क्यों देख रहा हूँ ? देखो—

धूर्तों द्वारा, स्पष्ट कथा-कोविदों द्वारा लिवाई जाती वेश्यायें स्थूल नितम्बके बोझसे मन्द गतिके साथ सड़कोंको अलंकृत नहीं कर रही हैं। नागरिकोंके मुख्य गृह-विभवमें एक-दूसरेसे होड़ करते बेपर्वाहे स्वामी (अपनी) स्त्रियोंके साथ पौर्णमासी पर्वकी इच्छित विधिका सेवन नहीं कर रहे हैं ।।१०।।

१३. कंचुकी—देव, एवमेतत् ।
राजा—किमेतत् ?
कंचुकी—देव, अत इदम्—

१४. राजा—आर्य, स्फुटमभिधीयताम् ।
कंचुकी—देव, प्रतिषिद्धः कौमुदीमहोत्सवः ।
राजा—(सक्रोधम्)। आः केन ?

१५. कंचुकी—न अतः परं अस्माभिर्देवो विज्ञापयितुं शक्यते ।
राजा—न खलु आर्येण चाणक्येन अपहृतः प्रेक्षकाणां अतिशयरमणीयः चक्षुषो विषयः ?

१६. कंचुकी—देव, कोऽन्यो जीवितुकामो देवस्य शासनं उल्लंघयिष्यति ?

राजा—शोणोत्तरे, उपवेष्टुं इच्छामि ।

१७. प्रतीहारी—देव, एतत् सिंहासनं, उपविशतु देवः ।

राजा—(नाट्येन उपविश्य) आर्य वैहीनरे, आर्यचाणक्यं द्रष्टुं इच्छामि ।

कंचुकी—यद् आज्ञापयति देवः (इति निष्क्रान्तः)
(ततः प्रविशति आसनस्थः स्वभवनगतः कोपानुविद्धः
चिन्तां नाटयन् चाणक्यः)

(२) **चाणक्य-प्रकृतिः—**

१८. चाणक्य—(आत्मगतं) कथं स्पर्द्धते मया सह दुरात्मा राक्षसहतकः ? कुतः ?—

कृतागाः कौटिल्यो भुजग इव निर्याय नगरात्,
यथा नन्दं हत्वा नृपतिमकरोत् मौर्यवृषलम् ।
तथाऽहं मौर्येन्दोः श्रियमपहरामीति कृतधीः,
प्रभावं मद्बुद्धेरतिशयितुमेष व्यवसितः ॥११॥

१३. कंचुकी—महाराज, यह ऐसा ही है।

राजा—यह क्या बात है?

कंचुकी—महाराज, इसलिये यह—

राजा—आर्य,

१४. राजा—साफ कहिये।

कंचुकी—महाराज, कौमुदी महोत्सवका निषेध कर दिया है।

राजा—(क्रोध-पूर्वक) आह, किसने?

१५. कंचुकी—इससे आगे हम महाराजके सामने अर्ज नहीं कर सकते।

राजा—आर्य चाणक्यने तो दर्शकोंकी आंखोंको अति रमणीय दृश्यसे वंचित नहीं किया?

१६. कंचुकी—महाराज, जीनेकी इच्छावाला दूसरा कौन महाराजके शासन का उल्लंघन करेगा?

राजा—श्रोणोत्तरा, बैठना चाहता हूँ।

१७. प्रतीहारी—यह सिंहासन है, महाराज बैठें।

राजा—(अभिनयके साथ बैठकर) आर्य वैहीनरि, आर्य चाणक्यको देखना चाहता हूँ।

कंचुकी—जो आज्ञा देते हैं महाराज (यह कह चला गया)।

(कोप-सहित, चिन्ताका अभिनय करते अपने भवनमें आसनपर स्थित चाणक्य प्रवेश करते हैं)

२. चाणक्यका स्वभाव—

१८. चाणक्य—(अपने आपसे) दुष्टात्मा राक्षस अभागा मेरे साथ क्या स्पर्धा करता है? क्योंकि—

सांपकी तरह नगरसे निकलकर कौटिल्यने, जैसे पापी नन्दको मार-कर मौर्य शूद्रको राजा बनाया। वैसे मैं भी मौर्य चन्द्रकी लक्ष्मीको हरूंगा, यह सोचकर वह मेरी बुद्धिके प्रभावसे बढ़नेकी इच्छासे प्रयत्न-शील है ।।११।।

१९. (प्रत्यक्षवद् लक्ष्यं बद्ध्वा) राक्षस, राक्षस, विरम्यतां अस्माद् दुर्व्यवसितात् ।

उत्सिक्तः कुसचिवदृष्टराज्यतन्त्रो,
नन्दोऽसौ न भवति चन्द्रगुप्त एषः ।
चाणक्यस्त्वमपि च नैव केवलं ते,
साधर्म्यं मदनुकृतेः प्रधानवैरम् ॥१२॥

२०. (विचिन्त्य) अथवा, न अतिमात्रं अस्मिन् वस्तुनि मया मनः खेदयितव्यम् । कुतः ?—

मद्भृत्यैः किल नाम पर्वतसुतो व्याप्तः प्रतिष्ठान्तरैः,
उद्युक्ताश्च नियोगसाधनविधौ सिद्धार्थकाद्याः स्पशाः ।
कृत्वा सम्मतिं कैतवेन कलहं मौर्येन्दुना, राक्षसं,
भेत्स्यामि स्वमतेन, भेदकुशलो ह्येष प्रतीपं द्विषः[1]॥१३॥

२१. कंचुकी—(प्रविश्य) कष्टा खलु सेवा नाम !
कुतः ?—

भेतव्यं नृपतेस्ततः सचिवतो राज्ञस्ततो वल्लभात्,
अन्येभ्यश्च वसन्ति येऽस्य भवने लब्धप्रसादा विटाः ?
दैन्यादुन्मुखदर्शनापलपनैः पिण्डार्थमायस्यतः,
सेवां लाघवकारिणीं कृतधियः स्थाने श्ववृत्तिं विदुः[2] ॥१४॥

२२. (परिक्रम्य अवलोक्य च) इदं आर्यचाणक्यस्य गृहं, यावत् प्रविशामि । (नाट्येन प्रविश्य अवलोक्य च) अहो, राजाधिराजमन्त्रिणो गृहभूतिः, कुतः ?—

उपलशकलमेतद् भेदकं गोमयानां,
बटुभिरुपहृतानां बर्हिषां स्तोम एषः ।
शरणमपि समिद्भिः शुष्यमाणाभिराभिः,
विनमितपटलान्तं दृश्यते जीर्णकुड्यम्[3] ॥१५॥

---

१. मालिनी । २. शिखरिणी । ३. वसन्ततिलका ।

१९. (प्रत्यक्षकी तरह आकाशमें लक्ष्य बांधकर) राक्षस, राक्षस, रुक जा इस दुर्व्यवसायसे—
कुमंत्रियों द्वारा, राजतंत्रवाला वह गर्वित नन्द यह चन्द्रगुप्त नहीं है, और नहीं तू चाणक्य ही हो सकता। केवल मेरे अनुकरणका मुख्य वैर तेरी समानता है ।।१२।।

२०. (सोचकर) अथवा, इस बातसे मुझे मनको बहुत अधिक खिन्न नहीं करना चाहिये। क्योंकि—
छद्मवेषी मेरे नौकर पर्वत-पुत्र पर छा गये हैं, आज्ञा पूरी करनेमें तत्पर सिद्धार्थक आदि गुप्तचर हैं। इस समय मौर्यचन्द्रसे कलह करके मै फोड़नेमें कुशल अपने मतसे शत्रुसे उलटे राक्षसको फोड़ूँगा ।।१३।।

२१. कंचुकी—(भीतर प्रवेश कर) सेवा तो कठिन है, क्योंकि—
राजासे डरना है फिर सचिवसे फिर राजाके प्रियजनसे भी, इनके भवनमें कृपापात्र जो दूसरे धूर्त बसते हैं, उनसे भी, और दीनतासे ऊपर मुंह करके देखने तथा अपलापोंसे टुकड़े के लिये कोशिश करते, (आदमी को लिये) हलका बनानेवाली सेवाको विद्वान् ठीक ही कुत्तेकी वृत्ति मानते हैं ।।१४।।

२२. (परिक्रमा करके और देख कर) यह आर्य चाणक्यका गृह है, सो प्रवेश करता हूँ। (अभिनयसे प्रवेश करके और देखकर) अहा, राजाधिराजके मंत्रीके घरका वैभव; क्योंकि—
गोइठोंको तोड़नेके लिये यह पत्थरका टुकड़ा, विद्यार्थियों द्वारा लाये कुशोंकी यह राशि। घर भी इन सुखाई जाती समिधाओंसे भरा, जीर्ण भीतें झुकी छतके छोरवाला दीजरा है ।।१५।।

२३. ततः स्थाने खलु अस्य वृषलो देवश्चन्द्रगुप्त इति। कुतः ?—

स्तुवंत्यश्रान्तास्याः क्षितिपतिपभूतैरपि गुणैः,
प्रवाचः कार्पण्याद् यदवितथवाचोऽपि कृतिनः।
प्रभावस्तृष्णायाः स खलु सकलः स्यादितरथा,
निरीहाणामीशस्तृणमिव तिरस्कारविषयः ॥१६॥

२४. (विलोक्य समयम्) तदयम् आर्यचाणक्यस्तिष्ठति—

यो नन्दमौर्यनृपयोः परिभूय लोकं,
अस्तोदयौ प्रतिदिशन्नविभिन्नकालम्।
पर्यायपालितहिमोष्णिम सर्वगामि
धाम्नाऽतिशाययति धाम सहस्रधाम्नः ॥१७॥

(जानुभ्यां भूमौ निपत्य) जयति जयति आर्यः।

चाणक्यः—(नाट्येन अवलोक्य)। वैहीनरे, किं आगमन-प्रयोजनम् ?

२५. कंचुकी—आर्य प्रणतिसम्भ्रमसमुच्चलितभूमिपालमौलि-मणिशकलशिखापिशंगीकृतपादपद्मयुगलः पादपद्मयोः आर्यं प्रणिपत्य देवः चन्द्रगुप्तो विज्ञापयति, क्रियान्तरं अन्तरायं अन्तरेण आर्यं द्रष्टुं इच्छामि इति।

२६. चाणक्यः—वृषलो मां द्रष्टुं इच्छति ? वैहीनरे, न खलु वृषलस्य श्रवणमुपगतोऽयं मया कृतः कौमुदीमहोत्सव प्रतिषेधः ?

कंचुकी—आर्य, अथ किम् ?

चाणक्यः—(सक्रोधम्) आः! केन कथितम् ?

२३. इसलिये ठीक ही है, इनके लिये महाराज चन्द्रगुप्त शूद्र हैं। क्योंकि—
बिना थके मुखवाले अविद्यमान गुणों को भी लेकर राजाकी स्तुति करते मुंह नहीं थकता, दीनताके कारण यथार्थ भाषी सज्जन भी वाचाल बन जाते हैं, वह सब तृष्णाकी कारस्तानी है नहीं तो, निर्लोभियोंके लिये ईश्वर भी हेय है ।।१६।।

२४. (देखकर भयके साथ) सो यह आचार्य चाणक्य हैं—
जो लोकका तिरस्कार कर, नंद और मौर्य दोनों राजाओंका अस्त उदय एक ही समय कराते, अपने प्रकाशमें सूर्यके बारी-बारीसे गर्मी-सर्दी गिराते सर्वगामी प्रकाश से बढ़ जाते हैं ।।१७।।
(दोनों जानुओंको भूमिपर रख) जय हो, जय हो आर्य।
चाणक्य—(अभिनयसे अवलोकन कर) वैहीनरि, (तुम्हारे) आने का क्या प्रयोजन है?

२५. कंचुकी—आर्य प्रणामके लिये जल्दीसे चलित भूपालोंकी मुकुट-मणियोंके खंडकी शिखाओंसे पीले हुये दोनों चरणकमलवाले महाराज चन्द्रगुप्त आर्यके दोनों पैरोंमें प्रणाम करके अर्ज करते हैं—दूसरे कामका अन्तराय न हो, तो आर्यको मैं देखना चाहता हूँ।

२६. चाणक्य—शूद्र मुझे देखना चाहता है? वैहीनरि, शूद्र के कानमें यह बात नहीं आई, कि मैंने कौमुदी-महोत्सवका निषेध क्यों कर दिया?
कंचुकी—आर्य, और क्या?
चाणक्य—(क्रोध-सहित) आः, किसने कहा?

२७. कंचुकी—(भयं नाटयित्वा) प्रसीदतु आर्यः। स्वयमेव सुगांगप्रासादशिखरगतेन देवेन अवलोकितं अप्रवृत्तकौमुदी-महोत्सवं कुसुमपुरम्।
चाणक्यः—आः ज्ञातं, तिष्ठ तावद् भवद्भिः एव मदन्तरेण प्रोत्साह्य रोषितो वृषलः, किं अन्यत्?

२८. कंचुकी—(सभयं तूष्णीं अधोमुखस्तिष्ठति)।
चाणक्यः—अहो! राजपरिजनस्य चाणक्यस्य उपरि विद्वेषपक्षपातः। अथ क्व वृषलः तिष्ठति?

२९. कंचुकी—(भयं नाटयन्) आर्य, सुगांगप्रसादगतेन देवेन अहं आर्य्यपादमूलं प्रेषितः।
चाणक्यः—(उत्थाय) कंचुकिन्, सुगांगप्रासादमार्गं देशय।

(३) उत्सव-निषेधकारणम्

३०. कंचुकी—इत इत आर्यः। (इति उभौ परिक्रामतः)
कंचुकी—अयं सुगांगप्रासादः, शनैः आरोढुमर्हति आर्यः।

३१. चाणक्यः—(नाट्येन आरुह्य अवलोक्य च सहर्षं आत्मगतम्) अये, सिंहासनमध्यास्ते वृषलः। साधु साधु—

नन्दैर्वियुक्तमनपेक्षितराजवृत्तैः
अध्यासितं च वृषलेन वृषेण राज्ञाम्।
सिंहासनं सदृशपार्थिवसंगतं च,
प्रीतिं परां प्रगुणयन्ति गुणा ममैते[१] ॥१८॥

(उपसृत्य) विजयतां वृषलः।

---

१. वसन्ततिलका।

२७. कंचुकी—(भय का अभिनय कर) दया करें आर्य, सुगांग-प्रासादके शिखरपर अवस्थित महाराजाने स्वयं कुसुमपुरको कौमुदी-महोत्सव रहित देखा।

चाणक्य—आ: समझा, तो ठहरो। आप लोगोंने ही मेरे बिना प्रोत्साहित कर शूद्र को रुष्ट किया, और क्या?

२८. कंचुकी—(भयभीत नीचे मुख किये चुप रहता है)

चाणक्य—अहो, चाणक्यके ऊपर राजसेवकोंका द्वेषयुक्त पक्षपात? तो शूद्र कहां है?

२९. कंचुकी—(भयका अभिनय करके) आर्य, सुगांग-प्रासादपर स्थित महाराजने मुझे आर्यके चरणोंमें भेजा।

चाणक्य—(उठकर) कंचुकि, सुगांग-प्रासादका मार्ग बतलाओ।

३. उत्सव-निषेधका कारण—

३०. कंचुकी—इधर, इधर आर्य। (दोनों परिक्रमा करते हैं)

कंचुकी—यह सुगांग-प्रासाद है। आर्य धीरे-धीरे चढ़िये।

३१. चाणक्य—(अभिनयपूर्वक चढ़ और देखकर हर्षपूर्वक अपने आपसे)। अये, सिंहासन पर आसीन हैं वृषल। अच्छा-अच्छा—राजाओंके कर्तव्यसे बेपर्वाह नंदों द्वारा त्यक्त, श्रेष्ठ राजा वृषल द्वारा अधिष्ठित और योग्य राजा से पाला गया यह सिंहासन है, यह गुण मेरी परम प्रसन्नता को बढ़ाते हैं ।।१८।।

(पास जाकर) विजयी हों वृषल।

३२. राजा—(सिंहासनादुत्थाय चाणक्यस्य पादौ गृहीत्वा) आर्य, चन्द्रगुप्तः प्रणमति।

चाणक्यः—(पाणौ गृहीत्वा) उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वत्स,

आ शैलेन्द्राच्छिलान्तस्खलितसुरधुनीशीकरासारशीतात्,
आ तीरान्नैकरागस्फुरितमणिरुचो दक्षिणस्यार्णवस्य।
आगत्यागत्य भीतिप्रणतनृपशतैः शश्वदेव क्रियन्तां,
चूडारत्नांशुगर्भास्तव चरणयुगस्यांगुलीरन्ध्रभागाः[१] ॥१९॥

३३. राजा—आर्यप्रसादाद् अनुभूयत एवैतत् नाशास्यते। उपविशतु आर्यः। (इति उभौ यथासनं उपविष्टौ)

चाणक्य—वृषल, किमर्थं वयं आहूताः?

३४. राजा—आर्यस्य दर्शनेन आत्मानं अनुग्राहयितुम्।

चाणक्यः—(स्मितं कृत्वा) वृषल, अलम् अनेन प्रश्रयेण, न निष्प्रयोजनं अधिकारवन्तः प्रभुभिः आहूयन्ते, तत्प्रयोजनं अभिधीयताम्।

३५. राजा—आर्य, कौमुदीमहोत्सवप्रतिषेधस्य किं फलं आर्यः पश्यति?

चाणक्यः—(स्मितं कृत्वा) वृषल, उपालब्धुं तर्हि वयं आहूताः?

राजा—आर्य, न उपालब्धुम्।

३६. चाणक्यः—किं तर्हि?

राजा—विज्ञापयितुम्।

चाणक्यः—वृषल, यदि एवं तर्हि विज्ञापनीयानां अवश्यं शिष्येण रुचयोऽनुरोद्धव्याः।

---

१. स्रग्धरा।

३२. राजा—(सिंहासनसे उठकर चाणक्यके दोनों पैरोंको पकड़कर)। आर्य, चन्द्रगुप्त प्रणाम करता है।
चाणक्य—(दोनों हाथोंको पकड़कर) उठ, उठ बच्चे—
महापर्वतोंसे शिलाओं पर गिरी गंगाके फुहारोंसे शीतल अनेक रंगोंकी, चमकती मणियोंकी कांतिवाले दक्षिण सागरके तीर तकके आ-आकर भयसे प्रणत सैकड़ों-राजा सदा तेरे चरण युगलोंकी अंगुलियोंके छिद्र-भागको अपने चूड़ारत्नकी किरणोंसे व्याप्त बनायें ॥१९॥

३३. राजा—आर्यकी कृपासे यह भोग ही किया जा रहा है, आर्य, बैठिये।
(दोनों अपने अपने आसनपर बैठे)
चाणक्य—वृषल, किसलिये हमें बुलाया?

३४. राजा—आर्यके दर्शनसे अपनेको अनुगृहीत करनेके लिये।
चाणक्य—(मुस्कुराकर) वृषल, रहने दो तकल्लुफ, स्वामी, बिना प्रयोजन अधिकारियों को नहीं बुलाते। वही प्रयोजन कहिये।

३५. राजा—आर्य, कौमुदी-महोत्सवके निषेधमें क्या लाभ आप देखते हैं।
चाणक्य—(मुस्कुराकर) तो वृषल, उलाहना देनेके लिये हमें बुलाया है?
राजा—आर्य, उलाहना देनेके लिये नहीं।

३६. चाणक्य—तो क्या?
राजा—विज्ञापन (अर्ज) करनेके लिये।
चाणक्य—वृषल, यदि यह है, तो विज्ञापनीयों (गुरुजनों) की रुचिका शिष्यको अवश्य पालन करना चाहिये।

३७. राजा—आर्य, कः सन्देहः ? किन्तु न कदाचिदपि आर्यस्य निष्प्रयोजना प्रवृत्तिः इति अस्ति नः प्रश्नावकाशः।
चाणक्य—वृषल, सम्यग्गृहीतवानसि मदाशयम्। न हि प्रयोजनं अनपेक्षमाणः स्वप्नेऽपि चाणक्यः चेष्टते।

३८. राजा—आर्य, अतएव मां प्रयोजनशुश्रूषा मुखरयति।
चाणक्यः—वृषल, श्रूयतां, इह खलु अर्थशास्त्रकाराः त्रिविधां, सिद्धिं उपवर्णयन्ति। तद्यथा, राजायत्तां, सचिवायत्तां उभयायत्तां च इति। तत् सचिवायत्तसिद्धेर्भवतः किं फलान्वेषणेन ? यतो वयमेव अत्र नियुक्ता वेत्स्यामः।

३९. राजा—(सकोप इव मुखं परिवर्त्तयति)
(ततौ नेपथ्ये वैतालिकौ पठतः)

४०. एकः,—

आकाशं काशपुष्पच्छविमभिनवता भस्मना शुक्लयन्ती,
शीतांशोरंशुजालैर्जलधरमलिनां क्लिन्दती कृत्तिमैभीम्।
कापालीमुद्वहन्ती स्रजमिव धवलां कौमुदीमित्यपूर्वा,
हासश्रीराजहंसा हरतु तनुरिव क्लेशमैशी शरद्वः[1]।।२०।।

४१. अपि च,—

प्रत्यग्रोन्मुषजिह्मा क्षणमनभिमुखी रत्नदीपप्रभाणाम्,
आत्मव्यापारगुर्वी जनितजललवा, जृम्भितैः सांगभंगैः।
नागांकं भोक्तुमिच्छोः शयनमुरु फणाचक्रवालोपधानं,
निद्राच्छेदाभिताम्रा चिरमवतु हरेर्दृष्टिराकेकरा वः[2]।।२१।।

४२. द्वितीयः,—

सत्वोत्कर्षस्य धात्रा निधय इव कृताः केऽपि कस्यापि हेतोः,
जेतारः स्वेन धाम्ना मदसलिलमुचां नागयूथेश्वराणाम्।
दंष्ट्राभंगं मृगाणामधिपतय इव व्यक्तमानावलेपाः,
नाज्ञाभंगं सहन्ते नृवर, नृपतयस्त्वादृशाः सार्वभौमाः।।२२।।

---

१. स्रग्धरा। २. पथ्यावक्त्रम्।

३७. राजा—आर्य, इसमें क्या सन्देह? लेकिन कभी भी आर्य बिना प्रयोजनके कोई काम नहीं करते, इसलिये हमें पूछने का अवकाश है।
चाणक्य—वृषल, मेरे अभिप्रायको अच्छी तरह तुमने पकड़ा है। प्रयोजनके बिना **चाणक्य** स्वप्नमें भी कोई काम नहीं करता।

३८. राजा—आर्य, इसीलिये प्रयोजन सुननेकी मेरी इच्छा मुझसे बुलवा रही है।
चाणक्य—वृषल, सुनिये, यहां शास्त्रकार तीन प्रकारकी सिद्धि बतलाते हैं, जैसे:—"राजाधीन, सचिव-अधीन और दोनों के अधीन।" तो सचिवाधीन सिद्धिके लाभ के बारेमें अन्वेषणसे आपको क्या? क्योंकि इसमें नियुक्त हमीं उसे जानेंगे।

३९. राजा—(कुपित सा हो मुख फेर लेता है)

(पर्देमें दो **वैतालिक** पाठ करते हैं)

४०. एक—
ढंकनेवाली भस्म द्वारा आकाशको, काशके फूलकी शोभा जैसी सफेद करती, चन्द्रकी किरणोंसे मेघ द्वारा मलिन गज-चर्मको भिगो रही है, उजली चांदनीको शिरकी माला जैसी धारण करती, यह अपूर्व शंकरकी हास-शोभारूपी राजहंसी तुम्हारे क्लेशको हरे ।।२०।।

४१. और भी—
अभिनव उद्घाटनसे तिरछी, क्षण भर रत्नदीपोंकी प्रभाओंके असम्मुख अपने काममें मंथर, जलकण उपजाती अंग-भंगोंके व्यापारोंसे विशाल फणमंडलके तकियेवाले शेषनागकी शय्या छोड़नेके इच्छुक (विष्णु) की निद्राके विच्छेदसे रक्तिम (तथा) कुंचित दृष्टि तुम्हारी सदा रक्षा करे ।।२१।।

४२. दूसरा—
किसी भी हेतुसे किसीके महान् मद-जल छोड़ने गजयूथोंके स्वामियों-को अपने तेजसे जीतनेवाला, दांतके उत्कर्ष की निर्मिति बनाया स्पष्ट अभिमान, गर्वीले मृगोंके स्वामियोंकी तरह हे पुरुषश्रेष्ठ तेरे जैसे चक्रवर्ती राजा दांत तोड़नेकी तरह आज्ञा तोड़नेको नहीं सह सकते ।।२२।।

अपि च,—

भूषणाद्युपभोगेन प्रभुर्भवति न प्रभुः ।
परैरपरिभूताज्ञस्त्वमिव प्रभुरुच्यते ॥२३॥

४३. चाणक्यः—(आकर्ण्य आत्मगतम्) प्रथमं तावद्विशिष्टदेवता-स्तुतिरूपेण प्रवृत्तं शरद्गुणप्रख्यापनं आशीर्वचनम्, इदं अपरं किमिति न अवधारयामि। (विचिन्त्य) आः ज्ञातम्। राक्षसस्य अयं प्रयोगः। आः दुरात्मन् राक्षस-हतक, दृश्यसे, जागर्त्ति खलु कौटिल्यः।

राजा—आर्य वैहीनरे, दीयताम् आभ्यां वैतालिकाभ्यां सुवर्णशतसहस्रम्।

कंचुकी—यद् आज्ञापयति देवः। (इति उत्थाय परिक्रा-मति)।

४४. चाणक्यः—(सक्रोधम्) वैहीनरे, तिष्ठ तिष्ठ, न गन्तव्यम्। वृषल, किं अयमस्थाने एव महान् अर्थोत्सर्गः क्रियते?

राजा—आर्येण एवं सर्वतो निरुद्धचेष्टाप्रसरस्य मम बन्धनं इव राज्यं, न राज्यमिव।

४५. चाणक्यः—वृषल, स्वयं अनभियुक्तानां राज्ञां एते दोषा भवन्ति। तद् यदि न सहसे, तदा स्वयमेव अभि-युज्यस्व।

राजा—एते वयं स्वकर्म्मणि अभियुज्यामहे।

४६. चाणक्यः—प्रियं नः, वयमपि स्वकर्म्मणि अभियुज्यामहे।

राजा—यदि एवं, तर्हि कौमुदीमहोत्सवप्रतिषेधस्य प्रयो-जनं श्रोतुं इच्छामि।

चाणक्यः—वृषल, कौमुदीमहोत्सवानुष्ठानस्य किं प्रयो-जनं इति अहमपि श्रोतुं इच्छामि।

राजा—प्रथमं तावत् ममाज्ञाव्याघातः।

और भी—

भूषण आदिके उपभोगसे (कोई) प्रभु नहीं होता। तेरी तरह जिसकी आज्ञा को दूसरे तिरस्कृत नहीं कर सकते, वही प्रभु कहा जा सकता है ॥२३॥

४३. चाणक्य—(सुनकर अपने आपसे) पहले (श्लोकमें) तो विशेष देवताकी स्तुतिके रूपमें वर्तमान शरद्‌के गुणको बतलाते आशीर्वाद है। यह दूसरा क्या है, यह नहीं समझ पाया। (सोचकर) ओ समझा। राक्षसका यह काम है। आः, दुष्ट अभागे राक्षस, तू देखेगा कि कौटिल्य जागरूक है।

राजा—आर्य वैहीनरि, इन दोनों वैतालिकोंको सौ हजार सुवर्ण (मुहर) दे दीजिये।

कंचुकी—जो महाराज आज्ञा देते हैं। (उठकर परिक्रमा करता है)

४४. चाणक्य—(क्रोध-सहित) वैहीनरि, ठहर, ठहर न जा। वृषल, क्यों अनुचित स्थानमें इतने भारी धनका व्यय किया जा रहा है?

राजा—आर्य द्वारा इस प्रकार सब तरफसे कामोंको करनेसे रोके गये मेरे लिये राज्य, राज्य जैसा नहीं बल्कि बन्धन जैसा है।

४५. चाणक्य—वृषल, ये अयोग्य राजाओंके अपने दोष हैं। तो यदि तुम नहीं बर्दाश्त करते, तो स्वयं ही अभियोजन (आज्ञा) करो।

राजा—यह (लीजिये) हम अपने काममें अभियोजन करते हैं।

४६. चाणक्य—यह हमें बहुत पसन्द है, हम भी काममें अभियोजन करेंगे।

राजा—अगर ऐसा है, तो कौमुदी-महोत्सवके निषेधका प्रयोजन सुनना चाहता हूँ।

चाणक्य—वृषल, कौमुदी-महोत्सवके अनुष्ठानका क्या प्रयोजन है, यह मैं भी सुनना चाहता हूँ।

राजा—पहले तो मेरी आज्ञाका भंग हुआ।

४७. चाणक्यः—वृषल, ममापि खलु त्वदाज्ञाव्याघात एव कौमुदीमहोत्सवप्रतिषेधस्य प्रथम प्रयोजनमिति। कुतः ?—

अम्भोधीनां तमालप्रभवकिसलयश्यामवेलावनानाम्,
आ पारेभ्यश्चतुर्णां चटुलतिमिकुलक्षोभितान्तर्जलानाम्।
मालेवाज्ञा सपुष्पा नतनृपतिशतैरुह्यते या शिरोभिः,
सा मय्येव स्खलन्ती प्रथयति विनयालंकृतं ते प्रभुत्वम्[1] ॥२४॥

४८. राजा—अथ अपरमपि प्रयोजनं यत् तच्छ्रोतुं इच्छामि।
चाणक्यः—तदपि कथयामि ?
राजा—कथ्यताम्।

४९. चाणक्यः—शोणोत्तरे, शोणोत्तरे, मद्वचनात् कायस्थं अचलदत्तं ब्रूहि, यत् भद्रभटप्रभृतीनां लेख्यपत्रं तत्तावत् दीयतां इति।

प्रतीहारी—यदार्य आज्ञापयति इति। (निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य) आर्य, इदं पत्रम्।

चाणक्यः—गृहीत्वा। वृषल, श्रूयताम्।

राजा—दत्तावधानोऽस्मि।

५०. चाणक्यः—वाचयति। स्वस्ति, सुगृहीतनामधेयस्य देवस्य चन्द्रगुप्तस्य सहोत्थायिनां प्रधानपुरुषाणाम्। तत्र प्रथमं तावद् गजाध्यक्षो भद्रभटः, अश्वाध्यक्षः पुरुषदत्तः, महाप्रतीहारस्य चन्द्रभानोर्भागिनेयो हिंगुरातः, देवस्य स्वजनगन्धी महाराजो बलगुप्तः, देवस्यैव कुमारसेवको राजसेनः, सेनापतेः सिंहबलदत्तस्य कनीयान् भ्राता भागुरायणः, मालवराजपुत्रो रोहिताक्षः, क्षत्रगणमुख्यतमो विजयवर्मा इति (आत्मगतम्) एते वयं देवस्य कार्य्ये अवहिताः स्म इति। (प्रकाशम्) एतावद् एतत् पत्रम्।

राजा—आर्य, एतेषां अपरागहेतून् श्रोतुं इच्छामि।

---

१. स्रग्धरा।

४७. चाणक्य—वृषल, तेरी आज्ञाका भंग ही कौमुदी-महोत्सवके निषेधका मेरा प्रथम प्रयोजन है।

क्योंकि—

तमालमें उत्पन्न पत्तोंसे श्याम तटके वनोंवाले, चंचल महामत्स्यों द्वारा क्षोभित, भीतर जलयुक्त चारों समुद्रोंके पार तटके प्रणत सैकड़ों नृपति (अपने) सिरों पर जिस आज्ञाको पुष्पमालाकी तरह रखते हैं। सो (आज्ञा) मेरे ही ऊपर गिरती तेरे विनय-भूषित प्रभुताको प्रख्यापित करती है।।२४।।

४८. राजा—और दूसरा भी प्रयोजन सुनना चाहता हूँ।

चाणक्य—उसे भी कहूँ?

राजा—कहिये।

४९. चाणक्य—शोणोत्तरा **शोणोत्तरा**, मेरे वचनसे **कायस्थ अचलदत्त**को कह, कि **भद्रभट** आदि का जो लेख्यपत्र है, उसे दीजिये।

प्रतीहारी—जो आर्य आज्ञा देते हैं। (निकलकर फिर प्रवेश करके)। आर्य, यह पत्र है।

चाणक्य—(लेकर) वृषल, सुनिये।

राजा—सावधान हूं।

५०. चाणक्य—बांचता है। स्वस्ति, सुगृहीत नामवाले महाराज **चन्द्रगुप्त** के साथ उठने-बैठने वाले प्रधानपुरुषोंकी यहांसे हटकर मलयकेतुके आश्रितों की संख्याका लेख्यपत्र। वहां पहले गजाध्यक्ष **भद्रभट**, अश्वाध्यक्ष पुरुषदत्त, महाप्रतीहार चन्द्रभानुका भांजा **हिंगुरात**, महाराजका स्वजन-सम्बन्धी महाराज **बलगुप्त**, देवका ही कुमार-सेवक **राजसेन**, सेनापति **सिंहबलदत्त**का छोटा भाई **भागुरायण**, मालव-राजकुमार रोहिताक्ष, क्षत्रियसमूहका सबसे बड़ा मुखिया **विजयवर्मा**। (अपने आपसे) यह हम देवके कार्यमें लगे हैं। (प्रकट) इतना है यह।

राजा—आर्य, इनके विरक्त (बागी) होनेका कारण सुनना चाहता हूं।

५१. चाणक्यः—वृषल, श्रूयताम् । अत्र यौ एतौ गजाध्यक्षाश्वाध्यक्षौ भद्रभटपुरुषदत्तनामानौ, एतौ खलु स्त्रीमद्यमृगयाशीलौ, हस्त्यश्वावेक्षणे अनभियुक्तौ, इति स्वाधिकाराभ्यां अवरोप्य मया स्वजीवनमात्रेणैव स्थापितौ इति अपरक्तौ, गत्वा स्वेन स्वेन च अधिकारेण व्यवस्थाप्य मलयकेतुं आश्रितौ। यौ एतौ हिंगुरातबलगुप्तौ, तौ अपि अत्यन्तलुब्धप्रकृती, दत्तं धनम् अबहु मन्यमानौ, तत्र बहु लभ्यते इति मलयकेतुं आश्रितौ। योऽपि असौ भवतः कुमारसेवको राजसेनः, सोऽपि तव प्रसादात् अतिमात्रं कोषहस्त्यश्वं सहसा एव सुमहदैश्वर्य्यमवाप्य पुनरुच्छेदशंकया अपक्रम्य मलयकेतुं आश्रितः। योऽयमपरः सेनापतेः सिंहबलदत्तस्य कनीयान् भ्राता भागुरायणः, असौ अपि तत्र काले पर्वतकेन सह समुत्पन्नसौहार्दः तत्प्रीत्या च "पिता मे चाणक्येन घातितः" इति रहसि त्रासयित्वा, मलयकेतुं अपवाहितवान्, ततो भवत्पथ्यकारिषु चन्दनदासप्रभृतिषु निगृह्यमाणेषु स्वदोषाशंकया अपक्रम्य मलयकेतुंमाश्रितः, तेनापि असौ मम अनेन प्राणाः परिरक्षिता इति कृतज्ञतां अनुरुध्यमानेन पैतृकं च परिचयं, आत्मनोऽनन्तरं अमात्यपदं ग्राहितः। यौ तौ रोहिताक्षविजयवर्म्माणौ, तौ अत्यन्तमानित्वात् स्वदायादेभ्यः त्वया दीयमानं बहुसम्मानं असहमानौ, मलयकेतुं आश्रितौ। इत्येषां अपरागहेतवः।

५२. राजा—आर्य, एवं एतेषु परिज्ञातापरागहेतुषु अपि क्षिप्रमेव कस्मात् न प्रतिविहितम् आर्येण ?

चाणक्यः—वृषल, न पारितं प्रतिविधातुम्।

५१. चाणक्य—वृषल, सुनिये। यहां जो यह गजोंके अध्यक्ष और घोड़ोंके अध्यक्ष भद्रभट और पुरुषदत्त हैं, यह स्त्री-मद्य और मृगयाके प्रेमी हैं, हाथी-घोड़ोंकी (सेना) के देखनेके अयोग्य हैं। इसलिये अधिकारोंसे वंचित कर उन्हें अपने जीवन मात्रके साथ मैंने रख दिया, इसलिये यह विरक्त हो जाकर (वहां) अपने-अपने अधिकार पर आरूढ़ हो मलयकेतुके आश्रित हो गये। जो यह हिंगुरात और बलगुप्त हैं, ये भी बहुत लोभी स्वभावके हैं, यहां दिये जाते, धनको बहुत न मानकर वहां बहुत मिलेगा, यह सोच मलयकेतुके आश्रित हो गये। और जो यह आपका कुमारसेवक राजसेन है, वह भी आपकी कृपासे बहुत अधिक कोश-हाथी-घोड़ेसहित भारी ऐश्वर्यको एकाएक पाकर उनके उच्छेदके डरसे भागकर मलयकेतुके आश्रित हो गया। जो यह दूसरा सेनापति सिंहवलदत्तका छोटा भाई भागुरायण है, यह भी वहां समयपर पर्वतकके साथ मित्रता करके उसकी प्रीति और "तेरे पिताको चाणक्यने मरवाया" यह कह एकान्तमें डराकर मलयकेतुका विरोधी बना। इसलिये आपके अहित करनेवाले चंदनदास आदिके पकड़े जानेपर यह अपने अपराधके (खुलनेके) भयसे भागकर मलयकेतुके आश्रित हो गया। उसने भी, "इसने मेरे प्राणोंकी रक्षा की" यह सोच कृतज्ञताके अनुरोधसे और पैतृक परिचय का ख्याल कर अपने बाद अमात्यका पद प्रदान किया। जो वे रोहिताक्ष और विजयवर्मा हैं, वे अपने दायादोंको तुम्हारे द्वारा बहुत सम्मान दिये जानेको न सहन कर अत्यन्त अभिमानी होनेके कारण मलयकेतुके आश्रित हो गये। यह है इनके विरागका कारण।

५२. राजा—आर्य, इस प्रकार इनके विरागके हेतुओंके जान लेनेपर भी जल्दी ही क्यों नहीं आर्यने प्रतिविधान किया?

चाणक्य—वृषल, प्रतिविधान नहीं कर सका।

५३. राजा—किं अकौशलात्, उत प्रयोजनापेक्षितया ?
चाणक्यः—कथं अकौशलं भविष्यति, नियतं प्रयोजनापेक्षितया।
राजा—तत् अप्रतिविधानप्रयोजनं इदानीं श्रोतुमिच्छामि।
चाणक्यः—वृषल, श्रूयतां अवधार्यतां च।
राजा—उभयमपि क्रियते, कथ्यताम्।

५४. चाणक्यः—वृषल, इह खलु विरक्तानां प्रकृतीनां द्विविधं प्रतिविधानम्, तद् यथा, अनुग्रहो निग्रहश्च इति। अनुग्रहः तावत् आक्षिप्ताधिकारयोः भद्रभटपुरुषदत्तयोः पुनः अधिकारारोपणं एव। अधिकारश्च पुनः तादृशेषु व्यसनदोषात् अनभियुक्तेषु पुनः आरोप्यमाणः सकलस्य एव राज्यस्य मूलं हस्त्यश्वं अवसादयेत्। हिंगुरातबलगुप्तयोः अत्यन्तलुब्धप्रकृतिकयोः सकलराज्यसम्प्रदानेनापि अपरितुष्यतोः अनुग्रहः कथं कर्तुं शक्यः? राजसेनभागुरायणयोस्तु स्वधनप्राणनाशभीतयोः कुतोऽनुग्रहस्य अवकाशः? रोहिताक्षविजयवर्म्मणोरपि दायादमानप्रदानपीडितयोः मानमपि अपमानं मन्यमानयोः अत्यन्तमानिनोः कीदृशोऽनुग्रहः प्रीतिं जनयिष्यतीति परिहृतः पूर्वः पक्षः, उत्तरोऽपि खलु वयं अचिरात् अधिगतनन्दैश्वर्याः सहोत्थायिनं प्रधानपुरुषवर्गं उग्रेण दण्डेन पीडयन्तो, नन्दकुलानुरक्तानां प्रकृतीनां अविश्वास्या भवामः, इत्यतः परिहृत एव। तत् एवमनुगृहीतास्मद्भृत्यपक्षो राक्षसोपदेशश्रवणप्रवणो महीयता म्लेच्छराजबलेन परिवृतः, पितृवधामर्षितः पर्वतकपुत्रो मलयकेतुः अस्मान् अभियोक्तुं उद्यत इति, सोऽयं व्यायामकालो न उत्सवकाल इति। अतो दुर्गसंस्कारे आरब्धव्ये किं कौमुदीमहोत्सवेन? इति प्रतिषिद्धिः।

५३. राजा---क्या अकौशलके कारण, या किसी मतलबसे।

चाणक्य---अकौशल (अनिपुणता) कैसे, निश्चय मतलबसे ही।

राजा---अब प्रतिविधान न करनेका मतलब सुनना चाहता हूं।

चाणक्य---वृषल, सुनिये और मनमें करिये।

राजा---दोनों करता हूं, कहिये।

५४. चाणक्य---वृषल, बागी प्रजाओंका दो प्रकारसे प्रतिविधान होता है, जैसे कि, अनुग्रह और निग्रह (दण्ड) से। अनुग्रह तो है छिने अधिकार वाले भद्रभट और पुरुषदत्तको फिरसे अधिकारपर स्थापित करना ही। व्यसनके दोषके कारण ऐसे अयोग्योंको अधिकार पर पुनः स्थापित किये जाने पर सारे राज्य की जड़ हाथी-घोड़ेका (की सेना का) नाश करते। और अत्यन्त लोभी प्रकृतिवाले, सारा राज्य देनेपर भी न संतुष्ट होनेवाले हिंगुरात और बलगुप्त पर कैसे अनुग्रह किया जा सकता है? अपने धन और प्राणके नाशसे भयभीत राजसेन और भागुरायणपर अनुग्रह के लिये अवसर कहां? दायादोंको भाग देनेसे पीड़ित, मानको भी अपमान माननेवाले अत्यन्त अभिमानी रोहिताक्ष और विजयवर्मा के मन में भी अनुग्रह कैसे (विश्वास) पैदा करेगा। इस प्रकार पहला पक्ष छोड़ देना पड़ा। दूसरा पक्ष (निग्रह)---हमने हाल ही में नन्दके ऐश्वर्यको पाया है, उसके साथ उन्नत हुये प्रधान पुरुषोंको कठोर दण्ड द्वारा पीड़ित करने पर नन्दकुल-भक्त प्रजाओंका विश्वास हम पर नहीं रहता, इसलिये उसे भी छोड़ दिया। इस प्रकार अनुगृहीत हुये हमारे भृत्य लोग राक्षसकी बात माननेके इच्छुक हैं, म्लेच्छ राजा की भारी सेना लेकर पिताके वधसे क्रुद्ध पर्वतकपुत्र मलयकेतु हमसे लड़नेके लिये उद्यत है। यह समय प्रयत्नका समय है, उत्सवका नहीं। गढ़की मरम्मत में लगनेके समय कौमुदी-महोत्सव-का क्या काम, इसीलिये मैंने (उसका) निषेध किया।

५५. राजा—आर्य, बहु प्रष्टव्यमत्र ।
चाणक्यः—वृषल, विश्रब्धं पृच्छ, ममापि बहु वाख्येयं अत्र ।
राजा—एष पृच्छामि ।
चाणक्यः—अहमपि एष कथयामि ।
राजा—योऽयं अस्माकमस्य सर्वस्यैव अनर्थस्य हेतुर्मलयकेतुः, स कस्मात् आर्येण अपक्रामन् उपेक्षितः ?

५६. चाणक्यः—वृषल, मलयकेतोः अपक्रमणानुपेक्षणे द्वयी गतिः च स्यात्, अनुगृह्येत निगृह्येत वा। अनुग्रहे पूर्वप्रतिश्रुतं राज्यार्द्धं प्रतिपाद्येत। निग्रहे तावत् पर्वतकोऽस्माभिः व्यापादित इति कृतघ्नतायाः स्वयं हस्तो दत्तः स्यात्। प्रतिश्रुतार्द्धराज्यप्रतिपादनेऽपि पर्वतकविनाशः केवलं कृतघ्नतामात्रफलः स्यात् इति मलयकेतुः अपक्रामन् उपेक्षितः।

५७. राजा—अत्र तावदेवं राक्षसः पुनः इहैव अन्तर्नगरे वर्त्तमान आर्येण उपेक्षितः, इत्यत्र किमुत्तरं आर्यस्य ?

५८. चाणक्यः—राक्षसोऽपि खलु निजस्वामिनि स्थिरानुरागित्वात् सुचिरमेव अत्र सहवासाच्च शीलज्ञानां नन्दानुरक्तानां प्रकृतीनां अत्यन्तं विश्वास्यः, प्रज्ञापुरुषकाराभ्यां उपेतः, सहायसम्पदा युक्तः, कोषबलवानिहैव अन्तर्नगरे वर्तमानौ महान्तं खलु अन्तःकोपं उत्पादयेत्। दूरीकृतस्तु, वाह्यकोपं उत्पादयन्नपि न दुःखसाध्यो भविष्यति इत्यतोऽपक्रामन् उपेक्षितः।
राजा—तत् किमर्थं इहस्थ एव उपायैः न उपक्रान्तः ?

५९. चाणक्यः—अथ कथं अपक्रान्तो भविष्यति? ननु उपायैः एव असौ हृदयेशयः शंकुरिव उद्धृत्य दूरीकृतः। दूरीकरणस्य च उक्तं प्रयोजनम्।
राजा—आर्य, कस्माद्विक्रम्य न गृहीतः ?

५५. राजा—आर्य, अभी बहुत पूछना है।

चाणक्य—वृषल, निश्शंक पूछो, मुझे भी अभी बहुत कहना है।

राजा—यह लो मैं पूछता हूं।

चाणक्य—यह लो मैं भी कहता हूं।

राजा—हमारे इन सभी अनर्थों का कारण जो मलयकेतु है, क्यों आर्यने उसके बाहर जाने की उपेक्षा की?

५६. चाणक्य—वृषल, मलयकेतुके बाहर जानेकी उपेक्षा न करनेपर दो ही बातें होतीं, उसपर अनुग्रह किया जाता या निग्रह। अनुग्रह करनेपर पहलेके वचनके अनुसार आधा राज्य देना पड़ता, निग्रह (दण्ड) करनेपर हमने पर्वतकको मारा, इस कृतघ्नताके (लांछन) को खुद अपने ऊपर लेना पड़ता। वचन दिये आधा राज्य प्रदान करने पर भी पर्वतकका नाश करना, केवल कृतघ्नता होती, इसलिये हमने मलयकेतुके बाहर जाने की उपेक्षा की।

५७. राजा—यहां तो (खैर) यह है। पर फिर यहीं भीतर नगरमें मौजूद राक्षस की आर्यने क्यों उपेक्षा की। इसके बारे में आर्यका क्या उत्तर है?

५८. चाणक्य—अपने स्वामी (नन्द राजा) का दृढ़ भक्त होने से बहुत समयसे ही यहीं साथ रहनेके कारण राक्षस (उनके) शीलसे परिचित नंद-भक्त प्रजाओंका अत्यंत विश्वसनीय है। प्रजा और पौरुषसे, मित्र और सम्पत्तिसे युक्त, कोशसे बलवान् वह यहीं नगरके भीतर रहता भीतरसे भारी क्षोभ पैदा करता निकाल बाहर करने पर बाहरसे क्षोभ पैदा करते भी दुस्साध्य होता, यह सोच बाहर जाते उसकी मैंने उपेक्षा की।

राजा—तो क्यों नहीं यहां उसके रहते रहते उपाय किया?

५९. चाणक्य—फिर वह बाहर कैसे भगा होता? निश्चय उपायोंसे ही हृदयमें गड़े कांटेकी तरह मैंने उसे निकालकर दूर किया। और दूर करनेका प्रयोजन मैंने बतला दिया।

राजा—आर्य, पराक्रम करके क्यों नहीं उसे पकड़ा?

६०. चाणक्यः—वृषल, राक्षसः खलु असौ विक्रम्य निगृह्यमाणः स्वयं वा विनश्येत्, युष्मद्बलानि वा विनाशयेत्। एवं सति उभयथापि दोषः। पश्य,—

स हि भृशमभियुक्तो यद्यपेयाद् विनाशं,
ननु वृषल, वियुक्तस्तादृशेनापि पुंसा।
अथ तव बलमुख्यान् नाशयेत्, सापि पीड़ा,
नवगज इव तस्मात् सोऽभ्युपायैर्विनेयः[1] ॥२५॥

६१. राजा—न शक्नुमो वयं आर्यस्य वाचा वाचम् अतिशयितुं, सर्वथा अमात्यराक्षस एव अत्र प्रशस्यतरः।
चाणक्यः—(सक्रोधम्) न भवान् इति वाक्यशेषः। मा तावत् एवम्। भो वृषल, तेन किं कृतम्?

६२. राजा—यदि न ज्ञायते, तदा श्रूयताम्। तेन खलु महात्मना,

लब्धायां पुरि यावदिच्छमुषितं, कृत्वा पदं नो गले,
व्याघातो जयघोषणादिषु बलादस्मद्बलानां कृतः।
अत्यर्थं विपुलैः सुनीतिविभवैः सम्मोहमापादिता,
विश्वास्येष्वपि विश्वसन्ति मतयो न स्वेषु वर्गेषु नः[2] ॥२६॥

चाणक्यः—(विहस्य) वृषल, एतत् कृतं राक्षसेन।

६३. राजा—अथ किम्। एतत् कृतं अमात्यराक्षसेन।
चाणक्यः—वृषल, मया पुनर्ज्ञातं, नन्दमिव भवन्तं उद्धृत्य भवानिव भूतले मलयकेतुः अधिराज्यं आरोपितः।
राजा—अलं उपालम्भ्य? आर्य, दैवेन इदं अनुष्ठितं, किं अत्र आर्यस्य?

---

१. मालिनी। २. शार्दूल विक्रीडितम्।

६०. चाणक्य—वृषल, पराक्रम करके पकड़कर दंडित करनेपर राक्षस खुद नष्ट होता, या तुम्हारी सेनाको नष्ट करता। ऐसा होना दोनों ही प्रकारसे बुरा है। देखो—

अत्यन्त आक्रान्त हो यदि वह नष्ट होता, तो वृषल, वैसे पुरुषसे वंचित होते। अगर तुम्हारी सेनाके मुखियोंको वह नष्ट करता, तो वह हानि भी नये फंसाये हाथी सी होती, इसलिये उसे युक्तिसे विनीत करना है ॥२५॥

६१. राजा—हम आर्यको बातसे पार नहीं पा सकते, सब तरह से (देखते) अमात्य राक्षस ही अधिक प्रशंसनीय है।

चाणक्य—(कोपके साथ) आप नहीं, यह बाकी वाक्य भी कहो। ऐसा नहीं। वृषल, उसने क्या किया?

६२. राजा—यदि नहीं मालूम है, तो सुनिये। उस महात्माने—

पुरीपर अधिकार होते समय इच्छानुसार बसे रह हमारे कंठपर पैर रखकर जय घोषणा आदिमें हमारी सेनाओं को जबर्दस्ती बाधा दी। (उसने) अपने विपुलनीति-वैभवसे अत्यधिक भ्रम पैदा किया, बुद्धियां विश्वसनीयों पर भी विश्वास करती हैं, (पर) हमारे अपने वर्ग पर नहीं ॥२६॥

चाणक्य—(हंसकर) वृषल, यह किया राक्षसने?

६३. राजा—और क्या? यह किया अमात्य राक्षसने।

चाणक्य—वृषल, मैंने तो समझा, नन्दकी तरह आपका उच्छेद कर आपकी तरह उसने मलयकेतुका पृथ्वीपर राज्याभिषेक कराया।

राजा—रहने दें उलाहना। आर्य, दैवने ऐसा किया, इसमें आपका क्या है?

६४. चाणक्य—हे मत्सरिन्,

आरुह्य या रुढकोपस्फुरणविषमिताग्रांगुलीमुक्तचूड़ां,
लोकप्रत्यक्षमुग्रां सकलरिपुकुलोच्छेददीर्घां प्रतिज्ञाम्।
केनान्येनावलिप्ता नवनवतिशतद्रव्यकोटीश्वरास्ते,
नन्दाः पर्यायभूताः पशव इव हताः पश्यतो राक्षसस्य[1] ॥२७॥

६५. अपि च,—

गृध्रैराबद्धचक्रं वियति चलतया दीर्घनिष्कम्पपक्षैः,
धूमैर्ध्वस्तार्कभासां सघनमिव दिशां मण्डलं दर्शयन्तः।
नन्दानां नन्दयन्तः पितृवननिलयान् प्राणिनः पश्य, चैतान्,
निर्वान्त्यद्यापि नैते सुतबहलवसावाहिनो हव्यवाहाः[2] ॥२८॥

राजा—अन्येनैव इदं अनुष्ठितम्।

चाणक्यः—आः केन ?

६६. राजा—नन्दकुलविद्वेषिणा दैवेन।

चाणक्यः—दैवं अविद्वांसः प्रमाणयन्ति।

राजा—विद्वांसोऽपि अविकत्थना भवन्ति।

६७. चाणक्यः—(सक्रोधं नाटयेन) वृषल, भृत्यमिव मां आरोढुं इच्छसि ?

शिखां मोक्तुं बद्धामपि पुनरयं धावति करः,
(भूमौ पादप्रहारं कृत्वा)।
प्रतिज्ञामारोढुं पुनरपि चलत्येष चरणः।
प्रणाशान्नन्दानां प्रशममुपयातं त्वमधुना,
परीतः कालेन, ज्वलयसि पुनः क्रोधदहनम्[3] ॥२९॥

---

१. स्रग्धरा। २. वसन्ततिलका। ३. शिखरिणी।

६४. चाणक्य—हे डाही—

बढ़े क्रोधके फड़फड़ानेसे टेढ़ी अगली अंगुलियों द्वारा खुली शिखावाली, सारे रिपुओंके छेदसे लम्बी, लोगोंके सामने कठोर प्रतिज्ञा के ऊपर आरूढ़ होकर राक्षसके देखते देखते नौ करोड़ द्रव्यके स्वामी अभिमानी नवनन्द किसके द्वारा पंक्तिबद्ध पशुओंकी तरह मारे गये ।।२७।।

६५. और भी—

लम्बे निश्चल पंखोंवाले गिद्धों द्वारा (अपनी) गतिसे आकाशमें बंधे चक्र, धूमों द्वारा सूर्यके ध्वस्त प्रकाशवाली दिशाओंको मेघयुक्त सी दिखलाती नन्दोंके पितृवनके घरोंवाले प्राणियोंको आनंदित करती, देख, बहुत बहती चर्बीको वहन करनेवाली ये अग्नियां अब भी नहीं बुझ रही हैं ।।२८।।

राजा—दूसरे ने ही यह किया।

चाणक्य—आह, किसने ?

६६. राजा—नन्दकुलपर द्वेष रखनेवाले दैव ने।

चाणक्य—दैवको मूर्ख प्रमाण मानते हैं।

राजा—विद्वान् गाल बजाने वाले नहीं होते।

६७. चाणक्य—(क्रोध का अभिनय करते) वृषल, वृषल, भृत्य की तरह मेरे ऊपर चढ़ना चाहता है—

बंधी हुई शिखा को फिर छोड़नेके लिये यह हाथ दौड़ रहा है,

(भूमिपर पैर पटककर)

प्रतिज्ञापर आरूढ़ होनेके लिये यह चरण फिर चल रहा है।

नन्दोंके नाशसे शान्त हो गई क्रोधाग्निको कालसे घिरा तू अब पुनः प्रज्वलित कराना चाहता है ।।२९।।

६८. राजा—(सावेगं स्वगतम्) अये, तत् कथं सत्यमेव कुपित आर्यः ? तथाहि,—

संरम्भस्पन्दिपक्ष्मक्षरदमलजलक्षामयापि,
भ्रूभंगोद्भेदधूमं ज्वलितमिव पुनः पिंगया नेत्रभासा।
मन्ये, रुद्रस्य रौद्रं रसमभिनयतस्ताण्डवे संस्मरन्त्या,
संजातोदग्रकम्पं कथमपि धरया धारितः पादघातः[1] ॥३०॥

६९. चाणक्यः—(कृतकं कोपं संहृत्य) वृषल, वृषल, अलं उत्तरोत्तरेण ? यदि अस्मत्तो वरीयान् राक्षसोऽवगम्यते, तस्माद् इदं शस्त्रं तस्मै दीयतां इति । (शस्त्रमुत्सृज्य उत्थाय च प्रत्यक्षवत् आकाशे लक्ष्यं बद्ध्वा स्वगतम्) । राक्षस, राक्षस, एष एव भवतः कौटिल्यबुद्धिविजिगीषोर्बुद्धेः प्रकर्षः,—

चाणक्यतः स्खलितभक्तिमहं सुखेन,
जेष्यामि मौर्यमिति सम्प्रति यः प्रयुक्तः।
भेदः, किलैष भवता सकलः स एव,
सम्पत्स्यते, शठ, तवैव हि दूषणाय[2] ॥३१॥

(इति निष्क्रान्तः) ।

७०. राजा—आर्य वैहीनरे, अद्य प्रभृति अनादृत्य चाणक्यं चन्द्रगुप्तः स्वयमेव राज्यकार्याणि करिष्यतीति गृहीतार्थाः प्रकृतयः क्रियताम् ।

७१. कंचुकी—(स्वगतम्) कथं निरुपपदं एव 'चाणक्यो' न 'आर्यचाणक्य' इति । सत्यमेव हृतोऽधिकारः, अथवा न खलु अत्र वस्तुनि देवं दोषेण अवगन्तुं अर्हामि—

स दोषः सचिवस्यैव, यदसत् कुरुते नृपः।
याति यन्तुः प्रमादेन गजो व्यालत्ववाच्यताम् ॥३२॥

[1] स्रग्धरा, [2] वसंततलिका

६८. राजा—(आवेगके साथ अपने आपसे) अये, तो क्या सचमुच ही आर्य कुपित हो गये? क्योंकि—

कोपसे फड़कनेवाली पलकोंसे बहते निर्मल जलके प्रक्षालनसे छोटी हुई भी पीली नेत्र-किरणों द्वारा, भृकुटी ताननेसे उठे धूमवाले फिरसे मानो जले, मानता हूं तांडवमें रौद्ररसके अभिनय करते रुद्रका स्मरण करती, उठे हुये भारी कंपनवाले पद के प्रहारको पृथिवीने जैसे-तैसे धारण किया ।।३०।।

६९. चाणक्य—(बनावटी कोप हटाकर) वृषल, वृषल, रहने दो उत्तरके उत्तरको। यदि हमसे बड़ा राक्षसको समझते हो, तो इस हथियारको उसे दे दो। (हथियार छोड़कर और उठकर प्रत्यक्षकी तरह आकाशमें लक्ष्य करके अपने आपसे) राक्षस, राक्षस, कौटिल्यकी बुद्धि जीतनेकी इच्छुक आपकी बुद्धिका यही बड़प्पन है—

"चाणक्यसे हटी भक्तिवाले मौर्यको अब मैं आसानीसे जीतूंगा," यह (सोच) इस समय जो तुमने फूट डाली, वह सब निश्चय ही शठ, तेरे ही दूपण के लिये होगा ।।३१।।

(निकल गये)

७०. राजा—आर्य, वैहीनरि, आजसे चाणक्यकी पर्वाह न करें, चन्द्रगुप्त स्वयं ही राज्यका काम-काज करेगा, यह प्रजाको समझा दो।

७१. कंचुकी—(अपने आपसे) क्या बिना उपाधि के ही चाणक्य "आर्य चाणक्य" नहीं। हन्त, सचमुच ही अधिकार खतम हुआ, अथवा इस बातमें राजामें दोष देखना अच्छा नहीं है।

वह मंत्रीका ही दोष है, जो कि राजा असद् आचरण करता है। हाथीवान्के प्रमादसे गज दुष्ट कहलाता है ।।३२।।

७२. राजा---आर्य, किं विचारयसि ?

कंचुकी---देव, न किंचिद् विचारयामि, किन्तु एतद् विज्ञापयामि, दिष्ट्या देव इदानीं देवः संवृत्त इति।

७३. राजा---(आत्मगतम्) एवं अस्मासु गृह्यमाणेषु स्वकार्यसिद्धिकामः सकामो भवतु आर्यः। (प्रकाशम्) शोणोत्तरे, अनेन शुष्ककलहेन शिरोवेदना मां बाधते, तत् शयनगृहं आदेशय।

प्रतीहारी---एतु एतु महाराजः।

७४. राजा---(आसनात् उत्थाय आत्मगतम्)---

आर्याज्ञयैव मम लंघितगौरवस्य,
बुद्धिः प्रवेष्टुमवनेर्विवरं प्रवृत्ता।
ये सत्यमेव न गुरून् प्रतिमानयन्ति,
तेषां कथं नु हृदयं न भिनत्ति लज्जा॥३३॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

---अंकः ३

७२. राजा—आर्य, क्या सोचते हो?

कंचुकी—देव, कुछ नहीं सोचता, केवल इतना ही अर्ज करता हूं, खुशी है, कि देव अब देव (राजा) हो गये।

७३. राजा—(अपने आपसे) इस प्रकार हमारे (कार्यभार) ग्रहण करने पर अपने कार्य की सिद्धिकी कामनावाले आर्य सफल होवें। (प्रकट) शोणोत्तरा, इस सूखी कलह के कारण सिरकी पीड़ा मुझे दुःख दे रही है, सो शयनगृहको बताओ।

प्रतिहारी—आयें, आयें, महाराज।

७४. राजा—(आसनसे उठकर अपने आपसे)

आजके तिरस्कारसे ही मानो गौरव-उल्लंघन करनेवाली मेरी बुद्धि, पृथिवीके छेदमें प्रवेश करनेको प्रवृत्त हुई। सचमुच ही जो गुरुओंको नहीं सम्मानित करते, उनके हृदयको लज्जा तोड़ क्यों नहीं देती ।।३३।।

(सब चले गये)

—अंक ३

भाग ४

अपभ्रंश (१)

(पूर्वकाल ५५०–७०० ई०)

२५. सुबन्धु (५६० ई०)
२६. दंडी (५८० ई०)
२७. भट्टि (६१० ई०)
२८. विज्जा (,,)
२९. बाण (६२० ई०)
३०. हर्षवर्धन (६०७-४७ ई०)
३१. मयूर (६२० ई०)
३२. अमरुक (६७० ई०)
३३. भर्तृहरि (,,)
३४. शीला भट्टारिका (,,)
३५. माघ (६७५ ई०)
३६. भवभूति (७०० ई०)

४. अपभ्रंश (५५०-१२०० ई०)

(१) पूर्व-काल (५५०-७०० ई०)

बाणने भाषाकवि ईशानका उल्लेख प्राकृत कविसे भिन्न किया है, जिससे साफ है, कि बाणके समय लोक-भाषा प्राकृतसे भिन्न थी। इस कालकी भाषाका नाम अपभ्रंश था। यद्यपि अपभ्रंश शब्दका प्रयोग भाषाके तौरपर पतंजलि (१५० ई० पू०) ने भी किया है, लेकिन वहां वह संस्कृतसे भ्रष्ट उच्चारण रखनेवाली भाषाओंको अपभ्रंश कहा गया है। पतंजलिके समयकी वह भाषा पालि थी। विशेष कालकी भिन्न-भिन्न भाषाओंके सामूहिक नामके तौरपर अपभ्रंश शब्दका प्रयोग बाणके बादसे हुआ है, जब कि प्राकृतका स्थान दूसरी भाषाने लिया। ईशान इसी भाषाके कवि थे। उनका नाम पीछे अपभ्रंश-कवियोंको भी मालूम था, लेकिन उनकी कोई कृति हमारे पास तक नहीं पहुंची।

अपभ्रंश-कालने हमें सुबन्धु, दण्डी और बाण जैसे महान् गद्यकार कवि प्रदान किये, जो बतलाता है, कि अब लोग गद्यकी महिमाको मानने लगे थे। अफसोस है, स्वयं अपभ्रंश भाषामें ऐसे गद्य नहीं मिलते। अपभ्रंश भाषा एक ऐसी भाषा है, जो उच्चारणमें प्राकृतका पूरा अनुसरण करती है, लेकिन व्याकरणमें कनउजी के अत्यन्त नजदीक है। यहां मैं केवल उस अपभ्रंशके बारेमें कह रहा हूं, जो कि साहित्यके रूपमें सुरक्षित है, और जो उस समयके सबसे बड़े राजनीतिक और सांस्कृतिक केन्द्र कान्यकुब्जकी भाषा थी। व्याकरणके दूर होनेके कारण अब प्राकृतकी तरह संस्कृत-उच्चारणोंके परिवर्तनसे भाषाका समझना आसान नहीं था। इसलिए कविताके सभी रसिक और पारखी अब संस्कृत कविताका आनंद नहीं ले सकते थे, और न उसके ऊपर अपनी राय देकर प्रभाव डाल सकते थे। इस प्रकार अब संस्कृत कवि इन बहुसंख्यक अधिकारियोंसे वंचित हो गये। संस्कृत कविताका अब वही आनंद ले सकते थे, जिन्होंने संस्कृत

व्याकरण और साहित्यके अध्ययनमें काफी समय लगाया हो। उन्हींके वाह-वाह करनेपर कवि सफल हो सकता था, राजकवि और दरबारी कवि बनकर सुखी जीवन बिता सकता था। कविताको अब बहुत सीमित लोगोंमें स्वीकृत होनेका अवसर रह गया और उसके लिये वही कसौटी थे। परिणाम यह हुआ, कि अपभ्रंशकालमें क्लिष्टसे क्लिष्टतर भाषामें लिखनेकी होड़ लग गई, जिन अलंकारोंको परिमित और मर्यादित रखकर सुन्दर काव्य रचा जाता था, उनकी भरमारको अब गुण समझा जाने लगा। कवि लोगोंका सारा ध्यान शब्दालंकारों और अर्थालंकारोंको ढूंढ़ ढूंढ़कर सजानेमें लग गया। उन्हें यह ख्याल नहीं रहा, कि कालिदासकी सफलतामें उनकी भाषाकी सरलताका हाथ कम नहीं है।

इस कालकी एक विशेषता है कुछ स्त्री कवित्रियोंकी कृतियोंका हमारे पास तक आना। दूसरे कालोंमें भी वह रही होंगी, किन्तु उनकी कविताके अवशेष हमें इसी कालके मिलते हैं। जहां इस कालके पुरुष कवियोंने शब्दा-डम्बरपर बहुत जोर दिया, वहां स्त्री कवित्रियां इस दोषसे मुक्त हैं। विज्जा, शीला भट्टारिकाके पद्य बड़े सुन्दर हैं। गोवर्धन और हर्षवर्धनकी कविताओंमें भी प्रसाद गुण है, लेकिन, इन्हें अपवाद ही कहना चाहिये, क्योंकि इस कालके सभी महाकवि प्रसाद गुणको कविताका दूषण मानते थे। यद्यपि भट्टिकी तरह सबने व्याकरण-काव्य बनानेका प्रयास नहीं किया, किन्तु झुकाव उसी तरफ था, और श्री हर्षने तो अपनी कविता द्वारा दर्शनको भी सिखलानेकी कोशिश की है।

२५. सुबन्धु (५६० ई०)

सुबन्धु प्राकृत और अपभ्रंश-कालोंकी सन्धिमें पैदा हुए थे। इस कालका पूर्व भाग काव्यकी दृष्टिसे बड़ा समृद्ध है। इसी समय दण्डी, बाण जैसे महान् गद्यकाव्य-रचयिता तथा भट्टि, हर्ष, मयूर, भर्तृहरि, अमरुक, माघ, भवभूति, भट्टनारायण, मुरारि जैसे कवि और नाटककार पैदा हुए।

जहाँ तक उपलब्ध कृतियोंका सम्बन्ध है, संस्कृतके गद्य कवियोंमें सुबन्धु सबसे पुराने हैं। दण्डी, बाण उनकी परम्पराको आगे ले चलते हैं। सुबन्धुकी कृतिका नाम "वासवदत्ता" है, इस वासवदत्ताका वत्सराज उदयनकी प्रियतमा अवन्तिराजपुत्री वासवदत्तासे कोई सम्बन्ध नहीं है।

वासवदत्ता

(१) प्रास्ताविकम्—

१. करबदरसदृशमखिलं भुवनतलं यत्प्रसादतः कवयः।
पश्यन्ति सूक्ष्ममतयः सा जयति सरस्वती देवी ॥१॥

२. भवति सुभगत्वमधिकं विस्तारितपरगुणस्य सुजनस्य।
वहति विकासितकुमुदो द्विगुणरुचिं हिमकरोद्योतः ॥५॥

३. विषधरतोऽप्यतिविषमः खल इति न मृषा वदन्ति विद्वांसः।
यदयं नकुलद्वेषी सकुलद्वेषी पुनः पिशुनः ॥६॥

४. हस्त इव भूतिमलिनो यथा यथा लंघयति खलः सुजनम्।
दर्पणमिव तं कुरुते तथा तथा निर्मलच्छायम् ॥९॥

५. सा रसवत्ता विहता नवका बिलसन्ति चरति नो कंकः।
सरसीव कीर्त्तिशेषं गतवति भुवि विक्रमादित्ये ॥१०॥

६. अविदितगुणाऽपि सत्कविभणितिः कर्णेषु वमति मधुधाराम्
अनधिगतपरिमलाऽपि हि हरति दृशं मालतीमाला ॥११॥

२५. सुबन्धु (५६० ई०)

सुबन्धु "न्यायवार्तिक" रचयिता उद्योतकरके बाद हुए। कौनसे प्रदेशमें पैदा हुए, आदिके बारेमें कुछ पता नहीं लगता। बहुत सम्भव है, वह मध्यदेश (हिन्दी प्रदेश) के निवासी थे। विक्रमादित्य (गुप्तवंशी) के कीर्तिशेष रहनेका इन्हें बहुत अफसोस था, क्योंकि इन्हें विक्रमादित्य जैसा गुणग्राहक कहीं नहीं मिला। सुबन्धुके समयसे चार सौ वर्ष पहले भी गद्यकी नई छटा आरम्भ हो गई थी, यह रुद्रदामा (१६०–१७० ई०) के गिरनारवाले शिला-लेखसे पता लगता है। बाणने भट्टार हरिश्चन्द्रके गद्यबन्धकी तारीफ की है, जो अब उपलब्ध नहीं है। सम्भवतः वह सुबन्धुसे भी पहले हुए थे।

वासवदत्ता

१. प्रस्तावना—

१. जिसकी कृपासे हाथमें स्थित बैरके समान सारे भुवनको, सूक्ष्ममति कवि देखते है, उस सरस्वती देवीकी जय हो ॥१॥

२. दूसरेके गुणोंको फैलानेवाले सज्जनका सौभाग्य अधिक होता है। कुमुदको विकसित करनेवाले चन्द्रमाकी रोशनी की रुचि दुगुनी होती है ॥५॥

३. विद्वान झूठ नहीं कहते, कि खल सांपसे भी अधिक विपम है। क्योंकि सांप नकुलका द्वेषी है, तो चुगल सुकुलका॥६॥

४. राख से मलिन हाथकी तरह खल जैसे-जैसे सज्जनको अपमानित करता है, दर्पणकी तरह वह वैसे ही वैसे उसे निर्मल-आकारका बनाता है ॥९॥

५. सरोवरकी तरह पृथिवीपर विक्रमादित्यके कीर्तिशेष हो जाने पर वह रसज्ञता नष्ट हो गई, नये (तुच्छ राजा) विलासी हैं, फिर कौन किसके पास नहीं जायगा ॥१०॥

६. अज्ञात गुणोंवाली भी सत्कविकी वाणी कानमें मधुकी धारा गिराती है। गुम्फित न हुई भी चमेलीकी माला आंखोंको आकृष्ट करती है ॥११॥

७. सरस्वतीदत्तवरप्रसादश्चक्रे सुबन्धुः सुजनैकबन्धुः ।
प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्धविन्यासवैदग्ध्यनिधिर्निबन्धम् ॥१३॥

(२) नायकः कन्दर्पकेतुः—

८. अभूदभूतपूर्वः सर्वोर्वीपतिचक्रचारुचूडामणिश्रेणीशोणकोणकषणनिर्मलीकृतचरणनखमणिर्नृसिंह इव दर्शितहिरण्यकशिपुक्षेत्रदानविस्मयः, कृष्ण इव कृतवसुदेवतर्पणो, नाराण इव सौकर्यसमासादितधरणिमण्डलः ... महानायको राजा चिन्तामणिनामा । यत्र च शासति धरणिमण्डलं छलनिग्रहप्रयोगो वादेषु, नास्तिकता चार्वाकेषु, कण्टकयोगो नियोगेषु परीवादो वीणासु, खलसंयोगः शालिषु, द्विजिह्वसंगृही तिराहितुण्डिकेषु, करच्छेदः क्लृप्तकरग्रहणेषु, नेत्रोत्पाटनं मुनीनां, द्विजराजविरुद्धता पंकजानां, सार्वभौमयोगो दिग्गजस्य, अग्नितुलाशुद्धिः सुवर्णानां, सूचीभेदो मणीनां, शूलभंगो युवतिप्रसवे, दुःशासनदर्शनं भारते, करपत्रदारणं जलजानाम् ।

९. तस्य च पारिजात इवाश्रितनन्दनः, हिमालय इव जनितशिवः, मन्दर इव भोगिभोगांकितः, कैलास इव महेश्वरोपभुक्तकोटिः, मधुरिव नानारामानन्दकरः, क्षीरोदमथनोद्यतमन्दर इव मुखरितभुवनः, रागरज्जुरिवोल्लासितरतिः, ईशानभूतिसंचय इव सन्ध्योच्छलितः, शरन्मेघ इवावदातहृदयो विष्णु पदावलम्बी च, पार्थ इव समरसाहसोचितः, कंस इव कुवलयापीडभूषितः, तार्क्ष्य इव विनताऽऽनन्दकरः

७. सरस्वतीके दिये वरके प्रसादवाले, सज्जनोंके एक मात्र बंधु सुबंधुने प्रतिअक्षर श्लेष-सहित प्रबंध-रचना-चातुरीकी निधिसमान (इस) ग्रंथ को रचा ॥१३॥

२. नायक कन्दर्पकेतु—

८. अभूतपूर्व सारे पृथिवीपतियोंके सुंदर चूड़ामणिरूपी कसौटीके कोनेके घर्षणसे निर्मल किये चरण-नखरूपी मणियोंवाला, नरसिंहकी तरह हिरण्यकशिपु-क्षेत्रके दानका विस्मय दिखानेवाले, कृष्णकी तरह वसुदेवको तृप्त किये, नारायणकी तरह आसानीसे पृथिवीमंडलको प्राप्त किये,...अचंचल भी महानायक चिन्तामणि नामक राजा हुये। जिनके पृथिवीमंडलके शासन करते समय छल और निग्रहका प्रयोग शास्त्रार्थोमें होता, नास्तिकता चार्वाकोंमें, कंटकका संयोग नियोगों (आज्ञाओं) में, परिवाद (निंदा) का वीणाओंमें, खल (खल, खलिहान) का संयोग धानोंमें, दो जीभ (सांप) का संग्रह सपेरों के पास, कर (टैक्स) का छेद विहित करोंके लेनेमें, नेत्र उखाड़ना (उघाड़ना) मुनियोंका, द्विजराज (चन्द्र) से विरोध कमलोंका, सारी भूमिसे योग दिग्गजका, अग्नि और तुलाकी शुद्धि सुवर्णोंकी, सूची (सूई) से छेदना मणियोंका, शूलकी पीड़ा तरुणियोंके प्रसवमें, दुःशासनका दर्शन महाभारतमें, करपत्र (आरा, करसे पत्र) द्वारा विदारण कमलोंका था।...

९. पारिजातकी तरह नन्दन (वन) में आश्रित, हिमालयकी तरह शिव (मंगल) का उत्पादक, मन्दरकी तरह भोगी (सर्पों के) भोग (फण) से चिह्नित, कैलासकी तरह महेश्वर से उपभुक्त कोटि (शिखर या उत्कर्ष) वाला, मधुकी तरह नाना रामाओंको आनंददायक, क्षीर सागरके मथनको तैयार (खड़े) मन्दरकी तरह भुवनको मुखरित करनेवाला, रागकी रस्सीकी तरह रतिका उल्लासक, शंकरकी विभूतिके संचयकी तरह, संध्यासे उगा, शरद्के मेघकी तरह उज्ज्वल हृदयवाला और विष्णुपद (आकाश) का अवलम्बी, अर्जुनकी तरह समर साहस में योग्य, कंसकी तरह कुवलयापीड़

सुमुखनन्दनश्च, विष्णुरिव क्रोडीकृतसुतनुः, शान्तनव इव स्ववशस्थापितकालधर्मः, कौरवव्यूह इव सुशर्माधिष्ठितः, जलधरसमय इव विसत्वरधाराराधितराजमण्डलः, सुबाहुरपि रामानन्दी, समदृष्टिरपि महेश्वरः, मुक्तामयोऽप्यतरलमध्यः, वंशप्रदीपोऽप्यक्षतदशस्तनयोऽभूत्कन्दर्पकेतुर्नाम।

१०. येन च चन्द्रेणेव सकलकलाकुलग्रहेण, शर्वरीतिहारिणा, दलितकैरवेण, प्रसाधिताशेन विलोकिताः, जलधय इव परामृद्धिमवापुः।

(३) स्वप्ने वासवदत्ता-दर्शनम्—

११. अथ स कदाचिदवसन्नायां यामवत्यां दधिधवलकालक्षेपणकमांसपिण्ड इव, निशायमुनाफेनपुंज इव, मेनकास्वमार्जनधवलशिलाशकल इव, मधुच्छत्रच्छायमण्डलोदरे, पश्चिमाचलोपधानसुखनिषण्णशिरसो राजतताटंकचक्र इव, श्यामश्यामायाः, शेषमधुभाजि चषक इव विभावरीबध्वाः, अपरजलधिपयसि शंखकान्तिकामुक इव मज्जति कुमुदिनीनायके, शिशिरहिमशीकरकर्दमितकुमुदमध्यबद्धचरणेषु षट्चरणेषु, कलप्रलापपरागबोधितचकिताभिसारिकासु सारिकासु, प्रबुद्धाध्ययनकर्मठेषु, वटुषु विभासरागमुखरकार्पटिकजनोपगीयमानकाव्यकथासु रथ्यासु, विजयपताकामिव मकरध्वजस्य, आजिभूमिमिव मदनस्य, संकेतभूमिमिव लावण्यस्य, विहारस्थलीमिव सौन्दर्यस्य, एकायतनशालामिव

(कमल, शिरोभूषा) से भूषित, गरुड़की तरह विनता (नम्र) का आनंदकर और मुमुक्षु नंदन (पुत्र), विष्णुकी तरह व्यापक सुन्दर तन, भीष्मकी तरह अपने वशमें काल (मृत्यु) धर्मको किये, कौरवोंके व्यूहकी तरह सुशर्मा (सुनय) द्वारा अधिष्ठित, वर्षाके समयकी तरह अधिक निर्मल, जलधारासे संत्रासित राज (हंस) मंडलवाला, गुडाकुकी तरह राम, (रामा, सुन्दरी) का आनंद दायक, सम दृष्टि (युग्म आंखों वाला) भी महेश्वर, मुक्तामय भी अचंचल मध्य (हृदय) वाला, वंश (बांस) का प्रदीप भी अक्षत दश (दशा) वाला, (राजा चिन्तामणि) का कन्दर्पकेतु नामक पुत्र था।

१०. और जिसके द्वारा चन्द्र द्वारा सारी कलाओंके ग्रहणसे शर्वरीति (शंकरकी रीति) मनोहर, दलित कुमुद (धूर्त) वाले, स्वायत्त किये आशा (दिशा) वाले (उसके) द्वारा देखे जाते, समुद्रकी तरह उल्लसित गोत्र (जल) वाले, दूरवर्धित जीवनवाले, प्रसन्न-हृदय संतजनों ने परमऋद्धि को प्राप्त किया ।...

३. स्वप्नमें वासवदत्ता दर्शन—

११. तब वह एक बार भिनसारमें (जब कि) कुमुदिनीपति ((चंद्र), दहीकी तरह श्वेत, कालरूपी क्षपणक (साधु, नाशक) के मांसपिंड सा, निशारूपी जमुनाके फेनपुंज सा, मेनकाके मार्जनके लिये निजी श्वेत शिलाखंड सा, मधुछत्र से आकाशमें गर्भित अस्ताचलके तकियेके साथ सुखसे बैठे सिरवाला, रूपेकी तड़ागीके चक्र सा, सांवली-सांवली रात्रिरूपी वधूके बचे मद्यवाले प्यालेसा होते, पश्चिम (दिशारूपी) समुद्रके जलमें शंखकी कान्ति (ढूंढने) का इच्छुक सा हो रहा था, (जबकि) शिशिरकी ओसकी फुहारोंसे गीले कुमुदके भीतर भंवर बंधे चरणोंवाले थे, कोमल कथनरूपी परागसे जगाई चकित अभिसारिका सी मैनायें, जगकर अध्ययनमें भिड़े थे छात्रों, विराग (निःस्पृह) रागसे याचकजन गड्ढों पर काव्य-कथायें गा रहे थे, (उसी समय) कामदेवकी विजय-पताकासी, मन्मथकी सृष्टिभूमिसी, लावण्यकी संकेत-भूमिसी, सौंदर्यकी विहारस्थली सी, सौभाग्यकी एक मात्र निवास-

सौभाग्यस्य, उत्पत्तिस्थानमिव कान्तेः, स्तम्भनचूर्णमिव इन्द्रियाणाम्, आकर्षणमन्त्रसिद्धिमिव मनसः, चक्षुर्बन्धनमहोषधिमिव मन्मथेन्द्रजालिनः, त्रिभुवनविलोभनसृष्टिमिव प्रजापतेः, अष्टादशवर्षदेशीयां कन्यामपश्यत् स्वप्ने।

१२. अथ तां प्रीतिविस्फारितेन चक्षुषा पिबन्निव जनितेर्ष्ययेव निद्रया चिरसेवितया स मुमुचे। अथ प्रबुद्धस्तु विषमरसीव दुर्जनवचसीव निमग्नमात्मानमवधारयितु न शशाक। तथा हि—निर्लक्षमाकाशतले आलिंगनार्थं प्रसारितबाहुयुगलः, "एह्येहि प्रियतमे, मा गच्छ, मा गच्छे"ति दिक्षु विदिक्षु च विलिखितामिव, उत्कीर्णामिव, चक्षुषि निखातामिव हृदये प्रियतमामाजुहाव। ततस्तत्रैव शय्यातले निलीनो निषिद्धाशेषपरिजनो दत्तकपाटः परिहृतताम्बूलादिसकलोपभोगस्तं दिवसमनयत्। तथैव निशामपि स्वप्नसमागमेच्छया कथमप्यनैषीत्। अथ तस्य प्रियसखो मकरन्दो नाम कथमपि लब्धप्रवेशदर्शनः, कन्दर्पसायकप्रहारपरवशं कन्दर्पकेतुमुवाच—

१३. "सखे, किमिदमसाम्प्रतमसाधुजनोचितमध्वानमाश्रितोऽसि। तवैतच्चरितमालोक्य वितर्कदोलासु निवसन्ति सन्तः। खलाः पुनस्त्वदनुचितमनिष्टमाचरन्ति। अनिष्टोद्भावनरसोत्तरं हि भवति खलहृदयम्। को नामाऽस्य तत्वनिरूपणे समर्थः....?"

कथमपि स्मरशरप्रहारपरवशः कन्दर्पकेतुः परिमिताक्षरमुवाच—

शाला, कान्तिके उत्पत्तिस्थान सी, इन्द्रियोंके स्तम्भन करनेवाले चूर्णसी, मनके आकर्षण-मन्त्रकी सिद्धि सी, कामदेवरूपी इन्द्र-जालिक की नजर बांधनेवाली महौषधिसी, त्रिभुवनको लोभनेवाली ब्रह्माकी सृष्टि सी, अठारह वर्षकी कन्या को स्वप्नमें देखा।

१२. तब खुश हो आंखें फाड़ पीते हुयेसे, चिरसेवित ईर्ष्यालु निद्रासे वह मानो युक्त हो गया। तब जगकर मानो विषके सरोवरमें दुर्जन-वचन मे डूबा हुआ सा वह अपनेको थाम न सका। और अलख आकाशमें आलिंगनके लिये दोनों बाहोंको फैलाये : "आ, आ प्रिय-तमा, मत जा, मत जा," बोलते दिशाओं और विदिशाओंमें प्रियतमाको विलिखित सी, आंखमें उत्कीर्ण सी, हृदयमें जड़ी सी (जानकर) पुकारने लगा। तब वहीं शैय्याके ऊपर लेटा सारे परिजनोंको हटा किवाड़ देकर ताम्बूल आदि सारे उपभोगोंको छोड़ उसने वह दिन बिताया। उसी तरह रात भी स्वप्न-समागमकी इच्छासे किसी तरह बिताई। तब उसका प्रिय मित्र मकरन्द जैसे-कैसे घरके भीतर प्रवेश और दर्शन पाकर कामदेवके बाणोंके प्रहार के पराधीन कंदर्पकेतुसे बोला—

१३. "मित्र, क्यों इस अनुचित, असाधुजनोंके योग्य मार्गपर चल रहे हो? तुम्हारे इस आचरणको देखकर संतजन संदेहके हिंडोलेमें झूल रहे हैं, और खल तुम्हारे लिये अनुचित और अनिष्ट हर्कत कर रहे हैं। खलोंका हृदय अनिष्ट के उद्भावनमें रस लेता है, इसकी वास्त-विकता कौन बतला सकता है? . . .

(इस पर) कामदेव के बाणोंके प्रहारसे विवश कंदर्पकेतुने किसी तरह मन्द अक्षरोंमें कहा—

१४. "वयस्य, दितिरिव शतमन्युमभाकुला भवत्यस्माद्गजनचित्तवृत्तिः। नायमुपदेशकालः। पच्यन्त इव मेऽङ्गानि। कृष्यन्त इवेन्द्रियाणि। भिद्यन्त इव मर्माणि। निस्सरन्तीव प्राणाः। उन्मूल्यन्त इव विवेकाः। नष्टेव स्मृतिः। अधुना तदलमनया कथया। यदि त्वं सहपांसुक्रीडासमदुःखसुखोऽसि, तन्मया समसमागम्यताभि"त्युक्त्वा परिजनालक्षित एव तेन सह पुरान्निर्जगाम।...

१५. विन्ध्यो नाम गिरिरदृश्यत—
यश्च प्रवृद्धगुल्मतया रोगीव दृश्यमानबहुधातुविकारः, साधुरिव सानुग्रहप्रचारप्रकटितमहिमा, मीमांसान्याय इव पिहितदिगम्बरदर्शनः। यश्च हरिवंशैरिव पुष्कराक्षप्रादुर्भावरमणीयैः, राशिभिरिव भीमकरकुलीरमिथुनसंगतैः, करणैरिव शकुनिनागभद्रबालवकुलोपेतैः, देवखातैरुपशोभितान्तः। यश्च छन्दोविचितिरिव कुसुमविचित्राभिः, वंशपत्रपतिताभिः, पुष्पिताग्राभिः, प्रहर्षिणीभिः शिखरिणीभिर्लताभिर्दर्शितानेकवृत्तविलासः।

(४) कुसुमपुर-राजकन्या वासवदत्ता—

१६. अस्ति मन्दरगिरिश्रृंगैरिव प्रशस्तसुधाधवलैः बृहत्कथालम्बैरिव शालभंजिकोपशोभितैः, वृत्तैरिव समाणवकक्रीडितैः, करियूथैरिव समत्तवारणैः, सुग्रीवसैन्यैरिव सगवाक्षैः, बलि-

१४. "मित्र, दितिकी तरह शतमन्यु (इन्द्र या सौ क्रोधों) से समाकुल होती है, हमारे जैसे लोगों की चित्तवृत्ति। यह उपदेशका समय नहीं। मेरे अंग जल रहे हैं, जीवन निकलने जा रहे हैं, हृदय फट सा रहा है, प्राण निकल से रहे हैं, विवेक उन्मूलित से हो रहे हैं, स्मृति नष्टसी हो रही है। सो अब यह बात रहने दो। यदि तुम बचपन से साथ धूलखेलनेके समयसे दुख-सुखके साथी हो, तो मेरे साथ, चलो", यह कह परिजनोंसे छिप कर वह उसके साथ नगरसे निकल पड़ा।...

१५. (आगे विन्ध्य पर्वत दिखाई पड़ा)—

जो बढ़ी हुई झाड़ियोंसे रोगोंका बहुतसी धातुओं (सोना-चांदी या वात-पित्त आदि)को विकारोंको दिखाता, साधुकी तरह सानुग्रह (शिखरपर ग्रहोंके या अनुग्रह सहित) प्रचारसे (अपनी) महिमा प्रकट करता, **मीमांसाशास्त्र**की तरह **दिगम्बर** (आकाश या जैन) दर्शन को ढंके था। जो **हरिवंशों** को तरह पुष्कराक्ष (कमल-नयन या हंस) के प्रादुर्भावसे रमणीय, राशियोंकी तरह मीन-मकर-कर्कट-मिथुन (मछली, मगर, केकड़ाके जोड़ों) से संयुक्त, करणों (तिथि आदि) की तरह पक्षी नागवल्ली, तरुण मौलसरीसे युक्त, अमानुष-निर्मित सरोवरों द्वारा भीतर से शोभित था। और जो **छन्दोविचिति** (छंद ग्रंथ) की तरह कुसुमोंसे विचित्र (कुसुमविचित्रा) बांसके पत्ते पर गिरे (वंशस्थ) पुष्पिताग्र, प्रथिताग्रा (छंद या फले अग्रभाग), प्रहर्षणी (एक छंद या हर्षकारक), शिखरिणी (छंद या शिखरवाली) लताओंसे अनेक प्रकारके वृत्तों (छंदों या बातों) की शोभाको दिखला रहा था।...

४. पटनाकी राजकुमारी वासवदत्ता—

१६. मन्दर पर्वतकी चोटियोंकी तरह प्रशस्त चूनेसे श्वेत, बृहत्कथा (ग्रंथ) के लम्बों (सर्गों) की तरह शालभंजिकाओं (पुतलियों) से शोभित, वृत्तों (छंदों या वर्तमान) की तरह छात्रोंकी क्रीड़ावाले, गज-समूहोंकी तरह मत्तगजों सहित, सुग्रीवकी सेनाओंकी तरह गवाक्षों (जंगलों या उस नामके वानर सेनापति) से युक्त, वलि

भवनैरिव सुतलसन्निवेशैः, वेश्मभिरुद्भासितम्। धनदेनापि प्रचेतसा, गोपालेनापि रामेण, प्रियंवदेनापि पुष्पकेतुना, भरतेनापि लक्ष्मणेन, तिथिपरेणाप्यतिथिसत्कारप्रवणेन, असंख्येनापि संख्यावता, अमर्मभेदिनाऽपि वीरतरेण। अपतितेनापि नानासवासक्तेन, सुदर्शनेनाप्यचक्रेण, अजातमदेनापि सुप्रतीकेन, हंसेनाप्यपक्षपातिना, अविदितस्नेहक्षयेणापि कुलप्रदीपेन, अग्रन्थिनापि वंशपोतेन, अग्रहेणापि काव्यजीवज्ञेन, निदाघदिवसेनेव वृषवर्धितरुचिना, माघविरामदिवसेनेव तपस्यारम्भिणा, नभस्वतेव सत्पथगामिना, विवस्वतेव गोपतिना, महेश्वरेणेव चन्द्रं दधता निवासिजनेनानुगतम्। घनापगमेनेव दर्शितखण्डाभ्रेण, वेलातटेनेव प्रवालमण्डनेन, गजेन्द्रेणेव पल्लववर्धितरुचिना, कोकिलेनेव परपुष्टेन, भ्रमरेणेव कुसुमेषुलालितेन, जलौकसेव रक्ताकृष्टिनिपुणेन, महानटबाहुनेव बद्धभुजंगांकेन, गरुडेनेव बिलासिहृदयतापकारिणा, बन्धकेनेव शूलानामुपरिगतेन वेश्याजनेनाधिष्ठितं कुसुमपुरं नाम नगरम्।..

(राजा या बलि कर्म) के भवनोंकी तरह सुतल (पाताल) या सुन्दर भूधरा के स्थानोंवाले गृहों से चमचमाता (वह नगर) था। (उसके) निवासी धनद (कुबेर या धन देनेवाले) प्रचेतस (वरुण या समझदार), गोपालके साथ रामसे, प्रियवादीके साथ पुष्पकेतु (फूल और ध्वजा या कामदेव) से, भरतके साथ लक्ष्मणसे भी, तिथिवाले भी अतिथि (सत्कार)-परायण, असंख्य भी संख्यायुक्त (ज्ञानी), बिना मर्म भेदे भी अतिवीर, न गिरे भी नाना आसव (मद्य) में आसक्त, सुदर्शन (चक्र या देखनेमें सुन्दर) भी अचक्र (अकपट), अनुत्पन्न मदवाले भी सुप्रतीक (सुन्दर अंग या देवगज), हंस भी अपक्षपाती (बिना पंख उड़नेवाले या न-पक्षपाती), अज्ञात स्नेह (प्रेम या तेल) की हानिसे भी कुल-प्रदीप, बिना ग्रँथिके भी वंशके पोत (बच्चे या छोटे बांस), ग्रह न होते भी काव्य (कविता या शुक्र) तथा जीव (बृहस्पति या जीव या काम) के ज्ञाता, गर्मीके दिनकी तरह वृष (वृपराशि या धर्म) की रुचि (तेज वर्धक), माघके विराम-दिवसकी तरह तपस्या करनेवाले, वायुकी तरह सत्पुरुषों (या नक्षत्रों) के पथ पर जानेवाले, सूर्यकी तरह गोपति (किरणोंके या गायोंके स्वामी), महेश्वरकी तरह चन्द्र (या सुवर्ण) धारण करनेवाले थे। जिस **कुसुमपुर** की निवासिनी वेश्यायें थीं बादलके हटनेसे दिखलाई देते मेघ-खंडोंसी, समुद्रके किनारेकी तरह प्रवाल (मूँगे) के मंडनवाली, देवांगनाओंकी तरह इन्द्राणीकी परिचर्यामें चतुर,. . . गजेन्द्रकी तरह पल्लवमें रुचि (या पल्लवसे कान्ति) बढ़ाये, कोयलकी तरह परपुष्ट (दूसरेसे पोषित या परम पोषणयुक्त), भंवरकी तरह कुसुमेषु (कामदेव या फूलोंमें) लालित, (या जलगृहोंकी तरह) रक्त (रुधिर या अनुरक्त) के आकर्षणमें निपुण,. . . महानट (बड़े नट या शंकर के) बाहुकी तरह बंधे भुजंग (सांप या लंपट) वाली, गरुड़की तरह विलासियोंके हृदयोंको ताप करनेवाली बुध की तरह शूलपर चढ़ी।. . .

१७. प्रचण्डप्रतिपक्षलक्ष्मीकेश-पाशकुसुममालामोदसुरभितकर-कमलः, प्रशस्तकेदार इव बहुधान्यकार्यसम्पादकः, पार्थ इव सुभद्रान्वितः सभीमसेनश्च, कृष्ण इव सत्य-भामोपेतः सबलश्च, शृंगारशेखरो नाम राजा प्रति-वसतिस्म । यो बलभित्, पावकः, धर्मराट्, निर्ऋतिः प्रचेता सदागतिः धनदः, शंकर इत्यष्टमूर्तिरप्यनष्ट-मूर्तिः ।

१८. तस्य चाभूदेवंविधस्य राज्ञो महिषी दिग्गजमदरेखेवा-नन्दितालिगणा, पार्वतीव सुकुमारा चन्द्रलेखालंकृता च वनराजिरिव नवमालिकोद्भासिता सचित्रका च, अप्सरःसंहतिरिव संहतसुकेशी सुमंजुघोषा च, सर्वान्तः-पुरप्रधानभूता अनंगवती नाम । तयोश्च मध्यमो-पान्ते वयसि वर्तमानयोः कथमपि दैववशात् त्रिभुवन-विलोभनीयाकृतिः, पुलोमतनयेव नन्दितसहस्रनेत्रा, मेरु-गिरिमेखलेव सुजातरूपा, शरन्निशेव उल्लसत्तारका, सत्परिषदिव अच्छिद्रद्विजपंक्तिभूषिता, राक्षसकुललक्ष्मीरिव माल्यवत्सुकेशशोभिता तनयाऽभूद् वासवदत्ता नाम । अथ सा रावणभुजवन इव उल्लसितगोत्रे, विन्ध्याचल इव मदनालंकृते, पारावार इव संजातलावण्ये, नन्दवन इव सदाकल्पतरूणामभिनन्दिते, पवन इव सुमनोहरे, परिणाम-मुपयात्यपि यौवने परिणयपराङ्मुखी तस्थौ ।

१७. शृंगारशेखर राजा बसता था (जोकि) था, प्रचंड शत्रुकी लक्ष्मीके केशोंकी कुसुममालाकी सुगंधसे सुगंधित करकमलवाला, प्रशंसनीय क्यारीकी तरह बहुत धान्य और कार्यका संपादक, अर्जुनकी तरह सुभद्रा (या भद्रजनों से) युक्त और भीमसेन (भयानक सेना) से युक्त, कृष्णकी तरह सत्यभामा (या सत्यके प्रकाश) से और वल (शक्ति या वलराम) से युक्त, जो शत्रुओंका नाशक (या इन्द्र), पावक (पवित्र), धर्मराज, निरुपद्रव (या दिक्पाल), शंकर (या कल्याण-कारी) होनेसे अप्टमूर्ति भी अ-नष्ट (या नहीं आठ) मूर्तिवाला था। . . .

१८. उस राजाकी पटरानी अनंगवती थी, (जोकि) दिग्गजोंकी मद-रेखा सी आनंदित अलिगणों (सखियों या भ्रमरों) वाली, पार्वतीकी तरह सुकुमार और चन्द्रलेखा (सुन्दर कार्तिकेय या चन्द्रलेखा हार) से शोभित; वनपंक्तिकी तरह नवमालिका (एक फल या नवीन माला) से उद्भासित और चित्रक (तिलक या वृक्ष विशेष)-सहित, अप्स-राओंकी तरह सघन सुकेशी (सुकेशी अप्सरा) से युक्त, मंजुघोषा (मंजुभाषिणी या मंजुघोषा अप्सरा) युक्त। उन दोनोंके जवानीके अन्त होते समय दैववश कैसे ही वासवदत्ता नामक पुत्री पैदा हुई (जो कि थी) त्रिभुवनको लुभानेवाली आकृतिसे शचीकी तरह सहस्र नेत्र (इन्द्र या हजारों आंखों) को आनंदित करनेवाली, मेरुपर्वतकी मेखलाकी तरह सुजातरूपा (सुन्दर उत्पन्न रूप या सुन्दर सुवर्ण वाली), शरद्कालकी रात्रि की तरह तारा (पुतली या नक्षत्रों) को उल्लसित करनेवाली, संत-परिषद्की तरह छिद्र (दोष)-रहित द्विजोंसे भूषित, राक्षसकुलकी लक्ष्मीकी तरह माल्यवान् (या मालावाले) सुकेश (या सुन्दर केश) वालोंसे शोभित। वह पुरी उज्जयिनी में, (जो-कि थी) रावणके भुज-वनमें उल्लसित हुये गोत्रों ([illegible]) वाली, विंध्याचलकी तरह मदन (या उस नामके वृक्ष) से अलंकृत, सागरकी तरह लावण्य (सुन्दरता या लवण)-सहित, नंदनवनकी तरह सदा कल्पतरु (या सुन्दर तरुओं) से अभिनंदित, मदनकी तरह सुमनोहर, भी [illegible]-विमुख थी। . . .

१९. सा च क्षणेनैकैकशः समवलोक्य विरक्तहृदया सती तस्मात् कर्णान्थादवततार। अथ तस्यामेव रात्रौ सा स्वप्ने, वाल्लिन-मिवांगदोपशोभितंस्पर्शगृहं लक्ष्मीसरस्वत्योः त्रिभुवन-विलोभनीयकृतिं कंचिद्युवानं ददर्श।

(५) कन्दर्पकेतु-सौंदर्य-विरह व्यथा—

२०. स चिन्तामणिनाम्नो राज्ञस्तनयः कन्दर्पकेतुरिति स्वप्न एव तन्नामादिकमशृणोत्। अनन्तरम् "अहो प्रजापते रूप-निर्माणकौशलम्! मन्ये, स्वस्यैव नैपुण्यस्यैकत्र दर्शनो-त्सुकमनसा वेधसा जगत्त्रयसमवायिरूपपरमाणुनादाय विर-चितोऽयमिति, अन्यथा कथमिमास्य कान्तिविशेष ईदृशो भवति। वृथैव दमयन्ती नलस्य कृते वनवासवैशसमवाप, मुधैवेन्दुमती महिष्यप्यजानुरागिणी बभूव। विफलमेव दुष्यन्तस्य कृते दुर्वाससः शापमनुबभूव शकुन्तला। निरर्थकमेव मदनमंजरी नरवाहनदत्तं चकमे। निष्कारण-मेव उरुगारिमनिर्जितरम्भा रम्भा नलकूवरमचीकमत्। व्यर्थमेव धूमोर्णा स्वयं स्वयंवरार्थमागतेषु देवगणेषु धर्मराजमाचकांक्ष। निष्प्रयोजनमेव ऋद्धिर्गन्धर्वपक्षेषु कुबेर-माससाद। अहेतुकमेव पुलोमतनया देवेन्द्रासक्तचित्ता बभूव।" इति बहुविधं चिन्तयंती, विरह मुर्मुरमध्यमाधि-रूढेव, मदनदावाग्निशिखाकवलितेव, वसन्तकालाग्नि-गृहीतेव, दक्षिणमारुतरुद्रपावकग्रस्तेव, उन्मादपातालगृहं प्रविष्टेव, शून्यकरणग्रामेव वर्तमाना, हृदये विलिखित-मिव, उत्कीर्णमिव, प्रत्युप्तमिव, कीलितमिव, निगलित-मिव, वज्रलेपघटितमिव, अस्थिपंजरप्रविष्टमिव, मर्मा-न्तरस्थितमिव, मज्जारसशवलितमिव, प्राणपरीतमिव, अन्तरात्मानमधिष्ठितमिव, रुधिराशये द्रवीभूतमिव, पलल-संविभक्तमिव, कन्दर्पकेतुं मन्यमाना, उन्मत्तेव, अन्धेव,

१९. (स्वयंवर सभामें) वह क्षण भर एक-एकको देखकर विरक्त हृदय हो मंचसे उतर गई। तब उसी रात में उसने स्वप्नमें बालिकी तरह अंगद (या भूषण) से उपशोभित...लक्ष्मी और सरस्वतीकी स्पर्धाके गृह, तीनों लोकोंको लुभानेवाली आकृतिवाले किसी तरुणको देखा।...

५. कन्दर्पकेतुका सौंदर्य और विरह-व्यथा—

२०. वह चिन्तामणि नामक राजाका पुत्र कन्दर्पकेतु है, यह भी स्वप्नमें ही उसने उसके नाम आदिको सुना, फिर (सोचने लगी) "अहो, ब्रह्माके रूप-निर्माणकी निपुणता! मैं समझती हूं, अपनी निपुणताको एक जगह दिखलानेके लिये उत्सुक ब्रह्माने तीनों जगत्के उपादान रूपके परमाणुओंको लेकर इसे बनाया, नहीं तो कैसे इसकी विशेष कान्ति होती? व्यर्थ ही दमयन्तीने नलके लिये वनवासकी पीड़ा सही। व्यर्थ ही पटरानी इन्दुमती भी अजकी अनुरागिनी हुई। व्यर्थ ही शकुन्तलाने दुःष्यन्तके लिये दुर्वासाके शापको भोगा। निरर्थक ही मदनमंजरी नरवाहनदत्तपर आसक्त हुई। अकारण ही अपने उरुकी गरिमासे रंभा (केले) को जीतनेवाली रंभाने नलकूबरको प्यार किया। व्यर्थ ही धर्मोणाने स्वयंवरके लिये आये देवगणोंमें स्वयं धर्मराजसे प्रेम किया। निष्प्रयोजन ही ऋद्धिने गंधर्वों-में कुबेरको प्राप्त किया। बिना हेतु ही पुलोमकी पुत्री (शची) देवेन्द्र पर आसक्त हुई।" इस तरह बहुल प्रकारसे सोचती वह विरहके भौंर (की आग) में पड़ी, मदनरूपी दावानलकी ज्वालासे ग्रसित सी, वसंतकालकी अग्निमें पकड़ी सी, दक्खिनी हवारूपी भयंकर पावकसे ग्रस्त सी, उन्मादरूपी भुईंधरेमें प्रविष्ट सी, सुप्त इन्द्रियोंवाली सी हुई। उसने हृदयमें कंदर्प-केतुको जटित सा, उत्कीर्ण सा, खचित सा, कीलित सा, बद्ध सा, वज्रलेप-गठित सा, हड्डियोंमें प्रविष्ट सा, कलेजे के भीतर स्थित सा, प्राणोंमें व्याप्त सा, अन्तःकरणपर अंकित सा, रुधिरमें, मज्जामें घुल गया सा, मांसमें मिल गया सा समझा। और वह उन्मत्ता सी,

बधिरेव, मूकेव, शून्येव, निरस्तेन्द्रियग्रामेव, मूर्च्छागृहीतेव, ग्रहग्रस्तेव, यौवनसागरतरलतरंगपरम्परापरिगतेव, रागरज्जुभिः परिवारितेव, कन्दर्पकुसुमबाणैः कीलितेव, शृंगारभावनाविषरसघूर्णितेव, रूपपरिभावनाशल्यकीलितेव, मलयानिलापहृतजीवितेव भवन्ती, "हा प्रिये मन्मथनंगलेखे, वितर हृदये मे पाणिपद्मं, दुःसहो विरहसन्तापः । मुग्धे मदनमंजरि, सिंचांगानि चन्दनवारिणा। सरले वसन्तसेने, संवृणु केशपाशम्। तरले तरंगवति, विकिरांगेषु कैतकधूलिम्। वामे मदनमालिनि, कलय वलयं शैवालकलापेन । चपले चित्रलेखे, चित्रपटे विलिख चित्तचौरं जनम्। भामिनि विलासवति, विक्षिपावयवेषु मुक्ताचूर्णनिकरम् । रागिणि रागलेखे, स्थगय नलिनीदलनिचयेन पयोधरभारम् । सुकान्ते कान्तिमति, मन्दं मन्दमपनय बाष्पबिन्दून् । यूथिकालंकृते यूथिके, संचारय नलिनीदलतालवृन्तेनार्द्रवातान् । एहि भगवति निद्रे, अनुगृहाण मां । धिक् इन्द्रियैरपरैः, किमिति लोचनमयान्येव न कृतान्यंगानि विधिना । भगवन् कुसुमायुध, तवायमंजलिः, अनुवशो भव भाववति मादृशे जने । मलयानिल, वह यथेष्टं, अपगता मम प्राणाः" इति बहुविधं भाषमाणा वासवदत्ता सखीजनेन समं संमुमूर्च्छ ।

२१. अथ तस्यास्तमालिका नाम शारिका तत्प्रियसखीभिः समं समालोच्य कन्दर्पकेतोर्भावमाकलयितुं प्रेषिता ।

अन्धी सी, बहरी सी, गूगी सी, गूनी सी, सारे इन्द्रियोंके बिना सी, मूर्छित सी, भूत पकड़ी सी, यौवन-सागरके चंचल तरंगोंमें लीन सी, रागरूपी रस्सीसे वेष्टित सी, कंदर्पके पुष्प-बाणोंसे जड़ी सी, शृंगार-भावनाके विषरससे घूमते सिरवाली सी, (तरुणके) रूपके सोचने-रूपी शल्यसे कीलित सी, **मलयानिल** द्वारा जीवन हरी जाती सी सखियोंसे कहने लगी—"हा प्रिय सखी अनंगलेखा, मेरी छातीपर अपने पाणिपंकजको रख, विरहका संताप दुस्सह हो रहा है। मुग्धा मदनमंजरी, चंदनजलसे अंगोंको भिगो। भोली वसंतसेना, (मेरे) केशोंको बांध। चंचल तरंगवती, अंगमें केवड़ेके केसरको बिखेर। सुन्दरी मदनमालिनी, सेवारका कंकण बना। चपला चित्रलेखा, (मेरे) चित्तचोरको चित्रपटपर लिख। भामिनी विलासवती, अवयवोंमें मोतीके चूर्ण डाल। रागिनी रागलेखा, कमलिनीके पत्रोंसे स्तनोंको ढांक दे। सुन्दर कांतिवाली कांतिमती, धीरे-धीरे (मेरे) आंसुओंके बूंदोंको हटा। जूहीसे अलंकृत यूथिका, कमलिनीके पत्रके पंखेसे भीगी भीगी हवा चला। भगवती, निद्रा आओ, मेरे ऊपर अनुग्रह करो। दूसरी इन्द्रियोंको धिक्कार। ब्रह्माने क्यों अंगोंको लोचनमय नहीं बनाया? हे भगवान् कामदेव, तुम्हारे लिये यह हाथ जोड़ती हूँ, भाववाले मेरे जैसे जनपर अनुकूल होओ। हे मलयवायु, यथेष्ट बहो, मेरे प्राण जा रहे हैं। (फिर) वह मूर्छित हो गई।

२१. तब उसकी तमालिका नामकी सेविकाको प्रिय सखियोंने सलाह करके कंदर्पकेतुका समाचार जाननेके लिये भेजा।...

(६) वासवदत्ता-प्रवासे—

२२. अथ सहर्षं समुत्थाय मकरन्दस्तां तमालिकामाहूय विदितवृत्तान्तामकरोत्। सा तु तस्मै कृतप्रणामा तां पत्रिकामुपानयत्। अथ मकरन्दस्तामादाय पत्रिकां विस्रस्य स्वयमेवावाचयत्।

प्रत्यक्षदृष्टभावाप्यस्थिरहृदया हि कामिनी भवति।
स्वप्नानुभूतभावा दृढयति न प्रत्ययं युवतिः॥

२३. तच्छ्रुत्वा कन्दर्पकेतुरमृतार्णवनिमग्नमिव, सर्वानन्दानामुपरिवर्तमानमिवात्मानं मन्यमानो मन्दं मन्दमुत्थाय प्रसारितबाहुयुगलस्तमालिकामालिलिंग। अथ तयैव सार्धं समासीनः—"किं करोति, किं वदति, कथमास्ते" इत्यादि सकलं वासवदत्तावृत्तान्तमपृच्छत्। तं च दिवसं तत्रैवातिवाह्य तस्मात्प्रदेशात्तया सहोच्चचाल ससुहृत्कन्दर्पकेतुः। अत्रान्तरे भगवानपि मरीचिमाली वृत्तान्तमिमं कथयितुमिव मध्यमं लोकमवततार।...

२४. ततः क्रमेण च विघटमानदलपुटकुमुदकाननकोशमकरन्दबिन्दुसन्दोहसान्द्र निःष्यन्दास्वादमुदितमधुकरकुलकलरुतमुखरितदिगन्ते, चन्द्रिकापानभरालसचकोरकामिनीभिरभिनन्दितागमने, सुरतभरपरिश्रमखिन्नपुलिन्दराजसुन्दरीस्वेदजलकणिकापहारिणि प्रवाति सायन्तने तनीयसि निशानिश्वासनिभे नभस्वति, कन्दर्पकेतुस्तमालिलिकामकरन्दसहायो वासवदत्तानगरमयासीत्।

२५. अथ स प्रविश्य कटकैकदेशं विनिर्मितं, अभ्रंलिहशिखरेण, सुधाधवलेन एकान्तरनिविष्टकनकमुक्तामरकतपद्मरागच्छलेन, वासवदत्तादर्शनार्थमवस्थितदेवतागणेनेव सालवलयेन परिगतं, अनिलोल्लासिताभिर्नभस्तरुकुसम-

६. वासवदत्ताके भवनमें—

२२. हर्षके साथ उठकर मकरंदने तमालिकाको बुलाकर सब वृत्तान्तसे परिचित कराया। उसने प्रणाम कर उसके लिये लाई चिट्ठी सामने रक्खी। तब मकरंदने चिट्ठी लेकर खोलकर स्वयं पढ़ा—
"भावोंको प्रत्यक्ष देख भी कामिनी अस्थिर हृदयवाली होती है। स्वप्नमें भावोंको अनुभव करनेवाली युवतीका विश्वास दृढ़ नहीं हो सकता।"

२३. यह सुन अमृतसागरमें डूबे से, सभी आनंदोंके ऊपर अपनेको अवस्थित मानते से कंदर्पकेतुने धीरे-धीरे उठकर दोनों हाथोंको फैला तमालिकाको आलिंगन किया। फिर साथ बैठकर—"वह क्या करती है, क्या बोलती है, कैसे है" इत्यादि कहते वासवदत्ताके सभी वृत्तान्त पूछे। वह दिन वहीं बिताकर उसीके साथ उस प्रदेशसे अपने मित्र कंदर्पकेतुको लिये चला। इसी बीच भगवान् सूर्य भी इस वृत्तान्तको मानो कहनेके लिये पृथिवीलोकसे नीचे उतरे।...

२४. तब कंदर्पकेतु, तमालिका और मकरंदके साथ वासवदत्ताके नगरमें शामको गया, जब कि क्रमशः खिलते पत्रपुटवाले कुमुद-वनके कोशोंसे मकरन्दके विन्दुओंके घने क्षरण और आस्वादसे मुदित भ्रमरोंके मृदुल शब्दोंसे दिशायें मुखरित थीं, चांदनीके पानके भारसे अलस चकोरियाँ जिसके आगमनको अभिनंदित कर रही थीं, परिश्रमसे खिन्न शबरराजसुन्दरीके स्वेद जलकणोंको हटाता रात्रिके अतिक्षीण स्वासकी तरह सायंकालका वायु बह रहा था।

२५. (नगरमें) प्रवेश कर कार्तिकेय-तुल्य प्रभाववाले कंदर्पकेतुने राजधानीके एक मार्गपर निर्मित वासवदत्ताके भवनको देखा, जिसका कि आकाशचुम्बी शिखर चूनेसे धवल था, (जो) एक ओर लगे सुवर्ण-मंडित-लता-स्तम्भोंके व्याजसे, वासवदत्ताको देखनेके लिये अनिमिष देवांगनाओंकी तरह. शाल (वृक्ष) की वल्लियोंसे घिरा, सुरपुरकी शोभाको तर्जित करती वायुमें हिलती पारिजात कुसुम-मंजरियोंको

मंजरीभिरिव तर्जयन्तीभिरिव गगनपुरश्रियं पताकाभि-रुपशोभमानं, निधानमिव कौतुकस्य, आस्थानमिव शृंगारस्य, कुलगृहमिव सकलविभ्रमाणां, संकेतस्थानमिव सौन्दर्यस्य, वासवदत्ताभवनं ददर्श।......

२६. प्रणयपेशलाः प्रमदानामालापकथाः शृण्वन् कन्दर्पकेतु-र्मकरन्देन सह तद्भवनं प्राविशत्।

(७) वासवदत्ता-सौंदर्यम्—

२७. अकरोच्च मनसि—अहो भुवनातिशायि सौन्दर्यम्। अहो शृंगारकलाकौशलम्। तथा हृद्यं तत्काललीलावह-लविमलमालवीदशनकान्तिदन्तिदन्तघटितो मण्डपोऽसावपि कनकशलाकाविनिर्मितयन्त्रपंजरसंयतः क्रीडाशुकः इत्यादि-परिचिन्तयन्, प्रविश्य, व्याकरणेनेव सुरक्तपादेन, महा-भारतेनेव सुपर्वणा, रामायणेनेव सुन्दरकाण्डचारुणा, जंघा-युगलेन विराजमानां, छन्दोविचितिमिव भ्राजमानतनु-मध्यां, नक्षत्रविद्यामिव गणनीयहस्तश्रवणां, न्यायस्थिति-मिवोद्योतकरस्वरूपां, बौद्धसंगतिरिवालंकारभूषितां, उप-निषदमिवानन्दमेकमुद्द्योतयन्तीं, द्विजकुलस्थितिमिव चारु-चरणां, विन्ध्यगिरिश्रियमिव सुनितम्बां, तारामिव गुरु-कलत्रतयोपशोभितां, शतकोटियष्टिमिव मुष्टिग्राह्य-मध्यां, प्रियंगुश्यामासखीमिव प्रियदर्शनां, ब्रह्मदत्तमहिषी-मिव सोमप्रभां, दिग्गजकरेणुकामिवानुपमां, रेवामिव नर्मदां, वेलामिव तमालपत्रप्रसाधितां, अश्वतरकन्यामिव मदालसां, वासवदत्तां ददर्श।...

सी पताकाओंसे शोभित था। जो कौतुककी निधि सा, शृंगाररसका दरबार सा सारी शोभाओंके कुलगृह सा, सौंदर्यका संकेत-स्थान सा था।...

२६. महिलाओंके गीत-मनोहर बातचीतको सुनते कंदर्पकेतु मकरंदके साथ उस भवनमें प्रविष्ट हुआ।

७. वासवदत्ताका सौंदर्य—

२७. कन्दर्पकेतुके मनमें हुआ—"अहो भुवनमें सबसे बढ़कर (यह) सौंदर्य! अहो शृंगार कलाका कौशल! जैसे मालविकाओंके तत्काल लीलामय विरल विमल दांतोंकी कांतिवाले गजदंतोंसे गढ़ा यह मंडप है, यह भी सुवर्ण शलाकाओंके बने पिंजरेमें रखा पालतू तोता" इत्यादि यह सोचते प्रवेश कर उसने व्याकरणकी तरह रक्तपाद (लाल चरण या तेन रक्तं सूत्र) के साथ, **महाभारतकी** तरह सुन्दर पर्व (या ग्रंथि) के साथ, रामायणकी तरह **सुन्दरकाण्ड** (या मनोहर नाल) से सुचारु दोनों जांघोंके साथ विराजमान वासवदत्ताको देखा। (वह थी) **छन्दोविचिति** (ग्रंथ) की तरह तनुमध्या (छंद या क्षीण कटि) हो शोभती, नक्षत्रविद्याकी तरह हस्त और श्रवण (नक्षत्र या हाथ और कान) से गणनीय (श्रेष्ठ), न्याय (शास्त्र) की स्थितिकी तरह **उद्योतकर** (नैयायिक या प्रकाशक) स्वरूपवाली, **बौद्ध** संगतिकी तरह अलंकार (आभूषण या सूत्रालंकार) से विभूषित, उपनिषद् की तरह एक आनंदको उद्योतित करती, द्विज (पक्षी या ब्राह्मण) के कुलकी मर्यादाकी तरह सुन्दर चरणों (या चरण सूत्र) वाली, विंध्य पर्वतकी शोभाकी तरह सुन्दर नितम्ब (या पर्वत निम्नदेश) वाली, ताराकी तरह गुरुपत्नी (बहुत परिजनों) से उपशोभित, बेल की यष्टिकी तरह मुट्ठीमें कमर आ जानेवाली, प्रियंगुश्यामा (कंगुनी श्यामा सखी) प्रियदर्शना (नाम या सुन्दर रूपवाली) ब्रह्मदत्तकी गृहिणीकी तरह सोमप्रभा (या चन्द्रमाकी कान्तिवाली), दिग्गजकी हथिनियोंकी तरह अनुपमा (या उपमा सहित), रेवाकी तरह नर्मदा (नदी या क्रीड़ा देनेवाली), समुद्रतटकी तरह तमाल-पत्रोंसे सजाई गई, अन्तःपुर-कन्याकी तरह मदालसा (रानी या मदसे अलस)।

(८) किं करणीयम्—

२८. अथ तां प्रीतिविस्फारितेन चक्षुषा पिबतः कन्दर्पकेतोर्जहार चेतनां मूर्च्छा। तमपि पश्यन्ती वासवदत्ता मुमूर्च्छ। अथ मकरन्दसखीजनप्रयत्नाल्लब्धसंज्ञावेतावेकासनमलंचक्रतुः। अथ वासवदत्तायाः प्राणेभ्योऽपि गरीयसी सर्वविस्रम्भपात्रं कलावती नाम सखी कन्दर्पकेतुमुवाच ..."आर्यपुत्र, नायं विस्रम्भकथानामवसरः। अतो लघुतरमेवाभिधीयते। त्वत्कृते याऽनया वेदनाऽनुभूता, सा यदि नभः पत्रायते, सागरो मेलानन्दायते, ब्रह्मा लिपिकरायते, भुजगपतिर्वा कथकायते तदा मिकपि कथमप्यनेकैर्युगसहस्रैरभिलिख्यते कथ्यते वा। त्वयापि राज्यमुज्झितं किं बहुना आत्मा संकटे समारोपित एव। एषाऽस्मत्स्वामिदुहिता प्रभातायां शर्वर्यां यौवनातिक्रमदोषशंकिना पित्रा हठेन विद्याधरचक्रवर्तिनो विजयकेतोः पुत्राय पुष्पकेतवे पाणिग्रहणेन दातव्येति निश्चिता। अनया चार्ययाऽस्माभिः सह सम्मन्त्र्यालोचितं—"अद्य यदि तं जनमादाय नागच्छति तमालिका, तदावश्यमेवाश्रयाश आश्रयितव्य" इति। सुकृतवशाच्च महाभागः समागतः। तदत्र यत् साम्प्रतं तत्र भवानेव प्रमाणम्" इत्युक्त्वा विरराम।...

(९) पलायनम्—

२९. अथ कन्दर्पकेतुर्भीतिभीत इव, प्रणयानन्दामृतसागरलहरीभिराप्लुत इव, भुवनत्रयराज्याभिषिक्त इव, वासवदत्तया सह सम्मन्त्र्य, मकरन्दं वार्तान्वेषणाय तत्रैव नगरे नियुज्य, भुजंगेनेव सदागत्यभिमुखेन, सरित्पतिनेव शुक्ति-

८. क्या करना चाहिए—

२८. प्रेम से आंखें फाड़ कर उसे पीते कन्दर्पकेतुकी चेतनाको मूर्छाने हर लिया। वासवदत्ता भी उसे देख मूर्छित हो गई। तब मकरंद और सखियोंके प्रयत्नसे होशमें आये दोनों एक आसन पर विराजमान हुये। वासवदत्ताकी प्राणसे भी बढ़कर सारे विश्वासोंकी पात्र कलावती नामकी सखीने कंदर्पकेतुसे कहा—"आर्यपुत्र, इत्मीनानके साथ बात करने को अवसर नहीं है, इसलिये बहुत संक्षेपमें ही कहती हूँ। तुम्हारे लिये इसने जो वेदना सही, उसे, यदि आकाश पत्र हो जाये, सागर दवात बन जाये, ब्रह्मा लिपिकर हो जाये, शेष कथा कहनेवाले हो जायें, तब (उसमें से) कुछ मुश्किलसे अनेक हजार युगोंमें लिखी या कही जा सकती है। तुमने भी अपना राज छोड़ा। अधिक क्या, अपनेको संकटमें भी डाला। इस हमारी स्वामिपुत्री को यौवन बीत जानेके दोषसे डरते पिताने हठकर विद्या-धरोंके राजा विजयकेतुके पुत्र पुष्पकेतुके साथ पाणिग्रहण करके कल सवेरे देनेका निश्चय किया है। इस आर्याने हमारे साथ सलाह करके निश्चय किया था—"आज यदि उस जनको लेकर तमालिका नहीं आती, तो अवश्य मैं अग्निका ही आश्रय लूंगी।" पुण्यवश महाभाग (यहां) आ गये। सो यहां जो उचित हो, उसके बारेमें आप ही प्रमाण हैं।" यह कहकर वह चुप हो गई।...

९. पलायन—

२९. तब प्रेमरूपी आनंदके अमृतसागरकी लहरोंमें डूबेसे, तीनों लोकके राज्यपर अभिषिक्त हुये से कंदर्पकेतु वासवदत्ताके साथ उससे सलाह करके मकरन्दको पता लेने के लिये उसी नगरमें नियुक्त करके, मनोजव नामक घोड़े पर नगरसे निकल पड़ा। (वह घोड़ा) भुजंगकी तरह गतिमें सदा अभिमुख (सीधे) सागरकी तरह मुनिन (गीपों

शोभितेन, विन्ध्यविपिनेनेव श्रीवृक्षलांछितेन, हंसेनेव मानसगामिना, अरण्येनेव गण्डशोभितेन, वनस्पतिनेव स्कन्धशोभितेन, वज्रेणेवेन्द्रायुधेन, मनोजवनाम्ना तुरगेण तया सह नगरान्निर्जगाम।...

(१०) आत्मघात-निश्चयः—

३०. जलनिधिं अपश्यत्, अचिन्त्यच्च (कंदर्पकेतुः)—"अहो मे कृतापकारेणापि विधिनोपकृतिरेव कृताः, यदयं लोचन-गोचरतां नीतः समुद्रः। तदत्र देहमुत्सृज्य प्रियाविरहाग्निं निर्वापयामि। यद्यप्यनातुरस्य देहत्यागो न विहितस्तथापि कार्यः। न खलु सर्वः सर्वं कार्यमेव करोति। असारे संसारे केन किं नाम न कृतम्? तथाहि—गुरुदारहरणं द्विजराजोऽकरोत्। पुरूरवा ब्राह्मणधनतृष्णया विननाश। नहुषः परकलत्रदोहदी भुजंगतामयासीत्। ययातिर्विहित-ब्राह्मणीपाणिग्रहणः पपात। सुद्युम्नः स्त्रीमय एवाभवत्। सोमकस्य प्रख्याता जगति जन्तुवधनिर्घृणता। पुरुकुत्सः कुत्सित एवाभवत्। कुवलयाश्वोऽश्वतरकन्यामपि जगाम। नृगः कृकलासतामगमत्। नलः कलिनाऽभिभूतः। संवरणो मित्रदुहितरि विक्लवतामगात्। दशरथोऽपीष्टरामोन्मादेन मृत्युमवाप। कार्तवीर्यो गोब्राह्मणपीडया पंचत्वमयासीत्। शन्तनुरतिव्यसनाद्विललाप। युधिष्ठिरः समरशिरसि सत्य-मुत्ससर्ज। तदित्थं नास्त्येव जगत्यकलंकः कोऽपि। तदहमपि देहमुत्सृजामि।...

या भंवरियों) से शोभित, विन्ध्याचलके वनकी तरह श्रीवृक्ष (पीपल या घोड़ोंकी विशेष भंवरी) से लांछित, हंसकी तरह मानस (मान-सरोवर) की ओर गमन (या मनके वेग) वाला, अरण्यकी तरह गंड (गैंडा या गंडा) से शोभित, वनस्पतिकी तरह स्कन्ध (कन्धे या बड़ी डाली) से अलंकृत, वज्र की तरह इन्द्रायुध (इन्द्रका हथियार या नील नेत्रवाला)।...

१०. आत्महत्याकी तैयारी—

३०. जलनिधिको देख (कंदर्पकेतु) सोचने लगा—"अहो, अपकार करते भी विधिने मेरा उपकार ही किया, जो कि इस समुद्रको लोचन-गोचर बनाया। सो मैं यहां देह छोड़ प्रियाके विरहकी अग्नि बुझाऊंगा। यद्यपि निरोगके लिये देहत्याग (शास्त्रमें) विहित नहीं है, तो भी वह करणीय (ही) है। सभी करणीय ही नहीं करते। असार संसारमें किसने क्या नहीं किया? —गुरुपत्नीका हरण द्विजोंके राजा (चन्द्र) ने किया, पुरूरवा ब्राह्मणके धनकी तृष्णा करके नष्ट हुआ। **नहुष** दूसरेकी पत्नीका इच्छुक हो अजगर बना। **ययाति** ब्राह्मणीका पाणिग्रहण करके पतित हुआ। **सुद्युम्न** स्त्री बन गया। प्राणि-वधमें सोमककी निर्दयता संसार में प्रसिद्ध है। **पुरुकुत्स** निंदित ही हुआ। कुवलयाश्व, **अश्वतर** (नागराज) की कन्याके पास गया। नृग गिरगिट हुआ। **नल** कलिसे अभिभूत हुआ। **संवरण** मित्रकी कन्यापर-विकल हुआ। **दशरथ** भी प्रिय रामके लिये पागल हो मृत्युको प्राप्त हुआ। **कार्तवीर्य** गो-ब्राह्मणकी पीड़ाके कारण मरा। **शन्तनुने** अतिव्यसनके कारण विनाश किया। **युधि-ष्ठिरने** युद्धक्षेत्रमें सत्यको छोड़ दिया। इस प्रकार संसारमें कोई कलंकरहित नहीं है। सो मैं भी शरीरत्याग करूंगा।..."

३१. ततः कृतस्नानादिसकलकृत्यो जलनिधिजलमवतरितुमारेभे शरीरत्यागाय।

३२. अथ सानग्रहेषु ग्राहेषु, निर्मत्सरेषु मत्स्येषु, अनिच्छेषु कच्छपेषु, अक्रूरेषु नक्रेषु, अभयंकरेषु मकरेषु, अमारेषु शिशुमारेषु आकाशसरस्वती समुदचरत्—"आर्य कन्दर्पकेतो, पुनरपि तव प्रियया संगतिर्भविष्यत्यचिरेण। तद्विरम मरणव्यवसायात्" इति। सोऽपि तदुपश्रुत्य मरणारम्भाद्विरराम। ततः प्रियासमागमाशया शरीरस्थितिहेतुमशनं चिकीर्षुः कच्छोपान्तवनं जगाम। अथ इतस्ततः परिभ्रमन्, फलमूलादिना वने वर्तयन्, कियन्तं कालं निनाय कन्दर्पकेतुः।

(११) वासवदत्ता-समागमः—

३३. शरत्समयारम्भे विजृम्भमाणे कन्दर्पकेतुरितस्ततः परिभ्रमन् कांचिच्छिलापुत्रिकां "मम प्रियानुकारिणी"ति करेण पस्पर्श। अथ सा स्पृष्टमात्रैव शिलाभावमुत्सृज्य वासवदत्तास्वरूपं प्रपेदे। तामवलोक्य कन्दर्पकेतुरमृतार्णवमग्न इव सुचिरमालिंग्य "प्रिये वासवदत्ते, किमेतत्", इति प्रपच्छ।

३४. सा तु दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य प्रत्युवाच—"आर्यपुत्र, अपुण्याया मन्दभाग्याया मम कृते महाभागो भवान् उत्सृष्टराज्य एकाकी परिभ्रमन् प्राकृतजन इव अवाङ्मनसगोचरं दुःखमनुबभूव। उपवासादिना तृषातुरे भवति निद्राश्रान्ते प्रथमं प्रबुद्धाऽहं "भवतः फलमूलादिकमाहरिष्यामी"ति विचिन्त्य फलाद्यन्वेषणाय वनेऽगच्छम्।

३१. स्नान आदि सारे कृत्योंको करके (अब) वह शरीरत्यागके लिये समुद्रजल में उतरने लगा।

३२. जब कि ग्राह अनुग्रहयुक्त थे, मत्स्य मत्सर (ईर्ष्या) रहित थे, कच्छप इच्छाहीन थे, नक्र (नाके) क्रूरता रहित थे, मकर न-भयंकर थे, शिशु मार मारनेवाले नहीं थे; ऐसे समय आकाशवाणी हुई—"आर्य कंदर्पकेतु, प्रियाके साथ जल्दी ही फिर तुम्हारा मिलन होगा। सो मरनेकी कोशिश न करो।" उसे सुनकर उसने मरनेका ख्याल छोड़ दिया। तब वह प्रियाके मिलनेकी आशासे शरीर-रक्षाके लिये भोजन करनेकी इच्छासे तटके पासवाले वनमें गया। फल-मूल आदिसे वनमें जीवन-यापन करते इधर-उधर घूमते कंदर्पकेतुने कितना ही समय बिताया।..

११. वासवदत्तासे भेंट—

३३. शरद् ऋतुके आरंभ होते समय कन्दर्पकेतुने इधर-उधर घूमते किसी पत्थरकी पुतलीको "मेरी प्रिया जैसी है" सोच हाथसे छू दिया। छूने मात्र से उसने शिलारूपको छोड़कर वासवदत्ताका स्वरूप प्राप्त कर लिया। उसे देखकर अमृतसागरमें निमग्नकी तरह कंदर्पकेतुने देर तक आलिंगन करके पूछा—"प्रिये वासवदत्ता, यह क्या?"

३४. उसने देर तक गर्म उसास लेकर उत्तर दिया—"आर्यपुत्र, मुझ पापिनी अभागिनी के लिये आप महाभागने राज्य छोड़ साधारण आदमीकी तरह अकेले घूमते वचन और मनमें न आनेवाले दुःख अनुभव किये। आप उपवास आदिसे मारे [illegible] थे। मुझे जगकर मैं 'आपको [illegible] फल-मूल लाऊं' यह सोच फल आदिकी तलाशके लिये वनमें गई।"

३५. "अथ क्षणेन तरुगुल्मान्तरितं सेनानिवेशं दृष्ट्वा 'किमयं ममान्वेषणाय तातस्य व्यूहः समायातः। आहोस्विदार्यपुत्रस्ये'ति चिन्तयन्तीं मां चारकथितोदन्तो दुर्गतिकिरातसेनापतिर्धावति स्म। ततोऽन्यः किरातसेनापतिस्तादृश एव तथाभूतया सेनयाऽन्वितो मृगयां गतः सोऽपि तच्छ्रुत्वा धावति स्म।

३६. अनन्तरं चिन्तितं मया—'यद्यहमार्यपुत्राय कथयामि, तदा स एकाक्येभिरेव हन्तव्योऽथ न कथयामि तदैभिरहं घातनीये'ति चिन्ताक्षण एव एकामिषलुब्धयोरिव गृध्रयोः तयोर्युद्धमासीत्। ततः प्रवृत्तधारासारदुर्दिनस्थगितदिनकरकिरणे, रणकर्मविशारदद्विरदकरदूरोत्क्षिप्तक्षिप्तखड्गधरसुभटाश्लिष्यमाणविद्याधरविभ्रमे, समरदर्शनसंचरदनेकनभश्चरचारणरचितचक्रवाले, चरच्चारुभटखड्गखण्डितद्विपदसमाप्तपिशाचिकाकर्णोल्लूखलाभरणे, कौतुकाकृष्टजनकृतवदननान्दीके, कान्दिशीकभीरुणि, प्रस्कन्नक्लीबजने, रणोद्यतजितकाशिनि रणखले, शृगालिकाशृगालप्रार्थनीयेष्वामिषपिण्डेष्विव, जिह्मगदष्टेष्विव, श्वित्रदुर्भगेष्विव, शरीरेष्वनास्थां कलयन्तः, समं द्विषतां धनुषां च जीवाकर्षणं योधाश्चक्रुः।...

३७. अनन्तरं च नारायण इव कश्चिन्नरकच्छेदमकार्षीत्। कश्चिद्बौद्धसिद्धान्त इव क्षपितश्रुतिवक्त्रनदर्शनोऽभवत्। कश्चित्क्षपणक इव कटावृतविग्रहोऽभवत्। कश्चिदाशंकितोरुभंगः सुयोधन इव पयसि विवेश। कश्चित्सुरापद्विज इव पपात। कश्चित् शरतल्पगतो भीष्म इव गतायुश्चिरं श्वसन्नासीत्। कश्चित्कर्ण इव विक्लवी-

३५. उसी क्षण वृक्षों-झाड़ियोंसे छिपे एक छावनीको देखकर मैं सोचने लगी —"क्या यहां मुझे ढूंढ़नेके लिये बापूकी अथवा आर्यपुत्रकी सेनायें आ गई?"... गुप्तचरसे बात सुनकर दूरसे किरात सेनापति मेरे पीछे दौड़ा। दूसरा किरात सेनापति भी वैसी ही सेनाके साथ शिकार को आया था। वह भी बात सुनकर दौड़ा।

३६. इसके बाद मैंने सोचा "यदि मैं आर्यपुत्रको कहती हूं, तो वह अकेले (लड़ते) इनके द्वारा मारे जायेंगे। न कहूं, तो इनके द्वारा मैं मारी जाऊंगी"। मेरे ऐसा सोचते समय ही एक मांस-खंडके लोभी दो गिद्धों की तरह उनके बीच युद्ध हुआ।... (वह युद्ध-क्षेत्र था) चलते बाणोंकी बदलीसे ढंकी सूर्यकिरणोंवाला, रणकर्ममें विशारद हाथियोंके सूंडों द्वारा दूर फेंके गये खड्गधारी सैनिकोंसे आलिंगित होते विद्याधरके सौंदर्यवाला, देखनेके लिये संचार करते अनेक आकाशचारी चारणोंसे संचित चक्रवालवाला, सुन्दर भटोंके चलते खड्गसे खंडित हाथीके पदसे बनाये पिशाचीके ओखली कर्णभूषणवाला, कौतुकसे आकृष्ट जनोंके मुंहसे निकले, शब्दोंवाला, पलायन करनेवाले भीरुओंवाला, गिरे कायर जनोंवाला, रणोद्यत जयशालियोंवाला। वहां (वह) युद्ध, गीदड़ और गीदड़ोंके पसन्द मांसपिंडोंकी तरह, सांपसे डसोंकी तरह, रक्तमें अर्गुन्दरकी तरह, अपने शरीरोंकी पर्वाह न करते शत्रुओं और धनुषोंके जीव (या प्रत्यंचा) का आकर्षण करनेके साथ हुआ।...

३७. बादमें नारायणकी तरह किसीने नरक (राक्षस या नरमुंह) का छेद किया। **बौद्ध-सिद्धान्त**की तरह कोई नष्ट-श्रुति-वचन-दर्शन (कान जीभ आंख के बिना या वेद-वचनके विरोधी दर्शनवाला) हुआ। कोई **जैन** साधुकी तरह कट (शव या चटाई से ढंके शरीरवाला) हुआ, कोई जंघाके तोड़नेकी आशंकासे दुर्योधनकी तरह पानीमें घुस गया। कोई [illegible] दांतवाले ब्राह्मण की तरह पतित हुआ। कोई शरशय्यागार स्थित भीष्मकी तरह आयु-क्षीण हो देर तक सांस लेता रहा, किसीने कर्णकी तरह सारे अंगमें निशान हो [illegible] (इषि-

कृतसर्वांगः शक्तिमोक्षमकरोत्। कश्चिद्राघव इव रावण वधमकरोत्। ततो विध्वस्तध्वजपटं पतत्पताकं च्युतचापचामरापीडं स्खलत्खड्गं तत्समस्तमुभयं मिथो जगाम हननं सैन्यम्।

३८. ततश्च यस्याश्रमः, तेन मुनिना पुष्पादिकमादायागतेन योगदृशा प्रतिपन्नवृत्तान्तेन 'त्वत्कृते ममायमाश्रमो भग्न' इति कुपितेन 'शिलामयी पुत्रिका भव' इति शप्ताऽस्म्यहम्। ततः क्षणेनैवेयं वराकी बहुदुःखमनुभव। तीत्यनुग्रहादार्यपुत्रकरुणया च स मुनिर्याच्यमान आर्यपुत्रहस्तस्पर्शावधिकं शापमकरोत्।"...

३९. ततः कन्दर्पकेतुः श्रुतवृत्तान्तेन समागतेन मकरन्देन तया वासवदत्तया च समं स्वपुरं गत्वा हृदयाभिलषितानि सुरलोकदुर्लभानि सुखानि ताभ्यां सहानुभवन् कालमनेकं निनाय।

२६. दण्डी (५८० ई०)

दण्डीका समय सुबन्धु और बाणके बीचमें छठीं सदीका अन्त है। यह दक्षिणके रहनेवाले थे। इनकी तीन कृतियोंमें एक "अवन्तिसुन्दरी कथा" से पता लगता है, कि इनके प्रपितामह दामोदर भारविके मित्र थे, जिसके कारण भारविको ५०० ई० के पहले होना चाहिए। अवन्तिसुन्दरीके अतिरिक्त "दशकुमारचरित" और "काव्यादर्श" इनकी अन्य उपलब्ध कृतियां हैं। "काव्यादर्श" अलंकारका बहुत ही सरल और सुन्दर ग्रन्थ है। इसके गुणोंसे मुग्ध होकर तिब्बती भाषामें इसका अनुवाद हुआ, जो आज भी अलंकार-शास्त्र पढ़नेवालोंके लिए अनिवार्य पाठ्य ग्रन्थ है। तिब्बतमें मम्मटके "काव्यप्रकाश" की भी तालपोथी इन पंक्तियोंके लेखक ने देखी थी। जान पड़ता है, उससे दण्डीकी कृति सुबोध तथा अच्छी जान पड़ी, इसीलिए

यार या बल) छोड़ा, किसीने रामकी तरह रावण (शत्रु) का वध किया। पताकायें गिराते चाप और चमरके आभूषणको च्युत करते, खड्गको (हाथ से) छोड़ते सैनिक मारे गये।

३८. तब पुष्प आदि लेकर लौटी मुझे उस आश्रमके मुनिने दिव्य दृष्टिसे (सब) वृत्तान्त जान कर—"तेरे कारण मेरा यह आश्रम नष्ट हुआ" कहते कुपित हो "तू शिलामयी पुतली हो जा" कह मुझे शाप दिया। तब क्षण भरमें ही, "बेचारी बहुत दुःख अनुभव कर रही है", सोच अनुग्रहसे आर्यपुत्र पर (भी) करुणा करके याचना करनेपर, उन्होंने आर्यपुत्रके हाथके स्पर्शको अवधि उस शापको कर दी।"

३९. तब कंदर्पकेतुका वृत्तान्त सुनकर आये मकरन्द और वासवदत्ताके साथ उसने अपने पुरमें जाकर उन दोनोंके साथ हृदयके लिये प्रिय देवलोक-दुर्लभ सुखोंको अनुभव करते काल विताया।

२६. दण्डी (५८० ई०)

उसीका अनुवाद किया गया। "दशकुमारचरित" बहुत ही मंजा हुआ गद्य-काव्य है, जो कितनी ही बातोंमें सुबन्धु और बाणसे भी अधिक आकर्षक है। दण्डीने "छन्दोविचिति"के नामसे एक छन्द-ग्रन्थ भी लिखा था, जो अब प्राप्य नहीं है। "कालपरिच्छेद" नामक एक और ग्रन्थको भी इनका बनाया बतलाया जाता है। लेकिन, दण्डीकी सर्वश्रेष्ठ कृति "दशकुमार-चरित" ही है। कालिदास उपमामें, भारवि अर्थगाम्भीर्यमें बेजोड़ माने जाते हैं, तो दण्डीको पद-लालित्यमें अद्वितीय साबित करनेवाला यही "दशकुमारचरित" है। "दशकुमारचरित" में भी सभी उच्छ्वासोंको दण्डीकी कृति नहीं माना जाता, न इस ग्रन्थ में सभी कुमारोंका चरित मिलता है।

दशकुमारचरितम्

(१) कुमाराणां जन्म वियोगश्च—

१. अस्ति समस्तनगरीनिकषायमाणा शश्वदगण्यपण्यविस्तारितमणिगणादिवस्तुजातव्याख्यातरत्नाकरमाहात्म्या मगधदेशशेखरीभूता पुष्पपुरी नाम नगरी। तत्र वीरभटात्तरंगतुरंगकुंजरमकरभीषणसकलरिपुगणकटकजलनिधिमथनमंदरायमाणसमुद्दंडभुजदण्डः, पुरंदरपुरांगणवनविहरणपरायणगीर्वाणतरुणगणिकागणजेगीयमानयाऽतिमानया शरदिन्दुकुन्दघनसारनीहारहारमृणालमरालसुरगजनीरक्षीरगिरिशाट्टहासकैलासकाशनीकाशमूर्त्या कीर्त्याऽभितः सुरभितः, स्वर्लोकशिखरो रुचिररत्नरत्नाकरवेलामेखलावलयितधरणीरमणीसौभाग्यभागभाग्यवान् विरचितारातिसंतापेन प्रतापेन सततुलितवियन्मध्यहंसो राजहंसो नाम घनदर्पकन्दर्पसौन्दर्यसोदर्यहृद्यनिरवद्यरूपो भूपो बभूव। तस्य वसुमती नाम सुमती लीलावतीकुलशेखरमणी रमणी बभूव।... विजितामरपुरे पुष्पपुरे निवसता सानन्तभोगलालिता वसुमती वसुमतीव मगधराजेन यथासुखमन्वभावि।...

२. तस्य राज्ञः परमविधेया धर्मपालपद्मोद्भवसितवर्मनामधेया धीरधिषणावधीरितविबुधाचार्यविचार्यकार्यसाहित्याः कुलामात्यास्त्रयोऽभूवन्। तेषां सितवर्मणः सुमतिसत्यवर्माणौ, धर्मपालस्य सुमन्त्रसुमित्रकामपालाः, पद्मोद्भवस्य सुश्रुतरत्नोद्भवाविति तनयाः समभूवन्। तेषु धर्मशीलः सत्यवर्मा संसारासारतां बुद्ध्वा तीर्थयात्राभिलाषी देशान्तरमगमत्। विटनटवारनारीपरायणो दुर्विनीतः कामपालो जनकाग्रजन्मनोः शासनमतिक्रम्य भुवं बभ्राम। रत्नोद्भवोऽपि वाणिज्यनिपुणतया पारावारतरणमकरोत्। इतरे मन्त्रिसूनवः पुरंदरपुरातिथिषु पितृषु यथापूर्वमन्वतिष्ठन्।

दशकुमारचरित

१. कुमारोंका जन्म और वियोग—

१. सारी नगरियोंकी कसौटी सी, सदा अगिनित पण्यों में फैलाई मणि समूह आदि वस्तुओं से रत्नाकरकी बड़ाई प्रकट करने वाली, मगध-जैसे देश के शिरसी पुष्पपुरी (पटना) नामक नगरी है। वहां राजहंस नामक भूप थे, जो कि वीर सैनिकों की उत्तरंगों से युक्त तुरंग-गजरूपी मकरोंसे भीषण सारे रिपुगणोंके सेनारूपी सागरके मथनके लिए मन्दर जैसे उद्दण्ड भुज-दण्डवाले, जिनकी कीर्ति नगर-उपवनमें बिहरनेवाली देवोंकी तरुण गणिकायें गाती थीं; (कीर्ति जो) अति सम्मानयुक्त शरद्के चन्द्रसी कुन्दवन, कपूर, ओस, मृणाल, हंस, ऐरावत, नीर, क्षीर, शंकरके, अट्टहास, **कैलास** या, काशके समान उज्ज्वल, सारी दिशाओंमें व्याप्त, उससे चारों तरफ सुगंधित। (राजा तो) स्वर्ग-शिखरके रुचिर रत्नोंके रत्नाकरकी तट-मेखलासे घिरी पृथिवीरूपी रमणीके सौभाग्यके भागसे भाग्यवान्, ..शत्रुके संतापके प्रतापसे सदा आकाशके मध्यमें स्थित हंस (सूर्य) के समान, तथा भारी अभिमानसे कामदेवके सौन्दर्यके सहोदर मनोहर निर्मल रूपवाले थे। उनकी रमणी **वसुमती** थीं, जो सुमति, सुन्दरियोंके कुलकी चूड़ामणि थीं। अमरपुरको जीतनेवाले पुष्प-पुर नगरमें निवास करते मगधराजके साथ अनंत भोगोंमें लालित वसुमतीने **वसुमती** (पृथिवी) की तरह **मगधराज**के साथ यथेच्छ सुख-भोग किया।...

२. राजाके अनेक आज्ञाकारी, धीर, बुद्धिमें बृहस्पतिको हरानेवाले, विचारकार्यवाले **धर्मपाल, पद्मोद्भव, सितवर्मा** नामक तीन खान-दानी मंत्री थे। उनमें सितवर्माके पुत्र थे **सुमतिवर्मा** और **सत्यवर्मा,** धर्मपालके **सुमन्त्र, सुमित्र** और **कामपाल,** पद्मोद्भवके **सुश्रुत** और **रत्नोद्भव।** उनमें धर्मात्मा सत्यवर्मा संसारको असार समझ तीर्थयात्राकी इच्छासे देशान्तर चला गया। भंडुओं, नटों, वेश्याओंमें आसक्त जुआरी कामपाल पिता और बड़े भाईकी आज्ञाका उल्लंघन कर पृथिवीपर घूमने लगा। रत्नोद्भव भी व्यापारमें निपुण होनेसे समुद्र पार चला गया। दूसरे मन्त्री-पुत्र अपने पिताओंके इन्द्रपुरके अतिथि होने (मरने) पर पूर्ववत् कार्य करते रहे।...

३. एकदा हितैः सुहृन्मन्त्रिपुरोहितैः सभायां सिंहासनासीनो गुणैरहीनो (राजा) ललाटतटन्यस्तांजलिना द्वारपालेन व्यज्ञापि—"देव, देवदर्शनलालसमानसः कोऽपि देवेन विरच्यार्चनार्हो यतिर्द्वारदेशमध्यास्ते" इति। तदनुज्ञातेन तेन स संयमी नृपसमीपमानायि। भूपतिरायान्तं तं विलोक्य सम्यग्ज्ञाततदीयगूढचरभावो निखिलमनुचरनिकरं विसृज्य मन्त्रिजनसमेतः प्रणतमेनं मन्दहासमभाषत —"ननु तापस, देशं सापदेशं भ्रमन्भवांस्तत्र तत्र भवदभिज्ञातं कथयतु" इति।

४. तेनाभाषि भूभ्रमणबलिना प्रांजलिना—"देव, शिरसि देवस्याज्ञामादायैनं निर्दोषं वेशं स्वीकृत्य मालवेन्द्रनगरं प्रविश्य तत्र गूढतरं वर्तमानस्तस्य राज्ञः समस्तमुदन्तजातं विदित्वा प्रत्यागमम्। मानी मानसारः स्वसैनिकायुष्मत्तान्तराये संपराये भवतः पराजयमनुभूय वैलक्ष्यलक्ष्यहृदयो वीतदयो महाकालनिवासिनं कालीविलासिनमनश्वरं महेश्वरं समाराध्य तपःप्रभावसंतुष्टादस्मादेकवीराराविघ्नीं भयदां गदां लब्ध्वात्मानमप्रतिभटं मन्यमानो महाभिमानो भवन्तमभियोक्तुमुद्युंक्ते। ततः परं देव स्वयं एव प्रमाणम्" इति।

(२) अवन्तिसुन्दरी-प्रेम—

५. अथ . . . मधुकरकलकण्ठानां काकलीकलकलेन दिक्चक्रं वाचालयन्, मानिनीमानसोत्कलिकामुपनयन्, माकन्दसिन्दुवाररक्ताशोककिंशुकतिलकेषु कलिकामुपपादयन् मदनमहोत्सवाय रसिकमनांसि समुल्लासयन् वसन्तसमयः समाजगाम। तस्मिन्नतिरमणीये कालेऽवन्तिसुन्दरी नाम

३. एक बार सुहृत्-मित्र-पुरोहितों सहित गुणोंमें युक्त राजा सभामें सिंहासनपर बैठे थे, उसी समय ललाटके ऊपर हाथ जोड़कर द्वारपालने राजासे अर्ज की—"देव, देव द्वारा पूजनीय कोई यति महाराजके दर्शनकी लालसासे आकर द्वारपर खड़े हैं।" तब अनुज्ञा मिलनेपर वह उस संयमीको राजाके समीप ले आया। आते हुये उसे देखकर उसके गुप्तचर होनेको अच्छी तरह जान सारे अनुचरोंको हटाकर मंत्रीजनों के साथ (बैठे) राजा प्रणाम करते उस यतिसे मंद हासके साथ बोले—"तो तपस्वी, भेस बदले (नाना) देशोंमें घूमते आपने जहां-जहां जो कुछ देखा, उसे कहो।"

४. पृथिवी-भ्रमणके बलीने हाथ जोड़कर कहा—"देव, महाराजकी आज्ञाको सिरपर धारणकर यतियोंके इस निर्दोष भेसको स्वीकार कर (मैंने) **मालवराज**के नगरमें प्रवेश किया। वहां बहुत गुप्त रहते राजाके सारे वृत्तान्तोंको जानकर मैं लौटा हूं। अभिमानी मानसारने अपने सैनिकोंको मरवा, युद्धमें आपसे पराजित होकर लज्जित-हृदय (पर) निर्दय हो महान् काल तक रहनेवाले काली-विलासी (शंकर) की आराधना की। तपके प्रभावसे संतुष्ट शंकरने उसे बड़े वीर शत्रुओंको हनन करनेवाली एक भयंकर गदा प्रदान की। जिस से अपनेको शत्रुहीन समझ बड़े अभिमानसे वह आपके साथ लड़नेकी तैयारी कर रहा है। इसके बाद देव ही जानें।"

२. अवन्तिसुन्दरी प्रेम—

५. वसन्त का समय आ गया।... .भ्रमरोंके मधुर कंठोंकी शहनाईका कलरव दिशाओंको वाचालित कर रहा था, मानिनियोंके मनको उत्कंठित कर रहा था। आम्र, माकंद, सिंदुवार, लाल-अशोक, पलाश, तिलकके वृक्षोंपर कलियां पैदा करते कामदेवके बाणोंके लिये पथिकोंके मनोंको उत्कंठित कर रहा था। उस अतिरमणीय

मानसारनन्दिनी प्रियवयस्यया बालचन्द्रिकया सह नगरोपान्तरम्योद्याने विहारोत्कण्ठया पौरसुन्दरीसमवाय-समन्विता कस्यचिच्चूतपोतकस्य छायाशीतले सैकततले गन्धकुसुमहरिद्राक्षतचीनाम्बरादिनानाविधेन परिमल-द्रव्यनिकरेण मनोभवमर्चयन्ती रेमे। तत्र रतिप्रतिकृति-मवन्तिसुन्दरीं द्रष्टुकामः काम इव वसन्तसहायः पुष्पोद्-भवसमन्वितो राजवाहनस्तदुपवनं प्रविश्य तत्र तत्र मलयमारुतान्दोलितशाखानिरन्तरसमुद्भिन्नकिसलय - कुसुमफलसमुल्लसितेषु रसालतरुषु कोकिलकीरालिकुल-मधुकराणामालापान् श्रावंश्रावं. . . चक्रवाककलरवा-कुलविमलशीतलसलिलललितानि सरांसि दर्शदर्शम-मन्दलीलया ललनासमीपमवाप।

६. बालचन्द्रिकया "निःशंकमित आगम्यताम्" इति हस्तसंज्ञया समाहूतो निजतेजोनिर्जितपुरुहूतो राजवाहनः कृशोदर्या अवन्तिसुन्दर्या अन्तिकं समाजगाम। . . .सा मूर्तिमतीव लक्ष्मीर्मालवेशकन्यका स्वेनैवाराध्यमानं संकल्पितवर-प्रदानायाविर्भूतं मूर्तिमन्तं मन्मथमिव तमालोक्य मन्द-मारुतान्दोलिता लतेव मदनावेशवती चकम्पे। तदनु क्रीडाविश्रम्भान्निवृत्तलज्जया कानि कान्यपि भावान्तराणि व्यधत्त। "ललनाजनं सृजता विधात्रा नूनमेषा घुणाक्षरन्यायेन निर्मिता। नो चेदब्जभूरेवंविधनिर्माण-निपुणो यदि स्यात्तर्हि तत्समानलावण्यामन्यां तरुणीं किं न करोति" इति सविस्मयानुरागं विलोकयतस्तस्य समक्षं स्थातुं लज्जिता सती किंचित्सखीजनान्तरितगात्रा तन्नयनाभिमुखैः किंचिदाकुंचितैरेचितभ्रूलतैरपांगवीक्षितै-रात्मनः कुरंगस्यानाथमानलावण्यं राजवाहनं विलोक-यन्त्यतिष्ठत्।

कालमें मानसारकी पुत्री **अवन्तिसुन्दरी** अपनी प्रिय-सखी **बालचन्द्रिका** और नगरकी सुन्दरियोंके साथ नगरके छोरपर अवस्थित रमणीय उद्यानमें विहारकी लालसासे गई। वहाँ किसी असोलेकी छायासे शीतल बालुका तलपर गन्ध-कुसुम-हल्दी-अक्षत-रेशमी वस्त्र आदि नाना प्रकारके सुगंधित द्रव्योंसे कामदेवकी पूजा करती रमण करने लगी। रतिकी मूर्ति सी अवंतिसुन्दरीको देखनेकी इच्छासे मित्र-वसन्त सहित कामदेवकी तरह **पुष्पोद्भवके** साथ **राजवाहनने** उस वनमें प्रवेश किया। वह जहां-तहां मलयवायुसे हिलती शाखाओंपर लगातार फूटते नवपल्लव-पुष्प-फलोंसे उल्लसित आमके वृक्षोंपर कोयल, तोता, भंवरोंके आलापोंको सुनते-सुनते... चकवोंके कल-रवसे आकुल निर्मल शीतल जलोंसे ललित सरोवरोंको देखते-देखते लीलाके साथ ललनाओंके समीप पहुंचे।

६. "बेखौफ इधर आइये" बालचंद्रिकाके हाथके इस इशारेसे बुलाये जाने पर अपने तेजसे इन्द्रको पराजित किये **राजवाहन** पतली कमरवाली अवन्तिसुन्दरीके पास पहुंचे।... वह साकार लक्ष्मी सी मालवेश्वरकी कन्या इच्छित वर प्रदानके लिये पूजे जाते साकार प्रकट हुये मन्मथकी तरह उन्हें देखकर मंद वायुसे हिलाई लताकी तरह कामके आवेशसे कंप उठी। फिर खेलके ख्यालसे लज्जा छोड़ कौन-कौनसे दूसरे हाव-भाव किये। "ललनाओंको बनाते समय विधाताने अवश्य इसे घुणाक्षर न्यायसे बनाया होगा। नहीं तो यदि ब्रह्मा रमणियोंके निर्माणमें निपुण होता, तो उसके समान सौंदर्यवाली दूसरी तरुणीको क्यों नहीं बनाता" यह सोचते आश्चर्य और अनुरागके साथ राज-कुमार उसकी ओर देखने लगे। उसके सामने खड़ी होनेसे लज्जित हो उसने सखियोंकी आड़में शरीरको कुछ छिपा लिया। फिर नयनों के अभिमुख कुछ तिरछी खिंची भौंहोंवाली आँखोंकी चितवन से अपने हृदयसे खींचे जाते लावण्ययुक्त राजवाहनको देखती खड़ी रही।

७. सोऽपि तस्यास्तदोत्पादितभावरसानां सामग्र्या लब्ध-बलस्येव विषमशरस्य शरव्यायमानमानसो बभूव। सा मनसीत्थमचिन्तयत्—"अनन्यसाधारणसौन्दर्येणानेन कस्यां पुरि भाग्यवतीनां तरुणीनां लोचनोत्सवः क्रियते? पुत्ररत्नेनामुना पुरन्ध्रीणां पुत्रवतीनां सीमन्तिनीनां का नाम सीमन्तमौक्तिकीक्रियते? कास्य देवी? किमत्रागमन-कारणमस्य? मन्मथो मामपहसितनिजलावण्यमेनं विलोक्य कन्तीमसूययेवातिमात्रं मथ्नन्निजनाम सान्वयं करोति। किं करोमि? कथमयं ज्ञातव्यः" इति।

८. ततो बालचन्द्रिका तयोरन्तरंगवृत्तिं भावविवेकैर्ज्ञात्वा कान्तासमाजसंन्निधौ राजनन्दनोदन्तस्य सम्यगाख्यानमनु-चितमिति लोकसाधारणैर्वाक्यैरभाषत—"भर्तृदारिके, अयं सकलकलाप्रवीणो देवतासान्निध्यकरण आहवनिपुणो भूसुरकुमारो मणिमंत्रौषधिज्ञः परिचर्यार्हो भवत्या, पूज्यताम्" इति। तदाकर्ण्य निजमनोरथमनुवदन्त्या बालचन्द्रिकया संतुष्टान्तरंगा तरंगावली मन्दानिलेनेव संकल्पजेनाकुलीकृता राजकन्या जितमारं कुमारं समु-चितासनासीनं विधाय सखीहस्तेन शस्तेन गन्धकुसुमा-क्षतघनसारताम्बूलादिनानाजातिवस्तुनिचयेन पूजां तस्मै कारयामास।...

९. तस्मिन्नवसरे मालवेन्द्रमहिषी परिजनपरिवृता दुहितृ-केलिविलोकनाय तं देशमवाप। बालचन्द्रिका तु तां दूरतो विलोक्य रहस्यनिर्भेदभिया (भीता)।...मानसारमहिषी सखीसमेताया दुहितुर्नानाविधां विहारलीलामनुभवन्ती क्षणं स्थित्वा...निजागारगमनायोद्युक्ता बभूव। मातरमनु-

७. उस समय उसका मन उसके किये हाव-भावके रस-सामर्थ्यसे शक्ति पा कामदेवके बाणका लक्ष्य हो गया। राजकन्याने मनमें सोचा- "अपने इस अनन्य-साधारण सौंदर्यसे किस नगरकी भाग्यशालिनी तरुणियोंके लोचनोंको यह आनंदित करता होगा? पुत्रवती पत्नियों-में कौन इस पुत्ररत्नसे अपनी कोखकी मुक्ता बनाती होगी? इसकी देवी (पत्नी) कौन होगी? इसके यहां आनेका क्या कारण है? अपने लावण्यके उपहास-कर्त्ता इसकी ओर देखती मुझे मन्मथ ईर्ष्यासे अत्यधिक मथन करता अपने नामको सार्थक कर रहा है। क्या करूं? कैसे यह जानूं?"

८. **बालचन्द्रिकाने** इंगितोंसे उनके भीतरी भावोंको जानकर (भी), स्त्री-समाजके पास राजकुमारके वृत्तान्तको अच्छी तरह बतलाना अनुचित होगा, यह सोच साधारण वाक्यमें कहा—"भर्तदारिके (स्वामिपुत्री), यह सकलकला-चतुर, देवताके आवाहन करनेमें निपुण, मणि-मन्त्र-औषधिके ज्ञाता पूजनीय ब्राह्मण-कुमार हैं। आप (इनकी) पूजा करें।" अपने मनोरथको दोहराती बालचंद्रिकासे वह (बात) सुनकर वह मनमें संतुष्ट हुई। और मंद वायु-द्वारा तरंगावली सी हो कामदेव से व्याकुलित राजकन्याने कामदेवके जीतनेवाले कुमारको उचित आसनपर बैठा कर सखियोंके हाथसे बढ़िया गंधकुसुम-अक्षत-चन्दन-ताम्बूल आदि नाना प्रकारकी वस्तुओंसे पूजा कराई।...

९. उसी समय परिजनोंसे घिरी **मालवेन्द्रकी** रानी बेटीकी क्रीड़ा देखनेके लिये उस स्थानमें आई। बालचंद्रिका दूरसे ही उसे देखकर रहस्यके खुलनेके भयसे डर गई।...मानसारकी रानी [illegible] सहित अपनी पुत्री की नाना प्रकारकी विहार-लीलाओंका मजा लेती क्षण भर ठहर

गच्छन्त्यवन्तिसुन्दरी "राजहंसकुलतिलक, विहारवांछया केलीवने मदन्तिकमागतं भवन्तमकाण्ड एव विसृज्य मया समुचितमिति जनन्यनुगमनं क्रियते, तदनेन भवन्मनो-रागोऽन्यथा मा भूत्" इति मरालमिव कुमारमुद्दिश्य समुचितालापकलापं वदन्ती पुनः पुनः परिवृत्तदीननयना वदनं विलोकयन्ती निजमन्दिरमगात्

१०. तत्र हृदयवल्लभकथाप्रसंगे बालचन्द्रिकाकथिततद-न्वयनामधेया मन्मथबाणपतनव्याकुलमानसा विरह-वेदनया दिने दिने बहुलपक्षशशिकलेव क्षामक्षामा ऽऽहारादिसकलं व्यापारं परिहृत्य रहस्यमन्दिरे मलय-जरसक्षालितपल्लवकुसुमकल्पिततल्पतलावर्तिततनुलता बभूव। तत्र तथाविधावस्थामनुभवन्तीं मन्मथानलसंतप्तां सुकुमारीं कुमारीं निरीक्ष्य खिन्नो वयस्यागणः कांचन-कलसंचितानि हरिचन्दनोशीरघनसारमिलितानि तद-भिषेककल्पितानि सलिलानि बिसतन्तुमयानि वासांसि च नलिनीदलमयानि तालवृन्तानि च संतापहरणानि बहूनि संपाद्य तस्याः शरीरमशिशिरयत्।...बाल-चन्द्रिका मनोजज्वरावस्थापरमकाष्ठां गतां कोमलांगीं तां राजवाहनलावण्याधीनमानसामनन्यशरणामवेक्ष्यात्मन्य-चिन्तयत्—"कुमारः सत्वरमानेतव्यो मया। नो चेदेनां स्मरणीयां गतिं नेष्यति मीनकेतनः। तत्रोद्याने कुमारयो-रन्योन्यावलोकनवेलायामसमसायकः समं मुक्तसायको-ऽभूत्। तस्मात्कुमारानयनं सुकरम्" इति।

कर जानेके लिये तैयार हुई। माताका अनुगमन करती अवन्ति-सुन्दरीने हंसके बहाने कुमारको लक्ष्य करके "राजहंस-कुलतिलक, विहारकी इच्छासे क्रीड़ा-वनमें मेरे पास आये आपको असमय ही छोड़कर मेरा जाना उचित नहीं है। मै माताका अनुगमन कर रही हूं, इससे आपको अपना मनोराग दूसरा नहीं करना चाहिये।" इस तरह उचित बातें कहती, फिर-फिर घूमते दीन नयनोंसे कुमारके मुखको देखती वह अपने महल को चली गई।

१०. वहां हृदयवल्लभको वातके प्रसंगमें बालचंद्रिकाने कुमारके कुल, नामको वतलाया। इस पर कामदेवके बाणके प्रहारसे व्याकुल-मन हो, विरह-वेदनासे कृष्णपक्षके चन्द्रमाकी कलाकी तरह दिन-दिन दुबली होती, आहार आदि सारे कामको छोड़कर एकान्त महलमें चन्दनरससे प्रक्षालित पल्लवकुसुमोंसे रचित शय्यापर छटपटाती पड़ गई। वहां उस अवस्थाको अनुभव करती, कामाग्निसे संतप्त सुकुमारी कुमारीको देखकर सखियाँ खिन्न हो उसके सिंचन के लिये तैयार किये सुवर्णकलशमें रक्खे हरिचन्दन-खश-कपूर-मिश्रित जलों, ताप हरणके लिये कमलनालके तन्तुके बने वस्त्रों, कमलिनी-पत्रके बने पंखोंको बहुत सा बनाकर उसके शरीरको शीतल करने लगीं।. . .बाल-चन्द्रिकाने उस कोमलांगीको कामज्वरकी चरम अवस्थाको प्राप्त और राजवाहनके सौंदर्यके अधीन-मनवाली, अनन्यशरणा देखकर अपने मनमें सोचा—"मुझे कुमारको जल्दी लाना चाहिये। नहीं तो कामदेव इसे स्मृति-शेष गतिको पहुंचा देगा! उद्यानमें दोनों के परस्पर अवलोकन करते समय कामदेवने एक ही समय (दोनों पर) बाण छोड़ा, इसलिये कुमारका लाना सुकर है।"

११. ततोऽवन्तिसुन्दरीरक्षणाय समयोचितकरणीयचतुरं सखीगणं नियुज्य सा राजकुमारमन्दिरमवाप।... राजवाहनः प्राणेश्वरीमुद्दिश्य सह पुष्पोद्भवेन संलपन्नागतां प्रियवयस्यामालोक्य पादपमूलमन्वेषणीया लतेव बालचन्द्रिकाऽऽगतेति संतुष्टमना निटिलतटमण्डनीभवदम्बुजकोरकाकृतिलसदंजलिपुटां "इतो निषीद" इति निर्दिष्टसमुचितासनासीनामवन्तिसुन्दरीप्रेषितं सकर्पूरं ताम्बूलं विनयेन ददतीं तां कान्तावृत्तान्तमपृच्छत्। तया सविनयमभाणि—"देव, क्रीडावने भवदवलोकनकालमारभ्य मन्मथ-मथ्यमाना पुष्पतल्पादिषु तापशमनमलभमाना वामनेनेवोन्नततरुफमलभ्यं त्वदुरःस्थलालिंगनसौख्यं स्मरान्धतया लिप्सुः सा स्वयमेव पत्रिकामालिख्य 'वल्लभायैनामर्पय' इति मां नियुक्तवती" इति। राजकुमारः पत्रिकां तामादाय पपाठ—

"सुभग कुसुमसुकुमारं जगदनवद्यं विलोक्य ते रूपम्।
मम मानसमभिलषति त्वं चित्तं कुरु तथा मृदुलम्॥" इति।

१२. इति पठित्वा सादरमभाषत—"सखि, छायावन्मामनुवर्तमानस्य पुष्पोद्भवस्य वल्लभा त्वमेव तस्या मृगीदृशो वहिश्चराः प्राणा इव वर्तसे। त्वच्चातुर्यमस्यां क्रियाया मालवालमभूत्। तदखिलं करिष्यामि।..."

(३) साधु तस्करः—

१३. नगरमाविशन्नेव चोपलभ्य लोकवादाल्लुब्धसमृद्धपूर्णं पुरमित्यर्थानां नश्वरत्वं च प्रदर्श्य प्रकृतिस्थानमून्विधास्यन्कर्णीसुतप्रहिते पथि मतिमकरवम्। अनुप्रविश्य च द्यूतसभामक्षधूर्तैः समगंसि। तेषां च पंचविंशति-

११. "नव अवन्तिसुन्दरीकी देखभालके लिये समयानुसार काम करनेमें चतुर सखियोंको नियुक्त कर वह राजकुमारके घरपर पहुंची।. . . प्राणेश्वरीके बारेमें (ही) पुष्पोद्भवके साथ राजवाहन बात कर रहा था। प्रियसखीको आई देखकर पादमूलके अन्वेषणीय लतासी बालचंद्रिका आ गई सोच, मनमें संतुष्ट हुआ। ललाट-तटपर आभूषण बनते कमलकलीके आकारवाले शोभायमान अंजलिपुटको ललाट पर भूषण बनते देख, "यहां बैठो", कह दिखलाकर उचित आसनपर बैठाया। अवन्तिसुन्दरीके भेजे कपूर-सहित ताम्बूलको विनयपूर्वक देती हुई, उससे कुमारने कान्ताका वृत्तान्त पूछा। उसने विनय पूर्वक कहा—"देव, क्रीड़ोद्यानमें आपको देखनेके समयसे ही वह मन्मथसे मथित हो रही है। पुष्प शय्याओंपर तापको शान्त होते न देख, बौनेके समान ऊंचे वृक्षके अलभ्य फलको न पा उसने मुझे भेजा है। कामान्धा होनेसे तुम्हारे वक्षके आलिंगनके सुखको पानेकी इच्छुक उसने 'स्वयं ही प्रियतम को इसे अर्पित करना', कह पत्रिका लिखकर मेरे हाथों भेजी।" राजकुमारने पत्रिकाको लेकर बांचा—

सुन्दर कुसुम से सुकुमार, संसार में निर्दोष, तुम्हारे रूपको देखकर, मेरा मन अभिलाष कर रहा है, तुम (भी) अपने चित्तको वैसा ही मृदुल करो।।

१२. पढ़कर कुमारने आदरपूर्वक कहा—"सखि, छायाकी तरह मेरा अनुगमन करनेवाले पुष्पोद्भवकी प्रिया तू ही उस मृगनयनीकी बाहरी प्राणसी है। तेरी चतुराई इस कार्यलताकी थाला बनी हुई है। सो मैं सब करूंगा।. . .

३. भलामानुस चोर—

१३. नगरमें प्रविष्ट होते ही किंवदन्तियोंसे लोभियों और धनियोंसे नगर पूर्ण है, यह जानकर धनोंका स्वच्छन्द निकाल उन्हें प्रकृतिस्थ बनानेकी इच्छासे (चौर्यार्थ) कर्णीसुतके मार्गपर चलनेका मैंने इरादा किया। मैं जुएकी सभामें प्रवेश कर जुएके धूर्तोंसे

प्रकारासु सर्वासु द्यूताश्रयासु कलासु कौशलमक्षभूमि-
हस्तादिषु चात्यन्तदुरुपलक्ष्याणि कूटकर्माणि तन्मूलानि
चावलेपान्यधिक्षेपवचनानि जीवितनिरपेक्षाणि संरम्भ-
विचेष्टितानि . . . . चान्यानि चानुभवन्न तृप्तिमध्यगच्छम्।
. . . . (एकदा) प्रतिकितवस्तु निर्दहन्निव क्रोधताम्रया दृशा
मामभिवीक्ष्य—"शिक्षयसि रे, द्यूतवर्त्म हासव्याजेन ?
आस्तामयमशिक्षितो वराकः। त्वयैव तावद्विचक्षणेन
देविष्यामि" इति द्यूताध्यक्षानुमत्या व्यत्यषजत्। मया
जितश्चासौ षोडशसहस्राणि दीनाराणाम्। तदर्धं
सभिकाय सभ्येभ्यश्च दत्वाऽर्धं स्वीकृत्योदतिष्ठम्।
उदतिष्ठँश्च तत्र गतानां हर्षगर्भाः प्रशंसालापाः।
प्रार्थयमानसभिकानुरोधाच्च तदगारेऽत्युदारमभ्यवहार-
विधिमकरवम्। यन्मूलश्च मे दुरोदरावतारः स मे
विमर्दको नाम विश्वास्यतरं द्वितीयं हृदयमासीत्।
तन्मुखेन च सारतः कर्मतः शीलतश्च सकलमेव नगर-
मवधार्य धूर्जटिकण्ठकल्माषकालतमे तमसि नीलनिवस-
नार्धोरुकपरिहितो बद्धतीक्ष्णकौक्षेयकः. . . . गत्वा
कस्यचिल्लुब्धेश्वरस्य गृहे संधिं छित्वा सूक्ष्मच्छिद्रालक्षिता-
न्तर्गृहप्रवृत्तिरव्ययो निजगृहमिवानुप्रविश्य नीवीं सा-
रमहतीमादाय निरगाम्।

१४. नीलनीरदनिकरपीवरतमोनिविडितायां राजवीथ्यां
झटिति शतह्रदासंपातमिव क्षणमालोकमलक्षयम्। अथासौ
नगरदेवतेव नगरमोषरोषिता निःसंबाधवेलायां निःसृता
संनिकृष्टा काचिदुन्मिषद्भूषणा युवतिराविरासीत्।
"कासि वासु, क्व यासि ?" इति सदयमुक्ता त्रासगद्-

मिला। उनकी पच्चीस प्रकारकी सभी जूआ-सम्बन्धी कलाओंमें चतुराई, जूयेके मार-हाथ आदि में, और अत्यन्त दुर्लक्ष्य कूट कामों में, उसके कारण होनेवाली साभिमान निन्दा वचनों, प्राणोंकी पर्वाह किये बिना साहसकार्यों. . .और दूसरी (बातों) का तजर्बा करके मैं तृप्त नहीं हुआ।. . .एक बार मेरा विरोधी जुआड़ी क्रोधसे अपनी लाल हुई आंखोंसे जलाता सा मुझे देखकर "क्यों रे, परिहासके बहाने तू जूयेका कायदा सिखलाता है। "रहने दे इस अशिक्षित बेचारेको। तुझ चतुरके ही साथ मैं जूआ खेलूंगा" कहते जूयेके अध्यक्षकी अनुमतिसे मेरे साथ भिड़ गया। मैंने उससे सोलह हजार दीनार जीते। उसका आधा द्यूताध्यक्ष (सभिक) और जुआड़ियोंमें बाँट, आधा लेकर जब मैं उठ खड़ा हुआ, तो वहां अवस्थित लोगोंके भी हर्षयुक्त प्रशंसा-वचन मेरे प्रति उठ खड़े हुये। अधिक अनुरागसे प्रार्थना करनेपर सभिकके घरमें मैंने अत्यंत बढ़िया भोजन किया। जिस आदमी के मुकाबिलेमें जूयेमें मैं उतरा था, वह विमर्दक मेरा अत्यंत विश्वसनीय दूसरा हृदय सा बन गया। उसके मुंहसे सारे नगरके बारे में सार-कर्म-शीलसे जानकर, शंकरके कंठकी कालिमा जैसे अधिक काले, अन्धकार में नीले वस्त्रकी जांघिया पहने तेज छुरा बांधे. . .जाकर मैंने किसी परम लोभीके घरमें सेंध काटी और सूक्ष्म छिद्रसे दिखाई देती गृहके भीतर चीजोंको जान बिना कठिनाईके अपने घरकी तरह प्रवेश कर बहुत धनवाली निधि ले मैं बाहर निकला।

१४. नीले मेघ-समूह जैसे स्थूल अन्धकारसे चुप सड़कपर (पहुंच) तुरन्त बिजलीके गिरनेकी तरह मैंने क्षण भर रोशनी देखी। मानों नगर देवताकी तरह नगरकी चोरीसे रुष्ट हो, सुनसानकी बेलामें निकल चमकते भूषणवाली कोई युवती पास आ प्रकट हुई। "सुन्दरी, तू कौन है, कहां जाती है ?" इस तरह स्वागत पूछनेपर वह भयसे

गद्‌मगादीत्—"आर्य, पुर्यस्यामर्यवर्यः कुबेरदत्तनामा वसति। अस्म्यहं तस्य कन्या। मां जातमात्रां धनमित्र-नाम्नेऽत्रत्यायैव कस्मैचिदिभ्यकुमारायान्वजानाद् भार्यां मे पिता। स पुनरस्मिन्नत्युदारतया पित्रोरन्ते वित्तैर्निजैः क्रीत्वेवार्थिवर्गाद् दारिद्र्यं दरिद्रति सत्यथोदारक इति च प्रीतलोकाधिरोपितापरश्लाघ्यनामनि वरयत्येव तस्मिन्मां तरुणीभूतामवन इति विदित्वार्थपतिनाम्ने कस्मै-चिदितरस्मै यथार्थनाम्ने सार्थवाहाय दित्सति मे पिता। तदमंगलमद्य किल प्रभाते भावीति ज्ञात्वा प्रागेव प्रिय-तमदत्तसंकेता वंचितस्वजना निर्गत्याबाल्याभ्यस्तेन वर्त्मना मन्मथाभिसरा तदगारमभिसरामि, तन्मां मुंच। गृहाणैतद् भाण्डं" इत्युन्मुच्य मह्यमर्पितवती।

१५. दयमानश्चाहमब्रवम्—"एहि साध्वि, त्वां नयेयं त्वत्प्रियावसथम्" इति त्रिचतुराणि पदान्युदचलम्। आपतच्च दीपिकालोकपरिलुप्यमानतिमिरभारं यष्टि-कृपाणपाणि नागरिकबलमनल्पम्। दृष्ट्वैव प्रवेपमानां कन्यकामवदम्—"भद्रे, मा भैषीः। अस्त्ययमसिद्वितीयो मे बाहुः। अपि तु मृदुरयमुपायस्त्वदपेक्षया चिंतितः। शयेऽहं भावितविषवेगविक्रियः। त्वयाप्यमी वाच्याः निशि वयमिमां पुरीं प्रविष्टाः। दष्टश्च ममैष नायको दर्वीकरेणामुष्मिन्सभागृहकोणे। यदि वः कश्चिन्मंत्रवित् कृपालुः स एनमुज्जीवयन्मम प्राणानाहरेदनाथायाः" इति। सापि बाला गत्यन्तराभावाद् भयगद्‌गदस्वरा बाष्पदुर्दिनाक्षी बद्धवेपथुः कथंकथमपि गत्वा मदुक्त-मन्वतिष्ठत्। अशयिषि चाहं भावितविषविक्रियः।

गदगद होकर बोली---"आर्य, इस पुरीमें वैश्यश्रेष्ठ **कुबेरदत्त** रहते हैं। मैं उनकी कन्या हूं। जन्मते ही मुझे यहींके **धनमित्र** नामक एक धनिक-कुमारकी पत्नी बनाना मेरे पिताने मान लिया। किन्तु वह मां-बापके मरनेपर अति उदारताके कारण अपने धनसे याचकों की दरिद्रता खरीदकर दरिद्र हो गया। तब प्रसन्न लोगों द्वारा दिये गये **"उदारक"** इस दूसरे श्लाघ्य नामवालेको वरण करनेकी इच्छा रखती भी मुझ तरुणीको उस निर्धनको न दे अर्थपति नामक एक दूसरे यथार्थ नामवाले सार्थवाहको मेरा पिता देना चाहता है। यह अमंगल आज सवेरे होनेवाला है, यह जानकर पहले ही प्रियतमके दिये संकेतके अनुसार स्वजनोंको छोड़ घरसे निकलकर बचपनसे ही परिचित मार्ग द्वारा मन्मथका अनुगमन करती प्रिय के घर जा रही हूं। सो मुझे छोड़ दो। इस धनको ले लो।" यह कहकर उसने खोलकर आभूषण मुझे दे दिये।

१५. तब दयार्द्र हो---"आ साध्वि, तुझे तेरे प्रियके घर ले चलता हूं।" यह कह मैं तीन चार पग चला। इसी समय मशालके आलोकसे अन्धकारको लुप्त करती लाठी-तलवार हाथमें लिये नागरिकोंकी भारी सेना आ गई। देखते ही कांपती उस कन्यासे मैंने कहा--- "भद्रे, डर मत। तलवारके साथ यह मेरी भुजा (मौजूद) है। तो भी तेरे कारण मैंने यह मृदु उपाय सोचा है। मैं विष-विकारका अभिनय करते लेट जाता हूं, तू इनसे कहना---रातको हम इस नगरीमें आये। उस सभागृह के कोने पर मेरे इन स्वामीको सांपने काट लिया। यदि आपमेंसे कोई दयालु मन्त्र जानने-वाला हो, तो इन्हें उज्जीवित करके मुझ अनाथाके प्राणोंको लौटा दे।" उस बालाने और उपाय न होनेसे भयसे गद्गद स्वरवाली, आंसुओंका [illegible] धारा बहाती, कांपती जैसे-तैसे भी मेरे कहे

तेषु कश्चिन्नरेन्द्राभिमानी मां निर्वर्ण्य मुद्रातंत्रमंत्रध्यानादिभिश्चोपक्रम्याकृतार्थः "गत एवायं कालदष्टः। तथाहि स्तब्धश्यावमंगं, रुद्धा दृष्टिः, शान्ता एवोष्मा। शुचाऽलं वासु। श्वोऽग्निसात्करिष्यामः, कोऽतिवर्त्तेत दैवं" इति सहेतरैः प्रायात्।

१६. उत्थितश्चाहमुदारकाय तां नीत्वाऽब्रवम्—"अहमस्मि कोऽपि तस्करः। त्वद्गतेनैव चेतसा सहायभूतेन त्वामिमामभिसरन्तीमन्तरोपलभ्य कृपया त्वत्समीपमनैषम्। भूषणमिदमस्याः" इत्यंशुपटलपाटितध्वान्तजालं तदप्यर्पितवान्। उदारकस्तु तदादाय सलज्जं च सहर्षं च ससंभ्रमं च मामभाषत—"आर्य, त्वयैवेयमस्यां निशि प्रिया मे दत्ता, वाक्पुनर्मभापहृता। तथा हि न जाने वक्तुं त्वत्कर्मैतदद्भुतमिति, न ते स्वशीलमद्भुतवत्प्रतिभाति। नैवमन्येनापि कृतपूर्वमिति प्रतिनियतैव वस्तुशक्तिः। न हि त्वय्यन्यदीया लोभादयः। त्वयाद्य साधुतोन्मीलितेति तत्प्रायस्त्वत्पूर्वविदानेभ्यो न रोचते। दृष्टमिदानीमौदार्यस्य स्वरूपमिति त्वदाशयमननुमान्य न युक्तो निश्चयः। त्वयामुना सुवृत्तेन क्रीतोऽयं दासजन इत्यसारमतिगरीयसा क्रीणासीति स ते प्रज्ञाविक्षेपः। प्रियादानस्य प्रतिदानमिदं शरीरमिति तदलाभे निधनोन्मुखमिदमपि त्वयैव दत्तम्। अथवैतावदत्र प्राप्तरूपम्। अद्यप्रभृति भर्तव्योऽयं दासजनः" इति मम पादयोरपतत्।

मुताबिक किया। और मैं विष-विकारका अभिनय करते लेट गया। उनमेंसे कोई मंत्रज्ञ-अभिमानी मुझे देखकर मुद्रा-तन्त्र-मन्त्र-ध्यान आदिका उपयोग करके निष्फल हो "कालने डसा है, यह चल बसा, क्योंकि, इसके शरीरने कालिमा पकड़ ली है, दृष्टि निश्चेष्ट, (शरीर की) गर्मी भी शांत है। सुन्दरी, शोक करना बेकार है, कल हम इसे अग्निसात् करेंगे। दैवको कौन रोक सकता है" कह दूसरोंके साथ चला गया।

१६. उठकर उसे उदारकके पास ले जाकर मैं बोला—"मैं एक चोर हूं। तुम्हारे ऊपर लगे (अपने) चित्तरूपी सहायताके साथ तुम्हारे पास अभिसार करती बीचमें पाकर मैं कृपासे इसे तुम्हारे पास लाया हूँ। यह इसके भूषण हैं," और कपड़ों की तहसे अन्धकार-जालको फाड़ते आभूषणको दे दिया। उदारकने उसे लेकर लज्जा और हर्षके साथ आश्चर्यसे मुझसे कहा—"आर्य, तुमने ही इस रातमें मेरी प्रिया दी, (पर) मेरी वाणीका अपहरण कर लिया। तुम्हारे ऐसे अद्भुत कर्मके बारेमें क्या कहूं, यह समझ नहीं पाता। तुम्हारा आचरण अद्भुत ही नहीं प्रतीत होता, बल्कि दूसरे किसीने भी पहले कभी ऐसा नहीं किया। हरेक वस्तुकी अपनी निजी शक्ति होती है। तुम्हारे भीतर दूसरों जैसे लोभ आदि नहीं हैं। तुमने आज साधुताका उद्घाटन किया। यह पहलेके किये गये सुचरितोंके समान नहीं है। मैंने इस वक्त उदारताके स्वरूपको देखा। इसलिये तुम्हारी बात को मानकर निश्चय करना ठीक नहीं है। तुमने इस सुकर्मसे इस दासजनको, मुझ जैसे निस्सार बुद्धिवालेको बड़े दामपर खरीदा, यह (कहना) तुम्हारी प्रज्ञाका अपमान नहीं है। प्रियाके दानका प्रतिदान है यह मेरा शरीर, जो उसकी प्राप्तिके बिना नष्ट होनेवाला (ही) था, इसे भी तुम्हींने दिया। अथवा यहां इतना ही कहना उचित है, कि अबसे इस दासजनको तुम स्मरण करना" यह कहकर वह मेरे पैरोंमें गिर पड़ा।

१७. उत्थाप्य चैनमुरसोपश्लिष्याभाषिषि—"भद्र, कास्य ते प्रतिपत्तिः" इति। सोऽभ्यधत्त—"न शक्नोमि चैनामत्र पित्रोरनभ्यनुज्ञयोपयम्य जीवितुम्। अतोऽस्यामेव यामिन्यां देशमिमं जिहासामि, को वाहम्, यथा त्वमाज्ञापयसि" इति।

१८. अथ मयोक्तम्—"अस्त्वेतत्। स्वदेशो देशान्तरमिति नेयं गणना विदग्धस्य पुरुषस्य। किंतु बालेयमनल्पसौकुमार्या। कष्टाः प्रत्यवायभूयिष्ठाश्च कान्तारपथाः। शैथिल्यमिव किंचित्प्रज्ञासत्त्वयोरनर्थेनेदृशेन देशत्यागेन संभाव्यते। तत्सहानया सुखमिहैव वस्तव्यम्। एहि, नयावैनां स्वमवावासं" इति

१९. अविचारानुमतेन तेन सद्य एवैनां तद्गृहमुपनीय तयैवापसर्पभूतया तत्र मृद्भाण्डावशेषमचोरयाव।

२०. ततो निष्पत्य क्वचिन्मुषितकं निधाय समुच्चलन्तो नागरिकसम्पाते मार्गपार्श्वशायिनं कंचिन्मत्तवारणमुपरिपुरुषमाक्रम्याध्यारोहाव। ग्रैवेयप्रोतपादयुगलेन च मयोत्थाप्यमान एव पातिताधोरणपृथुलोरःस्थलपरिणतः पुरीतल्लतापरीतदन्तकाण्डः स रक्षिकबलमाहिणोत्। अध्वंसयाव चामुनैवार्थपतिभवनम्। अपवाह्य च क्वचन जीर्णोद्याने शाखाग्राहिकया चावातराव। स्वगृहगतौ च स्नातौ शयनमध्यशिश्रियाव।...

—उत्तरपीठिका, उच्छ्वासः २

१७. उसे उठा छातीसे लगाकर मैंने कहा—"भद्र, अब तुम्हें क्या करना है?"

उसने कहा—"माता-पिताकी अनुमतिके बिना इसके साथ ब्याह करके मैं यहां नहीं रह सकता, इसलिये इसी रात इस देशको छोड़ देना चाहता हूं। पर मैं क्या हूं, जैसी तुम आज्ञा दो।"

१८. मैंने कहा—"रहने दो इस (बात) को। अपना देश और परदेश यह चतुर पुरुष नहीं गिनता, किन्तु, यह बाला अत्यन्त सुकुमारी है। जंगलके रास्ते कष्टकर और बहुत संकटापन्न होते हैं। अनर्थकर देश-परित्यागसे तुम्हारी बुद्धि और साहसकी कुछ शिथिलताका पता लगता है। सो इसके साथ सुखसे यहीं रहो। आओ इसे इसके घर ले चलते हैं।"

१९. बिना विचार किये ही सहमत कर तुरन्त उसे, हमने उसके घर पहुंचाया, फिर उसीको भेदिया बना मिट्टीके बरतन भर छोड़कर हम दोनोंने (उस घरका) सब कुछ चुरा लिया।

२०. तब (वहां से) निकलकर किसी जगह चोरीके धनको रखकर चलते हुये नागरिकोंकी भीड़में (हो), रास्तेकी बगलमें सोये फीलवानको हटाकर एक मस्त हाथीपर हम दोनों चढ़ गये। गर्दनकी रस्सीमें फंसाये अपने दोनों पैरोंसे मेरे द्वारा उठाये जानेपर नीचे गिराये हाथीवानके मोटे वक्षस्थल पर तिरछे दन्तके प्रहारसे आंतसे लिपटे दांतोंवाले गजने रक्षियोंकी सेनाको ध्वस्त कर दिया। उसी गजसे हम दोनोंने अर्थपतिके घरको नष्ट कराया। (नगरसे) बाहर जा किसी पुराने उद्यानमें डाली पकड़कर हम दोनों उतर गये। फिर अपने घरमें जा नहाकर बिस्तरेपर सो गये।

—उत्तरपीठिका, उच्छ्वास २

(४) दुहिता अम्बालिका—

२१. अहं च गत्वा श्रावस्तीमध्वश्रान्तो बाह्योद्याने लतामण्डपे शयितोऽस्मि। हंसरवप्रबोधितश्चोत्थाय कामपि क्वणितनूपुरमुखराभ्यां चरणाभ्यां मदन्तकमुपसरन्तीं युवतीमद्राक्षम्। सा त्वागत्य स्वहस्तवर्तिनि चित्रपटे लिखितं मत्सदृशं कमपि पुंरूपं मां च पर्यायेण निर्वर्णयन्ती सविस्मयं सवितर्कं सहर्षं च क्षणमवातिष्ठत्। मयापि तत्र चित्रपटे मत्सादृश्यं पश्यता तद्दृष्टिचेष्टितमनाकस्मिकं मन्यमानेन "ननु सर्वसाधारणोऽयं रमणीयः पुण्यारामभूमिभागः किमिति चिरस्थितिक्लेशोऽनुभूयते। ननूपवेष्टव्यम्" इत्यभिहिता।

२२. सा सस्मितं "अनुगृहीतास्मि" इति न्यषीदत्।

२३. संकथा च देशवार्तानुबिद्धा काचनावयोरभूत्। कथासंश्रिता च सा "देशातिथिरसि, दृश्यन्ते च तेऽध्वश्रान्तानीव गात्राणि। यदि न दोषो मद्गृहेऽद्य विश्रमितुमनुग्रहः क्रियतां" इत्यशंसत्।

२४. अहं च "अयि मुग्धे, नैष दोषः, गुण एव" इति तदनुमार्गगामी तद्गृहे राजार्हेण स्नानभोजनादिनोपचरितः, सुखं निषण्णो रहसि पर्यपृच्छ्ये—"महाभाग, दिगन्तराणि भ्रमता कच्चिदस्ति किंचिदद्भुतं भवतोपलब्धम्" इति। ममाभवन्मनसि "महदिदमाशास्पदम्। एषा खलु निखिलपरिजनसंबाधासंलक्षितायाः सखी राजदारिकायाः। चित्रपटे चास्मिन्नपि तदुपरि विरचितसितवितानं हर्म्यतलम्, तद्गतं च प्रकामविस्तीर्णं शरदभ्रपटलपाण्डरं शयनं, तदधिशायिनी च निद्रालीढलोचना ममैवेयं प्रतिकृतिः। अतो नूनमनंगेन सापि सखीनिर्बन्धपृष्ठविक्रियानिमित्ता चालुर्येणैतद्रूपनिर्माणेनैव समर्थमुत्तरं दत्तवती। रूपसंवादाच्च संशयादनया पृष्टो भिन्द्यामस्याः संशयं यथानुभवकथनेन" इति जातनिश्चयोऽब्रवम्।

४. बेटी दामाद हो गई—

२१. मैं श्रावस्ती जाकर रास्तेका थका नगरके बाहरवाले उद्यानमें लता-मंडपके भीतर सोया था। हंसकी आवाजसे जगकर मैंने रुनझुन करते नूपुर सहित चरणोंवाली पास आती किसी युवतीको देखा। आकर अपने हाथमें रक्खे चित्रपटमें लिखित मेरे समान किसी पुरुष-आकृति और मुझे अच्छी तरह देखती आश्चर्य-वितर्क-हर्षके साथ क्षण भर वह खड़ी रही। मैंने भी चित्रपटमें मेरे सादृश्यको देख उसके देखने को आकस्मिक न समझकर कहा—"क्यों, यह पवित्र आरामका रमणीय भूभाग तो सार्वजनिक चीज है, फिर क्यों देर तक खड़े रहनेके क्लेशको सह रही हो, बैठ जाओ ना।"

२२. मुस्कुराते हुये—"अनुगृहीता हूं" कह वह बैठ गई।

२३. फिर हम दोनोंके बीच देशके सम्बन्धमें कुछ बात हुई। बातके सिल-सिलेमें उसने कहा—"तुम हमारे देशके अतिथि हो। तुम्हारा शरीर यात्रासे थका सा दिखाई पड़ता है। अगर दोष न हो, तो आज मेरे घरमें विश्राम करनेका अनुग्रह करें।"

२४. मैं—"अयि मुग्धे, यह दोष नहीं, गुण ही है" कह उसके पीछे-पीछे उसके घर गया। वहां राजसी स्नान-भोजन आदि सेवन करके सुखपूर्वक बैठने पर एकान्तमें उसने मुझसे पूछा—"महाभाग, दिशाओं में घूमते हुये कौन कौन अद्भुत वस्तु आपने पाई?" मेरे मनमें हुआ—"यह बड़ी (शुभ) आशाकी बात है। यह राजकन्याके सारे परिजनोंमें देखी-सुनी सखी हैं। इस चित्रपटमें भी ऊपर सफेद चंदवा लगे महलकी छत और उसके भीतर काफी विस्तीर्ण शरद्के मेघोंसी उजली शय्या, और उसपर सोती निद्रा-विलीन नेत्रोंवाली मेरी ही यह छवि है। इसलिये निश्चय ही कामदेवने उस राजकन्याको भी वैसी ही अवस्थामें पहुंचा दिया है। असह्य कामज्वरकी पीड़ासे पागल हो, सखी द्वारा आग्रहपूर्वक पूछने पर अस्वास्थ्य-कारणका सार्थक उत्तर चतुराईसे इस चित्रके निर्माण द्वारा ही राजकन्याने दिया। चित्रकी समानता के संबंधमें यह पूछ-ताछ कर अपने अनुभवके कथनसे इसके संदेहको तोड़ूँ" यह सोच निश्चय करके मैंने कहा—

२५. "भद्रे, देहि चित्रपटं" इति। सा त्वर्पितवती मद्धस्ते। पुनस्तमादाय तामपि व्याजसुप्तामुल्लसन्मदनरागविह्वलां वल्लभां तत्रैवाभिलिख्य "काचिदेवंभूता युवतिरीदृशस्य पुंसः पार्श्वशायिन्यरण्यानीप्रसुप्तेन मयोपलब्धा किलैष स्वप्नः" इत्यालपं च।

२६. हृष्टया तु तया विस्तरतः पृष्टः सर्वमेव वृत्तान्तमकथयम्। असौ च सख्या मन्निमित्तान्यवस्थान्तराण्यवर्णयत्। तदाकर्ण्य च "यदि तव सख्या मदनुग्रहोन्मुखं मानसं, गमय कानिचिदहानि। कमपि कन्यापुरे निराशंकनिवासकारणमुपायमारचय्यागमिष्यामि" इति कथंचिदेनामभ्युपगमय्य गत्वा तदेव खर्वटं वृद्धविटेन समगंसि। ससंभ्रमं सोऽपि विश्रमय्य तथैव स्नानभोजनादि कारयित्वा रहस्यमपृच्छत्—"आर्य, कस्य हेतोरचिरेणैव प्रत्यागतोऽसि"।

२७. प्रत्यवादिषमेनं—"स्थान एवाहमार्येणास्मि पृष्टः। श्रूयताम्। अस्ति हि श्रावस्ती नाम नगरी। तस्याः पतिरपर इव धर्मपुत्रो धर्मवर्धनो नाम राजा। तस्य दुहिता प्रत्यादेश इव श्रियः, प्राणा इव कुसुमधन्वनः, सौकुमार्यविडम्बितनवमालिका नवमालिका नाम कन्यका। सा मया समापत्तिदृष्टा कामनाराचपंक्तिमिव कटाक्षमालां मम मर्माणि व्यकिरत्। तच्छल्योद्धरणाक्षमश्च धन्वन्तरिसदृशस्त्वदृते नेतरोऽस्ति वैद्य इति प्रत्यागतोऽस्मि। तत्प्रसीद कंचिदुपायमाचरितुम्। अयमहं परिवर्तितस्त्रीवेषस्ते कन्या नाम भवेयम्। अनुगतश्च मया त्वमुपगम्य धर्मासनगतं धर्मवर्धनं वक्ष्यसि—"ममेयमेकैव दुहिता। अनुगतश्च मे जातमात्रायां त्वस्यां जनन्यस्याः प्रस्थिता। माता च पिता च भूत्वाहमेव व्यव-

२५. "भद्रे, (जरा) चित्रपटको दो तो।" उसने उसे मेरे हाथमें दे दिया फिर उसे लेकर बहाना बना उल्लसित मदनके रागसे बिकल सोई उस वल्लभाको भी वहीं चित्रित कर मैंने कहा—"मैंने एक ऐसी युवतीको ऐसे पुरुषकी बगलमें लेटी जंगलमें निद्रित पाया। यह स्वप्न था।"

२६. पूछनेपर हर्षित होकर विस्तारके साथ मैंने सारे वृत्तान्तको कह दिया। उसने (भी) मेरे कारण अपनी सखीकी हुई अवस्थाको बतलाया। उसको सुनकर मैंने कहा, "यदि तेरी सखीका मन मेरे ऊपर अनुग्रह करना चाहता है, तो कुछ दिन (ऐसे ही) बितावे। मैं कन्याके अन्तःपुरमें निःशंक निवासके लिये उपाय करके आऊंगा।" इस प्रकार किसी तरह उसे समझा-बुझाकर मैं उसी वणिक्-पथपर जा वृद्ध वेश्याभिलाषीसे जा कर मिला। उसने भी विश्राम करा वैसे ही स्नान-भोजनादि कराकर एकान्तमें मुझसे पूछा—"आर्य, किस कारण बड़ी जल्दी लौट आये?"

२७. मैंने जवाब दिया—"ठीक ही आर्यने पूछा। सुनिये, **श्रावस्ती** नामक नगरी है। उसका पति दूसरा धर्मपुत्र (युधिष्ठिर) **धर्मवर्धन** नामक राजा है। उसकी दुहिता लक्ष्मीका प्रत्याख्यान सी, कामदेवके प्राणोंसी, सुकुमारतामें नवमालिका (चमेली) को दूर फेंकनेवाली **नवमालिका** नामक है। उसने अकस्मात् देखे जानेपर कामके बाणोंकी पांतीकी तरह कटाक्षोंकी माला मेरे हृदय पर फेंकी। उस शल्यको निकालनेमें असमर्थ हो 'धन्वन्तरि समान तुम्हारे बिना दूसरा वैद्य नहीं है,' यह सोचकर लौट कर आया हूं। सो कृपा करके कोई उपाय करें। मैं स्त्रीभेस बदलकर तुम्हारी कन्या बनता हूं। मेरे पीछे-पीछे तुम चलकर धर्मासनपर बैठे धर्मवर्धनसे कहना—'मेरी यह एक ही दुहिता है। जन्मते ही इसकी माता मर गई। मैंने ही माता और पिता होकर इसका पालन-पोषण किया। इसके

र्धयम् । एतदर्थमेव विद्यामयं शुल्कमर्जितुं गतोऽभूदवन्ति-नगरीमुज्जयिनीमस्मद्वैवाह्यकुलजः कोऽपि विप्रदारकः । तस्मै चेयमनुमता दातुमितरस्मै न योग्या । तरुणीभूता चेयम् । स च विलम्बितः । तेन तमानीय पाणिमस्या ग्राहयित्वा तस्मिन् न्यस्तभारः संन्यसिष्ये । दुरभिरक्षतया तु दुहितृणां मुक्तशैशवानां, विशेषतश्चामातृकाणां इह देवं मातृपितृस्थानीयं प्रजानामापन्नशरणमागतोऽस्मि । यदि वृद्धं ब्राह्मणमधीतिनमगतिमतिथिं च मामनुग्राह्यपक्षे गणयत्यादिराजचरितधुर्यो देवः, सैषा भवद्भुजतरुच्छायामखण्डितचारित्रा तावदध्यास्तां यावदस्याः पाणिग्राहकमानयेयम्" इति ।

२८. स एवमुक्तो नियतमभिमनायमानः स्वदुहितृसंनिधौ मां वासयिष्यति । गतस्तु भवानागामिनि मासि फाल्गुणे फल्गुणीषूत्तरासु राजान्तःपुरजनस्य तीर्थयात्रोत्सवो भविष्यति । तीर्थस्थानात्प्राच्यां दिशि गोरुतान्तरमतिक्रम्य, वानीरवलयमध्यवर्तिनि कार्त्तिकेयगृहे करतलगतेन शुक्लांबरयुगलेन स्थास्यसि । स खल्वहमनभिशंक एवैतावन्तं कालं सहाभिविहृत्य राजकन्यया भूयस्तस्मिन्नुत्सवे । पुनस्त्वदुपहृते वाससी परिधायापनीतदारिकावेषो जामाता नाम भूत्वा त्वामेवानुगच्छेयम् । नृपात्मजा तु मामितस्ततोन्विष्यानासादयन्ती "तया विना न भोक्ष्ये" इति रुदन्त्येवावरोधने स्थास्यसि । तन्मूले च महति कोलाहले, क्रन्दत्सु परिजनेषु, रुदत्सु सखीजनेषु, शोचत्सु पौरजनेषु, किंकर्तव्यतामूढे सामात्ये पार्थिवे, त्वमास्थानीमेत्य मां स्थापयित्वा वक्ष्यसि—

लिये ही विद्यारूपी कन्या-शुल्क अर्जित करनेके लिये हमारे विवाह करने योग्य कुलमें उत्पन्न एक ब्राह्मण कुमार अवन्ती देशकी नगरी उज्जयिनीमें गया। उसे इसे देनेका वचन दे दूसरेको देना ठीक नहीं है। यह अब तरुणी हो गई है, और वह विलम्ब कर रहा है। इसलिये उसे लाकर इसका पाणिग्रहण करा उसके ऊपर भार छोड़ मैं संन्यास लेना चाहता हूं। शैशव छोड़ (आगे बढ़ी) विशेषकर बिना माताकी लड़कियोंकी रक्षा कठिन है, यह सोच प्रजाके माता-पिता जैसे महाराजको जानकर मैं शरणमें आया हूं। यदि इस वेदपाठी निरवलम्ब अतिथि वृद्ध ब्राह्मणको, मनुके चरित्रको धारण करनेवाले महाराज आप अनुग्रह-योग्य समझते हैं, तो यह (मेरी कन्या) आपके भुजरूपी वृक्षकी छायामें अखंडित-चरित्रवाली हो तब तक रहे, जब तक कि मैं इसके पाणिग्रहण करनेवालेको ले आता हूं।"

२८. वह ऐसा कहनेपर निश्चय ही मुझे अपनी लड़कीके पास रहनेके लिये भेजेगा। आगामी फागुन मासकी उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें राजाकी अन्तःपुरिकाओंका तीर्थ-मेला होगा। तीर्थ (नदीके घाट) से पूर्व दिशामें एक गव्यूति (दो कोस) दूर बेंतकी लताके बीच स्थित कार्तिकेयके मन्दिरमें दो सफेद वस्त्र हाथमें लेकर तुम रहना। इतने समय तक निर्भय हो राजकन्याके साथ विहार करके, उस मेले में गंगा-जल-विहारमें कन्याओंके लगी रहते समय, मैं डूबकर तुम्हारे पास आ ऊपर उठूंगा। फिर तुम्हारे लाये दोनों वस्त्रोंको पहनकर कन्याके भेसको छोड़ पामाद बनकर तुम्हारे पीछे-पीछे चलूंगा। राजकन्या मेरे लिये इधर-उधर ढूंढकर मुझे न पा—"उनके बिना खाना नहीं खाऊंगी" कहती अन्तःपुरमें रोती रहेगी। उसके कारण महान् कोलाहल होगा, परिजनोंमें क्रन्दन मचेगा, दासियां रोयेंगी, पुरवासी शोक करेंगे, अमात्य-सहित राजा किंकर्तव्यविमूढ़ हो जायेगा, उस समय तुम दरबारमें पहुंचकर मुझे सामने रखकर कहना—

२९. "देव, स एष मे जामाता तवार्हति श्रीभुजाराधनम्। अधीती चतुर्ष्वाम्नायेषु, गृहीती षट्स्वङ्गेषु, आन्वीक्षिकीविचक्षणः चतुःषष्टिकलागमप्रयोगचतुरः, विशेषेण गजरथतुरंगतन्त्रवित् इष्वसनास्त्रकर्मणि गदायुद्धे च निरुपमः, पुराणेतिहासकुशलः, कर्ता काव्यनाटकाख्यायिकानाम्, वेत्ता सोपनिषदोऽर्थशास्त्रस्य, निर्मत्सरो गुणेषु, विश्रम्भी सुहृत्सु, शक्तः, संविभागशीलः, श्रुतधरः गतस्मयश्च। नास्य दोषमणीयांसमप्युपलभे। न च गुणेष्वविद्यमानम्। तन्मादृशस्य ब्राह्मणमात्रस्य न लभ्य एव सम्बन्धी। दुहितरमस्मै समर्प्य वार्धकोचितमन्त्यमाश्रमं संक्रमेयं, यदि देवः साधु मन्यत" इति।

३०. स इदमाकर्ण्य वैवर्ण्याक्रान्तवक्त्रः परमुपगतो वैलक्ष्यमारप्स्यतेऽनुतुमनित्यतादिसंकीर्तनेनात्रभवन्तं मन्त्रिभिः सह। त्वं तु तेषामदत्तश्रोत्रो मुक्तकण्ठं रुदित्वा चिरस्य बाष्पाकुण्ठकण्ठः काष्ठान्याहृत्याग्निं संधुक्ष्य राजमन्दिरद्वारे चिताधिरोहणायोपक्रमिष्यते। स तावदेव त्वत्पादयोर्निपत्य समागत्य नरपतिरनूनैरर्थैस्त्वामुपच्छन्द्य दुहितरं मह्यं दत्वा मद्योग्यतासमाराधितः समस्तमेव राज्यभारं मयि समर्पयिष्यति। सोऽयमभ्युपायोऽनुष्ठेयो यदि तुभ्यं रोचते इति।

३१. सोऽपि पटुविटानामग्रणीरसकृदभ्यस्तकपटप्रपंचः पांचालशर्मा यथोक्तमभ्यधिकं च निपुणमुपक्रान्तवान्। आसीच्च मम समीहितानामहीनकालसिद्धिः। अन्वभवं च मधुकर इव नवमल्लिकामार्द्रसुमनसम्।

—उ० उ० ५

२९. "देव, यह मेरा दामाद आपके श्रीभुजकी पूजाके योग्य है। चारों वेदोंको पढ़े, छहों अंगोंको ग्रहण किये, न्यायशास्त्रमें विचक्षण, चौंसठ कलाओंके प्रयोगमें चतुर, विशेषकर गज-रथ-तुरंगकी, शास्त्रोंका वेत्ता, बाण-हथियारके काममें, गदा-युद्धमें अनुपम, पुराण-इतिहासमें कुशल, काव्य-नाटक-आख्यायिकाका रचयिता, रहस्य-सहित अर्थ-शास्त्रका वेत्ता, गुणोंमें ईर्ष्या न करनेवाला, मित्रोंका भक्त, मधुर-भाषी, बाँटकर भोग करनेवाला, तीव्र स्मृतिवाला, गर्व-रहित तरुण है। इसमें मैं अणुमात्र भी दोष नहीं पाता, न गुणोंमें से किसीको अविद्यमान। सो मेरे जैसे (साधनहीन) केवल ब्राह्मण मात्र व्यक्तिको ऐसा सम्बन्धी प्राप्य नहीं हो सकता। इसे अपनी कन्या समर्पित कर बुढ़ापेके लिये उचित चौथे अन्तिम आश्रम (संन्यास) में चला जाना चाहता हूं, यदि महाराज इसे ठीक मानते हैं।"

३०. फिर यह सुनकर फीके पड़े मुंह से वह अत्यन्त लज्जित हो संसारकी अनित्यता आदि कहकर मंत्रियों सहित तुम्हें समझानेकी कोशिश करेगा। फिर तुम उनकी बातों पर कान न दे मुक्तकंठ देरतक रोकर आंसुओंके मारे बैठ गये गलेवाले हो, राजमहलके फाटकपर काष्ठ जमा कर आग जला चितापर बैठनेका प्रयत्न करना। तब अमात्यों सहित राजा अवश्य तुम्हारे पैरोंमें गिरकर धन से तुम्हें सान्त्वना दे, मुझे अपनी लड़की दे, मेरी योग्यतासे प्रसन्न हो सारे राज्यके भारको मेरे ऊपर समर्पित करेगा। यह उपाय करना है, अगर तुम्हें पसन्द हो।"

३१. उस धूर्त-श्रेष्ठ पंचालशर्माको अनेक बार कपट-प्रपंच करनेका अभ्यास था। मैंने जैसा कहा, उससे भी अधिक अच्छी तरह उसने किया। थोड़े ही कालमें मेरे मनोरथ सिद्ध हो गये। भंवरेकी तरह नवमा-लिका (चमेली) के ताजे फूलोंका मैंने उपभोग किया।

—उ० उ० ५

(५) राजनीतिः—

३२. दिव्यं हि चक्षुर्भूतभवद्भविष्यत्सु व्यवहितविप्रकृष्टादिषु च विषयेषु शास्त्रं नामाप्रतिहतवृत्ति। तेन हीनः सतोऽप्यायतविशालयोर्लोचनयोरन्ध एव जन्तुरर्थदर्शनेष्वसामर्थ्यात्। अतो विहाय बाह्यविद्यास्वभिषंगमागमय दण्डनीतिं कुलविद्याम्। तदर्थानुष्ठानेन चावर्जितशक्तिसिद्धिरस्खलितशासनः "शाधि चिरमुदधिमेखलामुर्वीम्" इति।

३३. एतदाकर्ण्य "स्थान एव गुरुभिरनुशिष्टम्। तथा क्रियते" इत्यन्तःपुरमविशत्। तां च वार्तां पार्थिवेन प्रमदासंनिधौ प्रसंगेनोदीरितामुपनिशम्य समीपोपविष्टश्चित्तानुवृत्तिकुशलः प्रसादवित्तो गीतनृत्यवाद्यादिष्वसाह्यो बाह्यनारीपरायणः पटुरयंत्रितमुखो बहुभंगिविशारदः परममन्त्रिषणपरः परिहासयिता परिवादरुचिः पैशुन्यपण्डितः सचिवमण्डलादप्युत्कोचहारी सकलदुर्नयोपाध्यायः कामतंत्रकर्णधारः कुमारसेवको विहारभद्रो नाम स्मितपूर्वं व्यज्ञापयत्—

३४. "देव, दैवानुग्रहेण यदि कश्चिद् भाजनं भवति विभूतेः, तमकस्मादुच्चावचैरुपप्रलोभनैः कदर्थयन्तः स्वार्थं साधयन्ति धूर्ताः। तथाहि केचित्प्रेयः किल लभ्यैरभ्युदयातिशयैराशामुत्पाद्य, मुण्डयित्वा शिरः, बद्ध्वा दर्भरज्जुभिः, अजिनेनाच्छाद्य, नवनीतेनोपलिप्य, अनशनं च शाययित्वा सर्वस्वं स्वीकरिष्यन्ति। तेभ्योऽपि घोरतराः पाषण्डिनः पुत्रदारशरीरजीवितान्यपि मोचयन्ति। यदि कश्चित्पटुजातीयो नास्यै मृगतृष्णिकायै हस्तगतं त्यक्तुमिच्छेत्। तमन्ये परिवार्याहुः—

५. राजनीति—

३२. भूत और भविष्यत् कालमें दूर और नजदीकके विषयोंमें अव्याहत-गति रखनेवाला शास्त्र दिव्यचक्षु है। उसके बिना दीर्घ विशाल लोचनोंके रहते भी पदार्थके दर्शनमें असमर्थ होनेसे प्राणी अन्ध ही है। इसलिये बाहरी विषयों में आसक्ति छोड़ कुलकी विद्या दण्डनीति (राजनीति) को सीखो। उसकी बातोंके प्रयोग द्वारा अपनेमें शक्ति सिद्ध कर स्थायी शासनवाले बन-समुद्रमेखला पृथिवीका शासन चिरकालतक करो।

३३. यह सुनकर "गुरुजनने ठीक ही शिक्षा दी, मैं वैसा ही करूंगा।"—कह वह अन्तःपुरमें चला गया। प्रसंगवश स्त्रियोंके पास यह बात राजाने कही। उसे सुनकर पासमें बैठे आज्ञाकारितामें कुशल, कृपासे धनी बने, गीत-नृत्य-वाद्य आदि से अवंचित, बाहरी नारियोंमें लंपट, चतुर, मुंहफट, बहु व्यंग-चतुर, दूसरेके हृदयका पता लगाने में तत्पर, हंसानेवाला, दूसरेकी निंदामें रुचि रखनेवाला, चुगली करनेमें पण्डित, मंत्रियोंसे भी रिश्वत लेनेवाला, सारे दुराचारोंको पढ़ानेवाला, कामशास्त्रका कर्णधार, (राजाका) विहारभद्र नामक सेवक कुमार-अवस्थासे साथ रहता मुस्कुराकर अर्ज करने लगा।

३४. "देव, दैवकी कृपासे यदि कोई वैभवका पात्र होता है, तो धूर्त उसे अकस्मात् नाना प्रकारके प्रलोभनोंसे दूषित करके अपना मतलब गांठते हैं। जैसे—कोई मरकर मिलनेवाले भारी अभ्युदयोंकी आशासे सिर मुंड़ाकर कुश-रस्सी बांध, मृगचर्मसे (तन) ढांक, मक्खनसे शरीर चुपड़ और अनशनके लिये लेटवाकर सर्वस्व हर लेते हैं। उनसे भी बड़े घोर पाखंडी पुत्र-स्त्री-शरीर-प्राणोंको भी छीन लेते हैं। यदि कोई होशियार (आदमी) इस मृगतृष्णाके लिये हाथके धनको नहीं छोड़ना चाहता, तो उसे दूसरे घेर कर कहते हैं—

३५. एकामपि काकिणीं कार्षापणलक्षमापादयेम, शस्त्रादृते सर्वशत्रून् घातयेम, एकशरीरिणमपि मर्त्यं चक्रवर्तिनं विदधीमहि, यद्यस्मदुद्दिष्टेन मार्गेणाचर्यत" इति। स पुनरिमान्प्रत्याह—

३६. "कोऽसौ मार्गः" इति। पुनरिमे ब्रुवते—"ननु चतस्रो राजविद्यास्त्रयी वार्ताऽन्वीक्षिकी दण्डनीतिरिति। तासु तिस्रस्त्रयीवार्तान्वीक्षिक्यो महत्यो मन्दफलाश्च, तास्तावदासताम्। अधीष्व तावद् दण्डनीतिम्। इयमिदानीमाचार्यविष्णुगुप्तेन मौर्यार्थं षड्भिः श्लोकसहस्रैः संक्षिप्ता। सैवेयमधीत्य सम्यगनुष्ठीयमाना यथोक्तकर्मक्षमा" इति। स "तथा" इत्यधीते, शृणोति च, तत्रैव जरां गच्छति। तत्तु किल शास्त्रं शास्त्रान्तरानुबन्धि सर्वमेव वाङ्मयमविदित्वा न तत्त्वतोऽधिगंस्यते, भवतु कालेन बहुनाल्पेन वा तदर्थाधिगतिः, अधिगतशास्त्रेण चादावेव पुत्रदारमपि न विश्वास्यम्। आत्मकुक्षेरपि कृते तण्डुलैरियद्भिरियानोदनः संपद्यते, इयत ओदनस्य पाकायैतावदिन्धनं पर्याप्तमिति मानोन्मानपूर्वकं देयम्। उत्थितेन च राज्ञा क्षलिताक्षालिते मुखे मुष्टिमर्धमुष्टिं वाभ्यन्तरीकृत्य कृत्स्नमायव्ययजातमह्नः प्रथमेऽष्टमे वा भागे श्रोतव्यम्। शृण्वत एवास्य द्विगुणमपहरन्ति तेऽध्यक्षधूर्ताश्चत्वारिंशतं चाणक्योपदिष्टानाहरणोपायान्सहस्रधात्मबुद्ध्यैव ते विकल्पयितारः।

३७. द्वितीयेऽन्योन्यं विवदमानानां जनानामाक्रोशाद् दह्यमानकर्णः कष्टं जीवति। तत्रापि प्राड्विवाकादयः स्वेच्छया जयपराजयौ विदधानाः, पापेनाकीर्त्या च भर्तारमात्मनश्चार्थैर्योजयन्ति। तृतीये स्नातुं भोक्तुं च लभते। भुक्तस्य याव-

३५. "एक काकिणी (बीस कौड़ी) को भी हम लाख कार्षापण बना सकते हैं, हथियारके विना सभी शत्रुओंको मार सकते हैं। अकेले तनवाले मर्दको चक्रवर्ती बना सकते हैं, यदि हमारे बतलाये मार्गपर (वह) चले इनके बारेमें पूछना है—

३६. "वह कौन सा मार्ग है?" फिर वह कहते हैं— "चार राजविद्यायें हैं ना, त्रयी (तीनों वेद), वार्ता (अर्थकर शिल्प), आन्वीक्षिकी (तर्कशास्त्र) और दंडनीति (राजनीति)। उनमेंसे तीन पहली (त्रयी, वार्ता और आन्वीक्षिकी) बड़ी पर कम फल देनेवाली है। उन्हें रहने दो। राजनीति पढ़ो। इसे आचार्य **विष्णुगुप्त** (चाणक्य) ने मौर्य (**चन्द्रगुप्त**) के लिये छ हजार श्लोकोंमें संक्षिप्त कर दिया है। सो यही अध्ययन करके अच्छी तरह अनुष्ठान किये जाने पर कहेके अनुसार काम कर सकती है।" आदमी "ठीक है" कहकर पढ़ता और सुनता है। (पढ़ते पढ़ते) वह बूढ़ा हो जाता है। वह शास्त्र तो दूसरे शास्त्रोंसे सम्बन्ध रखता है, सारे ही वाङमय (साहित्य) को विना जाने उसे ठीक तौरसे नहीं समझा जा सकता। मान लो, कम या अधिक समय में उसने उसके अर्थको समझ लिया। (राजनीति) शास्त्रके जानकारको प्रारम्भ ही में पुत्र-स्त्रीपर भी विश्वास नहीं करना चाहिये। अपने पेटके लिये भी बनाये जाते इतने चावलोंसे इतना भात तैयार होता है, इतने भातके पकानेके लिये इतना ईंधन काफी है, इस तरह नाप-तोलकर चीज देनी चाहिये। (सवेरे) उठकर राजाको मुंह धोये या बिना धोये मुट्ठी-आध-मुट्ठी पेटके भीतर करके दिनके पहले या आठवें भागमें सारे आय-व्ययको सुनना चाहिये। इसके सुनते-सुनते भी वे धूर्त अध्यक्ष (विभाग-अध्यक्ष) दूना मार लेते हैं। वह (तो) **चाणक्यके** बतलाये चालीस अपहरणके उपायोंको अपनी बुद्धिसे हजार गुना बना लेते हैं।

३७. दूसरे (भाग) में परस्पर कलह करनेवाले लोगोंकी चिल्लाहटमें कान जलते बेचारा राजा जीता है। वहां भी **प्राड्विवाक** (वकील) आदि स्वेच्छासे जय-पराजय कराते, स्वामीको पाप और अपयशके साथ और अपनेको धनके साथ जोड़ देते हैं। तृतीय (भागमें)

दन्ध:परिणामस्तावदस्य विपभयं न शाम्यत्येव । चतुर्थे हिरण्यप्रतिग्रहाय हस्तं प्रसारयन्नेवोत्तिष्ठति । पंचमे मन्त्रचिन्तया महान्तमायासमनुभवति । तत्रापि मन्त्रिणो मध्यस्था इवान्योन्यं मिथः संभूय दोषगुणौ दूतचारवाक्यानि शक्याशक्यतां देशकालकार्यावस्थाश्च स्वेच्छया विपरिवर्तयन्तः, स्वपरमित्रमण्डलान्युपजीवन्ति । बाह्याभ्यन्तरांश्च कोपान् गूढमुत्पाद्य प्रकाशं प्रशमयन्त इव स्वामिनमवशमवगृह्णन्ति । षष्ठे स्वैरविहारो मन्त्रो वा सेव्यः । सोऽस्यैतावान्स्वैरविहारकालो यस्य तिस्रस्त्रिपादोत्तरा नाडिकाः । सप्तमे चतुरंगबलप्रत्यवेक्षणप्रयासः । अष्टमेऽस्य सेनापतिसखस्य विक्रमचिन्ताक्लेशः ।

३८. पुनरुपास्यैव संध्यां, प्रथमे रात्रिभागे गूढपुरुषा द्रष्टव्याः । तन्मुखेन चातिनृशंसाः शस्त्राग्निरसप्रणिधयोऽनुष्ठेयाः । द्वितीये भोजनानन्तरं श्रोत्रिय इव स्वाध्यायमारभेत । तृतीये तूर्यघोषेण संविष्टश्चतुर्थपंचमौ शयीत किल । कथमिवास्याजस्रचिन्तायासविह्वलमनसो वराकस्य निद्रासुखमुपनमेत् । पुनः षष्ठे शास्त्रचिन्ताकार्यचिन्तारम्भः । सप्तमे तु मन्त्रग्रहो दूताभिप्रेषणानि च । दूताश्च नामोभयत्र प्रियाख्यानार्थान्वितशुल्कबाधवर्त्मनि वाणिज्यया गर्धयन्तः, कार्यमविद्यमानमपि लेशेनोत्पाद्यानवरतं भ्रमन्ति । अष्टमे पुरोहितादयोऽभ्येत्यैनमाहुः—

स्नान-भोजनका समय मिलता है। खाया भोजन जब तक पचता नहीं तब तक उसके मनमें विषका भय शान्त नहीं होता। चतुर्थ (भागमें) सुवर्ण-ग्रहणके लिये हाथ फैलाये उठ खड़ा होता है। पंचम (भागमें) मंत्रणाकी चिन्तासे भारी परिश्रमका अनुभव करता है। वहां भी मध्यस्थकी तरह परस्पर मिलकर दोष-गुणों, दूतों, गुप्तचरोंके वाक्योंको, संभव-असंभवको और देश-काल-कार्य की अवस्थाओंको, मनमाना उलटते मंत्री लोग एक दूसरेके मित्रोंका लाभ करते हैं; गुप्तरीतिसे राज्यके भीतर और बाहर उपद्रव पैदा कर बाहरसे शान्त करते हुये से बेबस बना स्वामीको हाथमें कर लेते हैं। छठे (भाग) में स्वेच्छापूर्वक बिहार या मंत्रणा की जा सकती है। सो उस (राजाका) इतना ही स्वेच्छासे बिहार करनेका काल है; जो आधार पहर (तीन पाव अधिक तीन नाडिका) काल है। सातवें (अंश) में चतुरंग सेनाके निरीक्षणका प्रयास करना है। आठवें में सेनापति सहित सैनिक तैयारी सम्बन्धी चिन्ताका क्लेश उठाना है।

३८. फिर सन्ध्या की उपासना करनी ही है। रातके पहले भागमें गुप्त-चरोंको देखना है। उनके द्वारा हथियार-आग-विषदान जैसे अत्यन्त नृशंस काम कराने हैं। रातके द्वितीय (भाग) में भोजनके बाद वेदपाठीकी तरह स्वाध्याय आरम्भ करे। तृतीय भाग में वाद्य घोषके साथ लेटकर चौथे-पांचवें में सोवे। निरन्तर चिन्ताके कष्टसे विह्वल इस बेचारेको कैसे निद्रा-सुख मिलेगा? फिर छठे भागमें शास्त्र-चिन्तनके कार्यकी चिन्ता शुरू होगी। रातके सातवें भागमें तो सलाह लेनी और दूतोंको भेजना है। दूत भी तो दोनो ओर मीठी बातें कहने से पाये धनको, शुल्ककी बाधासे रहित रास्तेमें वाणिज्य द्वारा बढ़ाते हैं, और अविद्यमान कार्यों भी जहां तहां उपायसे विस्तार करके लगातार भ्रमण करते रहते हैं। आठवें भागमें पुरोहित आदि पास आकर राजासे कहते हैं—

३९. "अद्य दृष्टो दुःस्वप्नः। दुस्थाः ग्रहाः। शकुनानि चाशुभानि। शान्तयः क्रियन्ताम्। सर्वमस्तु सौवर्णमेव होमसाधनम्। एवं सति कर्म गुणवद् भवति। ब्रह्मकल्पा इमे ब्राह्मणाः। कृतमेभिः स्वस्त्ययनं कल्याणतरं भवति। ते चामी कष्टदारिद्र्या बह्वपत्या यज्वानो वीर्यवन्तश्चाद्याप्यप्राप्तप्रतिग्रहाः। दत्तं चैभ्यः स्वर्ग्यमायुष्यमरिष्टनाशनं च भवति" इति बहु बहु दापयित्वा तन्मुखेन स्वयमुपांशु भक्षयन्ति। तदेवमहर्निशमविहितसुखलेशमायासबहुलमविरलकदर्थनं च नयतो न तत्रास्यास्तां चक्रवर्तिता, स्वमण्डलमात्रमपि दुरारक्ष्यं भवेत्। शास्त्रज्ञसमाज्ञातो हि यद् ददाति, यन्मानयति, यत्प्रियं ब्रवीति, तत्सर्वमतिसंधातुमित्यविश्वासः। अविश्वासता हि जन्मभूमिरलक्ष्म्याः। यावता च नयेन विना न लोकयात्रा स लोक एव सिद्धः नात्र शास्त्रेणार्थः। स्तनंधयोऽपि हि तैस्तैरुपायैः स्तनपानं जनन्या लिप्सते।

—उत्तर० उ० ८

(६) राजपत्रिका—

३९. पुष्पपुराद्राज्ञो राजहंसस्याज्ञापत्रमादाय समागता राजपुरुषाः प्रणम्य राजवाहनं व्यजिज्ञपन्—"स्वामिन्! एतज्जनकस्य राजहंसस्याज्ञापत्रं, गृह्यताम्।" इत्याकर्ण्य समुत्थाय भूयोभूयः सादरं प्रणम्य सदसि तदाज्ञापत्रमग्रहीत्। शिरसि चाधाय तत उत्तार्योत्कील्य राजा राजवाहनः सर्वेषां शृण्वतामेवावाचयत्—

३९. "आज शरकारने दुःस्वप्न देखा। (आपके ग्रह बुरे) स्थानमें हैं। अशुभ सगुन हैं। इनकी शान्ति करनी चाहिये। होमके सारे साधन सोनेके होने चाहिये। ऐसा करनेसे कर्म फलदायक होता है। ब्राह्मण ब्रह्मा के समान है। इनके द्वारा किया गया स्वस्तिवाचन बहुत कल्याण-कारी होता है। ये दरिद्रताका कष्ट उठाते बहुसन्तान यज्ञकर्ता हिम्मतवाले होते भी अभी दान नहीं पाये हैं। इनको दिया दान स्वर्गोपयोगी, दीर्घायुकारी, अनिष्ट-नाशक होता है।" यह कह बहुत सा धन दिलवाकर उसमें से स्वयं गुप्तरूपसे खाते हैं। सो इस प्रकार रात-दिन जरा भी सुख पाये बिना, बहुत कष्टवाला, घने मनोरथ भंगों वाला हो रात-दिन बिताते अनीतिको, राजाको चक्रवर्तिता मिलती, तो दूर अपने मंडल मात्रकी प्रतिरक्षा भी मुश्किल हो जाती है। शास्त्रज्ञतामें ख्याति प्राप्त हो वह जो देता है, जो मानता है, जो मधुर बोलता है, सो सब बंचनाके लिये। अविश्वास दरिद्रताकी जन्मभूमि है। नीतिके बिना लोक-व्यवहार नहीं होता (पर) वह तो लोक सिद्ध है, वहां शास्त्रका कोई प्रयोजन नहीं। दुध-मुहा बच्चा भी जैसे-तैसे उपायोंसे जननीके स्तनपानको पानेकी इच्छा करता है।

—उत्तर उ० ८

६. राजाकी चिट्ठी—

३९. पुष्पुरसे राजा राजहंसके आज्ञापत्रको लेकर आये राजपुरुषोंने प्रणाम करके राजवाहनसे अर्ज किया—"स्वामिन्, यह पिता (राज-हंस) का आज्ञापत्र ग्रहण कीजिये।" यह सुन उठकर सभा में बार-बार आदरपूर्वक प्रणाम कर आज्ञापत्रको ग्रहण किया, और सिरपर रख उससे उतारकर खोलकर राजा राजवाहनने सबको सुनाते इस प्रकार उसे वांचा—

४०. "स्वस्ति श्रीः पुष्पपुरराजधान्याः श्री राजहंसभूपतिश्चम्पानगरीमधिवसतो राजवाहनप्रमुखान् कुमारान् आगास्याज्ञापत्रं प्रेषयति । यथा यूयमितो मामामन्त्र्य प्रणम्य प्रस्थिताः पथि कस्मिंश्चिद् वनोद्देश उपशिवालयं स्कन्धावारमवस्थाप्य स्थिताः । तत्र राजवाहनं शिवपूजार्थं निशि शिवालये स्थितं प्रातरनुपलभ्यावशिष्टाः सर्वेऽपि कुमाराः 'सहैव राजवाहनेन राजहंसं प्रणंस्यामो न चेत्प्राणांस्त्यक्ष्याम' इति प्रतिज्ञाय सैन्यं परावर्त्य राजवाहनमन्वेष्टुं पृथक्प्रस्थिताः एतं भवद्वृत्तान्तं ततः प्रत्यावृत्तानां सैनिकानां मुखादाकर्ण्यासह्यदुःखोदन्वति मग्नमानसावुभावहं युष्मज्जननी च ।"

४१. वामदेवाश्रमं गत्वैतद् वृत्तातं तद्विदितं विधाय प्राण परित्यागं कुर्व इति निश्चित्य तदाश्रममुपगतौ तं मुनिं प्रणम्य यावत्स्थितौ तावदेव तेन त्रिकालवेदिना मुनिना विदितमेवास्मन्मनीषितम् । निश्चयमवबुद्ध्य प्रावोचि—'राजन प्रथममेवैतत्सर्वं युष्मनीषितं विज्ञानबलादज्ञायि । यदेते त्वत्कुमारा राजावाहननिमित्ते कियन्तमनेहसमापदमासाद्य भाग्योदयादसाधारणेन विक्रमेण विहितदिग्विजयाः प्रभूतानि राज्यान्युपलभ्य षोडशाब्दान्ते विजयिनं राजवाहनं पुरस्कृत्य प्रत्येत्य तव वसुमत्याश्च पादानभिवाद्य भवदाज्ञाविधायिनो भविष्यन्ति । अतस्तन्निमित्तं किमपि साहसं न विधेयम्' इति । तदाकर्ण्य तत्प्रत्ययाद्धैर्यमवलम्ब्याद्यप्रभृत्यहं देवी च प्राणानधारयाव । इदानिमासन्नवर्तिन्यवधौ वामदेवाश्रमे गत्वा विज्ञप्तिः कृता—'स्वामिन् ! तदुक्तावधिः पूर्णप्रायो भवति, [illegible]

४०. "स्वस्ति श्री, पुरुषपुर राजधानीसे श्री राजहंस भूपति चम्पा नगरीमें बसते राजवाहन आदि कुमारोंको आशीर्वाद दे आज्ञापत्र भेजते हैं। क्योंकि, तुम सब यहांसे बिना पूछे मुझे प्रणाम करके प्रस्थान कर रास्तेमें किसी वनस्थानमें शिवालयके पास छावनी डाले रहे। वहां शिवालयमें रातके वक्त शिवपूजनके लिये गये राजवाहनको सवेरे न पाकर बाकी सारे कुमारोंने भी 'राजवाहनके साथ ही राज-हंसको प्रणाम करेंगे, नहीं तो प्राणोंको छोड़ेंगे' यह प्रतिज्ञा करके सेनाको लौटा राजवाहनको ढूंढ़नेके लिये अलग-अलग प्रस्थान किया। आपके इस वृत्तान्तको वहां से लौटे सैनिकोंके मुंहसे सुनकर मेरी और तुम्हारी मां का मन असह्य दुःख-सागरमें मग्न हुआ।"

४१. वामदेवके आश्रममें जाकर इस वृत्तान्तको उन्हें ज्ञात करा 'हम प्राण त्याग करेंगे' यह निश्चय कर हम दोनों उस आश्रममें जा, मुनिको प्रणाम कर खड़े हुये। तभी उस त्रिकालज्ञ मुनिने हमारे मनकी बातको जान लिया, और (हमारे) निश्चयको समझकर कहा—'राजन्, आपके इस सारे मनोभावको (दिव्य) ज्ञानके बलसे मैंने पहले ही जान लिया। यह (लोग) तुम्हारे कुमार, राजवाहनके लिये कितने ही समय तक आफत उठायेंगे। फिर भाग्यवश असा-धारण पराक्रमसे दिग्विजय कर बहुत से राज्य प्राप्त कर सोलहवें वर्षके अन्तमें विजयी राजवाहनको आगे किये लौटकर तुम्हारे और वसुमतीके चरणोंका अभिवादन करके आपके आज्ञाकारी होंगे। अतः उनके लिये कोई साहस नहीं करना चाहिये।' सो सुनकर उस पर विश्वास करके धैर्य अवलंबन कर आज तक मैं और देवीने प्राण धारण किया। अब अवधिके नजदीक आनेपर वामदेवके आश्रममें जाकर हमने अर्ज की—'स्वामिन्, आपकी कही अवधि करीब करीब पूर्ण हो रही है। उनका समाचार तो आप जानते

विज्ञायत' इति श्रुत्वा मुनिरवदत्—'राजन् राजवाहनप्रमुखाः सर्वेपि कुमारा अनेकान्दुर्जयांशत्रून्विजित्य दिग्विजयं विधाय भूवलयं वशीकृत्य चम्पायामेकत्र स्थिताः तवाज्ञापत्रमादाय तदानयनाय प्रेष्यन्तां शीघ्रमेव सेवका' इति मुनिवचनमाकर्ण्य भवदाकारणायाज्ञापत्रं प्रेषितमस्ति। अतः परं चेत्क्षणमपि यूयं विलम्बं विधास्यथ तत मां वसुमतीं च मातरं कथावशेषावेव श्रोष्यथेति ज्ञात्वा पानीयमपि पथि भूत्वा पेयम्" इति।

—कथोपसंहारः

२७. भट्टि (६१० ई०)

भट्टि स्वामी या वत्सभट्टि गुजरातके निवासी तथा बलभीके राजा श्रीधरसेनके दरबारी कवि थे। बलभीमें श्रीधरसेन चार हुए। श्रीधरसेन द्वितीयने भट्टि नामके किसी विद्वान्को कुछ भूमि दान दी थी, सम्भव है यह वही भट्टि हों। भट्टिकी एक ही कृति हमें मिलती है, जिसका मूल नाम "रावणवध" था, लेकिन वह कविके नामपर ही अधिक प्रसिद्ध है। यह महाकाव्य २० सर्गों और ३६२४ श्लोकोंमें समाप्त हुआ है। इस काव्यमें

रावणवध

(१) रामजन्म—

१. अभून् नृपो विबुधसखः परन्तपः श्रुतान्वितो दशरथ इत्युदाहृतः।
गुणैर्वरं भुवनहितच्छलेन यं सनातनः पितरमुपागमत् स्वयम् ॥१॥

ही हैं।' सुनकर मुनि ने कहा—'राजन्, गजवाहन आदि सारे कुमार अनेक दुर्जय शत्रुओंको जीतकर दिग्विजय कर भूमंडलको वशमें करके चम्पामें एकत्र मौजूद हैं। अपना आज्ञापत्र उन्हें बुलानेके लिये जल्दी सेवकों द्वारा भेजो।' मुनिके इस वचनको सुनकर आप लोगोंके बुलानेके लिये (यह) आज्ञापत्र भेजा है। इसके बाद अगर क्षण भर भी तुम विलम्ब करोगे, तो मुझे और माता वसुमतीका कथाशेष ही सुनोगे, यह जानकर पानी भी रास्ते पर (आरूढ़) होकर ही पीना।"

—कथाका उपसंहार

२७. भट्टि (६१० ई०)

अपने सारे व्याकरण-ज्ञानका समावेश करना चाहा है, जिसके कारण यह काव्य नहीं, बल्कि व्याकरणके प्रयोगोंका ग्रन्थ बन गया और उसी दृष्टिसे लोग अधिकतर इसे पढ़ते भी हैं। व्याकरण चक्षुवालोंके लिए दीपतुल्य होते भी इसका यह अर्थ नहीं है, कि इसमें काव्यके गुणोंका बिल्कुल अभाव है। रामायणके कई पात्रोंकी उक्तियाँ इसमें बड़ी ही सुन्दर और सजीव देखनेमें आती हैं।

भट्टिकाव्य

१. राम-जन्म—

१. देवताओंके मित्र परम तपस्वी वेदज्ञ दशरथ नामके प्रसिद्ध राजा हुये। गुणोंमें श्रेष्ठ जिन्हें पिता बनाकर सनातन पुरुष स्वयं लोक-हितके बहाने आये ॥१॥

२. सोऽध्यैष्ट वेदांस्त्रिदशानयष्ट पितॄनपारीत् समगंस्त
बन्धून् ।
व्यजेष्ट षड्वर्गमरंस्त नीतौ समूलघातं न्यवधीदरींश्च ॥२॥

३. वसूनि तोयं घनवद् व्यकारीत् सहाऽऽसनं गोत्रभिदा-
ऽध्यवात्सीत् ।
न त्र्यम्बकादन्यमुपास्थिताऽसौ यशांसि सर्वेषुभृतां
निरास्थत् ॥३॥

४. पुण्यो महाब्रह्मसमूहजुष्टः सन्तर्पणो नाकसदां
वरेण्यः ।
जज्वाल लोकस्थितये स राजा यथाऽध्वरे वह्निरभि-
प्रणीतः ॥४॥

५. स पुण्यकीर्तिः शतमन्युकल्पो महेन्द्रलोकप्रतिमां
समृद्ध्या ।
अध्यास्त सर्वर्तुसुखामयोध्यामध्यासितां ब्रह्मभिरि-
द्धबोधैः ॥५॥

६. निर्माणदक्षस्य समीहितेषु सीमेव पद्मासनकौशलस्य ।
ऊर्ध्वस्फुरद्रत्नगभस्तिभिर्या स्थिताऽवहस्येव पुरं
मघोनः ॥६॥

७. सद्रत्नमुक्ताफलवज्रभांजि विचित्रधातूनि सकाननानि ।
स्त्रीभिर्युतान्यप्सरसामिवौघैर्मेरोः शिरांसीव गृहाणि
यस्याम् ॥७॥

८. अन्तर्निविष्टोज्ज्वलरत्नभासो गवाक्षजालैरभिनिष्पतन्त्यः
हिमाद्रिटंकादिव भान्ति यस्यां गंगाऽम्बुपातप्रतिमा
गृहेभ्यः ॥८॥

२. उन्होंने वेदोंको पढ़ा, देवताओंको पूजा, पितरोंको तृप्त किया, बंधु-ओंको सम्मानित किया। रागादि छ वर्गको जीता, नीतिमें रति की, और जड़से शत्रुओंका वध किया ॥२॥

३. मेघ जैसे जलको वैसे धनको बांटा, इन्द्रके साथ (एक) आसनपर बैठे। शंकर छोड़ उन्होंने किसीकी भक्ति नहीं की, सारे बाणधारियोंके यशको नष्ट कर दिया ॥३॥

४. पुण्यात्मा महाब्राह्मणोंके समूहसे युक्त हो देवताओंके अति उत्तम तृप्तिकारक, वह राजा लोककी स्थितिके लिये, (वैसे) प्रज्वलित हुये जैसे यज्ञमें ले जाया गया अग्नि ॥४॥

५. वह इन्द्र समान पुण्य-यशवाले, ज्ञानी ब्राह्मणों द्वारा निवासित सारे ऋतुओंमें सुखद, समृद्धिमें इन्द्रलोकके समान अयोध्यामें रहते थे ॥५॥

६. जो **अयोध्या** निर्माण-चतुर ब्रह्माके कौशलकी अभिलाषाओंकी सीमा सी, ऊपर चमकती रत्न-किरणोंसी मानो इन्द्रपुरका उपहास करते अवस्थित थी ॥६॥

७. जिस अयोध्याके घर सच्चे-रत्न मोती-हीरायुक्त, विचित्र धातुओं और उपवन सहित, अप्सराओंके समूहों जैसी ही स्त्रियोंसे युक्त सुमेरुके शिखर जैसे थे ॥७॥

८. जहां गृहोंके भीतर रक्खे उज्ज्वल रत्नोंकी किरणें गवाक्षों द्वारा निकलतीं, **हिमाचल**-शिखरसे गंगाजलके पात सी शोभा देती थीं ॥८॥

९. धर्म्यासु कामाऽर्थयशस्करीषु मतासु लोकेऽधिगतासु काले
विद्यासु विद्वानिव सोऽभिरेमे पत्नीषु राजा
तिसृषूत्तमासु॥९॥

१०. पुत्रीयता तेन वरांगनाभिरानायि विद्वान् क्रतुषु क्रियावान् ।
विपत्तिमज्ञानगतिर्मनस्वी मान्यो मुनिः स्वां
पुरमृष्यशृंगः ॥१०॥

११. ऐहिष्ट तं कारयितुं कृताऽऽत्मा क्रतुं नृपः पुत्रफलं मुनीन्द्रम् ।
ज्ञाताऽऽशयस्तस्य ततो व्यतानीत् स कर्मठः कर्म सुताऽ-
नुबन्धम् ॥११॥

१२. रक्षांसि वेदीं परितो निरास्थदंगान्ययाक्षीदभितः प्रधानम् ।
शेषाण्यहौषीत् सुतसम्पदे च वरं वरेण्यो नृपतेरमार्गीत् ॥१२॥

१३. निष्ठां गते दत्रिमसभ्यतोषे विहित्रिमे कर्मणि राजपत्न्यः ।
प्राशुर्हुतोच्छिष्टमुदारवंश्यास्तिस्रः प्रसोतुं चतुरः सुपुत्रान् ।१३।

१४. कौसल्ययाऽसावि सुखेन रामः प्राक्केकयीतो भरतस्ततोऽभूत्
प्रासोष्ट शत्रुघ्नमुदारचेष्टमेका सुमित्रा सह लक्ष्मणेन॥१४॥

—प्रकीर्णकाण्डम्, सर्गः १

(२) प्रातः—

१५. अथाऽस्तमासेदुषि मन्दकान्तौ पुण्यक्षयेणेव निधौ कलानाम् ।
समाललम्बे रिपुमित्रकल्पैः पद्मैः प्रहासः कुमुदैर्विषादः ॥१॥

१६. दूरं समारुह्य दिवः पतन्तं भृगोरिवेन्दुं विहितोपकारम् ।
बद्धाऽनुरागोऽनुपपात तूर्णं तारागणः सम्भृतशुभ्रकीर्तिः ॥२॥

९. वह राजा धर्मयुक्ता काम-अर्थ-यश-करी, लोक-सम्मानिता, कालमें प्राप्त तीन उत्तम पत्नियोंमें, विद्याओंमें विद्वान् की तरह रमण करता था ॥९॥

१०. वरांगनाओंसे पुत्रकी कामना करते उसने यज्ञमें कर्मिष्ट विद्वान्, विपाक-निर्मित ज्ञानमें गति रखनेवाले, मनस्वी माननीय, शृंगी ऋषिको अपने पुरमें बुलवाया ॥१०॥

११. राजाने उन संयमी मुनींद्रसे पुत्रफलवाले यज्ञको करानेकी इच्छा (प्रकट) की। भाव जानकर उन कर्मठ मुनिने पुत्र-सम्बन्धी कर्मको उसके लिये कराया ॥११॥

१२. यज्ञवेदीके चारों ओर राक्षसोंका निराकरण किया, प्रधान यज्ञके चारों ओर अंगों (यज्ञ) का यजन कराया। पुत्र-प्राप्तिके लिये श्रेष्ठ आहुतियां डालीं और श्रेष्ठ मुनिने नृपतिके लिये वर मांगा ॥१२॥

१३. दानपात्र ब्राह्मणोंके तुष्ट होने, विहित कर्मके समाप्त होने पर उच्चवंशी तीनों राजपत्नियोंने यज्ञशेषको भक्षण किया, चार सुन्दर पुत्रोंको पैदा करनेके लिये ॥१३॥

१४. कौसल्याने पहले सुखसे रामको जन्म दिया, फिर कैकेयीसे भरत हुये। अकेली सुमित्राने लक्ष्मण-सहित उदार-चेष्टावाले शत्रुघ्नको जन्म दिया ॥१४॥

—सर्ग १

२. प्रातःवर्णन—

१५. तब कलानिधि (चन्द्रमा) के मंदकांति हो, पुण्यक्षय जनकी तरह अस्ताचलपर जानेपर, शत्रुओं और मित्रोंके समान क्रमशः कमलोंने प्रहास और कोइयोंने विषाद प्राप्त किया ॥१॥

१६. [illegible] (किरणें) पतन की तरह हुए आकाशमें आरूढ़ हो गिरे, [illegible] चन्द्रके गिरनेपर उसके पीछे अनुगामी [illegible]-वाले तारागण भी गिरे ॥२॥

१७. क्व ते कटाक्षाः क्व विलासवन्ति प्रोक्तानि वा तानि ममेति मत्वा।
लंकाऽङ्गनानामवबोधकाले तुल्यामनारुह्य गतोऽस्त-मिन्दुः ॥३॥

१८. मानेन तल्पेष्वयथामुखीना मिथ्याप्रसुप्तैर्गमितत्रियामाः।
स्त्रीभिर्निशाऽतिक्रमविह्वलाभिर्दृष्टेऽपि दोषे पतयोऽनु-नीताः ॥४॥

१९. ईर्ष्याविरुग्णाः स्थिरबद्धमूला निरस्तनिःशेषशुभप्रतानाः।
आप्यायिता नेत्रजलप्रसेकैः प्रेमद्रुमाः संरुरुहुः प्रिया-णाम् ॥५॥

२०. ततः समाशंकितविप्रयोगः पुनर्नवीभूतरसोऽवितृष्णः।
स्मरस्य सन्तं पुनरुक्तभावं नाऽऽवर्तमानस्य विवेद लोकः ॥६

२१. शशांकनाथाऽपगमेन धूम्रां मूर्च्छापरीतामिव निर्विवेकाम्।
ततः सखीव प्रथिताऽनुरागा प्राबोधयद् द्यां मधुराऽरुण-श्रीः ॥१६॥

२२. अवीततृष्णोऽथ परस्परेण क्षणादिवाऽऽयातनिशाऽवसानः।
दुःखेन लोकः परवानिवाऽगात् समुत्सुकः स्वप्ननिकेत - नेभ्यः ॥१७॥

२३. तालेन सम्पादितसाम्यशोभं शुभाऽवधानं स्वरबद्धरागम्।
पदैर्गताऽर्थं नृपमन्दिरेषु प्रातर्जगुर्मंगलवत्तरुण्यः ॥१९॥

२४. दुरुत्तरे पंक इवान्धकारे मग्नं जगत्सन्ततरश्मिरज्जुः।
प्रनष्टमूर्तिप्रविभागमुद्यन् प्रत्युज्जहारेव ततो विवस्वान् ॥२०

१७. कहां वे कटाक्ष, कहां वे मेरे ललित वचन हैं, यह सोचकर, लंकाकी स्त्रियोंके जागनेके समय, सन्देह पर आरूढ़ हुये बिना चन्द्रमा अस्त हो गया ।।३।।

१८. निशाके बीतनेसे विह्वल स्त्रियों द्वारा दोष देखनेपर भी मान करके शय्यापर उलटा मुख किये झूठी निद्रामें रात बिताये पति मनाये गये ।।४।।

१९. प्रियतमाओंकी ईर्प्यासे व्याधित स्थिरबद्धमूल सारे शुभ हास आदि विस्तारोंसे वंचित, प्रेमरूपी वृक्ष आंसुओंके सेचनसे तर्पित हो बढ़े ।।५।।

२०. तब वियोगकी आशंका करनेवाले पुन: नये उत्पन्न रसयुक्त अभिलाषी लोगोंने दोहराते कामदेवके भी पुनरुक्तभावको नहीं जाना ।।६।।

२१. रात्रिके बीतनेसे मूर्छित, विवेक-रहित से धूमिल द्युलोकको, अरुणकी मधुर शोभाने बड़े अनुरागवाली सखीकी तरह जगाया ।।१६।।

२२. तब एक दूसरेसे अतृप्त हुये, मानो क्षण भरमें निशाकी समाप्ति होगी समझनेवाले, लोग दु:खसे परवशकी तरह उत्सुक हो शयनगृहोंसे निकले ।।१७।।

२३. राजमहलोंमें प्रात:काल तरुणियोंने तालसे समता और शोभा सम्पादित किये। शुभ एकाग्रतायुक्त सार्थक स्वरयुक्त मंगल रागको पर्वोंके साथ गाया ।।१९।।

२४. तब दुस्तर पंक जैसे अन्धकारमें मग्न, आकारके भेदसे नष्ट हुये, फैले रश्मिरूपी रस्सीवाले सूर्यने उगकर जगत्‌को निकाला ।।२०।।

२५. पीतौष्ठरागाणि हृतांऽजनानि भास्वन्ति लोलैरलकैर्मुखानि।
प्रातः कृतार्थानि यथा विरेजुस्तथा न पूर्वेद्युरलंकृतानि ॥२१
—सर्गः ११

(३) विभीषण-विलापः—

२६. व्यश्नुते स्म ततः शोको नाभिसम्बन्धसम्भवः।
विभीषणमसावुच्चै रोदिति स्म दशाननम् ॥१॥

२७. "भूमौ शेते दशग्रीवो महार्हशयनोचितः।
नेक्षते विह्वलं मां च न मे वाचं प्रयच्छति ॥२॥

२८. विपाकोऽयं दशग्रीव, संदृष्टोऽनागतो मया।
त्वं तेनाऽभिहितः पथ्यं किं कोपं न नियच्छति ॥३॥

२९. भजन्ति विपदस्तूर्णमतिक्रामन्ति सम्पदः।
तान्मदान्नावतिष्ठन्ते ये मते न्यायवादिनाम् ॥४॥

३०. अपथ्यमायतौ लोभादामनन्त्यनुजीविनः।
प्रियं शृणोति यस्तेभ्यस्तमृच्छन्ति न सम्पदः ॥५॥

३१. द्वेष्टि प्रायो गुणेभ्यो यन्न च स्निह्यति कस्यचित्।
वैरायते महद्भिश्च शीयते वृद्धिमानपि ॥९॥

३२. समाश्वसिमि केनाहं कथं प्राणिमि दुर्गतः।
लोकत्रयपतिर्भ्राता यस्य मे स्वपिति क्षितौ ॥१०॥

३३. अहो जागर्ति कृच्छ्रेषु दैवं यद्बलभिज्जितः।
लुठ्यन्ति भूमौ क्लिद्यन्ति बान्धवा मे स्वपन्ति च ॥११॥

३४. शिवाः कुष्णन्ति मांसानि भूमिः पिबति शोणितम्।
दशग्रीवसनाभीनां समदन्त्यामिषं खगाः ॥१२॥

२५. पीले ओष्ठ रंगवाले अंजन पुछे चंचल अलकोंसे चमकते कृतार्थ मुख प्रातः जैसे शोभा दे रहे थे, वैसे पूर्व दिन में अलंकृत भी नहीं शोभा देते थे ।।२१।।

—सर्ग ११

३. विभीषणका विलाप—

२६. तब सहोदर सम्बन्धी शोक **विभीषणको** व्याप्त हुआ, और वह **रावणके** लिये फूट-फूट कर रोने लगा ।।१।।

२७. "महार्घ शय्यापर सोनेवाला दशानन भूमिपर सो रहा है। वह न मुझ विह्वलको देखता है और न मुझे उत्तर देता है ।।२।।

२८. हे दशग्रीव, मैंने इस उचित परिणामको देखा था। उसे तुझे कहा (भी), पर तूने कोपपर भारी नियंत्रण नहीं किया ।।३।।

२९. जो मदके कारण उचित वक्ताओंकी सम्मति नहीं मानते, उन्हें विपत्तियां जल्दी ही आ पकड़ती और सम्पत्तियां छोड़ जाती हैं ।।४।।

३०. भविष्यमें अपथ्य होनेवाली बातको सेवक लोभवश कहते हैं। उनसे जो प्रिय बात सुनता है, उसे सम्पदा नहीं प्राप्त होती ।।५।।

३१. चूंकि प्रायः गुणोंसे द्वेष करता है और किसीसे स्नेह नहीं करता, महानोंके साथ वैर करता है, इससे (उसकी) समृद्धि भी नष्ट हो जाती है ।।६।।

३२. दुर्गतिको प्राप्त मैं किससे ढारस बांधूं, कैसे जिऊं, जब कि मेरा तीन-लोक पति भाई पृथिवीपर सो रहा है ।।१०।।

३३. अहो संकटोंमें दैव जग रहा है, जो कि इन्द्रके विजेता मेरे बान्धव भूमिपर लोटे सो रहे हैं ।।११।।

३४. सियारियां मांस खार ही हैं, पृथिवी शोणित पी रही है। **दशाननके** बन्धुओंके आमिषको पक्षी खा रहे हैं ।।१२।।

३५. येन पूतक्रतो मूर्ध्नि स्थीयते स्म महाऽहवे।
तस्यापीन्द्रजितो दैवाद्ध्वांक्षैः शिरसि लीयते ॥१३॥
३६. त्वमजानन्निदं राजन्नीडिषे स्म स्वविक्रमम्।
दातुं नेच्छसि सीतां स्म विषयाणां च नेशिषे ॥१५॥
३७. हविर्जक्षति निःशंको मखेषु मघवानसौ।
प्रवाति स्वेच्छया वायुरुद्गच्छति च भास्करः ॥१९॥
३८. धनानामीशते यक्षो यमो दाम्यति राक्षसान्।
तनोति वरुणः पाशमिन्दुर्नोदीयतेऽधुना ॥२०॥
३९. शाम्यत्यृतुसमाहारस्तपस्यन्ति वनौकसः।
नो नमस्यन्ति ते बन्धून् वरिवस्यन्ति नामराः ॥२१॥
४०. श्रीर्निष्कुष्यति लंकायां विरज्यन्ति समृद्धयः।
न वेद तन्न यस्यास्ति मृते त्वयि विपर्ययः ॥२२॥
४१. शमं शमं नभस्वन्तः पुनन्ति परितो जगत्।
उज्जिहीषे महाराज, त्वं प्रशान्तो न किं पुनः ॥२७॥
४२. प्रोर्णोति शोकश्चित्तं मे मत्त्वं संशाम्यतीव मे।
प्रमार्ष्टि दुःखमालोकं मुंचाम्यूर्ज त्वया विना ॥२८॥
४३. रोदिम्यनाथमात्मानं बन्धुना रहितस्त्वया।
प्रमाणं नोपकाराणामवगच्छामि यस्य ते ॥३०॥
४४. त्वयापि नाम रहिताः कार्याणि तनुमो वयम्।
कुर्मश्च जीविते बुद्धिं धिक् तृष्णां कृतनाशिनीम् ॥३२॥
४५. तृणेह्मि देहमात्मीयं त्वं वाचं न ददासि चेत्।
द्राघयन्ति हि मे शोकं स्मर्यमाणा गुणास्तव" ॥३३॥
४६. अन्तःपुराणि पौलस्त्यं, पौराश्च भृशदुःखिताः।
संश्रुत्य स्माभिधावन्ति हतं रामेण संयुगे ॥३७॥

३५. जो महायुद्धमें इन्द्रके सिरपर खड़ा होता था, उस मेघनादके सिरपर दैवके कारण कौवे बैठे हैं ।।१३।।

३६. हे राजन्, इसे बिना जाने तुम अपने पराक्रमकी तारीफ करते थे। सीताको नहीं देना चाहते थे, और विषयोंपर काबू नहीं कर पाये थे ।।१५।।

३७. (अब) वह इन्द्र निश्शंक हो यज्ञोंमें हवि-भक्षण कर रहा है, वायु स्वेच्छा-पूर्वक बह रहा है और सूर्य उग रहा है ।।१९।।

३८. कुबेर धनोंपर अधिकार कर रहा है, यम राक्षसोंका दमन कर रहा है। वरुण पाशको फैला रहा है, अब चन्द्रमा उग रहा है ।।२०।।

३९. ऋतुयें शान्त हो रही हैं, वनवासी तपस्या कर रहे हैं। (अब) तेरे बन्धुओंको अमर न नमस्कार करेंगे, न पूजेंगे ।।२१।।

४०. लंकापर श्री क्रुद्ध है, समृद्धियां विरक्त हैं। इसे तुमने नहीं जाना, जिसका तेरे बिना उलटा हो रहा है ।।२२।।

४१. वायु शान्तिपूर्वक चारों ओर जगत्‌को पवित्र कर रहे हैं। हे महाराज, क्या प्रशान्त हो फिर तुम नहीं उठोगे ।।२७।।

४२. शोक मेरे चित्तको ढांक रहा है, मेरी हिम्मत ठंडी हो रही है। दुःख प्रकाशको पोंछ रहा है, तेरे बिना मैं बलको छोड़ रहा हूं ।।२८।।

४३. तुझ बन्धुके बिना मैं अपने अनाथ होनेके लिये रो रहा हूं। जिस तेरे किये उपकारोंकी सीमा मैं नहीं जानता ।।३०।।

४४. तेरे बिना भी क्या हम कार्योंको फैलायेंगे? जीनेकी इच्छा करेंगे? कृतघ्ना तृष्णाको धिक्कार है ।।३२।।

४५. यदि तुम उत्तर नहीं देते, तो मैं अपने शरीरको मार दूंगा। याद आते तेरे गुण मेरे शोकको बढ़ा रहे हैं ।।३३।।"

४६. युद्धमें राम द्वारा रावणके मारे जानेकी बात सुनकर अन्तःपुरवाले और पुरवासी अत्यन्त दुःखित हो दौड़ रहे थे ।।३७।।

४७. मूर्धजान् स्म विलुंचन्ति क्रोशन्ति स्मातिविह्वलम्।
अधीयन्त्युपकाराणां मुहुर्मुहुः प्रमन्यु च ॥३८॥

४८. रावणस्य नमन्ति स्म पौराः सास्रा रुदन्ति च।
भाषेत स्म ततो रामो वचः पौलस्त्यमाकुलम् ॥३९॥

४९. "दातुः स्थातुर्द्विषां मूर्ध्नि यष्टुस्तर्पयितुः पितॄन्।
युद्धाभग्नाविपन्नस्य किं दशास्यस्य शोचसि ॥४०॥

५०. बोभवीति न सम्मोहो व्यसने स्म भवादृशाम्।
किं न पश्यसि सर्वोऽयं जनस्त्वामवलम्बते ॥४१॥

५१. त्वमर्हसि भ्रातुरनन्तराणि कर्तुं जनस्यास्य च शोकभंगम्।
धुर्ये विपन्ने त्वयि राज्यभारो मज्जत्यनूढः
क्षणदाचरेन्द्र" ॥४२॥

—सर्गः १८

२८. बिज्जा (विद्या ६१० ई०)

संस्कृतमें स्त्रियोंने भी कविता की थी, और कुछ कविताओंके देखनेसे मालूम होता है कि वह पुरुषोंसे पीछे नहीं थी। पर, उनके थोड़ेहीसे नमूने सुभाषित ग्रन्थोंमें सुरक्षित हैं। कलकत्ता विश्वविद्यालयके डा० यतीन्द्रविमल चौधरीने "संस्कृत पोएटिसेस" (संस्कृत कवयित्रियाँ) में कितनियोंकी रचनाओंको संगृहीत किया है, जिनमें बिज्जा या बिज्जिकाके भी पद्य हैं।

स्फुट-संग्रहः

(१) चाटुकारिता—

१. भूपालाः शशि-भास्करान्वयभवाः के नाम नासादिता,
भर्तारं पुनरेकमेव हि भुवस्त्वां देव मन्यामहे।

४७. वे बालोंको नोचते थे, अति विह्वलतासे क्रन्दन करते थे। बार-बार स्वामीके उपकारों को अत्यन्त शोकसे याद करते थे ॥३८॥

४८. अश्रुपूर्ण पुरवासी रावणको नमस्कार करते रो रहे थे। तब व्याकुल विभीषणसे रामने यह बात कही ॥३९॥

४९. "शत्रुओंके सिरपर खड़े होनेवाले, पितरोंकी पूजा और तर्पण करनेवाले, युद्धमें अखण्डित-अविपद्ग्रस्त रावणके लिये तुम क्यों शोक करते हो ॥४०॥

५०. आप जैसोंको दुःखमें अधिक मोह नहीं करना चाहिये। क्या नहीं देखते, ये सब लोग तुम्हारे सहारे हैं ॥४१॥

५१. तुमको भाईकी अन्त्येष्टि और इन लोगोंका शोकभंग करना चाहिये। हे राक्षसेश्वर, धुरंधर तुम्हारे विपद्युक्त होनेपर बिना वहन होता राज्य का भार डूब जायेगा" ॥४२॥

—सर्ग १८

२८. बिज्जा (विद्या ६१० ई०)

डा० चौधरीने इनका समय ईसाकी सातवीं सदीके आसपास माना है। किसी-किसीका कहना है कि यह किसी राजा चन्द्रादित्यकी पत्नी विजय-भट्टारिका थीं। इनके बारेमें यह भी मशहूर है कि दण्डीने सरस्वतीको जब सर्वशुक्ला कहा, तो विद्याने उसका प्रतिवाद करते हुए कहा—"नीलकमल सी श्यामा मुझ विज्जिकाको जाने बिना ही दण्डीने सरस्वतीको सर्वशुक्ला कहा", अर्थात् विद्या अपने समयकी द्वितीय सरस्वती थीं।

स्फुट संग्रह

१. चापलूसी—

१. (उसने) नग्र-पूर्वको कौनसे राजा नहीं पाये, पर हे देव, हम समझते हैं, पृथिवीने तुम्हीको एक स्वामी पाया, जिसने कि अंगदेशको जीत,

येनांगं परिमृज्य कुन्तलमथाकृष्य व्युदस्याऽऽयतं,
चोलं प्राप्य च मध्य-देशमधुना कांच्यां करः पातितः ॥१॥[1]

(२) खड्गः—

२. यशः-पुत्रं देव त्वदसि-लतिकाऽसूत समरे,
समीरस्तद्धूली - पटल - पट - राशिं विकिरति।
शिवा गायन्त्युच्चैर्नटति च कबन्धावलिरभूद्,
अरातीनां मोक्षं सपदि भव-बन्ध-व्यतिकरात् ॥२॥[2]

(३) कवि-प्रशंसा—

३. नीलोत्पल-दल-श्यामां विज्जकां मामजानता।
वृथैव दण्डिना प्रोक्ता सर्व-शक्ला सरस्वती ॥३॥[3]

(४) ग्राम्या—

४. मंचे रोमांचितांगी रति-मृदित-तनोः कर्कटी-वाटिकायां,
कान्तस्यांगे प्रमोदादभय-भुज-परिष्वक्त-कण्ठे निलीना।
पादेन प्रेंखयन्ती मुखरयति मुहुः पामरी फेरवाणां,
रात्रावत्रास-हेतोर्वृति-शिखर-लता-लम्बिनीं कम्बु-
मालाम् ॥८॥[4]

(५) विरहिणी—

५. देवेन प्रथमं जितोऽसि शशभृल्लेखाभृताऽनन्तरं,
बुद्धेनोद्धत-बुद्धिना स्मर ततः कान्तेन पान्थेन मे।
त्यक्त्वा तान् बत हंसि मामतिकृशां बालामनाथां स्त्रियं,
धिक् त्वां धिक् तव पौरुषं धिगुदयं धिक्कार्मुकं धिक्
शरान् ॥९॥[5]

---

१. शार्दूलविक्रीडितम्। २. शिखरिणी। ३. अनुष्टुप्।
४. स्रग्धरा।

कुंतलको छोन, विस्तृत चोल देशको हरा, अब मध्यदेशको लेकर कांचीके ऊपर हाथ डाल रहा है ।।१।।

२. खड्गकी प्रशंसा—

२. हे देव, समरमें तुम्हारी खड्ग-लतासे यशरूपी पुत्र पैदा हुआ, वायु उसके धूलियों रूपी वस्त्रको राशिको फैलाता है। शियारियां ऊंचे गाती हैं, शिरहीन धड़ नाचते हैं, संसारके बन्धनसे शत्रुओं-का मोक्ष तुरंत हो गया ।।२।।

३. कविकी प्रशंसा—

३. नीलकमलके पत्रोंमी श्यामा मुझ विज्जिकाको जाने बिना, दण्डीने व्यर्थ ही सरस्वतीको पूरा सफेद कहा ।।३।।

४. ग्रामीण स्त्री—

४. ककड़ीके खेतमें मचान पर रति-मर्दित-शरीरवाली, पतिके शरीरपर निर्भय भुजासे आलिंगित-कंठवाली, रोमांचित अंगयुक्त लेटी, पैर पीटती ग्रामीणा रातको गीदड़ोंको डरानेके लिये, घिरी शिखर-लतासे लटकती शंखोंकी मालाको बार-बार बजा रही है ।।८।।

५. विरहिणी—

५. हे कामदेव, पहले देव चन्द्रशेखर द्वारा तू जीता गया, फिर विशाल बुद्धिवाले बुद्ध द्वारा, तब मेरे बटोही कान्त द्वारा। उन्हें छोड़कर हाय मुझ अनाथा अतिदुर्बल बाला स्त्रीको तू मार रहा है। तुझे धिक्कार, तेरे पौरुषको धिक्कार, (तेरे) हृदयको धिक्कार, धनुषको धिक्कार, तेरे शरोंको धिक्कार ।।९।।

(६) पथिक-कामिनी—

६. मेघैर्व्योम नवाम्बुभिर्वसुमती विद्युल्लताभिर्दिशो,
धाराभिर्गगनं वनानि कुटजैः पूरैर्वृता निम्नगाः।
एकां घातयितु वियोग-विधुरां दीनां वराकीं स्त्रियं,
प्रावृट्-काल हताश, वर्णय कृतं मिथ्या किमाडम्बरम् ॥१०॥[1]

(७) दृष्टिः—

७. जनयति जननाथ दृष्टिरेषा,
तव नवनीतल-सरोरुहाभिरामा।
प्रणयिषु सुसमाश्रितेषु लक्ष्मी-
मरिषु च भंगमनंगमंगनासु ॥१२॥[2]

(८) प्रोषित-भर्तृकोक्तिः—

८. विज्ञप्तिरेषा मम जीव-बन्धो,
तत्रैव नेया दिवसाः कियन्तः।
संप्रत्ययोग्य-स्थितिरेष देशः,
करा हिमांशोरपि तापयन्ति ॥१५॥[3]

(९) तडागान्योक्तिः—

९. माद्यद्दिग्गज-दान-लिप्त-करट-प्रक्षालन-क्षोभिता,
व्योम्नः सीम्नि विचेरुरप्रतिहता यस्योर्मयो निर्मलाः।
कष्टं भाग्य-विपर्ययेण सरसः कल्पान्तर-स्थायिनस्,
तस्याप्येक-बक-प्रचार-कलुषं कालेन जातं जलम् ॥१८॥[4]

---

१. शार्दूलविक्रीडितम्। २. पुष्पिताग्रा। ३. उपजातिः। ४. हरिणी।

६. बटोहीकी पत्नी—

१. मेघोंसे आकाश ढंक गया, नये जलसे धरती, बिजलीसे दिशायें, धाराओंसे गगन, कुटजोंसे वन, धाराओंसे नदियां (ढंक गईं)। एक वियोग-पीड़ित दीन बेचारी स्त्रीको मारनेके लिये, हे अभागे वर्षाकाल, तूने (इतना) मिथ्या आडम्बर क्यों किया?॥१०॥

७. चितवन—

७. हे राजन्, तुम्हारी नवीन नीलकमलसी सुन्दर यह दृष्टि, आश्रित प्रणयी जनोंमें लक्ष्मीको शत्रुओंमें नाशको, और स्त्रियोंमें कामको उत्पन्न करती है॥१२॥

८. परदेसीकी पत्नीका संवाद—

८. हे जीवनबन्धु, मेरी यह विनती है, कि तुम कुछ दिन (और) वहीं बिताओ। इस समय यह देश रहने योग्य नहीं है, क्योंकि चन्द्रमाकी किरणें भी यहां ताप दे रही हैं॥१५॥

९. अन्योक्ति—

९. जिसकी निर्मल लहरें, मत्त-दिग्गजके मदसे भिन्न कपोलोंके, धोनेसे शोभित हो, अप्रतिहत आकाशकी सीमा तक विचर रही हैं, कल्पान्त तक रहनेवाले उस सरोवरका भी जल, हा कष्ट, उलटे भाग्यके कारण, काल पा (आज) एक बगलेके चलनेसे मलिन होने लायक हो गया। ॥१८॥

(१०) दैवोपालम्भः—

१०. प्रियसखि, विपद्-दण्ड-भ्रान्त-प्रपात-परम्परा-
परिचय-चले चिन्ता-चक्रे निधाय विधिः खलः।
मृदमिव दलात् पिण्डीकृत्य प्रगल्भ-कुलालवद्,
भ्रमयति मनो नो जानीमः किमत्र करिष्यति ॥१९॥[१]

११. विरम विफलायासादस्माद् दुरध्यवसायतो,
विपदि महतां धैर्य-भ्रंशं यदीक्षितुमीहसे।
अयि जड-विधे कल्पापाय-व्यपेत-निज-क्रमाः,
कुल-शिखरिणः क्षुद्रा नैते न वा जल-राशयः ॥२०॥[१]

(११) उलूखल-गीतिः—

१२. विलास-मसृणोल्लसन्मुसल-लोल-दोः-कन्दली-,
परस्पर-परिस्खलद्-वलय-निःस्वनोद्बन्धुराः।
लसन्ति कल-हुंकृति-प्रसभ-कम्पितोरः-स्थल-,
त्रुटद्-गमक-संकुलाः कलम-कण्डनी-गीतयः ॥२१॥[३]

(१२) चम्पकः—

१३. केनापि चम्पक-तरो बत, रोपितोऽसि,
कुग्राम-पामर-जनान्तिक-वाटिकायाम्।
यत्र प्ररूढ़-नव-शाक-विवृद्ध-लोभाद्,
भो भग्न-वाट-घटनोचित-पल्लवोऽसि ॥२२॥[४]

(१३) तरुः—

१४. सच्छायं फल-भार-नम्र-शिखरं सर्वार्ति-शान्ति-प्रदं
त्वामालोक्य सु-भूरुहं खलु वयं मार्गं विहायाऽऽगताः।[५]

१. पृथ्वी, २. वसन्ततिलका, ३. शार्दूलविक्रीडितम्, ४. आर्या,
५. हरिणी।

१०. दैवको उलाहना—

१०. हे प्रिय सखि, विपद्रूपी डंडेके छोरके लगातार गिरनेसे परिचयमें चिन्ताके चक्करमें चंचल मनको रखकर, ढीठ कुम्हार द्वारा जबर्दस्ती पिंड बनाई मिट्टीकी तरह घुमाता दुष्ट विधाता, जाने यहां क्या करनेवाला है ॥१९॥

११. विपद्में बड़ोंके धैर्य टूटनेको जो देखना चाहता है, तो तू इस विफल परिश्रमवाली बुरी कोशिशसे रुक जा। हे जड़ दैव, यह प्रलयके (महा)नाशमें भी अपने स्वभावमें अविचल, कुल-पर्वत हैं, क्षुद्र जलराशि नहीं है ॥२०॥

११. ओखल-गीति—

१२. लीला-स्नेहयुक्त उठते मूसलसे चंचल बाहुरूपी कंदलीके द्वारा परस्पर गिरती चूड़ियोंकी खनखनसे सुन्दर मधुर हुंकारके साथ, जोरसे कंपित वक्षस्थलसे टूटते, तालके सहित धान कूटनेकी गीतें शोभा दे रही हैं ॥२१॥

१२. चम्पक—

१३. हे चम्पा वृक्ष, हाय किसीने तुम्हें कुग्रामके पामर जनोंके पास, आखिरी बारीमें रोप दिया, जहांपर उगे हुये नये सागकी वृद्धिके लोभसे, टूटी बारीको ठीक करनेके लिये उपयुक्त तुम्हारा पल्लव (माना गया) है ॥२२॥

१३. तरु—

१४. अच्छे छायादार फलके भारसे झुके शिखरवाले, सबसे अधिक शांतिप्रद, सुवृक्ष, तुम्हें देखकर हम रास्ता छोड़कर आ गये। यदि तुम्हारा

अन्तस्ते यदि कोटरोदर-चलद्-व्यालावली-विस्फुरद्-
वक्त्रोद्वान्त-विषानलातिभयदं वन्यस्तदानीं भवान् ॥२३॥

(१४) सूर्योदय-वर्णनम्—

१५. उन्निद्र-कोकनद-रेणु-पिशंगितांगा
गायन्ति मंजु मधुपा गृह-दीर्घिकासु।
एतच्चकास्ति च रवेर्नव-बन्धु-जीव-
पुष्पच्छदाभमुदयाचल-चुम्बि बिम्बम् ॥२४॥

(१५) वर्षा—

१६. सोत्साहा नव-वारि-भार-गुरवो मुंचन्तु नादं घनाः,
वाता वान्तु कदम्ब-रेणु-शवला नृत्यन्त्वमी बर्हिणः।
मग्नां कान्त-वियोग-दुःख-जलधौ दीनां विलोक्यांगनां,
विद्युत् प्रस्फुरसि त्वमप्यकरुणा स्त्रीत्वेऽपि तुल्येऽसति ॥२५॥

१७. अस्थिरमनेक-रागं गुण-रहितं नित्य-वक्र-दुष्प्रापम्।
प्रावृषि सुरेन्द्र-चापं विभाव्यते युवति-चित्तमिव ॥२६॥

१८. मलिन-हुत-भुग्-धूप-श्यामैर्दिशो मलिना घनै-
रविरल-तृणैः श्यामा भूमिर्नवोद्गत-कंदलैः।
सुरत-सुभगो नूनं कालः स एव समागतोः,
मरण-शरणा यस्मिन्नेते भवन्ति वियोगिनः ॥२७॥

(१६) वसन्तः—

१९. किंशुक-कलिकान्तर्गतमिन्दु-कला-स्पर्धि केसरं भाति।
रक्त-निचोलक-पिहितं धनुरिव जतु-मुद्रितं वितनोः ॥२८॥

भीतरी रूप, कोटरके गर्भमें चलते सांपोंके लहलहाते मुखोंसे उगले विष-ज्वाला के कारण अति भयप्रद है, तो आप धन्य हैं ।।२३।

१४. सूर्योदय-वर्णन—

१५. फूले कमलकी धूलिसे पीले अंगवाले भंवरे घरकी दीर्घिकाओंमें मधुर गान करते हैं। नवीन अडहुल फूलके पत्र सा चमकनेवाला, उदयाचलको चूमनेवाला यह सूर्यमंडल चमक रहा है ।।२४।।

१५. वर्षा—

१६. (भले ही) नवीन जलके भारसे भारी उत्साह-सहित मेघ (अपना) नाद छोड़े। कदंबके केसरसे लिप्त वायु बहे, मोर नाचें। हे विद्युत्, पति-वियोगरूपी दुःख-सागरमें डूबी दीन अंगनाको देखकर जो तू कौंधती है, तो तू मेरे समान स्त्री होनेपर भी निष्ठुर है ।।२५।।

१७. अस्थिर नाना रंगयुक्त, गुण-रहित नित्य कुटिल और दुर्लभ, (यह) वर्षाकालका इन्द्रधनुष युवतीके चित्तसा दीखता है ।।२६।।

१८. अग्निके मलिन धूयें जैसे से श्याम बादलों द्वारा दिशायें मलिन हैं, नये निकले कंदवाले घने तृणोंसे भूमि श्याम है। इस लिये सचमुच वही सुन्दर काल आ गया है, जिसमें वियोगी के लिये मरण (ही) शरण होता है ।।२७।।

१६. वसन्त—

१९. टेसूकी कलीके भीतर स्थित चन्द्रकलाके साथ होड़ लगानेवाला केसर शोभा देता है। मानो लाल थैलीमें छिपा जगत्को मुद्रित कामदेवका धनुष है ।।२८।।

२९. बाण (६२० ई०)

बाण वर्तमान आरा जिला (बिहार) में सोन नदीके दाहिने तटपर अवस्थित प्रीतिकूटके निवासी थे। संस्कृत गद्यकाव्य इनकी कृतियोंके रूपमें अपने चरम उत्कर्षपर पहुँचा। बाण हर्षवर्धन शीलादित्य (६०७–४७ ई०)के दरबारी कवि थे। यह एक बड़े समृद्ध कुलमें पैदा हुए थे, जिसके कारण चाटुकारितामें निपुण नहीं हो सकते थे। इनके व्यक्तित्वका पता "हर्ष-चरित" और "कादम्बरी"से मिलता है। शायद इनकी तरहकी प्रकृतिके और आढ्य कुलमें उत्पन्न हुए दूसरे संस्कृतके कवि क्षेमेन्द्र थे। क्षेमेन्द्रने बहुत लिखा, उनके "दशावतारकाव्य"से पता लगता है, कि उनमें टकसाली कवि बननेकी भी प्रतिभा थी। बाण अपनी "कादम्बरी"को पूरा नहीं कर सके, जिसे उनके पुत्र भूषण भट्टने समाप्त किया। उपरोक्त दो श्रेष्ठ

१. हर्ष-चरितम्

(१) प्रास्ताविकम्—

१. उच्छ्‌वासान्तेऽप्यखिन्नास्ते येषां वक्त्रे सरस्वती।
कथमाख्यायिकाकारा न ते वन्द्याः कवीश्वराः॥१०॥

२. कवीनामगलद् दर्पो नूनं वासवदत्तया।
शक्त्येव पाण्डुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम्॥११॥

३. पदबन्धोज्ज्वलो हारी कृतवर्णक्रमस्थितिः।
भट्टारहरिचन्द्रस्य गद्यबन्धो नृपायते॥१२॥

४. अविनाशिनमग्राम्यमकरोत्सातवाहनः।
विशुद्धजातिभिः कोशं रत्नैरिव सुभाषितैः॥१३॥

५. कीर्तिः प्रवरसेनस्य प्रयाता कुमुदोज्ज्वला।
सागरस्य परं पारं कपिसेनेव सेतुना॥१४॥

२९. बाण (६२० ई०)

गद्यकाव्योंके अतिरिक्त "चण्डीशतक", "पार्वती-परिणय", "मुकुटताडितक" तीन और ग्रन्थोंका इन्हें रचयिता बतलाया जाता है। यह भी किंवदन्ती है, कि "रत्नावलि", "प्रियदर्शिका" और "नागानन्द" तीनों नाटकोंके भी रचयिता बाण ही थे, जो उनके आश्रयदाता हर्षवर्धनकी कृतिके नामसे प्रसिद्ध हैं। हो सकता है, इन नाटकोंको हर्षवर्धनने लिखा हो, और बाणने उनका प्रतिसंस्करण किया हो। बाण प्रथम श्रेणीके घुमक्कड़ थे। यौवनके आरम्भ होते ही तीन दर्जनसे अधिक गुणियों और कलाकारोंकी मण्डली लेकर वह कई वर्षोंतक देशाटन करते रहे, देशाटन और [illegible] बहुत लाभ भी हुआ। इनकी कृतियोंमें तत्कालीन [illegible] विस्तृत और गम्भीर, आकर्षक और अपुनरुक्त चित्रण मिलता है, वैसा और जगह मिलना दुर्लभ है।

१. हर्षचरित

१. प्रस्तावना

१. जिनके मुंहपर सरस्वती (वास करती) है, वे आख्यायिकाकार, कवीश्वर क्यों न वन्दनीय हों ॥१०॥

२. निश्चय ही वासवदत्तासे कवियोंका दर्प गलित हो गया। जैसे कर्ण (कान) के गोचर हुई शक्तिसे पांडुपुत्रों का (दर्प) ॥११॥

३. पदोंके बन्धसे उज्ज्वल वर्णोंके क्रमकी स्थितिसे मनोहर, भट्टार हरिश्चन्द्रकी गद्य-रचना राजती है ॥१२॥

४. सातवाहनने विशुद्ध जाति के रत्नों जैसे सुभाषितों द्वारा, अपने अमर तथा अग्राम्य कोश[1]को रचा ॥१३॥

५. कुमुद सी उज्ज्वल प्रवरसेन[2]की कीर्ति, सेतु द्वारा वानर-सेनाकी तरह सागरके परले पार पहुंच गई ॥१४॥

---

१. गाथासप्तशती

६. सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥१५॥

७. निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु ।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मंजरीष्विव जायते ॥१६॥

८. समुद्दीपितकंदर्पा कृतगौरीप्रसाधना ।
हरलीलेव नो कस्य विस्मयाय वृहत्कथा ॥१७॥

—उच्छ्वासः १

(२) राजदूतागमनम्

९. ग्रीष्मसमये कदाचिदस्य स्वगृहावस्थितस्य भुक्तवतोऽपराह्णसमये भ्राता पारशवश्चन्द्रसेननामा प्रविश्याकथयत्—"एष खलु देवस्य चतुःसमुद्राधिपतेः सकलराजचक्रचूडामणिश्रेणीशाणकोणकषणनिर्मलीकृतचरणनखमणेः सर्वचक्रवर्तिनां धौरेयस्य महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीहर्षदेवस्य भ्रात्रा कृष्णनाम्ना भवतामन्तिकं प्रज्ञाततमो दीर्घाध्वगः प्रहितो द्वारमध्यास्त" इति । सोऽब्रवीत्—"आयुष्मन्, अविलंबं प्रवेशय एनम्" इति ।

१०. अतिदूरगमनगुरुजडजंघम्, कार्दमिकचेलचीरिकानियमितोच्चण्डचण्डातकम्, पृष्ठप्रेंखत्पटच्चरकर्पटघटितगलितग्रन्थिम्, अतिनिबिडसूत्रबन्धनिम्नितान्तरालकृतव्यवच्छेदया लेखमालिकया परिकलितमूर्धानम्, प्रविशन्तं लेखहारकमद्राक्षीत्, अप्राक्षीच्च दूरादेव—"भद्र, भद्रमशेषभुवननिष्कारणबन्धोस्तत्र भवतः कृष्णस्य" इति ।

६. सूत्रधार द्वारा किये आरंभवाले, बहुत भूमिका (अभिनय) वाले (अपने) नाटकोंसे पताका-युक्त देवकुलों (छतरियों) की तरह भासने यश प्राप्त किया ॥१५॥

७. कालिदासकी निकली सूक्तियोंमें, मधुर घनी मंजरियोंमें जैसी, प्रीति किसको नहीं होगी ॥१६॥

८. कामोत्तेजक, गौरीकी आराधना किये हरकी लीला की तरह बृहत्कथा किसके लिये विस्मयकारिणी नहीं होगी ॥१७॥

—उ० १

२. राजाके दूतका आगमन—

९. ग्रीष्मकालमें एक बार घर पर रहते भोजन करनेके बाद अपराह्न समयमें बाणके भिन्न-वर्णज भाई चन्द्रसेनने प्रवेश करके कहा—"चारों समुद्रोंके अधिपति, सारे राजाओंकी चूड़ामणियोंरूपी कर्णाटोंके कोने द्वारा घिसनेसे निर्मल चरण-नखकी मणियोंवाले, सारे चक्रवर्तियोंमें धुरंधर, देव महाराजाधिराज परमेश्वर श्री हर्षदेवके भाई कृष्ण का भेजा दीर्घयात्री अतिप्रसिद्ध दूत द्वारपर खड़ा है।" बाणने कहा—"आयुष्मान्, बिना विलंबके उसे भीतर लाओ।"

१०. तब बड़ी दूरकी यात्रासे भारी तथा जड़ जंघावाले, गर्द भरे वस्त्र-खंडसे बंधी ऊंची जांघियावाले, पीठपर हिलते कपड़ेसे बंधे शिथिल ग्रंथि-वाले बहुत घने सूत्रके बंधनसे रुके, पीनरूपसे निकली हुई पत्रिका द्वारा शोभित सिरवाले, पत्रवाहकको बाणने प्रवेश करते देखा और दूरसे ही पूछा—"भद्र, सारे भुवनके अकारण-बन्धु आप कृष्णका मंगल तो है?"

११. स "भद्रम्" इत्युक्त्वा प्रणम्य नातिदूरे समुपाविशत्। विश्रान्तश्चाब्रवीत्—"एष खलु स्वामिनो माननीयस्य लेखः प्रहितः" इति विमुच्य चार्पयत्।

१२. अथ बाणः सादरं गृहीत्वा स्वयमेवावाचयत्—"मेखलकात् संदिष्टमवधार्य फलप्रतिबन्धी धीमद्भिरपहरणीयः कालातिपात इत्येतावदत्रार्थजातम्। इतरद्वार्तासंवादनमात्रकम्।" अवधृतलेखार्थश्च सममुत्सारितपरिजनः संदेशं पृष्टवान्। मेखलकस्त्ववादीत्—"एवमाह मेधाविनं स्वामी—'जानात्येव मान्यः यथैकगोत्रता वा, समानजातिता वा, समं संवर्धनं वा, एकदेशनिवासो वा, दर्शनाभ्यासो वा, परस्परानुरागश्रवणं वा, समानशीलता वा, स्नेहस्य हेतवः। त्वयि तु विना कारणेऽनादृष्टेऽपि प्रत्यासन्ने बन्धाविव बद्धपक्षपातं किमपि स्निह्यति मे हृदयं दूरस्थेऽपीन्दोरिव कुमुदाकरे। भवन्तमन्तेरणान्यथा चान्यथा चायं चक्रवर्ती दुर्जनैर्ग्राहित आसीत्। न च तत्तथा। न सन्त्येव ते येषां सतामपि सतां न विद्यन्ते मित्रोदासीनशत्रवः। शिशुचापलापराचीनचेतोवृत्तितया च भवतः केनचिदसहिष्णुना यत्किंचिदसदृशमुदीरितम्। इतरो लोकस्तथैव तद् गृह्णाति वक्ति च।

१३. सलिलानीव गतागतिकानि लोलानि खलु भवन्त्यविवेकिनां मनांसि। बहुमुखश्रवणनिश्चलीकृतनिश्चयः किं करोतु पृथिवीपतिः। तत्त्वान्वेषिभिश्चास्माभिर्दूरस्थितोऽपि प्रत्यक्षीकृतोऽसि। विज्ञप्तश्चक्रवर्ती त्वदर्थम्—'यथा प्रायेण प्रथमे वयसि सर्वस्यैव चापलैः शैशवमपराधी'ति। तथेति च प्रतिपन्नं स्वामिना। अतो भवता राजकुलमक्ु-

११. "मंगल है" कहकर वह, प्रणाम कर समीपमें बैठ गया। फिर (थोड़े) विश्रामके बाद —"यह माननीय स्वामीका भेजा हुआ पत्र है", कह खोलकर उसे प्रदान किया।

१२ तब बाणने आदरपूर्वक लेकर स्वयं ही उसे बांचा—"मेखलकसे संदेशको जानकर फल-अनुरोधी बुद्धिमान् आप देर न करें, यही यहां मतलब है। और तो बातका समर्थन मात्र है।" पत्रके अभिप्रायको जानकर परिजनोंको हटा (बाणने) मेखलकसे सन्देश पूछा। मेखलकने कहा—"मेधावी आपको हमारे स्वामीने यों कहा है—'माननीय आप जानते ही हैं, कि स्नेहके कारण होते हैं: एक गोत्र या एक जातिका होना, या साथ पालन-पोषण होना, या एक देशमें निवास होना, या बराबर देखते रहना, या पारस्परिक अनुरागको सुनना, या परोक्षमें उपकार करना, या एक जैसे शीलका होना। तुम्हें न देखे होनेपर भी अकारण ही सन्निकटके बन्धुकी तरह, कुमुदाकरमें दूरस्थ चन्द्रमाकी तरह, पक्षपाती हो मेरा हृदय (तुमसे) कुछ स्नेह करता है। तुम्हारी अनुपस्थितिमें दुर्जनोंने इस चक्रवर्ती (हर्ष) को उलटा-उलटा समझा दिया। पर वह वैसा नहीं है। सत्पुरुष होते भी ऐसे पुरुष (दुनियामें) नहीं होते, जिनके मित्र, उदासीन और शत्रु न होवें। बाल-चपलता की ओर की चित्तवृत्ति होनेके कारण किसी असहिष्णुने आपके सम्बन्धमें जो कुछ अयुक्त बात कह दी, दूसरे लोग उसे वैसे ही ग्रहण करते और कहते हैं।

१३. अविवेकियोंके मन पानीकी तरह गतानुगतिक चंचल होते हैं। बहुत मुखोंसे सुननेसे स्थिर-निश्चय किये पृथिवीपति क्या करें? इस तत्वान्वेषी दूर रहते भी तुम्हारा मतलब लिये से हैं। तुम्हारे आगे मैं ह ने चक्रवर्तीको अर्ज किया है। [illegible] और [illegible] ही [illegible] सज्जनताका अपराधी [illegible] है। स्वामीने भी 'ठीक है' कहा है। इसलिये बिना देर किये आप राजद्वारको आयें। [illegible]

तकालक्षेपमागन्तव्यम्। अवकेशीवादृष्टपरमेश्वरो बन्धुमध्यमधिवसन्नासि मे बहुमतः। न च सेवावैषम्य-विषादिना वा परमेश्वरोपसर्पणभीरुणा भवता भवितव्यम्। यतो यद्यपि—

१४. स्वेच्छोपजातविषयोऽपि न याति वक्तुं,
देहीति मार्गणशतैश्च ददाति दुःखम्।
मोहात्समाक्षिपति जीवनमप्यकाण्डे,
कष्टं मनोभव इवेश्वरदुर्विदग्धः ॥३॥

१५. "तथाप्यन्ये ते भूपतयः, अन्य एवायम्। न्यक्कृतनृगनिषधनहुषाम्बरीषदशरथदिलीपनाभागभरतभगीरथययातिरमृतमयः स्वामी। नास्याहंकारकालकूटविषदिग्धदुष्टा दृष्टयः, न गर्वगुरुगरलग्रहगदगद्गदा गिरः, नातिस्मयोन्मापस्मारविस्मृतस्थैर्याणि स्थानकानि, नोद्दाममदर्पदाहज्वरवेगविक्लवा विकाराश्च, नाभिमानमहासंनिपातनिर्मितांगभंगानि गतानि, न मदार्दितवक्रीकृतौष्ठनिष्ठ्यूतनिष्ठुराक्षराणि जल्पितानि। तथा च अस्य विमलेषु साधुषु रत्नबुद्धिः, न शिलाशकलेषु। मुक्ताधवलेषु गुणेषु प्रसाधनधीः, नाभरणभारेषु। दानवत्सु कर्मसु साधनश्रद्धा, न करिकीटेषु। सर्वाग्रेसरे यशसि महाप्रीतिः, न जीवितजरत्तृणे। गृहीतकरास्वाशासु प्रसाधनताभियोगः, न निजकलत्रधर्मपुत्रिकासु। गुणवति धनुषि सहायबुद्धिः, न पिण्डोपजीविनि सेवकजने। अपि च—अस्य मित्रोपकरणमात्मा, भृत्योपकरणं प्रभुत्वम्, पण्डितोपकरणं वैदग्ध्यम्, बान्धवोपकरणं लक्ष्मीः, कृपणोपकरणमैश्वर्यम्,

देखे बिना निष्फल वृक्षकी तरह, बन्धुओंके बीच बसते तुम मेरे बहु-मान्य हो। आप सेवाकी विषमतामें खिन्न अथवा महाराजके पास आनेमें भयभीत न होवें, क्योंकि यद्यपि,

१४. अहो, दुर्पंडित राजा, कामदेवकी तरह स्वेच्छासे उत्पन्न विषय (देश) वाला होते भी बोला नहीं जा सकता, सैकड़ों मंगतों (वाणों) द्वारा "दो" (कहना) दुःख देता है, मोह वश जीवनको भी असमय ही फेंक देता है ॥३॥

१५. तो भी वे भूपति और हैं, यह (हर्ष) दूसरे ही हैं। **नृग-नल--निषध-नहुष-अम्बरीष-दशरथ-दिलीप-नाभाग-भगीरथ--ययातिको** (इन्होंने) हेय किया है। इन स्वामी की दृष्टि अहंकाररूपी कालकूट विषसे लिप्त होकर दुष्ट नहीं है, वाणी गर्वके भारी विषसे गलेके ग्रहणरूपी रोगसे गद्‌गद् नहीं है, स्थितियां अति आश्चर्यकी हैं, घर्मोंकी मृगी द्वारा (इनकी) स्थिरता भुलाई जानेवाली नहीं है, उत्कट अभिमानके दाह-ज्वरके ज्वरसे विह्वल करने वाले विकार नहीं हैं, गतियां अभिमानरूपी महासंनिपातसे बने अंग-भंगवाली नहीं हैं, कथन मदसे पीड़ित टेढ़े किये ओठसे निकले निष्ठुर अक्षरोंवाले नहीं हैं। और भी, निर्मल यह साधुओंको रत्न मानते हैं, शिलाखंडोंको नहीं। मोतीसे उज्ज्वल गुणोंको अलंकार मानते हैं, आभूषणके बोझोंको नहीं। दानयुक्त कर्मों को साधन मानते, हैं, हाथियों और भ्रमरोंको नहीं। सर्वश्रेष्ठ यशमें महाप्रीति रखते हैं, जीवनके जीर्ण होते तृणमें नहीं। लिये कर (शुल्क) वाली आशाओं (दिशाओं) में प्रसाधनका उपयोग करते हैं, निज स्त्रीरूपी चमड़ेकी पुतलियोंमें नहीं। गुणवाले धनुषमें (इनका) मित्रताका भाव है, पिंडपर जीनेवाले सेवकजनों पर नहीं। और भी, इनका मित्रोंका उपकरण (साधन) अपने आप है, मृत्युका साधन प्रभुता है, पंडितका साधन विदग्धता, बान्धवका साधन लक्ष्मी, दरिद्रोंका उपकरण ऐश्वर्य, ब्राह्मणोंका उपकरण सारा सर्वस्व, सुकृतके स्मरणका उपकरण हृदय, धर्मका उपकरण आयु, साहसका

द्विजोपकरणं सर्वस्वम्, सुकृतसंस्मरणोपकरणं हृदयम्, धर्मोपकरणमायुः, साहसोपकरणं शरीरम्, असिलतोपकरणं पृथिवी, विनोदोपकरणं राजकम्, प्रतापोपकरणं प्रतिपक्षः। नास्याल्पपुण्यैरवाप्येत सर्वातिशायिसुखरसप्रसूतिः पादपल्लवच्छाया" इति।

श्रुत्वा च तमेव चन्द्रसेनं समादिशत्—"कृतकशिपुं विश्रान्तसुखिनमेनं कारय" इति।

—उच्छ्वासः २

(३) बाणस्य यात्रा—

१६. अथान्यस्मिन्नहन्युत्थाय, प्रातरेव स्नात्वा, धृतधवलदुकूलवासाः, गृहीताक्षमालः, प्रास्थानिकानि सूक्तानि मन्त्रपदानि च बहुशः समावर्त्य, देवदेवस्य विरूपाक्षस्य क्षीरस्नपनपुरःसरां सुरभिकुसुमधूपगन्धध्वजवलिविलेपनप्रदीपकबहुलां विधाय पूजाम्, परमया भक्त्या प्रथमहुततरलतिलत्वग्विचटलचटुलमुखरशिखाशेखरं प्राज्याज्याहुतिप्रवर्धितदक्षिणार्चिषं भगवन्तमाशुशुक्षणिं हुत्वा, दत्वा द्युम्नं यथाविद्यमानं द्विजेभ्यः, प्रदक्षिणीकृत्य प्राङ्मुखीं नैचिकीम्, शुक्लांगरागः, शुक्लमाल्यः, शुक्लवासाः, रोचनाचित्रदूर्वाग्रपल्लवग्रथितगिरिकर्णिकाकुसुमकृतकर्णपूरः, शिखासक्तसिद्धार्थकः, पितुः कनीयस्या स्वस्रा मात्रेव स्नेहार्द्रहृदयया श्वेतवाससा साक्षादिव भगवत्या महाश्वेतया मालत्याख्यया कृतसकलगमनमंगलः, दत्ताशीर्वादः, बान्धववृद्धाभिरभिनन्दितः, परिजनजरतीभिर्वन्दितचरणैरभ्यनुज्ञातः, गुरुभिरभिवादितैराघ्रातः शिरसि, कुलवृद्धैर्वर्धितगमनोत्साहः, शकुनै-

उपकरण शरीर, तलवारका उपकरण पृथिवी, विनोदका उपकरण राजसभा, प्रतापका उपकरण शत्रु पक्ष है। पुण्यहीनोंको सबसे बढ़कर पुत्र रत्न पैदा करनेवाली, इनके पाद-पल्लवकी छाया आसानी के नहीं मिल सकती।"

(बात) सुनकर उसी चन्द्रसेनको बाणने आदेश दिया—"भोजन आदि कराकर इसे विश्राम सुख दिलवाओ।"

—उच्छ्वास २,

३. बाणकी यात्रा—

१६. तब दूसरे दिन उठकर सवेरे ही नहाकर बाणने श्वेत दुकूल वस्त्रको धारण किया, फिर रुद्राक्ष-माला लिये प्रस्थान-सम्बन्धी सूक्तों और मंत्रोंको बहुत बार दोहराया, दुग्ध-स्नान पूर्वक सुगंधित बहुत कुसुम-धूप-गन्ध-ध्वज-बलि-विलेपन-दीपक सहित देव-देव शिंकरकी पूजा की, फिर, परम भक्तिसे पहले हवन किये चटचट करके तिलोंके छिलकोंके फूटनेसे चंचल मुखर, शिखारूपी शेखरवाले घृत आहुतिसे बढ़े दाहिनी लौवाले भगवान् अग्निमें भक्ति-पूर्वक हवन किया, ब्राह्मणों को विद्यमानके अनुसार धन दान दिया। फिर, पूर्व-मुंह बैठी, होमकी गौको प्रदक्षिणा की। सफेद अंगराग, सफेद माला, सफेद वस्त्रवाले, गोरोचन और विचित्र दूबकी फुनगीके पल्लवसे गूंथे पहाड़ी कर्णिकार पुष्पसे बनाये कर्णाभरणको धारण, शिखामें सरसों लगाया (बाणने) माता की तरह स्नेहार्द्र हृदयवाली श्वेत वस्त्र-धारिणी साक्षात् भगवती महा-श्वेता (गौरी) सी पिता की छोटी बहिन मालती द्वारा किये सारे यात्रा-मंगल, और आशीर्वाद पाये। कुल-वृद्धाओं द्वारा अभिनंदित, सेवक-बूढ़ियों द्वारा वंदित-चरण अनुज्ञा प्राप्त, अभिवादन किये गुरुओं द्वारा सिरपर सूंघे, कुलके वृद्धों द्वारा गमनके लिये प्रोत्साहित, ज्योतिषियोंके मतके अनुसार शकुनों द्वारा, नक्षत्र निपन्न शोधे किये,

मौहूर्तिकमतेन कृतनक्षत्रदोहदः, शोभने मुहूर्ते हरितगोमयोपलिप्ताजिरस्थण्डिलस्थापितमसितेतरकुसुममालापरिक्षिप्तकण्ठं पिष्टपंचांगुलपाण्डुरं मुखनिहितनवचूतपल्लवं पूर्णकलशमुदीक्षमाणः, प्रणम्य कुलदेवताभ्यः कुसुमफलपाणिभिरप्रतिरथं जपद्भिर्निजद्विजैरनुगम्यमानः प्रथमचलितदक्षिणचरणः, प्रीतिकूटान्निरगात्।

१७. प्रथमेऽहनि घर्मकालकष्टं निरुदकं निष्पत्रपादपविषमं पथिकजननमस्क्रियमाणप्रवेशपादपोत्कीर्णकात्यायनीप्रतियातनं, शुष्कमपि पल्लवितमिव तृषितश्वापदकुलम्बितलोलजिह्वालतासहस्रैः पुलकितमिवाच्छभल्लगोलांगूललिह्यमानमधुगोलचलितसरघासंघातैः रोमांचितमिव दग्धस्थलीरूढस्थूलाभीरुकन्दलशतैः शनैश्चण्डिकाकाननमतिक्रम्य मल्लकूटनामानं ग्राममगात्। तत्र च हृदयनिर्विशेषेण भ्रात्रा सुहृदा च जगत्पतिनाम्ना संपादितसपर्यः सुखमवसत्। अथापरेद्युरुत्तीर्य भगवतीं भागीरथीं यष्टिग्रहकनाम्नि वनग्रामके निशामनयत्। अन्यस्मिन्दिवसे स्कन्धावारमुपमणितारमन्वजिरवति कृतसंनिवेशमाससाद। अतिष्ठच्च नातिदूरे राजभवनस्य।

—उ० २

(४) हर्षेणालापः—

१८. राजा तु तच्छ्रुत्वा दृष्ट्वा च तं गिरिगुहागतसिंहबृंहितगम्भीरेण स्वरेण पूरयन्निव नभोभागमपृच्छत्—"एष स बाणः?" इति। "यथाज्ञापयति देवः, सोऽयम्" इति विज्ञापितो दौवारिकेण। "न तावदेनमकृतप्रसादः

सुंदर मुहूर्तमें ताजे गोबरसे लिप्त आंगनके चबूतरेपर स्थापित कंठमें श्वेत कुसुमकी मालासे घिरे आटेके पाँचों अंगुलियोंके छापसे श्वेत आम्रपल्लववाले पूर्ण कलशको देखते, कुलदेवताओंको प्रणाम करके हाथमें पुष्प-फल लिये, विजयका जप करते अपने ब्राह्मणों द्वारा अनुगमन किये जाते पहले दाहिना चरण उठा बाण **प्रीतिकूट** नगरसे निकले।

१७. पहले दिन धीरे-धीरे **चण्डिकावन**को पार किया, जोकि ग्रीष्मकालके कष्टवाला निर्जल निष्पत्र निर्वृक्ष विषम है। नमस्कार जिसमें प्रवेश करते ही मिलनेवाले वृक्षमें पथिक जनोंके द्वारा की जाती कात्यायनी उत्कीर्ण हैं। (जो वन) सूखा होते भी प्यासे वन्य जन्तुओंकी लटकती चंचल हजारों जिह्वा-लताओं द्वारा पल्लवित सा, अच्छ, भालू, बानरों द्वारा चाटे जाते छत्तोंसे भगाई मधुमक्खियोंसे रोमांचित सा, पुलकितसा, जले स्थानोंमें उगे मोटे सतावरीके सैकड़ों कंदोंसे रोमांचित सा था। फिर **मल्लकूट** नामक गांवमें पहुँचे। वहां अपने अभिन्न-हृदय मित्र और भाई जगत्पतिसे सेवित हो सुखसे वास किया। दूसरे दिन भगवती **भागीरथी**को उतरकर (बाणने) **यष्टिग्रहक** (जठियांव) नामक जंगली गांवड़े में रात बिताई। अगले दिन **अजिरवती** नदीके पास बसे हुये **उपमणितार**(मनियर) नामक स्कन्धावार (कैम्प) में पहुंचे, और राजभवनसे नातिदूर ठहर गये।

—उच्छ्वास २

४. हर्षसे बातचीत—

१८. राजाने उस बातको सुनकर और उन्हें देखकर गिरि-गुहामें अवस्थित सिंहके किये गम्भीर स्वरसे आकाश मंडलको भरते हुये पूछा—"यही वह बाण है।" "जैसी महाराज आज्ञा करते हैं, यही है यह"

पश्यामि" इति तिर्यङ्नीलधवलांशुकशारां तिरस्करिणी-
मिव भ्रमयन्नपांगनीयमानतरलतारकस्यायामिनीं चक्षुषः
प्रभां परिवृत्य प्रेष्ठस्य पृष्ठतो निषण्णस्य मालवराज-
सूनोरकथयत्—"महानयं भुजंग" इति।

१९. तूष्णींभावेन त्वगमितनरेन्द्रवचसि तस्मिन्मूके च राजलोके
मुहूर्तमिव तूष्णीं स्थित्वा बाणो व्यज्ञापयत्—"देव,
अविज्ञाततत्व इव, अश्रद्दधान इव, नेय इव, अविदित-
लोकवृत्तान्त इव च कस्मादेवमाज्ञापयसि। स्वैरिणो
विचित्राश्च लोकस्य स्वभावाः प्रवादाश्च। महद्भिस्तु
यथार्थदर्शिभिर्भवितव्यम्। नार्हसि मामन्यथा संभावयितु-
मविशिष्टमिव। ब्राह्मणोऽस्मि जातः सोमपायिनां वंशे
वात्स्यायनानाम्। यथाकालमुपनयनादयः कृताः संस्काराः।
सम्यक्पठितः सांगो वेदः। श्रुतानि यथाशक्ति शास्त्राणि।
दारपरिग्रहादभ्यागारिकोऽस्मि। का मे भुजंगता?
लोकद्वयाविरोधिभिस्तु चापलैः शैशवमशून्यमासीत्।
अत्रानपलापोऽस्मि। अनेनैव च गृहीतविप्रतीसारमिव
मे हृदयम्। इदानीं तु सुगत इव शान्तमनसि, मनाविव
कर्तरि वर्णाश्रमव्यवस्थानां समवर्तिनीव च साक्षाद्दण्डभृति
देवे शासति सप्ताम्बुराशिरशनामशेषद्वीपमालिनीं महीं
क इवाविशंकः सर्वव्यसनबन्धोरविनयस्य मनसाप्यभिनयं
कल्पयिष्यति। आसतां तावन्मानुष्यकोपेताः। त्वत्प्र-
भावादलयोऽपि भीता इव मधु पिबन्ति। रथांगना-
मानोऽपि लज्जन्त इवाभ्यनुवृत्तिव्यसनैः प्रियाणाम्।
कपयोऽपि चकिता इव चपलायन्ते। शरारवोऽपि
सानुक्रोशा इव श्वापदगणाः पिशितानि भुंजते। सर्वथा

द्वारपाल ने अर्ज की। "बिना कृपा दिखाये इसे नहीं देखूंगा।" यह कहकर नील-श्वेत अंशुकके परदे जैसी तिरछी पलकोंसे खिची जाती चंचल पुतलियोंकी लम्बाई वाले नेत्रकी प्रभाको फेरकर पीठकी ओर बैठे अपने अतिप्रिय मित्र मावल-राजपुत्रसे (हर्ष) बोला—"यह महालम्पट है।"

१९. राजाके वचनके (यह) कहने पर और राजदरबारियोंके मूक रहनेपर क्षणभर मौन रह बाणने अर्ज की—"देव, बिना वास्तविकता जाने, बिना विश्वासके, भरमाये और लोक-वृत्तांतको न जाने बिना क्यों ऐसा फरमाते हैं? लोगोंके स्वभाव और किंवदंतियां मनमानी और विचित्र होती हैं। महान् पुरुषोंको तो यथार्थदर्शी होना चाहिये। मुझे उलटा मामूलीसा नहीं समझना चाहिये। मैं सोम-यज्ञ करनेवाले वात्स्यायनोंके वंशमें पैदा हुआ ब्राह्मण हूं। कालानुसार मेरे यज्ञोपवीत आदि संस्कार किये गये। अंगों-सहित वेदको अच्छी तरह पढ़ा। यथोचित शास्त्र सुने हैं। विवाह करके गृहस्थ हूं, (मुझमें) क्या लम्पटता है? दोनों लोकोंकी अविरोधिनी चंचलताओंसे मेरा बाल्य रहित नहीं रहा। इसका अपलाप मैं नहीं करता, और इसीसे खिन्न सा मेरा हृदय है। लेकिन, अब तो बुद्धकी तरह शान्त मनवाले, मनुकी तरह वर्ण-आश्रमकी व्यवस्थाओंके करनेवाले, और सातों समुद्रोंकी मेखलायुक्त सारी द्वीपमालाओंवाली पृथिवीपर साक्षात् दण्डधर महाराजके शासन करते समय कौन ऐसा है, जो बेखौफ हो सारे व्यसनोंके बंधु दुराचारोंका मनसे भी अभिनय करने की कल्पना करेगा। मधुपान रचनेवालोंकी बात तो अलग, आपके प्रतापसे भंवरे भी गगनांगन मधुपान करते हैं, चक्रवाक भी प्रियतमाओंके अधरोंके चुम्बनमें लज्जित से हैं, वानर भी

कालेन मां ज्ञास्यसि स्वामी स्वयमेव। अनर्वाचीनचित्त-वृत्तिग्राहिण्यो हि भवन्ति प्रज्ञावतां प्रकृतयः" इत्यभिधाय तूष्णीमभूत्।

२०. भूपतिरपि "एवमस्माभिः श्रुतं" इत्यभिधाय तूष्णीमेवाभवत्। संभाषणासनदानादिना तु प्रसादेन नैनमन्वग्रहीत्, केवलममृतवृष्टिभिः स्नपयन्निव स्नेहगर्भेण दृष्टिपातमात्रेणान्तर्गतां प्रीतिमकथयत्, अस्ताभिलाषिणि च लम्बमाने सवितरि विसर्जितराजलोकोऽभ्यन्तरं प्राविशत्।

—उच्छ्वास २

(५) सेना-निवेशः—

२१. स्वयमपि विसिस्मिये भूपालः। सर्वतो विक्षिप्तचक्षुश्चाद्राक्षीदावासस्थानसकाशात्प्रतिष्ठमानं स्कन्धावारं, अधोक्षजकुक्षेरिव युगादौ निष्पतन्तं जीवलोकं, अम्भोनिधिमिव कुम्भभुवो वदनात्प्लावितभुवनमुद्भवन्तं, अर्जुनबाहुदण्डसहस्रसंपिण्डितोन्मुक्तमिव सहस्रधा प्रवर्तमानं प्रवाहं नर्मदायाः।

२२. "प्रसर तात। भाव, किं विलम्बते ? त्वंगति तुरंगमः। भद्र, भग्नचरण इव संचरसि यावदमी पुरःसराः सरभसमुपरि पतन्ति। वाहयसि किमुष्ट्रम् ? न पश्यसि निर्दय, निःशूकशिशुं शयानम्। वत्स रामिल, रजसि यथा न नश्यसि न पश्यसि, गलति शक्तुप्रसेवकः। किमेवमित्वर, त्वरसे ? सौरभेय, सरणिमपहाय हयमध्यं धावसि। धीवरि, विशसि। गन्तुकामा मातंगि, मातंग-

चकितने ही चपलता करते हैं. हिंस्र जन्तु भी अनुकंपाके साथ मांस खाते हैं। समय पाकर मुझे स्वामी स्वयं पूरी तौरसे जानेंगे। विचार कर धारणा बनाना प्रज्ञावानोंका स्वभाव होता है।" यह कहकर वह (बाण) चुप हो गये।

२०. राजा भी "ऐसा हमने सुना है" कहकर चुप हो गया। पर, वार्तालाप (या) आसन-प्रदान आदि कृपामें उनपर अनुग्रह नहीं किया। अमृतवर्षामें नहलातेसे केवल स्नेहयुक्त दृष्टिपात मात्रसे (अपनी) आन्तरिक प्रीति दिखलाई। अस्त होनेके अभिलाषी सूर्यके ढलते समय (राजा) दरबारियोंको छोड़कर भीतर चला गया।

—उच्छ्वास २

५. सैनिक पड़ाव—

२१. स्वयं भी भूपाल विस्मित हो गये। सर्वत्र आंखें फैलाकर निवासस्थानके पाससे प्रस्थान करते (बाणने) स्कन्धावार (कैम्प) को देखा, जो कि मानो था—विष्णुकी कुक्षिसे सृष्टिके आदिमें निकलता हुआ जीवलोक, अगस्त्यके मुखसे समुद्रकी तरह बाढ़-ग्रस्त पैदा होता भुवन, अर्जुनकी हजार बाहुओंसे घिरा तथा उन्मुक्त हजारों धारोंमें चलता नर्मदाका प्रवाह।

२२. "फैल जाओ तात। मित्र क्यों देर करते हो? घोड़ा कूद रहा है? भद्र, तुम तो टूटे पैरवालेकी तरह चल रहे हो, जब कि आगे जानेवाले जल्दीसे ऊपर दौड़े जा रहे हैं। क्यों, ऊंट ले जा रहे हो? निष्ठुर, लघु शिशुको गोदमें नहीं देख रहे हो? [illegible] सनवाले हो, जो न नष्ट होते हो न देखते हो, [illegible] फटकर गिर रहा है। इत्वर (जल्दीबाजो) क्यों इस तरह जल्दी भग रहे हो? भारमेघ रास्ता छोड़, घोड़ोंके बांधने दौड़े हो। धीवर, मछली मारते हो?

मार्गम्। अंग, गलति तिरश्चीना चणकगोणी। गणयसि न मामारटन्तम्। अवटमतटेनावतरसि। सुखमास्व स्वैरिणि। सौवीरक, कुम्भो भग्नः। मन्थरक, खादिष्यसि गतः सन्निक्षुम्। उक्षाणं प्रसादय। कियच्चिरं चिनोपि चेट, वदराणि, दूरं गन्तव्यम्। किमद्यैव विद्रासि द्रोणक, द्राधीयसी दण्डयात्रा विनेकेन निष्ठुरकेण निष्क्रेयमस्माकम्। अग्रतः पन्थाः स्थपुटक। स्थावरक, यथा न भनक्षि फाणितस्थालीं गरीयान्गण्डकतण्डुलभारको न निर्वहति दस्यः। दासक, माषीणाममुतो द्राग्दात्रेण मुखयवसपूलकं लुनीहि। को जानाति यवसगतं गतानाम्। धव, वारय वलीवर्दान्। वाहीकरक्षितं क्षेत्रमिदम्। लम्बिता शकटी शार्करं धुरंधरं धुरि धवलं नियुंक्ष्व। यक्षपालित, प्रमदाः पिनक्षि। अक्षिणी किं ते स्फुटिते। हत हस्तिपक रे, दीव्यसि करिकरदण्डे। सम्मद, संमर्दकर्दमे स्खलसि। भ्रातर्भाव-विधुरबन्धो, उद्धर पंकादनड्वाहम्। इत एहि माणवक, घनेभघटासंघट्टसंकटे नास्ति निस्तरणम्।

—उच्छ्वासः ७

(६) आश्रम—

२३. अथ तेषां तरूणां मध्ये नानादेशीयैः स्थानस्थानेषु स्थाणूनाश्रितैः शिलातलेषूपविष्टैर्लताभवनाध्यावसद्भिररण्यानीनिकुंजेषु निलीनैर्विटपच्छायासु निषण्णैस्तरुमूलनिषेवमाणैर्वीतरागैरार्हतैर्मस्करिभिः श्वेतपटैः पाण्डुरिभिक्षुभिर्भागवतैर्वर्णिभिः केशलुंचनैः कापिलैर्जैनैर्लोकायतिकैः काणादैरौपनिषदैरैश्वरकारणिकैः

मातंगी, मातंगोंके मार्गमें जाना चाहती हो? मित्र, गिर रही है तिरछी हुई चनेकी गोंन। मेरे चिल्लानेको नहीं सुन रहा है? बिना तटके बेरास्ते उतर रहे हो। स्वेच्छाविहारिणि, मुझसे रहो। कांचिक (काजी) का घड़ा टूट गया। मंथरक, चल (डेरेपर) गया खाना। बैलोंको शान्त करो। चेट (नौकर) कितनी देर तक बेरों को चिनता रहेगा? दूर जाना है। द्रोणक, क्या आज ही लांघ जायेगा। लम्बी दंडयात्रा एक निष्ठुरकके बिना पूरी करनी है, आगे रास्ता ऊंचा नीचा है। स्थावरक, जिसमें गुड़के बरतन न टूटें। चावलके भारी बोझ-वाला वाहन नहीं निभ सकता। दासक, वहां उड़दोंके खेतोंमेंसे जल्दीसे दरांतीसे मुंहमें देने के लिए घासके थोडेसे पूलेको काट ले। कौन जानता है, नवतृण के पानेको। धव, बैलोंको हटा, रखवाले इसे रखा रहे हैं। गाड़ी लटक गई, जुयेमें उजले बहादुर धुरंधर (बैल) को जोत। यक्षपालित, प्रमदाओंको पीस रहा है? क्या तेरी आंखें फूट गई हैं। रे अभागे हाथीवान्, हाथीके हस्तदंडमें खेलता है। नशेमें चूर सम्मर्द, तू कीचड़में गिर रहा है। भाई, मित्र विधुर-बन्धु, कीचड़से बैलको उठाओ। इधर आ लौंडे, हाथियोंकी घनी भाड़में से निकलनेका रास्ता नहीं है।"

—उच्छ्वास ७

६. आश्रमः—

२३. तब वृक्षोंके बीच देखा, जगह-जगह खम्भोंके सहारे, शिलातलोंपर बैठे लतावनोंमें बास करते, अरण्य-कुंजोंमें विलीन, वृक्षोंकी छायामें उपविष्ट, वृक्षमूलोंका सेवन करते, नाना देशीय वीतराग अर्हतों, **मस्करियों** (संन्यासियों), **श्वेताम्बरों**, पाण्ड कापालिक भिक्षुओं, **वैष्णवों**, ब्रह्मचारियों, **केश-लुंचकों**, **कपिल**-मतानुयायियों, **जैनों**, चार्वाकों, वैशेषिकमतावलंबियों, उपनिषद्-मतावलंबियों, ईश्वरको कारण माननेवालों (**नैयायिकों**), रसायन जाननेवालों, **धर्मशास्त्रियों**,

कारन्धमिभिर्धर्मशास्त्रिभिः पौराणिकैः साप्ततन्तवैः शाब्दैः पांचरात्रिकैरन्यैश्चस्वान्स्वान्सिद्धान्तान्शृण्वद्भिरभियुक्तैश्चिन्तयद्भिश्च प्रत्युच्चरद्भिश्च संशयानैश्च निश्चिन्वद्भिश्च व्युत्पादयद्भिश्च विवदमानैश्चाभ्यस्यद्भिश्च व्याचक्षाणैश्च शिष्यतां प्रतिपन्नैर्दूरादेवावेद्यमानम्, अतिविनीतैः कपिभिरपि चैत्यकर्म कुर्वाणैस्त्रिशरणपरैः परमोपासकैः शुकैरपि शाक्यशासनकुशलैः कोशं समुपदिशद्भिः शिक्षापदोपदेशोपशमशालिनीभिः शारिकाभिरपि धर्मदेशनां दर्शयन्तीभिरनवरतश्रवणगृहीतालीकैः कौशिकैरपि बोधिसत्वजातकानि जपद्भिर्जातिसौगतशीलशीतलस्वभावैः शार्दूलैरप्यमांसाशिभिरुपास्यमानम्, आसनोपान्तोपविष्टविस्रब्धानेककेसरिशावकतया मुनिपरमेश्वरम्, अकृत्रिम इव सिंहासने निषण्णम्, उपशममिव पिबद्भिर्वनहरिणैर्जिह्वालताभिरुपलिह्यमानपादपल्लवम्, वामकरतलनिविष्टेन नीवारमश्नता पारावतपोतेव कर्णोत्पलेनेव प्रियां मैत्रीं प्रसादयन्तम्, इतरकरकिसलयनखमयूखलेखाभिर्जनितजनव्यामोहम्, उद्ग्रीवं मयूरं मरकतमणिकरकमिव वारिधाराभिः पूरयन्तम्, इतस्ततः पिपीलकश्रेणीनां श्यामाकतण्डुलकणान्स्वयमेव किरन्तम्, अरुणेन चीवरपटलेन म्रदीयसा संवीतम्, बहलबालातपानुलिप्तमिव पौरंदरं दिग्भागमुल्लिखितपद्मरागप्रभाप्रतिमया रक्तावदातया देहप्रभया पाटलीकृतानां काषायग्रहणमिव दिशामप्युपदिशन्तम्, अनौद्धत्यादधोमुखेन मन्दमुकुलितकुमुदाकरेण स्निग्धधवलप्रसन्नेन चक्षुषा जनक्षुण्णक्षुद्रजन्तु-

पौराणिकों, सप्ततंतुवादियों, वैयाकरणों,, पंचरात्रानुयायियों और अन्यों द्वारा अपने-अपने सिद्धान्तोंको सुनते, उत्तम पुरुषोंके साथ चिन्तन करने, प्रति उच्चारण करते, संशय करते, निश्चय करने, व्युत्पत्ति करते, विवाद करते, अभ्यास करते, व्याख्यान करते, शिष्यता प्राप्त होते। दूर ही से (वह ऐसा आश्रम) था (जहां)—अति विनम्र वानर भी चैत्य-पूजा कर रहे थे, त्रिशरण (बुद्ध-धर्म-संघके) परम उपासक बुद्ध-धर्ममें चतुर तोते भी (अभिधर्म) कोशका उपदेश कर रहे थे, शिक्षापदों (पंच शील) के उपदेशोंसे शान्तवृत्तिवाली मैनायें धर्मोपदेश दे रही थीं, अनर्थोंवाले उल्लू भी बराबर सुनते बोधिसत्व-जातकोंका जप कर रहे थे, अमांसभक्षी शार्दूल बौद्ध-आचारसे शीतल स्वभाव हो गये (वहां) रह रहे थे, आसनके पास निर्भय विश्वस्त अनेक सिंहबच्चे बैठे थे। वहीं अकृत्रिम सिंहासनपर मध्यमआयु वाले बैठे मुनिराज दीवाकरमित्र को देखा। जिनके पादपल्लवको वन-हरिन जिह्वा-लतासे चाटते उपशमका पान कर रहे थे। जिनके बायें हाथकी हथेली पर बैठे तिन्नीका भात खाते कबूतरके बच्चे कर्णरूपी कमलको मानों प्रिया मैत्रीसे तृप्त कर रहे थे; जिनके दूसरे कर-पल्लवके नखोंकी किरण-रेखायें लोगोंको व्यामुग्ध करती, मानो ऊपर कंठ उठाये मोर जैसे पन्ना-जटित जलपात्रको जलकी धाराओंसे भर रही थीं। वह जहां-तहां चींटियोंकी पांतियोंमें स्वर्ण धानोंके चावलकी कनियोंको बिखेर रहे थे। अतिकोमल लाल चीवर-वस्त्रसे ढंका जिनका शरीर, मानो, बालसूर्यकी प्रचुर धूप से परिक्षिप्त पूर्व दिशा थी; चमकते लालकी प्रभाकी प्रतिमूर्ति लाल उज्ज्वल देह-प्रभासे लाल बनाई दिशाओंको काषाय वस्त्रके रंगका उपदेश

जीवनार्थममृतमिव वर्षन्तम्, सर्वशास्त्राक्षरपरमाणुभिरिव निर्मितं परमसौगतमप्यवलोकितेश्वरम्, अस्खलितमपि तपसि लग्नम्, आलोकमिव यथावस्थितसकलपदार्थप्रकाशकम्, दर्शनार्थिनां सुगतस्याऽप्यभिगमनीयमिव, धर्मस्याप्याराधनीयमिव, प्रमादस्यापि प्रसादनीयमिव, मानस्यापि माननीयमिव, वन्द्यत्वस्यापि वन्दनीयमिव, जन्म यमस्य, नेमिं नियमस्य, तत्त्वं तमसः, शरीरं शौचस्य, कोशं कुशलस्य, वेश्म विश्वासस्य, सद्वृत्तं सद्वृत्ततायाः, सर्वस्वं सर्वज्ञतायाः, दाक्ष्यं दाक्षिण्यस्य, पारं परानुकम्पायाः, निर्वृतिं सुखस्य, मध्यमे वयसि वर्तमानं जीवाकरमित्रमद्राक्षीत् । अतिप्रशान्तगम्भीराकारारोपितबहुमानश्च सादरं दूरादेव शिरसा मनसा वचसा च ववन्दे ।

—उच्छ्वासः ८

२. कादम्बरी

(१) उज्जयिनी:—

२४. अस्ति सकलत्रिभुवनललामभूता, प्रसवभूमिरिव कृतयुगस्यात्मनिवासोचिता भगवता महाकालाभिधानेन भुवनत्रयसर्गस्थितिसंहारकारिणा प्रमथनाथेनेवापरैव पृथिवी समुत्पादिता, द्वितीयपृथिवीशंकया जलनिधिनेव रसातलगभीरेण परिखावलयेन परिवृता, पशुपतिनिवासप्रीत्या गगनपरिसरोल्लेखिशिखरमालेन कैलासगिरिणेव सुधासितेन प्राकारमण्डलेन परिवृता, प्रकटशंखशुक्तिमुक्ताप्रवालमरकतमणिराशिभिश्चामीकरचूर्णसिकतानिकरसंचितै -

दे रही थी, अनुच्छृंखलता-पूर्वक झुके थोड़े मुकुलित कमलाकार जैसे स्निग्ध धवल स्वच्छ नेत्रोंसे पीड़ित क्षुद्र जन्तुओंके उज्जीवनार्थ अमृत बरसा रही थी, और सारे शास्त्रोंके अक्षररूपी परमाणुओंसे मानो निर्मित थी। वह परम बौद्ध भी अवलोकितेश्वर (करुणामय) थे, अभ्रष्ट हो तपस्यामे लगे सारे पदार्थोंकि यथास्थित प्रकाशसे, दर्शनार्थियोंके लिये (ज्ञानी) बुद्ध के भी दर्शनीयसे, धर्मके लिये भी पूजनीयसे, प्रसाद (कृपा) के लिये भी प्रसादकरणीय से, सम्मानके लिये भी माननीय से, वंदनाके लिये भी वंदनीय से थे। वह संयमके जन्मस्थान, नियमकी धुरा, तपस्याके सार, पवित्रताके शरीर, भलाइयोंके कोश, विश्वासके गृह, सदाचारके भी सदाचार, सर्वज्ञताके सर्वस्व, उदारताके औदार्य, परदयाके पारंगत सुखके (भी) सुख थे। (उनकी) अत्यन्त प्रशांत और गम्भीर आकृतिसे प्रेरित हो (राजाने) सम्मानसे आदरपूर्वक दूरसे ही सिर, मन और वचनसे उनकी वंदना की।

—उच्छ्वास ८

२. कादम्बरी

१. उज्जैन नगर—

२४. **अवन्ति** देशमें त्रिभुवनमें ललाम, सतयुगकी जन्मभूमि सी, **उज्जैन** नामक नगरी है, जिसे त्रिभुवन के सृष्टिस्थितिसंहारकारी भूतपति भगवान् महाकाल नामक भूतनाथ ने निज निवास के लिये दूसरी पृथिवी सा उत्पन्न किया। द्वितीय पृथिवी के भ्रमसे जो रसातल तक गहरी (समुद्र) परिखा-वलयसे घिरी सी है। जो पशुपति के निवासकी प्रसन्नता से कैलास पर्वत से, चूनेसे सफेद, गगनचुंबी शिखरमालाओं वाले प्राकारों से घिरी है। शंख-सीप-मोती-मूंगा-पन्ना-मणियों राशियों सुवर्ण-चूर्णकी बालुकाओं से संचित विस्तृत, अगस्त्यके पिये सलिलवाले विस्तृत सागर-सी बड़ी बाजारकी सड़कोंसे शोभित है। जो सुर-असुर-सिद्ध-गंधर्व-

रायामिभिरगस्त्यपरिपीतसलिलैः सागरैरिव महाविपणि-
पथैरुपशोभिता, सुरासुरसिद्धगन्धर्वविद्याधरोरगाध्यासि-
ताभिश्चित्रशालाभिरविरतोत्सवप्रमदावलोकनकुतूहला -
दम्बरतलावतीर्णाभिर्दिव्यविमानपंक्तिभिरेवालंकृता, मथ-
नोद्धृतदुग्धधवलितमन्दरद्युतिभिः कनकमयामलकलशशिख-
रैरनिलदोलायितसितध्वजैरु परिपतद्भृंगैरिव तुषारगिरि-
शिखरैरमरमन्दिरैर्विराजितशृंगाटका, सुधावेदिकोपशोभि-
तोदपानैरनवरतचलितजलघटीयन्त्रसिच्यमानहरितोपजना
न्धकारैः केतकीधूलिधूसरैरुपशल्यकैरुपशोभिता, मदमुख-
रमधुकरकुलान्धकारितनिष्कुटा, स्फुरदुपवनलताकुसुमपरि-
मलसुरभिसमीरणा, रणितसौभाग्यघण्टैरालोहितांशुकपता-
कैराबद्धरक्तचामरैर्विद्रुममयैः प्रतिगृहमुच्छ्रितैर्मकरांकैः मद-
नयष्टिकेतुभिः प्रकाशितमकरध्वजपूजा, सततप्रवृत्ताध्य-
यनध्वनिधौतकल्मषा, स्तिमितमुरजरवगम्भीरावर्जितेषु
सलिलसीकरासारस्तवकरचितदुर्दिनेषु पर्यस्तरविकिरण-
रचितसुरचापचारुषु धारागृहेषु मत्तमयूरैर्मण्डलीकृत-
शिखण्डैस्ताण्डवव्यसनिभिराबध्यमानकेकाकोलाहला, वि-
कचकुवलयकान्तैरुत्फुल्लकुमुदधवलोदरैरनिमिषदर्शनरमणी
यैराखण्डललोचनैरिव सहस्रसंख्यैरुद्भासिता सरोभिः,
अविरलकदलीवनकलिताभिरमृतफेनपुंजपाण्डुराभिर्दिशि -
दिशि दन्तवलभिकाभिर्धवलीकृता, यौवनमदमत्तमालवी-
कुचकलशललितसलिलया भगवतो महाकालस्य शिरसि
सुरसरितमालोक्योपजातेर्ष्ययेव सततमाबद्धत-
रंगभ्रूकुटिलेखया खमिव क्षालयन्त्या सिप्रया
परिक्षिप्ता।

विद्याधर-नागयुक्त चित्रशालाओं द्वारा निरंतर उत्सवत्ववाली, प्रमदाओं के अवलोकनके कुतूहलसे आकाशतलसे उतरी दिव्य विमान-पांतियोंसे अलंकृत है। जिसके सुवर्णमय आमलक (कलश) युक्त शिखर मथनसे उठी दुग्ध सी सफेद की हुई मंदर की किरणोंसे हैं। जिसकी वायुसे हिलती सफेद ध्वजायें ऊपर गिरती आकाशगंगा सी हैं। जिसके चौरस्ते हिमगिरि जैसे शिखरोंवाले देवमंदिरोंसे शोभित हैं। जो चूनेकी वेदिकासे शोभित प्याऊों, निरंतर चलते रहटसे सींचे जाते हुए उपवनोंकी छायावाले केवड़ेके चूर्णसे धूसर उपनगरोंसे शोभित है। जहां मदसे मुखर मधुकरोंसे अंधेरी अमराइयाँ उपवनकी लताको सूंघकर उड़ते गंधसे सुगन्धित वायु द्वारा सौभाग्य घंटे शब्दायमान हैं। जहां लाल वस्त्रके पताकों, बंधे आरक्त चंवरोंसे प्रत्येक घरमें उठे मूंगेके मकर चिह्नवाली, मदनकी दंडध्वजाओंसे कामदेवकी पूजा होती जान पड़ती है। जो निरंतर होते (वेद-) अध्ययन की ध्वनि द्वारा पापसे धुली है। जहां दृढ़ मृदंग के शब्दकी गंभीर गर्जनाओंमें, जलके फुहारोंके वेगोंसे बनी बदलियोंमें, गिरी सूर्य-किरणों से निर्मित इन्द्र धनुषयुक्त फौवाराघरोंमें, पंख गोल बनाये नृत्य-परायण मस्त मयूरों के किये जाते केंकाका कोलाहल है। जो फूले कमलों से सुन्दर, उत्फुल्ल कुमुदोंसे सफेद उदरवाले, अपलक देखनेमें रमणीय इन्द्रके लोचनों जैसे हजारों सरोवरोंसे भासित है। जो निरंतर केलेके वनोंसे कलित अमृतके फेन-पुंज सी पांडुवर्ण, दिशा-दिशामें हाथीदांतके झरोखोंसे सफेद, यौवनमदसे मस्त मालव ललनाओंके स्तनकलशोंसे मिलते जलवाली, भगवान् महाकालके सिरपर गंगाको देखकर ईर्ष्यायुक्त सदा तरंगरूपी भृकुटियों ताने आकाशकी गंगा सी, सिप्रा नदीसे घिरी है।

२५. सकलभुवनख्यातयशसा हरजटाचन्द्रेणेव कोटिसारेण मैनाकेनेवाविदितपक्षपातेन मन्दाकिनीप्रवाहेणेव प्रकटितकनकपद्मराशिना स्मृतिशास्त्रेणेव समावसथकूपप्रपारामसुरसदनसेतुयन्त्रप्रवर्तकेन, मन्दरेणेवोद्धृतसमग्रसागररत्नसारेण संगृहीतगारुडेनापि भुजंगभीरुणा, खलोपजीविनापि प्रणयिजनोपजीव्यमानविभवेन, वीरेणापि विनयवता, प्रियंवदेनापि सत्यवादिनाभिरूपेणापि स्वदारसन्तुष्टेनातिथिजनाभ्यागमार्थिनापि परप्रार्थनानभिज्ञेन, कामार्थपरेणापि धर्मप्रधानेन, महासत्वेनापि परलोकभीरुणा, सकलविज्ञानविशेषविदा वदान्येन दक्षेण स्मितपूर्वाभिभाषिणा परिहासपेशलेनोज्ज्वलवेषेण शिक्षिताशेषदेशभाषेण वक्रोक्तिनिपुणेनाख्यायिकाख्यानपरिचयचतुरेण सर्वलिपिज्ञेन महाभारतपुराणरामायणानुरागिणा बृहत्कथाकुशलेन द्यूतादिकलाकलापपारगेण श्रुतरागिणा सुभाषितव्यसनिना प्रशान्तेन सुरभिमासमारुतेनेव सततदक्षिणेन हिमगिरिकाननेनेवान्तःसरलेनेव, लक्ष्मणेनेव रामाराधननिपुणेन, शत्रुघ्नेनेवाविष्कृतभरतपरिचयेन, दिवसेनेव मित्रानुवर्तिना, बौद्धेनेव सर्वास्तिवादशूरेण सांख्यागमेनेव प्रधानपुरुषोपेतेन जिनधर्मेणेव जीवानुकम्पिना, विलासिजनेनाधिष्ठिता।

२६. सशैलेव प्रासादैः, सशाखानगरेव महाभवनैः, संकल्पवृक्षेव सत्पुरुषैः, दर्शितविश्वरूपेव चित्रभित्तिभिः, संध्येव पद्मरागानुरागिणी, अमराधिपमूर्तिरिव मखशतानलधूमपूता, पशुपतिलास्यक्रीडेव सुधाधवलाट्टहासा, वृद्धेव जातरूपक्षया, गरुडमूर्तिरिवाच्युतस्थितिरमणीया,

२५. जहां के विलासी निवासी हैं—सर्वलोकमें विख्यात यशवाले, शिवकी जटाके चन्द्र (सुवर्ण) जैसे कोटि (मूल्यवाले) पक्षपात न प्रकट किये मैनाक पर्वतसे, मंदाकिनीकी धारा जैसे सुवर्णपद्ममें प्रकट करनेवाले, स्मृतिशास्त्रकी तरह सभा-अतिथिशाला-कूप-प्याव-आराम-देवालय-सेतु-रहटके लगानेवाले, मंदरकी तरह सारे सागरके रत्नसारों को खींच लेनेवाले। जो गारुड़ी विद्याका ज्ञाता होते भी सर्प (कुटिल) से भीरु, खल (खलिहान) के उपजीवी होते भी स्नेही जनके उपजीवक, विभववाले वीर होते भी विनययुक्त, मीठे बोलते भी सत्यवादी, सुन्दर होते भी अपनी पत्नीसे सन्तुष्ट, अथितिजनोंके आगमनके इच्छुक होते भी दूसरेसे प्रार्थना करनेसे अनभिज्ञ, काम और अर्थ-परायण होते भी धर्म-प्रधान, महाबली भी परलोक-भीरु, सारे विज्ञानके विशेष ज्ञाता होते भी दानपरायण, उदार मुस्कुराकर बोलनेवाले, परिहासचतुर, उज्ज्वल-वेषधारी, सारे देशोंकी भाषाको सीखे हुए, व्यंग-निपुण, कहानी-आख्यानके परिचयमें चतुर, सारी लिपियोंके जानकार, **महाभारत-पुराण-रामायणमें** अनुरागी, **बृहत्कथामें** कुशल, जुआ आदि कलाओंमें पारंगत, शास्त्र-अनुरागी, सुभाषितमें आसक्त, प्रशान्त वसंत मासके वायुकी तरह निरंतर दक्षिण (उदार, दक्षिणी), **हिमालयके** वनकी तरह भीतर से सरल (देवदार वाले), **लक्ष्मणकी** तरह रामाराधन (राम या रामाकी सेवा) में निपुण, शत्रुघ्नकी तरह **भरत** (या नाट्य) परिचित, दिनकी तरह मित्र (या सूर्य) के अनुगामी, बौद्धकी तरह **सर्वास्तिवाद** (सबके अस्तित्व) में शूर, **सांख्य**-शास्त्रकी तरह प्रधान-पुरुषसे युक्त, जैन धर्मकी तरह जीवपर अनुकम्पावाले।

२६. (जो नगरी) महलों में पर्वतोंवाली सी, महाभवनोंमें उपवनवाली सी, सत्पुरुषोंसे कल्पवृक्षयुक्त सी, चित्रयुक्त भीतोंसे विश्वरूप दिखाती सी, संध्या सी लालके रंगवाली, देवेन्द्रकी मूर्ति सी, सभी यज्ञोंकी आगके धूयेंसे पवित्र सी, पशुपतिकी नृत्य-क्रीड़ा सी, सुधा (चूने)

प्रभातवेलेव प्रबुद्धसर्वलोका, नवग्यमनिरिवावलम्बित-चामग्नागदन्तधवलमूर्हा, शेषतनुरिव सदासन्नवसुधाधरा, जलधिमथनवेलेव महाघोषपूरितदिगन्तरा, प्रसूताभिषेकभूमिरिव संनिहितकनकघटसहस्रा, गौरीव महासिंहासनोचितमूर्तिः, अदितिरिव देवकुलसहस्रसेव्या, महावराहलीलेव दर्शितहिरण्याक्षपाता, कद्रुरिवानन्दितभुजंगलोका, हरिवंशकथेवानेकबालक्रीडारमणीया, प्रकटांगनोपभोगाप्यखण्डितचरित्रा, रक्तवर्णापि सुधाधवला, अवलम्बितमुक्ताकलापापि विहारभूषणा, बहुप्रकृतिरपि स्थिरा, विजितामरलोकद्युतिरवन्तीषूज्जयिनी नाम नगरी।

—पूर्वभागतः

(२) युवराजाय उपदेशः—

२७. एवं समतिक्रामत्सु दिवसेषु राजा, चन्द्रापीडस्य यौवराज्याभिषेकं चिकीर्षुः प्रतीहारानुपकरणसंभारसंग्रहार्थमादिदेश। समुपस्थितयौवराज्याभिषेकं च तं कदाचिद्दर्शनार्थमागतमारूढविनयमपि विनीततरमिच्छन् शुकनासः सविस्तरमुवाच—

"तात चन्द्रापीड, विदितवेदितव्यस्याधीतसर्वशास्त्रस्य ते नाल्पमप्युपदेष्टव्यमस्ति। केवलं च निसर्गतएवाभानुभेद्यमरत्नालोकोच्छेद्यमप्रदीपप्रभापनेयमतिगहनं तमो यौवनप्रभवम्। अपरिणामोपशमो दारुणो लक्ष्मीमदः। कष्टमनंवजनवर्तिसाध्यम्परमैश्वर्यतिमिरान्धत्वम्। अशिशिरोपचारहार्योऽतितीव्रो दर्पदाहज्वरोष्मा। सततममूलमन्त्र-

सी सफेद अट्टहासवाली, वृद्धाकी तरह जातरूप (सुवर्ण) क्षय (गृह) वाली, गरुड़की मूर्तिसी, अच्युत (न च्युत या विष्णु) की स्थिति (या मर्यादा) सी रमणीय थी। प्रभातकी वेला से (जिसके) सारे लोग प्रबुद्ध (ज्ञाता या जगे) रहते, चंवर-सहित च्यूटियोंके लटकनेसे सफेद घरोंवाली जो शबरोंकी बस्ती सी थी। शेषके शरीरकी तरह सदा पासमें वसुधा-धर (पर्वत या धरती धारक) थी। समुद्र मंथनके तट सी महावेगसे भरी दिशाओंवाली थी। सजाये अभिषेक स्थानकी तरह जिसके पास हजार सुवर्णघट थे। गौरीकी तरह जिसकी मूर्ति महासिंहासन लायक थी। अदितिकी तरह हजारों देवकुलों (देवों या देवालयों) से जो सेवनीय थी, महावराहकी लीला सी हिरण्याक्ष-के पतनको दिखाती, सोनेमें जूयेके पासेके गिरनेसे युक्त थी। हरिवंशकी कथा की तरह अनेक बाल-क्रीड़ाओंसे रमणीय थी। अंगनाओं के प्रकट उपभोगयुक्त भी अखंडित आचरण वाली थी। रक्तवर्ण (रंग या चार वर्ण) वाली भी सुधा (चूने) सी धवल थी। मोतियोंके अव-लम्बनवाली भी बिहार (बिना हार या आराम) के भूषणवाली थी, वह बहुत प्रकृति (स्वभाव या जनता) वाली भी स्थिर देवलोक के प्रकाशकी विजयिनी नगरी थी।

—पूर्वभाग

२. युवराज को उपदेश—

२७. इस प्रकार दिन बीतनेपर चन्द्रापीड़का युवराज-अभिषेक करनेके इच्छुक राजाने प्रतिहारोंको साधन-सामग्री जमा करनेके लिये आदेश दिया। युवराजाभिषेकके पास आने पर किसी समय दर्शनके लिये आये विनययुक्त (कुमार) को और भी अधिक विनम्र देखनेके इच्छुक (मन्त्री) शुकनाशने विस्तारके साथ कहा—"तात चन्द्रा-पीड़, जानने योग्य बातों के ज्ञाता, सर्वशास्त्र पढ़े हुये, तुम्हें उपदेश करनेके लिये कुछ भी नहीं है। स्वभावसे ही सूर्य जैसे अभेद्य, रत्नके आलोक जैसे अच्छेद्य, दीपककी प्रभासे न हटानेयोग्य, अति गहन यह यौवन-से उत्पन्न अन्धकार है। अन्तमें भी न शान्त होनेवाला दारुण है लक्ष्मीका मद। [illegible] तिमिरसे और [illegible] अंजनकी वर्तीसे भी असाध्य है। अभिमानके दाह-ज्वरकी [illegible] होती है। विषयोंके [illegible] विषम मोह निरंतर [illegible] नहीं शमन किया जा सकता।

गम्यो विषमो विषयविषास्वादमोहः । नित्यमस्नानशौच-बध्यो रागमलावलेपः । अजस्रमक्षपावसानप्रबोधा घोरा च राज्यसुखसंनिपातनिद्रा भवतीति विस्तरेणाभिधीयसे—गर्भेश्वरत्वमभिनवयौवनत्वमप्रतिमरूपत्वममानुषशक्तित्वं चेति महतीयं खल्वनर्थपरंपरा सर्वा । अविनयानामेकैकम-प्येषामायतनम्, किमुत समवायः ।

२८. यौवनारम्भे च प्रायः शास्त्रजलप्रक्षालननिर्मलाऽपि कालुष्य-मुपयाति बुद्धिः । अनुज्झितधवलतापि सरागैव भवति यूनां दृष्टिः । अपहरति च वात्येव शुष्कपत्रं समुद्भूतरजोभ्रान्ति-रतिदूरमात्मेच्छाया यौवनसमये पुरुषं प्रकृतिः । इन्द्रिय-हरिणहारिणी च सततदुरन्तेयमुपभोगमृगतृष्णिका । नवयौवनकषायितात्मनश्च सलिलानीव तान्येव विषय-स्वरूपाण्यद्यमानानि मधुरतराण्यापतन्ति मनसः । नाश-यति च दिङ्मोह इवोन्मार्गप्रवर्तकः पुरुषमत्यासंगो विष-येषु । भवादृशा एव भवन्ति भाजनान्युपदेशानाम् । अपगत-मले हि मनसि स्फटिकमणाविव रजनिकरगभस्तयो वि-शन्ति सुखेनोपदेशगुणाः । गुरुवचनममलमपि सलिलमिव महदुपजनयति श्रवणस्थितं शूलमभव्यस्य । इतरस्य तु करिण इव शंखाभरणमाननशोभासमुदयमधिकतरमुपजन-यति । हरत्यतिमलिनमन्धकारमिव दोषजातं प्रदोषसमय-निशाकर इव गुरूपदेशः । प्रशमहेतुर्वयःपरिणाम इव पलित-रूपेण शिरसिजजालममलीकुर्वन्गुणरूपेण तदेव परिणम-यति । अयमेव चानास्वादितविषयरसस्य ते काल उपदेशस्य । कुसुमशरप्रहारजर्जरिते हि हृदि जलमिव गलत्युपदिष्टम् । अकारणं च भवति दुष्प्रकृतेरन्वयः श्रुतं चाविनयस्य । चन्द-

रागरूपी मलका संसर्ग कभी स्नानकी शुद्धिमें नहीं जाता। राज्य-सुखरूपी सन्निपातकी निद्रा घोर और सदा रात्रिके अन्धेरेमें न जगनेकी है। इसलिये विस्तारपूर्वक तुम्हें कहता हूं। जन्मसे ही ऐश्वर्य, नवीन यौवन, अद्वितीय रूप, अतिमानुष शक्ति यह सब निश्चय भारी अनर्थोंका समूह है। इनमेंसे एक-एक भी बहुतसे अविनयोंका घर है। इनके समूहके बारेमें तो कहना ही क्या?

२८. यौवनके आरम्भमें शास्त्र-जलके प्रक्षालनसे निर्मल हुई बुद्धि भी प्रायः मलिन हो जाती है। जवानोंकी दृष्टि (आंख) धवलताको बिना छोड़े भी रागयुक्त होती है। यौवनके समय उत्पन्न रज (धूल या मल) के भ्रमवाला स्वभाव अपनी इच्छासे पुरुषको सूखे पत्तेको आंधीकी तरह बहुत दूर उड़ा ले जाता है। इन्द्रियरूपी हरिणको हरनेवाली इस उपभोग मृगतृष्णा का कभी अन्त नहीं होता। नवयौवनसे-कषाययुक्त पुरुषके मनको जलकी तरह वही आस्वादित विषय अतिमधुर लगते हैं। विषयोंमें अत्यन्त आसक्ति विपथमें ले जानेवाले दिशामोहकी तरह पुरुषको नष्ट करती है। आप जैसे ही (पुरुष) उपदेशोंके पात्र होते हैं। स्फटिक मणिमें चन्द्रकी किरणोंकी तरह, निर्मल मनमें उपदेशके गुण प्रविष्ट होते हैं। अयुक्त (पुरुष) को गुरुका वचन कानमें स्थित जलकी तरह निर्मल भी बड़ा शूल पैदा करता है। दूसरे (युक्त पुरुष) को तो हाथीके शंख-आभूषणको तरह वह अधिकतर शोभा देता है। अति मलिन अन्धकारको संध्याके समयके चन्द्रमाकी तरह दोषसमूहको गुरुओंका उपदेश हरता है। वही (यौवन) शान्ति (इन्द्रियनिग्रह) के कारण आयुके परिणामकी तरह श्वेतिमासे केशोंको मलिन न करते उसीको गुणरूपमें परिणत करता है। विपन्नताको न चखे तुम्हारे लिये यही उपदेशका काल है। कामदेवके बाणके प्रहारसे जर्जरित हृदयपर उपदेश, जलकी तरह ढल जाता है। दुःस्वभाववालेके लिये कुल बेकार है और शिक्षा अविनयके लिये है। क्या चन्दनसे उत्पन्न आग जलाती नहीं? क्या प्रशांत करने वाले जलके

नप्रभवो न दहति किमनलः ? किं वा प्रशमहेतुनापि न प्रचण्डतरो भवति बडवानलो वारिणा ? गुरूपदेशश्च नाम पुरुषाणामखिलमलप्रक्षालनक्षममजलं स्नानम्, अनुपजातपलितादिवैरूप्यमजरं वृद्धत्वम्, अनारोपितमेदोदोषं गुरुकरणम्, असुवर्णविरचनमग्राम्यं कर्णाभरणम्, अतीतज्योतिरालोकः, नोद्वेगकरः प्रजागरः ।

२९. विशेषेण राज्ञाम्—विरला हि तेषामुपदेष्टारः । प्रतिशब्दक इव राजवचनमनुगच्छति जनो भयात् । उद्दाममदाश्च पृथुस्थगितश्रवणविवराश्चोपदिश्यमानमपि ते न शृण्वन्ति । शृण्वन्तोऽपि च गजनिमीलितेनावधीरयन्तः संशयन्ति हितोपदेशदायिनो गुरून् । अहंकारदाहज्वरमूर्च्छान्धकारिता विह्वला हि राजप्रकृतिः, अलीकाभिमानोन्मादकारीणि धनानि, राज्यविषविकारतन्द्राप्रदा राजलक्ष्मीः । आलोकयतु तावत्कल्याणाभिनिवेशि, लक्ष्मीमेव प्रथमम् ।—

३०. इयं हि खड्गमण्डलोत्पलवनविभ्रमभ्रमरी लक्ष्मीः क्षीरसागरात्पारिजातपल्लवेभ्यो रागम्, इन्दुशकलादेकान्तवक्रताम्, उच्चैःश्रवसश्चंचलताम्, कालकूटान्मोहनशक्तिम्, मदिराया मदम्, कौस्तुभमणेर्नैष्ठुर्यम्, इत्येतानि सहवासपरिचयवशाद्विरहविनोदचिह्नानि गृहीत्वोद्गता । न ह्येवंविधमपरिचितमिह जगति किंचिदस्ति यथेयमनार्या । लब्धापि खलु दुःखेन परिपाल्यते । दृढगुणसंदाननिस्पन्दीकृतापि नश्यति । उद्दामदर्पभटसहस्रोल्लासितासिलतापंजरविधृताप्यपक्रामति । मदजलदुर्दिनान्धकारगजघटितघनघटापरिपालितापि प्रपलायते । न परिचयं रक्षति । नाभिजनमीक्षते । न रूपमालोकयते । न कुलक्रममनुवर्तते । न

साथ बड़वानल अधिक प्रचण्ड नहीं होता? गुरुओंका उपदेश पुरुषोंके लिये सारे मलोंको धो सकनेवाला निर्जल स्नान है, बालकी सफेदी आदि विरूपताके बिना जरा-रहित वृद्धता है। चर्बीके दोषके बिना गुरु (या स्थूल) होना है, बिना सुवर्णका बना अ-ग्रामीण कर्णाभरण है, प्रकाश बिना आलोक है, न उद्वेग करनेवाला जागरण है।

२९. खास करके राजाओंके विरले ही उपदेशक होते हैं, लोग भयसे प्रति-ध्वनिकी तरह राजाके वचनका अनुसरण करते हैं। प्रचण्ड दर्पवाले वह कर्णविवरको खूब मूंदे उपदेश-वाक्यको नहीं सुनते, सुनकर भी हाथीकी तरह आंख मूंदे तिरस्कार करते, हितोपदेश देनेवाले गुरुओंको खिन्न करते हैं। राजाका स्वभाव अहंकार-दाह-ज्वरकी मूर्छासे अन्धकार-युक्त और चंचल होता है। धन, झूठे अभिमानसे उन्मत्त कर देता है। राजलक्ष्मी राज्यरूपी विषविकारवाली तन्द्रा देव है। हे मंगल-कामी, पहले लक्ष्मीको ही देखो—

३०. खड्गोंके कमल वनमें रहनेवाली भ्रमरी इस लक्ष्मीने क्षीरसागरसे पारिजातके पल्लवोंसे रागको, चन्द्रखण्डसे पूरी कुटिलताको, उच्चैः-श्रवा (अश्व) से चंचलताको, कालकूट (विष) से बेहोश करनेकी शक्तिको, वारुणीसे मदको, कौस्तुभ मणिसे निष्ठुरताको (लिया)। इन सबको लेकर ही सहवासके परिचयके कारण विरहके समय मनबहलावके चिह्नकी तरह पैदा हुई। इस संसार में ऐसा अजनबी कोई नहीं है, जैसी कि यह नीचा (लक्ष्मी)। मिलनेपर भी कठिनाईसे रक्षित होती है। दृढ़ गुण (गुण या रस्सी) के संदान (दान या बंधन) से निश्चल की हुई (बंधी) भी नष्ट हो जाती है। प्रचण्ड दर्पवाले हजारों भटों (योद्धाओं) को उठी खड्ग-लताओंके पिंजड़ेमें रखी भी खिसक जाती है। मद-जलसे बदली जैसे अन्धकारवाले गजों द्वारा निर्मित घटामें पाली भी पलायन करती है। न परिचयको मानती, न कुलीनताकी प्रतीक्षा करती, न रूपको देखती, न पंडि-

शीलं पश्यति । न वैदग्ध्यं गणयति। न श्रुतमाकर्णयति। न धर्ममनुरुध्यते। न त्यागमाद्रियते। न विशेषज्ञतां विचारयति। नाचारं पालयति । न सत्यमनुबुध्यते । न लक्षणं प्रमाणीकरोति । गन्धर्वनगरलेखेव पश्यत एव नश्यति । अद्याप्यारूढमन्दरपरिवर्तावर्तभ्रान्तिजनितसंस्कारेव परिभ्रमति । कमलिनीसंचरणव्यतिकरलग्ननलिननालकण्टकेव न क्वचिदपि निर्भरमाबध्नाति पदम् । अतिप्रयत्नविधृतापि परमेश्वरगृहेषु विविधगन्धगजगण्डमधुपानमत्तेव परिस्खलति, पारुष्यमिवोपशिक्षितुमसिधारासु निवसति । विश्वरूपत्वमिव गृहीतुमाश्रिता नारायणमूर्तिम्, अप्रत्ययबहुला च दिवसान्तकमलमिव समुपचितमूलदण्डकोशमण्डलमपि मुंचति भूभुजम्, लतेव विटपकानन्मध्यारोहति । गंगेव वसुजनन्यपि तरंगबुद्बुदचंचला, दिवसकरगतिरिव प्रकटितविविधसंक्रान्तिः, पातालगुहेव तमोबहुला, हिडिम्बेव भीमसाहसैकहार्यहृदया, प्रावृडिवाचिरद्युतिकारिणी, दुष्टपिशाचीव दर्शितानेकपुरुषोच्छ्र्या स्वल्पसत्त्वमुन्मत्तीकरोति। सरस्वतीपरिगृहीतमीर्ष्ययेव नालिंगति । जनं गुणवन्तमपवित्रमिव न स्पृशति। उदारसत्वममंगलमिव न बहु मन्यते। सुजनमनिमित्तमिव न पश्यति। अभिजातमहिमिव लंघयति। शूरं कण्टकमिव परिहरति। दातारं दुःस्वप्नमिव न स्मरति। विनीतं पातकिनमिव नोपसर्पति। मनस्विनमुन्मत्तमिवोपहसति । परस्परविरुद्धं चेन्द्रजालमिव दर्शयन्ती प्रकटयति जगति निजं चरितम् ।

३१. तथाहि । संततमुष्माणमुपजनयन्त्यपि जाड्यमुपजनयति । उन्नतिमादधानापि नीचस्वभावतामाविष्करोति । तोय-

नाईको गिनती, न शिक्षाको सुनती, न धर्मका अनुरोध करती, न त्यागका आदर करती, न विशेषज्ञताका विचार करती, न आचारका पालन करती, न सत्यको समझती, न लक्षणको प्रमाण मानती। यह लक्ष्मी गन्धर्व-नगरकी लेखा जैसी देखते-देखते नष्ट हो जाती है। आज भी (समुद्रमंथन के समय) मंदराचलके घूमनेके चक्करसे उत्पन्न संस्कारोंसे युक्त हो चक्कर काट रही है। कमलिनीके भीतर चलनेके कारण कमलनालके कांटे लगी सी कहीं भी पैरको निश्चित होकर नहीं रखती, स्थान नहीं बांधती। बहुत प्रयत्नसे महाराजाओंके घरोंमें पकड़ी गई भी नाना गन्धवाले गजोंके कपोलोंके मदको पीकर मतवाली सी लड़खड़ाती है। कठोरता सिखलानेके लिये ही मानो तलवारकी धारों पर निवास करती है। बहुरूपता धारण करनेके लिये ही मानो नारायणके शरीरमें आश्रित है। न-बहु-परिचिता संध्याके कमलकी तरह मूल-दण्ड-कोषोंके समृद्ध राजाको भी छोड़देती है। लताकी तरह क्षुद्र वृक्षोंपर चढ़ती है। यह लक्ष्मी गंगाकी तरह वसु (धन या भीष्म) की जननी भी, तरंग और बुलबुलेकी तरह चंचला है, सूर्यकी गतिकी तरह नाना संक्रान्ति (संक्रान्ति या संसर्ग) को प्रकट करनेवाली, पातालकी गुहाकी तरह भारी अन्धकारवाली, हिडिम्बाकी तरह भीम (या भयंकर) साहससे खिंचने योग्य हृदय-वाली है। वर्षाकी तरह अचिर-प्रकाश (बिजली या कम समयके प्रकाश) करनेवाली है। दुष्ट पिशाचीकी तरह अनेक पुरुषोंके उच्छ्राय (ऊंचाई या वृद्धि) को देखी यह अल्प स्वत्व (साहस या हृदय) वालेको उन्मत्त बनाती है। सरस्वती द्वारा स्वीकृत पुरुष-बाहु को ईर्ष्यासे आलिंगन नहीं करती, गुणीजनको अपवित्र सा मान नहीं छूती, उदारहृदयको अमंगल सा जान बहुमान नहीं करती, सुजनको असगुनकी तरह नहीं देखती। कुलीनको सांपकी तरह लांघ जाती है, शूरको कांटेकी तरह छोड़ती है, दाताको दुःस्वप्नकी तरह नहीं याद करती, विनम्रके पास पातकीकी तरह नहीं जाती, पंडितको उन्मत्तसा (जान) उपहास करती है, और परस्पर विरुद्ध इन्द्रजालको दिखलाती सी अपने चरित्रको जगत्में प्रकट करती है।

३१. [illegible]—[illegible] भी जाड्य (जाड़ा या जड़ता) उत्पन्न करती है। उन्नतिको धारण करती भी नीच स्वभावताको प्रकट करती है। तोयराशि (समुद्र या जलसमूह) से उत्पन्न भी तृष्णा (प्यास या लोभ) को बढ़ाती है। ईश्वरता (ऐश्वर्य या शंकरत्व)

राशिसंभवापि तृष्णां संवर्धयति। ईश्वरतां दधानाप्यशिव-प्रकृतित्वमातनोति। बलोपचयमाहरन्त्यपि लघिमानमापादयति। अमृतसहोदरापि कटुकविपाका। विग्रहवत्यप्यप्रत्यक्ष दर्शना। पुरुषोत्तमरतापि खलजनप्रिया। रेणुमयीव स्वच्छमपि कलुषीकरोति।

३२. यथा यथा चेयं चपला दीप्यते तथा तथा दीपशिखेव कज्जल-मलिनमेव कर्म केवलमुद्वमति। तथाहि इयं संवर्धनवारि-धारा तृष्णाविषवल्लीनाम्, व्याधगीतिरिन्द्रियमृगाणाम्, परामर्शधूमलेखा सच्चरितचित्राणाम्, विभ्रमशय्या मोह-दीर्घनिद्राणाम्, निवासजीर्णवलभी धनमदपिशाचिकानाम्, तिमिरोद्गतिः शास्त्रदृष्टीनाम्, पुरःपताका सर्वाविनया-नाम्, उत्पत्तिनिम्नगा क्रोधावेगग्राहाणाम्, आपानभूमिर्वि-षयमधूनाम्, संगीतशाला भ्रूविकारनाट्यानाम्, आवासदरी दोषाशीविषाणाम्, उत्सारणवेत्रलता सत्पुरुषव्यवहाराणाम्, अकालप्रावृड् गुणकलहंसकानाम्, विसर्पणभूमिर्लोकापवाद-विस्फोटकानाम्, प्रस्तावना कपटनाटकस्य, कदलिका काम-करिणः, वध्यशाला साधुभावस्य, राहुजिह्वा धर्मेन्दुमण्ड-लस्य।

३३. न हि तं पश्यामि यो ह्यपरिचितयानया न निर्भरमुपगूढः, यो वा न विप्रलब्धः। नियतमियमालेख्यगतापि चलति, पुस्तकमय्यपीन्द्रजालमाचरति, उत्कीर्णापि विप्रलभते, श्रुताप्यभिसंवत्तते, चिन्तितापि वंचयति।

३४. एवं विधयापि चानया दुराचारया कथमपि दैववशेन परि-गृहीता विक्लवा भवन्ति राजानः, सर्वाविनयाधिष्ठानतां च गच्छन्ति।

को धारण करती भी अ-शिव स्वभावताको दढ़ाती है। बलका संचयन करती भी लघुता आपादित करती है। यह लक्ष्मी अमृतकी सहोदरा भी अन्तमें कड़वी, साकार भी प्रत्यक्ष न दिखाई देनेवाली, पुरुषोत्तम (श्रेष्ठ पुरुष या विष्णु) में रत भी खलजनोंकी प्रिया है, धूलिमयी ना स्वच्छको भी मलिन करती है।

३२. और जैसे जैसे यह चंचला दीप्त होती है, वैसे वैसे दीपशिखा की तरह केवल काजल जैसे मलिन कर्मको ही उगलती है। जैसे कि—यह लक्ष्मी तृष्णारूपी विष-लताओंको बढ़ानेवाली पानीकी धारा है, इन्द्रियरूपी मृगोंके लिये शिकारीका गीत है, सच्चरित्र चित्रोंको छूनेवाली धूमलेखा है, मोहरूपी लम्बी नींद लानेवालोंके लिये विलास-सेज है, धन मदके पिशाचियोंके लिये घरका पुराना झरोखा है, शास्त्रकी दृष्टि रखनेवालोंके लिये आंखकी फूलीका पैदा होना है। (यह) सारे दुराचारोंकी अग्रपताका है, क्रोधके आवेगरूपी मकरोंकी उत्पत्ति नदी है, विषयरूपी शराबोंकी मद्यशाला है, भौं बिगाड़नेवाले नाटचोंकी संगीतशाला है, दोषरूपी सर्पोंके रहनेकी गुहा है, सत्पुरुषके व्यवहारोंको हटानेवाला बेंत है, गुणरूपी कलहंसोंके लिये अकाल वर्षा है, लोकनिन्दारूपी विस्फोटोंका प्राप्तिस्थान है, कपट-नाटककी प्रस्तावना है, स्वेच्छाचारी गजों का केला है, साधुताकी वध्यशाला है, धर्मरूपी चन्द्रमण्डलके लिये राहुकी जीभ है।

३३. मैं ऐसे (पुरुष) को नहीं जानता, जिसे कि इस अपरिचिता (लक्ष्मी) ने गाढ़ आलिंगन नहीं दिया, अथवा जो छकाया नहीं गया। निश्चय ही यह चित्रलिखित भी चलती है, पुस्तकमयी (ज्ञानमयी) भी इन्द्रजाल जैसा करती है, उत्कीर्ण भी धोखा देती है, सुनी भी संकल्प पैदा करती है, चिन्तन की गई भी वंचना करती है।

३४. भाग्यवश इस प्रकारकी इस दुराचारिणी द्वारा कैसे भी पकड़े गये राजा विह्वल होते हैं, सारे अभिनयोंके अधिष्ठान बनते हैं। जैसे कि—अभिषेकके समयमें ही इनका दाक्षिण्य (उदारता) मंगल-

तथाहि, अभिषेकसमय एव चैतेषां मंगलकलशजलैरिव प्रक्षाल्यते दाक्षिण्यम्, अग्निकार्यधूमेनेव मलिनीक्रियते हृदयम्, पुरोहितकुशाग्रसंमार्जनीभिरिवापह्रियते क्षान्तिः, उष्णीषपटबन्धेनेवाच्छाद्यते जरागमनस्मरणम्, आतपत्रमण्डलेनेवापसार्यते परलोकदर्शनम्, चामरपवनैरिवापह्रियते सत्यवादिता, वेत्रदण्डैरिवोत्सार्यन्ते गुणाः, जयशब्दकलकलरवैरिव तिरस्क्रियन्ते साधुवादाः, ध्वजपटपल्लवैरिव परामृश्यते यशः ।

३५. तथाहि । केचिच्छ्रमवशशिथिलशकुनिगलपुटचटुलाभिः खद्योतोन्मेषमुहूर्तमनोहराभिर्मनस्विजनगर्हिताभिः संपद्भिः, प्रलोभ्यमाना धनलवलाभावलेपविस्मृतजन्मानोऽनेकदोषोपचितेन दोषासृजेव रागावेशेन बाध्यमानाः, विविधविषयग्रासलालसैः पंचभिरप्यनेकसहस्रसंख्यैरिवेन्द्रियैरायास्यमानाः, प्रकृतिचंचलतया लब्धप्रसरेणैकेनापि शतसहस्रतामिवोपगतेन मनसाकुलीक्रियमाणा विह्वलतामुपयान्ति ।

३६. ग्रहैरिव गृह्यन्ते, भूतैरिवाभिभूयन्ते, मन्त्रैरिवावेश्यन्ते, सत्वैरिवावष्टभ्यन्ते, वायुनेव विडम्ब्यन्ते, पिशाचैरिव ग्रस्यन्ते, मदनशरैर्मर्माहता इव मुखभंगसहस्राणि कुर्वते, धनोष्मणा पच्यमाना इव विचेष्टन्ते, गाढप्रहाराहता इवांगानि न धारयन्ति, कुलीरा इव तिर्यक् परिभ्रमन्ति, अधर्मभग्नगतयः पंगव इव परेण संचार्यन्ते, मृषावादविपाकसंजातमुखरोगा इवातिकृच्छ्रेण जल्पन्ति, सप्तच्छदतरव इव कुसुमरजोविकारैः पार्श्ववर्तिनां शिरःशूलमुत्पादयन्ति, आसन्नमृत्यव इव बन्धुजनमपि नाभिजानन्ति, उत्कम्पित लोचना इव तेजस्विनो नेक्षन्ते, कालदष्टा इव महामन्त्रैरपि-

मंगलकलशके जलसे मानो धुल जाता है, इनका हृदय होमके धूममें मलिन कर दिया जाता है, उनकी क्षमा पुरोहितके कुशाग्ररूपी झाड़ुओंसे धकेल दी जाती है, उनके मनमें बुढ़ापेके आनेकी स्मृति सिर-पेचके पावनेमें ढंक दी जाती है, उनकी परलोकपर लगी निगाह छत्र-मण्डल द्वारा मानो हटा दी जाती है, उनकी सत्यवादिता चंवरकी हवासे दूर कर दी जाती है, उनके गुण बेंतके दण्डोंसे उत्सारित कर दिये जाते हैं, उनकी ख्यातियां जयकारके कोलाहलमें मानो तिरस्कृत कर दी जाती हैं, उनका यश, ध्वजपटके पल्लवोंसे मानो लुप्त कर दिया जाता है।

३५. और भी—कोई-कोई (लक्ष्मीपात्र) श्रमके वश होले पक्षीके कण्ठकी तरह, चपल जुगनूके आभास जैसी मुहूर्त मात्र मनोहर लगनेवाली पण्डितजनोंसे निंदित सम्पत्तियों द्वारा प्रलोभित थोड़े धनके लाभके अभिमानमें भूले जन्मवाले, अनेक दोषोंसे बढ़ाये, दुष्ट रक्त द्वारा मानो रागके आवेशसे बाधित हुये, नाना विषयके ग्रासकी लालसावाले पांच होते भी अनेक हजार इन्द्रियोंसे पीड़ित होते, स्वभावतः चंचलता के कारण मौका पानेवाले एक होते भी लाख हुये से मन द्वारा विह्वल हो जाते हैं।

३६. वह ग्रहों द्वारा मानो पकड़े गये, भूतों द्वारा मानो अभिभूत होते हैं, मन्त्रों द्वारा मानो आवेशित होते हैं। वह दुष्ट प्राणियों द्वारा मानो फांसे जाते हैं, वायु द्वारा मानो तितर-बितर किये जाते हैं, पिशाचों द्वारा मानो ग्रसित होते हैं, कामबाणोंसे हृदयमें आहत हुये से मानो हजारों मुख-विकार करते हैं। वह धनकी गर्मीसे जलते हुये से मानो नाना चेष्टा करते हैं, भारी प्रहार से आहत से मानो अंगोंको धारण नहीं कर सकते, मगरोंकी तरह तिरछे परि-भ्रमण करते हैं, अधर्मसे भग्न आचारवाले पंगुओंकी तरह मानो दूसरे द्वारा संचालित होते हैं। वह मिथ्या गर्वके कारण उत्पन्न मानो मुखके रोगसे बहुत कठिनाईसे बोलते हैं, जीवनके वृक्षकी

न प्रतिबुध्यन्ते, जातुकाभरणानीव सोष्माणं न सहन्ते, दुष्टवारणा इव महामानस्तम्भनिश्चलीकृता न गृह्णन्त्युपदेशम्। तृष्णाविषमूर्च्छिताः काकमयमिव सर्वं पश्यन्ति, इषव इव पानवर्धिततैक्ष्ण्याः परप्रेरिता विनाशयन्ति, दूरस्थितान्यपि फलानि दण्डविक्षेपैर्महाकुलानि शातयन्ति, अकालकुसुमप्रसवा इव मनोहराकृतयोऽपि लोकविनाशहेतवः, श्मशानाग्नय इवातिरौद्रभूतयः, तैमिरिका इवादूरदर्शिनः, उपसृष्टा इव क्षुद्राधिष्ठितभवनाः। श्रूयमाणा अपि प्रेतपटहा इवोद्वेजयन्ति, चिन्त्यमाना अपि महापातकाध्यवसाया इवोपद्रवमुपजनयन्ति, अनुदिवसमापूर्यमाणाः पापेनेवाध्मातमूर्तयो भवन्ति, तदवस्थाश्च व्यसनशतसंख्यतामुपगता वल्मीकतृणाग्रावस्थिता जलबिन्दव इव पतितमप्यात्मानं नावगच्छन्ति।

३७. अपरे तु स्वार्थनिष्पादनपरैर्धनपिशितग्रासगृध्रैरास्थाननलिनीधूर्तबकैर्द्यूतं विनोद इति, परदाराभिगमनं वैदग्ध्यमिति, मृगयां श्रम इति, पानं विलास इति, प्रमत्ततां शौर्यमिति, स्वदारपरित्यागमव्यसनितेति, गुरुवचनावधीरणमपरप्रणेयत्वमिति, अजितभृत्यतां सुखोपसेव्यत्वमिति, नृत्यगीतवाद्यवेश्याभिसक्तिं रसिकतेति, महापराधावकर्णनं महानुभावतेति, पराभवसहत्वं क्षमेति, स्वच्छन्दतां प्रभुत्वमिति, देवावमाननं महासत्त्वतेति, बन्दिजनख्यातिं यश इति, तरलतामुत्साह इति, अविशेषज्ञतामपक्षपातित्वमिति, दोषानपि गुणपक्षमध्यारोपयद्भिरन्तः स्वयमपि विहसद्भिः प्रतारणकुशलैर्धूर्तैरमानुषलोकोचिताभिः स्तुतिभिः प्रता-

तरह पुष्प-केसरके विकारोंसे पड़ोसियोंके सिरमें शूल पैदा करते हैं, आसन्न मृत्युवालोंकी तरह बन्धुजनोंको भी नहीं पहचानते, उत्कंपित नेत्रवालोंकी तरह तेजस्वियोंको नहीं देखते, कालसे डसे की तरह महामन्त्रों (मंत्र या उपदेश) से भी नहीं होशमें आते, लाहके भूपणों-की तरह तेजस्वी (अग्नि या पुरुष) को नहीं सह सकते। वह दुष्ट गजोंकी तरह महामानरूपी स्तम्भमें स्थिर किये भी उपदेश (या आज्ञा) को नहीं ग्रहण करते। तृष्णारूपी विपसे मूर्छित हुये सारे (जगत्) को कनकमय देखते हैं, वाणोंकी तरह पान (मद्यपान या घर्षण) से तीक्ष्णता बढ़ाये दूसरे द्वारा प्रेरित हो विनाश करते हैं। वह दूर स्थित फलके लिये दण्ड फेंककर बड़े कुलोंको भी गिराते हैं, अकालके फूलके उत्पन्न होनेकी तरह मनोहर आकारवाले भी लोगोंके विनाशके हेतु हैं। वह श्मशानकी आग की तरह अत्यन्त भयंकर सम्पत्तिवाले होते हैं। वे राजा फूलीके अन्धोंकी तरह अदूरदर्शी, बहिष्कृतकी तरह क्षुद्र लोगों से बसे भवनवाले होते हैं। वह सुने जाते भी मुर्देके बाजेकी तरह उद्विग्न करते हैं। सोचे जाते भी महापातकके मनोरथकी तरह उपद्रव करते हैं। प्रतिदिन भरे जाते पाप द्वारा मानो मोटी देहवाले होते हैं। ऐसी और ऐसी अवस्थावाले सैकड़ों व्यसनों की मित्रतासे युक्त वल्मीक (दीमकके ट[illegible] अवस्थित जलविन्दुओंकी भांति पतित हुये [illegible]।

३७. दूसरे (प्रभु) तो स्वार्थ-पावन-तत्पर, धनरूपी मांसके कवलके लोलुप, दरबारकी कमलिनीके धूर्त। बगुलों द्वारा (प्रतारित) द्यूतको विनोद, परस्त्रीगमनको चतुराई, शिकारको व्यायाम, मद्यपानको विलास, प्रमत्तताको शूरता, निज-स्त्री-परित्यागको अव्यसनी होना, गुरुके वचनके तिरस्कारको दूसरेकी बातमें न पड़ना, नौकरके वशी-भूत होनेको सुखसे सेवनीय होना, नृत्य-गीत-वाद्य-वेश्याकी आसक्तिको रसिकता, महान् अपराध (की बातें) सुननेको महानु-भावता, तिरस्कार सहनेको क्षमा, स्वैरिताको प्रभुता, देवापमानको महासत्वता, बन्दीजनोंकी [illegible] चपलताको उत्साह, विवेक न जाननेको [illegible] (समझते हैं)। वह [illegible] भी गुण-पक्षमें आरोप करते, [illegible] स्वयं भी [illegible] चतुर धूर्तोंकी [illegible] लिये अनुचित स्तुतियों द्वारा प्रतारित होते, धनके [illegible] 'वैसा ही है', वह अपने मनसे उनके [illegible] अभिमानको धारण करते हैं। मरणधर्मा होते भी दैवी-अंशके

र्यमाणा वित्तमदमत्तचित्ता निश्चेतनतया तथैवेत्यात्मन्यारोपितालीकाभिमाना मर्त्यधर्माणोऽपि दिव्यांशावतीर्णमिव सदैवतमिवातिमानुषमात्मानमुत्प्रेक्षमाणाः प्रारब्धदिव्योचितचेष्टानुभावाः सर्वजनस्योपहास्यतामुपयान्ति ।

३८. आत्मविडम्बनां चानुजीविना जनेन क्रियमाणामभिनन्दन्ति । मनसा देवताध्यारोपणविप्रतारणादसद्भूतसंभावनोपहताश्चान्तःप्रविष्टापरभुजद्वयमिवात्मबाहुयुगलं संभावयन्ति । त्वगन्तरिततृतीयलोचनं स्वललाटमाशंकंते । दर्शनप्रदानमप्यनुग्रहं गणयन्ति । दृष्टिपातमप्युपकारपक्षे स्थापयन्ति । संभाषणमपि संविभागमध्ये कुर्वन्ति । आज्ञामपि वरप्रदानं मन्यन्ते । स्पर्शमपि पावनमाकलयन्ति । मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराश्च न प्रणमन्ति देवताभ्यः, न पूजयन्ति द्विजातीन्, न मानयन्ति मान्यान्, नार्चयन्त्यर्चनीयान्, नाभिवादयन्त्यभिवादनार्हान्, नाभ्युतिष्ठन्ति गुरून्, अनर्थकायासान्तरितोपभोगसुखमित्युपहसन्ति विद्वज्जनम्, जरावैक्लव्यप्रलपितमिति पश्यन्ति वृद्धोपदेशम्, आत्मप्रज्ञापरिभव इत्यसूयन्ति सचिवोपदेशाय, कुप्यन्ति हितवादिनम् ।

३९. सर्वथा तमभिनन्दन्ति, तमालपन्ति तं पार्श्वे कुर्वन्ति, तं संवर्धयन्ति, तेन सह सुखमवतिष्ठन्ते, तस्मै ददति, तं मित्रतामुपजनयन्ति, तस्य वचनं शृण्वन्ति, तत्र वर्षन्ति, तं बहु मन्यन्ते, तमाप्ततामापादयन्ति; योऽहर्निशमनवरतमुपरचितांजलिरधिदैवतमिव विगतान्यकर्तव्यः स्तौति, यो वा माहात्म्यमुद्भावयति । किं वा तेषां सांप्रतं येषामतिनृशंसप्रायोपदेशनिर्घृणं कौटिल्यशास्त्रं प्रमाणम्, अभिचार-

अवतार लिये जैसे देवाधिष्ठित, अपनेको अतिमानुष लगाते देवोंके लिये उचित चेष्टा और अनुभावका आचरण करते सभी लोगोंके उपहासके पात्र होते हैं।

३८. वे अनुजीवी जनों द्वारा अपनी विडम्बना किये जानेका अभिनन्दन करते हैं। देवता (विष्णु) के आरोपकी वंचनासे मनकी असत्य सम्भावना से नष्ट हो भीतर घुसी अन्य दो भुजाओंकी तरह अपने दोनों बाहोंको मानते हैं; अपने ललाटमें चमड़ेके भीतर छिपे तीसरे लोचनका सन्देह करते हैं। वह दर्शन देनेको भी अनुग्रह मानते हैं, दृष्टिपात करनेको भी उपकारके तौरपर धारण करते हैं, सम्भाषण-को भी पारितोषिक-दान कहते हैं, आज्ञाको भी वरदान मानते हैं, स्पर्शको भी पवित्र समझते हैं। मिथ्या माहात्म्यके गर्वसे युक्त वह न देवताओंको प्रणाम करते हैं, न द्विजोंको पूजते हैं, न माननीयोंको मानते हैं, न अर्चनियोंकी अर्चना करते हैं, न अभिवादनीयोंका अभिवादन करते हैं। न गुरुओं के आने पर उठते हैं। विद्वानोंको व्यर्थका क्लेश दे, उपभोग-सुखसे वंचित कर हंसते हैं, वृद्धोंके उपदेशको बुढ़ा-पेकी विकलताका प्रलाप बतलाते हैं। अपनी बुद्धिका तिरस्कार है यह सोच, वह सचिवोंके उपदेशकी निन्दा करते हैं, हितवादियोंपर कोप करते हैं।

३९. वह सर्वथा उसीका अभिनन्दन करते, उसीसे आलाप करते हैं, उसीको पासमें रखते हैं, उसीको सम्वर्द्धन करते हैं, उसीके साथ सुखसे रहते हैं, उसीको देखते हैं, उसीके साथ मित्रता करते हैं, उसीका वचन सुनते हैं, उसीमें (धन) बरसाते हैं, उसीका बहुमान करते हैं, उसीको प्रामाणिक बतलाते हैं, जो कि रात-दिन बराबर हाथ जोड़ इष्ट-देवताकी तरह अन्य-करणीय छोड़ तारीफ करता है, या जो माहात्म्य उद्भावन करता है। अथवा उनके लिये युक्त क्या है, जिनके लिये अत्यन्त दयाहीन नृशंस-उपदेश कौटिल्यशास्त्र प्रमाण है, हत्या आदि अभिचार क्रियाओंमें नर्थश्रा मूर स्वभावके पुरोहित

क्रियाः क्रूरैकप्रकृतयः पुरोधसो गुरवः, पराभिसंधानपरा मन्त्रिण उपदेष्टारः, नरपतिसहस्रभुक्तोज्झितायां लक्ष्म्यामासक्तिः, मारणात्मकेषु शास्त्रेष्वभियोगः, सहजप्रेमार्द्रहृदयानुरागा भ्रातर उच्छेद्याः।

४०. तदेवंप्रायेऽतिकुटिलकष्टचेष्टासहस्रदारुणे राज्यतन्त्रेऽस्मिन्महामोहकारिणि च यौवने कुमार, तथा प्रयतेथा यथा नोपहस्यसे जनैः, न निन्द्यसे साधुभिः, न धिक्क्रियसे गुरुभिः, नोपालभ्यसे सुहृद्भिः, न शोच्यसे विद्वद्भिः। यथा च न प्रकाश्यसे विटैः, न प्रतार्यसे कुशलैः, नास्वाद्यसे भुजंगैः नावलुप्यसे सेवकवृकैः, न वंच्यसे धूर्तैः, न प्रलोभ्यसे वनिताभिः, न विडम्ब्यसे लक्ष्म्या, न नर्त्यसे मदेन, नोन्मत्तीक्रियसे मदनेन, नाधिक्षिप्यसे विषयैः, नावकृष्यसे रागेण, नापह्रियसे सुखेन।

४१. कामं भवान्प्रकृत्यैव धीरः, पित्रा च समारोपितसंस्कारः, तरलहृदयमप्रतिबद्धं च मदयन्ति धनानि, तथापि भवद्गुणसंतोषो मामेवं मुखरीकृतवान्। इदमेव च पुनः पुनरभिधीयसे—'विद्वांसमपि सचेतनमपि महासत्त्वमप्यभिजातमपि धीरमपि प्रयत्नवन्तमपि पुरुषमियं दुर्विनीता खली करोति लक्ष्मीरि'ति। सर्वथा कल्याणैः पित्रा क्रियामाणमनुभवतु भवान्नवयौवराज्याभिषेकमंगलम्। कुलक्रमागतामुद्वह पूर्वपुरुषैरूढां धुरम्। अवनमय द्विषतां शिरांसि। उन्नमय स्वबन्धुवर्गम्। अभिषेकान्तरं च प्रारब्धदिग्विजयः परिभ्रमन्विजितामपि तव पित्रा सप्तद्वीपभूषणां पुनर्विजयस्व वसुंधराम्। अयं च ते कालः

जिनके गुरु हैं, दूसरोंकी हानिमें रत मंत्री जिनके उपदेष्टा हैं, हजारों राजाओं द्वारा भाग कर छोड़ी गई लक्ष्मीमें जिनकी आसक्ति है, मारक हथियारोंपर जिनका उत्साह है, सहज प्रेमसे स्निग्ध हृदय द्वारा अनुरक्त भाई जिनके लिये मारणीय है।

८०. सो कुमार, अधिकतर इस प्रकार अतिकुटिल, कठिन प्रयत्नसे सहने लायक, दारुण राज्यतन्त्रमें, इस महामोह करनेवाले यौवनमें, वैसा प्रयत्न करना, जिसमें कि लोगों द्वारा उपहसित न किये जाओ, सज्जनों द्वारा निन्दे न जाओ, गुरुओं द्वारा धिक्कारे न जाओ, सुहृदों द्वारा उलाहना न दिये जाओ, विद्वानों द्वारा सोचे न जाओ। जिसमें कि अश्रद्धाचारियों द्वारा मशहूर न बनो, बुराइयों द्वारा प्रतारित न किये जाओ, भुजंगों (भंडुओं) द्वारा चूसे न जाओ, सेवकरूपी भेड़ियों द्वारा लोपित न किये जाओ, धूर्तों द्वारा वंचित न हो, वनिताओं द्वारा प्रलोभित न हो, लक्ष्मी द्वारा विडम्बिता न किये जाओ, मदसे नचाये न जाओ, कामदेवद्वारा, उन्मत्त न किये जाओ, विषयों द्वारा प्रेरित न हो, राग द्वारा खींचे न जाओ, सुख द्वारा अपहृत न हो।

४१. ठीक है, आप स्वभावसे ही धीर हैं और पिताने (अच्छा) संस्कार तुममें पैदा किया है। धन चंचल-हृदय अबोध को (ही) मतवाला करता है। तो भी आपके गुणसे मुझे जो सन्तोष है, उसीने मुझे इतना बुलवाया। यही बार-बार तुम्हें कहना चाहता हूँ: यह दुष्टा लक्ष्मी विद्वान् को भी, सजग को भी, महासत्व को भी, कुलीन को भी, धीर कोभी, उद्योगी पुरुष को भी पथभ्रष्ट करती है। कल्याण-युक्त पिता द्वारा किये जाते नवयुवराज-अभिषेक-मंगल को अच्छी तरह अनुभव करो। पूर्व पुरुषों द्वारा उठाये कुल-परंपराके राज-धुरे को उठाओ। शत्रुओं के सिर को झुकाओ, अपने बन्धुवर्गको उठाओ और अभिषेक के बाद दिग्विजय आरम्भ कर घूमते अपने पिता द्वारा जीती हुई सातों द्वीपों की भूषण वसुन्धराको फिर विजय करो।

प्रतापमारोपयितुम्। आरूढप्रतापो राजा त्रैलोक्यदर्शीव सिद्धादेशो भवति" इत्येतावदभिधायोपशशाम।

४२. उपशान्तवचसि (कुमारः) निर्धौत इव, अभिषिक्त इव, अभिलिप्त इव, अलंकृत इव, पवित्रीकृत इव, उद्भासित इव, प्रीतहृदयो मूहुर्तं स्थित्वा स्वभवनमाजगाम।

—पूर्वभागे

(३) अच्छोदसरः—

४३. आलोकमात्रेणैवापगतश्रमो दृष्ट्वा मनस्येवमकरोत्— 'अहो निष्फलमपि मे तुरंगमुखमिथुनानुसरणमेतदालोकयतः सरः सफलतामुपगतम्। अद्य परिसमाप्तमीक्षणयुगलस्य द्रष्टव्यदर्शनफलम्, आलोकितः खलु रमणीयानामन्तः, दृष्ट आह्लादनीयानामवधिः, वीक्षिता मनोहराणां सीमान्तलेखा, प्रत्यक्षीकृता प्रीतिजननानां परिसमाप्तिः, विलोकिता दर्शनीयानामवसानभूमिः। इदमुत्पाद्य सरः सलिलममृतरसमुत्पादयता वेधसा पुनरुक्ततामिव नीता स्वसृष्टिः। इदमपि खल्वमृतमिव सर्वेन्द्रियाह्लादनसमर्थमतिविमलतया चक्षुषः प्रीतिमुपजनयति, शिशिरतया स्पर्शसुखमुपहरति, कमलसुगन्धितया घ्राणमाप्याययति, हंसमुखरतया श्रुतिमानन्दयति, स्वादुतया रसनामाह्लादयति। नियतं चास्यैव दर्शनतृष्णया न परित्यजति भगवान्कैलासनिवासव्यसनमुमापतिः। न खलु सांप्रतमाचरति जलशयनदोहदं देवो रथांगपाणिर्यदिदममृतरससुरभिसलिलमपहाय लवणरसपरुषपयस्युदन्वति स्वपिति। नूनं चेदं न प्रथममासीत्सरो येन प्रलयवराहघोणाभिघातभीता भूतधात्री

बढ़ाने का तुम्हारा यह प्रताप काल है। बड़े प्रतापयुक्त राजा तीनों लोकोमें देखनेवाला सिद्ध-आदेश जैसा होता है।"

४२. शुकनाश के बात खतम कर लेने पर उपदेशके वचनों द्वारा प्रक्षालित से, उन्मीलित से, स्वच्छ किये से, अभिषिक्त से, चमकाये से, प्रलिप्त से, अलंकृत से, पवित्रित से, उद्भासित से हो (कुमार) प्रसन्न-मन क्षणभर ठहर कर (अपने) भवनमें आ गये।

—पूर्वभाग

३. अच्छोदसर—

४३. देखने मात्र से थकावट दूर हुए (चन्द्रापीड़ ने उस स्थानको) अवलोकनकर मन में ऐसा सोचा—"अहो किन्नरोंके जोड़े का मेरा अनुगमन निष्फल होते भी इस सरोवर को देखने से सफल रहा। आज दोनों आंखों द्वारा दर्शनीय के देखनेका फल पूरा हुआ है, रमणीयोंका अन्त मैंने देख लिया, आह्लादनीयों की सीमा देख ली, मनोहर वस्तुओं की सीमान्त-रेखा अवलोकित कर ली, प्रीति-उत्पादक (वस्तुओं) की चरमताको प्रत्यक्ष कर लिया, दर्शनीय (वस्तुओंकी) अन्तिम भूमिका विलोकन कर लिया। इस सरोवर के अमृतरसवाले जलको उत्पन्न करके उत्पादक ब्रह्माने अपनी सृष्टि पुनरुक्त सी कर दी। यह तो अमृत की तरह सारे इन्द्रियों को आह्लादित करता है, अत्यन्त निर्मल होने से आंखों में आनन्द पैदा करता है, शीतल होने से स्पर्शसुख देता है। (यह अपने) कमलकी सुगन्धिसे घ्राणको तृप्त करता है, हंसों द्वारा मुखरित होनेसे कानको आनंदित करता है, स्वादु होने से जिह्वा को आह्लादित करता है। निश्चय इसीके दर्शनके लोभसे भगवान उमापति कैलास निवासकी आसक्ति नहीं छोड़ते। देव चक्रपाणि (विष्णु) ठीक नहीं करते, जो कि अमृतरस-सुगन्धित जल वाले इसे छोड़कर खारे रसके बुरे जलवाले समुद्रमें जलशयन की इच्छा से सोते हैं। निश्चय यह सरोवर पहले नहीं था,

कलशयोनिपानपरिकलितसकलसलिलं सागरमवतीर्णा, अन्यथा यद्यत्रागाधानेकपातालगम्भीराम्भसि निमग्ना भवेन्महासरसि किमेकेन महावराहसहस्रैरपि नासादिता भवेत्। नूनं चास्मादेव सलिललेशमादाय महाप्रलयेषु प्रलयपयोदाः प्रलयदुर्दिनान्धकारितदशदिशः प्लावयन्ति भुवनान्तराणि।

४४. मन्ये च यत्सृष्टेरर्वाकसलिलमयं ब्रह्माण्डरूपमादौ भुवनमभूत्तदिदं पिण्डीभूय सरोव्यपदेशेनावस्थितम्' इति विचारयन्नेव तस्य शिलाशकलकर्कशवालुकाप्रायम्, विद्याधरोद्धृतसनालकुमुदकलापार्चितानेकचारुसैकतलिंगम्, अरुन्धतीदत्तार्घपयःपर्यस्तरक्तकमलशोभितम्, उपकूलशिलातलोपविष्टजलमानुपनिषेव्यमाणातपम्, अभ्यर्णतया च कैलासस्य स्नानागतमातृमण्डलपदपंक्तिमुद्रांकितम् अवकीर्णभस्मसूचितमग्नोत्थितगणकदम्बकोद्धूलनम्, अवगाहावतीर्णगणपतिगण्डस्थलगलितमदप्रस्रवणसिक्तम्, अतिप्रमाणपादानुमीयमान-तृषितकात्यायनी-सिंहावतरणमार्गं, दक्षिणतीरमासाद्य तुरगादवततार। अवतीर्य च व्यपनीत च व्यपनीतपर्याणमिन्द्रायुधमकरोत्।

४५. क्षितितललुठितोत्थितं च गृहीतकतिपययवसग्रासं सरोऽवतार्य पीतसलिलमिच्छया स्नातं चोत्थाप्यान्यतमस्य समीपवर्तिनस्तरोर्मूलशाखायामपगतखलीनं हस्तपादश्रृंखलया कनकमय्या चरणौ बद्ध्वा कृपाणकानाकृष्याक्षिप्त्वा चाग्रतः कतिचिन्मरकतीर्दूर्वाप्रकाण्डकवलान्पुनरपि सलिलमवततार। ततश्च प्रक्षालितकरयुगलश्चातक इव

जो कि प्रलय के वराहके थूथुनके आघात से भयभीत धरती आगस्त्य द्वारा पान के इच्छित खारे जलवाले सागरमें उतरी, नहीं तो यदि अनेक पाताल गहरे जलवाले अथाह इस महासरोवर में निमग्न होती, तो एक क्या हजारों महावराहों के भी हाथ न आती। और निश्चय इसीमें कुछ जल लेकर महाप्रलय में प्रलय के मेघ प्रलयकी बदलीसे दशों दिशाओं में अन्धेरा फैला भुवनों को बहा देते हैं।

४४. मैं समझता हूं, सृष्टि से पहले भुवन शुरूमें जलमय ब्रह्मांडाकार था, सोही यह सरोवर के व्याज से साकार हो अब स्थित है। इस तरह विचारते हुए ही उस (सरोवर) के पाषाण-खंड से कर्कश, अधिक वालुकावाले, विद्याधरों से निकाल कर नालयुक्त कुमुदों से अनेक सुन्दर वालुका लिंग अर्चित किये गये, अरुन्धती द्वारा दिये अर्घ जलके चारों ओर बिखरे रक्तकमल द्वारा शोभित, पासके शिलातलपर बैठे जलमानुष द्वारा धूप सेये जाते और कैलास के पास रहने से स्नान के लिए आई मातृकाओंकी पदपंक्तियों की मुद्रासे अंकित, बिखरे हुए भस्म द्वारा डूबकर उठे शंकर के गणोंका भस्म लगाना सूचित करते, नहाने के लिए उतरे गणेश के कपोल से बहती मदधारसे सिंचित, अति विशाल पैरों से दुर्गाके प्यासे सिंहके उतरनेके मार्गको बतलाते, दाहिने तट पर पहुंचकर **चन्द्रापीड़** घोड़े से उतरे। उतरकर उन्होंने **इन्द्रायुध** अश्व के ऊपरसे जीन हटा लिया।

४५. फिर धरतीपर लोटकर उठे कुछ कौर घास खाये घोड़े को सरोवरमें उतारा। जल पी इच्छानुसार नहा लेने के बाद ले जाकर लगाम हटा पासके वृक्षकी मूल शाखामें सोनेकी जंजीरसे उसके दोनों चरणोंको बांध दिया। फिर कटारसे सरोवरके तीरवाले दूबके अंकुरके कवलोंको काटकर (घोड़ेके) आगे रख कुमार जलमें उतरे। हाथ-पैर धो चातककी तरह जलमय आहार कर, चक्रवाककी तरह मृणाल-

कृत्वा जलजमयमाहारम्, चक्राह्व इवास्वाद्य मृणालशकलानि, शिशिरांशुरिव कराग्रैः स्पृष्ट्वा कुमुदानि, फणीवाभिनन्द्य जलतरंगवातान्, अनंगशरप्रहारातुर इवोरसि निधाय नलिनीदलोत्तरीयम्, अरण्यगज इव शीकरार्द्रपुष्करोपशोभितकरः सरः सलिलादुदगात्। प्रत्यग्रभग्नशिरैश्च समृणालैर्जलकणिकाचितैः कमलिनीपलाशैर्लतामण्डपपरिक्षिप्ते शिलातले सस्तरमास्तीर्य निधाय शिरसि पिण्डीकृतमुत्तरीयं निपसाद।

४६. मुहूर्तं विश्रान्तश्च तस्य सरस उत्तरतीरप्रदेशे समुच्चरन्तमुन्मुक्तकवलेन निश्चलश्रवणपुटेन तन्मुखीभूतेनग्रोदीवेणेन्द्रायुधेन प्रथममाकर्णितं श्रुतिसुभगं वीणातन्त्रीझंकारमिश्रममानुषगीतशब्दमश्रृणोत्। श्रुत्वा च कुतोऽत्र विगतमर्त्यसंपाते प्रदेशे गीतध्वनेः संभूतिरिति समुपजातकौतुकः कमलिनीदलसंस्तरादुत्थाय तामेव गीतसंपातसूचितां दिशं चक्षुः प्राहिणोत्। अतिदवीयस्तया तु तस्य प्रदेशस्य प्रयत्नव्यापृतलोचनोऽपि विलोकयन्न किञ्चिद्ददर्श, तमेव केवलमनवरतं शब्दं शुश्राव।

४७. कुतूहलवशाच्च गीतध्वनिप्रभवजिज्ञासया कृतगमनबुद्धिर्दत्तपर्याणमिन्द्रायुधमारुह्य प्रियगीतैः प्रथमप्रस्थितैरप्रार्थितैरपि वनहरिणैरुपदिश्यमानवर्त्मा वकुलैलालवंगलवलीलतालोल-कुसुमसुरभिपरिमलयाऽलिकुलविरुतिमुखरितया तमालनीलया दिङ्नागमदवीथ्येव पश्चिमया वनलेखया निमित्तीकृत्य तं गीतध्वनिमभिप्रतस्थे।

खंडोंको खाकर, चन्द्रमाकी तरह करोंमे कमलोंको छूकर, सांपकी तरह जलतरंगकी हवाओंका अभिनन्दन कर, कामबाणके प्रहारवाले रोगीकी तरह छातीपर कमलिनीके पत्तेरूपी चादरको रखकर, वनगजकी तरह फुहारोंसे भीगे पुष्कर (कमल या सूंड) से शोभित हाथवाले हो, सरोवरके जलसे बाहर निकल ऊपर आये। फिर तत्काल टूटे सिरवाले, मृणालयुक्त जलबिन्दुओंसे भीगे, कमलिनीके पत्तों के लतामंडपसे घिरे एक शिलातलपर बिछौना बिछा सिरके नीचे चादरकी गेंडुरी बना कर बैठे।

४६. मुहूर्त भर विश्राम किया था, कि उस सरोवरके उत्तर तीरपर उच्चारित, कौल छोड़ निश्चल कानसे उसी ओर मुंह कर सिर उठाये इन्द्रायुध द्वारा पहले सुने गये, श्रुतिमनोहर वीणा-वाद्यकी झंकारसे मिश्रित अमानुषिक गीतके शब्दको सुना। सुनकर 'इस निर्जन प्रदेशमें गीत-ध्वनि कैसे सम्भव है?' सोच कौतुकाक्रान्त हो कमलिनी-दलके बिस्तरसे उठकर (कुमारने) गीतके आनेसे सूचित दिशाकी ओर आंख दौड़ाई। प्रयत्नसे आंख लगानेपर भी, उस स्थानके अति दूर होनेके कारण, राजकुमार कुछ न देख, केवल उसी शब्दको लगातार सुनते रहे।

४७. कुतूहलवश गीतध्वनिसे उत्पन्न जिज्ञासासे प्रेरित हो वहां जानेका ख्याल करके जीन लगा इन्द्रायुधपर आरूढ़ हो, पहले ही पहुंचे गीतप्रेमी वनहरिणों द्वारा बिना पूछे भी उपदेशे मार्गसे हो, राजकुमारने मौलसरी-इलायची-लवंग-लवलीकी लताओंके चंचल कुसुमोंके सौरभकी गन्धमें, भ्रमरोंकी ध्वनिसे मुखरित तमाल जैसी नीली दिग्गजोंके मदकी गली जैसी पश्चिमी वनपांतीवाले उस गीतध्वनिके संकेत की ओर प्रस्थान किया।

४८. क्रमेण च संमुखागतैः अच्छनिर्झरजलकणजालजनितजड़िमभिः जर्जरितभूर्जवल्कलैः, धूर्जटिवृषरोमन्थफेनबिन्दुवाहिभिः षण्मुखशिखण्डिशिखाचुम्बिभिः, अम्बिकाकर्णपूरपल्लवोल्लासनदुर्ललितैः उत्तरकुरुकामिनीकर्णोत्पलप्रेंखोलनदोहदिभिः, आकम्पितकक्कोलैः नमेरुकुसुमपांसुपातिभिः पशुपतिजटाबन्धार्तवासुकिपरिपीतशेषैराहलादिभिः पुण्यैः कैलासमारुतैरभिनन्दमानो गत्वा च तं प्रदेशं।

४९. सर्वतो मरकतहरितैः, हारिहारीतरुतिरमणीयैः, भ्रमद्भृंगराजनखरजर्जरितजरठकुड्मलैः, उन्मदकोकिलकुलकवलीकृतसहकारकामलाग्रपल्लवैः, उन्मदषट्चरणचक्रवालवाचालितविकचचूतकलिकैः, अचकितचकोरचुम्बितमरिचांकुरैः, चम्पकपरागपुंजपिंजरकपिंजलजग्धपिप्पलीफलैः फलभरनिकरपीडितदाडिमनीडप्रसूतकलविंकैः, प्रक्रीडितकपिकुलकरतलताडनतरलितताडीपुटैः, अन्योन्यकुपितकपोतपक्षपालीपालितकुसुमैः, कुसमरजोराशिसारसारिकाश्रितशिखरैः, शुकशतमुखनखशिखरशकलितफलस्फीतैः, जलधरजललुब्धविप्रलब्धविमुग्धचातकध्वानमुखरिततमालखण्डैः, इभकलभकोल्लूनपल्लववेल्लितलवलीवलयैः, आलीयमाननवयौवनमत्तपारावतपक्षक्षेपपर्यस्तकुसुमस्तबकैः तनुपवनकम्पितकोमलकदलीदलवीजितैः, अविरलफलनिकरावनतनालिकेरवनै, अकठोरपत्रसंपुटपूगविटपिपरिवृतै: अनिवारितविहगतुण्डखण्डितखर्जूरजालकैः, मदमुखरमयूरीमधुररवविराजितान्तरैः, आकलितकलिकाकलापदन्तुरितैः,

४८. क्रमशः सामनेमें आये स्वच्छ निर्झर जलके कणोंसे उत्पादित जाड़े द्वारा भुर्ज वृक्षकी छालोंको जर्जरित किये, शंकरके वृषभकी जुगालीके फेनबिन्दुओंको वहन करते, कार्तिकेयके मोरकी शिखाको चूमनेवाले, पार्वतीके करणाभरणके पल्लवके उठानेकी दुश्चेष्टा करनेवाले, उत्तरकुरु (द्वीप) की कामिनियोंके कर्णकमलके हिलानेके आकांक्षी, कक्कोल-कोशफल को थोड़ा कंपाये, नमेरुके फूलोंके रजको गिराते, शंकरकी जटाके बन्धनसे पीड़ित, वासुकि द्वारा पीकर जूठे किये और पवित्र कैलासके वायुसे अभिनंदित उस प्रदेशमें राजकुमार गये। (जो कि था)—

४९. चारों ओरसे पन्ने जैसे हरे मनोहर हारिलके स्वरसे रमणीय, घूमते भृंगराजके नखसे जर्जरित पुरानी कलियोंवाला, मस्त कोकिलाओं द्वारा कवलित आम्रके कोमल अग्रपल्लवोंवाला, घूमते मस्त भ्रमरों द्वारा वाचालित, फूली आमकी मंजरियोंवाला, न-चकित चकोर द्वारा चुम्बित मिर्चकी अंकुरोंवाला, चम्पाके केसरों जैसे पीले कपिंजल पक्षी द्वारा खाये पीपरके कुलवाला, फलके भारोंसे पीड़ित अनार परके घोंसलोंमें जन्मे कुलंगोंवाला, खेलते वानरोंके पंजे के ताड़नसे ताड़के पत्रोंवाला, परस्पर क्रुद्ध कबूतरोंके पंखोंसे गिरे कुसुमोंवाला, पुष्प केसरकी राशिवाला, मैनासे अवलम्बित शिखरोंवाला, सैकड़ों तोतों के मुख-नखके अग्रभाग द्वारा खंडित फलोंसे समृद्धिवाला मेघके लोभी वंचित मुग्ध चातककी ध्वनिसे मुखरित तमाल वनोंवाला, गज तरुणों द्वारा खंडित पल्लवसे हिलाये लवलीके छल्लोंवाला, भीतर प्रविष्ट नवयौवनमें मस्त [illegible] अंगोंके फेंकनेसे छिन्न-भिन्न हुये पुष्प-गुच्छोंवाला, सूक्ष्म पवन से कम्पित कोमल कदलीदल द्वारा [illegible] किया जाता, घने फलसमूहोंसे झुके नारियलके वनोंवाला, कोमल पत्र सहित सुपाड़ीके वृक्षोंसे घिरा, अनिवारित [illegible] चोंचसे खंडित पिंड-खजूरोंवाला, [illegible] मदसे गुंजन [illegible] मधुर शब्दोंसे शब्दायमान, प्रकट हुई कलियोंसे दन्तुरित, [illegible] कैलासकी

अन्तरान्तरा कैलासतरंगिणीतरंगितसिकतिलतलभूमिभागैः, वनदेवताकरतलविवर्तिनिभमलवतकजलजसिक्तमिव किसलयनिकरमतिसुकुमारमुद्वहद्भिः, ग्रन्थिपर्णग्रासमुदितचमरीकुलनिषेवितमूलैः, कर्पूरागुरुप्रायैः, इन्द्रायुधैरिव घनावस्थानैः, कुमुदैरिवादत्तदिनकरप्रवेशशिशिराभ्यन्तरैः, दाशरथिबलैरिवांजननीलपरिगतप्रान्तैः प्रासादैरिव सपारावतैः, भवतापसैरिव संनिहितवेत्रासनैः, रुद्रैरिव नागलताबद्धपरिकरैः, उदधिकूलपुलिनैरिव निरन्तरोद्भिन्नप्रवाललतांकुरजालकैः, अभिषेकसलिलैरिव सर्वौषधिकुसुमदलकिसलयसनाथैः आलेख्यगृहैरिव बहुवर्णचित्रपत्रशकुनिशतसंशोभितैः, कुरुभिरिव भारद्वाजद्विजोपसेवितैः, महासमरमुखैरिव पुंनागसमाकृष्टशिलीमुखैः, महाकरिभिरिव प्रलम्बवालपल्लवस्पृष्टभूतलैः, अप्रमत्तपार्थिवैरिव पर्यन्तावस्थितबहुगुल्मकैः, दंशितैरिव भ्रमरसंघातकवचावृतकायैः, प्रमाणाभिमुखैरिव वानरकरांगुलिस्पृष्टगुंजैः, अवनिपालशयनैरिव सिंहपादांकिततरुतलैः, आरब्धपंचतपःक्रियैरिवोच्छ्रितशिखिमण्डलपरिवृतैः, दीक्षितैरिव कृतकृष्णसारविषाणकण्डूयनैः, जरद्गृहमुनिभिरिव जटालवालकमण्डलधरैः, इन्द्रजालिकैरिव दृष्टिहारिभिः पादपैः परिवृतं चन्द्रप्रभानाम्नस्तस्य सरसः पश्चिमे तीरे कैलासपादस्य ज्योत्स्नावदातया प्रभया धवलयतस्तं प्रदेशं भूतलभागसंनिविष्टं भगवतः शूलपाणेः शून्यं सिद्धायतनमपश्यत्।

नदी द्वारा तरंगित बालुकामय तलयुक्त भूभागवाला, वनदेवताके करतलों जैसे अलताके अंशांशसे मानो सिक्त, किसलय-समूहको अति कोमलतासे ऊपर उठाये हुये, मांस-रसके ग्राससे मुदित शबरियों द्वारा सेवित अधोभागवाला, प्रायः कपूर और अगरवाला, इन्द्रायुधोंकी तरह वनमें रहनेवाला, कुमुदोंकी तरह सूर्यके प्रवेशको न दे भीतरसे शीतल, रामको सेनाकी तरह अंजन-नील-नल द्वारा घिरे छोरवाला, प्रासादोंकी तरह पारावत (कबूतर) वाला, शिवके तपस्वियोंकी तरह पासमें वेत्र (बेंत) के आसनवाला या असन-प्रिय. रुद्रोंकी तरह नाग लता (या नागरूपी लता) से बांधे परिकरवाला, समुद्रतटके पुलिनोंकी तरह सदा प्रकट मूंगेके लतांकुरके जालवाला, अभिषेकके जलकी तरह सभी औषधि-कुसुम-फलसे युक्त, चित्रशालाकी तरह बहुत रंगवाला, चित्र पत्र पक्षी (शतपत्र) से शोभित, कुरुओंकी तरह भारद्वाज द्विज (पक्षी या कृप) से सेवित, महासमरके आरंभकी तरह पुन्नाग (वृक्ष या गज) द्वारा आकृष्ट भ्रमरोंवाला, महागजोंकी तरह लटकते नवपल्लवों द्वारा छुये जाते भूतलवाला, सावधान राजाओंकी तरह सीमान्तपर अवस्थित बहुत सी सैनिक छावनियोंवाला, वर्मधारियोंकी तरह भ्रमरसमूहरूपी कवचसे ढंके शरीरवाला, तोलनेके लगोंकी तरह वानरके हाथोंकी अंगुलियोंसे छुई गुंजावाला, राजाके शयनकी तरह सिंहके पैरोंसे अंकित तरुतलवाला, पंचाग्नि तपस्या आरम्भ कियोंकी तरह उठती शिखा-वाला, शिखियों (अग्नि या मोर) के समूहसे घिरा, व्रतमें दीक्षितों की तरह हरिणकी सींगसे खुजलाहट किये, बूढ़े गृहमुनियोंकी तरह जटा-वल्कल (या जटा-समूह) धारी, इन्द्रजालिकों (जादूगरों) की तरह नजर बांधने (या अन्ध करने) वाला, वृक्षोंसे घिरा, [illegible] [illegible] पश्चिम तीरपर कैलाशके [illegible] द्वारा [illegible] किया जाता। (राजकुमारने) उस [illegible] अवस्थित भगवान् [illegible] सिद्धायतन (देवालय) का [illegible]।

(४) महाश्वेता—

५०. तच्च पवनोद्धतैरितस्ततः समापतद्भिः केतकीगर्भधूलिभिर्धवलीक्रियमाणकायः पशुपतिदर्शनहेतोर्बलादिव प्रतिपाद्यमानो भस्मव्रतमायतनप्रवेशपुण्यैरिव परिगृह्यमाणः प्रविश्याद्राक्षीच्चतुःस्तम्भस्फटिकमण्डपिकाप्रतिष्ठितम्, अचिरोद्भूतैरार्द्रार्द्रैर्दलशिखरगलज्जलबिन्दुभिरूर्ध्वविपाटितचन्द्रबिम्बदलैरिव निजाट्टहासावयवैरिव शेषफणशकलैरिव पांचजन्यसहोदरैरिव क्षीरोदहृदयाकारैरुपपादितमौक्तिकमुकुटविभ्रमैः शुचिभिर्मन्दाकिनीपुण्डरीकैः कृतार्चनम्, अमलमुक्ताशिलाघटितलिंगम्, अशेषत्रिभुवनवन्दितचरणम्, चराचरगुरुम्, चतुर्मुखम्, भगवन्तं त्र्यम्बकम् ।

५१. तस्य च दक्षिणां मूर्तिमाश्रित्याभिमुखीमासीनाम्, उपरचितब्रह्मासनाम्, अतिविस्तारिसर्वदिङ्मुखप्लावकेन प्रलयविप्लुतक्षीरपयोधिपूरपाण्डुरेणातिदीर्घकालसंचितेन तपोराशिनेव सर्वतो विसर्पता पादपान्तैस्त्रिस्रोतोजलनिभेन पिण्डीभूय वहतेव देहप्रभावितानेन सगिरिकाननं दन्तमयमिव तं प्रदेशं, अन्यथैव धवलयन्तीं कैलासगिरिम्, अन्तर्द्रष्टुरपि लोचनपथप्रविष्टेन श्वेतिमानमिव मनो नयन्तीम्, अतिधवलप्रभापरिगतदेहतया स्फटिकगृहतामिव दुग्धसलिलमग्नामिव विमलचेलांशुकान्तरितामिव आदर्शतलसंक्रान्तामिव शरदभ्रपटलतिरस्कृतामिव अपरिस्फुटविभाव्यमानावयवाम्, पंचमहाभूतमयमपहाय द्रव्यात्मकमंगनिष्पादनोपकरण-

४. शिवपूजती महाश्वेता

५०. हवासे उड़ाये इधर-उधरसे गिरते केतकीके गर्भ-केसरोंसे सफेद श्वेत शरीर बने पशुपतिके दर्शनार्थ, मानो हठात् भस्म व्रतको स्वीकार किये, देवालय प्रवेशके पुण्योंसे मानो ग्रहण किये से ही राज-कुमारने प्रवेश करके भगवान् शंकर को देखा, जो चार खम्भों की स्फटिक मंडपीके तलपर प्रतिष्ठित, हाल ही में उखाड़े भींगे-भींगे पत्तोंके छोरसे गिरते जल-बिन्दुओंवाले, ऊपर फाड़े चन्द्रबिम्बके दलों जैसे, अपने अट्टहासके अवयवों जैसे, शेषके फणके खंडों जैसे, पांचजन्य शंखके सहोदरों जैसे, क्षीरसागरके हृदयके रूपवाले, मोतीके मुकुटकी शोभा किये पवित्र गंगाके पुंडरीकों द्वारा अर्चित, निर्मल मुक्ताशिलासे गढ़े लिंग, सकल त्रिभुवन द्वारा वंदित-चरण, चराचरके गुरु, चार मुखवाले थे।

५१. और मुखलिंगकी दाहिनीवाली मूर्तिकी ओर सामने बैठी कन्या देखी, जो थी ब्रह्मासन-धारिणी, बहुत बड़ी सारी दिशाओंको बहानेवाले प्रलयमें फैले क्षीरसागरकी धारा जैसी पाण्डुवर्ण, अति दीर्घकालसे संचित तपकी राशि जैसी, सब ओरसे चलते वृक्षान्तरों द्वारा गंगाके जल जैसी, पिण्ड हुई बहती सी देहकी प्रभाके वितान द्वारा गिरि-वन-सहित उस प्रदेशको दन्तमय सी करती, कैलासगिरिको दूसरी ही तरह सफेद करती, दर्शकके भीतर लोचन मार्ग द्वारा प्रविष्ट होनेसे मनको सफेद सी करती, अत्यंत श्वेत प्रभा से व्याप्त-देह होनेसे स्फटिक-गृहमें विद्यमान सी, दुग्धजलमें डूबी सी, निर्मल वस्त्रमें ढंकी सी, दर्पणके तलमें लगी सी, शरद्‌के मेघ-समूहसे ढंकी सी, अस्पष्ट दीखते अंगोंवाली थी। और वह पांचभौतिक [illegible] नहीं बल्कि [illegible] निर्माणके साधनसमूह के तौर पर केवल श्वेत गुणसे उत्पन्न की गई, [illegible], [illegible] शंकरकी सेवा करती [illegible] तरह, कामदेवकी देहके लिये शंकरको

कलापधवलगुणेनेव केवलेनोत्पादिताम्, अध्वरक्रियामि-वोद्धतगणकचग्रहभयोपसेवितत्र्यम्बकाम्, रतिमिव मदन-देहनिमित्तं हरप्रसादनार्थमागृहीतहराराधनाम्, क्षीरो-दधिदेवतामिव सहवासपरिचितहरचन्द्रलेखोत्कण्ठाम्, इन्दुमूर्तिमिव स्वर्भानुभयकृतत्रिनयनशरणगमनाम्, ऐरा-वतदेहच्छविमिव गजाजिनावगुण्ठनोत्कण्ठितशितिकण्ठ-चिन्तितोपनताम्, पशुपतिदक्षिणमुखहासच्छविमिव बहि-रागत्य कृतावस्थानाम्, शरीरिणीमिव रुद्रोद्धूलनभूतिम्, आविर्भूतां ज्योत्स्नामिव हरकण्ठान्धकारविघट्टनोद्यम-प्राप्ताम्, गौरीमनःशुद्धिमिव कृतदेहपरिग्रहाम्, कार्ति-केयकौमारव्रतक्रियामिव मूर्तिमतीम्, गिरिशवृषभदेह-द्युतिमिव पृथगवस्थिताम्, आयतनतरुकुसुमसमृद्धिमिव शंकराभ्यर्चनाय स्वयमुद्यताम्, पितामहतपःसिद्धिमिव महीतलमवतीर्णाम्, आदियुगप्रजापतिकीर्तिमिव सप्त-लोकभ्रमणखेदविश्रान्ताम्, त्रयीमिव कलियुगध्वस्त-धर्मशोकगृहीतवनवासाम्, आगामिकृतयुगबीजकलामिव प्रमदारूपेणावस्थिताम्, देहवतीमिव जनध्यानसंपदम्, अमरगजवीथीमिवाभ्रगंगागमवेगपतिताम्, कैलासश्रिय-मिव दशमुखोन्मूलनक्षोभनिपतिताम्, श्वेतद्वीपलक्ष्मीवान्य-द्वीपावलोकनकुतूहलागताम् काशकुसुमविकाशकान्तिमिव शरत्समयमुदीक्षमाणाम्, शेषशरीरच्छायामिव रसातल-मपहाय निर्गताम्, मुसलायुधदेहप्रभामिव मधुमदविघूर्ण-नायासविगलिताम्, शुक्लपक्षपरंपरामिव पुंजीकृताम्, सर्वहंसैरिव धवलतया कृतसंविभागाम्, धर्महृदयादिव विनिर्गताम्, शंखादिवोत्कीर्णाम्, मुक्ताफलादिवाकृष्टाम्,

प्रसन्न करनेके अर्थ हरकी आराधना पकड़े हुई, क्षीरसागरकी अधि-ष्ठात्री देवताकी तरह साथ रहनेसे परिचित शंकरकी चन्द्रलेखामें उत्कण्ठावाली चन्द्रकी मूर्तिसी, सूर्यके भयसे त्रिलोचनके शरणमें पहुंची, ऐरावतके देहके चर्मकी तरह गज-चर्मके अवगुण्ठनसे उत्कंठित शंकरके चिन्तनसे पास आई, पशुपतिके दाहिने मुखके हासकी शोभाकी तरह बाहर आकर अवस्थित शंकरके लगानेकी साकार विभूति सी, शंकरके कंठकी कालिमाके हटानेके प्रयत्नसे आई प्रकट चांदनी सी, गौरीके मनकी शुद्धि मानो देह धारण किये हुई सी, कार्तिकेयके कौमार-व्रतकी मूर्तिमती क्रिया सी, गिरीशके वृषभके देहका प्रकाश मानो अलग अवस्थित सा, देवालयके चैत्यके वृक्षोंके कुसुमकी समृद्धि मानो शंकरकी अर्चनाके लिये स्वयं उद्यत हुई सी, ब्रह्माकी तप सिद्धि मानो महीतलपर उतरी सी, सतयुगके प्रजापति (ब्रह्मा) की कीर्ति मानो सातों लोकोंके भ्रमणके खेदसे विश्राम करतीसी, तीनों वेद मानो कलियुग द्वारा ध्वस्त धर्मके शोकसे वनवास धारण कियेसे, आने-वाले सतयुगका बीजांश मानो स्त्रीरूपमें अवस्थित सा, मानो मुनिजनों की देह ध्यानसम्पदा, देवताओंके गजोंकी वीथि (गली) सी आकाश-गंगाके आते वेगमें पड़ी सी, रावणके उखाड़नेके क्षोभसे गिरी कैलास की शोभा सी, अन्य द्वीपोंके देखनेकी कुतूहलसे आई श्वेतद्वीपकी लक्ष्मी सी, कासके फूलके प्रकाशकी शोभावाले शरत्कालकी उन्नती सी, शेषके शरीरकी छाया सी रसातलको छोड़कर निकल आई, बल-रामके देहकी प्रभाको नष्ट गदाके गदा द्वारा शरीर सुगाढ़के खेदसे गिरी सी, शुक्लपक्षकी पांती मानो पुंजीभूत सी, सफेदीसे सारे हंसोंकी तरह बांटती सी, धर्मके हृदयसे मानो निकली सी, शंखसे मानो उत्कीर्ण सी, मोतीसे मानो आकर्षित सी, मृणालसे मानो बनाये अंगोंवाली सी, धाराओंसे मानो धुली सी, दांतोंके रगड़से मानो घिसी सी, चन्द्रमण्डलसे

मृणालैरिव विरचितावयवाम्, दन्तदलैरिव घटिताम्, इन्दुकरकूर्चकैरिवाक्षालिताम्, वर्णसुधाच्छटाभिरिवाच्छुरिताम्, अमृतफेनपिण्डैरिव पाण्डुरीकृताम्, पारदरसधाराभिरिव धौताम्, रजतद्रवेणेव निर्मृष्टाम्, चन्द्रमण्डलादिवोत्कीर्णाम्, कुटजकुन्दसिन्दुवारकुसुमच्छविभिरिवोल्लासिताम्, इयत्तामिव धवलिम्नः, स्कन्धावलम्बिनीभिरुदयतटगतादर्कबिम्बादुद्धृत्य बालरश्मिप्रभाभिरिव निर्मिताभिरुन्मिषत्तडित्तरलतेजस्ताम्राभिरचिरस्नानावस्थितविरलवारिकणतया प्रणामलग्नपशुपतिचरणभस्मचूर्णाभिरिव जटाभिरुद्भासितशिरोभागाम्, जटापाशग्रथितांमुत्तमांगेन मणिमयं नामांकमीश्वरचरणद्वयमुद्वहन्तीम्।

५२. रविरथतुरंगखुरक्षुण्णनक्षत्रक्षोदविशदेन भस्मना कृतललाटपट्टिकाम्, शिखरशिलाश्लिष्टशशांककलामिव शैलराजमेखलाम्, अतुलभक्तिप्रसाधितया लक्ष्यीकृतलिंगयापरयेव पुण्डरीकमालया दृष्ट्या संभावयन्तीं भूतनाथम्, अनवरतगीतपरिस्फुरिताधरपुटवशादतिशुचिभिः शुद्धहृदयमयूखैरिव गीतगुणैरिव स्वैरिव स्तुतिवर्णैरिव मूर्तिमद्भिर्मुखान्निष्पतद्भिर्दशनांशुभिः पुनरपि स्नपयन्तीं गौरीनाथम्, अतिविमलैश्च वेदार्थैरिव साक्षात्पितामहमुखादाकृष्टैर्गायत्रीवर्णैरिव ग्रथनस्फीततामुपगतैर्नारायणनाभिपुण्डरीकबीजैरिवोद्भूतैः, सप्तर्षिभिरिव करस्पर्शपूतमात्मानमिच्छद्भिस्तारकारूपेणागतैरामलकीफस्थूलैर्मुक्ताफलैरुपचितेनाक्षवलयेनाधिष्ठितकण्ठभागाम्, परिवेषपरिगतचन्द्रमण्डलामिव पौर्णमासीनिशाम्, अधोमुखहरशिरःकपालमण्डलाकारेण मोक्षद्वारनियुक्तकलशकान्तिना स्तनयुगलेनैकहंसमिथुनसनाथामिव गंगाम्, गौरीसिंहसटामयेनेव चामररुचिराकृतिना स्तनयुगलमध्यनिबद्धग्रन्थिना कल्पतरुलतावल्कलेन कृतोत्तरीयकृत्याम्।

मानो ऊपर खींची सी, कुटज-कुन्द-सिन्धुवारके फूलोंकी छवियोंसे मानो उल्लासित सी, धवलताकी सीमा सी, कन्धेपर लटकते उदयाचलके तटपर पहुंचे सूर्यबिम्बसे निकालकर बालकिरणोंकी प्रभाओंसे मानो निर्मित सी, उठती बिजलीके तरल तेज सी, ताम्रवर्ण वालियों द्वारा तुरन्त स्नानके लिये अवस्थित विरल जलकणोंके होनेसे प्रणाममें लगे शंकरके चरणके भस्मचूर्णवाली सी, जटाओंसे प्रकाशमान शिरद्वारा जटापाशमें गुंथे मणिमय नामांक वाले शंकरके दोनों चरणोंको वहन करती सी।

५२. और (वह) थी, सूर्यके रथके तुरंगोंके खुरोंसे चूर्ण किये तारोंकी धूलि जैसे निर्मल भस्म द्वारा ललाटपट्टिका बनाई सी, शिखरकी शिलामें लगे चन्द्रकला जैसी हिमालयकी मेखला सी, अतुल भक्तिसे साधित लक्षित लिंगवाली सी, पुण्डरीकोंकी मालावाली दूसरी दृष्टिसे मानो शंकरकी संभावना करती सी, निरन्तर गाये जाते गीतसे हिलते अधरोंके वश अति पवित्र शुद्ध हृदयकी किरणों सी, गीतके गुणों सी, स्वरों सी, स्तुतिके अक्षरों सी, मुखसे निकलते मूर्तिमान् दांतकी किरणों द्वारा गौरीनाथको फिरसे नहलाती सी और अति निर्मल वेदके अर्थों द्वारा मानो साक्षात् ब्रह्माके मुखसे आकर्षित गायत्रीके अक्षरोंके गूंथनेसे पुष्ट हुई सी, नारायणके नाभि-कमलके बीजों द्वारा मानो उत्पादित उद्धृत सी, [illegible] द्वारा मानो हाथके स्पर्शसे स्वयं पवित्र हुये तारोंके रूपसे आये आंवलेके फलके बराबर स्थूल मोतियोंसे बने रुद्राक्षकी माला धारे कंठभागवाली, मंडलसे घिरे चंद्रमंडलवाली पूर्णिमाकी रात सी, अधोमुख [illegible] सिरके [illegible] आकारवाले मोक्षद्वारपर रखे कलशकी [illegible] दोनों स्तनों द्वारा एक हंस-जोड़ीसे युक्त गंगा सी, गौरीके [illegible] बनी मानो चंवरके चिर आकारवाली युगल-स्तनके बीच बंधी ग्रंथिवाली, कल्पतरु लताके वल्कलकी उत्तरीय (चादर) वाली।

५३. अयुग्मलोचनसकाशात्प्रसादलब्धेन चूडामणिचन्द्रमयूख-जालेनेव मण्डलीकृतेन ब्रह्मसूत्रेण पवित्रीकृतकायाम् आप्रपदीनेन च स्वभावसितेनापि ब्रह्मासनबन्धोत्तान-चरणचलप्रभापरिष्वंगाल्लोहितायमानेन दुकूलपटेन प्रा-वृतनितम्बाम्, यौवनेनापि स्वकालोपसर्पिणा निर्विका-रेण विनीतेन शिष्येणेवोपास्यमानाम्, लावण्येनापि कृतपुण्येनेव स्वच्छात्मना परिगृहीताम्, रूपेणापि रुचिर-लोचनेन विगतचापलेनायतनमृगेणेव सेविताम्, उत्संगगतां च स्वसुतामिव सूक्ष्मदन्तखण्डिकांगुलीयकापूरितांगुलिना त्रिपुण्ड्रकावशिष्टभस्मपाण्डुरेण प्रकोष्ठबद्धशंखखण्डकेन नखमयूखदन्तुरतया गृहीतदन्तकोणेनेव दन्तमयीं दक्षिण-करेण वीणामास्फालयन्तीम्, प्रत्यक्षामिव गन्धर्वविद्यां मणिमण्डपिकास्तम्भलग्नाभिरात्मानुरूपाभिः सहचरी-भिरिव सवीणाभिर्विलासवतीभिः प्रतिमाभिरुपेताम्, स्नपनार्द्रलिंगसंक्रान्तप्रतिबिम्बतयातिप्रबलभक्त्याराधि-तस्य हृदयमिव प्रविष्टां हरस्य।

५४. हारलतयेव प्राप्तकण्ठयोगया, ग्रहपंक्त्येव ध्रुवप्रति-बद्धया, क्रुद्धयेव रागरक्तमुखवर्णया, मत्तयेव घूर्णित-मन्द्रतारयोन्मत्तयेवानेककृततालया, मीमांसयेवानेक-भावनानुविद्धया. गीतया देवं विरूपाक्षमुपवर्णयन्तीम्, अनिमेषमुखीशावकुटुम्बैर्ध्यानमिवाभ्यस्यद्भिर्निश्चलकर्ण-पुटैर्मृगवराहवानरवारणशरभसिंहप्रभृतिभिर्वनचरैराबद्ध-मण्डलैराकर्ण्यमानगीतानुबिद्धविपंचीनिर्घोषाम्, अमरा-पगामिव नभसोऽवतीर्णाम्, दीक्षितवाचमिवाप्राकृताम्, त्रिपुरारिशिरश्शलाकामिव तपोमयीम्, पीतामृतामिव

५३. और थी त्रिलोचनके पाससे प्रसादके तौरपर मिले चूड़ामणिके चन्द्रके किरण-समूहों से घेरे यज्ञोपवीत द्वारा मानो पवित्रित-कायावाली सी, और पैर तक पहुंचे स्वाभाविक, सफेद भी पद्मासन बांधनेसे उत्तान चरणके तलवोंको प्रभाके संसर्गसे थोड़ा लाल हुये दुकूलसे ढँके नितम्ब-वाली, अपने कालमें पास आये यौवन द्वारा भी निर्विकार विनम्र शिष्यकी तरह उपासना की जाती सी, लावण्यसे भी मानो पुण्यात्मा स्वच्छ आत्मासे स्वीकृत हुई सी, रूप द्वारा भी रुचिर लोचन-रूपी अचपल देहमृग द्वारा मानो सेवित सी। और थी गोदमें बैठी अपनी पुत्री सी सूक्ष्म हाथीदांतकी टुकड़ियोंकी अंगूठियोंसे भरी अंगुलियों द्वारा, त्रिपुण्डके बचे भस्मसे सफेद कलाईमें बंधे शंखखंडयुक्त नखकी किरणोंके उछलनेसे दन्तके कोनेको पकड़े दाहिने हाथ द्वारा दन्तुमयी वीणाको बजाती, मानो, प्रत्यक्ष गन्धर्वविद्याकी मंडापकाके स्तम्भमें लग्न मणिसी, अपने अनुरूप सहचरी वीणा सहित सौन्दर्ययुक्त प्रतिमाओंसे युक्त सी थी।

५४. वह थी अभिषेक द्वारा भीगे लिंगमें लग्न प्रतिविम्ब होनेसे मानो अति प्रबल भक्ति द्वारा आराधित शंकरके हृदयमें प्रविष्ट हुई सी। वह गीतिसे शंकरकी स्तुति कर रही थी, जो गीति हारलता द्वारा मानो कंठ-संयोग पाई सी, ग्रहोंकी पंक्तियों द्वारा मानो ध्रुव (गीत का ध्रुव या ध्रुवतारा) से प्रतिबद्ध क्रुद्धा की तरह मानो राग (रक्त) से युक्त वर्णवाली, मत्ता की तरह चक्कर खाके मन्द्र-तार (स्वरों) से उन्मत्ता सी, अनेक ताल करती। **मीमांसा** (विचारणा) सी अनेक विधियों से सूत्रित। वह कन्या अति मधुर गानसे आकर्षित ध्यान-अभ्यास करते निश्चय कानोंवाले मानो मृग-वराह-वानर-गज-शरभ-सिंह आदि मण्डल बांधे बनचरों द्वारा सुने जाते गीतोंसे संबद्ध वीणाका निर्माण करती. मानो आकाशसे उतरी गंगासी, यज्ञकर्ताकी अप्राकृत (न प्राकृत, दिव्य) वाणीसी, त्रिपुरारिके शरकी शलाकासी तपोमयी, अमृत पीनेसे तृष्णा (प्यास या लोभ) से रहित, शम्भुके

विगततृष्णाम्, ईशानशिरःशशिकलामिवानुपजातरागाम्, अमथितोदधिजलसंपदमिवान्तःप्रसन्नाम्, असमस्तपदवृत्तिमिवाद्वंद्वाम्, बौद्धबुद्धिमिव निरालम्बनाम्, वैदेहीमिव प्राप्तज्योतिःप्रवेशाम्, द्यूतकलाकुशलामिव वशीकृताक्षहृदयाम्, महीमिव जलभृतदेहाम्, हिमसमयदिनमुखलक्ष्मीमिव परिगृहीतभास्करातपाम्, आर्यामिवोपासयतिगणोचितमात्राम्, आलिखितामिवाचलावस्थानाम्, अंशुमयीमिव तनुच्छायानुलिप्तभूतलाम्, निर्ममाम्, निरहंकाराम्, निर्मत्सराम्, अमानुषाकृतिम्, दिव्यत्वादपरिज्ञायमानवयःपरिमाणामप्यष्टादशवर्षदेशीयामिवोपलक्ष्यमाणाम्, प्रतिपन्नपाशुपतव्रतां कन्यकां ददर्श।

५५. ततोऽवतीर्य तरुशाखायां बद्ध्वा तुरंगममुपसृत्य भगवते भक्त्या प्रणम्य त्रिलोचनाय तामेव दिव्ययोषितमनिमिषपक्ष्मणा निश्चलनिबद्धलक्ष्येण चक्षुषा पुनर्निरूपयामास। उदपादि चास्य रूपसंपदा कान्त्या प्रशान्त्या चाविर्भूतविस्मयस्य मनसि—

५६. "अहो जगति जन्तूनामसमर्थितोपनतान्यापतन्ति वृत्तान्तान्तराणि। तथाहि। मया मृगयायां यदृच्छया निरर्थकमनुबध्नता तुरंगमुखमिथुनमयमतिमनोहरो मानवानामगम्यो दिव्यजनसंचरणोचितः प्रदेशो वीक्षितः। अत्र च सलिलमन्वेषमाणेन हृदयहारि सिद्धजनोपसृष्टजलं सरो दृष्टम्। तत्तीरलेखाविश्रान्तेन चामानुषं गीतमाकर्णितम्। तच्चानुसरता मानुषदुर्लभदर्शना दिव्यकन्यकेयमालोकिता। न हि मे संशीतिरस्या दिव्यतां प्रति। आकृतिरेवानुमापयत्यमानुषताम्। कुतश्च मर्त्यलोके

शिरकी चन्द्रकला सी राग (या रक्तिमा) बिना, विना मथे समुद्रजल की संपदा सी भीतर स्वच्छ, समासरहित पदकी वृत्ति सी द्वन्द्व समास (या झगड़ा) से रहित, बौद्ध (योगाचार दर्शन) के ज्ञान सी आलंबरहित, वैदेही सी ज्योति (अग्नि या ज्ञान) में प्रवेश-प्राप्त, द्यूतकलामें कुशलता सी, वशमें करे अक्ष (इन्द्रिय या पाषाण) के सारोंवाली, मही सी जल-धारित देहवाली, शीतकालके प्रातःकी शोभा सी, भास्करके आलोक (या तपको) स्वीकृत किये, आर्या (छन्द) की तरह यति और गणके अनुकूल मात्राको लिये, चित्रित सी अचल स्थितिवाली, तेजोमयी सी शरीरकी कांतिसे भूतलको व्याप्त किये, ममतारहित, अहंकाररहित, मत्सररहित, दिव्य आकारवाली, दिव्य होनेसे आयुका परिमाण न बतानेवाली भी अठारह वर्षकी सी दिखाई देती, पाशुपत व्रत धारिणी थी।

५५ तब राजकुमारने उतरकर घोड़ेको वृक्षकी शाखामें बांध कर भगवान् त्रिलोचनको भक्तिसे प्रणाम करके उसी दिव्य स्त्रीको निश्चल लक्ष्य बंधे अपलक नेत्रसे फिर अवलोकन किया। और उसकी रूपशोभा, कांति और प्रशांतिसे चकित विस्मित कुमारके मनमें हुआ—

५६. "अहो! संसारमें प्राणियोंके बिना सोचे दूसरे वृत्तांत आ टपकते हैं, जैसे मैंने शिकारमें यों ही व्यर्थ किन्नर जोड़ीका अनुगमन करते इस अत्यन्त मनोहर, मानवोंके लिये अगम्य, दिव्य जनोंके गमनागमन-वाले प्रदेशको देखा। यहां पानीकी खोज करते मनोहर सिद्धजनोंसे सेवित जलवाले सरोवरको देखा, और उसके तीरके पास विश्राम करते दिव्य गीतको सुना, और उसका अनुसरण करते मनुष्योंके लिये दुर्लभ-दर्शन इस दिव्य कन्याको देखा। इसके दिव्य होनेमें मुझे सन्देह नहीं। आकार ही इसके अमानुषी होनेका अनुमान कराता है। मृत्युलोकमें इस प्रकारकी विशाल संगीत ध्वनि कहां संभव है।

संभूतिरेवंविधानां गान्धर्वध्वनिविशेषणाम् । तद्यदि मे सहसा दर्शनपथान्नापयाति, नारोहति वा कैलासशिखरम्, नोत्पतति वा गगनतलम्, ततः "का त्वम्, किमभिधाना वा किमर्थं वा प्रथमे वयसि प्रतिपन्ना व्रतम्," इति सर्वमेवैतदेनामुपसृत्य पृच्छामि । अतिमहानयमवकाश आश्चर्याणाम्, इत्यवधार्य तस्यामेव स्फटिकमण्डपिकायामन्यतमं स्तम्भमाश्रित्य समुपविष्टो गीतसमाप्त्यवसरं प्रतीक्षमाणस्तस्थौ ।

—पूर्वभागे

(५) प्रथमः परिचयः—

५७. 'अस्याः परिभूतान्यकुसुमामोदो नन्वयं परिमल' इति मनसा निश्चित्य तं तपोधनयुवानमीक्षमाणाहमचिन्तयम्—"अहो रूपातिशयनिष्पादनोपकरणकोशस्याक्षीणता विधातुः, यत्त्रिभुवनाद्भुतरूपसंभारं भगवन्तं कुसुमायुधमुत्पाद्य तदाकारातिरिक्तरूपातिशयराशिरयमपरो मुनिर्मायामयो मकरकेतुरुत्पादितः । मन्ये च सकलजगन्नयनानन्दकरं शशिबिम्बं विरचयता लक्ष्मीलीलावासभवनानि कमलानि सृजता ब्रह्मणैतदाननाकारकरणकौशलाभ्यास एव कृतः, अन्यथा किमिव हि सदृशवस्तुविरचनायां कारणम् । अलीकं चेदं यथा किल सकलाः कलाः कलावतो बहुलपक्षे क्षीयमाणस्य सुषुम्णानाम्ना रश्मिना रविरापिबतीति, ताः खल्वस्य गभस्तयः समस्ता वपुरिदमाविशन्तीति । कुतोऽन्यथा रूपापहारिणि क्लेशबहुले तपसि वर्तमानस्येदं लावण्यम्" इति चिन्तयन्तीमेव मामविचारितगुणदोषविशेषो रूपैकपक्षपाती नवयौवनसुलभः कुसुमायुधः कुसुमसमयमद इव मधुकरीं परवशामकरोदुच्छ्वसितैः सह ।

सो यदि, यह मेरी आंखोंसे यदि एकाएक दूर न जाये या कैलास शिखर पर नहीं चढ़ जाये, या आकाशमें न उड़ जाय, तो "तू कौन है, क्या नामवाली है, किसलिये तरुणाईमें व्रत धारिणी हुई" यह सब पास जाकर पूछूंगा। यह आश्चर्योंका बहुत ही बड़ा स्थान है।" यह सोच उसी स्फटिक मंडपिकामें एक स्तम्भ का सहारा ले बैठकर राजकुमार गीतकी समाप्ति की प्रतीक्षा करने लगे।

—पूर्वभाग

५. परिचय—

५७. इसकी सुगन्धि तो दूसरे फूलोंकी गन्धको तिरस्कृत करनेवाली है, यह मनमें निश्चय करके उस युवा तपस्वीको देखती मैंने सोचा—"अहो! इस तरहके अतिशय सौंदर्यवाले रूपके उत्पादनसे ब्रह्माका साधन-कोश अक्षय है, जो कि त्रिभुवनके अद्भुत रूपवाले भगवान् कामदेवको उत्पन्न करके, उसके आकारसे भिन्न अति सौंदर्य-राशि इस दूसरे मायामय कामदेव जैसे मुनिको उत्पन्न किया। मैं समझती हूं, सारे जगत्के नयनोंको आनंदकर चन्द्रबिम्बकी रचना करते लक्ष्मीके विलासभवनरूपी कमलोंको सृजन करते, ब्रह्माने इसके मुखकी आकृति बनानेकी चतुराईका अभ्यास किया; नहीं तो एक समान वस्तु बनानेका क्या कारण था? कृष्णपक्षमें क्षीण होते चन्द्रमाकी सारी कलाओंको सुषुम्णा नामक रश्मि द्वारा सूर्य पीता है, यह कथन झूठा है। इसकी वह सारी किरणें इसके इस शरीरमें सम्मिलित हैं। नहीं तो सौंदर्यनाशक बहुत क्लेशकारी तपस्यामें विद्यमान इसका यह सौंदर्य कैसे (टिका) है। यह सोचती गुण-दोषके विशेष विचार बिना केवल सौंदर्य-पक्षपाती नव-यौवन सुलभ कामदेवने (मुझे) वसंतके मदकी तरह मधुकरीको, निःश्वासोंके साथ परवश कर दिया। थोड़ी आकुंचित पलकोंवाले कुटिल, अधिक चंचल पुतलीके कोने समीपस्थ अपलक दाहिने नेत्र द्वारा लालसासे पीती सी मैं कुछ आगे सी लगी—'मैं तेरे आधीन हूं' यह कहती, सामने हृदयको अर्पण करती सी,

विस्मृतनिमेषेण किंचिदामुकुलितपक्ष्मणा जिह्मित-तरलतरतारशारोदरेण दक्षिणेन चक्षुषा सस्पृहमापिबन्तीव, किमपि याचमानेव, 'त्वदायत्तास्मि' इति वदन्तीव, अभिमुखं हृदयमर्पयन्तीव, सर्वात्मनानुप्रविशन्तीव, तन्मयतामिव गन्तुमीहमाना, 'मनोभवाभिभूतां त्रायस्व' इति शरणमिवोपयान्ती, 'देहि हृदयेऽवकाशम्' इत्यर्थितामिव दर्शयन्ती 'हाहा, किमिदमसांप्रतमतिह्रेपणमकुलकुमारीजनोचितमिदं मया प्रस्तुतम्' इति जानानाप्यप्रभवन्ती करणानाम्, स्तम्भितेव, लिखितेव, उत्कीर्णेव, संयतेव, मूर्च्छितेव, केनापि विधृतेव, निस्पन्दसकलावयवा तत्कालाविर्भूतेनावष्टम्भेन, अकथितशिक्षितेनानाख्येयेन, स्वसंवेद्येन केवलं न विभाव्यते किं तद्रूपसंपदा, किं मनसा, किं मनसिजेन, किमभिनवयौवनेन, किमनुरागेणेवोपदिश्यमानं, किमन्येनैव वा केनापि प्रकारेण, अहं न जानामि कथंकथमिति तमतिचिरं व्यलोकयम् ।

५८. उत्क्षिप्य नीयमानेव तत्समीपमिन्द्रियैः, पुरस्तादाकृष्यमाणेव हृदयेन, पृष्टतः प्रेर्यमाणेव पुष्पधन्वना कथमपि मुक्तप्रयत्नमात्मानमधारयम् । अनन्तरं च मेऽन्तर्मदनेनावकाशमिव दातुमाहितसंताना निरीयुः श्वासमरुतः । साभिलाषं हृदयमाख्यातुकाममिव स्फुरितमुखमभूत्कुचयुगलम् । स्वेदलवलेखाक्षालितेवागलज्जा । मकरध्वजनिशितशरनिपातत्रस्तेवाकम्पत गात्रयष्टिः । तद्रूपातिशयं द्रष्टुमिव कुतूहलादालिंगनलालसेभ्योऽगेभ्यो निरगाद्रोमांचजालकम् । अशेषतः स्वेदाम्भसा धौतश्चरणयुगलादिव हृदयमविशद्रागः ।

सब प्रकारसे प्रवेश करती सी, तन्मयताको मानो जान पानेको 'काम देवसे पराजित मेरी रक्षा करो', यह कह शरणागत होती सी, 'हृदयमें स्थान दो' यह याचना दिखाती सी चाहने लगी। 'हा, अनुचित अति लज्जाकर कुलकुमारी जनोंके लिये अभव्य इस प्रसंगको क्यों प्रस्तुत किया', यह जानती भी इन्द्रियों पर अधिकार न रखती, स्तभित सी, लिखित सी, उत्कीर्ण सी, बंधी सी, मूर्छित सी, किसी द्वारा पकड़ी गई सी, सारे अंगसे निश्चेष्ट, उस समय प्रकट हुई जड़ता द्वारा बिना कहे-सिखे अकथनीय, केवल आत्मानुभव द्वारा नहीं जान सकी। क्या उसकी सौंदर्य-सम्पत्तिसे, क्या मनसे, क्या मनसिजसे, क्या अभिनव यौवनसे, क्या अनुरागसे मानो उपदिष्ट होने, या अन्य ही किसी प्रकारसे अथवा नहीं जानती कैसे-कैसे बहुत देर तक मैं उसे देखती रही।

५८ इन्द्रियोंसे, उठाकर उसके पास ली जाती, हृदयसे आगे आकर्षित होती, पीछेसे कामदेव द्वारा प्रेरित होती सी, अपनेको जैसे-कैसे बिना प्रयत्नके मैंने रोका। और बादमें मेरे भीतर कामदेवको अवकाश देते हुये से श्वास-वायु धारा बनकर निकले हृदयकी अभिलाषाको बतलाते हुये मानो दोनों स्तन-मुख कंपित हुये। पसीनेकी रेखासे घुलकर लज्जा मानो गल गई। कामदेवके तीक्ष्ण बाणोंके गिरनेसे भयभीत सा शरीर कंप गया। उसके सौन्दर्य-आधिक्यको देखनेके लिये मानो कौतूहलसे आलिंगनकी लालसावाले (मेरे) अंगांग रोमाञ्च हो गया। पसीनेके जलसे पूरी तौरसे धुल चरणयुगलका राग मानो हृदयमें प्रविष्ट हो गया।

५९. आसीच्च मम मनसि—

"शांतात्मनि दूरीकृतसुरतव्यतिकरेऽस्मिन् जने मां निक्षिपता किमिदमनार्य्येणासदृशमारब्धं मनसिजेन ? एवं च नामातिमूढं हृदयमंगनाजनस्य, यदनुरागविषययोग्यतामपि विचारयितुं नालम्। क्वेदमतिभास्वरं धाम तेजसां तपसां च, क्व च प्राकृतजनाभिनन्दितानि मन्मथपरिस्पन्दितानि ? नियतमयं मामेवं मकरलांछनेन विडम्ब्यमानामुपहसति ·ानसा। चित्रं चेदं यदहमेवमवगच्छन्त्यपि न शक्नोम्यात्मनो विकारमुपसंहर्तुम्। अन्या अपि कन्यकास्त्रपां विहाय स्वयमुपयाताः पतीन्, अन्या अप्यनेन दुर्विनीतेन मन्मथेनोन्मत्ततां नीता नार्यः, न पुनरहमेका यथा कथमनेन क्षणेनाकारमात्रालोकनाकुली भूतमेवमस्वतन्त्रतामुपैत्यन्तःकरणम्। कालो गुणाश्च दुर्निवारतामारोपयन्ति मदनस्य सर्वथा। यावदेव सचेतनास्मि, यावदेव च न परिस्फुटमनेन विभाव्यते मे मदनदुश्चेष्टितलाघवमेतत्, तावदेवास्मात्प्रदेशादपसर्पणं श्रेयः। कदाचिदनभिमतस्मरविकारदर्शनकुपितोऽयं शापाभिपन्नतां करोति माम्। अदूरपाको हि मुनिजनप्रकृतिः" इत्यवधार्यापसर्पणाभिलाषिण्यहमभवम्। अशेषजनपूजनीया चेयं जातिरिति कृत्वा तद्वदनाकृष्टदृष्टिप्रसरम्, अचलितपक्ष्ममालम्, अदृष्टभूतलम्, उल्लसितकर्णपल्लवोन्मुक्तकपोलमण्डलम्, आलोलालकलतालसत्कुसुमावतंसम्, अंसदेशदोलायितमणिकुण्डलमस्मै प्रणाममकरवम्।

५९. और मेरे मनमें हुआ—कामुकता के व्यापारको दूर छोड़ इस शांत-आत्मा पुरुषके ऊपर इस तरह मुझे फेंकते क्या अनार्य कामदेवने अनुचित नहीं किया ? अंगनाजनोंका हृदय ऐसा ही अति मूढ़ है, जो कि अनुराग पात्रकी योग्यताके बारेमें भी नहीं विचार सकता । कहां यह तेज और तपस्याका अति प्रकाशमान धाम और कहां साधारण जनोंद्वारा अभिनंदित कामदेवकी कामुक चेष्टायें ? निश्चय ही कामदेव द्वारा मुझे इस तरह विडंबित होती देख यह मनसे मेरा उपहास करता होगा । आश्चर्य है, मैं यह जानती भी अपने विकारको रोक नहीं सकती । दूसरी भी कन्यायें लाज छोड़कर स्वयं पतियोंके पास गई ? दुष्ट कामदेवने केवल अकेली मुझे ही नहीं दूसरी नारियोंको भी उन्मत्त बनाया, जैसे कि इसी क्षण रूप मात्र देखनेसे आकुल (मेरा) हृदय परतन्त्र हो रहा है । समय और गुण सब प्रकारसे कामदेवकी दुर्निवारताको स्थापित करते हैं । जब तक मैं होश-हवासवाली हूं, और जब तक मेरी काम-दुश्चेष्टा इस हलकेपनको यह स्पष्ट नहीं जान लेता, तब तक ही इस जगह से (मेरा) हट जाना अच्छा है । शायद अरुचिकर काम-विकारको देख कुपित होकर यह मुझे शाप दे दे । मुनि जनोंका स्वभाव कोपसे दूर नहीं रहता । यह सोचकर मैं हटनेकी इच्छा करने लगी । यह जाति सबकी पूजनीय है, यह सोचकर उसके मुखसे आकर्षित-दृष्टि निश्चल पलकवाली, भूतल को न देखती, उल्लसित कर्ण पल्लवसे छूते कपोलवाली, चंचल अलकोंमें शोभायमान कुसुम-मालावाली, कन्धे पर हिलते मणिकुंडलोंके साथ मैंने उसे प्रणाम किया ।

६०. अथ कृतप्रणामायामपि दुर्लंघ्यशासनतया मनोभुवः, मदजननतया च मधुमासस्य, अतिरमणीयतया च तस्य प्रदेशस्य, अविनयबहुलतया चाभिनवयौवनस्य, चंचलप्रकृतितया चेन्द्रियाणाम् दुर्निवारतया च विषयाभिलाषाणाम्, चपलतया च मनोवृत्तेः, तथाभवितव्यतया च तस्य वस्तुनः, किं बहुना मम मन्दभाग्यदौरात्म्यादस्य चेदृशस्य क्लेशस्य विहितत्वात्तमपि मद्विकारापहृतधैर्यं प्रदीपमिव पवनस्तरलतामनयदनंगः।

६१. तदा तस्याप्यभिनवागतमदनं प्रत्युद्गच्छन्निव रोमोद्गमः प्रादुरभवत्। मत्सकाशमभिप्रस्थितस्य मनसो मार्गमिवोपदिशद्भिः पुरः प्रवृत्तं श्वासैः। वेपथुगृहीता व्रतभंगभीतेवाकम्पत करतलगताक्षमाला, द्वितीयेव कर्णावसक्त कुसुममंजरी कपोलतलासंगिनी समदृश्यत स्वेदसलिलसीकरजालिका। मद्दर्शनप्रीतिविस्तारितस्य चोत्तानतारकस्य पुण्डरीकमयमिव तमुद्देशमुपदर्शयतो लोचनयुगलस्य विसर्पिभिरंशुसंतानैर्यदृच्छयाच्छोदसलिलमपहाय विकचकुवलयवनैरिव गगनतलसमुत्पतितैररुध्यन्त दश दिशः। तया तु तस्यातिप्रकटया विकृत्या द्विगुणीकृतमदनावेशां तत्क्षणमहमवर्णनयोग्यां कामप्यवस्थामन्वभवम्

६२. इदं च मनस्यकरवम्—'अनेकसुरतसमागमलास्यलीलोपदेशोपाध्यायो मकरकेतुरेव विलासानुपदिशति, अन्यथा विविधरसासंगललितेष्वीदृशेषु व्यतिकरेष्वप्रदिष्टबुद्धेरस्य जनस्य कुत इयमनभ्यस्ताकृती रतिरसनिःस्यन्दमिव क्षरन्ती, अमृतमिव वर्षन्ती, मदमुकुलितेव,

६०. तब मेरे प्रणाम करनेके बाद ही कामदेवकी आज्ञाके दुर्लंघनीय होनेसे, चैत महीनेके मदके उत्पादनसे, और उस प्रदेशकी अति रमणीयता से, और अभिनव यौवनके बहुत दुर्विनीत होनेसे, और इन्द्रियोंकी चंचल स्वभावतासे, विषय-अभिलाषाओंकी दुर्निवारतासे, और मनोवृत्तियों-की चपलतासे, और तद्-तद् वस्तुकी वैसी भवितव्यता से, बहुत क्या (कहूँ) मेरे मन्दभाग्य की दुष्टताके कारण और ऐसे क्लेशके बदा होनेके कारण भी, मेरे विकारसे अधीर हुये उसे भी दीपकको पवनकी तरह कामदेवने चंचल कर दिया।

६१. तब नवागत मदनकी अगवानी करते से उसको भी रोमांच प्रकट हुआ। मेरी ओर प्रस्थान करते मनको मार्ग दिखलाते से श्वास आगे चले। पकड़े व्रतके भंगसे भयभीत सी हाथकी रुद्राक्ष माला कंपी, कपोलसे लिपटी कानमें लगी कुसुममंजरी स्वेद-जल बिंदुओंकी दूसरी जाली सी दिखाई देने लगी। मेरे देखनेकी इच्छासे फैले और उत्तान पुतलियों-वाले उस स्थानको पुण्डरीकमय सा दिखलाते, लोचनयुगलकी फैलती किरणों द्वारा अकस्मात् स्वेच्छासे आच्छोद सरोवरके जलको छोड़कर मानो आकाशतलकी ओर उड़ते फूले कमलोंके बनोंसे दशों दिशायें रुंध गईं। तरुणके उस अति प्रकट विकारसे कामके दुगुने आवेश-वाली हो मैं उसी क्षण किसी अवर्णनीय अवस्थाको अनुभव करने लगी।

६२. मैंने मनमें सोचा—'अनेक सुरत-समागमोंकी नृत्य-लीलाका उपदेशक गुरु कामदेव ही निरागोंको सिखा रहा है, नहीं तो विविध रस संसर्गसे कलित एवं व्यापारोंमें अशिक्षित आनवाले पुरुषकी यह अभ्याससहित आकृति, जैसे रतिरसका प्रवाह सी बहाती, अमृत सी बरसाती, मदसे मुकुलित सी, खेदसे अलस सी, निद्रासे जड़ सी, आनन्दके भारसे मन्द चलती पुतलियोंके संचारवाली, चंचल भौंहोंको उल्लसित करने-वाली, इस पुरुषकी यह दृष्टि कैसे है? कहाँसे यह अत्यन्त निपुणता

खेदालसेव, निद्राजडेव, आनन्दभरमन्थरतरत्तारसं-चारिणी, अनिभृतभ्रूलतोल्लासिनी दृष्टिः। कुतश्चेद-मतिनैपुण्यम्, यच्चक्षुषैवानक्षरमेवमन्तर्गतो हृदयाभिलाषः कथ्यते।' प्राप्तावसरा चोपसृत्य तं द्वितीयमस्य सहचरं मुनिबालकं प्रणामपूर्वकमपृच्छम्—"भगवान्किमभिधानः? कस्य वायं तपोधनस्य युवा? किंनाम्नश्च तरोरियम-वतंसीकृता कुसुममंजरी? जनयति हि मे मनसि महत्कौ-तुकमस्याः समुत्सर्पन्नसाधारणसौरभोयमनाघ्रातपूर्वो गन्ध" इति। स तु मामीषद्विहस्याब्रवीत्—"बाले, किमनेन पृष्टेन प्रयोजनम्? अथ कौतुकमावेदयामि। श्रूयताम्-

—पूर्वभागे

(६) प्रेम—

६३. अस्ति त्रिभुवनप्रख्यातकीर्तिरत्युदारतया सुरासुरसिद्ध-वृन्दवन्दितचरणयुगलो महामुनिर्दिव्यलोकनिवासी श्वेतकेतुर्नाम। तस्य च भगवतः सुरलोकसुन्दरीहृदया-नन्दकरम् अशेषत्रिभुवनसुन्दरम्, अतिशयितनलकूबरं रूपमासीत्। स कदाचिद्देवतार्चनकमलान्युद्धर्तुमैरावतमद-जलबिन्दुबद्धचन्द्रकशतखचितजलाम् हरहसितसितस्रोतसं मन्दाकिनीमवततार। अवतरन्तं च तं कमलवनेषु संततसंनिहितविकचसहस्रपत्रपुण्डरीकोपविष्टा देवी लक्ष्मी-र्ददर्श। तस्यास्तु तमवलोकयन्त्याः प्रेममदमुकुलितेना-नन्दबाष्पभरतरंगतरलतारेण लोचनयुगलेन रूपमास्वा-दयन्त्या जृम्भिकारम्भमन्थरमुखविन्यस्तहस्तपल्लवाया मन्मथविकृतं मन आसीत्। आलोकनमात्रेण च समासादित-सुरतसमागमसुखायास्तस्मिन्नेवासनीकृते पुण्डरीके कृता-र्थतासीत्। तस्माच्च कुमारः समुदपादि। ततस्तमुत्संग

आई, जो कि आंख द्वारा ही अक्षरके बिना ही भीतरके हृदय-अभिलापको कह गया।' अवकाश पाकर और पास जा उसके दूसरे साथी मुनिबालकको प्रणाम करके मैंने पूछा —'भगवान् यह क्या नामवाले हैं? किस तपोधनके पुत्र यह तरुण हैं? कौन से नामके वृक्षकी कुसुममंजरी (इनका) कर्णाभूषण बनी हुई है? फैलता हुआ असाधारण सौरभवाला कभी न सूँघा इसका यह गंध मेरे मनमें भारी कौतुक पैदा कर रहा है।' वह थोड़ा सा हंसकर मुझसे बोला—'बालिके, यह पूछनेका क्या मतलब है? यदि कौतूहल है, तो बतलाता हूं, सुनो—

—पूर्वभाग

६. प्रेम—

६३. त्रिभुवनमें प्रख्यात कीर्तिवाले, अत्यंत उदारतासे सुर-असुर-सिद्ध-समूह द्वारा वंदित चरणोंवाले, दिव्यलोकवासी **श्वेतकेतु** नामक महामुनि हैं। सुरलोक की सुंदरियोंके हृदयोंको आनन्द करनेवाले, अखिल त्रिभुवनमें सुन्दर **नलकूबरसे** भी बढ़कर उन भगवान्का रूप था। एक समय वह देव-पूजार्थ कमलोंको चुननेके लिये **ऐरावतके** मदके जलबिन्दुओंपर बंधी चंद्रिकाओं द्वारा खचित जलवाली, शंकरके हास जैसी सफेद स्रोतवाली, **गंगामें** उतरे। कमलवनमें उतरते हुये उन्हें पासके फूले सहस्रदल पुंडरीकपर सदा उपविष्ट लक्ष्मीदेवीने देख लिया। देखती, प्रेम-मदसे मुकुलित आनंद-अश्रु-तरंगमें चंचल पुतलियोंवाले लोचनयुगल द्वारा रूपका आस्वाद लेती, अंगड़ाई आनेसे मन्द मुखपर रक्खे हस्तपल्लववाली, लक्ष्मीका मन काम-विकारसे विह्वल हो गया। देखने मात्रसे सुरतसमागमका सुख पा उसी आसनके पुंडरीकपर उसे तृप्ति हो गई, जिससे कुमार उत्पन्न हुआ। तब उसे गोद में लेकर लक्ष्मी ने —'भगवन्, लो यह तुम्हारा बेटा है' यह कहकर **श्वेतकेतुको** दे दिया। मुनि ने भी बालकोंके लिये उचित सारे संस्कारोंको करके **पुण्डरीकसे** उत्पन्न होनेके कारण **पुण्डरीक**

आदाय सा 'भगवन्, गृहाण तवायमात्मजः' इत्युक्त्वा तस्मै श्वेतकेतवे ददौ। असावपि बालकजनोचिताः सर्वाः क्रियाः कृत्वा तस्य पुण्डरीकसंभवतया तदेव पुण्डरीक इति नाम चक्रे, प्रतिपादितव्रतं च तमागृहीतसकलविद्याकलापमकार्षीत्। सोऽयम्। इयं च सुरासुरैर्मथ्यमानात्क्षीरसागरादुद्गतः पारिजातनामा पादपस्तस्य मंजरी। यथा चैषा व्रतविरुद्धमस्य श्रवणसंसर्गमासादितवती तदपि कथयामि। अद्य चतुर्दशीति भगवन्तमम्बिकापतिं कैलासगतमुपासितुममरलोकान्मया सह नन्दनवनसमीपेनायमनुसरन्निर्गत्य साक्षान्मधुमासलक्ष्मीदत्तललितहस्तावलम्बया बकुलमालिकामेखलया कुसुमपल्लवग्रथिताभिराजानुलम्बिनीभिः कण्ठमालिकाभिर्निरन्तराच्छादितविग्रहया नवचूतांकुरकर्णपूरया पुष्पासवपानमत्तया वनदेवतया पारिजातकुसुममंजरीमिमामादाय प्रणम्याभिहितः—

६४. 'भगवन् सकलत्रिभुवनदर्शनाभिरामायास्तवाकृतेरस्याः सदृशोऽयमलंकारः क्रियताम्। इयमवतंसविलासदुर्ललितारोप्यतां श्रवणशिखरम्। व्रजतु सफलतां जन्म पारिजातस्य' इत्येवमभिदधानां चायमात्मरूपस्तुतिवादत्रपावनमितलोचनस्तामनादृत्यैव गन्तुं प्रवृत्तः। मया तु तामनुयान्तीमालोक्य 'को दोषः सखे, क्रियतामस्याः प्रणयपरिग्रहः,' इत्यभिधाय बलादियमनिच्छतोऽप्यस्य कर्णपूरीकृता। तदेतत्कार्त्स्न्येन योऽयम्, यस्य चायम्, या चेयम्, यथा चास्य श्रवणशिखरं समारूढा, तत्सर्वमावेदितम्। इत्युक्तवति तस्मिन्स तपोधनयुवा किंचिदुपदर्शितस्मितो मामवादीत्, 'अयि कुतूहलिनि, किमनेन प्रश्नायासेन? यदि रुचितसुरभिपरिमला गृह्यतामियम्,' इत्युक्त्वा समुपसृत्यात्मीयाच्छ्रवणादपनीय कलैरलिकुल-

यही उसका नामकरण किया, और व्रती बना उसे सारी विद्याओंमें पारंगत करा दिया। वही है यह। और यह देवासुरों द्वारा मथे क्षीर-सागरसे निकले **पारिजात** नामक वृक्षकी मंजरी है। इसने कैसे ब्रह्मचर्यव्रतके विरुद्ध इसके कानोंका संसर्ग पाया, इसे भी बतलाता हूं। आज चतुर्दशी है, यह सोच **कैलास**वासी भगवान् अम्बिकापतिकी उपासनाके लिये सुरलोकसे मेरे साथ यह **नंदनवन**के समीपसे निकला। (तब) साक्षात् मधुमासकी लक्ष्मी द्वारा दिये ललित हस्तावलम्ब-वाली, मौलसरीकी मालाकी मेखलावाली, कुसुमपल्लवसे गुथी जानु तक लटकती कंठमालिकाओं द्वारा निरंतर आच्छादित शरीर-वाली, नये आम्रमंजरीके कर्णपूरवाली, पुष्पके आसवके पीनेसे मत्त, वनदेवताने इस पारिजात कुसुममंजरीको लेकर प्रणाम करके कहा—

६४. 'भगवन्, सकल त्रिभुवनके दर्शनके लिये अति सुन्दर तुम्हारे इस रूपके योग्य यह अलंकार है, इसे धारण कीजिये, तुच्छ आभूषण-विलास को अपने कानोंमें रखिये। इस प्रकार पारिजातका जन्म सफल होगा।' इस प्रकार कहती वनदेवता द्वारा यह अपने सौंदर्यकी स्तुति करनेकी लज्जासे नीची आंख किये उसका अनादर करते ही चलने लगा। मैंने उसे पीछे आती देखकर 'मित्र, क्या दोष है, इसके स्नेहको स्वीकार कीजिये' कहकर इच्छा न होने पर भी जबर्दस्ती इसे इसके कानका भूषण बना दिया। सो यह पूरी तौरसे जो है और यह जिसका है, जो (मंजरी) यह है, और जैसे इसके कानोंमें यह आरूढ़ हुई, सो सब मैंने बतला दिया।' उसके यह कहनेपर उस तपस्वी तरुणने कुछ मुस्कुरा-कर मुझसे कहा—'आर्ये कुतूहलिनी, इन प्रश्नोंके परिश्रमसे क्या फायदा? यदि इसकी सुगंध पसन्द है, तो लीजिये', और पास आकर

क्वणितैः प्रारब्धरतिसमागमप्रार्थनामिव । मदीये श्रवणपुटे तामकरोत् । मम तु तत्करतलस्पर्शलाभेन तत्क्षणमपरमिव पारिजातकुसुममवतंसस्थानपुलकमासीत् । स च मत्कपोलस्पर्शसुखेन तरलीकृतांगुलिजालवगत्करतलादक्षमालां लज्जया सह गलितामपि नाज्ञासीत् । अथाहं तामसंप्राप्तामेव भूतलमक्षमालां गृहीत्वा सलीलं तद्भुजपाशसंदानितकण्ठग्रहसुखमिवानुभवन्ती दर्शितापूर्वहारलतालीलां कण्ठाभरणतामनयम् ।

६५. इत्थंभूते च व्यतिकरे छत्रग्राहिणी मामवोचत्—'भर्तृदारिके, स्नाता देवी । प्रत्यासीदति गृहगमनकालः । तत्क्रियतां मज्जनविधिः' इति । अहं तु तेन तस्या वचनेन नवग्रहा करिणीव प्रथमांकुशपातेनानिच्छया कथंकथमपिसमाकृष्यमाणा तन्मुखाल्लावण्यामृतपंकमग्नामिव कपोलपुलककण्टकजालकलग्नामिव मदनशरशलाकाकीलितामिव सौभाग्यगुणस्यूतामिव अतिकृच्छ्रेण दृष्टिं समाकृष्य स्नातुमुदचलम् । उच्चलितायां च मयि द्वितीयो मुनिदारकस्तथाविधस्तस्य धैर्यस्खलितमालोक्य किंचित्प्रकटितप्रणयकोप इवावादीत्—'सखे पुण्डरीक, नैतदनुरूपं भवतः । क्षुद्रजनक्षुण्णः क एष मार्गः ? धैर्यधना हि साधवः । किं यः कश्चन प्राकृत इव विक्लवीभवन्तमात्मानं न रुणत्सि ? कुतस्तवापूर्वोऽयमद्येन्द्रियोपप्लवः, येनास्येवं कृतः ? क्व ते तद्धैर्यम् ? कासाविन्द्रियजयः ? क्व तद्वशित्वम् ? चेतसः क्व सा प्रशान्तिः ? क्व तत्कुलक्रमागतं ब्रह्मचर्यम् ? क्व सा सर्वविषयनिरुत्सुकता ? क्व ते गुरूपदेशाः ? क्व तानि श्रुतानि ? क्व ता वैराग्यबुद्धयः ? क्व तदुप-

अपने कानोंसे निकालकर, भ्रमरोंके मधुर गुंजित द्वारा रतिसमागम-की याचना करती सी मेरे कानोंमें उसे लगा दिया। मेरे तो शरीरमें आभूपणकी जगह उसके हाथके स्पर्श-लोभसे उसी क्षण दूसरा पारिजात कुसुमसा रोमांच हो गया। मेरे कपोलके स्पर्शके सुखसे चंचल अंगुलियों-वाले हाथोंसे अक्षमालाको लज्जाके साथ गिरते भी उसने नहीं जाना। तब उस रुद्राक्षमालाको पृथिवी तक न पहुंचने दे मैंने उसके भुजपाश में बंधी के ग्रहणके सुख सा अनुभव करती, अपूर्व हार-लताकी शोभा दिखलाती लीला-सहित (अपना) कंठाभरण बना लिया।

६५. यह व्यापार हो जानेके बाद मेरी छत्रग्राहिणी ने मुझसे कहा—'स्वामिपुत्री, देवीने नहा लिया। घर जानेका समय नजदीक है। सो स्नान कीजिये।' मैं तो उसके इस वचनद्वारा प्रथम अंकुश मारनेसे नई पकड़ी हथिनी सी, बिना इच्छाके जैसे-तैसे खिची जाती, उसके मुख-सौंदर्यरूपी अमृतके पंकमें डूबी सी, कपोलके रोमांचजालमें लग्न सी, कामदेवके शरीरकी शलाका द्वारा कीलित सी, सौभाग्य सूतसे सिली सी, बड़ी कठिनाईसे आंख हटाकर नहाने चली। मेरे वहांसे चलनेपर साथीको उस प्रकार धैर्य छोड़ते देखकर कुछ प्रेमसहित सिखलाते दूसरे मुनिपुत्रने कहा—'मित्र पुंडरीक, यह आपके लिये उचित नहीं है। क्षुद्रजनों द्वारा सेवित यह कौन मार्ग है? साधु जन धैर्यके धनी होते हैं। क्यों जैसे-कैसे साधारण आदमीकी तरह तू अपनेको विकल होनेसे नहीं रोकता? कैसे कहांसे तुझे, यह अपूर्व प्रथम इन्द्रिय-शिथिलता आई, जिसने तुझे ऐसा कर दिया? कहां है वह तेरी वीरता? कहां वह इन्द्रियजय? कहां वह इन्द्रिय-वशिता? कहां चित्तकी वह प्रशान्ति? कहां वंशपरंपरासे आया वह ब्रह्मचर्य? कहां वह सारे विषयोंमें अनिच्छा? कहां तेरे लिये वे गुरुके उपदेश? कहां वे शास्त्र? कहां वह वैराग्य-बुद्धि? कहां वह उपभोगमें विराग? कहां वह सुखसे पराङ्मुखता? कहां

भोगविद्वेषित्वम्? क्व सा सुखपराङ्मुखता? क्वासौ तपस्यभिनिवेशः। क्व सा भोगानामुपर्यरुचिः? क्व तद्यौवनानुशासनम्? सर्वथा निष्फला प्रज्ञा, निर्गुणो धर्मशास्त्राभ्यासः, निरर्थकः संस्कारः, निरुपकारको गुरूपदेशविवेकः, निष्प्रयोजना प्रबुद्धता, निःकारणं ज्ञानम्, इदमत्र भवादृशा अपि रागाभिषंगैः कलुषीक्रियन्ते, प्रमादैश्चाभिभूयन्ते। कथं करतलाद् गलितामपहृतामक्षमालामपि न लक्षयसि। अहो विगतचेतनत्वमपहृतानामेवम्। इदमपि तावद् ध्रियमाणमनयानार्यया निवार्यतां हृदयम्' इति।

६६. एवमभिधीयमानश्च तेन किंचिदुपजातलज्ज इवप्रत्यवादीत् 'सखे कपिंजल, किं मामन्यथा संभावयसि? नाहमेवमस्या दुर्विनीतकन्यकाया मर्षयाम्यक्षमालाग्रहणापराधमिमम्।' इत्यभिधायालीककोपकान्तेन प्रयत्नविरचितभीषणभृकुटिभूषेण चुम्बनाभिलाषस्फुरिताधरेण मुखेन्दुना मामवदत्—'चंचले, प्रदेशादस्मादिमामक्षमालामदत्वा पदात्पदमपि न गन्तव्यम्' इति।

६७. तच्च श्रुत्वाहमात्मकण्ठादुन्मुच्य मकरध्वजलास्यारम्भलीलापुष्पांजलिमेकावलीम् 'भगवन् गृह्यतामक्षमाला' इति मन्मुखासक्तदृष्टेः शून्यहृदयस्यास्य प्रसारिते पाणौ निधाय स्वेदसलिलस्नातापि पुनः स्नातुमवातरम्। उत्थाय च कथमपि प्रयत्नेन निम्नगेव प्रतीपं नीयमाना सखीजनेन बलादम्बया सह तमेव चिन्तयन्ती स्वभवनमयासिषम्।

६८. गत्वा च प्रविश्य कन्यान्तःपुरं ततः प्रभृति तद्विरहविधुरा किमागतास्मि किं तत्रैव स्थितास्मि, किमेकाकिन्यस्मि, किं परिवृत्तास्मि, किं तूष्णीमस्मि, किं प्रस्तुतालापास्मि, किं जागर्मि, किं सुप्तास्मि, किं रोदिमि, किं न रोदिमि, किं दुःखमिदम्, किं सातमिदम्, किमुत्कण्ठेयम्, किं व्या-

तपस्यामें वह आग्रह ? कहां वह भोगोंके प्रति अरुचि ? कहां वह यौवनपर अनुशासन करना ? सर्वथा तेरी प्रज्ञा निष्फल है, धर्म-शास्त्रका अभ्यास बेकार है, संस्कार निरर्थक है, गुरुके उपदेश विवेक अनुपकारक है, प्रबुद्ध होना निष्प्रयोजन, ज्ञान निष्फल है; जो कि यहां तेरे जैसे भी रागके संसर्गसे मलिन बन जायें, प्रमादोंसे पराजित होवें ! कैसे हाथसे गिरी और चुराई गई रुद्राक्ष-मालाको भी तूने नहीं जाना ! अहो ध्वस्तोंकी बेखबरी ! (अपने) इस हृदय-को भी तो उस अनार्या की पकड़में आनेसे नहीं रोका।'

६६. 'मित्र, कपिंजल, क्यों मुझे उलटा समझ रहे हो। इस दुष्ट कन्याके रुद्राक्षमाला-हरणके अपराधको इस प्रकार मैं नहीं सह सकता।' यह कहकर झूठे कोपसे सुन्दर, बहु प्रयत्नसे बनाई भयंकर भृकुटिके भूषणसे युक्त, चुम्बनकी अभिलाषासे कंपित ओष्ठोंवाले मुखचन्द्रसे मुझे कहा—"चंचले, इस अक्षमालाको बिना दिये इस स्थानसे एक कदम भी नहीं हटना।"

६७. यह सुनकर कामदेवके नृत्यकी लीलाकी पुष्पांजलि सी एकावलीको मैंने अपने कंठ से उतार कर 'भगवान्, लीजिये अक्षमाला' कह मेरे मुंहपर लगी दृष्टिवाले उस शून्यहृदय (तरुण) के फैले हाथोंमें रखकर पसीनेसे नहाई भी मैं फिर नहाने उतरी। उठकर जैसे-तैसे प्रयत्न करके, उलटी ओर ढकेली जाती नदी सी पुंडरीकके बारेमें सोचती सखीजनों द्वारा जबर्दस्ती अम्बाके साथ अपने घरको गई।

६८. जाकर कन्या-अंतःपुरमें प्रवेश कर तब से उसके विरहसे व्याकुल मैंने कुछ नहीं जाना——क्या आई, क्या वहीं खड़ी हूं, क्या अकेली हूं, क्या लौटी हूं, क्या चुप हूं, क्या बोल रही हूं, क्या जागती हूं, क्या सोई हूं, क्या रोती हूं, क्या नहीं रोती, क्या दुख है, क्या यह सुख है, क्या

धिरयम्, किं व्यसनमिदम्, किमुत्सवोऽयम्, किं दिवस एषः, किं निदेयम्, कानि रम्याणि, कान्यरम्याणीति सर्वं नावागच्छम्। अविज्ञातमदनवृत्तान्ता च क्व गच्छामि, किं करोमि, किं शृणोमि, किं पश्यामि, किमालपामि, कस्य कथयामि, कोऽस्य प्रतीकार इति सर्वं च नाज्ञासिषम्।

६९. केवलमारुह्य कुमारीपुरप्रासादं विसर्ज्य च सखीजनं द्वारि निवारिताशेषपरिजनप्रवेशा, सर्वव्यापारानुत्सृज्यैकाकिनी मणिजालगवाक्षनिक्षिप्तमुखी, तामेव दिशं तत्सनाथतया प्रथितामिव महारत्ननिधानाधिष्ठितामिव अमृतरससारसागरपूरप्लावितामिव पूर्णचन्द्रोदयालंकृतामिव दर्शन सुभगामीक्षमाणा, तस्माद्दिगन्तरादागच्छन्तमनिलमपि वनकुसुमपरिमलमपि शकुनिध्वनिमपि तद्वार्तां प्रष्टुमीहमाना तद्वल्लभतया तपःक्लेशायापि स्पृहयन्ती, तत्प्रीत्येव गृहीतमौनव्रता स्मरजनितपक्षपाता च तत्परिग्रहान्मुनिवेषस्याग्राम्यतां तदास्पदतया यौवनस्य चारुतां तच्छ्रवणसंपर्कात्पारिजातकुसुमस्य मनोहरतां तन्निवासात्सुरलोकस्य रम्यतां तद्रूपसंपदा कुसुमायुधस्य दुर्जयतामध्यारोपयन्ती, दूरस्थस्यापि कमलिनीव सवितुः सागरवेलेव चन्द्रमसः मयूरीव जलधरस्य तस्यैवाभिमुखी, तथैव तां तद्विरहातुरजीवितोद्गमरक्षावलीवाक्षावलीं कण्ठेनोद्वहन्ती, तथैव च तया प्रस्तुततद्रहस्यालापयेव कर्णलग्नया पारिजातमंजर्या तथैव च तेन तत्करतलस्पर्शसुखजन्मना कदम्बमुकुलकर्णपूरायमाणेन रोमांचजालेन कण्टकितैककपोलफलका निष्पन्दमतिष्ठम्।

यह उत्कंठा है, क्या यह व्याधि है, क्या यह व्यसन है, क्या यह उत्सव है, क्या यह दिन है, क्या यह रात है, कौन रमणीय है, कौन अरमणीय है, मदनके व्यवहारमें अपरिचिता मैं कहां जा रही हूं, क्या कर रही हूं, क्या सुन रही हूं, क्या देखती हूं, क्या बोलती हूं, किससे बोलती हूं, इसका प्रतिकार क्या है।

६९. सिर्फ कन्या अन्तःपुरके ऊपर चढ़कर, सखियोंको छोड़ सारे परिजनों का द्वार-प्रवेश रोक सारे कामोंको छोड़कर मणिजालोंवाले झरोखे-पर मुख रक्खे अकेली (बैठी), पुंडरीकसे युक्त होनेके कारण अलंकृत सी, महारत्नकोशसे अधिष्ठित, अमृतरसके सारवाले सागरके प्रवाहसे बहाई सी, पूर्णचन्द्रके उदयसे अलंकृत सी, देखनेमें सुन्दर, उसी दिशाकी ओर देखती (रही)। उस दिशासे आते वायुसे भी, वनकुसुमके गन्धसे भी, पक्षियोंके शब्दसे भी पुंडरीकका समाचार पूछनेकी इच्छा करती (थी)। पुंडरीक के प्रिय होनेसे तपके क्लेशकी भी इच्छा करती थी, उसकी प्रीतिसे मानो मौन व्रत धारिणी, कामदेवके प्रति पक्षपातिनी थी। उसके ग्रहण करनेसे मुनिवेषकी अग्राम्यताकी, उसका आश्रय होनेसे यौवनकी चारुताकी, उसके कानके सम्पर्कसे पारिजातकुसुम की मनोहरताकी, उसके निवासके कारण सुरलोककी रमणीयताकी, उसके सौंदर्यकी सम्पत्ति द्वारा कामदेवके दुर्जेयताकी कल्पना करती थी। दूरस्थ सूर्यको कमलिनी सी, चन्द्रमाको सागरतट सी, जलधरको मयूरी सी, मैं उसीकी ओर मुख किये थी। उसके विरहसे आतुर जीवन के निकलनेकी रक्षाकवच सी रुद्राक्षमालाको उसी तरह कंठमें धारण किये, और वैसे ही उसके रहस्य-आलापमें लगी सी, व्यस्त सी, कानमें लगी पारिजातमंजरी और इसी प्रकार प्रियके हाथके स्पर्श सुखसे उत्पन्न कदम्बकलीके कर्णाभरण द्वारा एक कपोलमें रोमांचित दिखलाती (बैठी) रही।

(७) प्रियतमा-सन्देश:—

७०. अथ ताम्बूलकरंकवाहिनी मदीया तरलिका नाम मयैव सहागता स्नातुमासीत्। सा च पश्चाच्चिरादिवागत्य तथाऽवस्थितां शनैः शनैर्मामिवादीत्—'भर्तृदारिके, यौ तौ तापसकुमारकौ दिव्याकारावस्माभिरच्छोदसरस्तीरे दृष्टौ, तयोरेको येन भर्तृदुहितुरियं कर्णावतंसीकृता सुरतरुमंजरी। स तस्माद्द्वितीयादात्मनो रक्षन्दर्शनममतिनिभृतपदः कुसमितलतासंतानगहनान्तरेणोपसृत्य मामागच्छन्तीं पृष्ठतो भर्तृदारिकामुद्दिश्याप्राक्षीत्

७१. "बालिके, केयं कन्यका, कस्य वापत्यम्, किमभिधाना, क्व वा गच्छति?" इति

७२. मयोक्तम्—"एषा खलु भगवतः श्वेतभानोरंशुसंभूतायामप्सरसि गौर्यां समुत्पन्ना देवस्य सकलगन्धर्वमुकुटमणिशलाकाशिखरोल्लेखमसृणितचरणनखचक्रस्य प्रणयप्रसुप्तगन्धर्वकामिनीकपोलपत्रलतालांछितभुजतरुशिखरस्य पादपीठीकृतलक्ष्मीकरकमलस्य गन्धर्वाधिपतेर्हंसस्य दुहिता **महाश्वेता** नाम गन्धर्वाधिवासं हेमकूटाचलमभिप्रस्थिता" इति।

किमपि चिन्तयन्मुहूर्तमिव तूष्णीं स्थित्वा (स वि)गतनिमेषेण चक्षुषा चिरमभिवीक्षमाणो मां सानुनयमर्थितामिव दर्शयन्पुनराह—'बालिके, कल्याणिनी तवाविसंवादिन्यचपला बालभावेऽप्याकृतिरियम्। तत्करोषि मे वचनमेकमभ्यर्थ्यमाना?' इति।

७३. ततो मया सविनयमुपरचितांजलिपुटया दर्शितादरमभिहितः—'भगवन्, कस्मादेवमभिधत्से? काऽहम्? महात्मानः सकलत्रिभुवनपूजनीयास्त्वादृशाः पुण्यैर्विना निखिलकल्मषापहारिणीमस्मद्विधेषु दृष्टिमपि न पात-

७. प्रियतम का संदेश—

७०. मेरी पानदानवाहिनी **तरलिका** उस समय मेरे ही साथ नहाने के लिये गई थी। वह पीछे देरसे आई। उस स्थिति में पा मुझसे धीरे-धीरे बोली—'स्वामिपुत्री, जो वे दोनों दिव्य आकारवाले कुमार हमने **अच्छोदसरोवर**के तीर पर देखे। उनमेंसे जिसने कल्पतरु-मंजरी को स्वामिपुत्रीका कर्णभूषण बनाया, उसने दूसरेसे अपनेको छिपाते अत्यन्त चुपचाप पैर रखते, फुली हुई लताओंके झुर्मुटके भीतरसे पास आकर, पीछे आती मुझसे स्वामिपुत्रीके बारेमें पूछा—

७१. 'बालिके, कौन है यह कन्या, और किसकी संतान है? क्या नामवाली है, और कहां जा रही है?'

७२. मैंने कहा—'यह भगवान् **श्वेतभानु** (गन्धर्वराज) की चन्द्रकिरणमें उत्पन्न (पुत्री) अप्सरा **गौरी**में जनमी सारे गन्धर्वोके मुकुटमणि-शलाकाके शिखरोंके घिसनेसे चिकने चरणनखसमूहवाले, स्नेहसे सोई गन्धर्वकामिनीके कपोलोंकी पत्रलता द्वारा लांछित भुजरूपी तरु-शिखरवाले, लक्ष्मीके कर-कमलको पादपीठ बनानेवाले, गन्धर्वराज हंसकी लड़की **महाश्वेता** (है, जो) गन्धर्वनिवास **हेमकूट** पर्वतकी ओर पधारी है।'

कुछ देर चुप रहकर अपलक आंखोंसे अनुनयपूर्वक मुझे देखते याचना सी दिखलाते (मुनिकुमारने) फिर कहा—

"बालिके, बालपनमें अचंचल तेरी यह विश्वसनीय आकृति कल्याणी है। प्रार्थना करता हूँ, मेरी एक बात करेगी?"

७३. मैंने विनयपूर्वक हाथ जोड़कर आदर दिखलाते कहा—"भगवन्, क्यों ऐसा कहते हैं? मैं कौन हूं? आप जैसे समस्त त्रिभुवन-पूजनीय महात्मा, पुण्यके बिना सारे पापोंको दूर करनेवाली अपनी दृष्टि हमारे

यन्ति, किं पुनराज्ञाम्। तद्विश्रब्धमादिश्यतां कर्तव्यम्। अनुगृह्यतामयं जन' इति।

७४. एवमुक्तश्च मया सस्नेहया सखीमिवोपकारिणीमिव प्राणप्रदामिव दृष्ट्या मामभिनन्द्य निकटवर्तिनस्तमालपादपात्पल्लवमादाय नीष्पीड्य तटशिलातले तेन गन्धगजमदसुरभिपरिमलेन रसेनोत्तरीयवल्कलैकदेशाद् विपाट्य पट्टिकं स्वहस्तकमलकनिष्ठिकानखशिखरेणाभिलेख्येयं पत्रिका 'त्वया तस्यै कन्यकायै प्रच्छन्नमेकाकिन्यै देया' इत्यभिधायार्पितवान्। इत्युक्त्वा च सा ताम्बूलभाजनादाकृष्य तामदर्शयत्। अहं तु तेन तत्संवन्धिनालापेन शब्दमयेनापि स्पर्शसुखमिवान्तर्जनयता श्रोत्रविषयेणापि रोमोद्गमानुमितसर्वांगानुप्रवेशेन मदनावेशमन्त्रेणेवावेश्यमाना तस्याः करतलादादाय तां वल्कलपत्रिकां तस्यामिमामभिलिखितामार्यामपश्यम्—

७५. 'दूरं मुक्तालतया बिससितया विप्रलोभ्यमानो मे।
हंस इव दर्शिताशो मानसजन्मा त्वया नीतः॥'

७६. अनया च मे दृष्ट्या दिङ्मोहभ्रान्त्येव प्रणष्टवर्त्मनः, बहुलनिशयेवान्धस्य, जिह्वोच्छित्त्येव मूकस्य, इन्द्रजालिकपिच्छिकयेवातत्त्वदर्शिनः, ज्वरप्रलापप्रवृत्त्येवासंबद्धभाषिणः, दुष्टनिद्रयेव विषविह्वलस्य, लोकायतिकविद्ययेवाधर्मरुचेः, मदिरयेवोन्मत्तस्य, दुष्टावेशक्रिययेव पिशाचग्रहस्य, दोषविकारोपचयः, सुतरामक्रियत स्मरातुरस्य मे मनसः, येनाकुलीक्रियमाणा सरिदिव पूरेण विह्वलतामभ्यगमम्। तां च द्वितीयदर्शनेन कृतमहापुण्यामिवानुभूतसुरलोकवासामिव, देवताधिष्ठिता-

जैसोंके ऊपर नही डालते। फिर आज्ञाकी बात क्या? इसलिये निधड़क कर्तव्यका आदेश देकर, इस जनको अनुगृहीत करें।"

७४. मेरे ऐसा कहनेपर उन्होंने स्नेहयुक्त सखी सी, उपकारिणी सी, प्राण-दायिनी दृष्टिसे मुझे अभिनंदित किया (और) पासके तमालवृक्षसे पल्लव को शिलातलपर निचोड़कर गजके मद जैसे सुगंधयुक्त रससे, (अपने) चादरके वल्कलके एक कोनेसे पट्टी फाड़ कर उसपर अपने हस्तकमलकी कानी अंगुलीके नखके अग्रभागसे लिखकर 'एकान्तमें चुपकेसे उस कन्याको इसे देना' कहते यह पत्रिका अर्पित की। यह कहकर तरलिकाने पानलदानसे निकाल कर उसे (पत्रको) दिखलाया। पुंडरीक सम्बन्धी उस आलाप द्वारा शब्दमय होते भी भीतर स्पर्श-सुखको उत्पन्न करते कानोंमें पड़े विषय के भी रोमांचसे सारे अंगमें प्रवेशका अनुमान कराने वाले कामदेवके मन्त्रके आवेश में आई सी, मैंने उसके हाथसे उस वल्कल-पत्रिकाको लेकर उसमें लिखी इस आर्या (छन्द) को देखा—

७५. 'कमलतंतु सी सफेद मुक्तालता द्वारा प्रलोभित हंसकी तरह, आशा दिखलाती सी मेरे मानसजन्मा को तू दूर ले गई।'

७६. और उस (पत्रिकाके) देखने से मार्ग भूले को दिशा भ्रम सा, अन्धे को अमावस्याकी रात सा, मूक के लिये जिह्वा काटने सा, तत्व न देखने वालेको जादूगरकी कूँची सा, प्रलापीको ज्वरसे बकबक करने की प्रवृत्ति सा, [illegible] दुःख निद्रा सा, अधर्ममें [illegible] नास्तिक बुद्धि सा, उन्मत्तको मदिरा सा, पिशाच लगे को दुष्ट आवेश [illegible] सा, [illegible]-पीड़ित मेरे मनको दोष-विकारोंके आविर्भावसे दूना किया, जिससे आकुल हो मैं बाढ़ में नदीकी तरह विह्वल हो गई। दूसरी बार दर्शन करके महापुण्यात्मा तरलिकाको, देवलोक-निवासका अनुभव किये सी, देवता द्वारा अधिष्ठित सी, वरप्राप्त सी, अमृत

मिव, लब्धवरामिव, पीतामृतामिव, समासादितत्रैलोक्य-
राज्याभिषेकामिव, मन्यमाना, सततसंनिहितामपि
दुर्लभदर्शनामिवातिपरिचितामप्यपूर्वामिव सादरमाभाष-
माणा पार्श्वावस्थितामपि सर्वलोकस्योपर्यवस्थितामिव
पश्यन्ती, कपोलयोरलकलताभंगेषु च सोपग्रहं स्पृशन्ती,
विपरीतमिव परिजनस्वामिसंबन्धमुपदर्शयन्ती, 'तरलिके,
कथय कथं स त्वया दृष्टः? किमभिहितासि तेन?
कियन्तं कालमवस्थितासि तत्र? कियदनुसरन्नस्मान्सा-
वागतः?' इति पुनः पुनः पर्यपृच्छम्। अनयैव च कथया
तया सह तस्मिन्नेव प्रासादे तथैव प्रतिषिद्धाशेषपरिजन-
प्रवेशा दिवसमत्यवाहयम्।

—पूर्वभागे

(८) अकाल उपदेशः—

७७. अहं तु तदाकर्ण्य तदवस्थयैवाप्रतीकारविकारोऽयं
तथापि सुहृदा सुहृदसन्मार्गप्रवृत्तो यावच्छक्ति नः
सर्वात्मना निवारणीय इति मनसावधार्याब्रुवम्—'सखे
पुण्डरीक, सुविदितमेतन्मम। केवलमिदमेव पृच्छामि,
यदेतदारब्धं भवता किमिदं गुरुभिरुपदिष्टम्? उत
धर्मशास्त्रेषु पठितम्? उत धर्मार्जनोपायोऽयम्? उता-
परस्तपसां प्रकारः? उत स्वर्गगमनमार्गोऽयम्? उत
व्रतरहस्यमिदम्? उत मोक्षप्राप्तियुक्तिरियम्?
आहोस्विदन्यो नियमप्रकारः? कथमेतद्युक्तं भवतो
मनसापि चिन्तयितुम्? किं पुनराख्यातुमीक्षितुं वा
अप्रबुद्ध इवानेन मन्मथहतकेनोपहासास्पदतां नीयमान-
मात्मानं नावबुध्यसे? मूढा हि मदनेनायास्यन्ते? का वा
सुखाशा साधुजननिन्दितेष्वेवंविधेषु प्राकृतजनबहुमतेषु
विषयेषु भवतः? स खलु धर्मबुद्ध्या विषलतां सिंचति,

प्रिये सी, तीनों लोकका राज्याभिषेक पाये सी, जानती सदा पास रहनेवाली होते भी दुर्लभ दर्शनवाली सी, अति परिचित होते भी अपूर्व सी, आदरपूर्वक बात करती, पासमें स्थित भी सारे लोकोंके ऊपर अवस्थित सी देखती, दोनों कपोलोंकी घुंघराली अलकोंको, और स्नेहके साथ छूती, सेविका-स्वामिनीके सम्बन्धको उलटा सी दिखाती मैंने बार बार पूछा—'तरलिके, बतला कैसे तूने उसे देखा? उसने तुझे क्या कहा? वहां कितने काल तक तू ठहरी? हमारा अनुगमन करते कितना दूर वह आया?' इसी कथामें उसके साथ प्रासादमें सारे परिजनों के प्रवेशको निषिद्ध किये इसी तरह मैंने दिन बिताया।

—पूर्वभाग

८. अकाल उपदेश—

७१७. उस अवस्थामें विकार नहीं हटा सकता, तो भी असत्-मार्गपर आरूढ़ मित्रको यथाशक्ति सब तरहसे रोकना चाहिये, यह समझ कर मैंने कहा—'मित्र **पुण्डरीक**, यह मुझे भली प्रकार ज्ञात है। मैं केवल यही पूछता हूं, जो आपने यह कार्य आरम्भ किया है, क्या इसे गुरुओंने उपदेश दिया, या धर्मशास्त्रोंमें पढ़ा, या धर्म कमानेका यह उपाय है, या तपस्याका दूसरा ढंग है, या यह स्वर्ग जानेका मार्ग है, या यह व्रतका रहस्य है, या यह मोक्ष पानेकी युक्ति है, अथवा नियमका दूसरा तरीका है? क्या मनसे भी आपको यह सोचना उचित है? क्या फिर कहना या देखना उचित है? अनजाने यह दुष्ट कामदेव तुम्हें उपहासास्पद बना रहा है, क्या तुम नहीं जानते? मदन द्वारा मूढ़ पीड़ित होता है। साधुजनोंसे निंदित साधारण जनों द्वारा आदरित ऐसे विषयोंमें आपको क्या सुखकी आशा हो सकती है? वह आदमी तो धर्म समझ कर विष-लताको सींचता है, कमलकी माला जान खड्गकी लताका आलिंगन करता है, काले अगुरुके धूमको

कुवलयमालेति निस्त्रिंशलतामालिंगति, कृष्णागुरुधूमलेखेति कृष्णसर्पमवगूहति, रत्नमिति ज्वलन्तमंगारमभिस्पृशति, मृणालमिति दुष्टवारणदन्तमुसलमुन्मूलयति, मूढो विषयोपभोगेष्वनिष्टानुबन्धिषु यः सुखबुद्धिमारोपयति । अधिगतविषयतत्त्वोऽपि कस्मात्खद्योत इव ज्योतिर्निवार्यमिदं ज्ञानमुद्वहसि, यतो न निवारयसि प्रबलरजःप्रसरकलुषितानि स्रोतांसीवोन्मार्गप्रस्थितानीन्द्रियाणि ? न नियमयसि वा क्षुभितं मनः ? कोऽयमनंगो नाम ? धैर्यमवलम्ब्य निर्भर्त्स्यतामयं दुराचारः' इत्येव वदत एव मे प्रवचनमाक्षिप्य प्रतिपक्ष्मान्तरालप्रवृत्तवाष्पवेणिकं प्रमृज्य चक्षुः करतलेन मामवलम्ब्यावोचत्—

७८. "सखे, किं बहूक्तेन । सर्वथा स्वस्थोऽसि । आशीविषविषवेगविषमाणामेतेषां कुसुमचापसायकानां पतितोऽसि न गोचरे । सुखमुपदिश्यते परस्य । यस्य चेन्द्रियाणि सन्ति, मनो वा वर्तते, यः पश्यति वा, शृणोति वा, श्रुतमवधारयति वा, यो वा शुभमिदं न शुभमिदमिति विवेक्तुमलं स खलूपदेशमर्हति । मम तु सर्वमेवेदमतिदूरापेतम् । अवष्टम्भो ज्ञानं धैर्यं प्रतिसंख्यानमित्यस्तमितैषा कथा । कथमप्येव मे यत्नविधृतास्तिष्ठन्त्यसवः । दूरातीतः खलूपदेशकालः । समतिक्रान्तो धैर्यावसरः । गता प्रतिसंख्यानवेला । अतीतो ज्ञानावष्टम्भसमयः । केन वान्येनास्मिन्समये भवन्तमपहायोपदेष्टव्यम्, उन्मार्गप्रवृत्तिनिवारणं वा करणीयम् ? कस्यान्यस्य वा वचसि मया स्थातव्यम् ? का वापरस्त्वत्समो मे जगति बन्धुः ? किं करोमि, यन्न शक्नोमि निवारयितुमात्मानम् ? इयमनेनैव क्षणेन भवता दृष्टा दुष्टावस्था । तद् गत इदानीमुपदेशकालः । यावत्प्राणिमि तावदस्य

रेखा जान काले सर्पको छाती लगाता है, रत्न जान जलते अंगारको छूता है, कमलनाल जान दुष्ट गजके दंतरूपी मुसलको उखाड़ता है। मूढ़ है वह, जो अनिष्टसे सम्बन्ध रखनेवाले विषय-भोगोंमें सुख समझता है। विषयके तत्वज्ञ होते भी क्यों जुगनूमें ज्योति की तरह निवारणीय इस ज्ञानको धारण करते हो, जिसमें कि प्रबल रजके प्रसारसे मलिन धाराओं की भांति उलटे मार्गपर चलती इन्द्रियों को नहीं रोकते, या क्षुब्ध मनको नियमन नहीं करते? कौन होता है यह कामदेव? धीरज धर इस दुराचारीको धमकाओ।' मेरे ऐसा कहते समय बातको बीचमें काटकर पलकोंके बीच बहती अश्रुधारा युक्त नेत्रोंको पोंछकर हाथसे मेरा अवलम्ब ले पुंडरीक बोला—

७८. "सखे, बहुत कहनेसे (लाभ) क्या? सब तरहसे तुम स्वस्थ हो? सर्पके विषके वेगसे भी भयंकर कामदेवके इन बाणोंके तुम लक्ष्य नहीं हुये, अतः दूसरेको भले उपदेश दो। (पर ऐसे) दूसरेको, जिसको कि इन्द्रियां हैं, मन है, जो देखता है, सुनता है, सुने हुयेको समझता है, जो शुभ-अशुभ का विवेक कर सकता है, वही उपदेशके योग्य है। मेरे तो यह सब बहुत दूर भाग गये, चित्त-नियंत्रण, ज्ञान, धैर्य, अध्यात्म-ज्ञान की कथा खतम हो चुकी है। जैसे-कैसे बिना यत्नके पकड़े मेरे प्राण ठहरे हुये हैं। उपदेशका काल दूर चला गया। धैर्य का अवसर जाता रहा। अध्यात्म-ज्ञानकी बेला गत हो चुकी। ज्ञान द्वारा नियमनका समय बीत चुका। ऐसे समय (भला) आपको छोड़ कर कौन (दूसरा) उपदेश करेगा, या उलटे मार्ग पर जानेसे निवारण करेगा? कौन है दूसरा (जिसके) वचनपर मुझे रहना चाहिये? तुम्हारे समान संसारमें और दूसरा कौन मेरा बन्धु है? क्या करूं, यदि मैं अपनेको निवारण नहीं कर सकता। अभी आपने यह बुरी अवस्था देखी। सो अब उपदेशका काल खतम हो चुका। जब तक सांस ले रहा हूँ, तब तक प्रलयकालके बारह सूर्योंकी किरणोंको धूपने (भी)

कल्पान्तोदितद्वादशदिनकरकिरणातपतीव्रस्य मदनसंतापस्य प्रतिक्रियां क्रियमाणामिच्छामि। पच्यन्त इव मेऽगानि, उत्क्वथ्यत इव हृदयम्, प्लुष्यत इव दृष्टिः, ज्वलतीव शरीरम्। अत्र यत्प्राप्तकालं तत्करोतु भवान्' इत्यभिधाय तूष्णीमभवत्।

७९. एवमुक्तेऽप्यहमेनं प्राबोधयम्। यदा पुनः पुनः शास्त्रोपदेशविशदैः सनिदर्शनैः सेतिहासैश्च वचोभिः सानुनयं सोपग्रहं चाभिधीयमानोऽपि नादात्कर्णे, तदाहमचिन्तयम्—'अतिभूमिमयं गतः, न शक्यते निवर्तयितुम्। इदानीं निरर्थकाः खलूपदेशाः। तत्प्राणपरिरक्षणेऽपि तावदस्य यत्नमाचरामि' इति कृतमतिरुत्थाय गत्वा तस्मात्सरसः सरसा मृणालिकाः समुद्धृत्य कमलिनीपलाशानि जललवलांछितान्यादाय गर्भधूलिकषायपरिमलमनोहराणि च कुमुदकुवलयकमलानि गृहीत्वागत्य तस्मिन्नेव लतागृहशिलातले शयनमस्याकल्पयम्। तत्र च सुखनिषण्णस्य प्रत्यासन्नवर्तिनां चन्दनविटपादीनां मृदूनि किसलयानि निष्पीड्य तेन स्वभावसुरभिणा तुषारशिशिरेण रसेन ललाटिकामकल्पयम्, आचरणतलादंगचर्चां चारचयम्। अभ्यर्णपादप्रस्फुटितवल्कलविवरशीर्णेन च करसंचूर्णितेन कर्पूररेणुना स्वेदप्रतिक्रियामकरवम्। उरोनिहितचन्दनद्रवार्द्रवल्कलस्य स्वच्छसलिलसीकरनिकरस्राविणा कदलीदलेन व्यजनक्रियामन्वतिष्ठम्। एवं च मुहुर्मुहुरन्यदन्यन्नलिनीदलशयनमुपकल्पयतः, मुहुर्मुहुश्चन्दनचर्चामारचयतः, मुहुर्मुहुश्च स्वेदप्रतिक्रियां कुर्वतः, कदलीदलेन चानवरतं वीजयतः समुदभून्मे मनसि चिन्ता—

८०. "नास्ति खल्वसाध्यं नाम भगवतो मनोभुवः। क्वायं हरिण इव वनवासनिरतः स्वभावमुग्धो जनः, क्व च विविधविलासरसराशिर्गन्धर्वराजपुत्री **महाश्वेता**? सर्वथा

तीव्र इस (मेरे) मदन-संतापका प्रतिकार करो। मेरे अंग पक से रहे हैं, हृदय उबल सा रहा है, नेत्र भुन से रहे हैं, शरीर जल सा रहा है। यहां जो करना चाहिये, उसे आप करें।।" यह कहकर (पुंडरीक) चुप हो गया।

७९. ऐसा कहनेपर भी (मैं) ने उसे समझाया। जब फिर-फिर शास्त्रके उपदेशसे निर्मल, उदाहरण, इतिहासयुक्त वचनों द्वारा अनुनय और आग्रहके साथ कहे जाने पर भी वह कानमें नहीं लाया, तो मैंने सोचा—'बहुत दूर जा चुका यह, (अब) रोका नहीं जा सकता। अब उपदेश व्यर्थ है। सो इसके प्राणोंकी रक्षाके लिये यत्न करना है।' यह सोच कर उठके उस सरोवरसे जाकर सरस कमलनालोंको उखाड़ जलकण-युक्त कमलिनीके पत्तोंको, भीतरके केसरके काषायगन्धसे मनोहर और श्वेत कमलोंको लाकर उसी लतागृहवाले शिलातलपर उसके लिये मैंने शय्या बनाई। वहां सुखपूर्वक बैठे उसके लिये पासके चन्दनवृक्ष आदिसे कोमल पत्रोंको निचोड़कर स्वभावतः सुगंधित हिम से शीतल उस रस से मैंने ललाटकी पट्टी बनाई, और चरणके तलवे तक अंग का भूषण रचा। पासके वृक्षकी फूटी छालके छेदसे गिरी और हाथसे चूर्ण की कपूरधूलिसे पसीनेका प्रतिकार किया। छातीपर रक्खे चन्दनरससे भीगे वल्कलयुक्त उसे स्वच्छ जलकी फुहार झरनेवाले केलेके पत्तेसे पंखा झलने लगा। इस प्रकार बार-बार नई-नई कमलपत्रकी शय्या बनाते, बार-बार चन्दन चर्चित करते, बार-बार स्वेदकी चिकित्सा करते और केलेके पत्रसे (पंखा) झलते मेरे मनमें चिन्ता पैदा हुई—

८०. "भगवान् कामदेवके लिये (कोई बात) असाध्य नहीं है। कहां हरिन जैसा वनवासमें निरत, स्वभावतः मुग्ध यह पुरुष, और कहां नाना विलास-रसोंकी राशि, गन्धर्वराज-कन्या महाश्वेता? सर्वथा कामदेव के लिये संसारमें कुछ भी दुर्घट, दुष्कर, असाध्य या अकरणीय नहीं

नहि किंचिदस्य दुर्घटं दुष्करमनायत्तमकर्तव्यं वा जगति। दुरुपपादेष्वर्थेष्वप्ययमवज्ञया विचरति। न चायं प्रतिकलयितुं शक्यते। का वा गणना सचेतनेषु, अपगतचेतनान्यपि संघट्टयितुमलं यद्यस्मै रोचते। कुमुदिन्यपि दिनकरकरानुरागिणी भवति, कमलिन्यपि शशिकरद्वेषमुज्झति, निशापि वासरेण सह मिश्रतामेति, ज्योत्स्नाप्यन्धकारमनुवर्तते, छायापि प्रदीपाभिमुखमवतिष्ठते, तडिदपि जलदे स्थिरतां व्रजति, जरापि यौवनेन संचारिणी भवति। किं वा तस्य दुःसाध्यमपरम्, एवंविधो येनायमगाधगाम्भीर्यसागरस्तृणवत् लघुतामुपनीतः? क्व तत्तपः, क्वेयमवस्था? सर्वथा निष्प्रतीकारेयमापदुपस्थिता। किमिदानीं कर्तव्यम्? किंवा चेष्टितव्यम्? कं देशं गन्तव्यम्? किं शरणम्? को वोपायः? कः सहायः? कः प्रकारः? का युक्तिः? कः समाश्रयो येनास्यासवो धार्यन्ते? केन वा कौशलेन, कतमया वा युक्त्या, कतरेण वा प्रकारेण, केन वावष्टम्भेन, कया वा प्रज्ञया, कतमेन वा समाश्वासनेनायं जीवेत्?' इत्येते चान्ये च मे विषण्णहृदयस्य संकल्पाः प्रादुरासन्।

८१. (कपिंजलः) पुनश्चाचिन्तयम्—'किमनया ध्यातया निष्प्रयोजनया चिन्तया। प्राणास्तावदस्य येन केनचिदुपायेन शुभेनाशुभेन वा रक्षणीयाः। तेषां च तत्समागममेकमपहाय नास्त्यपरः संरक्षणोपायः। बालभावादप्रगल्भतया च तपोविरुद्धमनुचितमुपहासमिवात्मनो मदनव्यतिकरं मन्यमानो नियतमेकोच्छ्वासावशेषजीवितोऽपि नायं तस्याः स्वयमभिगमनेन पूरयति मनोरथम्। अकालान्तरक्षमश्चायमस्य मदनविकारः। सततमतिगर्हितेन कृत्येनापि रक्षणीयान्मन्यन्ते सुहृदसून्साधवः। तदति-

है। दुर्लभ वस्तुओंके प्रति भी वह तिरस्कारके साथ विचरता है। उसे प्रतिकूल नहीं किया जा सकता। यदि चाहे तो चेतनोंकी गिनती ही क्या, अचेतनोंको भी वह मिला सकता है, (तभी तो) कुमुदिनी भी सूर्यके किरणोंमें अनुरागवाली होती, कमलिनी भी चन्द्रकिरणोंके प्रति द्वेषको छोड़ देती, रात्रि भी दिनके साथ मिल जाती, चांदनी भी अन्धकारका अनुगमन करती, छाया भी दीपकके सामने ठहरती, बिजली भी मेघमें स्थिर हो जाती, जरा भी यौवनके साथ चलनेवाली होती। उसके लिये दूसरा क्या दुस्साध्य है, जिसने कि ऐसे सागरसे अगाध गम्भीरतावाले इस (पुरुष) को तृणकी तरह हलका बना दिया? कहां वह तपस्या, कहां यह अवस्था? यह बिल्कुल ही प्रतीकार-रहित आफत आ गई। अब क्या करना चाहिये? क्या प्रयास करना चाहिये? किस देशमें जाना चाहिये? कौन शरण है, कौन उपाय है, कौन सहायक है, कौन ढंग है, क्या युक्ति है, कौन आश्रय है, जिससे कि इसके प्राण बचाये जायें? किस कौशलसे, कौन सी युक्तिसे, कौन से ढंगसे, किस नियमसे, कौन प्रज्ञासे, या किस तरह ढारस बंधानेसे यह जीवित रहेगा।' यह और (ऐसे) दूसरे संकल्प-विषाद मेरे मनमें प्रकट हुये।

८१. फिर मैंने सोचा—'इस बेकारकी मनकी चिन्तासे क्या बनना है? बुरे या भले जिस किसी उपायसे इसके प्राणोंकी रक्षा करनी है। उनके रखनेका उपाय उस (कन्या) के समागम को छोड़कर और दूसरा नहीं है। लड़कपनके कारण, बेसमझीसे तपके विरुद्ध अनुचित उपहास की भांति अपने मदन-विकारको समझते निश्चय ही एक सांस बचा जीवन होते भी, यह स्मर उसके पास जा मनोरथ नहीं पूरा करेगा। इसका यह काम-विकार भी देर तक सहा नहीं होगा। सदा अति निंदित कार्योंसे भी मित्रके प्राणोंकी सदा रक्षा करनेको साधु लोग (उचित) मानते हैं। सो यह अति लज्जाजनक अकरणीय (काम)

ह्रेपणमकर्तव्यमप्येतदस्माकमवश्यकर्तव्यतामापतितम् किं चान्यत्क्रियते। का चान्या गतिः। सर्वथा प्रयामि तस्याः सकाशम्। आवेदयाम्येतामवस्थाम्' इति चिन्तयित्वा कदाचिदनुचितव्यापारप्रवृत्तं मां विज्ञाय संजातलज्जो निवारयेदित्यनिवेद्यैव तस्मै तत्प्रदेशात्सव्याजमुत्थायागतोऽहम्। तदेवमवस्थिते यदत्रावसरप्राप्तम्, ईदृशस्य चानुरागस्य सदृशम्, अस्मदागमनस्य चानुरूपम्, आत्मनो वा समुचितं तत्र भवती प्रभवति' इत्यभिधाय किमियं वक्ष्यतीति मन्मुखासक्तदृष्टिस्तूष्णीमासीत्।

(९) प्राणयाञ्चा—

८२. अहं (महाश्वेता) तु तदाकर्ण्य सुखामृतमये ह्रद इव निमग्ना, रतिरसमयोदधिमिवावतीर्णा सर्वानन्दानामुपरि वर्तमाना सर्वमनोरथानामग्रमिवाधिरूढा, सर्वोत्सवानामतिभूमिमिवाधिशयाना, तत्कालोपजातया लज्जया किंचिदवनम्यमानवदनत्वादस्पृष्टकपोलोदरैः ग्रथितैरिवोपर्युपरिपतनानुबन्धदर्शितमालाक्रमैः, अप्राप्तपक्ष्मसंश्लेषतयोपजातप्रथिमभरैरमलैरानन्दबाष्पजलबिन्दुभिः स्रवद्भिरावेद्यमानप्रहर्षप्रसरा तत्क्षणमचिन्तयम्। दिष्ट्या तावदयमनंगो मामिव तमप्यनुबध्नाति, यत्सत्यमेतेन मे संतापयताप्यंशेन दर्शितानुकूलता। यदि च सत्यमेव तस्येदृशी दशा वर्तते, ततः किमिव नोपकृतमनेन, किं वा नोपपादितम्? कोवानेनापरः समानो बन्धुः, कथं वा कपिंजलस्य स्वप्नेऽपि वितथा भारती प्रशान्ताकृतेरस्माद्वदनान्निष्क्रामति। इत्थंभूते किं मयापि प्रतिपत्तव्यम्, तस्य वा पुरः किमभिधातव्यम्, इति।

८३. एवं विचारयन्त्येव प्रविश्य ससंभ्रमा प्रतीहारी मामकथयत्—'भर्तृदारिके, त्वमस्वस्थशरीरेति परिजना-

भी हमारे लिये अवश्य-करणीय हो गया। दूसरा क्या किया जाये? और दूसरा उपाय क्या है? जैसे भी हो, उस कन्या के पास जाता हूं। उसे इसकी अवस्था बतलाऊंगा। 'यह सोचकर' शायद अनुचित काम में लगा जानकर लज्जित हो मुझे रोके, यह सोच उसे बिना बतलाये ही उस जगहसे बहाना बना उठकर मैं आया हूं। सो ऐसी स्थितिमें जो कालोचित हो, ऐसे अनुरागके लिये उचित और हमारे आगमनके अनुरूप हो, या तुम्हारे लिये समुचित हो, उसे करनेकी आपही अधिकारिणी हैं।" यह कहकर 'यह क्या कहेगी' यह सोचता (कपिंजल) मेरे मुख पर दृष्टि लगाये चुप हो गया।

९. प्राणभिक्षा—

८२. सो सुनकर सुखके अमृत-सरोवरमें निमग्न सी, रतिरस-मुक्त समुद्रमें उतरी सी, सारे आनन्दों के ऊपर स्थित सी, सारे मनोरथोंके शिखरपर आरूढ़ सी, सारे उत्सवोंकी अधित्यकामें सोई सी, तत्काल उत्पन्न हुई लज्जासे किंचित् झुका मुख होनेसे कपोलोंको न छूये, ऊपर गिरनेकी इच्छा दिखाते गुथी माला-क्रमोंसे, पलकोंके न मिलने से मोटे हो गिरते निर्मल आनन्दाश्रु-जलबिन्दुओं द्वारा हर्षके आधिक्य-को सूचित करती उस क्षण मैंने सोचा—'अहो यह अनंग मेरी तरह उसे भी पीड़ित कर रहा है, सो सचमुच मुझे संतप्त करते इसने एक अंशमें अनुकूलता दिखलाई है। यदि सचमुच ही उसकी ऐसी दशा है, तो मदन ने क्या नहीं उपकार किया, क्या नहीं पूरा कर दिया? इसके समान दूसरा कौन बन्धु है? स्वप्नमें भी प्रशान्त आकृतिवाले कपिंजलके मुखसे व्यर्थकी वाणी कैसे निकल सकती है? ऐसा होनेपर मुझे भी क्या करना चाहिये, उसके सामने क्या कहना चाहिये?

८३. जब मैं ऐसे विचार कर रही थी, तभी प्रतीहारीने जल्दी-जल्दी प्रवेश कर मुझसे कहा—'स्वामिपुत्रि, तुम्हारा शरीर अस्वस्थ है, यह

दुपलभ्य महादेवी प्राप्ता' इति। तच्च श्रुत्वा कपिंजलो महाजनसंमर्दभीरुः सत्वरमुत्थाय 'राजपुत्रि महानयमुपस्थितः कालातिपातः। भगवाँश्च भुवनत्रयचूड़ामणिरस्तमुपगच्छति दिवसकरः। तद् गच्छामि सर्वथाभिमतसुहृत्प्राणरक्षादक्षिणार्थमयमुपरचितोऽञ्जलिः एष मे परमोः विभवः,' इत्यभिधाय प्रतिवचनकालमप्रतीक्ष्यैव पुरोयायिनाम्बायाः प्रविशता कनकवेत्रलताकरेण प्रतीहारिजनेन कंचुकिलोकेनागृहीतताम्बूलकुसुमपटवासांगरागेण चामरव्यग्रपाणिना कुब्जकिरातबधिरवामनवर्षवरकलमूकानुबीतेन परिजनेन सर्वत संरुद्धे द्वारदेशे कथमप्यवाप्तनिर्गमः प्रययौ।

८४. अम्बा तु मत्समीपमागत्य सुचिरं स्थित्वा स्वभवनमयासीत्। तया तु तत्रागत्य किं कृतं किमभिहितं किमाचेष्टितमिति शून्यहृदया सर्वं नालक्षयम्। गतायां च तस्यामस्तमुपगते भगवति हारीतहरितवाजिनि सरोजिनीजीवितेश्वरे चक्रवाकसुहृदि सवितरि, लोहितायमाने पश्चिमाशामुखे, हरितायमानेषु कमलवनेषु, नीलायमाने पूर्वदिग्भागे, पातालपंककलुषेण महाप्रलयजलधिपयःपूरेणेव तिमिरेणावष्टभ्यमाने जीवलोके किंकर्तव्यतामूढां तामेव तरलिकामपृच्छम्—

८५. 'अयि तरलिके, कथं न पश्यसि दृढमाकुलं मे हृदयम् अप्रतिपत्तिविह्वलानि चेन्द्रियाणि। न स्वयमण्वपि कर्तव्यमलमस्मि ज्ञातुम्। उपदिशतु मे भवती यदः सांप्रतमयमेवं त्वत्समक्षमेवाभिधाय गतः कपिंजलः। यदि तावदितरकन्यकेव विहाय लज्जाम्, उत्सृज्य धैर्यम् अवमुच्य विनयम्, अचिन्तयित्वा जनापवादम् अतिक्रम्य सदाचारम्, उल्लंघ्य शीलम्, अवगणय्य कुलम्, अंगीकृत्यायशोरागान्धवृत्तिः, अननुज्ञाता पित्रा, अननुमोदिता

बात परिजनोंसे जानकर महादेवी आई हैं'। यह बात सुनकर लोगोंकी भीड़में भीत कपिंजलने तुरन्त उठकर कहा—'राजपुत्री, बहुत देर हो गई। भगवान् त्रिभुवन चूड़ामणि सूर्य अस्त हो रहे हैं। सो जाता हूं। प्रिय मित्रके प्राणोंकी रक्षाकी भिक्षाके लिये सब तरहसे मैं यह हाथ जोड़ रहा हूँ। यही मेरे पास परम धन है,' और उत्तरकी प्रतीक्षा किये बिना ही मांके आगे-आगे चलने वाले सोनेके बेतलता हाथमें लिये प्रतीहारियों, कंचुकियों ताम्बूल-पुष्प-सुगंधितचूर्ण-अंगराग लिये चंवर डुलानेमें लगे हाथवाले कुबड़े-किरात-बहिरे-बावन-नपुंसक-गूंगे परिजनोंके प्रवेशसे चारों ओरसे रुंधे दर्वाजेसे किसी तरह रास्ता पाकर चला गया।

८४. मेरे पास आ देर तक ठहरकर मां अपने भवन चली गई। उसने वहां क्या किया, क्या कहा, क्या आचरण किया, यह सब शून्य-हृदया मैंने नहीं जाना। उसके चले जाने पर हारिल जैसे हरे अश्व-वाले कमलिनी-प्राणेश्वर, चकवा के मित्र, भगवान् सूर्य अस्त हो गये। पातालके पंक जैसे मलिन, महाप्रलयके समुद्रजलकी धारा समान अन्धकारसे संसारके ढंक जाने पर किंकर्तव्यविमूढ़ हुई मैंने उसी तर-लिकासे पूछा—

८५. 'अयि तरलिके, मेरे अति व्याकुल हृदय को क्या तू नहीं देख रही है? अरुचिसे मेरी इन्द्रियां विह्वल हैं। यहां क्या करणीय है, इसे अणु मात्र भी जानने में मैं स्वयं असमर्थ हूं। यहां जो उचित है, उसे तू बतला, तेरे सामने ही कपिंजल ऐसा कह कर गया है। यदि और कन्याओंकी तरह लज्जा छोड़ कर, धैर्य हटाकर, विनय त्याग कर, जन-निंदाकी पर्वाह न कर, सदाचारका अतिक्रमण कर, शीलका उल्लंघन कर, कुलका तिरस्कार कर, अयशको अंगीकार कर, पिताकी अनुज्ञा लिये बिना, माताका अनुमोदन पाये बिना, राग से अन्धी हो, स्वयं (प्रिय के) पास जा पाणिग्रहण कराऊं, (तो) इस प्रकार गुरुजनोंकी बातका

मात्रा, स्वयमुपगम्य ग्राहयामि पाणिम्। एवं गुरुजनातिक्रमादधर्मो महान्। अथ धर्मानुरोधादितरपक्षावलम्बनद्वारेण मृत्युमंगीकरोम्येवमपि प्रथमं तावत्स्वयमागतस्य प्रथमप्रणयिनस्तत्र भवतः कपिंजलस्य प्रणयप्रसरभंगः। पुनरपरं यदि कदाचित्तस्य जनस्य मत्कृतादाशाभंगात्प्राणविपत्तिरुपजायते, तदपि मुनिजनवधजनितं महदेनो भवेत्' इत्येवमुच्चारयन्त्यामेव मयि चन्द्रोदयजन्मना विरलविरलेनालोकेन वसन्तवनराजिरिव कुसुमरजसा धूसरतां वासवी दिगयासीत्

—पूर्वभागे

(१०) कादम्बरी-स्नेहः—

८६. आसीच्चास्य (चंद्रापीडस्य) मनसि—'शेषेन्द्रियाण्यपि मे वेधसा किमिति लोचनमयान्येव न कृतानि। किं वानेन कृतमवदातं कर्म चक्षुषा यदनिवारितमेनां पश्यति? अहो, चित्रमेतदुत्पादितं वेधसा सर्वरमणीयानामेकं धाम। कुत एते रूपातिशयपरमाणवः? यन्नूनमेनामुत्पादयतो विधेः करतलपरामर्शक्लेशेन ये विगलिता लोचनयुगलादश्रुजलबिन्दवस्तेभ्य एतानि जगति कुमुदकमलकुवलयसौगन्धिकवनान्युत्पन्नानि, इत्येवं चिन्तयत एवास्य तस्यानयनयुगले निपपात चक्षुः। तदा तस्या अपि नूनमयं स केयूरकेणावेदित इति चिन्तयन्त्या रूपातिशयविलोकनविस्मयस्मेरं निश्चलनिबद्धलक्षं चक्षुस्तस्मिन्सुचिरं पपात।

लोचन प्रभाधवलितस्तु कादम्बरी दर्शनविह्वलोऽचल इव तत्क्षणमराजत चन्द्रापीडः। दृष्ट्वा च प्रथमं रोमोद्गमः, ततो भूषणरवः, तदनु कादम्बरी समुतस्थौ। अथ

उल्लंघन करनेसे महा अधर्म होगा। यदि धर्मके अनुरोधसे दूसरी बात स्वीकार कर मृत्यु अंगीकार करती हूं, तो स्वयं आये आप **कपिंजल**का स्नेह पहिले भंग होगा। फिर यदि कहीं मेरे आशाभंग करनेसे उस जनका प्राण जाये, तो यह भी मुनिजनकी हत्या करने का भारी पाप होगा।' मेरे ऐसा कहते समय ही चन्द्रमाके उदयसे उत्पन्न विरल-विरल प्रकाशसे, कुसुमशर द्वारा वसन्तकी वनपंक्ति की तरह पश्चिम दिशा धूसर हो गई।

—पूर्वभाग

१०. कादंबरीका स्नेह—

८६. और मेरे (**चन्द्रापीड़**के) मनमें हुआ—'ब्रह्माने मेरी बाकी इन्द्रियोंको भी लोचनमय ही क्यों न बनाया। इस नेत्रने कौन सा पुण्य किया, जो कि वह बेरोकटोक **कादम्बरी** को देख रहा है? अहो विधाताने (कादम्बरी के रूप में यह) सारे रमणीय (गुणों) का एक विचित्र धाम उत्पन्न किया है! कहांसे उसने इन अत्यन्त सुन्दर परमाणुओंको पाया? सो अवश्य इसे बनाते विधाताके हाथके स्पर्शसे हुये दुःख के कारण दोनों नेत्रोंसे जो अश्रु-कण गिरे, उनसे संसारमें कुमुद-कमल-कुवलयके सुगंधित वन उत्पन्न हुये।' ऐसा सोचते ही **कादंबरी** के युगल-नयनोंपर उसकी दृष्टी पड़ी। तब उसके भी 'अब **केयूरक** ने जिसकी बात की, अवश्य यही वह (पुरुष) है', यह सोचती अति सुन्दर वस्तुको देख विस्मय से मंदहासयुक्त निश्चल उसके नेत्र देर तक उसके ऊपर पड़े रहे।

उस समय **चन्द्रापीड़** लोचनकी प्रभामें उज्ज्वल **कादंबरी**के दर्शनसे विह्वल अचल से शोभित हो रहे थे। देख कर पहले रोमांच, फिर भूषणका शब्द हुआ, उसके बाद **कादंबरी** उठ खड़ी हुई। तब कामदेव ही ने उसमें पसीना पैदा किया, जल्दी-जल्दी उठनेका परिश्रम तो बहाना था। उरुके कंपन ने ही गति रोक दी, नूपुरके

तस्याः कुसुमायुध एवं स्वेदमजनयत्, ससंभ्रमोत्थानश्रमो व्यपदेशोऽभवत्। उरुकम्प एव गतिं रुरोध, नूपुररवाकृष्टहंसमण्डलमपयशो लेभे। निःश्वासप्रवृत्तिरेवांशुकं चलं चकार, चामरानिला निमित्ततां ययौ। अन्तः प्रविष्ट चन्द्रापीडस्पर्शलोभेनैव निपपात हृदये हस्तः, स एव करः स्तनावरणव्याजो बभूव। आनन्द एवाश्रुजलमपातयत्, चलितकर्णावतंसकुसुमरजो व्याजमासीत्। लज्जैव वक्तुं न ददौ, मुखकमलप्रकारकेतकीकण्टकक्षतिः साधारणतामवाप। वेपथुरेव करतलमकम्पयत्, निवेदनोद्यतप्रतीहारीनिवारणं कपटमभूत्।

८७. तदा च कादम्बरीं विशतो मन्मथस्यापि मन्मथ इवाभूद् द्वितीयः तया सह यो विवेश चन्द्रापीडहृदयम्। तथाहि असावपि तस्या रत्नाभरणद्युतिमपि तिरोधानममंस्त हृदयप्रवेशमपि परिग्रहमगणयत्, भूषणरवमपि संभाषणममन्यत, सर्वेन्द्रियाहरणमपि प्रसादमचिन्तयत्, देहप्रभासंपर्कमपि सुरतसमागमसुखमकल्पयत्।

८८. **कादम्बरी** तु कृच्छ्रादिव दत्तकतिपयपदा **महाश्वेतां** स्नेहनिर्भरं चिरदर्शनजातोत्कण्ठं सोत्कण्ठं कण्ठे जग्राह। महाश्वेतापि दृढतरदत्तकण्ठग्रहा तामवादीत्—'सखि कादम्बरि, **भारतवर्षे** राजानेकवरतुरगखुरमुखोल्लेखदत्तचतुःसमुद्रमुद्रो रक्षितप्रजापीडस्**तारापीडो** नाम। तस्यायं निजभुजशिलास्तम्भविश्रान्तविश्वविश्वंभरापीडश्**चन्द्रापीडो** नाम सूनुर्दिग्विजयप्रसंगेनानुगतो भूमिमिमाम्। एष च दर्शनात्प्रभृति प्रकृत्या मे निष्कारणबन्धुतां गतः।

शब्दसे आकर्षित हंस तो (यों ही) अपयशभागी बने। स्वासकी गतिने ही वस्त्रको चंचल कर दिया, चंवरकी हवा तो निमित्त मात्र हुई। अंतरमें प्रविष्ट **चन्द्रापीड़**के छूनेके लोभ से ही हृदयपर हाथ गया, जो स्तन ढांकनेका बहाना हुआ। आनंदने ही आंसुओंके जलको गिराया, कर्णभूषण बने हिलते फूलके केसर (का पड़ना तो) बहाना मात्र हुआ। लाजने ही कहने नहीं दिया, मुखकमलके गन्धसे आये भंवरे साधन (मात्र) बने। मदनके बाणके प्रथम प्रहारकी पीड़ा ही ने सीत्कार कराया, कुसुमसमूहोंके केतकी (केवड़े) के कांटोंका चुभना कारण बना। कंपनने ही करतलको कंपाया, निवेदनके लिये उद्यत प्रतीहारीका रोकना बहाना (भर) हुआ।

८७. तब **कादंबरी** के भीतर प्रवेश करते कामदेव का भी दूसरे कामदेव सा हुआ, जो कि कादंबरी के साथ चन्द्रापीड़के हृदयमें प्रविष्ट हुआ; क्योंकि चन्द्रापीड़ ने कादम्बरी के रत्नभूषणोंकी द्युतियों को देखनेमें बाधक माना, हृदयमें प्रवेश करनेको भी रहनेका स्थान जाना, भूषणकी आवाजको भी वार्तालाप माना, सारे इन्द्रियोंके चुरानेको भी प्रसाद समझा, देह-प्रभाके सम्पर्कको भी सुरत-समागमका सुख कल्पना किया।

८८. **कादंबरीने** कठिनाईसे कुछ कदम चलकर बड़े स्नेहके साथ देखने पर उत्कंठित हो लालसापूर्वक **महाश्वेता**को अंकवार दिया। महाश्वेताने भी बहुत दृढ़तासे कंठग्रह देकर उससे कहा—"सखि **कादंबरी**, **भारतवर्ष**में अनेक श्रेष्ठ अश्वोंके खुरोंके मुखोंसे खोदकर चारों समुद्रों पर मुद्रा लगानेवाले, पीड़ा से प्रजाके रक्षक, **तारापीड़** नामक राजा हैं। उनके यह पुत्र, अपने भुजरूपी पाषाण-स्तम्भपर विश्राम किये सारी धरतीके आपीड़ (आभूषण) **चन्द्रापीड़** दिग्विजयके प्रसंगसे इस भूमिमें आये। यह देखने मात्रसे स्वभावतः मेरे अकारण बन्धु हो गये। विशेषतः स्वभावसे सरल (अपने) गुणों द्वारा गम्भीरता नहीं छोड़कर निष्ठुर हुई मेरी चित्तवृत्तिको आकर्षित करते वर्तमान हैं। (संसार

परित्यक्तसकलासंगनिष्ठुरामपि मे सविशेषस्वभावसर-लैर्गुणैराकृष्य चित्तवृत्ति वर्तते। दुर्लभो हि दाक्षिण्यपरवशो निर्निमित्ताकृत्रिमहृदयो विदग्धजनः। यतो दृष्ट्वा चेम-महमिव त्वमपि निर्माणकौशलं प्रजापतेः, निःसपत्नतां च रूपस्य स्थानाभिनिवेशित्वं च लक्ष्म्याः, सद्भर्तृतासुखं च पृथिव्याः, सुरलोकातिरिक्ततां च मर्त्यलोकस्य, सफलतां च मानुषीलोचनानाम्, एकस्थानसमागमं च सर्वकलानाम्, ऐश्वर्यं च सौभाग्यस्य, अग्राम्यतां च मनुष्याणां ज्ञास्यसीति बलादानीतोऽयम्। कथिता चास्य मया बहुवारं प्रियसखी। तदपूर्वदर्शनोऽयमिति विमुच्य लज्जाम् अनुपजातपरिचय इत्युत्सृज्याविश्रम्भताम्, अविज्ञातशील इत्यपहाय शंकां यथा मयि तथात्रापि प्रवर्तितव्यम्। एष ते मित्रं च बान्धवश्च परिजनश्च इत्यावेदिते तया **चन्द्रापीडः** प्रणाममकरोत्।

८९. कृतप्रणामं च तं तदा **कादम्बर्यास्तिर्यग्विलोकयन्त्याः** सस्नेहमतिदीर्घलोचनयोरपांगभागं गच्छतस्तारतारकस्य लोचनस्य श्रमसलिललवविसर इवानन्दबाष्पजलबिन्दु-निकरो निपापात। त्वरितमभिप्रस्थितस्य हृदयस्य धूलि-रिव सुधाधवला स्मितज्योत्स्ना।...अंगुलिविवर-विनिःसृतमरकतांगुलीयकलेखो विभ्रमगृहीतताम्बू-लवीटिका इव करो जृम्भारम्भमन्थरं मुखमुत्ससर्प। स्रवत्स्वेदजलधौतलावण्यनिर्मलेषु चास्याः स्तम्भसंक्रान्त-प्रतिबिम्बतया संचरन्मूर्तिर्मकरकेतुरिवावयवेष्वदृश्यत चन्द्रापीडः। तथाहि। सिंजन्मणिनूपुरपुटेनभुवमालिखतांगु-ष्ठेनाहूत इव चरणनखेषु निपपात। दर्शनातिरभस-

में) उदारता के वशवर्ती, अकारण मित्र, बिना बनावटी हृदयके पंडितजन दुर्लभ हैं। चूंकि इनको देखकर मेरी तरह तू भी जानेगी ब्रह्माके निर्माणकी चतुराई, अप्रतिम उचित स्थानमें लक्ष्मीका पक्ष-पात, सच्चे स्वामी पानेका पृथिवीको सुख, मृत्युलोकका देवलोकसे से भी बढ़कर होना, मानुषियोंके नेत्रों की सफलता, सभी कलाओंके एक स्थानमें समागम, और सौभाग्य-ऐश्वर्य तथा मनुष्योंका अ-ग्राम्य होना। इसीलिये जबर्दस्ती मैं इन्हें लाई हूं। प्रिय सखी, मैंने इन्हें बहुत बार तेरे बारेमें कहा है। सो यह पहले पहल दर्शनमें आये, यह सोचकर लज्जा मत कर; परिचय नहीं हुआ है, यह सोच अविश्वास को त्याग कर, इनका शील अज्ञात है यह सोचकर शंका करना छोड़कर; जैसा मेरे विषयमें वैसा इनके विषयमें भी व्यवहार करना।" यह तेरे मित्र बान्धव और परिजन हैं, यह बतला देनेपर **चन्द्रापीड़ने** प्रणाम किया।

८९. उनके प्रणाम कर लेनेके बाद स्नेहके साथ तिरछी देखती हुई कादम्बरी की बड़ी-बड़ी दोनों आंखोंके कोरकी ओर जाती मनोहर पुतलियों-वाले नेत्रका स्वेद-जल आनंदाश्रु-जलबिन्दुओंके रूपमें गिर पड़ा। प्रस्थान किये हुये हृदयकी धूलिकी तरह तुरन्त ही सुधा जैसी धवल मुस्कुराहटकी ज्योति फैल गई। प्रिय अंगुलीके बीचसे निकली पन्नेकी अंगूठीकी रेखावाला हाथ लीलासे पानके बीड़ेको लिये सा, जम्हाई होनेसे मंथर मुखके पास उठ गया। बहते हुये स्वेदके जलसे धुले लावण्यवाले उसके निर्मल अंगोंमें और स्तम्भोंमें प्रतिफलित प्रतिबिंब होनेसे मानो, चन्द्रापीड़ चलायमान मूर्तिवाले कामदेवसे दिखाई दिये। क्योंकि मणिमय नूपुरके पुटवाले अंगूठे द्वारा भूमिको कुरेदते मानो बुलाये जाकर चरणनखोंमें चन्द्रपीड़ आ गिरे। दर्शनके कारण हुई जल्दी के साथ दौड़े हृदयसे आया सा स्तनोंके बीचमें दिखाई दिया। फूले हुये कमलकी माला सी लम्बी

प्रधावितेन गत्वा हृदयेनानीत इव स्तनाभ्यन्तरे समदृश्यत। विकचकुवलयदामदीर्घया च दृष्ट्या निपीत इव कपोलतले समलक्ष्यत। सर्वासामेव च तदा तासां कन्यकानां तिर्यक्पश्यन्तीनां तं कुतूहलापांगचुम्बिन्या दृष्ट्या निर्गन्तुकामा इव कर्णपूरमधुकरैः समं बभ्रमुस्तरलास्तारकाः।

९०. **कादम्बरी** तु सविभ्रमकृतप्रणामा **महाश्वेतया** सह पर्यंके निषसाद। ससंभ्रमं परिजनोपनीतायां च शयनशिरोभागनिवेशितायां धवलांशुकप्रच्छदपटायां हेमपादांकितायां पीठिकायां **चन्द्रापीडः** समुपाविशत्। महाश्वेतानुरोधेन च विदितकादम्बरीचित्ताभिप्रायाः संवृतमुखन्यस्तहस्तदत्तशब्दनिवारणसंज्ञाः प्रतीहार्यो वेणुरववीणाघोषानुनीतध्वनीन्मागधीजयशब्दांश्च सर्वतो निवारयांचक्रुः। त्वरितपरिजनापनीतेन च सलिलेन **कादम्बरी** स्वयमुत्थाय महाश्वेतायाश्चरणौ प्रक्षाल्योत्तरीयांशुकेनापमृज्य पुनः पर्यंकमारुरोह। **चन्द्रापीडस्यापि** कादम्बर्याः सखी रूपानुरूपा जीवितनिर्विशेषा सर्वविश्रम्भूमिर्मदलेखेति नाम्ना बलादनिच्छतोऽपि प्रक्षालितवती चरणौ। महाश्वेता तु कर्णाभरणप्रभावर्षिण्यपांगदेशे सप्रेम पाणिना स्पृशन्ती, मधुकरभरपर्यस्तं च कर्णावतंसं समुत्क्षेपयन्ती, चामरपवनविधूतिपर्यस्तालकवल्लरीमनुव्वंजमाना कादम्बरीमनामयं पप्रच्छ। सा तु सखीप्रेम्णा गृहनिवासेन कृतापराधेवानामयेनैव लज्जमाना कृच्छ्रादिव कुशलमाचचक्षे।

९१. तदा समुपजातशोकापि च महाश्वेतामुखनिरीक्षणतत्परापि मुहुर्मुहुरपांगविक्षेपप्रचलिततरलतरतारसारोदरं चक्षुर्मण्डलितचापेन भगवता कुसुमधन्वना बलान्नीयमानं चन्द्रापीडपीडनयेव न शशाक निवारयितुम्। तेनैव क्षणेन तेनासन्नसखीकपोलसंक्रान्तेनेर्ष्यया रोमाञ्च-

दृष्टि द्वारा मानो पिये हुये कपोल तलपर रक्खे से थे। उस समय चंद्रापीड़को तिरछी देखती उन सभी कन्याओंकी कुतूहलयुक्त नेत्र चूमनेवाली दृष्टि द्वारा निकलनेकी इच्छावाली चंचल पुतलियां कर्णभूषणके मधुकरोंके साथ मानो घूमने लगीं।

१०. कादम्बरी विलास सहित प्रणाम करके **महाश्वेता**के साथ पलंगपर बैठ गई। पलंगके सिरहानेकी ओर रखी, सफेद रेशमी आवरणवाली, सोनेके पावोंसे अंकित, परिजनों द्वारा जल्दीसे लाई गई पीठिका-पर चन्द्रापीड़ बैठे? महाश्वेताके कहनेपर कादम्बरी मनके अभि-प्रायको जान गई, मुंदे मुंहपर रक्खे हाथ द्वारा दिये रोकनेके संकेतको पा प्रतिहारियोंने वेणुके शब्दों, वीणाके घोषों, गीतकी ध्व-नियों, मागधियों (बन्दी स्त्रियों) के जय-शब्दोंको चारों ओर बन्द करा दिया। परिजनों द्वारा तुरन्त लाये जलसे कादम्बरी स्वयं उठ-कर महाश्वेताके दोनों चरणोंको धोकर चुनरीके कपड़ेसे पोंछकर फिर पलंग पर बैठ गई। रूपके अनुरूप प्राण-समान सारे विश्वासोंकी भूमि **मदलेखा** नामक कादम्बरीकी सखीने अनिच्छुक **चन्द्रापीड़**के चरणोंका जबर्दस्ती प्रक्षालन किया। महाश्वेताने कर्ण-भूषणकी प्रभा बरसानेवाले नेत्रके कोनेको प्रेम-सहित हाथसे छूती, मधुकरोंके भारसे गिरे कर्णभूषको ऊपर उठाती, चंवरकी हवासे कांपती बिखरी अलकलता को उसके स्थानपर रखती कादम्बरी से कुशल-मंगल पूछा। सखीके प्रेमके कारण घरमें रहनेसे अपराध किये सी, स्वस्थ होने से ही लजाती सी, उसने कठिनाईसे कुशल-मंगल बतलाया।

११. तब शोकाकुल भी, महाश्वेताके मुखके देखनेमें तत्पर भी, बार-बार नेत्रकी गतिसे चंचल तरल पुतली युगल नेत्रको, खिंचाये जाते चन्द्रापीड़ की पीड़ा की तरह नयाने धनुष वाले भगवान् कामदेव जबर्दस्ती न रोक सके। उसी क्षण **कादम्बरी** पासकी सखियोंके कपोलोंमें

भिद्यमानकुचतटनश्यत्प्रतिबिम्बेन विरहव्यथास्वेदार्द्रवक्षः स्थलघटितशालभंजिकाप्रतिमेन सपत्नीरोषान्निक्षिपता दौर्भाग्यशोकमानन्दजलतिरोहितेनान्धतादुःखमभजत सा। मुहूर्तापगमे च ताम्बूलदानोद्यतां महाश्वेता तामभाषत—

३२. 'सखि कादम्बरि, संप्रतिपन्नमेव सर्वाभिरस्माभिरयमभिनवागतश्चन्द्रापीड आराधनीयः। तदस्मै तावद्दीयताम्' इत्युक्ता च किंचिद्विवर्तितावनमितमुखी शनैरव्यक्तमिव 'प्रियसखि, लज्जेऽहम्। अनुपजातपरिचयाप्रागल्भ्येनानेन गृहाण। त्वमेवास्मै प्रयच्छ' इत्युवाच सा ताम्। पुनः पुनरभिधीयमाना च तया कथमपि ग्राम्येव चिराद्दानाभिमुखं मनश्चक्रे। महाश्वेतामुखादनाकर्षितदृष्टिरेव वेपमानांगयष्टिः, आकुललोचना, स्थूलस्थूलं निःश्वसन्ती, निजशरप्रहारमूर्च्छिता मन्मथेन स्नपितेव स्वेदजलविसरनिमज्जनभयेन च हस्तावलम्बनमिव याचमाना, साध्वसपरवशा पतामीति लगितुमिव कृतप्रयत्ना प्रसारयामास ताम्बूलगर्भं हस्तपल्लवम्।

३३. चन्द्रापीडस्तु जयकुंजरकुम्भस्थलास्फालनसंक्रान्तसिन्दूरमिव स्वभावपाटलम्, धनुर्गुणाकर्षणकृतकिणश्यामलम्, कचग्रहाकृष्टिरुदितारिलक्ष्मीलोचनपरामर्शलग्नांजनबिंदुमिव विसर्पन्नखकिरणतयातिरभसेन प्रधाविताभिरिव विवर्धिताभिरिव प्रहसिताभिरिवांगुलीभिरुपेतं, स्पर्शलोभाच्च तत्कालकृतसंनिवेशाः सरागाः पंचापीन्द्रियवृत्तीरपरांगुलीरुद्वहन्तं प्रसारितवान् पाणिम्। तत्र च

लग्न होनेकी ईर्ष्यासे विरहकी पीड़ाके स्वेदसे भीगी, छाती पर लगी पुतली की प्रतिमावाले, सौतके रोष से उभड़ते अभाग्यके शोकको आनंदजल द्वारा उस रोमांच होते स्तनतटपर लुप्त होते प्रतिबिम्बसे अन्धपनके दुःखको प्राप्त हुई। क्षण भर बाद पान देनेके लिये तैयार कादम्बरीसे महाश्वेताने कहा—

९२. 'सखि कादंबरी, हम सबने पा ही लिया है, नये आये इन चन्द्रापीड़की आराधना करनी चाहिये। सो इन्हें दो।' कुछ घूमे झुके मुखवाली (कादंबरीने) धीरेसे अस्पष्ट सा कहा, "प्रिय सखि, इनके साथ अधिक परिचय न होनेसे मैं लजाती हूं। लो, तुम ही इन्हें दो।" और फिर-फिर उसके कहने पर जैसे-तैसे ही ग्रामीण स्त्रीकी तरह देरसे पान देनेका मन उसने किया। महाश्वेताके मुखसे दृष्टिको बिना खींचे ही कांपते देह, व्याकुल लोचनवाली लंबी-लंबी सांस लेती, कामदेव के निज बाणोंके प्रहारसे मूछित, पसीनेके जलोंसे नहाई सी, परिश्रम-के जलसमूहमें डूबनेके भयसे हाथका अवलंबन मांगती सी, भयसे पराधीना 'गिर रही हूँ' कह पकड़नेका मानो प्रयत्न करती, कादम्बरी ने पानवाले करपल्लवको फैलाया।

९३. चन्द्रापीड़ने विजय-गजके सिरके थपथपानेसे सिन्दूर लगे से स्वभावतः लाल, धनुषकी ज्याके खींचनेसे पड़े घट्ठेसे श्यामल, केश पकड़नेके लिये खींचनेसे रोई शत्रु-लक्ष्मीके लोचनको छूनेसे लग गये काजलकी बिन्दुवाले से, फैलती नख-किरणोंके कारण अत्यन्त वेगसे दौड़ती हुई सी, बढ़ती हुई सी, हंसती हुई सी, अंगुलियोंसे युक्त, और छूनेके लाभसे तत्काल प्रवेशवाली रागयुक्त पांचों इन्द्रियोंकी वृत्तियों वाली दूसरी अंगुलियों को उठाते हाथको फैलाया। उधर कादंबरी उस कालके लिये सुलभ हाव-भावके देखनेके लिये कुतूहल द्वारा

सा तत्कालसुलभविलासदर्शनकुतहलिभिरिव कुतोऽप्यागत्य सर्वरसैरधिष्ठिता, तेनानिबद्धलक्ष्यतया शून्यप्रसारितेन चन्द्रापीडहस्तान्वेपणायेव पुरःप्रवर्तितनखांशुनिवहेन वेपथुचलितवलयावलीवाचालेन, संभाषणमिव कुर्वता हस्तेन स्वेदसलिलपातपूर्वकम् 'गृह्यतामयं मन्मथेन दत्तो दासजनः' इत्यात्मानमिव प्रतिग्राहयन्ती, 'अद्यप्रभृति भवतो हस्ते वर्तते' इति जीवितमिव स्थापयन्ती ताम्बूलमदात्। आकर्षन्ती च करकिसलयं भुजलतानुसारेण स्पर्शतृष्णागतमनंगशरभिन्नमध्यं हृदयमिव पतितमपि रत्नवलयं नाज्ञासीत्। गृहीत्वा चापरं ताम्बूलं महाश्वेतायै प्रायच्छत्।

—पूर्वभागे

३०. हर्ष (६०७—६४७ ई०)

हर्ष के जीवन के बारे में काफी सामग्री बाणरचित "हर्षचरित" और चीनी पर्यटक ह्वेन् चाङ की यात्रा से मिलती है। शासनपत्र भी उनके जीवन पर काफी प्रकाश डालते हैं। यह भारत के अन्तिम सबसे बड़े हिन्दू सम्राट् थे। यद्यपि इनके पिता-पितामहों की राजधानी थानेश्वर थी, लेकिन अपने भगिनी-पति, अन्तिम मौखरी राजा की हत्या के बाद कान्यकुब्ज को इनके बड़े भाई राज्यवर्धनने अपनी राजधानी बनाया, और भाई की हत्या के बाद हर्ष सिंहासन पर बैठे। चीनी पर्यटक के अनुसार यह बौद्ध थे, लेकिन हर्ष स्वयं अपने को "परममाहेश्वर" (शैव)

रत्नावलिः

सागरिका—

१. (ततः प्रविशत्यासनस्थो गृहीतवसन्तोत्सववेषो राजा विदूषकश्च)

मानो कहींसे भी आकर सारे रसों से लिप्त, लक्ष्य न बंधे होनेके कारण खाली फैलाये **चन्द्रापीड़** के हाथको ढूंढ़नेके लिये मानो सामने हिले नखोंकी किरणों के कंपन से चलित, वाचाल वलयोंसे बातचीत करते हाथ से स्वेद-जल गिरानेके साथ 'कामदेवने (इस) दासजनको (तुम्हें) प्रदान किया, इसे ग्रहण करो' यह कहकर मानो अपनेको ग्रहण करा रही, 'आजसे यह जन आपके हाथमें है' यह कहती मानो जीवनको (हाथमें) स्थापित करती पानको प्रदान किया। और करपल्लवको हटाती, भुजलताके साथ छूनेके लोभसे आये कामदेवके शरसे खंडित वक्षवाली उसने हृदयकी तरह (हाथसे) गिरे रत्न-कंकणको भी नहीं जाना। फिर दूसरा पान लेकर (उसने) महाश्वेताको दिया।

---पूर्वभाग

३०. हर्ष (६०७---६४७ ई०)

और अपने मृत भाई को "परमसौगत" कहते हैं। इनकी बहन राज्यश्री वैधव्य के बाद भिक्षुणी हो गई। वस्तुतः इनकी आस्था बुद्ध और शिव दोनों पर समान थी। इनकी कृतियां "रत्नावलि", "प्रियदर्शिका" और "नागानंद" तीनों ही नाटक हैं। और, जैसा कि पहले बतलाया, इन्हें बाण की कृति होने का सन्देह किया जाता है। इस समय अपभ्रंश भाषा प्रचलित थी। बाण के मित्र ईशान उसके प्रतिष्ठित कवि थे, पर उनकी कोई रचना हमारे पास नहीं पहुंची है। अपभ्रंश के सबसे पुराने कवि सरहपाद (७५० ई०) हैं, जो हर्ष की मृत्यु के सौ वर्ष बाद आते हैं।

रत्नावलि

सागरिका---

१. (तब वसंतोत्सवके मैनमें आसनपर बैठा राजा और विदूषक प्रवेश करते हैं)

राजा—(सहर्षमवलोक्य)—सखे वसन्तक ।
विदूषकः—आज्ञापयतु भवान् ।

२. राजा—

राज्यं निर्जितशत्रु योग्यसचिवे न्यस्तः समस्तो भरः,
सम्यक्पालनलालिताः प्रशमिताशेषोपसर्गाः प्रजाः ।
प्रद्योतस्य सुता वसन्तसमयस्त्वं चेति नाम्ना धृतिं
कामः काममुपैत्वयं मम पुनर्मन्ये महानुत्सवः ॥९॥

३. विदूषकः—(सहर्षम्) भो वयस्य, एवं नेदम् । अहं पुनर्जानामि न भवतो न कामदेवस्य ममैवैकस्य बटुकस्ययं मदनमहोत्सवो, येन प्रियवस्येनैवं मन्त्रयते । (विलोक्य) तत्किं पुनरनेन । प्रेक्षस्व तावदेतस्य मधुमत्तकामिनीजनस्वयंग्राहगृहीतशृंगकजलप्रहारनृत्यन्नागरजनजनितकौतूहलस्य समन्ततः सुवृत्तमर्दलोद्दामचर्चरीशब्दमुखररथ्यामुखशोभिनः प्रकीर्णपटवासपिंजरीकृतदिशामुखस्य श्रियं मदनमहोत्सवस्य ।

४. राजा—(सहर्षं समन्तादवलोक्य) अहो, परां कोटिमधिरोहति प्रमोदः पौराणाम् । तथाहि —

कीर्णैः पिष्टातकौघैः कृतदिवसमुखैः कुंकुमक्षोदगौरैर्हेमालंकारभाभिर्भरनमितशिरःशेखरैः कैंकिरातैः ।
एषा वेषाभिलक्ष्यस्वविभवविजिताशेषवित्तेशकोशा,
कौशाम्बी शातकुंभद्रवखचितजनेवैकपीता विभाति ॥१०॥

५. अपि च—

धारयन्त्रविमुक्तसंततपयःपूरप्लुतेसर्वतः,
सद्यः सान्द्रविमर्दकर्दमकृतक्रीडे क्षणं प्रांगणे ।

राजा---(हर्षके साथ देखकर) सखे वसंतक,

विदूषक---आप आज्ञा दें।

२. राजा --

राज्य विजित शत्रुवाला सारा भार योग्य सचिवके ऊपर रख दिया है। अच्छी तरह पालनसे प्रजा लालित तथा उसके सारे कष्ट मिटा दिये गये हैं। प्रद्योतकी सुता, वसंतका समय और तू (पास) है। कामदेव पूरी तौरसे संतोषको प्राप्त करें। मेरे लिये तो समझो, यह महान् उत्सव है ।।९।। छन्द---शार्दूलविक्रीड़ित

३. विदूषक---(हर्षके साथ) है मित्र, ऐसा यह नहीं। मैं तो जानता हूं, न आपका और न कामदेवका, बल्कि सिर्फ मुझ ब्राह्मण बटुकका यह मदन-महोत्सव है, जिसे कि प्रिय मित्र ऐसा समझ रहे हैं। (देखकर) फिर इससे क्या ? मदिरामें मस्त कामिनियोंके आलिंगनमें बंधे, पिच्च-कारीके जलके प्रहार पर नाचते, नागरिक लोगोंमें उत्पन्न कौतू-हलवाले चारों ओर गोल मांदलके साथ जोरके चांचर गीतके शब्दोंसे सड़कके किनारोंको शोभित करनेवाले बिखरे चूर्णसे पीली दिशाओं-वाले, मदन-महोत्सवकी शोभा देखो।

४. राजा---(हर्षके साथ चारों ओर देखकर) अहो, पुरवासियोंका प्रमोद चरम सीमाको पहुंच रहा है, जैसे कि---

चूर्ण-बिखेरी केसर चूर्णसे गौर, प्रातःकालसे
सुवर्ण-भूषणके प्रकाशों द्वारा भारसे झुके सिरोंके शेखरवाले अशोकोंसे,
वेष से लखे जाने वाले अपने विभवसे सारे कोशको जीते,
यह सारी कौशाम्बी सोनेके जलसे खचित जनोंसे पीली दीख रही है ।।१०।।

५. और भी---

पिचकारियोंसे छूटते निरन्तर जलके प्रवाहसे भींगे चारों ओर
तुरन्त रौंदे घने पंकसे ठेले गये आंगनमें क्षण भर,

उद्दामप्रमदाकपोलनिपतत्सिन्दूररागारुणैः,
सैन्दूरीक्रियते जनेन चरणन्यासैः पुरः कुट्टिमम् ॥११॥

६. विदूषकः—(विलोक्य) एतदपि सुविदग्धजनजलभरित शृंगकजलप्रहारमुक्तसीत्कारमनोहरं वारविलासिनीजनविलसितमालोकयतु प्रियवयस्यः।

७. राजा—(विलोक्य) वयस्य, सम्यग् दृष्टं भवता। कुतः—

अस्मिन्प्रकीर्णपटवासकृतान्धकारे,
दृष्टो मनाङ्मणिविभूषणरश्मिजालैः।
पातालमुद्यतफणाकृतिशृंगकोऽयं
मामद्य संस्मारयतीव भुजंगलोकः ॥१२॥

८. विदूषकः—(विलोक्य) भो वयस्य, प्रेक्षस्व। एषा खलु मदनिका मदनवशविसंष्ठुलं वसन्ताभिनयं नृत्यन्ती चूतलतिकया सहेत एवागच्छत्यवलोकयतु प्रियवयस्यः—(ततः प्रविशतो मदनलीलां नाट्यन्त्यौ द्विपदीखण्डं गायन्त्यौ चेट्यौ।)

९. मदनिका—गायति—

कुसुमायुधप्रियदूतको मुकुलीकृतबहुचूतकः।
शिथिलितमानग्रहणको वाति दक्षिणपवनकः ॥१३॥
विकसितबकुलाशोकक उत्कण्ठितप्रियमेलकः।
प्रतिपालनासमर्थकस्ताम्यति युवतिसार्थकः ॥१४॥

१०. अथवा—

इह प्रथमं मधुमासो जनस्य हृदयानि करोति मृदुलानि।
पश्चाद्विध्यति कामो लब्धप्रसरैः कुसुमबाणैः ॥१५॥

११. राजा—(निर्वर्ण्य) अहो, मधुरोऽयमासां निर्भरः क्रीडारसः। तथाहि—

उद्दीप्त कामिनियोंके कपोलोंसे गिरते सिंदूरके रंगसे लाल,
चरण-चिह्नों द्वारा लोग नगर के चौतरोंको सिंदूरित कर रहे हैं ।।११।।

६. विदूषक—(देखकर) प्रिय मित्र, जल भरी पिचकारी द्वारा सुचतुर जनोंके जल-प्रहारसे सीसी भरती मनोहर वारांगनाओंके इस विलासको भी देखें।

७. राजा—(देखकर) मित्र, आपने भले देखा। क्योंकि—
फैले चूर्णसे अन्धकारित इस (स्थान) में,
मणि-भूषणोंकी किरणों से युक्त तनिक दीखता,
उठे फणके आकारकी पिचकारियोंवाला यह भुजंग* लोक।
मुझे आज मानो पातालका स्मरण दिला रहा है ।।१२।।

८. विदूषक—(देखकर) हे मित्र, देखो। यह **मदनिका** मदनसे व्याकुल हो वसंतके अभिनयका नृत्य करती **चूतलतिका**के साथ इधर ही आ रही है, देखो प्रिय मित्र—
(तब मदन-लीलाका अभिनय करती द्विपदी गीत गाती दो चेटियां प्रवेश करती हैं)

९. मदनिका—गाती है—
कामदेवका प्रिय दूत, बहुतेरे फूले आमोंवाला
मान शिथिल करनेवाला, दक्षिणी वायु बह रहा है ।।१३।।
जो फूले बकुल और अशोकयुक्त उत्कंठित प्रियोंका मिलानेवाला है,
(आज) प्रतीक्षा करनेमें असमर्थ युवतियोंका झुण्ड उदास है ।।१४।।

१०. अथवा—
यह चैतका महीना पहले आदमीके हृदयोंको कोमल बनाता है।
फिर अवसर पा कामदेव (उसे) फूलके बाणोंसे बेधता है ।।१५।।

११. राजा—(अच्छी तरह देखकर) अहो, इनका क्रीड़ारस अत्यन्त मधुर है। जैसे कि—शिथिल अस्त-व्यस्त केश फूलोंकी रची मालाको

---

* वेश्यालंपट, सर्प

स्रस्तः स्रग्दामशोभां त्यजति विरचितामाकुलः केशपाशः,
क्षीवाया नूपुरौ च द्विगुणतरमिमौ क्रन्दतः पादलग्नौ ।
व्यस्तः कम्पानुबन्धादनवरतमुरो हन्ति हारोऽयमस्याः,
क्रीडन्त्याः पीडयेव स्तनभरविनमन्मध्यभंगानपेक्षम् ॥१६॥

विदूषकः—भो वयस्य, अहमप्येतेषां वधूपरिजनानां मध्ये नृत्यन् मदनमहोत्सवं मानयिष्यामि ।

१२. राजा—(सस्मितं) वयस्य एवं क्रियताम् ।
विदूषकः—यद्भवानाज्ञापयति । (उत्थाय चेट्योर्मध्ये नृत्यति) भवति मदनिके, भवति चूतलतिके, मामप्येतच्चर्चरिकं शिक्षापयथ ।
उभे—भो वयस्य हताश, न खलु एषा चर्चरी । द्विपदी-खण्डं खलु एतत् ।

१३. विदूषकः—(सहर्षं) किमेतेन खण्डेन मोदकाः क्रियंते ?
मदनिका—(विहस्य) नहि नहि, पठ्यते खल्वेतत् ।

१४. विदूषकः—(सविषादम्) यदि पठ्यते तदलमेतेन । वरं प्रियवयस्यस्यैव सकाशं गमिष्यामि । (गन्तुमिच्छति)

१५. उभे—एहि क्रीडामः । बसन्तक, कुत्र गच्छसि ? इति (बहुविधं बसन्तकमाकर्षतः, विदूषकश्च बलाद् गच्छति)
विदूषकः—(राजानमुपसृत्य) वयस्य, नर्तितोऽस्मि । नहि नहि, क्रीडित्वा पलायितोऽस्मि ।

१६. राजा—साधु कृतम् ।
चूतलतिका—हंजे मदनिके, चिरं खल्वावाभ्यां क्रीडितम् । तदेहि निवेदयावस्तावत् भट्टिन्याः सन्देशं महाराजस्य ।

१७. मदनिका—एहि, त्वरावः ।
उभे—(उपसृत्य) । जयतु जयतु भर्ता । भर्तः, देवी आज्ञापयति (इत्यर्धोक्ते लज्जां नाट्यंत्यौ) नहि नहि, विज्ञापयति ।

शोभाको छोड़ रहा है। खेलती मस्त कामिनीके पैरमें लगे यह नूपूर दूने जोरसे बज रहे हैं। पीड़ाके कारण मानो स्तनके भारसे झुकी कटिकी अपेक्षाके बिना कंपनके कारण हिलता इसका यह हार बराबर छातीको पीट रहा है।।१६।।
विदूपक—हे मित्र, मैं भी इन वहुओंके बीचमें नाचता मदन-महोत्सव मनाऊंगा।

१२. राजा—(मुस्कुराकर) मित्र, ऐसा ही करो।
विदूपक—जो आप आज्ञा देते हैं। (उठकर चेटियोंके बीचमें नाचते) आप **मदनिका**, आप **चूतलतिका**, मुझे भी यह **चांचर** सिखाओ।
दोनों—हे मित्र, छीः, यह चांचर नहीं है, यह द्विपदीखंड है।

१३. विदूपक—(हर्षके साथ) क्या इस खंड (खांड़) से लड्डू बनाये जाते हैं?
मदनिका—(विहंसकर) नहीं, नहीं, इसे गाया जाता है।

१४. वि ूषक—(विपादके साथ) यदि गाया जाता है, तो रहने दो इसे। अच्छा है, प्रिय मित्र ही के पास जाऊंगा।
(जाना चाहता है।)

१५. दोनों—आओ खेलेंगे वसंतक, कहां जाते हो (बहुत तरह से वसंतकको घसीटती हैं, और विदूपक जवर्दस्ती भागता है)।
विदूषक—(राजाके पास जाकर) मित्र, मैंने नाच लिया, नहीं-नहीं, खेलकर, भाग आया।

१६. राजा—अच्छा किया।
चूतलतिका—री मदनिके, हम दोनों देर तक खेलती रहीं, सो आ महाराजके पास स्वामिनीका संदेश अर्ज करें।

१७. मदनिका—आ, जल्दी करें।
दोनों—(पास जाकर) जय हो, जय हो स्वामी की। स्वामी, देवी आज्ञा देती हैं—(आधा कहकर लज्जाका अभिनय करती) नहीं-नहीं अर्ज करती हूं।

१८. राजा—(सहर्षं विहस्य सादरम्) नन्वाज्ञापयतीत्येव रमणीयं। विशेषतोऽद्य मदनमहोत्सवे। तत्कथय किमाज्ञापयति देवी।
विदूषकः—आः दास्याः पुत्रि, किं देवी आज्ञापयति।
१९. चेट्यौ—एवं देवी विज्ञापयति, "अद्य खलु मया मकरन्दोद्यानं गत्वा रक्ताशोकपादपतलसंस्थापितस्य भगवतः कुसुमायुधस्य पूजा निर्वर्तयितव्या। तत्र आर्यपुत्रेण संनिहितेन भवितव्यम्।"
२०. राजा—(सानन्दम्) वयस्य, ननु वक्तव्यमुत्सवादुत्सवान्तरमापतितम्।
विदूषकः—भो वयस्य, तदुत्तिष्ठ तत्रैव गच्छावः, येन तत्र गतस्य ब्राह्मणबालकस्य मम स्वस्तिवाचनं किमपि भविष्यतीति।
२१. राजा—मदनिके, गम्यतां देव्यै निवेदयितुं अयमहमागत एव मकरन्दोद्यानमिति।
चेट्यौ—यद्भर्ताऽज्ञापयति।
२२. राजा—वयस्य, आदेशय मकरन्दोद्यानस्य मार्गम्।
विदूषकः—एतु एतु भर्ता।
(इति परिक्रामतः)
२३. विदूषकः—(अग्रतोऽवलोक्य) एतत्तन्मकरन्दोद्यानं, तदेहि प्रविशावः।
(इति प्रविशतः)
विदूषकः—(अवलोक्य सविस्मयम्) भो महाराज, प्रेक्षस्व तावदेतत् खलु मलयमारुतान्दोलितमुकुलायमानसहकारमंजरीरेणुपटलप्रतिबद्धपटवितानं मत्तमधुकरमुक्तझंकारमिलितकोकिलालापसंगीतसुखावहं तवागमनदर्शितादरमिव मकरन्दोद्यानं लक्ष्यते। तत्प्रविशतु भवान्।

१८. राजा---(हर्षके साथ विहंस कर आदरपूर्वक) 'आज्ञा देती हैं' यही (कहना) सुन्दर है। विशेष कर आज मदन-महोत्सवके समय। सो कहो देवी क्या आज्ञा देती हैं।

विदूषक---आह, दासीकी बेटी, क्या 'देवी आज्ञा देती हैं' कहती है!

१९. चेटियाँ---देवी इस प्रकार अर्ज करती हैं: "आज मुझे मकरन्द-उद्यानमें जा लाल अशोक वृक्षके नीचे स्थापित भगवान् कामदेवकी पूजा करनी है। वहां आर्यपुत्रको साथ रहना चाहिए।"

२०. राजा---(आनंदके साथ) मित्र, बतलाओ, (एक) उत्सवके बाद दूसरा उत्सव आ गया।

विदूषक---मित्र, सो उठो वहीं चलेंगे, जिसमें वहां जानेपर मुझ ब्राह्मण बालकका कुछ स्वस्तिवाचन भी हो जायेगा।

२१. राजा---मदनिका, जाओ, देवीसे निवेदन करना, कि यह मैं मकरंद-उद्यान आ पहुंचा।

चेटियाँ---जो स्वामी आज्ञा देते हैं।

२२. राजा---वयस्क, मकरंद-उद्यानका मार्ग बतलाओ।

विदूषक---आइये, आइये स्वामी।

(दोनों परिक्रमा करते हैं)

२३. विदूषक---(आगेकी ओर देखकर) यह मकरंद-उद्यान है, आओ प्रवेश करें।

(दोनों प्रवेश करते हैं)

विदूषक---(देखकर विस्मय के साथ) भो महाराज, देखो, मलय-वायुसे चालित मुकुलित, आमकी मंजरीके केसरसे बंधे रेशमी वितानवाला, मस्त मधुकरकी झंकारसे मिश्रित, कोयलके अलाप-संगीतका सुख देनेवाला, यह मकरंद-उद्यान आपके आगमन पर आदर दिखलाता सा दीख पड़ रहा है। सो आप प्रवेश करें।

२४. राजा—(समन्तादवलोक्य) अहो मकरन्दोद्यानस्य परा श्रीः। इह हि—

उद्यद्विद्रुमकान्तिभिः किसलयैस्ताम्रां त्विषं बिभ्रतो,
भृंगालीविरुतैः कलैरविशदव्याहारलीलाभृतः।
घूर्णन्तोमलयानिलाहतिचलैः शाखासमूहैर्मुहुर्,
भ्रान्तिं प्राप्य मधुप्रसंगमधुना मत्ता इवामी द्रुमाः ॥१७॥

२५. अपि च —

मूले गण्डूषसेकासव इव बहुलैर्बास्यते पुष्पवृष्ट्या,
मध्वाताम्रे तरुण्या मुखशशिनि चिराच्चम्पकान्यद्य भांति।
आकर्ण्याशोकपादाहतिषु च रसितं शिंजितं नूपुराणां,
झंकारस्यानुगीतैरनुकरणमिवारभ्यते भृंगसार्थैः ॥१८॥

२६. विदूषकः—(श्रुत्वा) भो वयस्य, नैते मधुकरा नुपुरशब्द-मनुहरन्तः, नूपुरशब्द एवैष देव्याः परिजनस्य।

२७. राजा—वयस्य, सम्यगुपलक्षितं भवता।

(ततः प्रविशति उज्ज्वलवेषा **वासवदत्ता कांचनमाला** च
पूजोपकरणहस्ता **सागरिका** च)

२८. वासवदत्ता—हंजे कांचनमाले, आदेशय मकरन्दोद्यानस्य मार्गम्।

कांचनमाला—एतु एतु भट्टिनी।

२९. वासवदत्ता—(परिक्रम्य) हंजे कांचनमाले, अथ कियद्दूरे स रक्ताशोकपादपो यत्र मया भगवतः कुसुमायुधस्य पूजा निर्वर्तयितव्या ?

कांचनमाला—भट्टिनि, आसन्न एव किं न प्रेक्षते भट्टिनी। इयं खलु सा निरन्तरोद्भिन्नकुसुमशोभिनी भट्टिन्या परिगृहीता माधवीलता। एषाऽपरा नवमालिका-लता, यस्या अकालकुसुमसमुद्गमश्रद्धालुना भर्त्रानुदिन-मायास्यत आत्मा। तदेनामतिक्रम्य दृश्यत एव स रक्ता-शोकपादपो यत्र देवी पूजां निर्वर्तयिष्यति।

२४. राजा—(चारों ओर देखकर) अहो, मकरंद-उद्यानकी परम शोभा। यहां तो—

उगती मूंगेकी कांतिवाले नवपल्लवों द्वारा लाल वर्ण धारण किये, भंवरों के मधुर शब्दों द्वारा स्पष्ट कथनकी लीला करते, मलय वायुके धक्केसे चलते शाखा-समूहों द्वारा लड़खड़ाते, मद्यपानसे चक्कर खाते यह वृक्ष क्षण भर मस्त से दीख रहे हैं ॥१७॥

२५. और भी—

वृक्षमूलमें कुल्लीके सिंचनकी मदिराकी तरह पुष्पवृष्टिसे वासित हो रहा है। मद्यसे थोड़े लाल तरुणियोंके मुख-चन्द्रमें चिरसे आज चंपा शोभा दे रही है। अशोकके ऊपर पैर मारते नूपुरोंकी आवाज सुनकर, झंकारके अनुगायनसे भ्रमर मानो अनुकरण कर रहे हैं ॥१८॥

२६. विदूषक—(सुनकर) हे मित्र, ये भंवरे नूपुरके शब्दकी नकल नहीं कर रहे हैं, यह तो देवीके परिजनोंके नूपुरोंका शब्द है।

२७. राजा—मित्र, आपने ठीक पहिचाना।

(तब उज्ज्वल वेषमें **वासवदत्ता, कांचनमाला** और पूजाकी सामग्री हाथमें लिये **सागरिका** प्रवेश करती हैं)

२८. वासवदत्ता—री कंचनमाला, मकरंद-उद्यानका मार्ग बतला।

कांचनमाला—आयें-आयें स्वामिनी।

२९. वासवदत्ता—(परिक्रमा करके) री कंचनमाला, तो कितनी दूर है वह लाल अशोकवृक्ष, जहां मुझे भगवान् कामदेवकी पूजा करनी है?

कांचनमाला—स्वामिनि, नजदीक ही है, क्या स्वामिनी (उसे) नहीं देख रही हैं। यह है वह फूले फूलोंसे अराबर शोभित स्वामिनी का अपनाई नवमालिका लता। यह दूसरी जूही लता है, जिसके अकाल में फूल फूली देखने के उत्सुक स्वामी रोज अपनेको कष्ट देते हैं। सो इसे पार करते ही दिखाई देगा वह लाल अशोक वृक्ष, जहां देवी पूजा करेंगी।

३०. वासवदत्ता—तदेहि तत्रैव लघु गच्छामः।
कांचनमाला—एतु एतु भट्टिनी।
(सर्वाः परिक्रामन्ति)

३१. वासवदत्ता—अयं स रक्ताशोकपादपो यत्राहं पूजां निर्वर्तयिष्ये। तत्पूजानिमित्तान्युपकरणानि मे उपनय।
सागरिका—(उपसृत्य) भट्टिनि, एतत्सर्वं सज्जम्।

३२. वासवदत्ता—(निरूप्यात्मगतं) अहो प्रमादः परिजनस्य। यस्यैव दर्शनपथात्प्रयत्नेन रक्ष्यते, तस्यैव दृष्टिगोचरे पतिता भवेत्। भवतु, एवं तावद् भणिष्यामि। (प्रकाशं) "हंजे सागरिके, कस्मात्त्वमद्य मदनमहोत्सवपराधीने परिजने सारिकामुज्झित्वेहागता। तत्तत्रैव लघु गच्छ। एतदपि सर्वं पूजोपकरणं कांचनमालाया हस्ते समर्पय।"

३३. सागरिका—यद् भट्टिन्याज्ञापयति। (इति कतिचित् पदानि गत्वा आत्मगतम्) सारिका मया पुनः सुसंगताया हस्ते समर्पिता। एतदप्यस्ति मे प्रेक्षितुं कौतूहलं, किं यथा तातस्यान्तःपुरे भगवाननंगोऽर्च्यते, अत्रापि तथैव किमन्यथेति। तदलक्षिता भूत्वा प्रेक्षिष्ये। (परिक्रम्यावलोक्य च) तद्यावदिह पूजासमयो भवति तावदहमपि भगवन्तमनंगमेव पूजितुं कुसुमान्यवचेष्यामि। (इति कुसुमावचयं नाट्यति)

३४. वासवदत्ता—कांचनमाले, प्रतिष्ठापयाशोकमूले भगवन्तं प्रद्युम्नम्।
कांचनमाला—यद् भट्टिन्याज्ञापयति। (इति तथा करोति)

३५. विदूषकः—(परिक्रम्यावलोक्य च) भो वयस्य, यथा विश्रान्तो नूपुरशब्दस्तथा तर्कयाम्यागता देव्यशोकमूलमिति।

३०. वासवदत्ता—तो आ, वहीं जल्दी चलें।
कांचनमाला—आवें-आवें स्वामिनी।
(सब परिक्रमा करती हैं)

३१. वासवदत्ता—यह वह लाल अशोक वृक्ष है, जहां मैं पूजा करूंगी। सो पूजाकी सामग्री ला मेरे पास।
सागरिका—(पास आकर) स्वामिनी, यह सब तैयार है।

३२. वासवदत्ता—(देखकर अपने आपसे) अहो, नौकरानियोंकी भूल, जिसके ही सामने आनेसे (इसे) प्रयत्नपूर्वक रोका जाता है, उसीके सामने आ पड़ी है। अच्छा, तो ऐसे कहती हूं: (प्रकट) "री सागरिका, क्यों तू आज परिजनोंके मदन-महोत्सवमें लगे होते समय मैनाको छोड़कर यहां आ गई? सो तू वहीं जल्दी जा। इस सारी पूजा-सामग्रीको भी कांचनमालाके हाथमें दे दे।"

३३. सागरिका—जो स्वामिनी आज्ञा देती हैं। (कुछ कदम जाकर अपने आपसे) मैनाको तो मैंने सुसंगताके हाथमें दे दिया है। इसे भी देखनेका मुझे कुतूहल है, क्या जैसे बापूके रनिवासमें भगवान् कामदेवकी पूजा होती है, वैसी ही यहां भी है, या दूसरी। सो छिपकर देखूंगी। (परिक्रमा करके देखकर) तो जब तक यहां पूजाका समय होता है, तब तक मैं भी भगवान् अनंगकी पूजा करनेके लिये फूल चुनती हूं। (फूल चुननेका अभिनय करती है)

३४. वासवदत्ता—कांचनमाला, अशोककी जड़में भगवान् कामदेवको स्थापित कर।
कांचनमाला—जो स्वामिनी आज्ञा देती हैं (वैसा ही करती है)।

३५. विदूषक—(परिक्रमा करके, देखकर) हे मित्र, चूंकि नूपुरका शब्द बन्द हो गया है, इससे सोचता हूं, देवी अशोककी जड़में आ गई।

३६. राजा—वयस्य, सम्यगवधारितम्। पश्येयं देवी । या किलैषा-
कुसुमसुकुमारमूर्तिर्दधती नियमेन तनुतरं मध्यम्।
आभाति मकरकेतोः पार्श्वस्था चापयष्टिरिव ॥१९॥
तदेहि उपसर्पावः। (उपसृत्य)। प्रिये वासवदत्ते,

३७. वासवदत्ता—(विलोक्य) कथमार्यपुत्रः? जयतु जयतु आर्यपुत्रः। अलंकरोत्विमं देशमासनपरिग्रहेण। एतदासनं, अत्रोपविशत्वार्यपुत्रः।

(राजा नाट्येनोपविशति)

कांचनमाला—भट्टिनि, स्वहस्तदत्तैः कुसुमकुंकुमचन्दन-वासोभिः शोभितं रक्ताशोकपादपं गत्वार्च्यतां भगवान्प्रद्युम्नः।

३८. वासवदत्ता—उपनय मे पूजोपकरणानि।

(कांचनमाला उपनयति, वासवदत्ता तथा करोति)

३९. राजा—प्रिये,
प्रत्यग्रमज्जनविशेषविविक्तकान्तिः,
कौसुम्भरागरुचिरस्फुरदंशुकान्ता।
विभ्राजसे मकरकेतनमर्चयन्ती,
बालप्रवालविटपिप्रभवा लतेव ॥२०॥

४०. अपि च—
स्पृष्टस्त्वयैव दयिते स्मरपूजाव्यापृतेन हस्तेन।
उद्भिन्नापरमृदुतरकिसलय इव लक्ष्यतेऽशोकः॥२१॥

४१. अपि च—
अनंगोऽयमनंगत्वमद्य निन्दिष्यति ध्रुवम्।
यदनेन न संप्राप्तः पाणिस्पर्शोत्सवस्तव ॥२२॥

४२. कांचनमाला—भट्टिनि, अर्चितो भगवान् प्रद्युम्नः। तत्कुरु भर्तुरुचितं पूजासत्कारम्।
वासवदत्ता—तेन ह्युपनय मे कुसुमानि विलेपनं च।

३६. राजा—मित्र, ठीक समझा। देखो, यह देवी है, जो कि यह—
कुसुम से सुकुमार आकृतिवाली नियमसे अति-क्षीण कटि धारण करती, जान पड़ती है, कामदेवके बगलके धनुषकी यष्टि है ॥१९॥
सो आओ, चलें। (पास जाकर) प्रिये वासवदत्ते,

३७. वासवदत्ता—(देखकर) क्या आर्यपुत्र हैं? जय हो, जय हो आर्य-पुत्रकी। आसन ग्रहणकर इस स्थानको शोभित करें। इस आसन पर, यह आसन है, यहां आर्यपुत्र बैठें।
(राजा अभिनयपूर्वक बैठता है)
कांचनमाला—स्वामिनी, पुष्प-केसर-चंदन-सुगंधिसे शोभित लाल अशोक वृक्षके पास जाकर भगवान् कामदेवकी पूजा अपने हाथसे करें।

३८. वासवदत्ता—ला, मेरी पूजा-सामग्री।
(कांचनमाला लाती है, वासवदत्ता पूजती है)

३९. राजा—प्रिये—
तुरन्त स्नानसे विशेष तौरसे स्पष्ट कान्तिवाली, केसरिया रंगके रुचिर फहराते वस्त्रसे कमनीया, कामदेवकी पूजा करती तू नवीन मूंगे के अमोलेसे जनमी लता सी शोभा दे रही है ॥२०॥

४०. और भी—
हे प्यारी, तेरे ही द्वारा कामदेवकी पूजा में लगे हाथसे छुआ गया, अशोक अति मृदु उगे दूसरे नवपल्लवोंवाला सा दीख रहा है ॥२१॥

४१. और भी—
यह अनंग आज निश्चय ही अपने अनंगपन (देहके न होनेकी) निंदा करेगा, जो कि यह तेरे हाथके स्पर्शको नहीं पा सका ॥२२॥

४२. कांचनमाला—स्वामिनी, भगवान् कामदेवकी पूजा (तो) कर ली, अब स्वामीका उचित पूजा-सत्कार करें।
वासवदत्ता—तो ला, मेरे फूल और अंग-लेपन।

४३. कांचनमाला——भट्टिनि, एतत् सर्वं सज्जम्।
(वासवदत्ता नाट्येन राजानं पूजयति)

४४. सागरिका——(गृहीतकुसुमा) हा धिक् हा धिक्। कथं कुसुमलोभोत्क्षिप्तहृदययातिचिरमेव मया कृतम्। तदनेन सिन्धुवारविटपेनापवारितशरीरा भूत्वा प्रेक्षे। (विलोक्य) कथं प्रत्यक्ष एवापूर्वः कुसुमायुधः? अस्माकं तातस्यान्तःपुरे चित्रगतोऽर्च्यते। इह प्रत्यक्षीकृतः। तदहमप्येभिः कुसुमैरिह स्थितैव भगवन्तं कुसुमायुधं पूजयिष्ये। (इति कुसुमानि प्रक्षिपति) नमस्ते भगवन् कुसुमायुध, शुभदर्शनो मे भविष्यसि। दृष्टं यद् द्रष्टव्यम्। अमोघदर्शनो मे भविष्यसि। (इति प्रणमति) आश्चर्यमाश्चर्यम्। दृष्टोऽपि पुनः प्रेक्षितव्यः। तद्यावन्न कोऽपि मां प्रेक्षते तावदेव गमिष्यामि। (इति कतिचित् पदानि गच्छति)।

४५. कांचनमाला——आर्य वसन्तक, एहि सांप्रतं त्वमपि स्वस्तिवाचनं प्रतीच्छ।

(विदूषकः उपसर्पति)

४६. वासवदत्ता——(विलेपनकुसुमाभरणदानपूर्वकम्) आर्य, स्वस्तिवाचनं प्रतीच्छ। (इत्यर्पयति)

४७. विदूषकः——(सहर्षं गृहीत्वा) स्वस्ति भवत्यै।

(नैपथ्ये वैतालिकः पठति)

अस्तापास्तसमस्तभासि नभसः पारं प्रयाते रवा–
वास्थानीं समये समं नृपजनः सायंतने संपतन्।
संप्रत्येष सरोरुहद्युतिमुषः पादांस्तवासेवितुं
प्रीत्युत्कर्षकृतो दृशामुदयनस्येन्दोरिवोद्वीक्षते ॥२३॥

४३. कांचनमाला—स्वामिनी, यह सब तैयार है।

(वासवदत्ता अभिनय-पूर्वक राजाकी पूजा करती है)

४४. सागरिका—(फूल लिये) हा धिक्, फूलके लोभमें तन्मय-हृदय मैंने बड़ी देर कर दी। सो इस सिंदुवार वृक्षकी आड़में शरीर को किये देखती हूं। (देखकर) क्या ? यह (तो) प्रत्यक्ष ही अपूर्व कामदेव हैं। हमारे बापूके रनिवासमें चित्रमें लिखे कामदेव पूजे जाते हैं, और यहां तो प्रत्यक्ष। सो मैं भी इन फूलोंसे यहीं खड़ी भगवान् कुसुमायुधकी पूजा करती हूं। (फूलोंको छोड़ती है) नमस्ते भगवन् कुसुमायुध, तुम्हारा दर्शन मेरे लिये शुभ हो। दर्शनीय वस्तु मैंने देख ली। मेरे लिये तुम अमोघ-दर्शन होओ। (प्रणाम करती है) अचरज, अचरज, देख लेनेपर भी फिर देखना चाहिये। सो जब तक मुझे कोई नहीं देखे, तब तक ही यहां से मुझे चल देना है। (कुछ कदम जाती है)

४५. कांचनमाला—आर्य वसंतक, आओ अब तुम भी स्वस्तिवाचन ग्रहण करो।

(विदूषक पास जाता है)

४६. वासवदत्ता—(विलेपन, पुष्प, आभूषण देकर) आर्य, स्वस्तिवाचन* स्वीकार करो। (दक्षिणा अर्पित करती है)

४७. विदूषक—(हर्षके साथ ग्रहण करके) स्वस्ति हो आपकी।

(नेपथ्यमें वैतालिक पढ़ रहा है)

अस्त-अपास्त हुये प्रकाशों सारे आकाशको रविके पार करते समय, अब कमलकी शोभा चुरानेवाले हे नेत्रोंके उदयन, तुम्हारे चरणोंकी सेवा करनेके लिये सायंकालमें यह राजा लोग दरबारमें इकट्ठा हो प्रतीक्षा कर रहे हैं ॥२३॥

---

* दक्षिणा

४८. सागरिका---(श्रुत्वा सहर्षं परिवृत्य राजानं दृष्ट्वा सस्पृहम्) कथमयं स राजा उदयनो यस्याहं तातेन दत्ता? तत्परप्रेषणक्लेशमपि मे शरीरमेतस्य दर्शनेदानीं बहुमतं संवृत्तम्।

४९. राजा---कथमुत्सवापहृतचेतोभिरस्माभिः सन्ध्याऽतिक्रमोऽपि नोपलक्षितः। देवि, पश्य---
उदयतटान्तरितमियं प्राची सूचयति दिङ् नशानाथम्।
परिपाण्डुना मुखेन प्रियमिव हृदयस्थितं रमणी॥२४॥
देवि, तदुत्तिष्ठावः। आवासाभ्यन्तरमेव प्रविशावः।
(सर्वे उत्थाय परिक्रामंति)

५०. सागरिका---कथं प्रस्थिता देवी। भवतु, त्वरितं गमिष्यामि। (राजानं सस्पृहं दृष्ट्वा निःश्वस्य) हा धिक्। मन्दभागिन्या मया प्रेक्षितुमपि चिरं न पारितोऽयं जनः।
(इति निष्क्रान्ता)

५१. राजा---(परिक्रामन्)---
देवि त्वन्मुखपंकजेन शशिनः शोभातिरस्कारिणा,
पश्याब्जानि विनिर्जितानि सहसा गच्छन्ति विच्छाय्यताम्।
श्रुत्वा ते परिवारवारवनितागीतानि भृगांगनाः,
लीयन्ते मुकुलान्तरेषु शनकैः संजातलज्जा इव॥२५॥
(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

३१. मयूर (६२० ई०)

इन्हें बाण का बहनोई कहा जाता है, और संभवतः बाण की जन्मभूमि (आरा जिला) के आसपास ही कहीं इनका भी निवासस्थान था। गोरखपुर के कुछ ब्राह्मण लोग अपने को मयूर का वंशज बतलाते हैं। बाण शायद उसी वंश के थे, जिसे आजकल सर्वेरिया (या पूर्वी कनौजिया) कहा जाता

४८. सागरिका—(सुनकर हर्षके साथ घूमकर राजाको देख लालसाके साथ) क्या यही वह राजा उदयन हैं, जिनके लिये मुझे बापूने दिया था? तो दूसरे की सेवा में दुबला भी मेरा शरीर इनके दर्शन से अब सम्मानित हो गया।

४९. राजा—क्यों, उत्सवमें तल्लीन हम लोगोंने संध्याके बीतने को भी नहीं जाना। देवि, देख—
उदयाचलके तटमें छिपी यह पूर्व दिशा अपने अतिपांडु मुख द्वारा निशानाथ को (वैसे ही) सूचित कर रही है; जैसे रमणी अपने हृदयस्थित प्रियको।।२४।।
देवि, तो हम दोनों उठें। आवासके भीतर प्रवेश करें।
(सब उठकर परिक्रमा करते हैं)

५०. सागरिका—क्यों, देवी चली गईं? अच्छा, मैं भी जल्दी चलूं। (राजाको लालसाके साथ देखकर उसास ले) हा धिक्, मैं मंदभागिनी इन्हें देर तक देख भी नहीं पाई।
(बाहर चली गई)

५१. राजा—(परिक्रमा करते)—
देवि, चन्द्रमाकी शोभाको तिरस्कार करनेवाले तेरे मुखकमलसे हराये हुए कमल, देख सहसा मलिन हो रहे हैं। तेरे परिवारकी वारांगनाओंके गीतोंको सुनकर लज्जित सी हो भंवरियां धीरे से कलियोंमें विलीन हो रही हैं।।२५।।
(सब बाहर निकल गये)

३१. मयूर (६२० ई०)

है। मयूर ने अपनी काव्य-प्रतिभा का उपयोग नहीं किया। उनका स्रग्धरा छंद में "सूर्यशतक" नामक एक स्तोत्र मिलता है। यद्यपि इसमें काव्य के चमत्कार को हम पूरा नहीं देख पाते, पर प्रतिभा उनमें थी, इसमें सन्देह नहीं है।

सूर्यशतकम्

१. दत्तानन्दाः प्रजानां समुचितसमयाकृष्टसृष्टैः पयोभिः
पूर्वाह्णे विप्रकीर्णा दिशि दिशि विरमत्यह्नि संहारभाजः।।
दीप्तांशो दीर्घदुःखप्रभवभवभयोदन्वदुत्तारनावो
गावो वः पावनानां परमपरिमितां प्रीतिमुत्पादयन्तु ।।९।।

२. निःशेषाशावपूरप्रवणगुरुगुणश्लाघनीयस्वरूपा
पर्याप्तं नोदयादौ दिनगमसमयोपप्लवेऽप्युन्नतैव ।।
अत्यन्तं यानभिज्ञा क्षणमपि तमसा साकमेकत्र वस्तुं
ब्रध्नस्येद्धारुचिर्वो रुचिरिवरुचितस्याप्तयेवस्तुनोऽस्तु।।२४।।

३. आयान्ती किं सुमेरोः सरणिररुणिता पाद्मरागैः परागैर्
आहोस्वित्स्वस्य माहारजनविरचिता वैजयन्ती रथस्य ।।
मांजिष्ठी प्रष्ठवाहावलिविधुतशिरश्चामराली नु लोकै-
राशंक्यालोकितैवं सवितुरघनुदेसस्तात्प्रभातप्रभा वः।।२७।।

४. वेलावर्धिष्णु सिन्धोः पय इव खमिवार्धोद्गताग्र्यग्रहोडु
स्तोकोद्भिन्नस्वचिह्नप्रसवमिव मधोरास्यमस्यन्मनांसि ।।
प्रातः पूष्णो शुभानि प्रशमयतु शिरःशेखरीभूतमद्रेः
पौरस्त्यस्योद्गभस्तिस्तिमिततमतमः खण्डनं मण्डलं वः
।।७४।।

५. यत्प्राच्यां प्राक्चकास्ति प्रभवति च यतः प्राच्यसावुज्जिहानाद्
इद्धं मध्ये यदह्नो भवति ततरुचा येन चोत्पाद्यतेऽह्नः ।।
यत्पर्यायेण लोकानवति च जगतां जीवितं यच्च तद्वो
विश्वानुग्राहि विश्वं सृजदपि च रवेर्मण्डलं मुक्तयेऽस्तु ।।७७।।

सूर्यशतक

१. उचित समयमें आकृष्ट और सृष्ट पयों द्वारा लोगोंके आनंददायक पूर्वाह्न मे दिशा-दिशामें बिखरी, दिनके बीतनेपर एकत्र हुई, चिर दुःखसे उत्पन्न संसार-भयरूपी सागरके उतारनेकी नौकायें सी सूर्यकी गौवें (किरणें) तुम्हारे लिए परम पवित्र अति उत्कृष्ट प्रीति उत्पन्न करें ।।६।।

२. सकल दिशाओंके पूरा करनेमे निपुण, महागुणोंसे प्रशंसनीय रूपवाला, उदयके आरंभमें ही पर्याप्त नहीं, दिन बीतते समयकी बाधामें भी जो उन्नत ही रहता है; जो क्षण भर भी अन्धकारके साथ एक जगह बसनेसे अत्यंत अनभिज्ञ है। वह चमकता सूर्यका तेज अभिलाषा की तरह तुम्हें प्रिय वस्तु प्राप्त कराये ।।२४।।

३. क्या सुमेरुका मार्ग लालों जैसे परागोंसे लाल होता आ रहा है, या अपने रथके कुसुम से रंगी ध्वजा, घोड़ोंकी पंक्तिकी कंपित सिरोंकी लाल चंवरपंक्तियां हैं। (अथवा) ऐसे लोगोंने आशंका करते जिसे देखा, सो सूर्यकी प्रभालकी प्रभा तुम्हारे पाप हरे ।।२७।।

४. सिन्धुके जलकी तरह किनारे तक बढ़नेवाला, आकाशकी तरह आधे उठे प्रधान नक्षत्रवाला, वसंतके आरंभकी तरह थोड़े खिले अपने चिह्नरूपी फूलोंयुक्त चित्तोंको हरता, पर्वतके सिरसे प्रातः सूर्यको पूर्वमें उठती किरणों द्वारा अंधकारको खंडन करनेवाला, सूर्य-मंडल तुम्हारे पापका शमन करे ।।७४।।

५. जो पहले पूर्वमें प्रकाशता है और जिसके उगनेसे वह (दिशा) पूर्व बनती है, जो दिनके मध्यमें दीप्त होता है, जिस विस्तृत किरणों-वाले से दिन उत्पन्न होता है, जो पापसे लोगोंकी रक्षा करता है, और जो संसारका जीवन है। निरंतर अनुग्रह करनेवाला विश्व-आत्मा वह रविमंडल तुम्हारी मुक्तिके लिये हो ।।३३।।

६. तीर्थानि व्यर्थकानि ह्रदनदसरसीनिर्झराम्भोजिनीनां
नोदन्वन्तो नुदन्ति प्रतिभयमशुभश्वभ्रपातानुबन्धि ।।
आपो नाकापगाया अपि कलुषमुषो मज्जतां नैव यत्र
त्रातुं यातेऽन्यलोकान् स दिशतु दिवसस्यैकहेतुर्हितं वः ।९५।

७. श्लोका लोकस्य भूत्यै शतमिति रचिताः श्रीमयूरेण भक्त्या
युक्तश्चैतान्पठेद्यः सकृदपि पुरुषः सर्वपापैर्विमुक्तः ।।
आरोग्यं सत्कवित्वं मतिमतुलबलं कान्तिमायुः प्रकर्षं
विद्यामैश्वर्यमर्थं सुतमपि लभते सोऽत्र सूर्यप्रसादात् ।१०१।

३२. अमरुक (६७० ई०)

कवि के बारे में भी हमें अधिक मालूम नहीं है। मुक्तक के कवियों में अमरुक का स्थान बहुत ऊंचा है। यह शब्द के नहीं रस के कवि हैं। यद्यपि उन्होंने सौ पद्यों को ही रचा—जिनकी संख्या दूसरों की उदारता से अब

शतकम्

१. लिखन्नास्ते भूमिं बहिरवनतः प्राणदयितो,
निराहाराः सख्यः सततरुदितोच्छूननयनाः ।
परित्यक्तं सर्वं हसितपठितं पंजरशुकैस्,
तवावस्था चेयं, विसृज कठिने ! मानमधुना ।।७।।

२. दंपत्योर्निशि जल्पतोर्गृहशुकेनाकर्णितं यद्वचस्,
तत्प्रातर्गुरुसंनिधौ निगदतः श्रुत्वैव तारं वधूः ।
कर्णालम्बितपद्मरागशकलं विन्यस्य चंच्वोः पुरो
व्रीडार्ता प्रकरोति दाडिमफलव्याजेन वाग्बन्धनम् ।।१६।।

६. दह, नदी, सरोवर, निर्झर, कमलिनियोंके तीर्थ व्यर्थ हैं। पापरूपी गड्ढेके गिरनेके (जिस) भयको समुद्र नहीं दूर करता, स्वर्ग-नदी (गंगा) के पाप-नाशक जल भी स्नान करनेवालोंको दूसरे लोकोंमें जानेपर जहां रक्षा नहीं कर सकते, वह दिनका एकमात्र हेतु सूर्य तुम्हारा हित करे ।।९५।।

७. श्रीमयूरने संसारके कल्याणके लिये सौ श्लोक रचे। भक्ति-सहित इन्हें एक बार भी जो पुरुष पढ़े, वह सब पापोंसे मुक्त होवे। आरोग्य, सत्कवित्व, अतुल बल, सौंदर्य, दीर्घ-आयु, विद्या, ऐश्वर्य और धनको भी वह यहाँ सूर्यकी कृपासे पावे ।।१०१।।

३२. अमरुक (६७० ई०)

ड्योढ़ी हो गई है—तो भी इतने ही से अमरुक अमर हैं। बहुत संभव है, संस्कृत काव्यक्षेत्र में अपना जौहर दिखलाने वाले वह प्रथम कश्मीरी कवियोंमेंसे हों।

शतक

१. प्राणप्रिय बाहर सिर झुकाये भूमि पर लकीर खींच रहा है। निरन्तर रोनेसे सखियां फूली आंखोंवाली तथा निराहार हैं। पिंजड़ेके तोतोंने सारे हंसने-पढ़नेको छोड़ दिया। और तेरी यह अवस्था है, हे कठोर हृदये, अब (भी तो) मानको छोड़ ।।७।।

२. रातको बात करते पति-पत्नियोंके वचनको जो तोतेने सुना, उसे सवेरे गुरुजनोंके पास जोरसे कहते सुनकर, लज्जा-पीड़िता बहू, (अपने) कानसे लटकने लालके टुकड़ेको चोंचके सामने रख, अनारके फूलके बहाने (तोतेका) मुंह बन्द करती है ।।१६।।

३. सा बाला वयमप्रगल्भमनसः सा स्त्री वयं कातराः,
सा पीनोन्नतिमत्पयोधरयुगं धत्ते सखेदा वयम्।
साक्रान्ता जघनस्थलेन गुरुणा गन्तुं न शक्ता वयं,
दोषैरन्यजनाश्रयैरपटवो जाताः स्म इत्यद्भुतम् ॥३४॥

४. "सुतनु, जहिहि मौनं पश्य पादानतं मां,
न खलु तव कदाचित्कोप एवंविधोऽभूत्।"
इति निगदति नाथे तिर्यगामीलिताक्ष्या,
नयनजलमनल्पं मुक्तमुक्तं न किंचित् ॥३९॥

५. बाले! नाथ! विमुंच मानिनि रुषं, रोषान्मया किं कृतं?
खेदोऽस्मासु नमेऽपराध्यति भवान्? सर्वेऽपराधा मयि।
तत्किं रोदिषि गद्गदेन वचसा? कस्याग्रतो रुद्यते?
नन्वेतन्मम, का नवास्मि दयिता? नास्मीत्यतो रुद्यते।५७।

६. तदाभूदस्माकं प्रथममविभक्ता तनुरियं,
ततो न त्वं प्रेयान्, अहमपि हताशा प्रियतमा।
इदानीं नाथस्त्वं, वयमपि कलत्रं किमपरं,
मयाप्तं प्राणानां कुलिशकठिनानां फलमिदम् ॥६९॥

७. प्रासादे सा दिशि दिशि च सा पृष्ठतः सा पुरः सा,
पर्यंके सा पथि पथि च सा तद्वियोगातुरस्य।
हंहो चेतः प्रकृतिरपरा नास्ति मे कापि सा सा
सा सा सा सा जगति सकले कोऽयमद्वैतवादः ॥१०२॥

८. गन्तव्यं यदि नाम निश्चितमहो गन्तासि केयं त्वरा,
द्वित्राण्येव पदानि तिष्ठतु भवान्पश्यामि यावन्मुखम्।
संसारे घटिकाप्रणालविगलद्वारा समे जीविते,
को जानाति पुनस्त्वया सह मम स्याद्वा न वा संगमः।१६३।

३. वह बाला है, (पर) अप्रौढ़ मन हम हैं। वह स्त्री है, (पर) कातर हम हैं। वह स्थूल उन्नत स्तन-युगल-धारिणी है, खेदयुक्त हम हैं। वह भारी नितम्बसे आक्रान्त है, पर जानेमें असमर्थ हम हैं। अन्य जनमें स्थित दोषोंसे बुरे हम हो गये, यह विचित्र (बात) है ॥३४॥

४. "हे सुशरीरे, मौन छोड़ पैरों में पड़े मेरी ओर देख। इस तरहका कोप तुझे कभी नहीं हुआ।" ऐसा स्वामीके कहते समय उस तिरछी अधमूंदी आंखोंवालीने बहुतसा अश्रुजल छोड़ दिया (और कुछ) नहीं कहा ॥३६॥

५. बाले ? नाथ। मानिनि, रोष छोड़। रोष करके मैंने क्या किया ? हमें खेद है, आपने मेरा कोई अपराध नहीं किया, सारे अपराध मुझमें हैं। तो क्यों गद्गद् वाणीसे रो रही हो ? किसके सामने रोया जाता है ? यह मेरे ही सामने तो। क्या मैं नई प्रिया हूं ? प्रिया नहीं हूं, इसीलिये तो रो रही हूं ॥५७॥

६. तब, पहले हमारा यह शरीर विभक्त नहीं था। इसके बाद न तुम प्रियतम रहे, और मैं (हुई) अभागी प्रियतमा। अब तुम नाथ हो और हम भी पत्नी। यह क्या, जैसे कठोर प्राणोंका मैंने दूसरा फल, पाया ॥६९॥

७. उसके वियोगसे आतुर मेरे लिये वह महलमें है। दिशा-दिशामें वह, पीछे वह, सामने वह, पलंगपर वह, और मार्गमें वह है। अहो अचरज, मेरी प्रकृति दूसरी कोई नहीं, वही, वही, वही, वही है, सारे जगत्में यह कौन सा अद्वैतवाद है ॥१०२॥

८. यदि जाना निश्चित ही है, तो अहो जाओगे यह कौन सी जल्दी है ? दो-तीन कदम ही आप ठहरें, जब तक मैं मुख देखूं। रहटकी घैलियोंसे गिरते जलके समान संसारमें जीवनके होनेसे, कौन जानता है, तुम्हारे साथ मेरा मिलन (फिर) होगा या नहीं ॥१६३॥

३३. भर्तृहरि (६७० ई०)

भर्तृहरिके बारेमें अधिक पता नहीं लगता। इनका काल सातवीं शताब्दीका अन्त मालूम होता है। वैयाकरण भर्तृहरि और कवि भर्तृहरि एक ही थे, यह कहना मुश्किल है। वैयाकरण भर्तृहरि तो संभवतः वही थे, जिनका उल्लेख चीनी पर्यटक ई. चिङ ने किया है। भर्तृहरि के शतक बहुत लोकप्रिय हैं। इसका एक उत्तम संस्करण डा० कौशाम्बी ने किया है।

शतकत्रयम्

१. अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि नरं न रंजयति॥८॥

२. मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णास्,
त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः।
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं,
निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः॥१९॥

३. क्वचिद् भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्यंकशयनं,
क्वचिच्छाकाहारः क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः।
क्वचित् कन्थाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरो,
मनस्वी कार्यार्थी गणयति न दुःखं न च सुखम्॥२१॥

४. जातिर्यातु रसातलं गुणगणस्तस्याप्यधो गच्छतां
शीलं शैलतटात् पतत्वभिजनः संदह्यतां वह्निना।
शौर्ये वैरिणि वज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु नः केवलं,
येनैकेन विना गुणास् तृणलवप्रायाः समस्ता इमे॥२५॥

५. कुसुमस्तबकस्येव द्वयी वृत्तिर्मनस्विनः।
मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य शीर्यते वन एव वा॥३४॥

३३. भर्तृहरि (६७० ई०)

इससे पता लगता है, कि भर्तृहरि की कृति में लोगों ने बड़ी उदारतापूर्वक क्षेपक किये हैं। यदि व्याकरण के प्रौढ़ ग्रंथ "वाक्यपदीय" के रचयिता भी यही नहीं हैं, तो इनकी यही एक कृति है, जो नीति, शृंगार और वैराग्य के तीन भागों में विभक्त है।

शतकत्रय

१. अज्ञका आसानीसे सेवन किया जा सकता है, विशेषज्ञ का और अधिक आसानीसे, (पर) थोड़े से ज्ञानसे पंडित आदमीका रंजन ब्रह्मा भी नहीं कर सकता ।।८।।

२. मन-वचन-शरीरसे पुण्यरूपी अमृतसे भरे, उपकारों द्वारा त्रिभुवनको संतुष्ट करते, दूसरेके गुणोंके कणोंको भी सदा पहाड़ बनाते, अपने हृदयके भीतर उल्लसित सन्तजन कितने हैं ।।१९।।

३. कहीं भूमिपर बिस्तरा और कहीं पलंगपर भी सोना। कहीं सागका आहार और कहीं बासमतीके भातका स्वाद भी। कहीं कथरीधारी और कहीं दिव्य-वस्त्रधारी भी। कार्य (पूरा करने) की चाहवाला मनस्वी पुरुष न दुखकी पर्वाह करता न सुखकी ।।२१।।

४. जाति रसातलको चली जाये, गुण उसके भी नीचे चले जायें। शील पर्वतके तटसे गिर पड़े, कुलीनताको आग लग जाये। वैरी शूरता पर तुरंत वज्र गिरे, हमारा तो बस वही मतलब पूरा हो, जिस एकके बिना यह सारे गुण तिनके के बराबर हैं ।।२५।।

५. फूल के गुच्छेकी तरह मनस्वियोंकी दो ही गति होती है—या तो सारे लोकके शिरपर रहें या वनमें ही बिखर जायें ।।३४।।

६. खल्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणैः संतापितो मस्तके,
वांछन् देशमनातपं विधिवशाद् विल्वस्य मूलं गतः।
तत्राप्यस्य महाफलेन पतता भग्नं सशब्दं शिरः,
प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस् तत्रैव यान्त्यापदः ॥३९॥

७. जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजन्मभीः ॥५५॥

—नीतिश्लोकाः

८. एतास् चलद्वलयसंहतिमेखलोत्थ-
झंकारनूपुररवाहृतराजहंस्यः।
कुर्वन्ति कस्य न मनो विवशं तरुण्यो,
वित्रस्तमुग्धहरिणीसदृशाक्षिपातैः ॥८०॥

९. उपरि घनं घनपटलं तिर्यग् गिरयोऽपि नर्तितमयूराः।
क्षितिरपि कन्दलधवला दृष्टिं पथिकः क्व पातयतु ॥८७॥

१०. वक्त्रं चन्द्रविडम्बि पंकजपरीहासक्षमे लोचने,
वर्णः स्वर्णमपाकरिष्णुरलिनीजिष्णुः कचानां चयः।
वक्षोजाविभकुम्भविभ्रमहरौ गुर्वी नितम्बस्थली,
वाचां हारि च मार्दवं युवतिषु स्वाभाविकं मण्डनम् ॥९०॥

११. स्मितं किंचिद्वक्त्रं सरलतरलो दृष्टिविभवः,
परिस्पन्दो वाचामभिनवविलासोक्तिसरसः।
गतीनामारम्भः किशलयितलीलापरिकरः,
स्पृशन्त्यास् तारुण्यं किमिव न हि रम्यं मृगदृशः ॥९३॥

१२. मालती शिरसि जृम्भणोन्मुखी चन्दनं वपुषि कुंकुमाविलम्।
वक्षसि प्रियतमा मदालसा स्वर्ग एष परिशिष्ट आगतः
॥११६॥

६. दिनके राजा (सूर्य) की किरणोंसे शिरपर संतप्त कोई गंजा, धूप-रहित स्थानकी इच्छासे भाग्यवश बेलके नीचे चला गया। वहां भी (एक) बड़े से फलने आवाज के साथ गिरकर उसका सिर तोड़ दिया। प्रायः भाग्यहीन जहां जाता है, (उसके साथ) वहां विपत्तियां (भी) जाती हैं ॥३९॥

७. वे सुंदर कृतियोंवाले रसोंमें सिद्ध कवीश्वर विजयी हैं, जिनके यश-रूपी शरीरमें जरा-मरणसे उत्पन्न भय नहीं ॥५५॥

—नीति-सम्बन्धी श्लोक

८. हिलते वलयों, मेखलाओंसे उत्पन्न झंकारों और नूपुरके शब्दोंसे राजहंसियोंको आकृष्ट करनेवाली यह तरुणियां; भयभीत मुग्ध हरिनियोंके से दृष्टिपातोंसे किसके मनको वशमें नहीं कर लेतीं ॥८०॥

९. ऊपर घने तहवाले बादल (हैं), पासमें मोर नाचते पर्वत भी हैं, पृथिवी भी कंदलोंसे उजली है, बेचारा, (वियोगी) पथिक कहां अपनी आंखें पसारे ॥८७॥

१०. मुख चन्द्रमाको तिरस्कार करनेवाला, दोनों लोचन पंकजका परिहास करनेवाले, रंग सोनेका प्रत्याख्यान करनेवाला, केश भंवरोंको जीतनेवाले, दोनों स्तन गजके कुंभके सौंदर्यको हरनेवाले, नितंब स्थूल और भारी, वाणियोंकी मृदुलता-मनोहरिता, ये हैं, युवतियोंके स्वाभाविक आभूषण ॥९०॥

११. थोड़ी सी मुस्कराहट सहित मुख, सरल और चंचल नेत्रों का सौंदर्य, वचनोंका नवीन ललित उक्तियों सरस व्यवहार, नवपल्लव सी लीलावाली चलने की क्रिया—तरुणाईमें प्रवेश करती मृगनयनियोंका क्या नहीं रमणीय होता ॥९३॥

१२. चमेली की कली सिर पर, केसरयुक्त चंदन शरीर पर, वक्ष पर मदसे अलस प्रियतमा हो, (बस) सारा स्वर्ग (यहीं) आ गया ॥११६॥

१३. नूनं हि ते कविवरा विपरीतबोधा,
ये नित्यमाहुरबला इति कामिनीनाम्।
याभिर्विलोलतरतारकदृष्टिपातैः,
शक्रादयोऽपि विजिता अबलाः कथं ताः ॥११८॥

१४. स्वपरप्रतारकोऽसौ निन्दति योऽलीकपण्डितो युवतीः।
यस्मात् तपसोऽपि फलं स्वर्गः स्वर्गेऽपि चाप्सरसः ।१२०

१५. सति प्रदीपे सत्यग्नौ सत्सु तारामणीन्दुषु।
विना मे मृगशावाक्ष्या तमोभूतमिदं जगत् ॥१३०॥

१६. मुखेन चन्द्रकान्तेन महानीलैः शिरोरुहैः।
पाणिभ्यां पद्मरागाभ्यां रेजे रत्नमयीव सा ॥१३१॥

१७. गुरुणा स्तनभारेण मुखचन्द्रेण भास्वता।
शनैश्चराभ्यां पादाभ्यां रेजे ग्रहमयीव सा ॥१३२॥

—शृंगारश्लोकाः

१८. भ्रान्त्वा देशमनेकदुर्गविषमं प्राप्तं न किंचित् फलं,
त्यक्त्वा जातिकुलाभिमानमुचितं सेवा कृता निष्फला।
भुक्तं मानविवर्जितं परगृहे साशंकया काकवत्,
तृष्णे, जृम्भणि, पापकर्मनिरते नाद्यापि संतुष्यसि ॥१४८॥

१९. त्वं राजा वयमप्युपासितगुरुप्रज्ञाभिमानोन्नताः,
यातस् त्वं विभवैर्यशांसि कवयो दिक्षु प्रतन्वन्ति नः।
इत्थं मानद, नातिदूरमुभयोरप्यावयोरन्तरं,
यद्यस्मासु पराङ्मुखोऽसि वयमप्येकान्ततो निःस्पृहाः ।१६३

१३. निश्चय ही वह कविवर उल्टी समझवाले हैं,
जो नित्य कामिनियोंको अबला करते हैं। (अपने) अति चंचल पुतलियों वाले दृष्टिपातोंसे जिन्होंने इन्द्रादिको भी जीत लिया, वह कैसे अबला हैं? ॥११८॥

१४. जो झूटा पंडित युवतियों की निन्दा करता है, वह अपने और दूसरे का वंचक है; क्योंकि तपस्या का भी फल स्वर्ग है, और स्वर्ग में भी अप्सरायें हैं ॥१२०॥

१५. दीपके रहते, आगके रहते, तारारूपी मणियों और चंद्रमाके भी होते मृगपोतकी सी आंखोंवाली उस (प्रिया) के बिना मेरे लिये जगत् अन्धकारमय है ॥१३०॥

१६. चन्द्रमाके कमनीय मुख, घने नीले केशों, लाल जैसे दोनों हाथों से वह रत्नमयी सी शोभा देती थी ॥१३१॥

१७. भारी स्तनके भारों से चमकते मुखरूपी चन्द्रमा से, शनैः चलनेवाले (शनैश्चर) दोनों पैरों से, वह ग्रहमयीसी शोभ रही थी ॥१३२॥
—शृंगारके श्लोक

१८. अनेक दुर्गम और विषम देशों में भटकते (मैंने) कुछ भी फल नहीं पाया। जाति और कुलके उचित अभिमान को छोड़कर की गई सेवा निष्फल हुई। कौवे की तरह भयभीत हो बिना सम्मान के दूसरे के घर में खाया। हे वंचक, पापकर्म में निरत तृष्णा, आज भी तू नहीं संतुष्ट होती ॥१४८॥

१९. तू राजा है, तो हम भी गुरु की उपासना करके विद्याके अभिमानसे उन्नत हैं। तू अपने विभव से प्रसिद्ध है, तो कवि लोग हमारे यशोंको दिशाओं में फैला रहे हैं। हे मानदाता, इस प्रकार हम दोनों का अन्तर बहुत नहीं है, यदि हम से तुम पराङ्मुख हो, तो हम भी तुमसे बिलकुल निःस्पृह हैं ॥१६३॥

२०. न नटा न विटा न गायना न परद्रोहनिबद्धबुद्धयः।
नृपसद्मनि नाम के वयं स्तनभारानमिता न योषितः।।१६५।।

२१. भ्रातः, कष्टमहो महान् स नृपतिः सामन्तचक्रं च तत्,
पार्श्वे तस्य च सापि राजपरिषत् ताश्चन्द्रबिम्बाननाः।
उद्रिक्तः स च राजपुत्रनिवहस् ते बन्दिनस् ताः कथाः
सर्वं यस्य वशादगात् स्मृतिपदं कालाय तस्मै नमः।।१६९।।

२२. वयमिह परितुष्टा वल्कलैस् त्वं च लक्ष्म्या,
सम इह परितोषो निर्विशेषो विशेषः।
सतु भवतु दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला,
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः।।१७७।।

२३. नाभ्यस्ता भुवि वादिवृन्ददमनी विद्या विनीतार्चिता,
खड्गाग्रैः करिकुम्भपीठदलनैर्नाकं न नीतं यशः।
कान्ताकोमलपल्लवाधररसः पीतो न चन्द्रोदये,
तारुण्यं गतमेव निष्फलमहो शून्यालये दीपवत्।।१९५।।
—वैराग्यश्लोकाः

३४. शीलाभट्टारिका (६७० ई०)

भट्टारिका आम तौर से रानियां या परिव्राजिकाओं को कहते थे। संभवतः शीला राजा की पत्नी थीं। इनका समय वही मालूम होता है, जो भर्तृहरि और माघ का। शीला कहां की रहने वाली थीं, इसका हमें पता नहीं।

१. नायकानुनयः—

१. विरह-विषमो वामः कामः करोति तनुं तनुं,
दिवस-गणनादक्षश्चायं व्यपेत-घृणो यमः।
त्वमपि वशगो मान-व्याधेर्विचिन्तय नाथ हे,
किसलय-मृदुर्जीवेदेवं कथं प्रमदाजनः।।१।।

२०. न हम नट हैं, न लम्पट, न गायक हैं, न दूसरे के द्रोह में कटिबद्ध बुद्धिवाले, न स्तनके भार से झुकी कामिनियां हैं, फिर राजभवन में हम कौन होते हैं ॥१६५॥

२१. अहो कष्ट हे भाई, वह महान राजा और वह सामन्तोंका समूह, और उसके पास वह राजसभा और वह चन्द्रमुखियां, और वह अभिमानी राजपुत्रों का झुंड, वे बंदीजन, वे कथायें—यह सब जिसके कारण स्मृतिशेष रह गये, उस कालको नमस्कार है ॥१९९॥

२२. हम यहां वृक्षके छालोंसे संतुष्ट और तुम लक्ष्मी से। दोनों ही को यहां एक समान विशेष संतोष है। दरिद्र तो वह होगा, जिसकी तृष्णा विशाल है। मनके संतुष्ट हो जाने पर कौन धनवान और कौन दरिद्र ॥१७७॥

२३. पृथिवीपर वादियोंको दमन करनेवाली विनयपूर्वक पढ़ी विद्याका अभ्यास नहीं किया, खड्ग की नोकोंसे गजोंके कुम्भों और पीठों को दलन करते स्वर्ग तक अपने यश नहीं पहुंचाया। चांदनीके समय कांताके कोमल पल्लव सदृश अधर-रसको नहीं पिया। अहो शून्य-घरमें दीपक की तरह (हमारी) तरुणाई निष्फल ही गई ॥१९५॥

—वैराग्य-सम्बन्धी श्लोक

३४. शीलाभट्टारिका (६७० ई०)

उन्होंने शृंगारिक कवितायें ही की हैं, जिससे भी किसी सामन्त की अन्तःपुरि का होने का सन्देह होता है। इनकी कवितायें सुन्दर हैं।

१. नायक से प्रार्थना—

विरहमें विषम प्रतिकूल कामदेव शरीरको दुबला करता है। दिन गिननेमें दक्ष यह यम दया-रहित है। तुम भी मानरूपी रोगके वश हो, हे नाथ, सोचो, नवपल्लवसी कोमल प्रमदा कैसे जिये ॥१॥

(२) वियोगी—

२. प्रिया-विरहितस्यास्य हृदि चिन्ता समागता।
इति मत्वा गता निद्रा कं कृतघ्नमुपासते ॥२॥[1]

(३) दूती—

३. दूति त्वं तरुणी युवा स चपलः श्यामास्तमोभिर्दिशः,
सन्देशः स रहस्य एव विजने संकेतकावासकः।
भूयो भूय इमे वसन्त-मरुतश्चेतो नयन्त्यन्यतो
गच्छ क्षिप्र-समागमाय निपुणं रक्षन्तु ते देवताः ॥३॥[2]

४. श्वासः किं ? त्वरितागता, पुलकिता कस्मात् ? प्रसादः कृतः,
स्रस्ता वेण्यपि ? पादयोर्निपतनात्, नीवी गमादागमात्।
स्वेदार्द्रं मुख ?-मातपेन गमितं, क्षामा किमत्युक्तिभिर्,
दूति, म्लान-सरोरुहाकृतिधरस्यौष्ठस्य किं वक्ष्यसि ॥४॥[2]

(४) असती—

५. यः कौमार-हरः स एव हि वरस्ता एव चैत्र-क्षपास्,
ते चोन्मीलित-मालती-सुरभयः प्रौढाः कदम्बानिलाः।
सा चैवास्मि तथापि चौर्य-सुरत-व्यापार-लीला-विधौ
रेवा-रोधसि वैतसी-तरु-तले चेतः समुत्कण्ठते[2] ॥५॥

(५) जरा—

६. इदमनुचितमक्रमश्च पुंसां,
यदिह जरास्वपि मान्मथा विकाराः।
इदमपि न कृतं नितम्बिनीनां
स्तन-पतनावधि जीवितं रतं वा ॥६॥

---

१. अनुष्टुप् २. शार्दूलविक्रीडितम्

२. वियोगी—

२. प्रियासे रहित इसके हृदयमें चिन्ता आ गई। यह जानकर निद्रा भाग गई। कृतघ्नके पास कौन रहना चाहेगा ॥२॥

३. दूती—

३. हे दूती, तू तरुणी है, वह चपल तरुण है। दिशायें अंधकारसे श्यामल हैं, वह सन्देश गुप्त है, संकेतस्थान निर्जन है। यह वसंतकी हवायें अधिकाधिक चित्तको बहकानेवाली हैं। जल्दी लौटनेके लिये तू अच्छी तरह जा, देवता तेरी रक्षा करें ॥३॥

४. सांस क्यों ले रही हैं? (जल्दी) जल्दी आई। रोमांचित क्यों है? (उनकी) कृपा से। वेणी खुली क्यों? पैरोंपर गिरनेसे; (और) नीवी? आने-जानेसे। पसीनेसे भीगा मुंह क्यों? धूपसे हुआ। थकी क्यों? बोलनेसे। हे दूती, तू (अपने) कुम्हलाये कमलाकार ओठके लिये क्या कहती है? ॥४॥

४. कुलटा—

५. जिसने कौमार्यका हरन किया, वही पति (अब भी) है, वही चैतकी रातें हैं, वही फूली चमेलीके सुगंधित और कदंबके प्रौढ़ वायु है। वही मैं हूं; तो भी नर्मदाके किनारे बेंतकी लताओंके नीचे चोरीसे मिलन-व्यापारकी लीलाके लिये चित्त उत्कंठित होता है ॥५॥

५. जरा—

६. यह अनुचित है, और पुरुषोंके लिये ठीक नहीं है, जो कि बुढ़ापे में भी पुरुषोंको कामविकार होते हैं। (पर) स्त्रियोंके लिये यह भी नहीं किया, क्योंकि स्तन के गिरने तक उनका जीवन-आनंद रहता है ॥६॥

३५. माघ (६७५ ई०)

माघ कवि का अपना नाम था, या भट्टि की तरह उपाधि, यह नहीं कहा जा सकता। भट्टि की तरह ही यह गुजरात के रहनेवाले थे। माघ के दादा सुप्रभदेव, राजा धर्मनाभ (बर्मलात) के मन्त्री थे। इनके पिता का नाम दत्तक था। धनी कुल में पैदा होने से इन्हें अर्थाभाव की कठिनाइयां नहीं सहनी पड़ी। इनका जन्म भिन्नमाल (श्रीमाल) में हुआ था। इन्हीं के नगर में और शायद कुछ ही समय पहले महान् ज्योतिषी ब्रह्मगुप्त ने जन्म लिया था, जिन्होंने ६२५ ई० के आसपास "ब्रह्म सिद्धान्त" को लिखा। माघ बड़े दानी थे, इनकी एक ही कृति "शिशुपालवध" मिलती है, जो कवि के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। माघ पंडित थे, कवियों में

शिशुपालवधम्*

(१) नारदागमनम्—

१. श्रियः पतिः श्रीमति शासितुं जगज्जगन्निवासो वसुदेव-
सद्मनि।
वसन् ददर्शावितरन्तमम्बराद्धिरण्यगर्भाङ्गभुवं मुनिं हरिः ।।१।।

२. "गतं तिरश्चीनमनूरुसारथेः प्रसिद्धमूर्ध्वज्वलनं हविर्भुजः।
पतत्यधो धाम विसारि सर्वतः किमेतदि"त्याकुलमीक्षितं
जनैः ।।२।।

३. चयस्त्विषामित्यवधारितं पुरा ततः शरीरीति विभा-
विताकृतिम्।
विभुर्विभक्तावयवं पुमानिति क्रमादमुं नारद इत्यबोधि
सः ।।३।।

---

*माघ

३५. माघ (६७५ ई०)

अपने पांडित्य को दिखलाने से कहीं बाज नहीं आते। यद्यपि माघ में कालिदास की उपमा, भारवि के अर्थगाम्भीर्य और दंडी के पद-लालित्य का एकत्र समावेश माना गया है, किन्तु जिसमें अधिक से अधिक पांडित्य प्रदर्शन करने की कोशिश की जाये, वह अच्छी कविता कैसे हो सकती है? सारे अपभ्रंश-काल में अच्छी कविता की कसौटी कलाबाजी को माना जाता था, अतः माघ को दोष देना अनुचित है। अपभ्रंश-काल के अन्तिम महाकवि श्रीहर्ष ने तो इस कपाल-क्रिया करनेवाली कविता में हद कर दी है। यदि समय के फेर में न पड़ते, तो "माघ" का रूप और सुन्दर होता था।

शिशुपालवध

१. नारदागमन—

१. जगत्को शासन करनेके लिये श्री-सम्पन्न वसुदेवके घरमें बसते जगत्निवास लक्ष्मीपति हरिने आकाशसे उतरते ब्रह्माके पुत्र उन नारदमुनिको देखा ।।१।।

२. सूर्यकी गति तिरछी होती है, अग्निकी ज्वाला उर्ध्वमुखी प्रसिद्ध है। सब तरफ फैलता नीचे गिरता यह प्रकाश क्या है, यह लोगोंने व्याकुल हो देखा ।।२।।

३. पहले निश्चय किया "यह किरणोंका समूह है", फिर यह "शरीरधारी" ज्ञात आकृतियुक्त स्पष्ट अंगोंवाला पुरुष, यह सोचते क्रमशः उन्होंने नारद को जाना ।।३।।

४. निवर्त्य सोऽनुव्रजतः कृतानतीनतीन्द्रियज्ञाननिधिर्नभः सदः।
समासदत्सादितदैत्यसंपदः पदं महेन्द्रालयचारु चक्रिणः।।११।।

५. पतत्पतंगप्रतिमस्तपोनिधिः पुरोऽस्य यावन्न भुवि व्यलीयत।
गिरेस्तडित्वानिव तावदुच्चकैर्जवेन पीठादुदतिष्ठदच्युतः ।।१२।।

६. तमर्घ्यमर्घ्यादिकयादिपूरुषः सपर्यया साधु स पर्यपूपुजत्।
गृहानुपैतुं प्रणयादभीप्सवो भवन्ति नापुण्यकृतां मनीषिणः ।।१४।।[1] —सर्गः१

(२) पर्वतवर्णनम्—

७. निःश्वासधूमं सह रत्नभाभिर्भित्त्वोत्थितं भूमिमिवोरगाणाम्
नीलोत्पलस्यूतविचित्रधातुमसौ गिरिं रैवतकं ददर्श[2] ।।१।।

८. गुर्वीरजस्रं दृषदः समन्तादुपर्युपर्यम्बुमुचां वितानैः।
विन्ध्यायमानं दिवसस्य भर्तुर्मार्गं पुना रोद्धुमिवोन्नमद्भिः ।।२।।

९. सहस्रसंख्यैर्गगनं शिरोभिः पादैर्भुवं व्याप्य वितिष्ठमानम्।
विलोचनस्थानगतोष्णरश्मिनिशाकरं साधु हिरण्यगर्भम् ।४।

१०. क्वचिज्जलापायविपाण्डुराणि धौतोत्तरीयप्रतिमच्छवीनि
अभ्राणि बिभ्राणमुमांगसंगविभक्तभस्मानमिव स्मरारिम् ।।५।।

११. विलम्बिनीलोत्पलकर्णपूरा कपोलभित्तीरिव लोध्रगौरीः।
नवोलपालंकृतसैकताभाः शुचीरपः शैवलिनीर्दधानम् ।८।

१. वंशस्थ २. उपजाति (१-८)

४. अतीन्द्रिय ज्ञाननिधि नारद, अनुगमन करते नम्र देवताओंको लौटाकर दैत्योंकी सम्पत्तिको उच्छिन्न करनेवाले कृष्णके इन्द्रभवन जैसे सुन्दर स्थानमें पहुँचे ।।११।।

५. उनके सामने उगते सूर्य समान तपोनिधि नारद के धरती पर न विलीन होनेके साथ, पर्वतके मेघकी तरह कृष्ण बड़े वेगसे अपने आसनसे उठ खड़े हुये ।।१२।।

६. आदि पुरुष (कृष्ण) ने पूजनीय नारदको अर्घ्य आदि द्वारा अच्छी तरह पूजा। मनीषी लोग अपुण्यात्माओंके घरोंमें स्नेहसे आनेके इच्छुक नहीं होते ।।१४।। —सर्ग १

२. पर्वत-वर्णन—

७. (उन्होंने) भूमिको फोड़कर उठे, सर्पोंके रत्नोंके किरणों सहित, श्वास के धूयें जैसे नील पाषाणमें पिरोई विचित्र धातुओं से युक्त रैवतक (गिरनार) गिरिको देखा ।।१।।

८. (जो) सदा भारी शिलाओंके चारों ओर ऊपर-ऊपर (छाये) मेघोंके वितानों द्वारा, विंध्य पर्वत बन सूर्यके मार्गको फिर रोकनेके लिये सिर उठाये था ।।२।।

९. (जो) हजार संख्यावाले सिरों और पैरोंसे आकाश और भूमिको व्याप्त कर अवस्थित, नेत्रके तौरपर सूर्य और चन्द्रमाको धारे ठीक हिरण्यगर्भ (विष्णु) सा था ।।४।।

१०. (जो) कहींपर पानीके निकलनेसे पीले, धुली चादर समान रूपवाले बादलोंको धारण करते, उमाके अंगके संसर्गसे विभक्त भस्मवाले शंकर जैसा दीखता था ।।५।।

११. (जो) लटकते नीलकमलके कर्णभूषणवाले कपोलोंकी तरह रोध्र सी गोरी नई मूंजसे शोभित, बालूकी आभा से युक्त, सेवारवाली शुद्ध नदियोंको धारण किये हुआ ।।८।।

१२. राजीवराजीवशलोलभृंगमुष्णन्तमुष्णं ततिभिस्तरूणाम्।
कान्तालकान्ता ललनाः सुराणां रक्षोभिरक्षोभितमु-
द्वहन्तम् ॥९॥

१३. अखिद्यतासन्नमुदग्रतापं रविं दधानेऽप्यरविन्दधाने।
भृंगावलिर्यस्य तटे निपीतरसा नमत्तामरसा न मत्ता ॥१२॥

१४. फलद्भिरुष्णांशुकराभिमर्शात्काशानिवं धाम पतंगकान्तैः।
शशंस यः पात्रगुणाद् गुणानां संक्रान्तिमाक्रान्तगुणाति-
रेकाम् ॥१६॥

१५. दृष्टोऽपि शैलः स मुहुर्मुरारेरपूर्ववद्विस्मयमाततान।
क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः ॥१७॥

१६. कृत्वा पुंवत्पातमुच्चैर्भृगुभ्यो मूर्ध्नि ग्रावृणां जर्जरा निर्झ-
रौघाः।
कुर्वन्ति द्यामुत्पतन्तः स्मरार्तस्वर्लोकस्त्रीगात्रनिर्वाणमत्र[1]
॥२३॥
—सर्गः ४

(३) ऋतुवर्णनम्—

१७. अथ रिरंसुममुं युगपद् गिरौ कृतयथास्वतरुप्रसवश्रिया।
ऋतुगणेन निषेवितुमादधे भुवि पदं विपदन्तकृतं सताम्[2] ॥१॥

१८. नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागतपंकजम्।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत्स सुरभिं सुरभिं सुमनो-
भरैः ॥२॥

१९. विलुलितालकसंहतिरामृशन् मृगदृशां श्रमवारि ललाटजम्।
तनुतरंगततिं सरसां दलत्कुवलयं वलयन् मरुदाववौ ॥३॥

---

१. शालिनी, २. द्रुतविलंबित

१२. (जो) कमलपंक्तियोंके वशमें चंचल भृंगोंवाले वृक्षोंके समूहोंमें गर्मीके आतपको चुराता, कान्ताओंकी कमनीय अलकवाली देव-ललनाओंको राक्षसोंकी तरह अचल हो उठाता ॥६॥

१३. (जो) उग्रतापवाले रविको धारण करते भी अरविन्द धारण करने वाला था। रस पिये, कमलोंको झुकाती नमत भृगोंकी पांती जिसके तटपर खिन्न थी ॥१२॥

१४. जिसने सूर्यकी किरणोंके स्पर्शसे अग्निके तेजको फलित करते सूर्य-कांतों द्वारा यह प्रकट किया, कि पात्रके गुणोसे आक्रान्त गुण द्वारा अधिक संक्रांति होती हैं ॥१६॥

१५. उस देखे हुये भी पर्वतने मुरारिको क्षणभरके लिये अपूर्वकी तरह हो अधिक विस्मित कर दिया। जो क्षण-क्षणमें नवीन हो, वही रमणीयता का रूप है ॥१७॥

१६. इस (**रैवतक**) के पुरुषोंकी तरह ऊंचे पर्वतशिखरोंसे पत्थरोंके सिरपर गिरकर जर्जर हुये चश्मे, आकाशकी ओर उछलते, काम-पीड़िता देवांगनाओंके शरीरको सुख देते हैं ॥२३॥

—सर्ग ४

३. ऋतु-वर्णन

१७. तब गिरि (रैवतक) में रमण करनेके इच्छुक, संतोंके संकटनाशक (कृष्ण) को अपने-अपने, वृक्षोंकी पुष्पफल-संपत्तिसे सेवा करनेके लिये ऋतुओंने एक साथ भूमिपर पैर रक्खा ॥१॥

१८. कृष्णाने नवपल्लवयुक्त, पलाशवनवाले, परागसे स्पष्ट व्याप्त पंकज-वाले, मृदुल म्लान पल्लवोंवाले, पुष्पसमूहोंसे सुगंधित वसंतको सामने देखा ॥२॥

१९. हिलती अलकोंवाली मृगनयनियोंके ललाटपर उत्पन्न स्वेदजलको छूता, सरोवरोंके सूक्ष्म तरंगोंको दोलित करता, कमलोंको हिलाता वायु बह रहा था ॥३॥

२०. तुलयति स्म विलोचनतारकाः कुरबकस्तबकव्यतिषंगिणि।
गुणवदाश्रयलब्धगुणोदये मलिनिमालिनि माधवयोषिताः ॥४॥

२१. स्फुटमिवोज्ज्वलकांचनकान्तिभिर्युतमशोकमशोभत चम्पकैः।
विरहिणां हृदयस्य भिदाभृतः कपिशितं पिशितं मदनाग्निना ॥५॥

२२. स्मरहुताशनमुर्मुरचूर्णतां दधुरिवाम्रवणस्य रजःकणाः।
निपतिताः परितः पथिकव्रजानुपरि ते परितेपुरतो भृशम् ॥६॥

२३. रतिपतिप्रहितेव कृतक्रुधः प्रियतमेषु वधूरनुनायिका।
वकुलपुष्परसासवपेशलध्वनिरगान्निरगान्मधुपावलिः ॥७॥

२४. प्रियसखीसदृशं प्रतिबोधिताः किमपि काम्यगिरा परपुष्टया।
प्रियतमाय वपुर्गुरुमत्सरच्छिदुरयादुरयाचितमंगनाः ॥८॥

२५. मधुकरैरपवादकरैरिव स्मृतिभुवः पथिका हरिणा इव।
अविनमन्नरराज वृथोच्चकैरनृतया नृतया वनपादपः ॥१०॥

(४) वर्षावर्णनम्—

२६. स्फुरदधीरतडिन्नयना मुहुः प्रियमिवागलितोरुपयोधरा।
जलधरावलिरप्रतिपालितस्वसमया समयांजगतीधरम् ॥२५॥

२७. गजकदम्बकमेचकमुच्चकैर्नभसि वीक्ष्य नवाम्बुदमम्बरे।
अभिससार न वल्लभमंगना न चकमे च कमेकरसं रहः ॥२६॥

२०. कुरवकके गुच्छोंमें लगे गुणयुक्त अवलम्बसे गुणमें उत्कर्ष पाई भ्रमरकी कालिमा कृष्णकी स्त्रियोंके लोचनोंकी पुतलियोंके समान थी ॥४॥

२१. (वह) उज्ज्वल, सुवर्ण कान्तिवाले, चम्पकोंसे युक्त फूले अशोकको शोभित कर रहा था, घाव लगे विरहियों का हृदय,कामाग्निसे पीला पड़ गये मांस सा ॥५॥

२२. आमके बगीचेके परागोंके कण, बटोहियोंके ऊपर चारों तरफ गिरे कामाग्निके भौर हो उन्हें बहुत संतप्त करते थे ॥६॥

२३. क्रुद्ध वधुओंको मनानेवाले प्रियतमोंके पास कामदेव द्वारा प्रेषित सी मौलसरीके फूलोंके रसरूपी मद्यके पानसे मधुर शब्दवाले भंवरे वृक्षसे मानो निकले ॥७॥

२४. भारी रोषको काटनेवाली कमनीय वाणीवाली प्रियसखी समान कोयल द्वारा कुछ उपदिष्ट हो ललनाओंने प्रियतमको विना मांगे अपना शरीर प्रदान किया ॥८॥

२५. फूल चुननेकी इच्छासे रागसे पास आकर प्रमदाओं द्वारा झुकाया, न झुकता व्यर्थ ऊंचा वनवृक्ष (अपनी) झूठी पुरुषतासे शोभित नहीं हुआ ॥१०॥

४. वर्षावर्णन—

२६. हिलते अधीर बिजलीरूपी नयनोंवाली क्षण भर (जलसे) न खाली विशाल पयोधरवाली मेघपंक्ति समयकी प्रतीक्षा किये बिना क्षण भर मानो (अपने) प्रिय पर्वतसे मिली ॥२५॥

२७. श्रावणमें आकाशमें गजोंके समूह जैसे काले ऊंचे नये मेघोंको देखकर अंगनाने, एक राग-रतवाले किसी वल्लभकी एकान्तमें न कामना की, न अभिसार ॥२६॥

२८. अनुययौ विविधोपलकुण्डलद्युतिवितानकसंवलितांशुकम्।
धृतधनुर्वलयस्य पयोमुचः शबलिमा बलिमानमुषो वपुः
॥२७॥

२९. द्रुतसमीरचलैः क्षणलक्षितव्यवहिता विटपैरिव मंजरी।
नवतमालनिभस्य नभस्तरोरचिररोचिररोचत वारिदैः
॥२८॥

३०. पटलमम्बुमुचां पथिकांगना सपदि जीवितसंशयमेष्यती।
सनयनाम्बुसखीजनसंभ्रमा विधुरबन्धुरबन्धुरमैक्षत ॥२९॥

३१. प्रवसतः सुतरामुदकम्पयद्विदलकन्दलकम्पनलालितः।
नमयति स्म वनानि मनस्विनीजनमनोनमनो घनमारुतः
॥३०॥

३२. जलदपंक्तिरनर्तयदुन्मदं कलविलापिकलापिकदम्बकम्।
कृतसमार्जनमर्दलमण्डलध्वनिजया निजया स्वनसंपदा
॥३१॥

३३. नवकदम्बरजोरुणिताम्बरैरधिपुरंध्रि शिलीन्ध्रसुगन्धिभिः।
मनसि रागवतामनुरागिता नवनवा वनवायुभिरादधे
॥३२॥

३४. शमिततापमपोढमहीरजः प्रथमबिन्दुभिरम्बुमुचोऽम्भ-
साम्।
प्रविरलैरचलांगनमंगना वनसुगं न सुगन्धि न चक्रिरे
॥३३॥

३५. द्विरददन्तवलक्षमलक्ष्यत स्फुरितभृंगमृगच्छवि केतकम्।
घनघनौघविघट्टनया दिवः कृशशिखं शशिखण्डमिवच्युतम्
॥३४॥

२८. (इन्द्र) धनुषरूपी वलयको धारण किये मेघकी श्यामता, बलि राजा के अभिमानको हरनेवाले (कृष्ण) के, नाना पाषाणके कुंडलोंकी द्युतियोंके वितानोंसे युक्त अंशुकवाले शरीरका अनुकरण करती थी ॥२७॥

२९. शीघ्रगामी वायुसे हिलते वृक्षों द्वारा क्षण भर दीखकर लुप्त हुई मंजरीकी तरह, नये तमाल सदृश आकाशरूपी वृक्षकी मंजरी बिजली मेघों में प्रकाशित थी ॥२८॥

३०. बटोहीकी मरणोन्मुख वियोगिनी बहू ने रोती हुई सखियोंके क्षोभसे, मेघ-समूहको असुंदर देखा ॥२९॥

३१. फूली द्रोणपर्णीके कांपनेसे लालित, मनस्वी जनोंके मनोंको झुकाने-वाली, बरसाती हवा बनोंको झुकाती बटोहियोंको अत्यंत उद्विग्न कर रही थी ॥३०॥

३२. अपनी सम्पदा द्वारा ऊपर लेप किये, मांदलोंकी ध्वनिको जीतनेवाली, मेघपंक्ति ने सुंदर-भाषी मयूरोंको मस्त करके नचाया ॥३१॥

३३. नये कदम्ब केसर जैसे लाल हुये अम्बरयुक्त कंदलीकी सुगन्धिवाले वनवायुओंने स्त्रियोंके प्रति कामियोंके मनमें नया-नया अनुराग पैदा किया ॥३२॥

३४. (जिसने) मेघोंके विरल जलोंके प्रथम बिन्दुओं से तापशान्त हुये, धूलिरहित भूमि वाले पर्वतोंको अंगनाओंके लिये न सुगम नहीं दुर्गम्य किया ॥३३॥

३५. हाथीके दांतसे श्वेत, हिलते, भ्रमरोंरूपी मृगकी छविवाले केवड़ा मानो, घने मेघोंके टकरानेसे गिरे आकाशकी क्षीण शिलावाले चंद्र-खंड थे ॥३४॥

३६. दलितमौक्तिकचूर्णविपाण्डवः स्फुरितनिर्झरशीकरचारवः।
कुटजपुष्पपरागकणाः स्फुटं विदधिरे दधिरेणुविडम्बनाम्
॥३५॥

३७. नवपयःकणकोमलमालतीकुसुमसंततिसंततसंगिभिः
प्रचलितोडुनिभैः परिपाण्डिमा शुभरजोभरजालिभि -
राददे ॥३६॥

३८. निजरजः पटवासमिवाकिरद्धृतपटोपमवारिमुचां दिशाम्
प्रियवियुक्तबधूजनचेतसामनवनीनवनीपवनावलिः ॥३७॥

३९. प्रणयकोपभृतोऽपि पराङ्मुखाः सपदि वारिधरारवभीरवः।
प्रणयिनः परिरब्धुमथांगनाऽववलिरे वलिरेचितमध्यमाः॥
॥३८॥

४०. विगतरागगुणोऽपि जनो न कं चलति वाति पयोदनभस्वति।
अभिहितेऽलिभिरेवमिवोच्चकैरननृते ननृते नवपल्लवैः
॥३९॥

४१. अरमयन्भवनादचिरद्युतेः किल भयादपयातुमनिच्छवः।
यदुनरेन्द्रगणं तरुणीगणास्तमथ मन्मथमन्थरभाषिणः
॥४०॥

४२. मुदमब्दभुवामपां मयूराः सहसायन्त नदी पपाट लाभे।
अलिना रमतालिनीशिलीन्ध्र सह सायन्तनदीपपाटलाभे
॥७२॥

४३. कुटजानि वीक्ष्य शिखिभिः शिखरीन्द्रं समयावनौ घनमद-
भ्रमराणि।
गगनं च गीतनिनदस्य गिरोच्चैः समया वनौघनमद-
भ्रमराणि ॥७३॥

—सर्गः ६

३६. पिसी मोतीके चूर्ण जैसे अति श्वेत उछलते निर्झरोंकी फुहारों जैसे सुन्दर कुटजके फूलोंके केसर-कण स्पष्ट दहीके चूर्णकी समानता धारण कर रहे थे ॥३५॥

३७. नवीन जलकण समान कोमल चमेलीके फूलसमूहों के सदा साथ रहनेवाले चंचल ताराओंके समान भंवरे सुंदर धूलिके समूहोंसे उत्पन्न सफेदीको धारण कर रहे थे ॥२६॥

३८. प्रियोंसे वियुक्त बधुओंके चित्तकी न-रक्षिका नवीन नीमकी वनपंक्ति ने, पट सदृश मेघोंको धारण करनेवाली दिशाओंपर अपने परागको चादरकी तरह फेंक दिया ॥३७॥

३९. प्रणय कोपको धारण करते पराङमुखी, त्रिबलीसे रिक्त उदर-वाली महिलायें भी मेघोंके शब्दोंसे तुरन्त भयभीत हो, प्रियोंको आलिंगन करने लगीं ॥३८॥

४०. "मेघ-वायुके बहते समय कौन रागरहित जन भी चलित नहीं होता", भंवरोंके ऊंचे स्वरसे यह सत्य कहनेपर नवपल्लव नाच उठी ॥३९॥

४१. तब बिजलीके भयसे मानो प्रियतमके घरसे जानेकी अनिच्छुका कामवश मन्द-भाषिणी तरुणियोंने यदुवंशी राजाओंके साथ रमण किया ॥४०॥

४२. मेघसे उत्पन्न जलोंको पा सहसा आनन्दको पा नदियां बह चलीं, सायंकालके दीपक सी श्वेतिमावाली कंदली के पुष्पमें भ्रमरके साथ भ्रमरी आनन्द करने लगी ॥७२॥

४३. पर्वतके समीपवाले प्रदेशमें बहुतसे मस्त भंवरोंसे युक्त कुटज (पुष्प) के जलाधिक्यसे झुके बादलवाले गगनको देखकर मोरोंने गानेके शब्दकीसी वाणीसे ऊंची आवाज की ॥७३॥

—सर्ग ६

(५) सूर्यास्तवर्णनम्—

४४. अभितापसंपदमथोष्णरुचिर्निजतेजसामसहमान इव[1]।
पयसि प्रपित्सुरपराम्बुनिधेरधिरोढुमस्तगिरिमभ्यपतत्
॥१॥

४५. विरलातपच्छविरनुष्णवपुः परितो विपाण्डु दधदभ्रशिरः।
अभवद् गतः परिणतिं शिथिलं परिमन्दसूर्यनयनो दिवसः
॥३॥

४६. अपराह्णशीतलतरेण शनैरनिलेन लोलिततलांगुलये।
निलयाय शाखिन इवाह्वयते ददुराकुलाः खगकुलानि
गिरः ॥४॥

४७. उपसंध्यमास्त तनु सानुमतः शिखरेषु तत्क्षणमशीतरुचः।
करजालमस्तसमयेऽपि सतामुचितं खलूच्चतरमेव पदम्
॥५॥

४८. प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता।
अवलम्बनाय दिनभर्तुरभून्न पतिष्यतः करसहस्रमपि ॥६॥

४९. नवकुंकुमारुणपयोधरया स्वकरावसक्तरुचिराम्बरया।
अतिसक्तिमेत्य वरुणस्य दिशा भृशमन्वरज्यदतुषारकरः
॥७॥

५०. द्रुतशातकुम्भनिभमंशुमतो वपुरर्धमग्नवपुषः पयसि।
रुरुचे विरंचिनखभिन्नबृहज्जगदण्डकैकतरखण्डमिव ॥९॥

५१. रुचिधाम्नि भर्तरि भृशं विमलाः परलोकमभ्युपगते विविशुः।
ज्वलनं त्विषः कथमिवेतरथा सुलभोऽन्यजन्मनि स एव
पतिः ॥१३॥

---

१. प्रमिताक्षरा

५. सूर्यास्तवर्णन—

४४. तब सूर्य, अग्निकी किरणोंके अधिक संतापको मानो न सहते, पश्चिम समुद्रके जलमें गिरनेकी इच्छासे अस्ताचलपर चढ़नेके लिये दौड़ा ।।१।।

४५. परिवर्तनको प्राप्त, विरल धूपकी छवियुक्त, अल्प-उष्ण-शरीरवाला, चारों ओर पीला सा, मेघरूपी शिरयुक्त प्रशान्त सूर्यरूपी नयनवान् दिन शिथिल हो गया ।।३।।

४६. (वह) अपराह्णमें अधिक शीतल वायु द्वारा धीरे-धीरे चालित, लतारूपी अंगुलियोंवाला (दिन), नीडोंके लिये पक्षियोंको आकुल-वाणीसे मानो बुलाता आवाज दे रहा था ।।४।।

४७. संध्याके समीप सूर्यकी क्षीण किरणें पर्वत-शिखरोंपर अवस्थित थीं। अस्तके समय भी उच्चतर स्थानमें सत्पुरुषोंका रहना ही उचित है ।।५।।

४८. दैवके प्रतिकूल होनेपर बहुतेरे साधन भी विफल हो जाते हैं। (इसी लिए) गिरनेवाले सूर्यके लिये हजारों किरणे भी सहायक नहीं हुई ।।६।।

४९. नये केसर से अरुण पयोधरवाली, अपने करमें धरे रुचिर अम्बरवाली पश्चिम दिशाके साथ अति समीपता पा सूर्य बहुत अनुरक्त हुआ ।।७।।

५०. पिघले सुवर्ण समान जलमें आधे डूबे सूर्यका देह, ब्रह्माके नखसे टूटे बृहत् ब्रह्मांडके आधे खंडकी तरह शोभित हो रहा था ।।६।।

५१. रुचिर प्रभावाले स्वामी (सूर्य) के परलोक जानेपर विमल किरणें आगमें प्रविष्ट हो गई, अन्यथा कैसे दूसरे जन्ममें वही पति सुलभ होता ।।१३।।

५२. पतिते पतंगमृगराजि निजप्रतिबिम्बरोषित इवाम्बुनिधौ।
अथ नागयूथमलिनानि जगत्परितस्तमांसि परितस्तरिरे
॥१८॥

५३. व्यसरन्नु भूधरगुहान्तरतः पटलं बहिर्बहलपंकरुचि ।
दिवसावसानपटुनस्तमसो बहिरेत्य चाधिकमभक्त गुहाः
॥१९॥

५४. किमलम्बताम्बरविलग्नमधः किमवर्धतोर्ध्वमवनीतलतः।
विससार तिर्यगथ दिग्भ्य इति प्रचुरीभवन्न निरधारि
तमः ॥२०॥

(६) चन्द्रोदयवर्णनम्—

५५. वसुधान्तनिःसृतमिवाहिपतेः पटलं फणामणिसहस्ररुचाम्।
स्फुरदंशुजालमथ शीतरुचः समलंचकारननु माघवनीम् ॥२५

५६. कलया तुषारकिरणस्य पुरः परिमन्दभिन्नतिमिरौघजटम्।
क्षणमभ्यपद्यत जनैर्न मृषा गगनंगणाधिपतिमूर्तिरिति॥२७॥

५७. प्रथमं कलाभवदथार्धमथो हिमदीधितिर्महदभूदुदितः ।
दधति ध्रुवं क्रमश एव न तु द्युतिशालिनोऽपि सहसोप-
चयम् ॥२९॥

५८. रजनीमवाप्य रुचमाप शशी सपदि व्यभूषयदसावपि ताम्।
अविलम्बितक्रममहो महतामितरेतरोपकृतिमच्च-
रितम् ॥३३॥

—सर्गः ९

५२. सूर्यरूपी मृगराजके समुद्रमें गिरने पर अपने प्रतिबिम्बसे रुष्ट हो गज-समूहों जैसे मलिन अन्धकारने चारों ओरसे जगत्को ढांक लिया ।।१८।।

५३. भारी पंक सा दीखता, दिनांतके भारी अन्धकारका समूह पर्वत-गुहाओं-के भीतरसे आकर फैलता बाहरी गुहाओंमें खूब लिपट गया ।।१९।।

५४. वेशी होता अन्धकार क्या आकाशसे लगा नीचे लटका, अथवा पृथिवी तलसे ऊपर बढ़ा, या दिशाओंसे तिरछे फैला, यह नहीं निश्चय किया जा सका ।।२०।।

६. चन्द्रोदयवर्णन—

५५. तब पृथिवीके छोरसे निकले नागराजके हजारों फण-मणियोंकी किरणोंके समूह जैसे चन्द्रमाकी उछलती किरणोंके जाल ने पूर्व-दिशाको अलंकृत किया ।।२५।।

५६. पूर्वमें चन्द्रमाकी किरणों द्वारा थोड़ा टूटे अन्धकार-समूहकी जटावाले गगनको, लोगोंने भूतनाथ शंकरकी मूर्ति है यह क्षण भर के लिये सत्य समझा ।।२७।।

५७. हिमकिरण (चंद्र) पहले कला मात्र उगे फिर आधे, फिर बड़े लगे। निश्चय तेजस्वी भी एकाएक नहीं, बल्कि क्रमशः ही वृद्धिको प्राप्त करते हैं ।।२९।।

५८. रजनीको पा शशि शोभित हुये, उन्होंने तुरन्त उसे भी अलंकृत किया। अहो बिना विलम्ब किये परस्पर उपकार करना बड़ोंका चरित्र है ।।३३।।

—सर्ग ९

(७) प्रातर्वर्णनम्—

५९. द्रुततरकरदक्षाः क्षिप्तवैशाखशैला
दधति दधनि धीरानारवान्वारिणीव।
शशिनमिव सुरौघाः सारमुद्धर्तुमेते
कलशमुदधिगुर्वी वल्लवा लोडयन्ति[१] ।।८।।

६०. परिशिथिलितकर्णग्रीवमामीलिताक्षः
क्षणमयमनुभूय स्वप्नमूर्ध्वज्ञुरेव।
रिसियिषति न भूयः शष्पमग्रे विकीर्णं
पटुतरचपलौष्ठः प्रस्फुरत्प्रोथमध्यः ।।११।।

६१. नवकनकपिशंगं वासराणां विधातुः
ककुभि कुलिशपाणेर्भाति भासां वितानम्।
जनितभुवनदाहारम्भमम्भांसि दग्ध्वा
ज्वलितमिव महाब्धेरूर्ध्वमौर्वानलार्चिः ।।४३।।

६२. विततपृथुवरत्रातुल्यरूपैर्मयूखैः
कलश इव गरीयान्दिग्भिराकृष्यमाणः।
कृतचपलविहंगालापकोलाहलाभिर्-
जलनिधिजलमध्यादेष उत्तार्यतेऽर्कः ।।४४।।

६३. पयसि सलिलराशेर्नक्तमन्तर्निमग्नः
स्फुटमनिशमतापि ज्वालया वाडवाग्नेः।
यदयमिदमिदानीमंगमुद्यन्दधाति
ज्वलितखदिरकाष्ठांगारगौरं विवस्वान् ।।४५।।

६४. अतुहिनरुचिनासौ केवलं नोदयाद्रिः
क्षणमुपरिगतेन क्ष्माभृतः सर्व एव।

---

१. मालिनी

७ प्रातःवर्णन—

५९. अति शीघ्र हाथ चलानेमें दक्ष, डंडारूपी शैल फेंकते सुरलोक पानीकी तरह दहीमें गम्भीर ध्वनि धारण करते हैं। चन्द्रमाकी तरह सारको निकालनेके लिये समुद्र जैसे बड़े घड़ेको यह गोपाल मथन कर रहे हैं ॥८॥

६०. यह घोड़ा कान और गरदन झुकाये आंखें मूदें, ऊपरकी ओर जांघ किये ही क्षण भर सोकर फिर चतुर चपल ओठ सहित नाक फरफराता आगे फैली घासका रस लेना चाहता है ॥११॥

६१. वज्रपाणिकी दिशा (पूर्व) में, नवीन सुवर्ण जैसे पीले दिनकर की किरणोंका वितान चमक रहा है, (जो) महासमुद्रके जलको जलाता संसारका दाह करता, प्रज्ज्वलित बड़वानलकी ज्योति सा दीखता है ॥४३॥

६२. चपल चंचल पक्षियोंके आलापके कोलाहल के साथ, फैले मोटे रस्सों जैसी आकारवाली किरणों द्वारा, मानो दिशाओंसे भारी कलशकी तरह खींचा जाता, समुद्र-जलके बीचसे यह सूर्य निकाला जा रहा है ॥४४॥

६३. यह सूर्य रातको समुद्रके जलमें डूबा भीतर बड़वानलकी ज्वालासे निश्चय संतप्त हुआ। तभी तो इस समय उगता हुआ जलते खैर-काठके अंगार जैसे उज्ज्वल अंगको धारण कर रहा है ॥४५॥

६४. क्षणभर ऊपर आये अशीतल-किरण (सूर्य) द्वारा केवल यह उदया-चल ही नहीं, वल्कि यह सारे ही पहाड़, नवीन किरणों द्वारा फूले

नवकरनिकरेण स्पष्टबन्धूकसून-
स्तबकरचितमेते शेखरं बिभ्रतीव ॥४६॥

६५. उदयशिखरिशृंगप्रांगणेष्वेष रिंगन्
सकमलमुखहासं वीक्षितः पद्मिनीभिः।
विततमृदुकराग्रः शब्दयन्त्या वयोभिः
परिपतति दिवोंके हेलया बालसूर्यः ॥४७॥

६६. क्षणमयमुपविष्टः क्ष्मातलन्यस्तपादः
प्रणतिपरमवेक्ष्य प्रीतमह्नाय लोकम्।
भुवनतलमशेषं प्रत्यवेक्षिष्यमाणः
क्षितिधरतटपीठादुत्थितः सप्तसप्तिः ॥४८॥

६७. परिणतमदिराभं भास्करेणांशुबाणैस्-
तिमिरकरिघटायाः सर्वदिक्षु क्षतायाः।
रुधिरमिव वहन्त्यो भान्ति बालातपेन
छुरितमुभयरोधोवारितं वारि नद्यः ॥४९॥

—सर्गः ११

(८) शिशुपाल-कोपः—

६८. यदपूपुजस्त्वमिह पार्थ, मुरजितमपूजितं सताम्।
प्रेम विलसति महत्तदहो दयितं जनः खलु गुणीति
मन्यते[1] ॥१४॥

६९. यदराज्ञि राजवदिहार्घ्यमुपहितमिदं मुरद्विषि।
ग्राम्यमृग इव हविस्तदयं भजते ज्वलत्सु न महीशवह्-
निषु ॥१५॥

७०. अनृतां गिरं न गदसीति जगति पटहैर्विघुष्यसे।
निन्द्यमथ च हरिमर्चयतस्तव कर्मणैव विकसत्यसत्यता
॥१६॥

---

१. छन्द-उद्गता

बन्धुजीवकके फूलोंके गुच्छों जैसे शोभित शिखरको मानो धारण कर रहे हैं ॥४६॥

६५. यह बालसूर्य, उदयाचलके शिखर के आंगनोंमें रेंगता, कमलोंके मुखोंके हासके साथ पद्मिनियों द्वारा देखा जाता, पक्षियों से पुकारते आकाशकी गोदमें, फैले करों (हाथों) सहित लीलाके साथ गिर रहा है ॥४७॥

६६. यह सप्ताश्व (सूर्य) पृथिवीतल पर पाद (किरण) रखे, क्षण भर बैठा लोगोंको प्रसन्न हो दिनके लिये प्रणाम करते देखकर, सकल भुवनतलको देखनेका इच्छुक हो पर्वत-तटके सिंहासनसे उठा ॥४८॥

६७. नई धूपसे उछलती नदियां, परिपक्व मदिरा समान, दोनों प्रवाहोंसे निवारित जलको, सूर्यसे किरणरूपी बाणों द्वारा सारी दिशाओंमें ताड़ित, तिमिररूपी गजोंके रुधिर जैसा वहन करती दीखती हैं ॥४९॥

—सर्ग ११

८. शिशुपालका कोप—

६८. हे पृथापुत्र **युधिष्ठिर,** सत्पुरुषों द्वारा अपूजित मुरारिको जो तुमने यहां पूजा। सो यह बड़े प्रेम विवश ही है, प्रियको लोग गुणी मानते हैं ॥१४॥

६९. यहां अ-राजा कृष्णके लिये राजाकी तरह तुमने अर्घ्य उपस्थित किया, राजारूपी अग्नियोंके होते उस हविको गांवके मृगकी तरह, यह (कृष्ण) नहीं पा सकता ॥१५॥

७०. झूठ बात तुम नहीं बोलते, यह (तुम्हारे लिये) संसारमें नगाड़ोंसे घोषित किया जाता है, निन्दनीय कृष्णकी अर्चना के इस तुम्हारे कामसे ही इसकी असत्यता प्रकट है ॥१६॥

(९) कृष्ण-भर्त्सना—

७१. तव धर्मराज इति नाम कथमिदमपष्ठु पठ्यते।
भौमदिनमभिदधत्यथवा भृशमप्रशस्तमपि मंगलं जनाः ॥१७॥

७२. यदि वार्चनीयतम एष किमपि भवतां पृथासुताः।
शौरिरवनिपतिभिर्निखिलैरवमाननार्थमिह किं निमन्त्रितैः ॥१८॥

७३. प्रतिपत्तुमंग घटते च न तव नृपयोग्यमर्हणम्।
कृष्ण कलय ननु कोऽहमिति स्फुटमापदां पदमनात्मवेदिता ॥२२॥

७४. असुरस्त्वया न्यवधि कोऽपि मधुरिति कथं प्रतीयते।
दण्डदलितसरघः प्रथसे मधुसूदनस्त्वमिति सूदयन्मधु ॥२३॥

७५. छलयन्प्रजास्त्वमनृतेन कपटपटुरैन्द्रजालिकाः। प्रीतिमनुभवसि नग्नजितः सुतयेष्टसत्य इति संप्रतीयसे[1] ॥२५॥

७६. त्वयि पूजनं जगति जाल्म कृतमिदमपाकृते गुणैः।
हासकरमघटते नितरां शिरसीव कंकतमपेतमूर्धजे ॥३३॥
—सर्गः १५

(१०) युद्धाय सेनासमागमः—

७७. संजग्माते तावपायानपेक्षौ सेनाम्भोधी धीरनादौ रयेण।
पक्षच्छेदात्पूर्वमेकत्र देशे वांछन्तौ वा विन्ध्यसह्यौ निलेतुम्[2] ॥१॥

७८. पत्तिः पत्तिं वाहमेयाय वाजी नागं नागः स्यन्दनस्थो रथस्थम्।
इत्थं सेना वल्लभस्येव रागादंगेनांगं प्रत्यनीकस्य भेजे ॥२॥

---

१. मालिनी, २. शालिनी

९. कृष्णके प्रति—

७१. यह तेरा "धर्मराज" नाम, कैसे झूठ बोला जाता । अथवा अमंगल दिनको लोग मंगल कहते हैं ।।१७।।

७२. हे कुन्तीपुत्रो, यह कृष्ण यदि आप लोगोंको अत्यन्त पूजनीयसा है। तो अपमानके लिये सारे अवनिपतियोंको यहां क्यों निमंत्रित किया ।।१८।

७३. मित्र, राजा-योग्य पूजा तुम्हारे लिये ठीक नहीं है । हे कृष्ण सोचो, कि मैं कौन हूं । अपनेको न समझना आफतोंका घर है ।।२२।।

७४. तुमने मधु नामक किसी असुरको मारा, यह कैसे विश्वास किया जाये ? सूदन (मारन) करनेवाले तुम दंडसे मक्खियोंको दलन करके मधुसूदन प्रसिद्ध हुये ।।२३।।

७५. मदारी, कपटमें पटु, लोगोंको झूठसे धोखा देते, नग्नजित्-सुता (सत्यभामा) के सच-पसन्द बन, तुम आनन्द अनुभव करते जान पड़ते हो ।।२५।।

७६. हे दुष्ट गुणहीन, संसारमें यह तेरी की गई पूजा, बिना केशवालेके सिरपर कंघी की तरह अत्यन्त उपहासकर है ।।३३।।

—सर्ग १५

१०. युद्धार्थ सेनासमागम

७७. हटनेके अनिच्छुक गम्भीर घोष करते वे दोनों सेनारूपी सागर वेगसे एक दूसरेसे, मानो पंख कटनेसे पहले विंध्य और सह्याद्रि एक देशमें रहनेके लिये मिले ।।१।।

७८. पैदलसे पैदल, सवारसे सवार, हाथीसे हाथी, रथीसे रथी, भिड़े, इस प्रकार स्वामीके प्रेमसे एक विरोधी शत्रुके अंग द्वारा अंग (चतुरंगिनी सेना) मिले ।।२।।

७९. रथ्याघोषैर्बृंहणैर्वारणानामैक्यं गच्छन्वाजिनां हेषया च।
व्योमव्यापी संततं दुन्दुभीनामव्यक्ताऽभूदीशितेव प्रणादः ॥३॥

८०. रोषावेशाद् गच्छतां प्रत्यमित्रं दूरात्क्षिप्तस्थूलबाहु - ध्वजालाम्।
दीर्घास्तिर्यग्वैजयन्तीसदृश्यः पादातानां भ्रेजिरे खड्गलेखाः ॥४॥

८१. सान्द्रत्वक्कास्तल्पलाश्लिष्टकक्षा आंगीं शोभामाप्नुवंतश्चतुर्थीम्।
कल्पस्यान्ते मारुतेनोपनुन्नाश्चेलुश्चण्डं गण्डशैला इवेभाः ॥६॥

८२. संक्रीडन्ती तेजिताश्वस्य रागादुद्यम्यारामग्रकायोत्थितस्य।
रंहोभाजामक्षधूः स्यन्दनानां हाहाकारं प्राजितुः प्रत्यनन्दत् ॥७॥

८३. कुर्वाणानां सांपरायान्तरायं भूरेणूनां मृत्युना मार्जनाय।
संमार्जन्यो नूनमुद्धूयमाना भान्ति स्मोच्चैः केतनानां पताकाः ॥८॥

८४. उद्यन्नादं धन्विभिर्निष्ठुराणि स्थूलान्युच्चैर्मण्डलत्वं दधन्ति।
आस्फाल्यन्ते कार्मुकाणि स्म कामं हस्त्यारोहैः कुंजराणां शिरांसि ॥९॥

८५. घण्टानादो निःस्वनो डिण्डिमानां ग्रैवेयाणामारवो बृंहितानि।
आमेतीव प्रत्यवोचन् गजानामुत्साहार्थं वाचमाधोरणस्य ॥१०॥

८६. रोषावेशादाभिमुख्येन कांचित्पाणिग्राहं रंहसैवापयातौ।
हित्वा हेतीर्मल्लवन्मुष्टिघातं घ्नन्तौ बाहू बाहवि व्यासृजेताम् ॥१२॥

८७. शुद्धाः संगं न क्वचित्प्राप्तवन्तो दूरान्मुक्ताः शीघ्रतां दर्शयन्तः।

७९. निरन्तर आकाशमें व्यापते रणभेरियोंके महाघोष, रथोंके घोष, हाथियोंके गर्जन, घोड़ोंके हिनहिनानेसे एक हो ईश्वरकी तरह अव्यक्त (घोष) हो गया ॥३॥

८०. रोषके आवेशसे शत्रुओंकी ओर दौड़ते, दूरसे उठाये मोटी बाहुरूपी ध्वजाओंवाले, पैदल सैनिकोंकी लम्बी तिरछी तलवारें ध्वजाओंके समान शोभित हो रही थी ॥४॥

८१. घने चर्मवाले कमरसे रस्सी बंधे, शारीरिक प्रौढ़ावस्थाकी शोभा युक्त प्रचंड, प्रलय वायुसे प्रेरित महाशिलाओं जैसे प्रचंड गज चलित हुये ॥६॥

८२. वेगवान् रथोंके चक्कोंकी चिल्लाती धुरी रागसे चाबुक उठाये, अगले शरीरको उठाये घोड़ोंको उत्साहित करते सारथीके हाहाकारका प्रतिनंदन कर रही थीं ॥७॥

८३ ऊंचे ध्वजस्तम्भोंकी पताकायें, युद्धमें बाधक मिट्टीकी धूलोंके मार्जनके लिये यमराज द्वारा चलाये जाते झाडुओं सी जान पड़ती थीं ॥८॥

८४. धनुर्धर कठोर भारी ऊंचे मंडलों वाले धनुष को उठा घोषके साथ, चला रहे थे, गजारोही गजोंके सिर पर खूब धक्के दे रहे थे ॥९॥

८५. घंटोंकी आवाज, नगाड़ोंका गड़गड़ाना, कंठकी सांकलकी आवाज, गजोंका गर्जन, गजोंके उत्साहके लिये हाथीवानोंकी बोली "हां"का मानो प्रत्युत्तर दे रहे थे ॥१०॥

८६. योधा, रोषके आवेशसे सामनेसे वेगसे पास आ हाथ पकड़कर, शस्त्रों-को छोड़ पहलवानोंकी तरह घुस्सा मारते, हाथापाई करके लड़ने लगे ॥१२॥

८७. कहीं संग न पाकर दूरसे छोड़े शीघ्रता दिखलाते हुये,

अन्तःसेनं विद्विषामाविशन्तो युक्तं चक्रुः सायका वाजि-
तायाः ॥१३॥

८८. वीर्योत्साहश्लाघि कृत्वावदानं संग्रामाग्रे मानिनां लज्जि-
तानाम् ।
अज्ञातानां शत्रुभिर्युक्तमुच्चैः श्रीमन्नाम श्रावयन्ति स्म
नग्नाः ॥१६॥

८९. मिश्रीभूते तत्र सैन्यद्वयेऽपि प्रायेणायं व्यक्तमासीद्विशेषः ।
आत्मीयास्ते ये परांचः पुरस्तादभ्यावर्ती संमुखो यः
परोऽसौ ॥१८॥

९०. कुन्तेनोच्चैः सादिना हन्तुमिष्टान्नाजानेयो दन्तिनस्त्रस्यति
स्म ।
कर्मोदारं कीर्तये कर्तुकामान्किंवा जात्याः स्वामिनो ह्रेप-
यन्ति ॥२३॥

९१. जेतुं जैत्राः शेकिरे नारिसैन्यैः पश्यन्तोऽधोलोकमस्तेषुजालाः ।
नागारूढाः पार्वतानि श्रयन्तो दुर्गाणीव त्रासहीनास्त्र-
सानि ॥२४॥
—सर्गः १८

(११) कविपरिचयः—

९२. सर्वाधिकारी सुकृताधिकारः श्रीवर्मलाख्यस्य बभूव राज्ञः ।
असक्तदृष्टिर्विरजाः सदैव देवोऽपरः सुप्रभदेवनामा[1] ॥१॥

९३. कालेऽमितं तथ्यमुदर्कपथ्यं तथागतस्येव जनः सचेताः ।
विनानुरोधात्स्वहितेच्छयैव महीपतिर्यस्य वचश्चकार ॥२॥

९४. तस्याभवद् दत्तक इत्युदात्तः क्षमी मृदुर्धर्मपरस्तनूजः ।
यं वीक्ष्य वैयासमजातशत्रोर्वचो गुणग्राहि जनैः प्रतीय ॥३॥

---

१. उपजाति

शत्रुओंकी सेनाओंके भीतर प्रवेश करते, शुद्ध वाण वाजिता (पक्षवत्ता) के लिये उचित काम कर रहे थे ।।१३।।

८८. बन्दी लोग संग्राममें पराक्रम-उत्साह के प्रशंसक महाकार्य करके अभिमानी लज्जित अज्ञात (पुरुषों) के श्रीयुक्त नामको शत्रुओंके साथ ऊंचे स्वरसे सुना रहे थे ।।१६।।

८९. वहां दोनों सेनाओंके मिलने पर प्रायः यह विशेष स्पष्ट (दीखता) था, (कि) जो पीछे वे आत्मीय, जो सन्मुख थे वह शत्रु ।।१८।।

९०. सवार के उठाये भाले द्वारा मारनेके लिये अभिप्रेत हाथीसे उत्तम घोड़ा नहीं डरता था। कुलीन लोग कीर्तिके लिये महान् कर्म करनेके इच्छुक स्वामियोंको क्या लजवाते हैं ।।२३।।

९१. लोगोंको नीचे देखते वाणोंको फेंकते निर्भय गजारूढ़ विजयी, चलायमान दुर्गोंका आश्रय लेनेकी तरह शत्रु-सेनासे नहीं जीते जा सके ।।२४।। —सर्ग १८

११. कवि परिचय

९२. श्रीवर्मलात नामक राजाके सुप्रभदेव नामक सर्वाधिकारी, पुण्याधिकारी, अनासक्त दृष्टिवाले, दूसरे देवता जैसे सदा निर्मल थे ।।१।।

९३. उस समय जिनके मित वचनका पालन राजा अनुरोधके बिना अपने हितकी इच्छासे ही करता था, जैसे तथागतकी सत्य-हित-फलयुक्त वचनको होशमंद ।।२।।

९४. उनके दत्तक नामक उदार, क्षमाशील, मृदु, धर्मपारायण पुत्र हुये। जिसका देखकर लोगोंने युधिष्ठिरके गुणग्राहक व्यास-कथित वचनको स्वीकार किया ।।३।।

९५. सर्वेण सर्वाश्रिय इत्यनिन्द्यमानन्दभाजा जनितं जनेन।
यश्च द्वितीयं स्वयमद्वितीयो मुख्यः सतां गौणमवाप
नाम[1] ॥४॥

९६. श्रीशब्दरम्यकृतसर्गसमाप्तिलक्ष्म
लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनमात्रचारु।
तस्यात्मजः सुकविकीर्तिदुराशयादः
काव्यं व्यधत्त शिशुपालवधाभिधानम्[2] ॥५॥

३६. भवभूति (७०० ई०)

तीन नाटकों—"मालतीमाधव", "महावीरचरित" "और "उत्तर रामचरित"—के रचयिता होने के कारण भवभूति नाटककार के तौर पर प्रसिद्ध हैं। यह भी कहा जाता है, कि दार्शनिक उम्बेक और भवभूति एक ही थे। यह संभव भी हो सकता है। वाक्यपतिराज ने अपने प्राकृत काव्य "गउडवह" (गौड़बध) में इनकी प्रशंसा की है। वाक्यपतिराज, कान्यकुब्ज के राजा यशोवर्मा (७५० ई०) के आश्रित थे, और भवभूति उनके गुरु थे। यशोवर्मा कौन से राज-वंश के थे, यह निश्चय करना मुश्किल है। कान्यकुब्ज गुप्तों के सामन्त और पीछे स्वतन्त्र सम्राट् मौखरियों की राजधानी रही, जिनके बाद वर्धन-वंश के राज्यवर्धन और हर्ष वर्धन ने वहां से शासन किया। हर्षवर्धन की मृत्यु (६४७ ई०) के बाद से गुर्जर-प्रतिहारों की प्रभुता के आरंभ होने के समय के बीच की प्रायः दो शताब्दियों का कान्यकुब्ज का इतिहास विशृंखलित है। इसी समय यशोवर्मा ने शासन किया था। मौखरी अपने नामों के साथ वर्मा लगाते थे, संभव है, उन्हींके यह वंशज रहा हो। "गउडवह" के एक श्लोक (८२९) में जिस सूर्यग्रहण का वर्णन आया है, वह डा० याकोबी के अनुसार १४ अगस्त ७३३ ई० को पड़ा था। भवभूति इससे पहले हो चुके थे। भवभूतिका "मालतीमाधव" अरोचक नाटकथा का एक अच्छा

१. आख्यानकी, २. इन्द्रवज्रा

९५. और स्वयं अकेले, सत्पुरुषोंमें मुख्य जिन्होंने आनंदभागी सारे लोगों से 'मत्रप्रिय' जैसा अनिंद्य दूसरा नाम प्राप्त किया ।।४।।

९६. उन दत्तकके पुत्र ने सुकवियोंकी कीर्ति (पाने) की दुराशासे, रमणीय श्रीशब्दसे सर्ग की समाप्त किये लक्षणवाले, लक्ष्मीपतिके चरित्रके कथनमात्रसे सुन्दर, इस **शिशुपालवध** नामक काव्यको बनाया ।।५।।

—ग्रन्थके अन्तमें

३६. भवभूति

उदाहरण है, यद्यपि उसके कितने ही स्थल सुन्दर भी हैं। "महावीरचरित" में महावीर राम के चरित को नाटक का रूप दिया गया है। उनकी सबसे सुन्दर कृति "उत्तररामचरित" है, जिसे संस्कृत के उत्कृष्ट नाटकों में रक्खा जा सकता है, और इसीसे भवभूति का लोहा मानने के लिये हम मजबूर हैं। अपभ्रंश-काल के और कवियों के पीछे जो परम्परा लाठी लेकर पड़ी हुई थी, उसीके शिकार भवभूति भी हुये। अपभ्रंश संस्कृत से दूर और आधुनिक भाषाओं के अत्यन्त समीप तथा बीच की कड़ी थी। प्राकृत के काल तक संस्कृत के साथ उच्चारण के बदलने से समीपता थी इसलिये, अल्पज्ञ भी काव्यको कसौटी पर कसने के लिये तैयार थे, पर अपभ्रंश काल में अज्ञ विशेषज्ञों का बोलबाला था, जिनके डरके मारे भी कवियों को क्लिष्ट रचना की ओर झुकना पड़ता था। भवभूति चाहे कान्यकुब्ज के दरबार में रहे हों, किन्तु उनका जन्म विदर्भ बरार) के पद्मपुर नगर में हुआ था। इनका गोत्र काश्यप था, पिता का नाम नीलकंठ, माता का नाम जतुकर्णी और दादा का नाम भट्टगोपाल था। इनका मुख्य नाम नीलकंठ था, लेकिन भवभूति के नाम से प्रसिद्ध हुये। इनके गुरु का नाम ज्ञाननिधि था।

१. मालतीमाधवम्

(१) मालती-प्रेम—

(ततः प्रविशति गृहीतचित्रफलकोपकरणः कलहंसः)

१. कलहंसः—क्वेदानीं तुलितमकरध्वजावलेपरूपविभ्रमाक्षिप्तमालतीहृदयमाहात्म्यं नाथं माधवं पश्यामि ? (परिक्रम्य) परिश्रान्तोऽस्मि । यावदिहोद्याने मुहूर्तं विश्रम्य मकरन्दसहचरं नाथं माधवं प्रेक्षिष्ये ।

(ततः प्रविशति मकरन्दः)

२. मकरन्दः—कथितमवलोकितया मदनोद्यानं गतो माधव इति । भवतु, गच्छामि । (परिक्रम्यावलोक्य च) । दिष्ट्या वयस्य इत एवाभिवर्तते । (निरूप्य) अस्य तु
गमनमलसं शून्या दृष्टिः शरीरमसौष्ठवं,
श्वसितमधिकं किं न्वेतत्स्यात्किमन्यदतोऽथवा ।
भ्रमति भुवने कन्दर्पाज्ञा विकारि च यौवनं,
ललितमधुरास्ते ते भावाः क्षिपन्ति च धीरताम् ॥२०॥

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टरूपो माधवः)

३. माधवः—

तामिन्दुसुन्दरमुखीं सुचिरं विभाव्य
चेतः कथंकथमपि व्यपवर्तते मे ।
लज्जां विजित्य विनयं विनिवार्य धैर्य-
मुन्मथ्य मन्थर विवेकमकाण्ड एव ॥२१॥

आश्चर्यम्,
यद्विस्मयस्तिमितमस्तमितान्यभाव-
मानन्दमन्दममृतप्लवनादिवासीत् ।

१. मालतीमाधव

१. मालती प्रेम—

१. कलहंस——कामदेव के अभिमान युक्त रूप-लावण्य के समान मालती के हृदयके महत्त्व को दिये, स्वामी माधवको कहां देखूं ? (परिक्रमा करके) थका हुआ हूं, तब तक यहां उद्यानमें क्षण भर विश्राम कर मकरंदके मित्र स्वामी माधवकी प्रतीक्षा करूँगा।

(तब मकरंद प्रवेश करता है)

२. मकरंद——अवलोकिताने कहा, कि माधव मदन-उद्यान गये। अच्छा, जाता हूं। (परिक्रमा करके और देखकर) ओहो, मित्र यहीं है। (ध्यानसे देखकर) इसकी तो——
गति सुस्त, दृष्टि शून्य, शरीर बुरा,
स्वांस अधिक है, यह क्या ? अथवा इससे दूसरा क्या हो सकता है।
भुवनमें कामदेवका हुक्म चल रहा है, और यौवन विकारवाला है।
वे-वे ललित और मधुर भाव आदमीकी धीरताको भगा देते हैं ।।२०।।

(तब उपरोक्त रूपमें माधव प्रवेश करता है)

३. माधव——

उस चन्द्रमुखीको बहुत देरतक देखकर मेरा मन कैसे-कैसे दूसरा सा हो रहा है। लज्जाको जीतकर विनयको हटाकर धैर्यको मथितकर अकाल हीमें मंद-बुद्धि ।।२१।।
आश्चर्य,
उसके पास जो मेरा हृदय अचल हो अन्य भावोंको हटाकर आनंद

तत्संनिधौ तदधुना हृदयं मदीय-
मंगारचुम्बितमिव व्यथमानमास्ते ॥२२॥

४. मकरन्दः—(उपसृत्य) सखे माधवः इत इतः ललाटन्तपस्तपति घर्मांशुः । तदस्मिन्नुद्याने मुहूर्तमुपविशावः ।

(उभौ परिक्रामतः)

कलहंस.—कथं मकरन्दसहचर इदमेव वालोद्यानमलंकरोति माधवः । तद् दर्शयामि मदनवेदनाखिद्यमानमालतीलोचनसुखावहमात्मनोऽस्य प्रतिच्छन्दकम् । अथवा विश्रामसौख्यं तावदनुभवतु ।

५. मकरन्दः—तदस्यैव तावदुच्छ्वसितकुसुमकेसरकषायशीतलामोदवासितोद्यानस्य कांचनपादपस्याधस्तादुपविशावः ।

(उभौ तथा कुरुतः)

मकरन्दः—वयस्य माधव, सकलनगरांगनाप्रवर्तितमहोत्सवाभिरामकामदेवोद्यानयात्राप्रतिनिवृत्तमन्यादृशमिव भवन्तमवधारयामि । अपि त्वमवतीर्णोऽसि रतिरमणबाणगोचरताम् ?

(माधवः सलज्जमधोमुखस्तिष्ठति)

६. मकरन्दः—(विहस्य) किमवनम्रमुग्धमुखपुण्डरीकः स्थितोऽसि, पश्य—

अन्येषु जन्तुषु च यस्तमसावृतेषु,
विश्वस्य धातरि समः परमेश्वरेऽपि ।
सोऽयं प्रसिद्धविभवः खलु चित्तजन्मा,
मा लज्जया तव कथंचिदपन्हुनतिर्भूत् ॥२३॥

७. माधवः—वयस्य, किं न कथयामि ? श्रूयताम् । गतोऽहमवलोकिनाजनितकौतुकः कामदेवायतनम् । इतस्ततः परिक्रम्य परिश्रमादुल्लसितमधुरमदिरामोदपरिमलाकृष्टमत्तमिलन्दलिपटलसंकुलाकुलितमुकुला-

से मन्द हो मानो अमृतमें तैरता था। सो अब अंगारसे छुयेकी तरह व्यथित हो रहा है ॥२२॥

४. मकरन्द---(पास आकर) सखे माधव, इधर, इधर (आओ) ललाट तपानेवाला सूर्य तप रहा है। सो इस उद्यानमें जरा देर बैठेंगे।

(दोनों परिक्रमा करके)

कलहंस---क्यों, मकरंदके साथ इसी बालोद्यानको माधव अलंकृत कर रहे हैं, तो कामवेदनासे खिन्न मालतीके लोचनोंके सुखद इनके निजी चित्रको दिखलाता हूं। अथवा यह विश्राम-सुख अनुभव करें।

५. मकरंद---तो हम खिलते फूलोंके केसरके कषायसे शीतल-सुगंधित इसी उद्यानके कांचन वृक्षके नीचे बैठें।

(दोनों वैसा करते हैं)

मकरंद---वयस्य माधव, सारे नगरकी स्त्रियोंके महोत्सव, सुन्दर मदनोद्यानकी यात्रा से लौटे आपको मैं दूसरा ही देख रहा हूं। क्या तुम रति-पतिके बाणोंके लक्ष्य (तो नहीं) हो गये?

(माधव लज्जा-सहित मुंह नीचे कर लेता है)

६. मकरंद---(विहंसकर) क्यों झुके पुंडरीक जैसे मुग्ध मुखवाले हो, देखो---

जो अन्धकारसे ढंके अन्य प्राणियों और
विश्वके विधाता परमेश्वरपर भी एक समान,
प्रसिद्ध वैभववाला यह मनसिज है, उसे
लज्जासे किसी तरह भी तू छिपा नहीं सकता ॥२३॥

७. माधव---वयस्य, क्यों नहीं कहूंगा, सुनो। अवलोकिताने कौतूहल उत्पादित करनेके कारण मैं कामदेवके मन्दिरमें गया। इधर-उधर घूमकर मैं थका था। उल्लासित मधुर मकरन्द-प्रमोद-गंधने आकृष्ट, सारे इकट्ठे भ्रमरों से अस्त-व्यस्त कलियोंका मनोहर आभरण

वलीमनोहराभरणस्य रमणीयांगणभुवो बालबकुलस्यालवालपरिसरे स्थितः। तस्य च यदृच्छया निरन्तरनिपतितानि विकसितानि कुसुमान्यादाय विदग्धरचनामनोहरां स्रजमभिनिर्मातुमारब्धवान् । अनन्तरं च देवस्य संचारिणी मकरकेतनस्य जगद्विजयवैजयन्तिका निर्गत्य गर्भभवनादुज्ज्वलविदग्धमुग्धबालनेपथ्यविरचनाविर्भावितकुमारीभावा महानुभावप्रकृतिरत्युदारपरिजना कापि तत एवागतवती।

सा रामणीयकनिधेरधिदेवता वा,
सौन्दर्यसारसमुदायनिकेतनं वा।
तस्याः सखे नियतमिन्दुकलामृणाल-
ज्योत्स्नादि कारणमभून्मदनश्च वेधाः ॥२४॥

८. अथ प्रणयिनीभिरनुचरीभिः कुसुमसंचयावचयलीलाभिलाषवतीभिरभ्यर्थ्यमाना तमेव बकुलपादपोद्देशमागतवती। तस्याश्च कस्मिंश्चिदपि महाभागधेयजन्मनि बहुदिवसोपचीयमानमिव मन्मथव्यथाविकारमुपलक्षितवानस्मि । यतः—

परिमृदितमृणालीम्लानमंगप्रवृत्तिः,
कथमपि परिवारप्रार्थनाभिः क्रियासु ।
कलयति च हिमांशोर्निष्कलंकस्य लक्ष्मी-
मभिनवकरिदन्तच्छेदकान्तः कपोलः ॥२५॥

सा मम दर्शनात्प्रभृत्यमृतवर्तिरिव चक्षुषोर्निरतिशयमानन्दमुत्पादयन्त्ययस्कान्तमणिशलाकेव लोहधातुमन्तःकरणमुपसंहृतवती। किं बहुना—

संतापसंततिमहाव्यसनाय तस्यां,
आसक्तमेतदनपेक्षितहेतु चेतः।
प्रायः शुभं च विदधात्यशुभं च जन्तोः,
सर्वंकषा भगवती भवितव्यतेव ॥२६॥

पहिले रमणीय आंगनमें उत्पन्न, तरुण मौलसरी वृक्षके थालेके पास खड़ा था। और यों ही उसके बराबर टपकते फूलोंको लेकर चतुर रचनासे एक मनोहर माला बना रहा था। फिर प्रकृति से बहुत से परिजनोंके साथ, उदार समृद्ध कामदेवकी चलती-फिरती विश्व-विजयिनी पताका सी घरके भीतर आ निकली, जो (अपने) उज्ज्वल चतुर मुग्ध बालिकाके भेस की बनावटसे, कुमारीपनको प्रकट कर रही थी।

सौंदर्य-राशिकी वह अधिष्ठात्री देवता थी,
या सौंदर्य-सारके समूहका सदन थी।
सखे, निश्चय उसके निर्माण की सामग्री चंद्रकला,
कमलनाल और चांदनी थी और विधाता मदन था ॥२४॥

८. तब फूलके जमा करने और चुननेके योगमें अभिलाषावाली स्नेही अनुचरियोंके प्रार्थना करने पर वह उसी मौलसरीके वृक्षके स्थानमें आई। फिर किसी बड़े भाग्यवान्‌के ऊपर उसके बहुत दिनोंसे जमा होते काम-व्यथाके विकार को मैंने देखे। क्योंकि—

मसली हुई कमलिनीकी तरह (उसका) अंग कुम्हालाया था,
परिवारकी प्रार्थनाओं पर किसी तरह कार्यमें प्रवृत्त होती थी,
गजके तुरन्त कटे दांतके जसा कमनीय उसका कपोल
निष्कलंक चन्द्रमाकी शोभा धारण कर रहा था ॥२५॥

देखते ही वह मेरी आंखोंको अमृतकी बत्तीकी तरह अत्यन्त आनन्दित करती, लोहधातुको (जैसे) चुम्बककी शलाका (उसी) तरह वह मेरे हृदयको खींचने लगी। बहुत क्या—

कारणके बिना ही यह (मेरा) चित्त,
संतापोंके महाव्यसनके लिये (उसमें) आसक्त हो गया।
सबपर प्रभुत्व रखनेवाली भगवती भवितव्यता ही,
प्रायः प्राणियोंके शुभ और अशुभ कराती है ॥२६॥

९. मकरन्दः—स्नेहश्च निमित्तसव्यपेक्षश्चेति विप्रतिषिद्ध-
मेतत्। पश्य
व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतुः
न खलु बहिरुपाधीन्प्रीतयः संश्रयन्ते।
विकसति हि पतंगस्योदये पुण्डरीकं,
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः ॥२७॥
ततस्ततः ?

१०. माधवः—ततश्च तत्र—
सभ्रूविलासमथ सोऽयमितीव नाम,
सप्रत्यभिज्ञमिव मामवलोक्य तस्याः।
अन्योन्यमेव चतुरेण सखीजनेन,
मुक्तास्तदा स्मितसुधामधुराः कटाक्षाः ॥२८॥
मकरन्दः—(स्वगतम्) कथं प्रत्यभिज्ञापि नाम।

११. माधवः—अथ ताः सलीलमुत्तालकरकमलतालिकात-रलवलयावलीकमुत्रस्तकलहंसविभ्रमाभिरामचरणसंचरणरणरणायमानमंजुमंजीररणितानुविद्धमेखलाकलापकिंकिणीरणरणत्कारमुखरं प्रतिनिवृत्य "भर्तृदारिके, दिष्ट्या वर्धामहे। यदत्रैव कोऽपि कस्या अपि वल्लभ-स्तिष्ठति" इति मामंगुलीदलविलासेनाख्यातवत्यः।
मकरन्दः—हन्त, महतः प्रथमानुरागस्योद्भेदः।
कलहंसः—(स्वगतं) अनयोः सरसरमणीयानुबन्धिनी खलु स्त्रीकथा।
मकरन्दः—ततस्ततः।

१२. माधवः—
अत्रान्तरे किमपि वाग्विभवातिवृत्तं,
वैचित्र्यमुल्लसितविभ्रममायताक्ष्याः।
तद्भूरिसात्विकविकारमपास्तधैर्यं,
आचार्यकं विजयि मान्मथमाविरासीत् ॥२९॥

९. मकरंद—स्नेह, और वह (अकारण) हो, यह उलटी बात है। देखो—
पदार्थोंको कोई आन्तरिक हेतु जोड़ता है,
प्रेम बाहरके साधनोंका आश्रय नहीं लेता।
सूर्यके उगनेपर कमल फूलता है,
चन्द्रके उदित होनेपर चन्द्रकान्त (मणि) पिघलती है ।।२७।।
तो फिर?

१०. माधव—और तब वहां:
मुझे देखकर उसके भौंहोंके संकेतके साथ
"यहीं है वह" यह परिचय शब्द
आपसमें चतुर सखियोंने (कहा),
फिर मुस्कानकी सुधा से मधुर कटाक्ष छोड़े ।।२८।।
मकरंद—(अपने आपसे) क्यों परिचय भी?

११. माधव—तब, लीलापूर्वक ऊपर की कमल सी हथेलीकी चंच-लतासे चलित कंकणोंको कर, भयभीत कलहंसकी गति से सुन्दर चरण-संचारसे रुनझुन करते, कोमल पाजेबके शब्दोंमें मिश्रित कटि-मेखलाओंकी किंकिणियोंके झंकारको मुखरित करते, लौटकर उन्होंने अंगुलियोंके विलाससे "स्वामिपुत्री, धन्य बधाई, जो यहीं पर किसी का प्रिय मौजूद है" कहकर मेरे बारेमें संकेत किया।

मकरंद—अहो, प्रथम अनुरागका भारी विस्फोट!

कलहंस—(अपने आपसे) और स्त्री-सम्बन्धी इनकी कथा सरस रमणीय है।

मकरंद—फिर-फिर।

१२. माधव—
इसी बीच वाणीसे कहनेके परे,
दीर्घनयनीका विचित्र कुछ उल्लसित
बहुत सात्विक विकार युक्त धैर्य, हारी-बर्ताव,
कामदेवके विजयी कौशलसा प्रकट हुआ ।।२९।।

१३. ततश्च—

स्तिमितविकसितानामुल्लसद्भ्रूलतानां,
मसृणमुकुलितानां प्रान्तविस्तारभाजाम्।
प्रतिनयनविपाते किंचिदाकुंचितानां,
विविधमहमभूवं पात्रमालोकितानाम् ॥३०॥

१४. ततश्च—

अलसवलितमुग्धस्निग्धनिष्पन्दमन्दै,
रधिकविकसदन्तर्विस्मयस्मेरतारैः।
हृदयमशरणं मे पक्ष्मलाक्ष्याः कटाक्षै,
रपहृतमपविद्धं पीतमुन्मूलितं च ॥३१॥

अहं तु तस्याः सर्वाकारहृदयंगमायाः संभाव्यमानस्नेहरसेन संनिधिना विधेयीकृतोऽपि पारिप्लवत्वमात्मनो निह्नोतुकामः प्राक्प्रस्तुतस्य बकुलपुष्पदाम्नो यथाकथंचिदवशेषं ग्रथितवानेव। ततो मिलितवेत्रपाणिवर्षवरप्रायपुरुषपरिवारा गजवधूमारुह्य नगरगामिनं मार्गमिन्दुवदनाऽलंकृतवती-

यान्त्या मुहुर्वलितकंधरमाननं तद्,
आवृत्तवृन्तशतपत्रनिभं वहन्त्या।
दिग्धोऽमृतेन च विषेण च पक्ष्मलाक्ष्या,
गाढं निखात इव मे हृदये कटाक्षः ॥३२॥

१५. ततः प्रभृति—

परिच्छेदातीतः सकलवचनानामविषयः
पुनर्जन्मन्यस्मिन्ननुभवपथं यो न गतवान्।
विवेकप्रध्वंसादुपचितमहामोहगहनो
विकारः कोऽप्यन्तर्जडयति च तापं च तनुते ॥३३॥

१६. अपि च—

परिच्छेदव्यक्तिर्न भवति पुरःस्थेऽपि विषये
भवत्यभ्यस्तेऽपि स्मरणमतथाभावविरसम्।

१३. और तब—

स्थिर विकसित उल्लसित भ्रू-लताओं,
स्निग्ध मुकुलित कोर तक फैलीं,
प्रत्येक दृष्टिपातपर किंचित आकुंचित,
दृष्टिपातोंका मैं विविध प्रकारसे लक्ष्य हुआ ।।३०।।

१४. और तब—

मंथर आकुंचित मुग्ध स्नेहयुक्त स्थिर मंद,
अधिक खिली आंतरिक आश्चर्यसे मुस्काती पुतलियों,
घनी पलकोंयुक्त आंखोंवाले उसके कटाक्षोंने मेरे बेबस हृदयको,
लूटा, छेदा, पिया और उन्मूलित किया ।।३१।।

सब तरहसे हृदयंगम उसकी संभाव्य स्नेहरस-युक्त समीपता से कृतकृत्य होते भी मैंने अपने हलकंपनको छिपानेकी इच्छासे पहलेसे शुरूकी मौलसरीके फूलकी बाकी मालाको जैसे-तैसे गूंथा। तब बेंतधारी हिजड़ों जैसे ही अधिकतर पुरुषोंवाली उस चन्द्रमुखी ने हथिनी पर चढ़कर नगरगामी मार्गको शोभित किया।

जाली घुमाये ढेंपवाले कमल-समान
मुखको क्षण-भर, तिरछे कंधेके साथ धारण करती।
उस घनी पलकोंवालीने अमृत और विषसे बुझे,
कटाक्षको मेरे हृदयमें दृढ़तासे गाड़ सा दिया ।।३२।।

१५. तबसे—

इस जन्ममें फिर कभी न अनुभूत, विवेकसे परे, सारी वाणी का अविषय, विवेकके नष्ट होनेसे महामोह संचयसे गहन, कोई विकार (मेरे) हृदय को जड़ बना ताप दे रहा है ।।३३।।

१६. और भी—

सामने अवस्थित वस्तुमें भी भेद नहीं व्यक्त होता,
बहुत अभ्यस्त ज्ञात संबंधी स्मृति भी उलटी हो जाती है।

न संतापच्छेदो हिमसरसि वा चन्द्रमसि वा
मनो निष्ठाशून्यं भ्रमति च किमप्यालिखति च ।।३४।।

१७. कलहंसः——दृढं कयाप्यद्यापहृतः। अपि नाम मालत्येव सा भवेत्।

मकरन्दः——(स्वगतम्) अहो, अभिषंगः। तत्किं निषेधयामि प्रियसुहृदम् ?

अथवा——

मा भूमुहृत्खलु भवन्तमनन्यजन्मा,
मा ते मलीमसविकारघना मतिर्भूत्।
इत्यादि नन्विह निरर्थकमेव यस्मिन्-
कामश्च जृम्भितगुणो नवयौवनं च ।।३५।।

(प्रकाशम्) वयस्य, अपि विदिते तदन्वयनामनी ?

१८. माधवः——श्रूयताम्। अथ तस्याः करेणुकाधिरोहणसमय एव ततः सखीकदम्बकादन्यतमो वारयोषिद्विलम्ब्य कुसुमापचयक्रमेण नेदीयसी भूत्वा प्रणम्य कुसुमापीडव्याजेन मामेवमुक्तवती——"महाभाग, सुश्लिष्टगुणलया रमणीय एष संनिवेशः। कुतूहलिनी च नो भर्तृदारिकास्मिन्वर्तते। तस्यामभिनवो विचित्रः कुसुमेषुव्यापारः। तद् भवतु कृतार्थता वैदग्ध्यस्य। फलतु निर्माणरमणीयता। समासादयतु सरस एष भर्तृदारिकायाः कण्ठावलम्बनमहार्घताम्" इति।

मकरन्दः——अहो वैदग्ध्यम्।

१९. माधवः——तया मदनुयुक्तयाख्यातम्——"इयममात्यभूरिवसोः प्रसूतिर्मालती नाम। अहं च भर्तृदारिकायाः प्रसादभूमिधात्रेयिका लवंगिका नाम" इति।

कलहंसः——(सहर्षं) किं नाम मालतीति। दिष्ट्या विलसितं भगवता देवेन कुसुमायुधेन। जितमस्माभिः।

शीतल सरोवर या चांदनीमें ताप नष्ट नहीं होता।
मेरा मन निरंतर घूमता कुछ चिंत्रित कर रहा है ॥३४॥

१७. कलहंस——किसीने बलपूर्वक आज आकृष्ट किया है। शायद वह **मालती** ही होगी।

मकरंद——(अपने आपसे) अहो, आसक्ति! तो क्या प्रिय मित्रको मना करूँ? अथवा——

आपको कामदेव मोहमें न डाले,
तुम्हारी बुद्धि मलिन बहुत विकारोंवाली न हो।
इत्यादि कहना (उसकेलिये) यहां निरर्थक ही है;
जिसके ऊपर कि कामदेव वाण और नवयौवन चढ़ाये है ॥३५॥
(प्रकट) वयस्य, क्या उसके कुल और नामको मालूम किया?

१८. माधव——सुनो। तब उसके हथिनी पर चढ़नेके समय उन सखियोंमें से एक सहेली थम कर फूल चुनती-चुनती पास आ प्रणाम करके कुसुममालाके बहानेसे मुझसे बोली: 'महाभाग, सुन्दर गठित गुण (सूत्र) के कारण यह रचना रमणीय है। हमारी स्वामि-पुत्रीकी इसमें दिलचस्पी है। उसमें नया और विचित्र पुष्पवाणका व्यापार है। सो आपकी चतुराई कृतार्थ, निर्माणकी रमणीयता सफल होवे। यह (माला) स्वामिपुत्रीके कंठमें धारण करनेकी सरस बहुमूल्यताको प्राप्त होवे।"
मकरंद——अहो चतुराई।

१९. माधव——मेरे पूछनेपर उसने बतलाया: "यह मन्त्री **भूरिवसुकी** कन्या मालती है। और मैं स्वामिपुत्रीकी कृपापात्र धाईकी लड़की **लवंगिका** हूं।"

कलहंस——(खुश होकर) क्या कहा मालती! धन्य, धन्य, भगवान् कामदेवने (खूब) लीला दिखलाई। हमारी जय हुई।

२०. मकरन्दः—(स्वगतम्) अमात्यभूरिवसोरात्मजेत्यपर्याप्तिर्बहुमानस्य। अपि तु, मालती मालतीति मोदते भगवती कामन्दकी। तां च राजा नन्दनाय याचत इति किंवदन्ती श्रूयते। (प्रकाशम्) ततः?

२१. माधवः—तया चानुवध्यमानस्तां वकुलमालामात्मनः कण्ठादवतार्य दत्तवान्। असौ पुनरभिनिविष्टया दृशा मालतीमुखावलोकनविहस्ततया विषमरचितैकभागामपि तामेव मुहुर्मुहुर्बहुमन्यमाना "महानयं प्रसाद" इति प्रतिगृहीतवती। अनन्तरं च यात्राभंगप्रचलितस्य महतः पौरनैगमजस्य संकुलेन विघटितायां तस्यामागतोऽस्मि।

२२. मकरन्दः—वयस्य, मालत्या अपि स्नेहदर्शनात्सुश्लिष्टमेतत्। यो हि कपोलपाण्डुतादिचिह्नैः सूचितः प्रागनुरारागस्तस्याः कामाभिषंगः सोऽपि त्वन्निबन्धन इति व्यक्तमेतत्। एतत्तु न ज्ञायते क्व दृष्टपूर्वस्तया वयस्य इति। न खलु तादृश्यो महाभागधेयजन्मानोऽन्यत्रासक्तचेतसो भूत्वा परत्र चक्षूरगिण्यो भवन्ति। अपि च—

अन्योन्यसंभिन्नदृशां सखीनां।
तस्यास्त्वयि प्रागनुरागचिह्नम्।
कस्यापि कोऽपीति निवेदितं च

२३. माधवः—किं चान्यत्?

मकरन्दः—

धात्रेयिकायाश्चतुरं वचश्च ॥३६॥

२४. कलहंसः (उपसृत्य)—एतच्च। (चित्रं दर्शयति)-(उभौ पश्यतः)

मकरन्दः—कलहंसक, केनेदं माधवस्य रूपमभिलिखितम्?

२५. कलहंसः—येनैवास्य हृदयमपहृतम्।

मकरन्दः—अपि नाम मालत्या?

२०. मकरंद—(अपने आपसे) मन्त्री भूरिवसुकी आत्मजा है, यह सम्मान पूर्ण नहीं है! पर, "मालती, मालती" कहती भगवती कामंदकी प्रसन्न होती हैं। और इसे राजा, नंदनके लिये माग रहा है, यह किंवदन्ती सुनी जाती है। (प्रकट) तब?

२१. माधव—उसके आग्रह करनेपर उस बकुल मालाको अपने कंठसे उतार कर मैंने दे दिया। बहुत आदरयुक्त दृष्टिसे मालतीके मुखके अवलोकन के समय भूल कर एक भागमें उलटी गुंथी मालाको लेकर भी बार-बार कृतज्ञता प्रकट करते "यह भारी प्रसाद है" कह कर उसने ले लिया। फिर मेले के उठनेसे चलते नागरिक जनोंकी भारी भीड़ में उस (तरुणी) के दूर होनेपर मैं चला आया।

२२. मकरंद—मित्र, मालतीके स्नेहयुक्त दर्शनसे यह अच्छा हुआ, जो कि गालोंका पीलापन आदि चिह्नवाला, उसकी कामासक्ति, पहलेका अनुराग दिखलाई पड़ा, सो भी तेरे ही कारण, यह स्पष्ट है। पर यह नहीं मालूम हुआ, कि उसने वयस्यको पहले कहां देखा? वैसी बड़भागिनी एकमें चित्तासक्त हो दूसरे पर नेत्रोंसे प्रेम करनेवाली नहीं होती। और भी—

एक दूसरेसे आंखें मिलाती उसकी सखियोंका
"किसीका कोई यह कहना"
तेरे विषयमें उसका पहलेसे प्रेम-चिह्न,

२३. माधव—और दूसरा क्या?

मकरंद—

धाईकी बेटीका चतुराई सहित बोलना ॥३६॥

२४. कलहंस—(पास आकर) और यह। (चित्र दिखलाता है)

(दोनों देखते हैं)

मकरंद—कलहंसक, किसने माधवका यह चित्र चित्रित किया?

२५. कलहंस—जिसने कि इनके हृदयको चुराया।

मकरंद—क्या मालतीने?

२६. कलहंसः—अथ किम् ?
माधवः—वयस्य मकरन्द, प्रसन्नप्रायस्ते तर्कः।
मकरन्दः—कुतोऽस्याधिगमस्ते ?

२७. कलहंसः—मम तावन्मन्दारिकाहस्तात्। तस्या अपि लवंगिकासकाशात्।
मकरन्दः—कथय, किमाह मन्दारिका माधवालेख्य-प्रयोजनं मालत्याः ?

२८. कलहंसः—उत्कण्ठाविनोदनमिति।
मकरन्दः—वयस्य, समाश्वसिहि—
या कौमुदी नयनयोर्भवतः सुजन्मा,
तस्या भवानपि मनोरथबन्धबन्धुः।
तत्संगमं प्रति सखे न हि संशयोऽस्ति,
यस्मिन्विधिश्च मदनश्च कृताभियोगः ॥३७॥
द्रष्टव्यरूपा च भवतो विकारहेतुस्तदत्रैवालिख्यताम्।

२९. माधवः—यदभिरुचितं वयस्याय। (लिखन्) सखे मकरन्द,
बारंवारं तिरयति दृशावुद्गतो बाष्पपूरस्,
तत्संकल्पोपहितजडिमस्तम्भमभ्येति गात्रम्।
सद्यःस्विद्यन्नयमविरतोत्कम्पलोलांगुलीकः,
पाणिर्लेखाविधिषु न नितरां वर्तते किं करोमि ॥३८॥
तथाप्यवहितोऽस्मि। (चिरादभिलिख्य दर्शयति)

३०. मकरन्दः—(चित्रं निर्वर्ण्य) उपपन्नस्तावदत्रभवतोऽभि-षंगः। (सकौतुकम्) कथमचिरेणैव निर्माय लिखितः श्लोकः ? (वाचयति)
जगति जयिनस्ते ते भावा नवेन्दुकलादयः,
प्रकृतिमधुराः सन्त्येवान्ये मनो मदयन्ति ये।

२६. कलहंस---और क्या ?

माधव---मित्र मकरंद, तेरा तर्क ठीक ही है।

मकरंद---कहांसे तुझे यह मिला ?

२७. कलहंस---मुझे मंदारिकाके हाथसे, उसे भी लवंगिकाके पाससे।

मकरंद---बतला, मंदारिकाने मालती को माधवके चित्रका क्या प्रयोजन बतलाया ?

२८. कलहंस---उत्कंठा हटाना।

मकरंद---वयस्य निश्चिंत हो जाओ।

जो तुम्हारे नेत्रोंकी सुजन्मी चांदनी है,
आप ही उसके मनोरथमें बंधे बंधु हैं।
सखा, उसके मिलनमें संशय नहीं,
जिसके लिये विधाता और मदन (दोनों) कटिबद्ध हैं ॥३७॥

यही आपके मनोविकारका कारण है, सो यहां ही उस सुन्दरीको चित्रित करो।

२९. माधव---मित्र की जो मर्जी। (चित्रित करते) सखे मकरंद,

आंखोंमें निकलते आंसू बार-बार ढांक देते हैं
उसके संकल्पसे आई जड़ता से शरीर स्तब्ध हो रहा है।
तुरन्त पसीजता कंपनसे लगातार चंचल अंगुलियोंवाला यह,
हाथ चित्रण-कार्यमें बिलकुल नहीं लगता, क्या करूं ॥३८॥

तो भी लगा हूं। (देरसे चित्रित करके दिखलाता है)

३०. मकरंद---(चित्रको भली प्रकार देखकर) यहां आपकी आसक्ति बिलकुल उचित है। (कौतूहलके साथ) क्या जल्दी ही रचकर श्लोक भी लिख दिया ? (बांचता है)---

संसारमें नवीन चन्द्रकला आदि पदार्थों की जय है, किन्तु स्वभावतः
मधुर वह दूसरे ही हैं, जो कि मनको मस्त करते हैं।

मम तु यदियं याता लोके विलोचनचन्द्रिका,
नयनविषयं जन्मन्येकः स एव महोत्सवः ॥३०॥

(प्रविश्य)

३१. मन्दारिका—कलहंस कलहंस, चोर चोर, पदानुसारेण लब्धोऽसि। (सलज्जं) कथं तावपि महानुभावावत्रैव? (उपसृत्य) प्रणमामि।
उभौ—मन्दारिके, इत आगम्यताम्।

३२. मन्दारिका—कलहंसक, उपनय चित्रफलकम्।
कलहंसः—गृहाणेदम्।

३३. मन्दारिका—केन किंनिमित्तं वाऽत्र मालत्यभिलिखिता?
कलहंसः—य एव यन्निमित्तं मालत्या।

३४. मन्दारिका—(सहर्षम्) दिष्ट्या उपदर्शितफलं विज्ञानं प्रजापतेः।
मकरन्दः—सखि मन्दारिके, यदत्र वस्तुन्येष ते वल्लभः कथयति, अपि तत्तथा?

३५. मन्दारिका—महाभाग, तत्तथा।
मकरन्दः—क्व पुनर्मालती माधवं प्राग्दृष्टवती?
मन्दारिका—लवंगिका भणति वातायनगतेति।
मकरन्दः—नन्वमात्यभवनासन्नरथ्यैव बहुशः संचरावहे, तदुपपन्नमेतत्।

३६. मन्दारिका—अनुमन्यतां महाभागः, यावदिदं भगवतो देवस्य मदनस्य सुचरितं प्रियसख्यै लवंगिकायै निवेदयिष्यामि।
मकरन्दः—प्राप्तावसरमेतद् भवत्याः।
मकरन्दः—वयस्य, मध्याह्नोऽतिवर्तते। तदेहि। संस्त्यानमेव प्रविशावः।

(उत्थाय परिक्रामतः)

मेरे लिये तो संसारमें जो यह नेत्र-चंद्रिका,
नयन गोचर हुई, इस जन्ममें (बस) वही एक महोत्सव है ।।३०।।

(प्रवेश करके)

३१. मंदारिका—कलहंस, चोर, चोर पैरोंके निशानसे तुझे पकड़ लिया। (लज्जित हो) क्या, वे दोनों महानुभाव भी यहीं हैं ? (पास जाकर) प्रणाम करती हूं।

दोनों—मंदारिके, यहां आइये।

३२. मंदारिका—कलहंसक, ला चित्र।

कलहंस—ले इसे।

३३. मंदारिका—किसलिये किसने यहां मालती चित्रित की ?

कलहंस—जिसके लिये, मालतीने चित्रित किया।

३४. मंदारिका—(खुशीके साथ) धन्य, ब्रह्माके विज्ञानका फल दिखला दिया।

मकरंद—सखी मंदारिके, इसके बारे में जो यह तेरा प्रियतम कहता है, क्या वह वैसा ही है ?

३५. मंदारिका—महाभाग, वह वैसा ही है।

मकरंद—तो मालतीने कहां पहले माधवको देखा ?

मंदारिका—लवंगिका कहती है, खिड़की परसे ?

मकरंद—हां, अमात्यके भवनके पास वाली इस सड़कपर हम बहुधा आया जाया करते थे, सो यह ठीक है।

३६. मंदारिका—अनुमति दें महाभाग, कि भगवान् कामदेवके इस सुन्दर कामका मैं प्रियसखी लवंगिकासे निवेदन करूं।

मकरंद—यह आपके लिये ठीक अवसर है।

(उठकर दोनों परिक्रमा करते हैं)

३७. माधवः—एवं हि मन्ये—
घर्माम्भोविसरविवर्तनैरिदानीं,
मुग्धाक्ष्याः परिजनवारसुन्दरीणाम्।
तत्प्रातर्विहितविचित्रपत्ररेखा-
वैदग्ध्यं जहति कपोलकुंकुमानि ॥४०॥

३८. अपि च—
उन्मीलन्मुकुलकरालकुन्दकोश-
प्रच्योतद्घनमकरन्दगन्धबन्धो।
तामीषत्प्रचलविलोचनां नतांगी-
मालिंगन्पवन मम स्पृशांगमंगम् ॥४१॥

३९. मकरन्दः—(स्वगतम्)
अभिहन्ति हन्त कथमेष माधवं
सुकुमारकायमनवग्रहः स्मरः।
अचिरेण वैकृतविवर्तदारुणः
कलभं कठोर इव कूटपाकलः ॥४२॥
तदत्र भवती कामन्दकी नः शरणम्।

४०. माधवः—(स्वगतम्)
पश्यामि तामित इतः पुरतश्च पश्चाद्
अन्तर्बहिः परित एव विवर्तमानाम्।
उद्बुद्धमुग्धकनकाब्जनिभं वहन्तीं,
आसंगतिर्यक्प्रवर्तितदृष्टिवक्त्रम् ॥४३॥

४१. (प्रकाशम्) वयस्य, मम हि संप्रति—
प्रसरति परिमाथी कोऽप्ययं देहदाहस्,
तिरयति करणानां ग्राहकत्वं प्रमोहः।
रणरणकविवृद्धिं बिभ्रदावर्तमानं,
ज्वलति हृदयमन्तस्तन्मयत्वं च धत्ते ॥४४॥
(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

३७. माधव—ऐसा समझता हूं—

अब (उस) मुग्ध-नयनाको परिजन-सुन्दरियों द्वारा,
सबेरे बनाई वह अद्भुत पत्रांकन-चातुरी।
पसीनेकी बूंदोंके फैलनेसे,
कपोलके केसरको छोड़ती होगी ॥४०॥

३८. और भी,

खिली कलियोंसे भयंकर कुंदके गर्भसे,
गिरते घने केसरकी गंधके साथी हे पवन,
उस किंचित् चलित नयना, झुके अंगोंवालीका,
आलिंगन कर तुम मेरे अंग-अंगका स्पर्श करो ॥४१॥

३९. मकरंद—(अपने आपसे)

हन्त क्या यह अनियंत्रित कामदेव।
सुकुमार शरीरवाले माधवको (वैसे ही) मार रहा है।
(जैसे) जल्दी ही दारुण परिणाम देनेवाला,
कूटपाकल (कठोर) रोग, तरुण गजको ॥४२॥
सो यहां कामंदकी जी ही हमारी रक्षा कर सकती हैं।

४०. माधव—(अपने आपसे)

भीतर-बाहर चारों ओर ही घूमती,
फूले मुग्ध सुवर्णकमल समान,
तिरछी दृष्टि युक्त मुखको धारण करती,
उसे वहां-यहां, सामने और पीछे देखता हूं ॥४३॥

४१. (प्रकट) वयस्य, मुझे तो इस समय—

यह कोई अति पीड़क ेह-दाह फैल रहा है,
भारी मोह इन्द्रियोंको ग्रहण-शक्ति बिना कर रहा है।
बढ़ती उत्कंठा युक्त चक्कर काटता,
हृदय भीतरसे जलता तन्मय हो रहा है ॥४४॥

(सब चले गये)

—अंक १

(२) मालती-वियोगः

४२. माधवः—हा प्रियवयस्य संभावय। परिष्वजस्व माम्। प्रियां मालतीं प्रति तु निराश एव संवृत्तोऽस्मि।

४३. मकरन्दः—एषोऽहं संभावयामि जीवितेश्वरम्। (विलोक्य सकरुणम्) कष्टम्। कथमाविर्भूतमत्परिष्वंगोत्कण्ठ एव निश्चेतनः संवृत्तः। तत्कृतमिदानीं जीविताशाव्यसनेन। सर्वथा नास्ति मे प्रियवयस्य इति युक्तः परिच्छेदः। हा वयस्य—

४४. यत्स्नेहसंज्वरवता हृदयेन नित्यं
आबद्धवेपथु विनापि निमित्तयोगात्।
त्वय्यापदो गणयता भयमन्वभावि,
तत्सर्वमेकपद एव मम प्रणष्टम्॥३६॥
अथवा वरं त एवातिक्रान्ता मुहुर्ताः, येषु तथाविधमपि भवन्तं चेतयमानमनुभूतवानस्मि। इदानीं तु मम—

४५. भारः कायो जीवतं वज्रकीलं,
काष्ठाः शून्या निष्फलानीन्द्रियाणि।
कष्टः कालो मां प्रति त्वत्प्रयाणे,
शान्तालोकः सर्वतो जीवलोकः॥३७॥

४६. (विचिन्त्य) तत्किं नु माधवास्तमयसाक्षिणा भवितव्यमित्यतो जीवामि? तदस्माद् गिरिशिखरात्पाटलावत्यां निपत्य माधवस्य मरणाग्रेसरो भवामि। (सकरुणं परिवृत्यावलोक्य च) कष्टम्।

४७. तदेतदसितोत्पलद्युति शरीरमस्मिन्नभूत्,
ममापि दृढपीडनैरपि न तृप्तिरालिंगनैः।
यदुल्लसितविभ्रमा मम निपीतवत्यः पुरा
नवप्रणयविभ्रमाकुलितमालतीदृष्टयः॥३८॥

२. मालती का वियोग

४२. माधव—हा प्रिय मित्र, प्रेम दिखा, मुझे आलिंगन कर। प्रिया मालतीके बारेमें तो मैं निराश हो गया हूं।

४३. मकरंद—यह मैं (अपने) जीवनके स्वामी को प्यार करता हूं। (देखकर करुणाके साथ) हाय! मेरे आलिंगनकी उत्कंठा होते ही बेहोश हो गया। तो अब जीवनकी आशाके लिये हैरान होना बेकार है। मेरा प्रिय मित्र (अब) बिल्कुल नहीं रहा, यही सोचना ठीक है। हा मित्र—

४४. जो कि स्नेह ज्वरयुक्त हृदयसे सदा,
बिना कारण ही कांपते हुये,
तेरे विषयमें आपत्तियोंको गिनते मैंने भय अनुभव किया,
सो सब मेरा एक क्षणमें ही नष्ट हो गया ।।३६।।
अथवा वह बीते हुए क्षण ही अच्छे, जिनमें कि वैसे भी (कम से कम) मैंने होश-हवास रखते आपको साक्षात् तो किया था। अब तो मेरे लिये—

४५. शरीर भार है, जीवन वज्रका कांटा है।
दिशायें सूनी हैं, इन्द्रियां निष्फल हैं।
मेरे लिये काल कष्टमय है, तेरे महाप्रयाण करनेपर,
चारों ओर जीवलोक बुझे-प्रकाशसा है ।।३७।।

४६. (सोचकर) तो क्या माधवके अस्त होनेका साक्षी होनेके लिये (ही) मैं जी रहा हूं? (नहीं), इस पर्वतशिखरसे पाटलावती नदीमें गिरकर माधवके मरणमें अगगामी होता हूँ। (करुणाके साथ घूमकर और देखकर) हाय—

४७. तो सांवले रंगके शरीरके दृढ़ दबावके,
आलिंगनोंसे मेरी तृप्ति नहीं हुई।

हन्त भोः, एकस्यां तनावेतावतो गुणसमाहारस्य संनिवेशः कथमिवाभूत् ? सखे माधव—

४८. आपूर्णश्च कलाभिरिन्दुरमलो यातश्च राहोर्मुखं,
संजातश्च घनाघनो जलधरः शीर्णश्च वायोर्जवात् ।
निर्वृत्तश्च फलेग्रहिर्द्रुमवरो दग्धश्च दावाग्निना,
त्वं चूडामणितां गतश्च जगतः प्राप्तश्च मृत्योर्वशम्।।३९।।

४९. तत्परिष्वजे तावदेवं गतमपि प्रियवयस्यम् । अर्थितश्चानेन संप्रत्ययमेवार्थः। (परिष्वज्य) हा वयस्य, विमलकलानिधे गुणगुरो, हा मालतीस्वयंग्राहजीवितेश्वर, हा कामन्दकीमकरन्दानन्दजनक **माधव**, अयमत्र ते जन्मन्यपश्चिमः पश्चिमावस्थाप्रार्थितो मकरन्दबाहुपरिष्वंगः। सखे, संप्रति मुहूर्तमपि मकरन्दो जीवतीति मैवं मंस्थाः। कुतः—

५०. आ जन्मनः सह निवासितया मयैव,
मातुः पयोधरपयोऽपि समं निपीय ।
त्वं पुण्डरीकमुखबन्धुतया निरस्तं,
एको निवापसलिलं पिबसीत्ययुक्तम् ।।४०।।
(सकरुण विमुच्य, परिक्रम्य) इयमधस्तात्**पाटलावती**।

भगवत्यापगे—

५१. प्रियस्य सुहृदो यत्र मम तत्रैव संभवः ।
भूयादमुष्य भूयोऽपि भूयासमनुसंचरः ।।४१।।
(इति पतितुमिच्छति)

५२. सौदामिनी—(प्रविश्य सहसा वारयित्वा) वत्स, कृतं साहसेन ।

मकरन्दः—(विलोक्य) अम्ब, कासि ? किमर्थं त्वयाहं प्रतिषिद्धः ?

जिसे कि अभिनव प्रेमकी लीलासे आकुलित,
उल्लसित विलासयुक्त मालतीकी नजरोंने पहले पिया था ।।३८।।
हन्त हे, एक शरीरमें इतने गुणोंका समागम कैसे हुआ ? सखे माधव,

४८. कलाओंसे परिपूर्ण निर्मल इन्दु राहुके मुखमें चला गया,
और घना हुआ मेघ वायुवेगसे विशीर्ण हो गया।
फलदार श्रेष्ठ वृक्ष वनकी आगसे जल गया।
जगत्के चूड़ामणि तुम मृत्युके वशमें चले गये ।।३९।।

४९. तो ऐसे ही प्रिय मित्र का आलिंगन करता हूं। अभी इसने ऐसा चाहा भी था। (आलिंगन करके) हा मित्र, निर्मल चन्द्र गुणोंमें गुरु, हा मालतीके स्वयं बनाये जीवितेश्वर, हा कामंदकी और मकरंदके आनंददायक माधव, यहां इस जन्ममें अन्तिम अवस्थामें तेरा प्रार्थित मकरंदका यह दुर्लभ बाहु-आलिंगन है। सखे, अब मुहूर्त भर भी मकरंद जीयेगा, यह न समझना। क्योंकि—

५०. जन्मसे ही इकट्ठा मेरे साथ रहते,
माताके स्तनका दूध भी एक साथ पीते,
तुम कमलमुखके सदृश होते दूसरेके बिना,
अकेले तर्पणका जल पीयो, यह अनुचित है ।।४०।।
(करुणाके साथ छोड़कर परिक्रमा करके) यह नीचे पाटलावती बह रही है। भगवती नदी,

५१. प्रिय मित्र जहां जन्मे वहीं मेरा भी जन्म हो।
मैं फिर भी इसका साथी होऊं ।।४१।।
(गिरना चाहता है)

५२. सौदामिनी—(प्रवेश करके एकाएक रोककर) वत्स, रहने दे, यह साहस।
मकरंद—(देखकर) मां, तुम कौन हो ? किसलिये तुमने मुझे मना किया ?

५३. सौदामिनी—आयुष्मन्, किं त्वं मकरन्दः?
मकरन्दः—मुंच । स एवास्मि मन्दभाग्यः ।

५४. सौदामिनी—वत्स, योगिन्यस्मि । मालतीप्रत्यभिज्ञानं च धारयामि । (बकुलमालां दर्शयति) ।
मकरन्दः—(सोच्छ्वासं सकरुणम्) अपि जीवति मालती ?

५५. सौदामिनी—अथ किम् । वत्स, किमत्याहितं माधवस्य, यदनिष्टं व्यवसितोऽसीत्याकम्पितास्मि ।
मकरन्दः—आर्ये, तमहं प्रमुग्धमेव वैराग्यात्परित्यज्यागतः । तदेहि, तूर्णं संभावयावः ।

(त्वरितं परिक्रामतः)

मकरन्दः—(विलोक्य) दिष्ट्या प्रत्यापन्नचेतनो वयस्यः ।

५६. सौदामिनी—(स्वगतं) संवदत्युभयोर्मालतीनिवेदितः शरीराकारः ।

५७. माधवः—(आश्वस्य) अये, प्रतिबोधितवानस्मि केनापि (विचिन्त्य) नूनमस्यायं नवजलधरप्रभंजनस्यानवेक्षितास्मदवस्थो व्यापारः । भगवन् पौरस्त्य वायो,

भ्रमय जलदानम्भोगर्भान्प्रमोदय चातकान्,
कलय शिखिनः केकोत्कण्ठान्कठोरय केतकान् ।
विरहिणि जने मूर्च्छां लब्ध्वा विनोदयति व्यथां,
अकरुण पुनः संज्ञाव्याधिं विधाय किमीहसे ।।४२।।

५८. मकरन्दः—सुविहितमनेनाखिलजन्तुजीवनेन मातरिश्वना । अपि च—

एते कैतकसूनसौरभजुषः पौरप्रगल्भांगना—
व्यालोलालकवल्लरीविलुठनव्याजोपभुक्ताननाः ।

५३. सौदामिनी—आयुष्मान, क्या तू **मकरंद** है?
मकरंद—छोड़ो, मैं वही आभागा हूं।

५४. सौदामिनी—वत्स, मैं योगिनी हूं, **मालती** की खबर मेरे पास है।
(मौलसरीकी माला दिखलाती है)
मकरंद—(उसास ले करुणाके साथ) क्या **मालती** जीती है?

५५. सौदामिनी—और क्या? वत्स, क्या माधवका अति-अहित हो गया, जो कि तुम अनिष्ट करने पर उतारू हो। यह सोच मैं कांप रही हूं।
मकरंद—आर्ये, उसे मैं मूर्च्छित ही छोड़कर निराश हो आ गया। सो आओ, जल्दी (उसे) संभालें।

(जल्दी-जल्दी दोनों परिक्रमा करते)

मकरंद—(देखकर) धन्य, होशमें आ गया है मित्र।

५६. सौदामिनी—(अपने आपसे) मालती की बतलाई शरीर-आकृति दोनों की मिलती है।

५७. माधव—(आश्वास लेकर) अये, किसीने मुझे जगा दिया! (सोचकर) निश्चय ही हमारी अवस्थाका ध्यान न किये नवीन मेघवाले इस वायुका यह काम है। भगवान् पूर्वी वायु—
जल लिये हुए मेघोंको घुमाओ, चातकों को प्रमुदित करो,
मोरोंको केकाके लिये उत्कंठित करो, केवड़ोंको कठोर बनाओ।
मूर्च्छित हो व्यथा दूर हुये विरही जनोंको,
होशका रोग लगा, हे निष्ठुर, तुम क्या चाहते हो।।४२।।

५८. मकरंद—समस्त प्राणियोंके जीवन इस वायुने ठीक (ही) किया। और भी—
केवड़ेके पुष्पकी गंधवाले, नगरकी ढीठ अंगनाओंके
कुंचित अलकलताओंपर गिरनेके बहाने सुखका उपभोग करते,

किंचोन्निद्रकदम्बकुड्मलपुटीधूलीलुठत्षट्पद—
व्यूहव्याहृतिहारिणो विरहिणः कर्षन्ति वर्षानिलाः ॥४३॥

५९. माधवः—देव वायो, तथापि भवन्तमेवं प्रार्थये—
विकसत्कदम्बनिकुरुम्बपांसुना,
सह जीवितं घटय मे प्रिया यतः।
अथवा तदंगपरिवासशीतलं,
मयि किंचिदर्पय भवांस्तु मे गतिः ॥४४॥
(कृतांजलिः प्रणमति)

६०. सौदामिनी—सुसमाहितः खल्वभिज्ञार्पणस्यावसरः।
(अंजलौ बकुलमालामर्पयति)।

६१. माधवः—(साकूतं सहर्षं सविस्मयं च) कथमियमस्म-द्विरचिता प्रियास्तनेनोन्नाहदुर्ललितमूर्तिरनंगमन्दिरांगणब-कुलपादपकुसुममाला? (सम्यङ् निरूप्य) कः संदेहः? तथा हि स एवायमस्याः—

६२. मुग्धेन्दुसुन्दरतदीयमुखावलोक—
हेला विश्रृंखलकुतूहलनिह्नवाय।
दुर्न्यस्तपुष्परचितोऽपि लवंगिकायास्,
तोषं ततान विषमग्रथितो विभागः ॥४५॥
(सहर्षोन्मादमुत्थाय) चण्डि मालति, इयं विलोक्यसे।
(सकोपमिव) अयि मदवस्थानभिज्ञे—

६३. प्रयान्तीव प्राणाः सुतनु हृदयं ध्वंसत इव,
ज्वलन्तीवांगानि प्रसरति समन्तादिव तमः।
त्वराप्रस्तावोऽयं न खलु परिहासस्य विषयस्,
तदक्ष्णोरानन्दं वितर मयि मा भूरकरुणा ॥४६॥
(सर्वतो दृष्ट्वा सनिर्वेदम्) कुतोऽत्र मालती? (बकुल-मालां प्रति) अयि प्रियाप्रणयिनी, परमोपकारिण्यसि—

और फूले कदम्बकी कलियोंके पुटकी रजमें लोटते, भंवरोंके शब्दोंसे मनोहर (ये) वर्षा-वायु विरहियोंका आकर्षण करते हैं ।।४३।।

५९. माधव—हे वायुदेव, तो भी आपसे यह प्रार्थना करता हूं—
फूलते कदम्बकी कलियों की धूलिसे,
जहां मेरी प्रिया है, उसका सहजीवी बनाओ,
अथवा उसके अंगसे वासित कुछ शीतलता,
मेरे ऊपर डालो । आप ही तो मेरे सब कुछ हैं ।।४४।।
(हाथ जोड़कर प्रणाम करता है)

६०. सौदामिनी—चीन्हा देनेका (यह) बहुत अच्छा अवसर मिला।
(अंजलिमें मौलसरीकी माला डाल देती है) ।

६१. माधव—(जिज्ञासा, हर्ष और विस्मयके साथ) क्या यह प्रियाके उच्च स्तनसे खेलनेवाली मूर्ति, कामदेव-मन्दिरके आंगनमें हमारी बनाई बकुल वृक्षकी पुष्पमाला है। (अच्छी तरह देखकर) इसमें क्या संदेह, क्योंकि इसमें वही है—

६२. मुग्धचन्द्र से सुन्दर उसके मुखके अवलोकन
के भाव वाले (अपने) अस्त-व्यस्त कुतूहलको छिपानेके लिये,
बिना क्रमके फूलोंसे बुरा गुथा भी इसका भाग,
लवंगिका के संतोषको बढ़ानेवाला हुआ ।।४५।।
(हर्ष और उन्मादके साथ उठकर)हे चंडी मालती, यह तू दिखाई दे रही है । (कुपित सा) अरी, मेरी अवस्थासे अनभिज्ञ—

६३. हे सुशरीरे, प्राण जा से रहे हैं, हृदय ध्वस्त सा हो रहा है ।
अंग जल से रहे हैं, चारों ओर अंधकार फैल रहा है ।
यह जल्दीका प्रस्ताव है, मज़ाकका विषय नहीं है ।
सो (आ) आंखोंको आनन्द दे, मेरे प्रति निष्ठुर मत हो ।।४६।।
(चारों ओर देखकर खेदके साथ) यहां कहां है मालती ? (बकुल मालाके प्रति) अये, प्रियाकी प्रेमिका, तू परमोपकारिणी है ।

६४. निष्प्रत्यूहाः प्रियसखि यदा दुःसहाः संबभूवुर्,
मोहोद्दामव्यसनगुरवो मन्मथोन्मादवेगाः।
तस्मिन्काले कुवलयदृशस्त्वत्समाश्लेषणं वा
प्राणत्राणं प्रगुणमभवन्मत्परिष्वंगकल्पः ॥४७॥

(सकरुणं निःश्वस्य)—

६५. आनन्दनानि मदनज्वरदीपनानि,
गाढ़ानुरागरसवन्ति तदा तदा च।
स्नेहाकराणि मम मुग्धदृशश्च कण्ठे
कष्टं स्मरामि तव तानि गतागतानि ॥४८॥

(हृदये निधाय मूर्च्छति)—

६६. मकरन्दः—(उपसृत्य) सखे, समाश्वसिहि।
माधवः—(समाश्वस्य) मकरन्द, किं न पश्यसि कुतोऽपि सहसैव मालतीस्नेहस्वहस्तस्य लाभः।. तत्कथं मन्यसे किमेतदिति ?

६७. मकरन्दः—इयमार्या योगीश्वर्यस्य मालत्यभिज्ञानस्योपनेत्री।
माधवः—(सकरुणं कृतांजलिः) आर्ये, प्रसीद। कथय, जीवति मे प्रिया सा ?

६८. सौदामिनी—वत्स, समाश्वसिहि। जीवति सा कल्याणी।
माधवमकरन्दौ—(समुच्छ्वस्य) आर्ये, यद्येवं कथय क एष वृतान्त इति।

६९. सौदामिनी—अस्ति पुरा करालायतनेऽघोरघण्टः कृपाणपाणिर्व्यापादितः।
माधवः—(सावेगम्) अये विरम ज्ञातो वृतान्तः।

७०. मकरन्द—सखे, क इव ?
माधवः—किमन्यत् ? सकामा कपालकुण्डला।

६४. हे प्रिय सखी, मोहके भीषण कष्टसे भारी, मन्मथके उन्मादका वेग
जब निराबाध हो दुस्सह हो उठे।
तब तुझ कमलाक्षीका आलिंगन अथवा
प्राण-रक्षा मेरे आलिंगनके समान हितकर हुआ ॥४७॥

(करुणाके साथ उसास लेकर)

६५. आनन्ददायक कामज्वरदीपक,
गाढ़ अनुरागके रसोंसे युक्त और तब,
मेरी मुग्धाक्षीके कंठमें स्नेहसे, आकर
तेरे उस आने जानेको हाय मैं याद करता हूं ॥४८॥

(हृदयमें रखकर मूर्च्छित हो जाता है)

६६. मकरंद—(पास आकर) सखे, धीरज धरो।
माधव—(धीरज धरकर) मकरंद, क्या तू नहीं देखता, कहींसे एकाएक मालतीके स्नेहका (यह) अपना चिह्न आ गया। तो क्या समझते हो, यह क्या है?

६७. मकरंद—मालतीके इस चिह्न को ले आनेवाली यह आर्या योगिश्वरी हैं।
माधव—(करुणाके साथ हाथ जोड़कर) आर्ये, दया करो। बताओ, क्या वह मेरी प्रिया जीती है?

६८. सौदामिनी—वत्स, धीरज धरो। वह कल्याणी जीती है।
माधव और मकरंद—(सांस लेकर) आर्ये, यदि ऐसा है, तो बताओ, यह क्या बात है?

६९. सौदामिनी—पहले करालाके मन्दिरमें हाथमें तलवार लिये अघोरघंट मारा गया।
माधव—(उद्विग्न हो) अये, ठहरो, बात जान गया।

७०. मकरंद—मित्र, कैसे?
माधव—और क्या, कपालकुंडलाका मनोरथ सफल हुआ।

७१. मकरन्दः—आर्ये, अप्येवम् ?
सौदामिनी—एवं, यथा निवेदितं वत्सेन।

७२. मकरन्दः—भोः, कष्टम्।
कुमुदाकरेण शरदिन्दुचन्द्रिका,
यदि रामणीयकगुणाय संगता।
सुकृतं तदस्तु कतमस्त्वयं विधिर्,
यदकालमेघविततिर्व्ययूयुजत् ॥४९॥

७३. माधवः—हा प्रिये मालति, कष्टमतिबीभत्समापन्नासि—
कथमपि तदाभवस्त्वं कमलमुखि कपालकुण्डलाग्रस्ता।
उत्पातधूमरेखाक्रान्तेव कला शशधरस्य ॥५०॥

७४. भगवति कपालकुण्डले,
निर्माणमेव हि तदा तव लालनीयं,
मा पूतनात्वमुपगाः शिवतातिरेव।
नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा,
मूर्ध्नि स्थितिर्न मुसलैर्वत कुट्टनानि ॥५१॥

७५. सौदामिनी—वत्स, अलमावेगेन—
अकरिष्यदसौ पापमतिदुष्करुणैव सा।
नाभविष्यमहं तत्र यदि तत्परिपन्थिनी ॥५२॥

७५. उभौ—(प्रणम्य) अतिप्रसन्नमार्यापादैः। तत्कथय का पुनस्त्वमस्माकमेवंविधो बन्धुः ?

७७. सौदामिनी—ज्ञास्यथ खल्वेतत्। (उत्थाय) इयमिदानीमहं—
गुरुचर्यातपस्तन्त्रमंत्रयोगाभियोगजाम्।
इमामाकर्षिणीं सिद्धिमातनोमि शिवाय वः ॥५३॥

(समाधवा निष्क्रान्ता)

७१. मकरंद—आर्ये, क्या ऐसा ही ?
सौदामिनी—ऐसा ही, जैसा कि बच्चेने कहा।

७२. मकरंद—भो, भो, हाय।
यदि सरोवर के साथ शरत्चन्द्रकी चांदनी,
रमणीयताके गुणोंके लिये इकट्ठी हुई;
तो वह काम अच्छा हुआ; पर, यह कौन विधान है,
जो कि अकाल मेघकी घटा छिन्न भिन्न हो गई ।।४९।।

७३. माधव—हा प्रिये मालती, अत्यन्त भीषण अवस्थाको तू प्राप्त हुई—
उत्पातके धूंयेकी रेखासे आक्रांत चन्द्रमाकी कलाकी तरह,
हे कमलमुखी, तब तू कैसे कपालकुंडलासे ग्रसित हुई ? ।।५०।।

७४. हे भगवती कपालकुंडला,
तब तेरा ही निर्माण स्पृहणीय था,
पूतना न बन तू मंगलमयी ही हो।
सुगन्धित फूलोंकी स्वाभाविक सिद्धि है
सिरपर चढ़ना, न कि हाय, मूसलोंसे कूटा जाना ।।५१।।

७५. सौदामिनी—वत्स, मत उद्विग्न होओ। वह अत्यन्त निष्ठुर ही है।
उसने पाप किया होता,
यदि वहाँ उसमें बाधा डालनेवाली मैं न होती ।।५२।।

७६. दोनों—(प्रणाम करके) आर्याने बड़ी दया की। तो बतायें, तुम कौन हमारी ऐसी बन्धु हैं ?

७७. सौदामिनी—इसे तुम जरूर जानोगे। (उठकर) अब यह मैं—
बड़े तप, तंत्र, योगके अभ्याससे उत्पन्न,
इस आकर्षणी सिद्धिको तुम्हारे कल्याणके लिये प्रयोगमें लाती हूं ।।५३।।

(माधवको ले निकल गई)

७८. मकरन्दः—आश्चर्यम्—
व्यतिकर इव भीमस्तामसोवैद्युतश्च,
क्षणमुपहतचक्षुर्वृत्तिरुद्भूय शान्तः।
(विलोक्य सभयम्)
कथमिव न वयस्यस्तत्किमेतत्किमन्यत्,
(विचिन्त्य)—
प्रभवति हि महिम्ना स्वेन योगीश्वरीयम् ॥५४॥

७९. (सवितर्कम्) किमयमनर्थ इति संप्रति मूढोऽस्मि।
अपि च—
अस्तोकविस्मयमविस्तृतपूर्ववृत्तं,
उद्भूतनूतनभयज्वरजर्जरं नः।
एक क्षणत्रुटितसंघटितप्रमोह्
आनन्दशोकशबलं समुपैति चेतः ॥५५॥

८०. तदत्र कान्तारावसाने सहास्मद्वर्गेण प्रविष्टां भगवतीमनुसृत्य वृत्तान्तमेनं कथयामि।
(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

२. उत्तररामचरितम्

(१) प्रस्तावना—

८१. इदं कविभ्यः पूर्वेभ्यो नमोवाकं प्रशास्महे।
वन्देमहि च तां वाणीममृतामात्मनः कलाम् ॥१॥
(नान्द्यन्ते)

८२. सूत्रधारः— अलमति विस्तरेण। अद्य खलु भगवतः कालप्रियानाथस्य यात्रायामार्यमिश्रान्विज्ञापयामि— एवमत्र भवन्तो विदांकुर्वन्तु। अस्ति खलु तत्र भवान्काश्यपः श्रीकण्ठपदलांछनः पदवाक्यप्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम जातुकर्णीपुत्रः—

७८. मकरंद—अचरज,

अन्धकार और विजलीके किसी भीषण (उपद्रव सा),
क्षणमें आंखकी चेष्टाको नष्ट कर ऊपर उठ शान्त हो गया ।।

(देखकर भयके साथ)

क्यों मित्र नहीं तो यह दूसरा क्या है।

(सोच कर)

यह योगेश्वरी अपनी महिमासे सब करनेमें समर्थ है ।।५४।।

७९. (तर्क-वितर्क करते) क्या यह अनर्थ है, यह सोच मैं इस समय मूढ़ हूं,
और भी—
अधिक विस्मययुक्त पूर्व वृत्तान्तको न भूला,
नये उत्पन्न भयरूपी ज्वरसे जर्जर,
एक क्षणमें टूटा जुड़ा भारी मोहयुक्त
हमारा चित्त आनन्द और शोक से मिश्रित बना है ।।५५।।

८०. सो यहां जंगलके छोरपर हमारे लोगोंके साथ आई भगवती को ढूंढ़कर यह वृत्तान्त कहता हूँ।

(सब निकल गये)

—अंक ९

२. उत्तररामचरित

१. प्रस्तावना—

८१. पुराने कवियोंके लिये मैं यह नमस्कार वचन कह रहा हूँ।
और अमर-आत्माकी उस वाणीकी बंदना करता हूं ।।१।।
(नांदी पाठके बाद)

८२. सूत्रधार—बहुत विस्तारसे कहना छोड़ो। आज भगवान् महाकालके मेलेमें आर्यों से अर्ज करता हूं : आप सब यह जानें। काश्यप श्रीकंठ उपाधिधारी, व्याकरण-मीमांसादि के ज्ञाता जातुकर्णी के पुत्र जो भवभूति नामक हैं—

यं ब्रह्माणमियं देवी वाग्वश्यैवान्ववर्तत ।
उत्तरं रामचरितं तत्प्रणीतं प्रयोक्ष्यते ॥२॥

एषोऽस्मि कविवशादायोध्यकस्तदानींतनश्च संवृत्तः। (समन्तादवलोक्य)—

भोः, यदा तावदत्रभवतः पौलस्त्यकुलधूमकेतोर्महाराजरामस्यायं पट्टाभिषेकसमयो रात्रिंदिवमसंहृतनान्दीकः, तत्किमिदानीं विश्रान्तचारचरणानि चत्वरस्थानानि ?

(प्रविश्य)

८३. नटः—भाव, प्रेषिता हि स्वगृहान्महाराजेन लंकासमरसुहृदो महात्मानः प्लवंगमराक्षसाः सभाजनोपस्थायिनश्च नानादिगन्तपावना ब्रह्मर्षयो राजर्षयश्च, यत्समाराधनायैतावतो दिवसान्प्रमोद आसीत् ।

सूत्रधारः—आः, अस्त्येतन्निमित्तम् ।

८४. नटः—अन्यच्च—

वसिष्ठाधिष्ठिता देव्यो गता रामस्य मातरः ।
अरुन्धतीं पुरस्कृत्य यज्ञे जामातुराश्रमम् ॥३॥

सूत्रधारः—वैदेशिकोऽस्मीति पृच्छामि । कः पुनर्जामाता ?

८५. नटः—

कन्यां दशरथो राजा शान्तां नाम व्यजीजनत् ।
अपत्यकृतिकां राज्ञे रोमपादाय तां ददौ ॥४॥

विभाण्डकसुतस्तामृष्यशृंग उपयेमे । तेन च सांप्रतं द्वादशवार्षिकं सत्रमारब्धम् । तदनुरोधात्कठोरगर्भामपि जानकीं विमुच्य गुरुजनस्तत्र यातः ।

सूत्रधारः—तत्किमनेन ? एहि, राजद्वारमेव स्वजातिसमयेनोपतिष्ठावः ।

वशमें हुई सी यह वाणीदेवी जिस ब्रह्माका अनुगमन करती है—
उसके रचे उत्तर-रामचरितका हम अभिनय करेंगे ।।२।।
यह मैं (अब) कविके अनुसार उस कालका अयोध्यावासी हो गया ।
(चारों ओर देख कर) हे, रावण-वंशके धूमकेतु महाराज रामजीके अभिषेक के इस समय में रात-दिन (कभी) नांदी पाठ बन्द नहीं हो सकता, तो क्यों इस समय चबूतरोंके स्थान गुप्तचरोंके चरणोंसे रिक्त हैं ?

(प्रवेश कर)

८३. नट—महानुभाव, महाराजने लंका-युद्धके साथियों महात्मा वानर-भालुओं, राक्षसों, सभाजनों, सेवकों और नाना दिशाओंके पवित्र ब्रह्मर्षियों और राजर्षियोंको अपने अपने घर भेज दिया, उन्हींकी सेवाके लिये इतने दिनों तक आनन्द-मंगल रहा ।
सूत्रधार—हां, हां, यह है (इसका) कारण ।

८४. नट—और भी—
वसिष्ठके नेतृत्वमें रामकी माता देवियां, अरुंधतीको (साथ) लेकर यज्ञमें जमाईके आश्रम चली गईं ।।३।।
सूत्रधार—विदेशी हूं, नहीं जानता, इसलिये पूछ रहा हूं । कौन है जमाई ?

८५. नट—
राजा दशरथने (अपनी) सन्तान बनी शान्ता नामक कन्याको जन्म दिया, उसे राजा रोमपादकी संतान बनाकर दे दिया ।।४।।
उसे विभांडकके पुत्र शृंगी ऋषिने व्याहा । उन्हींने इस समय बारह वर्षवाला यज्ञ आरंभ किया है । उनके अनुरोधसे परिपक्वगर्भा जानकीको छोड़ कर (घरके) बड़े लोग वहां चले गये ।
सूत्रधार—तो इससे क्या ? आओ राजद्वारपर ही अपने खानदानी ढंगसे हम हाजिरी दें ।

८६. नटः—तेन हि निरूपयतु राज्ञः सुपरिशुद्धामुपस्थानस्तोत्र-
पद्धितं भावः।
सूत्रधारः—मारिष !
सर्वथा व्यवहर्तव्यं कुतो ह्यवचनीयता।
यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः ॥५॥

८७. नटः—अतिदुर्जन इति वक्तव्यम्—
देव्या अपि हि वैदेह्याः सापवादो यतो जनः।
रक्षोगृहस्थितिर्मूलमग्निशुद्धौ त्वनिश्चयः ॥६॥

सूत्रधारः—यदि पुनरियं किंवदन्ती महाराजं प्रति स्यन्देत्,
ततः कष्टं स्यात्।

८८. नटः—सर्वथा ऋषयो देवाश्च श्रेयो विधास्यन्ति। (परि-
क्रम्य) भोः भोः, क्वेदानीं महाराजः ? (आकर्ण्य) एवं
जनाः कथयन्ति—
स्नेहात्सभाजयितुमेत्य दिनान्यमूनि,
नीत्वोत्सवेन जनकोऽद्य गतो विदेहान्।
देव्यास्ततो विमनसः परिसान्त्वनाय,
धर्मासनाद्विशति वासगृहं नरेन्द्रः ॥७॥

(इति निष्क्रान्तौ)

(२) वनवास-चित्रम्—

८९. (ततः प्रविशत्यासनोपविष्टौ रामः सीता च)
रामः—देवि वैदेहि, विश्वसिहि। ते हि गुरवो न शक्नु-
वन्ति विहातुमस्मान्—
किंत्वनुष्ठाननित्यत्वं स्वातन्त्र्यमपकर्षति।
संकटा ह्याहिताग्नीनां प्रत्यवायैर्गृहस्थता ॥८॥

८६. नट---तो महानुभाव, (आप) दरबारके प्रशंसकोंकी सुपरिशुद्ध पद्धतिको देखें।

सूत्रधार---यार---

सर्वथा वैसा व्यवहार करना चाहिये, चाहे क्यों न वचन मारा जाये जैसे स्त्रियोंकी भांति वाणियोंकी साधुतामें दुर्जन जन (बाधक) होते हैं ।।५।।

८७. नट---अतिदुर्जन कहना चाहिये---

देवी वैदेही पर भी जब अपवाद लगानेवाले लोग हैं, (उनका) राक्षसके घरमें रहना पक्का है, पर अग्निमें शुद्धि पर विश्वास नहीं ।।६।।

सूत्रधार---अगर यह अफवाह महाराजके पास पहुंची, तो बुरा होगा।

८८. नट---ऋषि और देवता सब तरह मंगल करें। (परिक्रमा करके) हे-हे, इस समय महाराज कहां हैं? (सुनकर) लोग ऐसा कह रहे हैं :---

स्नेहके साथ पूजा करनेके लिये आये दिनो को उत्सवके साथ बिता आज जनक बिदेह देश चले गये। तब उदास हुई देवीकी सांत्वनाके लिये सिंहासनसे उठकर नरेन्द्र वासगृहमें प्रवेश कर रहे हैं ।।७।।

(दोनों बाहर चले गये)

२. वनवासका चित्र---

८९. (तब आसनपर बैठे राम और सीता प्रवेश करते हैं)

राम---देवी वैदेही, धीरज धरो, गुरुजन हमें नहीं छोड़ सकते। किंतु, स्वतंत्रताको नित्य के कर्तव्य छीन लेते हैं। अग्नि-उपासकोंकी गृहस्थी विघ्नके भयसे घिरी होती है ।।८।।

९०. सीता—जानामि आर्यपुत्र, जानामि। किंतु संतापकारिणो बन्धुजनविप्रयोगा भवन्ति।
राम:—एवमेतत्। एते हि हृदयमर्मच्छिदः संसारभावाः, येभ्यो बीभत्समानाः संत्यज्य सर्वान्कामानरण्ये विश्राम्यन्ति मनीषिणः।

(प्रविश्य)

९१. कंचुकी—रामभद्र, (इत्यर्धोक्ते साशंकम्) महाराज,
राम:—(सस्मितम्) आर्य, ननु रामभद्र इत्येव मां प्रत्युपचारः शोभते तातपरिजनस्य, तत् यथाभ्यस्तमभिधीयताम्।

९२. कंचुकी—देव, ऋष्यशृंगाश्रमादष्टावक्रः संप्राप्तः।
सीता—आर्य, ततः किं विलम्ब्यते?
राम:—त्वरितं प्रवेशय।

(कंचुकी निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

९३. अष्टावक्रः—स्वस्ति वाम्।
राम:—भगवन्, अभिवादये। इत आस्यताम्।

९४. सीता—भगवन्, नमस्ते। अपि कुशलं सजामातृकस्य गुरुजनस्यार्यायाः शान्तायाश्च?
राम:—निर्विघ्नः सोमपीथी भावुको मे भगवानृष्यशृंगः, आर्या च शान्ता?

९५. सीता—अस्मानपि स्मरति?
अष्टावक्रः—(उपविश्य) अथ किम्। देवि, कुलगुरुर्भगवान्वसिष्ठस्त्वामिदमाह—
विश्वंभरा भगवती भवतीमसूत,
राजा प्रजापतिसमो जनकः पिता ते।
तेषां वधूस्त्वमसि नन्दिनि, पार्थिवानां,

९०. सीता—जानती हूं, आर्यपुत्र, जानती हूं। किन्तु बन्धुजनोंका वियोग संताप दे रहा है।
राम—ऐसा ही है। संसारकी वस्तुयें हृदय मर्मको छेदनेवाली होती हैं, जिनसे ही डरकर मनीषी लोग सारे कामोंको छोड़ वनमें विश्राम करते हैं।

(प्रवेश करके)

९१. कंचुकी—रामभद्र, (बीचमें ही रुक कर भयके साथ) महाराज।
राम—(मुस्कुराते हुये) आर्य, मुझे 'रामभद्र' कहना ही बापूके परिजनोंके लिये शोभता है, इसलिये जैसी आदत है, वैसे ही कहें।

९२. कंचुकी—देव, **शृंगी** ऋषि के आश्रमसे **अष्टावक्र** आये हैं।
सीता—आर्य, तो क्यों देर करते हो?
राम—जल्दी ले आयें। (कंचुकी बाहर चला गया)

(प्रवेश करके)

९३. अष्टावक्र—तुम दोनों की स्वस्ति।
राम—भगवन्, अभिवादन करता हूं। यहां बैठिये।

९४. सीता—भगवन्, नमस्ते। जामाता-सहित गुरुजनोंका, आर्या शान्ताका कुशल तो है?
राम—सोमयाजी मेरे जीजा भगवान् शृंगी ऋषि और आर्या शान्ता निर्विघ्न तो हैं?

९५. सीता—हमें भी याद करते हैं?
अष्टावक्र—(बैठकर) और क्या। देवि, कुलगुरु भगवान् **वसिष्ठने** तुम्हारे लिये यह कहा है—
विश्वका भरण करनेवाली भगवती पृथिवीने तुम्हें जन्म दिया। ब्रह्मा तुल्य राजा जनक तुम्हारे पिता हैं। हे नंदिनि, उन राजाओंकी

येषां कुलेषु सविता च गुरुर्वयं च ।।९।।
तत्किमन्यदाशास्महे, केवलं वीरप्रसवा भूयाः ।

९६. रामः––अनुगृहीताः स्मः––
लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते ।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुवर्तते ।।१०।।

९७. अष्टावक्रः––इदं च भगवत्याऽरुन्धत्या देवीभिः शान्तया च भूयो भूयः संदिष्टम् "यः कश्चिद् गर्भदोहृदोदयो भवत्यस्याः सोऽवश्यमचिरान्मानयितव्य" इति ।

रामः––क्रियते यद्येषा कथयति ।

९८. अष्टावक्रः––ननान्दुः पत्या च देव्याः संदिष्टम्––"वत्से, कठोरगर्भेति नानीतासि । वत्सोऽपि रामभद्रस्त्वद्विनोदार्थमेव स्थापितः । तत्पुत्रपूर्णोत्संगामायुष्मतीं द्रक्ष्याम" इति ।

रामः––(सहर्षलज्जास्मितम्) तथास्तु । भगवता वसिष्ठेन न किंचिदादिष्टोऽस्मि ?

९९. अष्टावक्रः––श्रूयताम्,––
जामातृयज्ञेन वयं निरुद्धास्त्वं बाल एवासि नवं च राज्यम् ।
युक्तःप्रजानामनुरंजने स्यास्तस्माद्यशो यत्परमं धनं वः।।११।

१००. रामः––यथा समादिशति भगवान्मैत्रावरुणिः ।
स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि ।
आराधनाय लोकस्य मुंचतो नास्ति मे व्यथा ।।१२।।

१०१. सीता––अत एव राघवधुरंधर आर्यपुत्रः ।
रामः––कः कोऽत्र भोः ? विश्राम्यतामष्टावक्रः ।

१०२. अष्टावक्रः––(उत्थाय परिक्रम्य च) अये, कुमारलक्ष्मणः प्राप्तः । (इति निष्क्रान्तः)

तुम उनकी बहू हो, जिनके कुलोंके सूर्य और हम गुरु हैं।
सो और क्या आशा करें, बस तुम वीरमाता होओ ।।९।।

९६. राम——(हम) अनुगृहीत हैं——
संसारी सत्पुरुषोंकी वाणी अर्थके पीछे चलती है। किन्तु अर्थ, आदिम ऋषियोंके वचनके पीछे चलते है।।१०।।

९७. अष्टावक्र——और भगवती अरुंधती, देवियों और शान्ताने बार-बार यह सन्देश दिया है : "इनका जो कोई भी गर्भका दोहद उत्पन्न हो, उसे अवश्य और जल्दी पूरा करना।"
राम——किया जायेगा, यदि यह कहेगी।

९८. अष्टावक्र——नन्दोईने देवी सीता को सन्देश दिया है : "बच्ची, पूर्णगर्भा होने से तुम्हें हम नहीं लाये। बच्चा रामभद्रको भी तुम्हारे मनबहलावके लिये ही वहां छोड़ दिया। सो (अब) पुत्रसे भरी गोदवाली आयुष्मतीको हम देखेंगे।"
राम——(हर्ष, लज्जा, मुस्कानके साथ) तथास्तु। भगवान् वसिष्ठने मुझे कुछ नहीं आदेश दिया?

९९. अष्टावक्र——सुनिये——
जमाईके यज्ञके कारण हम रोक लिये गये हैं, तुम बच्चे हो और नया राज्य है। प्रजाके अनुरंजनमें तत्पर रहो, क्योंकि यश ही तुम्हारा परम धन है।।११।।

१००. राम——जो आदेश देते हैं, भगवान् मित्रावरुण-पुत्र।
प्रेम, दया, सुख चाहे, जानकीको भी, लोगोंकी सेवाके लिये छोड़ते मुझे दुःख नहीं है।।१२।।

१०१. सीता——अतएव आर्यपुत्र, रघुवंश-धुरंधर हैं।
राम——कौन है हो यहां? अष्टावक्र विश्राम करें।

१०२. अष्टावक्र——(उठकर और परिक्रमा करके) अरे, कुमार लक्ष्मण आ गये? (अष्टावक्र बाहर चले गये)।

(प्रविश्य)

१०३. लक्ष्मण:—जयति जयत्यार्यः। आर्य, अर्जुनेन चित्रकरेणास्मदुपदिष्टमार्यस्य चरितमस्यां वीथ्यामभिलिखितम्। तत्पश्यत्वार्यः।

१०४. राम:—जानासि वत्स, दुर्मनायमानां देवीं विनोदयितुम्। तत्कियानवधि: ?

लक्ष्मण:—यावदार्याया हुताशनशुद्धिः।

१०५. राम:—शान्तं पापम्। (ससान्त्ववचनम्)—

उत्पत्तिपरिपूतायाः किमस्याः पावनान्तरैः ?
तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः ॥१३॥

देवि देवयजनसंभवे! प्रसीद। एष ते जीविताविधिः प्रवाद :—

क्लिष्टो जनः किल जनैरनुरंजनीयस्,
तन्नो यदुक्तमशुभं च न तत्क्षमं ते।
नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा,
मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरवताडनानि ॥१४॥

१०६. सीता—भवत्वार्यपुत्र, भवतु। एहि, प्रेक्षामहे तावत्ते चरितम्।

लक्ष्मण :—इदं तदालेख्यम्।

१०७. सीता—क एते उपरिनिरन्तरस्थिता उपस्तुवन्तीवार्यपुत्रम् ?

लक्ष्मण:—देवि, एतानि तानि सरहस्यानि जृम्भकास्त्राणि, यानि भगवतो भृशाश्वात्कौशिकमुपसंक्रान्तानि। तेन च ताटकावधे प्रसादीकृतान्यार्यस्य।

१०८. राम:—वन्दस्व देवि, दिव्यास्त्राणि—

ब्रह्मादयो ब्रह्महिताय तप्त्वा परः सहस्रं शरदां तपांसि।

(प्रवेश करके)

१०३. लक्ष्मण—आर्यकी जय-जय। आर्य, अर्जुन चित्रकारने हमारे बतलाये आर्यके चरितको इस गैलरीमें चित्रित किया है। आर्य उसे देखें।

१०४. राम—वत्स, तुम उदास देवीका मन बहलाव करना जानते हो। तो कबसे लेकर कहां तक?

लक्ष्मण—जब तक कि आर्याकी अग्नि द्वारा शुद्धि हुई।

१०५. राम—शान्तं पापम्। (सान्त्वनाके वचनके साथ)—

जन्म से ही अति पवित्र इसके लिये दूसरी शुद्धियोंसे क्या (लेना)? तीर्थका जल और अग्नि दूसरेसे शुद्ध नहीं हुआ करते ॥१३॥

देव-यज्ञमें उत्पन्न देवि, कृपा करो, यह जीवन भरके लिये तुम्हारे संबंध की अफवाह है।

क्लेश पाये जनका लोगों अनुनीय है, सो जो हमारे लिये बुरा कहा गया, वह तेरे लिये उचित नहीं है। सुगंधित फूलकी स्वाभाविक बात है सिरपर चढ़ना, न कि चरणोंसे ताड़ित होना ॥१४॥

१०६. सीता—अच्छा आर्यपुत्र, अच्छा। आओ, हम तुम्हारे चरितको देखें।

लक्ष्मण—यह है वह चित्र।

१०७. सीता—कौन हैं, यह ऊपर पास-पास खड़े आर्यपुत्र की स्तुति कर रहे?

लक्ष्मण—देवि, यह वे रहस्य-सहित जृम्भक (रोकनेवाले) अस्त्र हैं, जो भगवान् भृशाश्वसे कौशिक (विश्वामित्र) के पास आये और (जिन्हें) उन्होंने ताटकाके बधके समय आर्यको भेंट किया।

१०८. राम—देवि, वंदना करो, दिव्य अस्त्रोंकी—

ब्रह्मा आदि पुराने गुरुजनोंने हजारोंसे अधिक वर्षों तक तप

एतान्यदर्शन्गुरवः पुराणाः स्वान्येव तेजांसि तपोमयानि ॥१५॥

सीता—नम एतेभ्यः।

१०९. रामः—सर्वथेदानीं त्वत्प्रसूतिमुपस्थास्यन्ति।
सीता—अनुगृहीतास्मि।
लक्ष्मणः—एष मिथिलावृत्तान्तः।

११०. सीता—अहो, दलन्नवनीनीलोत्पलश्यामलस्निग्धमसृण-शोभमानमांसलदेहसौभाग्येन विस्मयस्तिमिततातदृश्य-मानसौम्यसुन्दरश्रीरनादरत्रुटितशंकरशरासनः शिखण्ड मुग्धमुखमण्डल आर्यपुत्र आलिखितः।
लक्ष्मणः—आर्ये, पश्य पश्य,—
संबन्धिनो वसिष्ठादीनेष तातस्तवार्चति।
गौतमश्च शतानन्दो जनकानां पुरोहितः ॥१६॥

१११. रामः—सुश्लिष्टमेतत्—
जनकानां रघूणां च संबन्धः कस्य न प्रियः?
यत्र दाता ग्रहीता च स्वयं कुशिकनन्दनः॥१७॥
सीता—एते खलु तत्कालकृतगोदानमंगलाश्चत्वारो भ्रातरः विवाहदीक्षिता यूयम्। अहो जानामि, तस्मिन्नेव प्रदेशे तस्मिन्नेव काले वत!

११२. रामः—

समयः स वर्तत इवैष यत्र मां,
समनन्दयत्सुमुखि, गौतमार्पितः।
अयमागृहीतकमनीयकंकणस्,
तव मूर्तिमानिव महोत्सवः करः ॥१८॥

११३. लक्ष्मणः—इयमार्या। इयमप्यार्या माण्डवी। इयमपि वधूः श्रुतकीर्तिः।
सीता—वत्स, इयमप्यपरा का?

करके ब्रह्मके हितार्थ अपने ही तपोमय तेजोंको इनके रूपमें देखा ॥१५॥

सीता—इनको नमस्कार।

१०९. राम—अब यह पूरी तौरसे तेरी सन्तान के पास जायेंगे।

सीता—अनुगृहीता हूं।

लक्ष्मण—यह **मिथिला**का वृत्तान्त है।

११०. सीता—अहो, दलित नवीन नीलकमल से श्यामल, स्निग्ध चिक्कन शोभते, मांसल देहके सौंदर्यसे विस्मययुक्त निश्चल हो, तात द्वारा देखे जाते सौम्य सुन्दर शोभावाले, अप्रयास शंकरके शर धनुप तोड़ने वाले शिखंड-युक्त मुग्ध मुखमंडलवाले आर्यपुत्र (यहां) चित्रित किये गये हैं।

लक्ष्मण—आर्ये, देखो-देखो—

वसिष्ठ आदि सम्बन्धियोंको यह तुम्हारे बापू और जनकोंके पुरोहित गौतम **शतानंद** पूज रहे हैं ॥१६॥

१११. राम—यह बिल्कुल ठीक है—

जनकों और **रघुओं**का सम्बन्ध किसको न प्रिय होता ? जहां दाता और आदाता स्वयं **कुशिकनंदन** थे ॥१७॥

सीता—यह तुरन्त गोदान मंगल कर चुके चारों भाई हैं। तुम विवाह-दीक्षा लिये हुए थे। अहो, जानती हूं, उसी प्रदेश में, उसी कालमें, ओह।

११२. राम—

हे सुमुखि, यह मानो वही समय वर्तमान है, **गौतम** द्वारा अर्पित कमनीय कंकण धारण किये तेरे करने जब कि मुझे मूर्तिमान् महोत्सवकी तरह खूब आनंदित किया ॥१८॥

११३. लक्ष्मण—ये आर्या हैं, यह भी आर्या **मांडवी** है, यह भी वह **श्रुत-कीर्ति** है।

सीता—वत्स, और यह कौन है ?

११४. लक्ष्मण:——(सलज्जास्मितम् अपवार्य) अये, उर्मिलां पृच्छत्यार्या। भवतु, अन्यतः संचारयामि। (प्रकाशम्) आर्ये, दृश्यतां, द्रष्टव्यमेतत्। अयं च भगवान् भार्गवः।

सीता——(ससंभ्रमम्) कम्पितास्मि।

रामः——ऋषे, नमस्ते।

११५. लक्ष्मण:——आर्ये, पश्य। अयमार्येण (इत्यर्धोक्ते)——

रामः——(साक्षेपम्) अयि, बहुतरं द्रष्टव्यम्। अन्यतो दर्शय।

सीता——(सस्नेहबहुमानं निर्वर्ण्य) सुष्ठु शोभसे आर्यपुत्र, एतेन विनयमाहात्म्येन

११६. लक्ष्मण:——एते वयमयोध्यां प्राप्ताः।

रामः——(सास्रम्) स्मरामि हन्त स्मरामि।

जीवत्सु तातपादेषु नूतने दारसंग्रहे।
भ्रातृभिश्चिन्त्यमानानां ते हि नो दिवसा गताः ॥१९॥

११७. इयमपि तदा जानकी——

पतनविरलैः प्रान्तोन्मीलन्मनोहरकुड्मलैर्,
दशनकुसुमैर्मुग्धालोकं शिशुर्दधती मुखम्।
ललितललितैर्ज्योत्स्नाप्रायैरकृत्रिमविभ्रमैर्,
अकृत मधुरैरंगानां मे कुतूहलमंगकैः ॥२०॥

११८. लक्ष्मण:——एष मन्थरावृत्तान्तः।

रामः——(सत्वरमन्यतो दर्शयन्) देवि, वैदेहि,

इंगुदीपादपः सोऽयं शृंगवेरपुरे पुरा।
निषादपतिना यत्र स्निग्धेनासीत्समागमः ॥२१॥

११९. लक्ष्मण:——(विहस्य, स्वगतम्) अये, मध्यमाम्बावृत्तान्तमन्तरितमार्येण।

सीता——अहो, एष जटासंयमनवृत्तान्तः।

११४. लक्ष्मण——(लज्जा-मुस्कानके साथ एकान्तमें) अये, आर्या **उर्मिला** के बारे में पूछ रही हैं। अच्छा, दूसरी ओर फिरता हूं (प्रकट) आर्ये, देखिये, यह देखने लायक है। और यह भगवान् **भार्गव** (परशुराम) हैं।

सीता——(डरकर) मैं कांप रहीं हूं।

राम——हे ऋषि, नमस्ते।

११५. लक्ष्मण——आर्ये, देखो। यह आर्यने (आधा ही कहकर)

राम——(आक्षेपके साथ) अरे, बहुत देखना है। दूसरी ओर दिखाओ।

सीता——(स्नेह और सम्मान के साथ देखकर) आर्यपुत्र, इस अति विनम्रतासे (तुम) खूब शोभते हो।

११६. लक्ष्मण——यह हम **अयोध्या** आ गये।

राम——(करुणाके साथ) याद है, याद है।

बापूके जीते रहते नवीन विवाहके समय,
भाइयोंके स्नेहवाले वे हमारे दिन चले गये ।।१९।।

११७. उस समय इसी **जानकी** ने——

छोरपर खिलते मनोहर गिरनेसे विरल कलियों जैसे दांतरूपी फूलोंसे प्रकाशमान मुग्धमुख धारण करती, अतिललित बहुत चमकते अकृत्रिम सुन्दर मधुर (अपने) अंगोंसे मेरे अंगोंको कुतूहलित किया ।।२०।।

११८. लक्ष्मण——यह **मंथरा**का वृत्तान्त है।

राम——(जल्दीसे दूसरी ओर दिखलाते) देवी **वैदेहि**——

शृंगबेरपुरमें यह वह इंगुदीका वृक्ष है। जहां स्नेही निषाद-पति के साथ (हमारा) प्रथम समागम हुआ था ।।२१।।

११९. लक्ष्मण——(विहँसकर अपने आपसे) अये, मझली अम्मा (**कैकेयी**) के वृत्तान्तको छोड़ गये आर्य!

सीता——अहो, यह जटा बांधनेका वृत्तान्त है।

१२०. लक्ष्मणः—

पुत्रसंक्रान्तलक्ष्मीकैर्यद् वृद्धेक्ष्वाकुभिर्धृतम् ।
धृतं बाल्ये तदार्येण पुण्यमारण्यकव्रतम् ॥२२॥

सीता—एषा प्रसन्नपुण्यसलिला भगवती भागीरथी ।

१२१. रामः—रघुकुलदेवते, नमस्ते—

तुरगविचयव्यग्रानुर्वीभिदः सगराध्वरे,
कपिलमहसा रोषात्प्लुष्टान्पितुश्च पितामहान् ।
अगणिततनूतापस्तप्त्वा तपांसि भगीरथो,
भगवति, तव स्पृष्टानद्भिश्चिरादुदतीतरत् ॥२३॥

सा त्वमम्ब, स्नुषायामरुन्धतीव सीतायांशिवानुध्याना भव ।

१२२. लक्ष्मणः—एष भरद्वाजावेदितश्चित्रकूटयायिनि वर्त्मनि वनस्पतिःकालिन्दीतटे वटः श्यामो नाम ।

(रामः सस्पृहमवलोकयति)

सीता—स्मरति वा तं प्रदेशमार्यपुत्रः ?

१२३. रामः—अयि, कथं विस्मर्यते ?

अलसललितमुग्धान्यध्वसंपातखेदाद्,
अशिथिलपरिरम्भैर्दत्तसंवाहनानि ।
परिमृदितमृणालीदुर्बलान्यंगकानि,
त्वमुरसि मम कृत्वा यत्र निद्रामवाप्ता ॥२४॥

लक्ष्मणः—एष विन्ध्याटवीमुखे विराधसंवादः ।

१२४. सीता—अलं तावदेतेन । पश्यामि तावदार्यपुत्रस्वहस्तधृततालवृन्तातपत्रमात्मनोऽत्याहितं दक्षिणारण्यपथिकत्वम् ।

१२५. रामः—

एतानि तानि गिरिनिर्झरिणीतटेषु,
वैखानसाश्रिततरूणि तपोवनानि ।

१२०. लक्ष्मण—

पुत्रमें (राज-) लक्ष्मीको स्थानांतरित कर वृद्ध **इक्ष्वाकु** जो व्रत धारण किया करते, उस आरण्यक व्रतको आर्यने बचपन ही में धारण किया ।।२२।।

सीता—यह स्वच्छ, पवित्र जलवाली भगवती **भागीरथी** हैं।

१२१. राम—रघुकुलकी देवता, नमस्ते—

सगरके यज्ञमें घोड़ेके ढूंढ़नेमें व्यग्र पृथिवी खोद, **कपिलके** तेजरूपी रोपसे जले, पिता और पितामहोंका उद्धार, अगनित शरीरतापवाली तपस्याओंको करके भगीरथने, हे भगवति, तेरे जलसे छुआ कर किया ।।२३।।

माँ अम्मा, तू अपनी पुत्रवधू सीताकी **अरुंधती**सी मंगलकांक्षिणी हो

१२२. लक्ष्मण—यह **भरद्वाज** के बतलाये चित्रकूटके मार्गपर **जमुनाके** किनारे **श्याम** नामक बर्गदका वृक्ष है।

(राम लालसाके साथ देखते हैं)

सीता—आर्यपुत्र, को वह स्थान याद है ?

१२३. राम—अयि, कैसे भूला जा सकता है? मसली मृणालसे बेल अंगको, मार्गके चलनेके खेदसे अलस, ललित मुग्ध हो जोर के आलिंगनों द्वारा दबा कर जहां मेरे वक्षपर रखकर तू सोई ।।२४।।

लक्ष्मण—यह **विन्ध्याके** वनमें प्रवेश होते समय **विराधकी** वार्ता है।

१२४. सीता—इसे रहने दो। आर्यपुत्रको अपने हाथमें तालके पत्तेका छत्ता पकड़े दक्षिणारण्यकी अति-अहित मुसाफिरीको देखती हूं।

१२५. राम—

पर्वतीय नदियोंके तटोंपर ये हैं, वे मुनियोंके रहनेके वृक्षोंवाले तपोवन।

येष्वातिथेयपरमा यमिनो भजन्ते,
नीवारमुष्टिपचना गृहिणो गृहाणि ॥२५॥

१२६. लक्ष्मण:—अयमविरलानोकहनिवहनिरन्तरस्निग्धनीलपरिसरारण्यपरिणद्धगोदावरीमुखकन्दर: संततमभिष्यन्दमाननमेघमेदुरितनीलिमा जनस्थानमध्यगो गिरि: प्रस्रवणो नाम।

१२७. राम:—

स्मरसि सुतनु, तस्मिन्पर्वते लक्ष्मणेन,
प्रतिविहितसपर्यासुस्थयोस्तान्यहानि।
स्मरसि सरसनीरां तत्र गोदावरीं वा
स्मरसि च तदुपान्तेष्वावयोर्वर्तनानि? ॥२६॥

१२८. किं च,—

किमपि किमपि मन्दं मन्दमासक्तियोगाद्,
अविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण।
अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णोर्,
अविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत् ॥२७॥

लक्ष्मण:—एष पंचवट्यां शूर्पणखाविवाद:।

१२९. सीता—हा आर्यपुत्र, एतावत्ते दर्शनम्।
राम:—अयि वियोगत्रस्ते, चित्रमेतत्।

१३०. सीता—यथा तथा भवतु। दुर्जनोऽसुखमुत्पादयति।
राम:—हन्त, वर्तमान इव मे जनस्थानवृत्तान्त: प्रतिभाति।

१३१. लक्ष्मण:—

अथेदं रक्षोभि: कनकहरिणच्छद्मविधिना,
तथा वृत्तं पापैर्व्यथयति यथा क्षालितमपि।
जनस्थाने शून्ये विकलकरणैरार्यचरितैर्,
अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम् ॥२८॥

जहां अतिथि-सेवा-परायण संयमी, मुट्ठी भर तिन्नी पकानेवाले गृहस्थ गृहोंमें रहते हैं ॥२५॥

१२६. लक्ष्मण—यह है घने वृक्षोंकी लगातार स्निग्ध नील किनारेवाली वनसे बंधी **गोदावरी** के मुखकी कंदरा वाला, निरन्तर बहते फैलते मेघछाया युक्त नीलिमावाला, **जनस्थान**के मध्यमें अवस्थित **प्रस्रवण** नाम गिरि।

१२७. राम—

हे सुतनु, उस पर्वतमें **लक्ष्मण** की सेवासे भले, वे भले दिन, सरस जलवाली वहां की **गोदावरी** याद है? याद हैं उसके किनारे हमारे बर्ताव तुझे?

१२८. और भी—

आसक्तिके साथ सटे कपोल, बिना क्रमके कुछ-कुछ धीरे-धीरे हम दोनोंके बात करते, गाढ़-आलिंगनमें एक-एक बाहु लगे, पहर बीते बिना रात ही जाने समाप्त हो गई ॥२७॥

लक्ष्मण—यह **पंचवटीमें शूर्पणखाके** साथ का झगड़ा है।

१२९. सीता—हा आर्यपुत्र, इतना ही तक तुम्हारा दर्शन बदा है।

राम—अयि, वियोग-भीरु, यह (तो) चित्र है।

१३०. सीता—जो भी हो। दुर्जन असुख पैदा करता है।

राम—हन्त, **जनस्थान**का वृत्तान्त मुझे वर्तमान जैसा जान पड़ता है।

१३१. लक्ष्मण—

अब यह सोनेके हरिनके छलसे पापी राक्षसोंने वह किया, जो कि प्रतिशोध ले लेने पर भी दुखी करता है। शून्य जनस्थानमें विह्वल-प्राण आर्यकी चेष्टाओंको देख, पत्थर भी रोता था, वज्रका हृदय भी मसला जाता था ॥२८॥

१३२. सीता—(सास्रमात्मगतम्) अहो, दिनकरकुलानन्दन एव-
मपि मम कारणात् क्लान्त आसीत्।

१३३. लक्ष्मण:—(रामं निर्वर्ण्य साकूतम्) आर्य, किमेतत् ?—
अयं तावद्बाष्पस्त्रुटित इव मुक्तामणिसरो,
विसर्पन्धाराभिर्लुठति धरणीं जर्जरकण:।
निरुद्धोऽप्यावेग: स्फुरदधरनासापुटतया,
परेषामुन्नेयो भवति चिरमाध्मातहृदय: ।।२९।।

१३४. राम:—वत्स—
तत्कालप्रियजनविप्रयोगजन्मा,
तीव्रोऽपि प्रतिकृतिवांछया विसोढ:।
दु:खाग्निर्मनसि पुनर्विपच्यमानो,
हृन्मर्मव्रण इव वेदनां तनोति ।।३०।।

१३५. सीता—हा धिक् हा धिक्, अहमप्यतिभूमिं गतेन रण-
रणकेनार्यपुत्रशून्यमिवात्मानं पश्यामि ।

१३६. लक्ष्मण:—(स्वगतम्) भवतु, आक्षिपामि । (चित्रं
विलोक्य प्रकाशम्) अथैतन्मन्वन्तरपुराणस्य तत्र-
भवतस्तातजटायुषश्चरित्रविक्रमोदाहरणम् ।
सीता—हा तात, निर्व्यूढस्तेऽपत्यस्नेह: ।

१३७. राम:—हा तात काश्यप शकुन्तराज, क्व नु खलु पुन-
स्त्वादृशस्य महतस्तीर्थभूतस्य साधो: संभव: ?

१३८. लक्ष्मण:—अयमसौ जनस्थानस्य पश्चिमत: कुंजवा-
न्नाम पर्वतो दनुकबन्धाधिष्ठितो दण्डकारण्यभाग:।
तदिदमंमुष्य परिसरे मातंगाश्रम पदम्। तत्र श्रमणी नाम
सिद्धा शबरतापसी । तदेतत्पम्पाभिधानं पदमसर: ।
सीता—यत्र किलार्यपुत्रेण विच्छिन्नामर्षधीरत्वं प्रमुक्त-
कण्ठं प्ररुदितमासीत्।

१३२. सीता—(खेद सहित अपने आपसे) अहो, सूर्यवंशके आनंद दायक मेरे कारण इतने दुःखी हुये थे।

१३३. लक्ष्मण—(रामको देखकर चकित हो) आर्य, यह क्या—यह टूटा हुआ आंसू मुक्ता-मणि की मालाकी तरह, धाराओंमें बहता जर्जर बिन्दु हो धरतीपर लुढ़क रहा है। फर्फराते ओठों और नथुनोंसे आवेग भी रुंध गया है। वेगसे धौंकते हृदयवालेका दूसरे भी कठिनाईसे अनुमान कर सकते हैं ॥२६॥

१३४. राम—वत्स—

उस समय प्रियजनके वियोगसे उत्पन्न तीव्र दुःखकी अग्नि फिरसे मनमें जलती हृदयके मर्ममें घावकी तरह वेदना पैदा करती चित्रके ख्यालसे सही गई ॥३०॥

१३५. सीता—हा धिक्, मैं भी असीम उत्सुकतासे अपनेको आर्यपुत्रसे रहित जान रही हूं।

१३६. लक्ष्मण—(अपने आपसे) अच्छा याद भुलवाता हूँ। (चित्रको देखकर प्रकट) सो यह युगोंके बूढ़े **जटायु**जीके चरित्र और पराक्रमका दृष्टान्त।

सीता—हा बापू, संतानके स्नेहका निर्वाह तुमने किया।

१३७. राम—हा तात, काश्यप पक्षिराज, तुम्हारे जैसे महान् तीर्थ समान साधु कहां हो सकते हैं?

१३८. लक्ष्मण—यह वह जनस्थानके पश्चिमवाला **कुंजवान्** नामक पर्वत दैत्य-निवास, दंडकारण्यका एक भाग है। इसके पास **मातंग** ऋषिका आश्रम है। वहां **श्रवणी** नामकी सिद्ध शबर तपस्विनी है। सो यह **पंपा** नामक कमलोंका सरोवर है।

सीता—जहां कि आर्यपुत्र अपनी धीरता-गम्भीरता छोड़कर खुले कंठसे रोये थे।

रामः—देवि, परं रमणीयमेतत्सरः—

एतस्मिन्मदकलमल्लिकाक्षपक्ष -
व्याधूतस्फुरदुरुदण्डपुण्डरीकाः।
बाष्पाम्भःपरिपतनोद्गमान्तराले,
संदृष्टाः कुवलयिनो मया विभागाः ॥३१॥

१३९. लक्ष्मणः—अयमार्यो हनूमान्।

सीता—एष स चिरनिर्व्यूढजीवलोकप्रत्युद्धरणगुरूप-कारी महानुभावो मारुतिः।

१४०. रामः—

दिष्ट्या सोऽयं महाबाहुरंजनानन्दवर्धनः।
यस्य वीर्येण कृतिनो वयं च भुवनानि च ॥३२॥

१४१. सीता—वत्स, एष स कुसुमितकदम्बकतरुताण्डवित-बर्हिणः किंनामधेयो गिरिः यत्रानुभावसौभाग्यमात्रपरि-शेषसुन्दरश्रीर्मूर्च्छंस्त्वया प्ररुदितेनावलम्बितस्तरुतल आर्यपुत्र आलिखितः?

१४२. लक्ष्मणः—

सोऽयं शैलः ककुभसुरभिर्माल्यवान्नाम यस्मिन्,
नीलः स्निग्धः श्रयति शिखरं नूतनस्तोयवाहः ॥

आर्येणास्मिन्—

१४३. रामः—

विरमविरमातःपरं न क्षमोऽस्मि,
प्रत्यावृत्तः स पुनरिव मे जानकीविप्रयोगः ॥३३॥

१४४. लक्ष्मणः—अतः परमार्यस्य तत्रभवतां कपिराक्षसानां चापरिसंख्यान्युत्तरोत्तराणि कर्माश्चर्याणि। परिश्रान्ता चेयमार्या, तद्विज्ञापयामि विश्राम्यतामिति।

सीता—आर्यपुत्र, एतेन चित्रदर्शनेन प्रत्युत्पन्नदोहद-दाया मम विज्ञापनीयमस्ति।

१३९. राम—देवि, यह सरोवर अत्यंत रमणीय है,

इसमें मस्त सुन्दर हंसोंके पक्षोंद्वारा कंपित हिलते बड़ी नालके कमलों, उत्तम कुबलयवाले भागोंको, मैंने आंसूके गिरने और उठनेके बीचके समयमें देखा था ।।३१।।

१४०. लक्ष्मण—यह आर्य हनूमान् हैं ।

सीता—यह वह चिरकालसे जीवलोकके उद्धारक महान् उपकारी महानुभाव मारुति हैं ।

१४१. राम—

धन्य, अंजनाके आनंदवर्द्धक यहीं वह महाबाहु हैं, जिनके पराक्रमसे हम और संसार उपकृत हैं ।।३२।।

१४२. सीता—वत्स, यह वह फूले कदम्ब वृक्षपर नाचते मोरोंवाला किस नामवाला पर्वत है, जहां प्रभाव और सौभाग्य मात्र बच रहे सुन्दर सुशोभन वृक्षका अवलम्ब लिये मूर्छा खाते रोते हुये आर्यपुत्र तुम्हारे साथ चित्रित हैं ?

१४३. लक्ष्मण—

सो यह दिशाओंमें सुगन्ध फैलाता माल्यवान् नामक पर्वत है, जहां चिकना नीला अभिनव मेघ शिखरका आश्रय ले रहा है ।

यहां आर्यने—

ठहरो-ठहरो, इसके आगे मैं नहीं सह सकता । मेरे लिये जानकीका वह वियोग फिर लौट सा आया ।।३३।।

१४४. लक्ष्मण—इसके बाद आर्यके और वानर-राक्षस महानुभावोंके एकके बाद एक असंख्य अद्भुत कर्म हैं । आर्या थक गईं, सो अर्ज करता हूं, विश्राम करें ।

सीता—आर्यपुत्र, इस चित्रके दर्शनसे उत्पन्न हुये दोहदके बारेमें मुझे कुछ अर्ज करना है ।

१४५. रामः—नन्वाज्ञापय ।
सीता—जाने पुनरपि प्रसन्नगम्भीरासु वनराजिषु विहृत्य पवित्रनिर्मलशिशिरसलिलां भगवतीं **भागीरथीं** अवगाहिष्ये इति ।

१४६. रामः—वत्स लक्ष्मण ।
लक्ष्मणः—एषोऽस्मि ।

१४७. रामः—वत्स, अचिरादेव संपादनीयो दोहद इति संप्रत्येव गुरुभिः संदिष्टम् । तदस्खलितसंपातं रथमुपस्थापय ।
सीता—आर्यपुत्र, युष्माभिरप्यागन्तव्यम् ।

१४८. रामः—अतिकठिनहृदये, एतदपि वक्तव्यम् ?
सीता—तेन हि प्रियं मे प्रियं मे ।

१४९. लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः । (इति निष्क्रान्तः)
रामः—प्रिये, वातायनोपकण्ठे संविष्टा भव ।

१५०. सीता—एवं भवतु । अपहृतास्मि खलु परिश्रमनिद्रया ।

१५१. रामः—तेन हि निरन्तरमवलम्बस्व मामनुगमनाय—
जीवयन्निव ससाध्वसश्रमस्वेदबिन्दुरधिकण्ठमर्प्यताम् ।
बाहुरैन्दवमयूखचुम्बितस्यन्दिचन्द्रमणिहारविभ्रमः ॥३४॥
(तथा कारयन् सानन्दम्) प्रिये, किमेतत् ?—

१५२. विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा,
प्रमोहो निद्रा वा किमु विषविसर्पः किमु मदः ।
तव स्पर्शे स्पर्शे मम हि परिमूढेन्द्रियगणो,
विकारश्चैतन्यं भ्रमयति च संमीलयति च ॥३५॥

१५३. सीता—धीरप्रसादा यूयमित्यत्रेदानीमाश्चर्यम् ।

१५४. रामः—
म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि,

१४५. राम—तो आज्ञा दो।

सीता—मन करता है, पुनः स्वच्छ गम्भीर वनोंमें बिहार करके पवित्र निर्मल शीतल जलवाली भगवती **भागीरथी**का अवगाहन करूं।

१४६. राम—वत्स लक्ष्मण,

लक्ष्मण—यह हूं।

१४७. राम—वत्स, "जल्दी ही दोहद को पूरा करना", यह सन्देश अभी अभी गुरुजनोंने भेजा है। सो बिना देर किये रथको तैयार करो।
सीता—आर्यपुत्र, तुम्हें भी आना होगा।

१४८. राम—हे अतिकठोरहृदये, यह भी क्या कहनेको है?
सीता—तो अच्छा, मेरे लिये अच्छा।

१४९. लक्ष्मण—जो आर्य आज्ञा देते हैं। (बाहर चले गये)
राम—प्रिये, जंगलेके पास बैठी हो जा।

१५०. सीता—एवमस्तु, थकावट की निद्रा मुझे खींच ले गई।

१५१. राम—तो तेरे अनुगमन के लिये बराबर मेरा सहारा है (इसे)ले। चन्द्रमाकी किरणों से चुंबित जल बहाती चन्द्रमणि के हार जैसे सुन्दर भयके साथ पसीनेकी बूंदोंवाली, अपनी बाहुको जीवन देती सी मेरे कंठ में डालो।।३४।।

(वैसा करते आनन्द के साथ) प्रिये, यह क्या?

१५२. नहीं निश्चय कर पाता सुख है या दुख, मूर्छा या निद्रा, विष फैल रहा है या नशा। तेरे एक-एक स्पर्श से मेरी इन्द्रियां मुग्ध हो गईं। मनका विचार चेतना को घुमाता ढंक रहा है।।३५।।

१५३. सीता—तुम धीर प्रसन्नप्रकृति हो(सो) इस समय यह आश्चर्य है

१५४. राम—

मुरझाये जीवन रूपी पुष्पके खिलाने, संतृप्त करनेवाले, सारी इन्द्रि-

संतर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि ।
एतानि ते सुवचनानि सरोरुहाक्षि,
कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि ।।३६।।
सीता—प्रियंवद, एहि, संविशावः ।

१५५. रामः—अपि संदेष्टव्यम्—
आ विवाहसमयाद् गृहे वने,
शैशवे तदनु यौवने, पुनः ।
स्वापहेतुरनुपाश्रितोऽन्यया,
रामबाहुरुपधानमेष ते ।।३७।।

१५६. सीता—(निद्रां नाटयन्ती) अस्त्येतत्, आर्यपुत्र, अस्त्येतत् ।

१५७. रामः—कथं प्रियवचनेनैव मे वक्षसि प्रसुप्ता,
(निर्वर्ण्य)—
इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयोर्,
असावस्याः स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरसः ।
अयं बाहुः कण्ठे शिशिरमसृणो मौक्तिकसरः,
किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः ।।३८।।

(प्रविश्य)

१५८. प्रतीहारी—देव, उपस्थितः ।
रामः—अयि, कः ?
प्रतीहारी—आसन्नपरिचारको देवस्य दुर्मुखः ।

१५९. रामः—(स्वगतम्) शुद्धान्तचारी दुर्मुखः, स मया पौरजानपदेष्वपसर्पः प्रहितः । (प्रकाशम्) आगच्छतु ।

(प्रतिहारी निष्क्रान्ता)

योंको मोहित करने वाले, यह तेरे सुवचन, हे कमलाक्षि कानोंके लिये अमृत और मन के लिये रसायन हैं ।।३६।।

सीता—प्रियभाषी, आओ बैठें।

१५५. राम—(इसे) क्या कहना होगा—

विवाह के समय से लेकर घर में और वन में, शैशवमें, उसके बाद फिर यौवन मे, सोने के लिए जिस (के बिना) दूसरेने अवलंबित नहीं किया, वह राम का (यह) बाहु तेरा तकिया मौजूद है ।।३७।।

१५६. सीता—(निद्रा का अभिनय करती है) यह ऐसा ही है, आर्यपुत्र, यह ऐसा ही है।

१५७. राम—अरे, प्रिय वचन बोलते ही मेरे वक्ष पर सो गई? (निहार कर) घर के लिये यह लक्ष्मी, दोनों आंखों के लिये अमृत शलाका इसका यह स्पर्श शरीर के लिये बहुत चंदन रस है और यह बाहु कंठ में चिकनी मोती की माला है। इसका क्या अत्यन्त प्रिय नहीं है, पर विरह अत्यन्त असह्य है ।।३८।।

(प्रवेश करके)

१५८. प्रतीहारी—देव आ गया।

राम—अरे कौन?

प्रतीहारी—देवका घनिष्ट सेवक दुर्मुख।

१५९. राम—(अपने आप से) अन्तःपुर में (सर्वत्र) चल-फिर सकने वाला दुर्मुख उसे मैंने नगर और देहात के लोगों में गुप्तचर बनाकर भेजा था। (प्रकट) आवे।

(प्रतीहारी चली गई)

(३) सीता परित्यागः—

(प्रविश्य)

१६०. दुर्मुखः—(स्वगतम्) हा, कथमिदानीं देवीमन्तरेणेदृश-मचिन्तनीयं जनापवादं देवस्य कथयिष्यामि ? अथवा नियोगः खलु मम मन्दभागधेयस्यैषः ।

सीता—(उत्स्वप्नायते) आर्यपुत्र, कुत्रासि ?

१६१. रामः—सेयमेव रणरणकदायिनी चित्रदर्शनाद्विरहभावना देव्याः स्वप्नोद्योगं करोति । (सस्नेहमंगमस्याः परामृशन्)—

अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु यद्,
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः ।
कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्प्रेमसारे स्थितं,
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्राप्यते ॥३९॥

१६२. दुर्मुखः—(उपसृत्य) जयतु देवः ।

रामः—ब्रूहि, यदुपलब्धम् ।

१६३. दुर्मुखः—उपस्तुवन्ति देवं पौरजानपदा यथा 'विस्मारिता वयं महाराजं दशरथं रामदेवेने' ति ।

रामः—अर्थवाद एवैषः । दोषं तु मे कथंचित्कथय येन स प्रतिविधीयते ।

१६४. दुर्मुखः—(सास्रम्) शृणोतु महाराजः । (कर्णे) एव-मिव ।

रामः—अहह, अतितीव्रोऽयं वाग्वज्रः । (इति मूर्च्छति)

१६५. दुर्मुखः—आश्वसितु देवः ।

३. सीताका परित्याग

(प्रवेश करके)

१६०. दुर्मुख—(अपने आपसे) हा, कैसे अब देवीके संबन्ध में ऐसी न सोचने की भी जन-निंदाको देवसे कहूंगा ? अथवा मुझ अभागे का यह कर्तव्य जो है।

सीता—(सपना रही है) आर्यपुत्र, कहां हो ?

१६१. राम—सो यह चित्रके देखने से उत्सुकता पैदा करने वाली विरह-भावना देवीको स्वप्न दिखा रहा है। स्नेहके साथ उसके अंगको छूते हुए—

सुख और दुःख में, सारी अवस्थाओं में भी जो एक सा रहा, जहां हृदय को विश्राम, जिसमें जरारा भी न छीने जाने वाला रस है; ब्याह से लेकर समय पा जो परिपक्व प्रेम सार (के रूप) में स्थित है, उस दाम्पत्य का भद्र हो, जैसे भी वह एक अभिलषित (वस्तु) है ॥३९॥

१६२. दुर्मुख—(पास आकर) जय देव।

राम—बतला, जो पता पाया।

१६३. दुर्मुख—नगर-ग्राम के लोग देवकी तारीफ करते हैं, राम देव ने हमें महाराज दशरथ को भुलावा दिया। ....

राम—यह यों ही बात है। दोष तो मुझे कोई बतला, जिसमें उसका प्रतीकार किया जाय।

१६४. दुर्मुख—(खेदके साथ) सुनें महाराज कानमें ऐसा-ऐसा।

राम—अहह, अति तीव्र है यह वाणी रूपी वज्र (मुछित होते हैं)

१६५. दुर्मुख—देव धैर्य धरें।

१६६. रामः—(आश्वस्य)—

हा हा धिक्परगृहवासदूषणं यद्,
वैदेह्याः प्रशमितमद्भुतैरुपायैः।
एतत्तत्पुनरपि दैवदुर्विपाकाद्,
आलर्कं विषमिव सर्वतः प्रसक्तम् ॥४०॥

१६७. तत्किमद्य मन्दभाग्यः करोमि ? (विमृश्य, सकरुणम्) अथवा किमेतत् ?—

सतां केनापि कार्येण लोकस्याराधनं परम्।
तत्प्रतीतं हि तातेन मां च प्राणांश्च मुंचता ॥४१॥

१६८. संप्रत्येव च भगवता वसिष्ठेन संदिष्टम्। अपि च,—

यत्सावित्रैर्दीपितं भूमिपालैर्-
लोकश्रेष्ठैः साधु चित्रं चरित्रम्।
मत्संबन्धात्कश्मला किंवदन्ती,
स्याच्चेदस्मिन्हन्त धिङ्मामधन्यम् ॥४२॥

१६९. हा देवि देवयजनसंभवे ! हा स्वजन्मानुग्रहपवित्रित-वसुन्धरे ! हा मुनिजनकनन्दिनि ! हा पावकवसिष्ठारुन्धतीप्रशस्तशीलशालिनि ! हा राममयजीविते ! हा महारण्यवासप्रियसखि ! हा तातप्रिये ! हा स्तोकवादिनि ! कथमेवंविधायास्तवायमीदृशः परिणामः ?

त्वया जगन्ति पुण्यानि त्वय्यपुण्या जनोक्तयः।
नाथवन्तस्त्वया लोकास्त्वमनाथा विपत्स्यसे ॥४३॥

१७०. (दुर्मुखं प्रति) दुर्मुख, ब्रूहि—"लक्ष्मण, एष नूतनो राजा रामः समाज्ञापयति।" (कर्णे) एवमेवं इति। दुर्मुखः—हा ! कथमग्निपरिशुद्धाया गर्भस्थितपवित्रसंतानाया देव्या दुर्जनवचनादिदं व्यवसितं देवेन ?

१७१. रामः—शान्तं पापम्, शान्तं पापम्। दुर्जना नाम पौरजानपदाः —

१६६. राम——(धैर्य धरके) हा, हा धिक्कार, पर-गृह में निवास के वैदेहीके जिस दोषको अद्भुत उपायों से शांत किया गया था, दैवके दुर्विपाक से कुत्तेके विष की तरह वह फिर सर्वत्र फैल गया ।।४०।।

१६७. तो मैं अभागा अब क्या करूं ? (सोचकर, करुणा के साथ) अथवा यह क्या ? किसी भी कार्य से लोगों को खुश करना सत्पुरुषों के को लिये सबसे बढ़कर (बात) है । बापूने मुझे और अपने प्राणों को छोड़ते हुए उसी को पूरा किया ।।४१।।

१६८. अभी ही भगवान् वसिष्ठने सन्देश भेजा, और भी——
सूर्यवंशी लोकश्रेष्ठ राजाओं ने जिस विचित्र साधु-चरित्र को प्रकाशित किया, इसमें मेरे सम्बन्ध की कलुषित अफवाह यदि हो तो, हन्त, मुझ अभागेको धिक्कार है ।।४२।।

१६९. हा, यज्ञमें उत्पन्न देवि, हा अपने जन्मरूपी अनुग्रह से पृथिवीको पवित्र करनेवाली, हा जनकमुनि की नंदिनी, हा अग्नि वसिष्ठ अरुंधती द्वारा प्रशंसित शीलवाली, हा राम मात्र जीवनवाली, हा महा अरण्यवासकी प्रियसखी, हा बापूकी प्यारी, हा अल्पभाषिणी, ऐसी तेरा कैसे ऐसा परिणाम !
तेरे द्वारा संसार पवित्र है, और तेरे विषयमें जनोंका पाप कथन! तुझसे लोग नाथवाले हैं, और तू अनाथा होकर विपदमें पड़ेगी ।।४३।।

१७० दुर्मुख कह : लक्ष्मण नवीन राजा राम यह आज्ञा देता है। (कानमें ऐसे-ऐसे)

दुर्मुख——हाय-हाय, अग्नि द्वारा परिशुद्ध, गर्भमें पवित्र संतानधारिणी देवीके बारेमें दुर्जनोंके वचनसे देवने यह क्या करनेका निश्चय किया ?

१७१. राम——शान्तं पापम् । मेरे नागरिक तथा ग्रामवासी लोग और वह दुर्जन——

इक्ष्वाकुवंशोऽभिमतः प्रजानां,
जातं च दैवाद्वचनीयबीजम् ।
यच्चाद्भुतं कर्म विशुद्धिकाले,
प्रत्येतु कस्तद्यदि दूरवृत्तम् ॥४४॥

१७२. तद् गच्छ ।

दुर्मुखः—हा देवि ! (इति निष्क्रान्तः)

१७३. रामः—हा कष्टम्, अतिबीभत्सकर्मा नृशंसोऽस्मि संवृत्तः—

शैशवात्प्रभृति पोषितां प्रियां,
सौहृदादपृथगाश्रयामिमाम् ।
छद्मना परिददामि मृत्यवे,
सौनिके गृहशकुन्तिकामिव ॥४५॥

तत्किमस्पृश्यः पातकी देवीं दूषयामि । (इति सीतायाः शिरः समुन्नमय्य बाहुमाकृष्य)

१७४. अपूर्वकर्मचण्डालमयि मुग्धे, विमुंच माम् ।
श्रिताऽसि चन्दनभ्रान्त्या दुर्विपाकं विषद्रुमम् ॥४६॥

१७५. (उत्थाय) हन्त हन्त, संप्रति विपर्यस्तो जीवलोकः । अद्यावसितं जीवितप्रयोजनं रामस्य । शून्यमधुना जीर्णारण्यं जगत् । असारः संसारः । काष्ठप्रायं शरीरम् । अशरणोऽस्मि । किं करोमि ? का गतिः ? अथवा,—

दुःखसंवेदनायैव रामे चैतन्यमागतम् ।
मर्मोपघातिभिः प्राणैर्वज्रकीलायितं हृदि ॥४७॥

१७६. हा अम्ब अरुन्धति ! भगवन्तौ वसिष्ठविश्वामित्रौ ! भगवन् पावक ! हा देवि भूतधात्रि ! हा तात जनक ! हा मातः ! हा प्रियसखे महाराज सुग्रीव ! सौम्य हनूमन् ! महोपकारिन् लंकाधिपते विभीषण ! हा सखि त्रिजटे ! परिमुषिताः स्थ परिभूता स्थ रामहतकेन ।

इक्ष्वाकुओंका वंश प्रजाका प्रिय है। भाग्यसे वचनमारनेका उसके लिये बीज पैदा हुआ। (अग्नि) शुद्धिके समय जो अद्भुत क्रिया की गई, वह तो दूर स्थानमें हुई, फिर उसे कौन पतियाये ।।४४।।

१७२. सो जा—

दुर्मुख—हा देवि। (बाहर चला गया)

१७३. राम—हा, कष्टम्, मैं अत्यंत बीभत्सकर्मा कमीना हो गया— बचपनसे लेकर सौहार्दसे पोषित, विलग न रहनेवाली इस प्रियाको, छल से मृत्युको दे रहा हूं। जैसे घरकी चिड़िया बहेलियाको ।।४५।। सो मैं पातकी अछूत देवीको छूकर क्यों दूषित कर रहा हूं।

(सीताके सिरको उठा हाथ खींचकर)—

१७४. हे मुग्धे, मुझ असाधारण कर्मचांडाल को छोड़, तू चन्दनके भ्रमसे अहितकारी विषवृक्षका आश्रय ले रही है ।।४६।।

१७५. (उठकर) हन्त, हन्त, अब संसार उलट गया। आज रामके जीवन का प्रयोजन खतम हो गया। जगत् अब सूना पुराना जंगल है, संसार असार है, शरीर काठ सा है। मेरा कोई शरण नहीं। क्या करूं? मेरी क्या गति है? अथवा—

दुःखके अनुभवके लिये ही राममें चेतना है। मर्म-पीड़क (मेरे) प्राण हृदयमें वज्रकील बन गये है ।।४७।।

१७६. हा अम्मा अरुंधती, भगवान् वसिष्ठ और विश्वामित्र, भगवान् अग्नि, हा देवी पृथिवी, हा तात जनक, हा माता, हा प्रिय मित्र महाराज सुग्रीव, सौम्य हनूमान्, महा उपकारी लंकेश्वर विभीषण, हा सखी त्रिजटा, नीच रामने तुम्हें लूट लिया, तुम्हें तिरस्कृत कर दिया।

अथवा को नाम तेषामहमिदानीमाह्वाने ?

तेहि मन्ये महात्मानः कृतघ्नेन दुरात्मना।
मया गृहीतनामानः स्पृश्यन्त इव पाप्मना ॥४८॥

१७७. योऽहम्,—

विस्रम्भादुरसि निपत्य जातनिद्रां,
उन्मुच्य प्रियगृहिणीं गृहस्य लक्ष्मीम्।
आतंकस्फुरितकठोरगर्भगुर्वीं
क्रव्याद् भूयो बलिमिव दारुणः क्षिपामि ॥४९॥

१७८. (सीतायाः पादौ शिरसि कृत्वा)—अयं पश्चिमस्ते राम-शिरसि पादपंकजस्पर्शः

(इति रोदिति)

(नेपथ्ये)

१७९. अब्रह्मण्यमब्रह्मण्यम्।

रामः—ज्ञायतां भोः, किमेतत् ?

(पुनर्नेपथ्ये)

ऋषीणामुग्रतपसां यमुनातीरवासिनाम्।
लवणत्रासितस्तोमस्त्रातारं त्वामुपस्थितः ॥५०॥

१८०. रामः—कथमद्यापि राक्षसत्रासः ? तद्यावदस्य दुरात्मनो माधुरस्य कुम्भीनसीकुमारस्योन्मूलनाय शत्रुघ्नं प्रेषयामि (परिक्रम्य पुनर्निवृत्य) हा देवि ! कथमेवंविधा गमिष्यसि ? भगवति वसुन्धरे ! सुश्लाघ्यां दुहितरमवेक्षस्व जानकीम्—

जनकानां रघूणां च यत्कृत्स्नं गोत्रमंगलम्।
यां देवयजने पुण्ये पुण्यशीलामजीजनः ॥५१॥

१८१. (इति रुदन्निष्क्रान्तः)

अथवा अब उन्हें पुकारनेवाला मैं कौन हूं?

दुरात्मा कृतघ्न राम द्वारा नाम लिये जानेपर, मैं समझता हूं, वे महात्मा पापसे छुये से हो जायेंगे ।।४८।।

१७७. जो कि मैं—

विश्वास करके छातीपर पड़ सोई, आतंकसे कंपित, परिपक्व गर्भसे भारी, (गृह) लक्ष्मी प्रिय गृहिणीको छोड़कर मैं दारुण बलिकी तरह मांसभक्षी जन्तुओंके सामने फेंक रहा हूं ।।४९।।

१७८. (सीताके दोनों पैरोंमें सिर रखकर) यह रामके सिरसे ते चरण-कमलका अंतिम स्पर्श है। (रोते हैं)

(नेपथ्यमें)

१७९. अब्रह्मण्यम्, अब्रह्मण्यम्, महापाप हो गया।

राम—पता लगाओ हो, यह क्या है?

(फिर नेपथ्यमें)

जमुनाके तीरके रहनेवाले उग्र तपस्यावाले ऋषि-समूह लवणासुरसे त्रासित हो रक्षक तुम्हारे पास उपस्थित हुआ है ।।५०।।

१८०. राम—क्या आज भी राक्षसोंका त्रास है? तो फिर इस दुरात्मा मथुरा वाले कुंभीनसी-पुत्रके उन्मूलनके लिये शत्रुघ्न को भेजता हूं। (परिक्रमा करके फिर लौटकर) हा देवि, कैसे तू ऐसी जायेगी? भगवती पृथिवी सुप्रशंसनीय अपनी पुत्री जानकी की खबर लेना। जनकों और रघुओंके गोत्रकी जो सम्पूर्ण-मंगला है, जिस पुण्य-शीलाको तुमने यज्ञमें जन्म दिया ।।५१।।

१८१. (रोते हुये बाहर चले जाते हैं)

१८२. सीता—हा सौम्य आर्यपुत्र, कुत्रासि ? हा धिक् हा धिक्, दुःस्वप्नरणरणकविप्रलब्धा आर्यपुत्रशून्यमिवात्मानं पश्यामि । हा धिक् हा धिक्, एकाकिनीं प्रसुप्तां मामुज्झित्वा कुत्र गतो नाथः ? भवतु, तस्मै कोपिष्यामि यदि तं प्रेक्षमाणा आत्मनः प्रभविष्यामि । कोऽत्र परिजनः ?

(प्रविश्य)

१८३. दुर्मुखः—देवि, कुमारलक्ष्मणो विज्ञापयति—"सज्जो रथः । तदारोहतु देवी" इति ।
सीता—इयमारुढास्मि । (उत्थाय परिक्रम्य) स्फुरति मे गर्भभारः । शनैर्गच्छामः ।

१८४. दुर्मुखः—इत इतो देवी ।
सीता—नमो रघुकुलदेवताभ्याम् ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

(४) **ऋषेरातिथ्यम्**—

(ततः प्रविशतस्तापसौ)

१८५. एकः—सौधातके, दृश्यतामद्य भूयिष्ठसन्निधापितातिथिजनस्य समधिकारम्भरमणीयता भगवतो वाल्मीकेराश्रमपदस्य । तथा हि,—

नीवारौदनमण्डमुष्णमधुरं सद्यः प्रसूतप्रिया-
पीतादभ्यधिकं तपोवनमृगः पर्याप्तमाचामति ।
गन्धेन स्फुरता मनागनुसृतो भक्तस्य सर्पिष्मतः
कर्कन्धूफलमिश्रशाकपचनामोदः परिस्तीर्यते ॥१॥

१८२. सीता——हा सौम्य आर्यपुत्र, कहां हो? हा धिक्। दुःस्वप्नकी उत्सुकतासे छली मैं अपनेको आर्यपुत्रके बिना देख रही हूं। हा धिक्, मुझे अकेली सोई छोड़कर नाथ कहां गये! अच्छा, उन पर कोप करूं, यदि उन्हें देख अपने पर काबू पा सकूं। यहां कोई परिजन है?

(प्रवेश करके)

१८३. दुर्मुख——देवि, कुमार लक्ष्मण अर्ज करते हैं: "रथ तैयार है, सो देवी पधारें।"

सीता——(लो) यह चढ़ने आई। (उठकर परिक्रमा करके) मेरा गर्भ डोल रहा है। धीरे चलें।

१८४. दुर्मुख——इधरसे, इधरसे आइये।

सीता——रघुकुलके दोनों देवताओंको नमस्कार।

(सब बाहर चले गये)

——अंक १

४. ऋषिकी पहुनाई——

(तब दो तापस प्रवेश करते हैं)

१८५. एक——सौधातकि, देखो, आज बहुतसे आगत अतिथियोंवाले भगवान् वाल्मीकि के आश्रमकी अत्यधिक तैयारी कार्य-व्यस्तताकी रमणीयताको जैसे कि——

तुरंत प्रसूता अपनी प्रियाके पीने से बचे तिन्नीके भातके गरम मीठे मांडको तपोवनका मृग खूब पी रहा है। घीवाले भातके थोड़ा फैलते गंधका अनुगमन करती बैरके फलसे मिलाये साग पकानेकी खुशबू फैल रही है॥१॥

१८६. सौधातकिः—स्वागतमनेकप्रकाराणां जीर्णकूर्चानामन-ध्यायकारणानां तपोधनानाम् ।

प्रथमः—(विहस्य) अपूर्वः खलु बहुमानहेतुर्गुरुषु सौधा-तके !

१८७. सौधातकिः—भो दण्डायन, किंनामधेय इदानीमेष महतः स्त्रीसार्थस्य धुरंधरोऽद्यातिथिरागतः ?
दण्डायनः—धिक्प्रहसनम् । नन्वयमृष्यश्रृंगाश्रमादरुन्धतीं पुरस्कृत्य महाराजदशरथस्य दारानधिष्ठाय भगवान्वसिष्ठः प्राप्तः । तत्किमेवं प्रलपसि ?

१८८. सौधातकिः—हुं वसिष्ठः ?
दण्डायनः—अथ किम् ?

१८९. सौधातकिः—मया पुनर्ज्ञातः कोऽपि व्याघ्र इवैष इति ।
दण्डायनः—आः, किमुक्तं भवति ?

१९०. सौधातकिः—येन परापतितेनैव सा वराकी कपिला कल्याणी बलात्कृत्य मडमडायिता ।
दण्डायनः—समांसो मधुपर्क इत्याम्नायं बहुमन्यमानाः श्रोत्रियायाभ्यागताय वत्सतरीं वा पचन्ति गृहमेधिनः तं हि धर्मं धर्मसूत्रकाराः समामनन्ति ।

१९१. सौधातकिः—भो निगृहीतोऽसि ।
दण्डायनः—कथमिव ?

१९२. सौधातकिः—येनागतेषु वसिष्ठमिश्रेष वत्सतरी विश-सिता । अद्यैव प्रत्यागतस्य राजर्षेर्जनकस्य भगवता वाल्मीकिना दधिमधुभ्यामेव निर्वर्तितो मधुपर्कः, वत्सतरी पुनर्विसर्जिता ।

दण्डायनः—अनिवृत्तमांसानामेव कल्पं व्याहरन्ति के-चित् । निवृत्तमांसस्तु तत्र भवान् जनकः ।

१८६. सौधातकि—स्वागत है, अनेक प्रकारके अनध्याय (छुट्टी) के कारण, बड़ी दाढ़ी वाले नाना मुनियोंका।

पहला—(विहंस कर) सौधातकि, गुरुजनोंके विषयमें सम्मान प्रकट करनेका तुम्हारा यह अद्भुत ढंग है।

१८७. सौधातकि—दंडायन, स्त्री कारवांका मुखिया अतिथि जो आज आया है, उसका क्या नाम है?

दंडायन—धिक्कार है मजाकको, यह तो शृंगी ऋषिके आश्रमसे अरुधती को लिये महाराज दशरथकी स्त्रियोंको संभाले भगवान् वसिष्ठ आये हैं। सो क्यों ऐसी बकहवास कर रहा है?

१८८. सौधातकि—हूम् वसिष्ठ?

दंडायन—और क्या?

१८९. सौधातकि—मैंने तो समझा मानो यह कोई बाघ है।

दंडायन—आह, क्या कहता है!

१९०. सौधातकि—जिसने झपट्टा मारते उस बेचारी कल्याणी कपिलाको जबर्दस्ती मड़मड़ा डाला।

दंडायन—"मधुपर्क, मांस-सहित होना चाहिये", इस शास्त्र-वचनका सम्मान करते श्रोत्रिय अभ्यागतके लिये गृहस्थ बछिया पकाते हैं। इसे धर्मसूत्रके रचयिता धर्म बतलाते हैं।

१९१. सौधातकि—भो, तू निग्रहस्थान में पकड़ा गया।

दंडायन—कैसे?

१९२. सौधातकि—आगत वसिष्ठ आदिके लिये तो बछिया मारी गई, पर आज ही आये राजर्षि जनकके लिये भगवान् वाल्मीकिने दही-मधुसे मधुपर्क तैयार किया, और बछिया छोड़ दी।

दंडायन—वैसा विधान मांस न त्यागे हुओंके लिये कोई-कोई बतलाते हैं। जनकजी तो मांसविरत हैं।

१९३. सौधातकि:—किंनिमित्तम् ?
दण्डायन:—यद् देव्या: सीतायास्तादृश दैवदुर्विपाकमुपश्रुत्य वैखानस: संवृत्त:, तस्य कतिपयसंवत्सरश्चन्द्रद्वीपतपोवने तपस्तप्यमानस्य।

१९४. सौधातकि:—तत: किमित्यागत: ?
दण्डायन:—संप्रति च प्रियसुहृदं भगवन्तं प्राचेतसं द्रष्टुम्।

१९५. सौधातकि:—अद्य संबन्धिनीभि: समं निवृत्तं दर्शनमस्य न ?
दण्डायन:—संप्रत्येव भगवता वसिष्ठेन देव्या: कौसल्याया: सकाशं भगवत्यरुन्धती प्रहिता, यथा स्वयमुपेत्य स्नेहादयं द्रष्टव्य इति।

१९६. सौधातकि:—यथैते स्थविरा: परस्परमेव मिलिता:, तथाऽऽवामपि वटुभि: सह मिलित्वाऽनध्यायमहोत्सवं खेलन्तौ मानयाव:। अथ कुत्र स जनक: ?

१९७. दण्डायन:—तथायं प्राचेतसवसिष्ठावुपास्य संप्रत्याश्रमस्य बहिर्वृक्षमूलमधितिष्ठति। य एष:—
हृदि नित्यानुषक्तेन सीताशोकेन तप्यते।
अन्त:प्रसृप्तदहनो जरन्निव वनस्पति: ॥२॥
(इति निष्क्रान्तौ)

(५) **गुरुजन-समागम:**—

(तत: प्रविशति जनक:)

१९८. जनक:—
अपत्ये यत्तादृग्दुरितमभवत्तेन महता,
विषक्तस्तीव्रेण व्रणितहृदयेन व्यथयता।
पटुर्धारावाही नव इव चिरेणापि हि न मे,
निकृन्तन्मर्माणि क्रकच इव मन्युर्विरमति ॥३॥

१६३. सौधातकि—किसलिये।

दंडायन—देवी सीताके वैसे दैव-दुर्विपाकको सुनकर, वह मुनि हो गये, चन्द्रद्वीप नामक तपोवनमें तप करते उन्हें कितने ही वर्ष बीत गये।

१६४. सौधातिक—वहांसे क्यों आये?

दंडायन—प्रियमित्र भगवान् वाल्मीकिको देखनेके लिये, इस समय (आये)।

१६५. सौधातकि—आज समधिनोंके साथ इनकी भेंट हो गई ना?

दंडायन—इसी समय भगवान् वसिष्ठने कौसल्या देवीके पास भगवती अरुंधतीको भेजा, कि स्वयं आकर स्नेहपूर्वक इनसे मिलें।

१६६. सौधातकि—जैसे यह बूढ़े आपसमें मिलें, तैसे हम विद्यार्थी भी एक साथ मिलकर छुट्टीके महत्वको खेलते हुये मनायें। अच्छा वह जनक कहां हैं?

१६७. दंडायन—वाल्मीकि और वसिष्ठकी इस तरह उपासना करके इस समय आश्रमके बाहर वृक्षके नीचे जो बैठे हैं, वही—

हृदयमें सदा लगे सीताके शोकसे संतप्त हैं।
जैसे भीतर आग लगा वृक्ष जल रहा हो।।२।।

(दोनों बाहर चले गये)

५. गुरुजनों का मिलन—

(तब जनक प्रवेश करते हैं)

१६८. जनक—

(सीता) जैसी संतानपर जो विपद् पड़ी, उस बड़े,
तीव्र घायल हृदयकी पीड़ासे लिप्त,
चिरकालसे भी फिर नयेकी तरह प्रवाहित शोक,
मेरे मर्मको आरेकी तरह छेदता, बंद नहीं होता।।३।।

१९९. कष्टं एवं नाम जरया दुःखेन च दुरासदेन भूयः पराकसांतपनप्रभृतिभिस्तपोभिः शोषितान्तःशरीरधातोरवष्टम्भ एव महानद्यापि मम दग्धदेहो न पतति । अन्धतामिस्रा ह्यसूर्या नाम ते लोकाः प्रेत्य तेभ्यः प्रतिविधीयन्ते य आत्मघातिन इत्येवमृषयो मन्यन्ते । अनेकसंवत्सरातिक्रमेऽपि प्रतिक्षणपरिभावनास्पष्टनिर्भासः प्रत्यग्र इव न मे दारुणो दुःखसंवेगः प्रशाम्यति । अयि मातः देवयजनसंभवे सीते ! ईदृशस्ते निर्माणभागः परिणतः, येन लज्जया स्वच्छन्दमप्याक्रन्दितुं न शक्यते । हा पुत्रि !

२००. अनियतरुदितस्मितं विराजत्,
कतिपयकोमलदन्तकुड्मलाग्रम् ।
वदनकमलकं शिशोः स्मरामि,
स्खलदसमंजसमंजु जल्पितं ते ।।४।।

२०१. भगवति वसुन्धरे, सत्यमतिदृढासि—
त्वं वह्निर्मुनयो वसिष्ठगृहिणी गंगा च यस्या विदुर्,
माहात्म्यं यदि वा रघोः कुलगुरुर्देवः स्वयं भास्करः ।
विद्यां वागिव यामसूत भवती शुद्धिं गतायाः पुनस्,
तस्यास्त्वद्दुहितुस्तथा विशसनं किं दारुणे मृष्यथाः ।।५।।
इत इतो भगवती महादेव्यौ ।

२०२. जनकः—अये, गृष्टिनोपदिश्यमानमार्गा भगवत्यरुन्धती (उत्थाय) का पुनर्महादेवीत्याह । (निरूप्य) हा हा, कथमियं महाराजस्य दशरथस्य धर्मदाराः प्रियसखी मे कौसल्या ? क एतां प्रत्येति सैवेयमिति नाम ?—

२०३. आसीदियं दशरथस्य गृहे यथा श्रीः,
श्रीरेव वा किमुपमानपदेन सैषा ।
कष्टं बतान्यदिव दैववशेन जाता,
दुःखात्मकं किमपि भूतमहो विकारः ।।६।।

१९९. कष्टम्, इस तरह जरा असूया और दुःखसे (पीडित) फिर पराक, सांतपन (चांद्रायण) आदि तपस्याओंसे सुखाये हृदयका महा अवलंब, यह मेरा जला शरीर आज भी नहीं गिरता। ऋषि लोग मानते हैं, कि जो आत्म-हत्यारे होते हैं, वह मर कर इस पापसे प्रकाशहीन अत्यंत तिमिरवाले लोकोंमें जाते हैं। अनेक वर्षके बीतने-पर भी अनुभव करनेसे प्रतिक्षण स्पष्ट दिखाई देता मेरा नया सा (होता), दारुण दुःख-वेग शांत नहीं हो रहा है। अरी मैया, यज्ञसे उत्पन्न सीता, तेरा जीवन ऐसी अवस्थामें परिणत हुआ, कि लज्जाके कारण इच्छा भरकर रो भी नहीं सकता। हा पुत्री—

२००. अनियम-पूर्वक रोने मुस्करानेसे शोभा देते,
कुछ कोमल दंतकलियोंको आगे दिखाते,
तेरे शैशवके कमल-वदनको याद करता हूं;
और ते तुतलाने, असंबद्ध मंजुल बोलनेको भी ।।४।।

२०१. भगवती वसुंधरा, सचमुच ही तुम अति दृढ़ हो—
जिसके महात्म्यको तूने, अग्निने, मुनियोंने, वसिष्ठ-पत्नीने और गंगाने जना तथा रघुके कुल-गुरु स्वयं सूर्यदेवने जाना।
जिसे सरस्वतीकी तरह आपने जन्म दिया, तब शुद्ध हुई उस तुम्हारी पुत्रीकी ऐसी हिंसा करना, हे कठोर तू (इसे) कैसे सहती है ।।५।।
इधर-इधर (आइये) भगवती और महादेवी।

२०२. जनक—अये, कंचुकीके बतलाये मार्गसे भगवती अरुंधती (उठकर) यह महादेवी कौन है। (अच्छी तरह देखकर) हा-हा, महाराज दशरथकी धर्मपत्नी मेरी प्रिय सखी, क्या यह कौसल्या है? कौन विश्वास करेगा, कि यह वही है।

२०३. यह दशरथ के घरमें लक्ष्मीकी तरह थी,
अथवा यह श्री ही थी, उपमाके पदके जोड़नेसे क्या?
सो हाय, दैववश यह दूसरी सी ही हो गई।
अहो, कोई दुःखाकार भूत है, विकार है ।।६।।

य एव मे जनः पूर्वमासीन्मूर्तो महोत्सवः ।
क्षते क्षारमिवासह्यं जातं तस्यैव दर्शनम् ।।७।।

(ततः प्रविशत्यरून्धती कौसल्या कंचुकी च)

२०४. अरुन्धती—ननु ब्रवीमि द्रष्टव्यः स्वयमुपेत्यैव वैदेह इत्येवं वः कुलगुरोरादेशः । अत एव चाहं प्रेषिता । तत्कोऽयं पदे पदे महाननध्यवसायः ?

२०५. कंचुकी—देवि , संस्तभ्यात्मानमनुरुध्यस्व भगवतो वसिष्ठस्यादेशमिति विज्ञापयामि ।

२०६. कौसल्या—ईदृशे काले मिथिलाधिपो मया द्रष्टव्य इति सममेव सर्वदुःखान्यवतरन्ति । तस्मान्न शक्नोम्युद्वर्तमानमूलबन्धनं हृदयं पर्यवस्थापयितुम् ।

२०७. अरुन्धती—अत्र कः सन्देहः ?—

संतानवाहीन्यपि मानुषाणां
दुःखानि संबन्धिवियोगजानि ।
दृष्टे जने प्रेयसि दुःसहानि
स्रोतःसहस्रैरिव संप्लवन्ते ।।८।।

२०८. कौसल्या—कथं नु खलु वत्साया मे बध्वा वनगतायास्तस्या पितु राजर्षेर्मुखं दर्शयामः ?

२०९. अरुन्धती—

एष वः श्लाघ्यसंबन्धी जनकानां कुलोद्वहः ।
याज्ञवल्क्यो मुनिर्यस्मै ब्रह्मपारायणं जगौ ।।९।।

२१०. कौसल्या—एष स महाराजस्य हृदयनिर्विशेषो वत्साया मे बध्वाः पिता विदेहराजः सीरध्वजः । स्मारितास्मि अनिर्वेदरमणीयान्दिवसान् । हा देव, सर्वं तन्नास्ति ।

जो ही व्यक्ति पहले मेरे लिये शरीरधारी महोत्सव था।
उसका ही दर्शन अब घावमें नमककी तरह असह्य हो गया ॥७॥

(तब अरुंधती, कौसल्या और कंचुकी प्रवेश करते हैं)।

२०४. अरुंधती—हां, मैं कहती हूं, स्वयं ही पास जाकर जनकका दर्शन करो। यह तुम्हारे कुलगुरुका आदेश है। और इसीलिये मुझे भेजा है, सो यह क्यों पद-पदपर भारी हिचकिचाहट है?

२०५. कंचुकी—देवि, अर्ज करता हूं, अपनेको संभाल कर भगवान् वसिष्ठके आदेशका पालन करें।

२०६. कौसल्या—ऐसे समय मिथिलेशको मुझे देखना होगा, यह सोच एक साथ ही सारे दुःख एक साथ मुझपर टूट रहे हैं। इसीलिये उखड़ते बूंतवाले हृदयको शांत नहीं कर पाती।

२०७. अरुंधती—इसमें क्या संदेह है?—

संबंधियोंके वियोगसे उत्पन्न, प्रवाहसे बहते मनुष्योंके दुःख, प्रियजनके देखने पर सहस्र स्रोतोंसे दुस्सह होकर बहने लगते हैं ॥८॥

२०८. कौसल्या—मेरी बच्चीके वन जानेपर उसके पिता राजर्षिको कैसे मुंह दिखलावें।

२०९. अरुंधती—तुम्हारे यह प्रशंसनीय समधी जनकोंके वंशधर हैं, जिनके लिये याज्ञवल्क्य मुनिने ब्रह्मका उपदेश दिया था ॥९॥

२१०. कौसल्या—यह महाराज (दशरथ) के अभिन्न-हृदय, मेरी बच्ची बहूके पिता, विदेहोंके राजा सीरध्वज हैं। उन निर्द्वन्द्व रमणीय दिनोंकी याद आ रही है। हा देव, वह सब नहीं रहा।

२११ जनकः—(उपसृत्य) भगवत्यरुन्धति, वैदेहः सीरध्वजोऽभिवादयते—

यया पूतंमन्यो निधिरपि पवित्रस्य महसः,
पतिस्ते पूर्वेषामपि खलु गुरूणां गुरुतमः ।
त्रिलोकीमांगल्यामवनितलल्लीनेन शिरसा,
जगद्वन्द्यां देवीमुषसमिव वन्दे भगवतीम् ॥१०॥

२१२. अरुन्धती—अक्षरं ते ज्योतिः प्रकाश्यताम् । स त्वां पुनातु देवः परो रजसां य एष तपति ।

जनकः—आर्ये गृष्टे, अप्यनामयमस्याः प्रजापालकस्य मातुः ?

२१३. कंचुकी—(स्वगतम्) निरवशेषमतिनिष्ठुरमुपालब्धाः स्मः । (प्रकाशम्) राजर्षे, अनेनैव मन्युना चिरपरित्यक्तरामभद्रदर्शनां नार्हसि दुःखयितुमतिदुःखितां देवीम् । रामभद्रस्यापि दैवदुर्योगः कोऽपि, यत्किल समन्ततः प्रवृत्तबीभत्सकिंवदन्तीकाः पौरा न चाग्निशुद्धिमनल्पकाः प्रतियन्तीति दारुणमनुष्ठितं देवेन ।

२१४. जनकः—(सरोषम्) आः, कोऽयमग्निर्नामास्मत्प्रसूतिपरिशोधने ? कष्टमेवंवादिना जनेन रामभद्रपरिभूता अपि पुनः परिभूयामहे ।

२१५. अरुन्धती—(निःश्वस्य) एवमेतत् । "अग्निरग्निरिति" वत्सां प्रति लघून्यक्षराणि, सीतेत्येव पर्याप्तम् । हा, वत्से—

शिशुर्वा शिष्या वा यदसि मम तत्तिष्ठतु तथा,
विशुद्धेरुत्कर्षस्त्वयि तु मम भक्तिं द्रढयति ।
शिशुत्वं स्त्रैणं वा भवतु ननु वन्द्यासि जगतां,
गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः ॥११॥

२११. जनक——(पास आकर) भगवती अरुंधती, वैदेही सीरध्वज अभिवादन करता है। जिस (तुम्हारे) द्वारा पवित्र तेजकी निधि भी अपनेको पवित्र मानती है।

जिस तुम्हारे पति पूर्व-गुरुओंके भी महान् गुरु हैं।
उस त्रिलोक-मंगला उषा देवीकी तरह,
जगद्वंदनीया भगवतीको सिरसे वंदना करता हूं ॥१०॥

२१२. अरुंधती——अविनाशी ज्योति (ब्रह्म) तुम्हें प्रकाशित हो। वह देव तुम्हें पवित्र करें, जो यह दूर लोकोंको भी प्रकाशित करते हैं।
जनक——आर्य गृष्टि (कंचुकी), प्रजापालककी यह माता स्वस्थ तो हैं?

२१३. कंचुकी——(अपने आपसे) हम पर पूरी तौरसे अत्यन्त निष्ठुर ताना मार गया। (प्रकट) राजर्षि, इस कोप द्वारा देरसे रामका (मुंह) देखना छोड़े अतिदुःखिता देवीको दुःखित नहीं करना चाहिये। रामचन्द्रको भी कोई दैवका दुर्योग है, जो कि चारों ओर फैली भीषण अफवाहोंके कारण बहुतसे पुरवासी अग्नि-शुद्धिको नहीं पतियाये, इसलिये देव (राम) ने (वह) दारुण काम किया।

२१४. जनक——(रोष-सहित) आह, मेरी पुत्रीके शुद्ध करनेमें यह अग्नि कौन होता है? हाय, ऐसा कहनेवाला आदमी राम द्वारा अपमानित हमें फिरसे अपमानित कर रहा है।

२१५. अरुंधती——(उसास लेकर) ऐसी ही है यह। "अग्नि-अग्नि" यह अक्षर बच्ची (सीता) के बारे में तुच्छ हैं। सीता यही पर्याप्त है। हा बच्ची——

मेरी शिशु हो या शिष्या इसे रहने दो।
शुद्धिका जो उत्कर्ष है, वह तेरे विषयमें मेरी भक्ति दृढ़ करता है।
शिशुता हो चाहे स्त्रीत्व, तुम जगतकी वंदनीया हो।
गुणियोंमें पूजनीय गुण होते हैं, लिंग और आयु नहीं ॥११॥

२१६. कौसल्या—अहो, समुन्मूलयन्तीव वेदनाः ।
जनकः—हन्त, किमेतत् ?

२१७. अरुन्धती—राजर्षे, किमन्यत्—

स राजा तत्सौख्यं स च शिशुजनस्ते च दिवसाः,
स्मृतावाविर्भूतं त्वयि सुहृदि दृष्टे तदखिलम् ।
विपाके घोरेऽस्मिन्न खलु न विमूढा तव सखी,
पुरंध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति ॥१२॥

२१८. जनकः—हन्त, सर्वथा नृशंसोऽस्मि । यच्चिरस्य दृष्टा-न्प्रियसुहृदः प्रियदारानस्निग्ध इव पश्यामि—

स संबन्धी श्लाघ्यः प्रियसुहृदसौ तच्च हृदयं,
स चानन्दः साक्षादपि च निखिलं जीवितफलम् ।
शरीरं जीवो वा यदधिकमतोऽन्यत्प्रियतरं,
महाराजः श्रीमान्किमपि मम नासीद् दशरथः ॥१३॥

२१९. कष्टमियमेव सा कौसल्या,—

यदस्याः पत्युर्वा रहसि परमन्त्रायितमभूद्,
अभूवं दम्पत्योः पृथगहमुपालम्भविषयः ।
प्रसादे कोपे वा तदनु मदधीनो विधिरभूद्
अलं वा तत्स्मृत्वा दहति यदवस्कन्द्य हृदयम् ॥१४॥

२२०. अरुन्धती—हा कष्टम् ! अतिचिरनिरुद्धनिःश्वासनि-ष्पन्दं हृदयमस्याः ।

जनकः—हा प्रियसखि ! (इति कमण्डलूदकेन सिंचति)

कंचुकी—

सुहृदिव प्रकटय्य सुखप्रदां,
प्रथममेकरसामनुकूलताम् ।
पुनरकाण्डविवर्तनदारुणः,
परिशिनष्टि विधिर्मनसो रुजम् ॥१५॥

२१६. कौसल्या---अहो, पीड़ा जड़ सी उखाड़ रही है।
जनक--हन्त, यह क्या ?

२१७. अरुंधती---राजर्षि, और दूसरा क्या ?---

वह राजा, वह सुख, वह बच्चे और वे दिन,
तुम जैसे मित्रको देखने पर सब स्मृतिमें प्रकट हो गये।
इस घोर विपाकमें तेरी सखी अमूढ़ नहीं रह सकती---
स्त्रियोंका चित्त कुसुम सा सुकुमार होता है ॥१२॥

२१८. जनक---हन्त, सर्वथा मैं नृशंस हूं, जो देर से देखे प्रिय मित्र की स्त्रियों को स्नेह बिना देख रहा हूं---.

वह समधी श्लाघनीय है, वह प्रिय सुहृत्, और वह हृदय (भी)
वह आनन्द सारे जीवन का साक्षात् फल।
शरीर या जीव अथवा इससे अधिक दूसरा जो प्रिय है (सभी थे)
श्रीमान् महाराज दशरथ मेरे क्या नहीं थे ॥१३॥

२१९. ओह, यही वह कौसल्या है।

इसने या पतिने रहस्य में गुप्त जो सलाह की,
प्रसन्नता या कोप में दोनों पति-पत्नियों के उपालंभका
मैं अलग लक्ष्य हुआ था, उसके बाद भाग्य मेरे पक्षमें हुआ।
उसे याद करना बेकार है, जो कि हृदय को पीडित कर जलाता है ॥१४॥

२२०. अरुंधती---हा कष्टम्, बहुत देरसे श्वास-गति रुका इसका हृदय है।
जनक---हा प्रियसखि, (कमंडलूका जल छिड़कते हैं)

कंचुकी---

मित्रकी तरह पहले सुखप्रद,
एकरस अनकूलताको प्रकट करके,
फिर एकाएक बदल कर दारुण हो,
दैव मनके रोगको बढ़ाता है ॥१५॥

२२१. कौसल्या—(आश्वस्य) हा, वत्से जानकि ! कुत्रासि ? स्मरामि ते नवविवाहलक्ष्मीपरिग्रहैकमंगलं संफुल्लमुग्ध-मुखपुण्डरीकमारुहत्कौमुदीचन्द्रसुन्दरम् । एहि मे पुनरपि जाते उदद्योतयोत्संगम् । सर्वदा महाराज एवं भणति—"एषा रघुकुलमहत्तराणां वधूरस्माकं तु जनकसुता दुहितैव ।"

२२२. कंचुकी—यथाह देवी,—

पंचप्रसूतेरपि　तस्य　राज्ञः,
प्रियो　विशेषेण　सुबाहुशत्रुः ।
वधूचतुष्केऽपि　तथैव　नान्या,
प्रिया　तनूजास्य यथैव सीता ॥१६॥

२२३. जनकः—हा प्रियसख महाराज दशरथ, एवमसि सर्वप्रकारहृदयंगमः । कथं विस्मर्यसे ?

कन्यायाः किल पूजयन्ति पितरो जामातुराप्तं जनं,
संबन्धे　विपरीतमेव　तदभूदाराधनं ते मयि ।
त्वं कालेन तथाविधोऽप्यपहृतः संबन्धबीजं च तद्,
घोरेऽस्मिन्मम　जीवलोकनरके　पापस्य　धिग्जीवितम्
॥१७॥

२२४. कौसल्या—जाते जानकि ! किं करोमि ? दृढवज्रलेपप्रतिबन्धनिश्चलं हतजीवितं मां मन्दभागिनीं न परित्यजति ।

अरुन्धती—आश्वसिहि राज्ञि, बाष्पविश्रामोऽप्यन्तरेषु कर्तव्य एव । अन्यच्च, किं न स्मरसि यदवोचदृष्यशृंगाश्रमे युष्माकं कुलगुरुर्भवितव्यं तथेत्युपजातमेव, किंतु कल्याणोदर्कं भविष्यतीति ?

२२१. कौसल्या——(सांस लेकर) हा, बच्ची जानकी कहां हो? याद आता है तेरे नवविवाहकी शोभाके परिग्रहके केवल मंगलवाला, उठते चन्द्रकी तरह सुन्दर फूला मुग्ध मुखकमल। पुत्री, आ फिर मेरी गोदको उज्वल कर। सदा महाराज कहते थे: "यह जनक-सुता तो रघुकुल महत्तरोंकी वहू, पर हमारे लिये तो बेटी ही है।

२२२. कंचुकी——जो देवी कहती हैं, वही बात है,——

उस राजाकी पांच संतानोंमें भी,
सुबाहुके शत्रु (राम) विशेषकर प्रिय थे।
उसी तरह चारों बहुओंमें दूसरी उतनी,
नहीं प्रिय थी, जैसी कि इनकी पुत्री सीता ।।१६।।

२२३. जनक——हा प्रिय मित्र, महाराज दशरथ, इस प्रकार तुम सब प्रकार से हृदयमें समाये कैसे भूले जा सकते हो——

कन्याके पिता जमाईके पूज्य जनोंको पूजते हैं।
सो मेरी आराधना करनेमें तुम्हारा संबंध उलटा ही हुआ।
ऐसे तुम काल पाकर छीन लिये गये, किंतु यह सबन्ध का बीज,
इस मेरे घोर संसाररूपी नर्कमें है, मुझ पापीका जीना धिक्कार है ।।१७।।

२२४. कौसल्या——पुत्री जानकी, क्या करूँ? मजबूत वज्रलेपसे जड़ा निश्चल हतभागा यह जीवन मुझ अभागिनी को नहीं छोड़ रहा है।

अरुंधती——रानी, धीरज धरो। बीचमें आंसुओंको रोकना चाहिये। और क्या तुम्हें नहीं याद है, श्रृंगी ऋषि के आश्रम में तुम्हारे कुल-गुरु ने क्या कहा था——जैसी भवितव्यता थी, वैसा ही हुआ, किंतु इसका परिणाम मंगल होगा?

२२५. कौसल्या—कुतोऽतिक्रान्तमनोरथाया ममैतत् ?

२२६. अरुन्धती—तत्किं मन्यसे राजपत्नि ! मृषोद्यं तदिति ? नहीदं क्षत्रिये, मन्तव्यम्—

आविर्भूतज्योतिषां ब्राह्मणानां,
ये व्याहारास्तेषु मा संशयो भूत् ।
भद्रा ह्येषां वाचि लक्ष्मीर्निषक्ता,
नैते वाचं विप्लुतार्थां वदन्ति ॥१८॥

(नेपथ्ये कलकलः, सर्वे आकर्णयन्ति)

२२७. जनकः—अये, अद्य खलु शिष्टानध्ययन इत्यस्खलितं खेलतां बटूनां कोलाहलः ।

कौसल्या—सुलभसौख्यमिदानीं बालत्वं भवति। (निरूप्य) अहो, एतेषां मध्ये क एष रामभद्रस्य कौमारलक्ष्मीसावष्टम्भैर्मुग्धललितैरङ्गैर्दारकोऽस्माकं लोचने शीतलयति ?

२२८. अरुन्धती—(स्वगतम् सहर्षोत्कण्ठम्) इदं नाम भागीरथीनिवेदितं रहस्यकर्णामृतम् । न त्वेवं विद्मः कतरोऽयमायुष्मतोः कुशलवयोरिति (प्रकाशम्)—

कुवलयदलस्निग्धश्यामः शिखण्डकमण्डनो,
बटुपरिषदं पुण्यश्रीकः श्रियैव सभाजयन् ।
पुनरपि शिशुर्भूत्वा वत्सः स मे रघुनन्दनो,
झटिति कुरुते दृष्टः कोऽयं दृशोरमृतांजनम् ॥१९॥

२२९. कंचुकी—नूनं क्षत्रियब्रह्मचारी दारकोऽयमिति मन्ये। जनकः—एवमेतत् । अस्य हि,—

चूडाचुम्बितकंकपत्रमभितस्तूणीद्वयं पृष्ठतो,
भस्मस्तोकपवित्रलांछनमुरो धत्ते त्वचं रौरवीम् ।

२२५. कौसल्या—(सभी) मनोरथोंसे वंचित मेरे लिये यह कहां संभव है ?

२२६. अरुंधती—तो क्या राजपत्नी, रामजननी हो वह कथन झूठा है ? हे क्षत्रियाणी, ऐसा नहीं समझना चाहिये—

ज्योति जिनके सामने प्रकट है, उन ब्राह्मणोंके
उन व्यवहारोंमें संशय न करो।
इनके वचनमें मंगल लक्ष्मी बंधी है।
वे ऊटपटांग अर्थवाली वाणी नहीं बोलते ॥१८॥

(नेपथ्यमें हल्ला-गुल्ला, सब सुन रहे हैं)

२२७. जनक—अये, आज शिष्टोंके आनेका अनध्याय है, इसलिये अचूक खेलते विद्यार्थियोंका (यह) कोलाहल है।

कौसल्या—इस समय बचपन सुख-सुलभ होता है। (देखकर) अहो, इनके बीचमें कौन यह बालक है, जो रामचन्द्रके बचपनकी शोभासे युक्त मुग्ध ललित, अपने अंगों द्वारा हमारे लोचनको शीतल कर रहा है ?

२२८. अरुंधती—(अपने आपसे हर्ष और उत्कंठाके साथ) यह तो भागी-रथीका बतलाया कानोंका गोपनीय अमृत है। पर, यह नहीं जानती, कि इनमें आयुष्मान् कुश और लवमें कौन-कौन हैं। (प्रकट)—

नील कमलदलसे स्निग्ध और श्याम खोपसे मंडित,
पुण्य शोभावाला बच्चोंकी सभाको शोभासे युक्त करते।
वहीं मेरा बच्चा रघुनंदन फिर शिशु होकर दीखता सा,
यह कौन तुरन्त नेत्रोंका अमृतांजन बन रहा है ॥१९॥

२२९. कंचुकी—यह बच्चा मुझे क्षत्रिय-ब्रह्मचारी जान पड़ता है।

जनक—यह ऐसा ही है। इसके तो—

चारों ओर चूड़ामें लगे कौवेके पंख और पीठकी ओर दो तूणीर हैं,
छातीमें भस्मका थोड़ा सा पवित्र तिलक यह रुरुका मृगछाला धारण किये है।

मौर्व्या मेखलया नियन्त्रितमधोवासं च मांजिष्ठकं,
पाणौ कार्मुकमक्षसूत्रवलयं दण्डोऽपरः पैप्पलः ॥२०॥
भगवत्यरुन्धति, किमित्युत्प्रेक्षसे कुतस्त्योऽयमिति ?

२३०. अरुन्धती—अद्यैव वयमागताः।

जनकः—आर्य गृष्टे, अतिकौतुकं वर्तते। तद् भगवन्तं वाल्मीकिमेव गत्वा पृच्छ। इमं च दारकं ब्रूहि "वत्स! केऽप्येते प्रवयसस्त्वां दिदृक्षव" इति।

२३१. कंचुकी—यदाज्ञापयति देवः। (इति निष्क्रान्तः)
कौसल्या—किं मन्यध्वे एवं भणित आगमिष्यति वा न वेति ?

जनकः—भिद्यते वा सद्वृत्तमीदृशस्य निर्माणस्य।

२३२. कौसल्या—(निरूप्य) कथं सविनयनिशमितगृष्टिवचनो विसर्जिताशेषसदृशदारक इतोऽभिमुखमपसरित एव स वत्सः ?

२३३. जनकः—(चिरं निर्वर्ण्य) भोः, किमप्येतत्,—

महिम्नामेतस्मिन्विनयशिशिरो मौग्ध्यमसृणो,
विदग्धैर्निर्ग्राह्यो न पुनरविदग्धैरतिशयः।
मनो मे संमोहस्थिरमपि हरत्येष बलवान्,
अयोधातुं यद्वत्परिलघुरयस्कान्तशकलः ॥२१॥

२३४. लवः—(प्रविश्य) अविज्ञातवयःक्रमौचित्यात्पूज्यानपि सतः कथमभिवादयिष्ये ? (विचिन्त्य) अयं पुनरविरुद्धः प्रकार इति वृद्धेभ्यः श्रूयते। (सविनयमुपसृत्य) एष वो लवस्य शिरसा प्रणामपर्यायः।
अरुन्धती जनकौ—कल्याणिन्, आयुष्मान्भूयाः।

२३५. कौसल्या—जात, चिरं जीव।
अरुन्धती—एहि वत्स, (लवमुत्संगे गृहीत्वा, आत्म-

(इसका) निचला भाग ज्या और मेखलासे बंधा है, और वस्त्र का रंग लाल है। हाथमें धनुष रुद्राक्षकी मालाका कंकण और पीपलका दंड है ॥२०॥ भगवती अरुंधती, आप क्या अनुमान कर रही हैं, यह कहांका है ?

२३०. अरुंधती—आज ही हम आये हैं।

जनक—आर्य गृष्टि बड़ा कौतूहल हो रहा है। सो भगवान् वाल्मीकि-से ही जाकर पूछें और इस बालकको कहें : "वत्स, यह वृद्ध तुझे देखना चाहते हैं।

२३१. कंचुकी—जैसी देव आज्ञा देते हैं। (बाहर चला गया)

कौसल्या—आप क्या समझ रहे हैं, ऐसे बुलाने पर आयेगा या नहीं ?

जनक—अथवा ऐसी रूप-रचनाके सद्वृत्तमें भेद होता है।

२३२. कौसल्या—(अच्छी तरह देखकर) क्यों, विनयपूर्वक गृष्टिका वचन सुन अपने जैसे सारे बच्चों को छोड़कर वह इधर ही आ रहा है ?

२३३. जनक—(देर तक अच्छी तरह देखकर) हे, यह कोई—

महिमाओंका विनयसे शीतल मुग्धतासे चिकना, पंडितों द्वारा पकड़ा जानेवाला, पर अपंडितों द्वारा नहीं इसके भीतर यह अतिशय, मोहमें स्थिर मेरे मनको बलवान् हो वैसे ही हरण कर रहा है; जैसे अतिलघु चुम्बक-खंड, लोहेकी धातुसे ॥२१॥

२३४. लव—(प्रवेश करके) आयुके तारतम्यको बिना जाने पूज्य होते भी इनका कैसे उचित रीति से अभिवादन करूंगा। (सोचकर) किन्तु, वृद्धोंसे यह अविरोधी ढंग सुना है। (विनयके साथ पास आकर) आप लोगोंको यह लवका सिरसे प्रणाम है

अरुंधती और जनक—आयुष्मान् कल्याण युक्त होवो।

२३५. कौसल्या—पुत्र, चिरंजीव।

अरुंधती—आओ बच्चा। (लवको गोदमें ले अपने आपसे) धन्य,

गतम्) दिष्ट्या न केवलमुत्संगश्चिरान्मनोरथोऽपि मे पूरितः।

२३६. कौसल्या—जात, इतोऽपि तावदेहि। अहो न केवलं दरविस्पष्टकुवलयमांसलोज्ज्वलेन देहबन्धनेन कवलितारविन्दकेसरकषायकण्ठकलहंसघोषघर्घरनादिना स्वरेणच रामभद्रमनुसरति। ननु कठोरकमलगर्भपक्ष्मलशरीरस्पर्शोऽपि तादृश एव। जात; पश्यामि ते मुखपुण्डरीकम्। राजर्षे, किं न पश्यसि निपुणं निरूप्यमाणो वत्साया मे वध्वा मुखचन्द्रेणापि संवदत्येव?

जनकः—पश्यामि सखि, पश्यामि।

२३७. कौसल्या—अहो, उन्मत्तीभूतमिव मे हृदयं कुतो मुखं विलपति।

जनकः—

वत्सायाश्च रघूद्वहस्य च शिशावस्मिन्नभिव्यज्यते,
संवृत्तिः प्रतिबिम्बितेव निखिला सैवाकृतिः सा द्युतिः।
सा वाणी विनयः स एव सहजः पुण्यानुभावोऽप्यसौ,
हा हा देवि! किमुत्पथैर्मम मनः पारिप्लवं धावति ॥२२॥

२३८. कौसल्या—जात, अस्ति ते माता, स्मरसि वा तातम्?
लवः—नहि।

२३९. कौसल्या—ततः कस्य त्वम्?
लवः—भगवतः सुगृहीतनामधेयस्य वाल्मीकेः।

२४०. कौसल्या—अयि जात, कथितव्यं कथय।
लवः—एतावदेव जानामि।

(नेपथ्ये)

भो भोः सैनिकाः। एष खलु कुमारश्चन्द्रकेतुराज्ञापयति "न केनचिदाश्रमाभ्यर्णभूमय आक्रमितव्या" इति।

मेरा गोद ही नहीं चिरकालसे पोषित मेरा मनोरथ भी पूरा हो गया।

२३६. कोसल्या——पुत्र, इधर भी जरा आ। अहो, केवल फूले स्पष्ट नील-कमलसे मांसल उज्ज्वल देहके अंगोंसे ही नहीं, बल्कि कमल-केसरके कषायको खाये कंठवाले हंसके घोषकी तरह घर्-घर् करनेवाले स्वरसे भी यह रामभद्रका अनुकरण कर रहा है। हां, कठोर कमल-केसरकी पलकोंवाले (इसके) शरीरका स्पर्श भी वैसा ही है। पुत्र, तेरे मुख-कमलको देख रही हूं। राजर्षि, क्या अच्छी तरह देखनेपर मेरी बछिया के मुख-चन्द्र सा नहीं दीखता?

जनक——देखता हूं सखी, देखता हूं।

२३७. कोसल्या——अहो, उन्मत्त हुआ मेरा हृदय कहांसे मुख विलाप कर रहा है?

जनक——

बच्चो और रघुनंदनकी समानता इस शिशुमें व्यक्त हो रही है।
वही आकृति, वही सारी द्युति प्रतिबिम्बित सी है।
वही वाणी है, वही विनय और वही सहज पुण्य प्रभाव भी।
हा-हा देवी, क्यों मेरा मन विपथमें बेतहासा दौड़ रहा है।।२२।।

२३८. कोसल्या——पुत्र, तेरी माता है? बापको जानता है?

लव——नहीं।

२३९. कोसल्या——तो तू किसका है?

लव——सुन्दर नामधारी भगवान् वाल्मीकिका।

२४०. कोसल्या——हे पुत्र, कहना है, सो कह।

लव——मै इतना ही जानता हूं।

(नेपथ्यमें)

हे-हे सैनिको, यह कुमार चन्द्रकेतु आज्ञा दे रहे हैं, कि "कोई आश्रमके पासकी भूमिको आक्रांत न करे।"

२४१. अरुन्धतीजनकौ—अये, मेध्याश्वरक्षाप्रसंगादुपागतो वत्सश्चन्द्रकेतु र्द्रष्टव्य इत्यहो सुदिवसः।

२४२. कौसल्या—वत्सलक्ष्मणस्य पुत्रकः आज्ञापयतीत्यमृतबिन्दुसुन्दराण्यक्षराणि श्रूयन्ते।

लवः—आर्य; क एष चन्द्रकेतुनामि ?

२४३. जनकः—जानासि रामलक्ष्मणौ दाशरथी ?

लवः—एतावेव रामायणकथापुरुषौ।

२४४. जनकः—अथ किम्।

लवः—तत् कथं न जानामि ?

२४५. जनकः—तस्य लक्ष्मणस्यायमात्मजश्चन्द्रकेतुः।

लवः—ऊर्मिलायाः पुत्रस्तर्हि मैथिलस्य राजर्षेर्दौहित्रः।

अरुन्धती—आविष्कृतं कथाप्रावीण्यं वत्सेन।

२४६. जनकः—(विचिन्त्य) यदि त्वमीदृशः कथायामभिज्ञस्तद् ब्रूहि तावत्तस्यामस्तेषां दशरथस्य पुत्राणां कियन्ति किंनामधेयान्यपत्यानि केषु दारेषु प्रसूतानि ?

लवः—नायं कथाविभागोऽस्माभिरन्येन वा श्रुतपूर्वः।

२४७. जनकः—किं न प्रणीतः कविना ?

लवः—प्रणीतो न प्रकाशितः। तस्यैव कोऽप्येकदेशः प्रबन्धान्तरेण रसवानभिनेयार्थः कृतः। तं च स्वहस्तलिखितं मुनिर्भगवान्व्यसृजद् भगवतो भरतस्य तौर्यत्रिकसूत्रधारस्य।

२४८. जनकः—किमर्थम् ?

लवः—स किल भगवान्भरतस्तमप्सरोभिः प्रयोजयिष्यतीति।

२४९. जनकः—सर्वमिदमाकूततरमस्माकम्।

लवः—महती पुनस्तस्मिन्भगवतो वाल्मीकेरास्था, यतः

२४१. अरुंधती और जनक—अरे, अश्वमेधके अश्वकी रक्षाके प्रसंगसे आये बच्चा चन्द्रकेतुको देखना है! अहो, कितना अच्छा दिन है।

२४२. कौशल्या—बच्चा लक्ष्मणका पुतवा आज्ञा दे रहा है, यह अमृतकी बूंदकी तरहके सुन्दर अक्षर सुनाई दे रहे हैं।

लव—कौन हैं आर्य, कौन हैं यह चन्द्रकेतु?

२४३. जनक—जानते हो, दशरथके पुत्र राम-लक्ष्मणको?

लव—यही तो दोनों रामायण कथाके पुरुष हैं।

२४४. जनक—और क्या?

लव—तो कैसे नहीं जानूंगा।

२४५. जनक—उसी लक्ष्मणका यह पुत्र चन्द्रकेतु है।

लव—तो उर्मिला का पुत्र, मैथिल राजर्षिका नाती है।

अरुंधती—बच्चेने बातमें अपनी चतुराई प्रकट कर दी।

२४६. जनक—(सोचकर) यदि तू कथासे इतना अभिज्ञ है, तो बतला, हम देखेंगे, दशरथके पुत्रोंके कितने, कौन से नामवाले, किन-किन पत्नियोंमें उत्पन्न संतानें हैं?

लव—हमने या दूसरेने कथाका यह भाग पहले नहीं सुना।

२४७. जनक—क्या कविने बनाया नहीं?

लव—बनाया, लेकिन प्रकाशित नहीं किया। उसीके किसी अंशको दूसरे प्रबन्ध द्वारा रसयुक्त अभिनयके योग्य बनाया। और उसे अपने हाथसे लिख भगवान् मुनिने भगवान् भरत नृत्य-गीत-वादनके आचार्यको प्रदान किया।

२४८. जनक—किसलिये?

लव—जिसमें भगवान् भरत उसका अप्सराओंसे अभिनय करायें।

२४९. जनक—यह सब हमारे लिये अति कौतूहलजनक है।

लव—भगवान् वाल्मीकिकी उनमें बड़ी आस्था है, इसीलिये किन्हीं ऋषियोंके हाथसे पुस्तक भरतके आश्रममें भेज दी। उनके साथ

केषांचिदन्तेवासिनां हस्तेन तत्पुस्तकं भरताश्रमं प्रति प्रेषितम्। तेषामनुयात्रिकश्चापपाणिः प्रमादच्छेदनार्थमस्मद्भ्राता प्रेषितः।

२५०. कौसल्या—जात, भ्रातापि तेऽस्ति?

लवः—अस्त्यार्यः कुशो नाम।

२५१. कौसल्या—ज्येष्ठ इति भणितं भवति।

लवः—एवमेतत्। प्रसवानुक्रमेण स किल ज्यायान्।

जनकः—किं यमावायुष्मन्तौ?

लवः—अथ किम्।

२५२. जनकः—वत्स, कथय कथाप्रपंचस्य कियान् पर्यन्तः?

लवः—अलीकपौरापवादोद्विग्नेन राज्ञा निर्वासितां देवीं देवयजनसंभवां सीतामासन्नप्रसववेदनामेकाकिनीमरण्ये लक्ष्मणः परित्यज्य प्रतिनिवृत्त इति।

२५३. कौसल्या—हा, वत्से मुग्धमुखि, क इदानीं ते शरीरकुसुमस्य झटिति दैवदुर्विलासपरिणाम एकाकिन्या निपतितः!

जनकः—हा वत्से!

नूनं त्वया परिभवं च वनं च घोरं,
तां च व्यथां प्रसवकालकृतामवाप्य।
क्रव्याद्गणेषु परितः परिवारयत्सु,
संत्रस्तया शरणमित्यसकृत्स्मृतोऽहम्॥२३॥

२५४—लवः—अये कावेतौ?

अरुन्धती—इयं कौसल्या। अयं जनकः। (लवः सबहुमानखेदकौतुकं पश्यति)

२५५. जनकः—अहो, निर्दयता दुरात्मनां पौराणाम्। अहो, रामभद्रस्य क्षिप्रकारिता—

विघ्नको हटानेके लिये हाथमें धनुष लिये हमारे भाई- को भेजा।

२५०. कौसल्या—पुत्र, तेरे भाई भी है ?

लव—हैं, आर्य कुश नामक।

२५१. कौसल्या—जेठा यह कह सकते हैं।

लव—ऐसा ही है। जन्मके क्रमसे वह बड़े हैं।

जनक—क्या तुम आयष्मान् जुड़वां हो ?

लव—और क्या ?

२५२. जनक—बच्चा, बता तो कथा का विस्तार कितना समाप्त हुआ है।

लव—नागरिकोंके झूठे लांछनसे उद्विग्न हो राजाने जल्दी प्रसव-वेदनावाली यज्ञसे उत्पन्न देवी सीताको निर्वासित कर दिया, और उन्हें एकाकिनी छोड़कर **लक्ष्मण** लौट गये, (बस) इतना तक।

२५३. कौसल्या—हा बच्चो मुग्धमुखी, इस समय एकाकिनी तेरे शरीर-कुसुम पर दैवकी क्रूरताका परिणाम क्यों आ पड़ा ?

जनक—हा बच्ची—

निश्चय तूने तिरस्कार, घोर वन,
और प्रसवकालकी उस व्यथाको पाकर,
चारों ओर हिंस्र जन्तुओंसे घिरी,
भयभीत हो शरणके लिये अनेक वार मुझे याद किया होगा॥२३॥

२५४. लव—आर्या, ये दोनों कौन हैं ?

अरुंधती—यह कौसल्या, यह जनक हैं। (लव सम्मान, खेद, कौतूहल सहित देखता है)

२५५. जनक—अहो दुष्ट पुरवासियोंकी निर्दयता, अहो **रामभद्रकी** जल्द-बाजी—

एतद्वैशसवज्रघोरपतनं शश्वन्ममोत्पश्यतः,
क्रोधस्य ज्वलितुं झटित्यवसरश्चापेन शापेन वा।

२५६. कौसल्या—(सभयकम्पम्) भगवति, परित्रायताम्, प्रसादय कुपितं राजर्षिम्।

लवः—

एतद्धि परिभूतानां प्रायश्चित्तं मनस्विनाम्।

२५७. अरुन्धती—

राजन्नपत्यं रामस्ते पाल्याश्च कृपणा जनाः ॥२४॥

जनकः—

शान्तं वा रघुनन्दने तदुभयं यत्पुत्रभाण्डं हि मे,
भूयिष्ठद्विजबालवृद्धविकलस्त्रैणश्च पौरो जनः ॥२५॥

(प्रविश्य संभ्रान्ता बटवः)

२५८. कुमार, कुमार, अश्वोऽश्व इति कोऽपि भूतविशेषो जनपदेष्वनुश्रूयते, सोऽयमधुनाऽस्माभिः स्वयं प्रत्यक्षीकृतः।

२५९. लवः—अश्वोऽश्व इति नाम पशुसमाम्नाये सांग्रामिके च पठ्यते, तद्ब्रूत कीदृशः?

२६०. बटवः—अये, श्रूयताम्,—

पश्चात्पुच्छं वहति विपुलं तच्च धूनोत्यजस्रं,
दीर्घग्रीवः स भवति खुरास्तस्य चत्वार एव।
शष्पाण्यत्ति प्रकिरति शकृत्पिण्डकानाम्रमात्रान्,
किं व्याख्यानैर्व्रजति स पुनर्दूरमेह्येहि यामः ॥२६॥

(इत्यजिने हस्तयोश्चाकर्षन्ति)

२६१. लवः—(सकौतुकोपरोधविनयम्) आर्याः, पश्यत। एभिर्नीतोऽस्मि। (इति त्वरितं परिक्रामति)।
अरुन्धतीजनकौ—महत्कौतुकं वत्सस्य।

मेरे देखते, यह भयंकर घोर वज्रका बराबर गिरना
त्याग या शापमें क्रोधके जल्दी जल उठनेका अवसर है।
तिरस्कृत मनस्वियोंका यही प्रायश्चित्त है।

२५६. कौसल्या—(भयके साथ कांपती) भगवती, रक्षा करें, कुपित राजर्षि को मनायें।

लव—

तिरस्कृत मनस्वियों का यही प्रायश्चित है।

२५७. अरुंधती—

हे राजन, राम तेरी सन्तान है, अभागे आदमियोंकी तुम्हें रक्षा करनी चाहिये ॥२४॥

जनक—

वह दोनों रघुनंदनने शान्त कर दिया, क्योंकि वह मेरे पुत्र-धन हैं।
अधिकांश पुरवासी जन ब्राह्मण, बाल, बृद्ध, अपंग, स्त्रियां हैं ॥२५॥
(प्रवेश करके घबराये हुये विद्यार्थी समूह)

२५८. 'कुमार, कुमार, "घोड़ा-घोड़ा" ऐसा कोई भूत सा देशमें सुनाई दे रहा है। उसे हमने स्वयं प्रत्यक्ष देखा।

२५९. लव—"घोड़ा-घोड़ा", यह नाम तो (कोशमें) पशुओंके वर्गमें और संग्रामके सम्बन्धमें पढ़ा जाता है, सो बतलाओ कैसा है वह?

२६०. बटुगण—अरे सुनिये—

पीछे विपुल पूंछ को धारण करता जो बराबर हिलती रहती है।
वह लम्बी गरदनवाला है, उसके चार ही खुर हैं।
घास खाता है, आमके बाराबरकी लेंडीवाला पाखाना बिखेरता है।
बहुत व्याख्या करनेसे क्या, वह दूर जा रहा है, आओ चलें ॥२६॥
(यह कह मृगछाला और हाथों को पकड़ लवको खींचते हैं)

२६१. लव—(कुतूहलके अनुरोध और विनयके साथ) आर्यो, आर्यो, देखो ये मुझे ले जा रहे हैं। (जल्दी चला जाता है)
अरुंधती और जनक—बच्चेको बड़ा कौतूहल है।

२६२. कौसल्या—अरण्यगर्भरूपालापैर्यूयं तोषिता वयं च। भगवति, जानामि तं प्रेक्ष्यन्ती वञ्चितेव। तस्मादितोऽन्यतो भूत्वा प्रेक्षामहे तावत्पलायमानं दीर्घायुषम्।
अरुन्धती—अतिजवेन दूरमतिक्रान्तः, स चपलः कथं दृश्यते।
कंचुकी—(प्रविश्य) भगवान्वाल्मीकिराह "ज्ञातव्यमेतदवसरे भवद्भि" रिति।

२६३. जनकः—अतिगम्भीरमेतत्किमपि। भगवत्यरुन्धति, सखि कौसल्ये, आर्ये गृष्टे; स्वयमेव गत्वा भगवन्तं प्राचेतसं पश्यामः।

(इति निष्क्रान्तो वृद्धवर्गः)

(प्रविश्य)

(६) लवपराक्रमः—

२६४. बटवः—पश्यतु कुमारस्तावदाश्चर्यम्।
लवः—दृष्टमवगतं च, नूनमाश्वमेधिकोऽयमश्वः।

२६५. बटवः—कथं ज्ञायते?

लवः—ननु मूर्खाः, पठितमेव हि युष्माभिरपि तत्काण्डम्। किं न पश्यथ प्रत्येकं शतसंख्याः कवचिनो दण्डिनो निषंगिणश्च रक्षितारः? तत्प्रायमेवान्यदपि दृश्यते। यदि च विप्रत्ययस्तत्पृच्छथ।

२६६. बटवः—भो भोः, किंप्रयोजनोऽयमश्वः परिवृतः पर्यटति?
लवः—(सस्पृहमात्मगतम्) अश्वमेध इति नाम विश्वजयिनां क्षत्रियाणामूर्जस्वलः सर्वक्षत्रपरिभावी महानुत्कर्षनिकषः।

२६२. कौसल्या—अरण्यचारियों जैसे (उसके) भाषणसे तुम और हम तुष्ट हुये। भगवती, मैं जानती हूं, उसे देखती मैं वंचित सी हूं। इसलिये यहांसे अन्यत्र चलकर भागते हुये दीर्घायुको देखें।

अरुंधती—बड़े वेगसे दूर चला गया, वह चंचल कैसे दिखाई पड़ेगा।

कंचुकी—(प्रवेश करके) भगवान् वाल्मीकि कह रहे हैं: "इसे समय पर आपको जानेंगे।"

२६३. जनक—यह कोई अतिगम्भीर बात है। भगवती अरुंधती, सखी कौसल्या, आर्य गृष्टि, स्वयं ही हम चलकर भगवान् वाल्मीकिको देखें।

(वृद्ध लोग चले गये)

(प्रवेश करके)

६. लवपराक्रम—

२६४. बटुगण—कुमार अचरज! देखें।

लव—देखा और जान भी लिया। निश्चय ही यह अश्वमेध का घोड़ा है।

२६५. बटुगण—कैसे मालूम हुआ?

लव—मूर्खो, तुमने भी उस काण्डको पढ़ा ही है। देख नहीं रहे हो, प्रत्येकपर सौ संख्यामें कवचधारी, दंडधारी, तूणीरधारी रक्षक हैं? करीब उतना ही और भी दीखता है। यदि संदेह है, तो पूछ लो।

२६६. बटुगण—हे-है, किसलिये लोगोंसे घिरा यह घोड़ा घूम रहा है? लव—(लालसाके साथ अपने आपसे) अश्वमेध तो विश्व-विजयी ओजस्वी सब क्षत्रियोंका तिरस्कारक, बड़े वैभवकी कसौटी है।

(नेपथ्ये)

योऽयमश्वः पताकेयमथवा वीरघोषणा ।
सप्तलोकैकवीरस्य दशकण्ठकुलद्विषः ॥२७॥

२६७. लवः—(सगर्वमिति) अहो संदीपनान्यक्षराणि ।

बटवः—किमुच्यते ? प्राज्ञः खलु कुमारः ।

२६८. लवः—भो भोः, तत्किमक्षत्रिया पृथिवी यदेवमुद्घोष्यते ?

(नेपथ्ये) रे रे महाराजं प्रति कुतः क्षत्रियाः ?

२६९. लवः—धिग्जाल्मान्,

यदि नो सन्ति सन्त्येव केयमद्य विभीषिका ?
किमुक्तैरेभिरधुना तां पताकां हरामि वः ॥२८॥

हे बटवः, परिवृत्य लोष्टैरभिघ्नन्तो नयतैनमश्वम् । एष रोहितानां मध्येचरो भवतु ।

(प्रविश्य सक्रोधः)

२७०. पुरुषः—धिक्चपल, किमुक्तवानसि ? तीक्ष्णतरा ह्यायुधश्रेणयः शिशोरपि दृप्तां वाचं न सहन्ते । राजपुत्रश्चन्द्रकेतुर्दुर्दान्तः, सोऽप्यपूर्वारण्यदर्शनाक्षिप्तहृदयो न यावदायाति, तावत् त्वरितमनेन तरुगहनेनापसर्पत ।

२७१. बटवः—कुमार, कृतं कृतमश्वेन । तर्जयन्ति विस्फारितशरासनाः कुमारमायुधीयश्रेणयः । दूरे चाश्रमपदमितः । तदेहि, हरिणप्लुतैः पलायामहे ।

२७२. लवः—किं नाम विस्फुरन्ति शस्त्राणि ? (इति धनुरारोपयन्)—

ज्याजिह्वया वलयितोत्कटकोटिदंष्ट्रम्,
उद्भूरिघोरघनघर्घरघोषमेतत् ।
ग्रासप्रसक्तहसदन्तकवक्त्रयन्त्र-,
जृम्भाविडम्बि विकटोदरमस्तु चापम् ॥२९॥

(इति यथोचितं परिक्रम्य निष्क्रान्ताः सर्वे)

—अंकः ४

(नेपथ्यमें)

जो यह घोड़ा, यह पताका अथवा वीरोचित घोषणा है।
वह सातों लोकोंके अद्वितीय वीर रावण-वंशके शत्रुकी है ।।२७।।

२६७. लव—(गर्वके साथ) अहो ये अक्षर उत्तेजित कर रहे हैं।
बटुगण—क्या कहते हैं? कुमार निश्चय बुद्धिमान् है।

२६८. लव—हे-हे, तो क्या पृथ्वी क्षत्रिय-विहीन है, जो कि इस तरह घोषित किया जा रहा है?

(नेपथ्यमें) रे-रे, महाराजके सामने कहां हैं, क्षत्रिय?

२६९. लव—धिक् दुष्टो।
यदि नहीं है, तो हैं ही, आज यह भय दिखलाना क्यों?
इनके कहनेसे क्या? अब तुम्हारी उस पताकाको मैं हरण करता हूं ।।२८।।
हे बटुओ, लौटकर डेलोंसे मारते इस घोड़ेको ले चलो। यह मृगोंके बीचमें चरेगा।

(प्रवेश करके क्रोधके साथ)

२७०. पुरुष—चपल धिक्, तूने क्या कहा? हथियारोंकी अतितीक्ष्ण पांतियां शिशुकी भी गर्वीली बातको नहीं सह सकतीं। राजपुत्र चन्द्रकेतु दुर्दान्त हैं, वह अपूर्व अरण्यदर्शनसे आकृष्ट हो जब तक नहीं आते, तब तक जल्दी ही इस घने वृक्षों में से होकर भाग जाओ।

२७१. बटुगण—कुमार, रहने दो, रहने दो घोड़ेको। शस्त्रधारियोंकी पाँती धनुषको फैलाकर डरा रही है और यहांसे आश्रम दूर है। सो आओ, हरिनकुदान करते भाग चलें।

२७२. लव—क्या हथियार चमक रहे हैं? (धनुषको चढ़ा)—
प्रत्यंचारूपी जिह्वा के साथ लपेटे उत्कट छोररूपी दाढ़ वाला,
अतिअधिक घोर, घने घर्-घर् घोषवाला,
ग्रसनेमें लगे हंसते यमके मुख-यंत्रकी जम्हाई जैसा,
विकट उदरवाला यह (मेरा) चाप होवे ।।२९।।

(यथोचित परिक्रमा करके लव बाहर चले गये)

—अंक ४

भाग ४

४: अपभ्रंश (२)

(उत्तर काल ७००—१२०० ई.)

३७. भट्ट नारायण (७३० ई.)

३८. मुरारि (८०० ई.)

३९. त्रिविक्रम (९१५ ई.)

४०. क्षेमेन्द्र (१०६० ई.)

४१. बिल्हण (१०८० ई.)

४२. गोवर्धन (११०० ई.)

४३. जयदेव (,,)

४४. मंखक (११३० ई.)

४५. वाग्भट्ट (११४० ई.)

४६. मरुला (११५० ई.)

४७. श्रीहर्ष (११६० ई.)

३७. भट्ट नारायण (७३० ई०)

३७. भट्ट नारायण (७३० ई०)—किंवदन्तियोंके अनुसार भट्ट नारायण उन ब्राम्हणोंसे थे, जिन्हें आदिशूर राजा ने कान्यकुब्ज देशसे बंगालमें बुलवाया था। आदिशूर ७१५ ई० में गौड़ देशके राजा बने। आदिशूर के वंशका स्थान पीछे पाल-वंशने लिया। यह भी कहा जाता है, कि

वेणीसंहारः

(१) अश्वत्थाम्नः-कोपः—

१. (ततः प्रविशत्याकृष्टखड्गैः कलकलमाकर्णयन्नश्वत्थामा)

२. अश्वत्थामा—

महाप्रलयमारुतक्षुभितपुष्करावर्तक-
प्रचण्डघनगर्जितप्रतिरवानुकारी मुहुः।
रवः श्रवणभैरवः स्थगितरोदसीकन्दरः,
कुतोऽद्य समरोदधेरयमभूतपूर्वः पुरः ॥४॥

(विचिन्त्य) ध्रुवं गाण्डीविना सात्यकिना वृकोदरेण वा यौवनदर्पादतिक्रान्तमर्यादेन परिकोपितस्तातः। यतः समुल्लंघ्य शिष्यप्रियतामात्मप्रभावसदृशमाचेष्टते। तथा हि,—

यद्दुर्योधनपक्षपातसदृशं युक्तं यदस्त्रग्रहे,
रामाल्लब्धसमस्तहेतिगुरुणो वीर्यस्य यत्सांप्रतम्।
लोकेसर्वधनुष्मतामधिपतेर्यच्चानुरूपं रुष :,
प्रारब्धं रिपुघस्मरेण नियतं तत्कर्म तातेन मे॥५॥

३. (पृष्ठतो विलोक्य) तत्कोऽत्र? रथमुपनयतु। अथवाऽलमिदानीं मम रथप्रतीक्षया। सशस्त्र एवास्मि सजलजलधरप्रभाभासुरेण सुप्रग्रहविमलकलधौतत्सरुणामुना खड्गेन। यावत्समरभुवमवतरामि। (परिक्रम्य, वामा-

३७. भट्ट नारायण (७३० ई०)

मगधके गुप्तवंशी राजा आदित्यसेन और आदिशूर एक ही हैं। भट्ट नारायणकी एक ही कृति "वेणिसंहार" (नाटक) मिलती है। द्रौपदीको दुःशासन बाल खींचकर सभामें लाया था। द्रौपदीने वेणीको दुर्योधनके रक्तसे धोकर बांधनेकी प्रतिज्ञावाली बातको यहां मुख्य बनाया गया है। यह नाटक भी उन्हीं दोषोंसे दूषित है, जिनसे अपभ्रंश-कालके अन्य काव्य और नाटक।

वेणीसंहार

१. अश्वत्थामा का कोप—

१. (तब कल्-कल् सुन तलवार खींचे अश्वत्थामा प्रवेश करते हैं)

२. अश्वत्थामा—

महाप्रलयकी वायुसे क्षुब्ध मेघके प्रचंड घन-गर्जनकी
प्रतिध्वनिका अनुकरण करनेवाला, क्षण भर कानके लिये भयंकर
आकाश-पृथिवीकी कंदराको भरता,
किस समररूपी सागरसे आज यह अभूतपूर्व शब्द सामने (उठ रहा) है ।।४।।

(सोचकर) निश्चय अर्जुन, सात्यकि या भीमने यौवनके अभिमानसे मर्यादा छोड़ बापूको कुपित किया, इसीलिये अपने प्रभाव में समान शिष्यकी अतिप्रियता को वह उल्लंघन कर व्यवहार कर रहे हैं। जो दुर्योधनके पक्षपात के अनुकूल है, जो हथियार ग्रहण करनेमें उचित है, परशुरामसे मिले सारे हथियारोंवाले गुरु के पराक्रमके जो अनुकूल है।

संसारमें सारे धनुर्धारियोंके स्वामीके कोपके जो अनुरूप है,
निश्चय वह कार्य मेरे शत्रु-भक्षक बापूने आरंभ किया है ।।५।।

३. (पीठकी ओर देख कर) तो यह कौन है? रथको नजदीक ले चलो। अथवा रथकी प्रतीक्षा करना मेरे लिये व्यर्थ है। जलयुक्त मेघकी प्रभा जैसे चमकते, सुन्दर रूपीवाले, विमल [illegible] इस खड्ग के साथ मैं [illegible] ही हूं। तो (अब) [illegible]

क्षिस्पन्दनं सूचयित्वा) अये ममापि नामाश्वत्थाम्नः समरमहोत्सवप्रमोदनिर्भरस्य तातविक्रमदर्शनलालसस्यानिमित्तानि समरगमनविघ्नमुत्पादयन्ति । भवतु, गच्छामि । (सावष्टंभं परिक्रम्याग्रतो विलोक्य) कथमवधीरितक्षात्रधर्माणामुज्झितसत्पुरुषोचितलज्जावगुण्ठनानां विस्मृतस्वामिसत्कारलघुचेतसां द्विरदतुरंगमचरणचारिणामगणितकुलयशःसदृशपराक्रमव्रतानां रणभूमेः समन्तादपक्रामतामयं महान्नादो बलानाम् ? (निरूप्य) हा हा धिक्कष्टम् ! कथमेते महारथाः कर्णादयोऽपि समरात्पराङमुखा भवन्ति? कथं नु ताताधिष्ठितानामपि बलानामियमवस्था भवेत् ? भवतु, संस्तम्भयामि । भो भोः कौरवसेनासमुद्रवेलापरिपालनमहामहीधरा नरपतयः, कृतं कृतममुना समरपरित्यागसाहसेन—

यदि समरमपास्य नास्ति मृत्योर्,
भयमिति युक्तमितोऽन्यतः प्रयातुम् ।
अथ मरणमवश्यमेव जन्तोः,
किमिति मुधा मलिनं यशः कुरुध्वे ॥६॥

४. अपि च

अस्त्रज्वालावलीढप्रतिबलजलधेरन्तरौर्वायमाणे,
सेनानाथे स्थितेऽस्मिन्मम पितरि गुरौ सर्वधन्वीश्वराणाम् ।
कर्णालं संभ्रमेण व्रज कृप समरं मुंच हार्दिक्यशंकां,
ताते चापद्वितीये वहति रणधुरं को भयस्यावकाशः॥७॥

(नेपथ्ये)

कुतोऽद्यापि ते तातः ।

हूं। (परिक्रमा करके बांई आंखका फड़कना जानकर) अये, समर-महोत्सवके प्रमोदमें लीन बापूके विक्रमके दर्शनेच्छुक मुझ अश्वत्थामा केलिये असगुन समरमें जानेमें विघ्न पैदा कर रहे हैं। अस्तु, जाता हूं। (दर्पपूर्वक परिक्रमा करके आगेकी ओर देखकर) क्षत्रियके धर्मको तिरस्कार किये, सत्पुरुषोंके योग्य लज्जाके पर्देको छोड, स्वामीके सत्कारको भूली, क्षुद्र हृदयवाले हाथी-घोड़े पर या पैदल चलनेवाली, अगणित कुलोंके यशके अनुकूल पराक्रमका व्रत लेनेवाली रणभूमि में चारों ओरसे आक्रमण करती सेनाओंका क्या यह महानाद है? (अच्छी तरह देखकर) हा-हा, छिः-छिः सेनाकी यह अवस्था होती है। अस्तु रोकता हूं। हे-हे कौरव-सेनारूपी समुद्रके तटके रक्षक महापर्वत जैसे राजाओ, समर छोड़नेके इस प्रयासको छोड़ो-छोड़ो—

यदि युद्ध छोड़देनेपर मृत्युका भय नहीं, तो यहांसे अन्यत्र प्रयाण करना, ठीक है। यदि प्राणीको मरना अवश्य है, तो यशको क्यों व्यर्थ मलिन करते हो ।।६।।

४. और भी—

अस्त्ररूपी ज्वालासे ग्रसित शत्रु-सेनारूपी सागरके भीतर बड़वानल से होते, सारे धनुर्धरेश्वरोंके गुरु मेरे पिताके सेनापति होते,
हे कर्ण, भय छोड़, कृप, समरमें जा हृदयकी शंका छोड़।
धनुषके साथ रणकी धुराको बापूके धारण करते भयका अवकाश कहां ।।७।।

(नेपथ्यमें)

क्यों आज भी तुम्हारे बापू?

५. अश्वत्थामा—(श्रुत्वा) किं ब्रूथ—"कुतोऽद्यापि ते तातः" इति? (सरोषम्) आः क्षुद्रा भीरवः, कथमेवं प्रलपतां वः सहस्रधा न दीर्णमनया जिह्वया ?

दग्धुं विश्वं दहनकिरणैर्नोदिता द्वादशार्काः,
वाताव्राता दिशि दिशि न वा सप्तधा सप्त भिन्नाः।
छन्नं मेघैर्न गगनतलं पुष्करावर्तकाद्यैः,
पापं पापाः कथयत कथं शौर्यराशेः पितुर्मे ॥८॥

(प्रविश्य संभ्रान्तः सप्रहारः)

६. सूतः—परित्रायतां परित्रायतां कुमारः। (इति पादयोः पतति)
अश्वत्थामा—(विलोक्य) अये, कथं तातस्य सारथिरश्वसेनः? आर्य, ननु त्रैलोक्यत्राणक्षमस्य सारथिरसि। किं मत्तः परित्राणमिच्छसि ?

७. सूतः—(सकरुणम्) कुतोऽद्यापि ते तातः !
सूतः—अथ किम् ?
अश्वत्थामा—हा तात ! (इति मोहमुपगतः)।
सूतः—कुमार, समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

८. अश्वत्थामा—(लब्धसंज्ञः सास्रम्) हा तात ! हा सुतवत्सल ! हा लोकत्रयैकधनुर्धर ! हा जामदग्न्यास्त्रसर्वस्वप्रतिग्रहप्रणयिन् ! क्वासि ? प्रयच्छ मे प्रतिवचनम्।
सूतः—कुमार, अलमत्यन्तशोकावेगेन। वीरपुरुषोचितां विपत्तिमुपगते पितरि त्वमपि तदनुरूपेणैव वीर्येण शोकसागरमुत्तीर्य सुखी भव।

९. अश्वत्थामा—(अश्रूणि विमुच्य) आर्य, कथय कथय कथं तादृग्भुजवीर्यसागरस्तातोऽपि नामास्तमुपगतः ?

५. अश्वत्थामा——(सुनकर) क्या कहते हो? : "क्या आज भी तुम्हारे बापू"। (रोषके साथ) ओ क्षुद्र डरपोको, ऐसा प्रलाप करते तुम्हारी यह जीभ हजार टुकड़े क्यों न हो गई?

दुष्टो, शौर्यकी राशि मेरे पिताकी बुराई मुंहसे क्यों निकालने पर
अपनी अग्नि-किरणोंसे विश्वको जलानेके लिये बारह सूर्य उदित
नहीं हो गये, उन्चास वायु दिशा-दिशामें फूट नहीं निकले।
प्रलयके पुष्करावर्त आदि मेघों से आकाश ढंक नहीं गया॥८॥

(प्रवेश करके भय और प्रहार करते)

६. सूत——कुमार, रक्षा करें, रक्षा करें। (चरणों में गिर पड़ता है)
अश्वत्थामा——(देखकर) अये, क्या बापूका सारथी अश्वसेन है? आर्य, तुम तो तीनों लोकोंकी रक्षा करनेमें समर्थ पुरुष के सारथी हो? क्या पागल हो (जो) रक्षा चाहते हो?

७. सूत——(करुणाके साथ) क्या आज भी तुम्हारे बापू हैं?
अश्वत्थामा——(आवेगके साथ) क्या बापू अस्त हो गये?
सूत——और क्या?
अश्वत्थामा——हा तात, (मूर्छित हो गया)
सूत——कुमार, धीरज धरो, धीरज धरो।

८. अश्वत्थामा——(होशमें आकर दुःखके साथ) हा तात, हा पुत्र-वत्सल, हा तीनों लोकके सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर, हा परशुरामके सारे हथियारोंके स्वीकृत-प्रेमी, कहां हो? मुझे उत्तर दो।
सूत——कुमार, शोकके अत्यन्त आवेगको छोड़ो। पिताके वीर पुरुषोंके योग्य, गति पाने पर तुम भी उन्हींके अनुरूप पराक्रम करते शोक-सागर पार हो सुखी होओ।

९. अश्वत्थामा——(आंसुओंको पोंछकर) आर्य, बताओ, बताओ कैसे वैसे भुज-पराक्रमके सागर बापू अस्त हुये।

किं शिष्याद् गुरुदक्षिणां गुरुगदां भीमप्रियः प्राप्तवान् ?
सूतः—शान्तं पापम् !
अश्वत्थामा—
अन्तेवासिदयालुरुज्झितनयेनासादितो जिष्णुना ?
१०. सूतः—कथमेवं भविष्यति ?
अश्वत्थामा—
गोविन्देन सुदर्शनस्य निशितं धारापथं प्रापितः ?
सूतः—एतदपि नास्ति ।
११. अश्वत्थामा—
शंके नापदमन्यतः खलु गुरोरेभ्यश्चतुर्थादहम् ॥९॥
१२. सूतः—कुमार,—
एतेऽपि तस्य कुपितस्य महास्त्रपाणेः,
किं धूर्जटेरिव तुलामुपयान्ति संख्ये ?
शोकोपरुद्धहृदयेन यदा तु शस्त्रं,
त्यक्तं तदास्य विहितं रिपुणातिघोरम् ॥१०॥
१३. अश्वत्थामा—किं पुनः कारणं शोकस्यास्त्रपरित्यागस्य वा ?
सूतः—ननु कुमार एव कारणम् !
अश्वत्थामा—कथमहमेव नाम ?
१४. सूतः—श्रूयताम्, (अश्रूणि विमुच्य)—
अश्वत्थामा हत इति पृथासूनुना स्पष्टमुक्त्वा,
स्वैरं शेषे गज इति किल व्याहृतं सत्यवाचा ।
तच्छ्रुत्वासौ दयिततनयः प्रत्ययात्तस्य राज्ञः
शस्त्राण्याजौ नयनसलिलं चापि तुल्यं मुमोच ॥११॥
१५. अश्वत्थामा—हा तात, हा सुतवत्सल, हा वृथामदर्थपरित्यक्तजीवित, हा शौर्यराशे, हा शिष्यप्रिय, हा युधिष्ठिरपक्षपातिन् ! (इति रोदिति) ।
सूतः—कुमार, अलमत्यन्तपरिदेवकार्पण्येन ।

क्या भीष्मको प्यार करनेवाले (गुरुने) शिष्यसे गुरुदक्षिणाके रूपमें भारी गदा पाई ?

सूत—शान्तं पापं।

अश्वत्थामा—

नीति छोड़ अर्जुनने शिष्य पर दयालुको मारा ?

१०. सूत—कैसे यह होगा ?

अश्वत्थामा—

गोविन्दने सुदर्शनकी तीक्ष्ण धारको (उन तक) पहुंचाया ?

सूत—यह भी नहीं है।

११. अश्वत्थामा—

इनसे भिन्न चौथेसे बापूके लिये मैं आफतकी शंका नहीं करता ।।९।।

१२. सूत—कुमार—

हाथमें महाअस्त्रोंको लिये कुपित उनके सामने यह,
क्या शंकरकी तरह युद्धमें समानता प्राप्त कर सकते हैं ?
शोकसे रुंधे हृदयवाले हो जब उन्होंने हथियार छोड़ दिया,
तब उनके शत्रुने अति घोर कर्म किया ।।१०।।

१३. अश्वत्थामा—शोकका और हथियारके त्यागका क्या कारण था ?

सूत—कुमार ही तो कारण थे।

अश्वत्थामा—कैसे, मैं ही ?

१४. सूत—सुनिये, (आंखोंसे आंसू छोड़ते)—

'अश्वत्थामा मारा गया', यह स्पष्ट कह, (फिर)
अन्तमें अपने मनमें "गज" यह युधिष्ठिर सत्यवादीने कहा।
सो सुनकर उस राजाके ऊपर विश्वास करके पुत्रप्रेमी उन्होंने,
युद्धमें हथियारों और आंसुओंको एक ही साथ छोड़ दिया ।।११।।

१५. अश्वत्थामा—हा तात, हा पुत्रवत्सल, हा मेरे लिये व्यर्थ जीवन छोड़ने वाले, हा शौर्य-राशि, हा शिष्यप्रिय, हा युधिष्ठिरके पक्षपाती।

सूत—कुमार, रोनेकी अत्यन्त दीनता दिखलाना छोड़ें।

१६. अश्वत्थामा—

श्रुत्वा वधं मम मृषा सुतवत्सलेन,
तात, त्वया सह शरैरसवो विमुक्ताः।
जीवाम्यहं पुनरहो भवता विनाऽपि,
क्रूरेऽपि तन्मयि मुधा तव पक्षपातः॥१२॥

(इति मोहमुपगतः)

१७. सूतः—समाश्वसितु समाश्वसितु कुमारः।

(ततः प्रविशति कृपः)

१८. कृपः—(सोद्वेगं निःश्वस्य)—

धिक्सानुजं कुरुपतिं धिगजातशत्रुं,
धिग्भूपतीन्विफलशस्त्रभृतो धिगस्मान्।
केशग्रहः खलु तदा द्रुपदात्मजाया,
द्रोणस्य चाद्य लिखितैरिव वीक्षितो यैः॥१३॥

तत्कथं नु खलु वत्समद्य द्रक्ष्याम्यश्वत्थामानम्? अथवा हिमवत्सारगुरुचेतसि ज्ञातलोकस्थितौ तस्मिन्न खलु शोकावेगमहमाशंके। किंतु पितुः परिभवमसदृशमुपश्रुत्य न जाने किं व्यवस्यतीति?

१९. अथवा—

एकस्य तावत्पाकोऽयं दारुणो भुवि वर्तते।
केशग्रहे द्वितीयेऽस्मिन्नूनं निःशेषिताः प्रजाः॥१४॥

(विलोक्य) तदयं वत्सस्तिष्ठति। यावदुपसर्पामि। (उपसृत्य ससंभ्रमम्) वत्स, समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

२०. अश्वत्थामा—(संज्ञां लब्ध्वा, सास्रम्) हा तात, हा सकलभुवनैकगुरो, (आकाशे) युधिष्ठिर, युधिष्ठिर,

१६. अश्वत्थामा—

मेरे झूठे बधको सुनकर हे बापू,
सुत-वत्सल, तुमने वाणोंके साथ प्राणोंको भी छोड़ दिया।
अहो, तुम्हारे बिना भी मैं जी रहा हूं, फिर तो मेरे जैसे क्रूर पर
तुम्हारा पक्षपात व्यर्थ है ।।१२।।

(मूर्छित हो गये)

१७. सूत—धैर्य धरें, धैर्य धरें कुमार।

(तब कृपाचार्य प्रवेश करते हैं)

१८. कृप—(उद्वेगके साथ सांस ले)—

अनुज-सहित दुर्योधनको धिक्कार, युधिष्ठिरको धिक्कार,
व्यस्त भूपतियोंको धिक्कार, व्यर्थ शस्त्र उठानेवाले हम लोगों को
धिक्कार। तब द्रौपदीके केशोंका पकड़ना;
और आज द्रोणकी यह (हत्या) जिन्होंने चित्र बन जैसे देखा ।।१३।।

तो कैसे मैं आज वत्स अश्वत्थामाको देखूंगा। अथवा हिमालयके-सार से महान् चित्तवाले, संसारकी स्थितिके जानकार उसमें शोका-वेगकी आशंका मैं नहीं करता। लेकिन, पिताके अनुचित मरणको सुनकर वह न मालूम क्या कर डालेगा?

१९. अथवा—

एक का परिणाम तो पृथिवीपर यह दारुण (युद्ध) हो रहा है।
इस दूसरे केशग्रहपर निश्चय प्रजा उच्छिन्न हो जायेगी ।।१४।।

(देखकर) तो यह वत्स खड़ा है। पास चलूं। (पास जाकर भयसे) वत्स, धैर्य धरो, धैर्य धरो।

२०. अश्वत्थामा—(होशमें आकर खेदके साथ) हा तात, हा सकल भुवन के अद्वितीय गुरु। (आकाश की ओर) युधिष्ठिर, युधिष्ठिर—

आजन्मनो न वितथं भवता किलोक्तं,
न द्वेक्षि यज्जनमतस्त्वमजातशत्रुः ।
ताते गुरौ द्विजवरे मम भाग्यदोषात्,
सर्वं तदेकपद एव कथं निरस्तम् ॥१५॥

सूतः—कुमार, एष ते मातुलः शारद्वतः पार्श्वे तिष्ठति ।

२१. अश्वत्थामा—(पार्श्वं विलोक्य, सबाष्पम्) मातुल,—

गतो येनाद्य त्वं सह रणभुवं सैन्यपतिना,
य एकः शूराणां गुरुसमरकण्डूनिकषणः ।
परीहासाश्चित्राः सततमभवन्येन भवतः,
स्वसुः श्लाघ्यो भर्ता क्व नु खलु स ते मातुल, गतः ॥१६॥

२२. कृपः—परिगतपरिगन्तव्य एव भवान् । तदलमत्यन्त-शोकावेगेन ।

अश्वत्थामा—मातुल, परित्यक्तमेव मया परिदेवितम् । एषोऽहं सुतवत्सलं तातमेवानुगच्छामि ।

कृपः—वत्स, अनुपपन्नमीदृशं व्यवसितं भवद्विधानाम् ।

सूतः—कुमार, अलमतिसाहसेन ।

२३. अश्वत्थामा—आर्य शारद्वत,—

मद्वियोगभयात्तातः परलोकमितो गतः ।
करोम्यविरहं तस्य वत्सलस्य सदा पितुः ॥१७॥

२४. कृपः—वत्स, यावदयं संसारस्तावत्प्रसिद्धैवेयं लोकयात्रा यत्पुत्रैः पितरो लोकद्वयेऽप्यनुवर्तनीया इति । पश्य,—

निवापांजलिदानेन केतनैः श्राद्धकर्मभिः ।
तस्योपकारे शक्तस्त्वं किं जीवन्किमुतान्यथा ॥१८॥

सूतः—आयुष्मन्, यथैव मातुलस्ते शारद्वतः कथयति तत्तथा ।

आप तो जन्मसे ही कभी झूठ नहीं बोले,
न द्वेष करते हो, क्योंकि लोगोंका मत है, कि तुम अजातशत्रु हो।
मेरे भाग्यके दोषसे तात, गुरु और ब्राह्मणश्रेष्ठके विषयमें—
वह सब (बात) एक क्षण हीमें कसे खंडित हो गई।।१५।।

सूत—कुमार, यह तुम्हारे मामा शारद्वत बगलमें खड़े हैं।

२१. अश्वत्थामा—(बगलमें देखकर आंसू भर कर) मामा—
जिस सेनापतिके साथ तुम आज रणभूमिमें गये,
शरोंमें अद्वितीय, जो महासमरकी खुजलाहटका निवारण करनेवाला था, जिसके साथ आपके बराबर विचित्र परिहास हुआ करते थे,
हे मामा, वह तुम्हारी बहिनके श्लाघनीय पति कहां गये? ।।१६।।

२२. कृप—आप जाननेकी बातको जान गये। सो भारी शोकावेगको रहने दो।

अश्वत्थामा—मामा, मैंने रोना छोड़ दिया। (लो) मैं पुत्र-वत्सल बापूका ही अनुगमन करता हूं।

कृप—वत्स, आप जैसोंका ऐसा प्रयास उचित नहीं है,

सूत—कुमार, अतिसाहसको बस करो।

२३. अश्वत्थामा—आर्य शारद्वत,—
मेरे वियोगके भयसे बापू यहांसे परलोक गये।
उस वत्सल पिताको मैं सदा के लिये विरहहीन करता हूं।।१७।।

२४. कृप—वत्स, जब तक यह संसार है, तब तक यह कहावत प्रसिद्ध ही है, कि पुत्रोंको पिताओंका दोनों लोकमें अनुगमन करना चाहिये। देखो—
श्राद्धकी अंजलिके दान, ध्वजों और श्राद्ध-कर्मों द्वारा,
उनके लिये उपकार करनेमें तुम समर्थ हो, जीने या दूसरी तरहसे क्या (लेना) ।।१८।।

सूत—आयुष्मान, तुम्हारे मामा शारद्वत जो कहते हैं, वैसा ही है।

२५. अश्वत्थामा---आर्य, सत्यमेवेदम्। किन्त्वतिदुर्वहत्वाच्छोकभारस्य न शक्नोमि तातविरहितः क्षणमपि प्राणान्धारयितुम्। तद् गच्छामि तमेवोद्देशं यत्र तथाविधमपि पितरं द्रक्ष्यामि। (उत्तिष्ठन् खड्गमालोक्य, विचिन्त्य) कृतमद्यापि शस्त्रग्रहणविडम्बनया। भगवन् शस्त्र,---

गृहीतं येनासीः परिभवभयान्नोचितमपि,
प्रभावाद्यस्याभून्न खलु तव कश्चिन्नविषयः।
परित्यक्तं तेन त्वमसि सुतशोकान्न तु भयाद्,
विमोक्ष्ये शस्त्र त्वामहमपि यतः स्वस्ति भवते ॥१९॥

(इत्युत्सृजति)

(नेपथ्ये)

२६. भो भो राजानः, कथमिह भवन्तः सर्वे गुरोर्भारद्वाजस्य परिभवममुना नृशंसेन प्रयुक्तमुपेक्षन्ते ?

२७. अश्वत्थामा---(आकर्ण्य शनैः शनैः शस्त्रं स्पृशन्)। किं गुरोर्भारद्वाजस्य परिभवः ?

(पुनर्नेपथ्ये)

आचार्यस्य त्रिभुवनगुरोर्न्यस्तशस्त्रस्य शोकाद्,
द्रोणस्याजौ नयनसलिलक्षालितार्द्राननस्य।
मौलौ पाणिं पलितधवले न्यस्य कृत्वा नृशंसं,
धृष्टद्युम्नः स्वशिविरमयं याति सर्वे सहध्वम् ॥२०॥

२८. (सक्रोधं सकम्पं च कृपसूतौ दृष्ट्वा) किं नामेदम् ?
प्रत्यक्षमात्तधनुषां मनुजेश्वराणां,
प्रायोपवेशसदृशं व्रतमास्थितस्य।
तातस्य मे पलितमौलिनिरस्तकाशे,
व्यापारितं शिरसि शस्त्रमशस्त्रपाणेः ॥२१॥

२५. अश्वत्थामा—आर्य यह सच ही है, किन्तु अत्यन्त दुस्सह शोक-भारके कारण बापूके बिना क्षण भर भी मैं प्राणोंको नहीं धारण कर सकता। इसलिये उसी स्थानमें जा रहा हूं, जहां वैसे पिता को देखूंगा। (उठकर खड्गको देख सोचकर) आज भी शस्त्र-ग्रहण करनेका ढोंग, बस। हे भगवन् शस्त्र,—

अपमानके भयसे अनुचित भी जिसने तुम्हें ग्रहण किया था।
जिसके प्रभावसे तुम्हारे लिये कोई 'पहुंच से बाहर' नहीं हुआ,
उसने भयसे नहीं बल्कि पुत्रके शोकसे तुम्हें छोड़ दिया।
इसलिये हे शस्त्र, मैं भी तुम्हें छोड़ूंगा, तुम्हारी स्वस्ति होवे ।।१९।।
(छोड़ देता है)

(नेपथ्यमें)

२६. हे-हे राजाओ, क्या आप सब इस कमीने द्वारा गुरु भरद्वाज पर किये अपमानकी उपेक्षा करते हो?

२७. अश्वत्थामा—(सुनकर धीरे-धीरे शस्त्रको छूते) क्या गुरु भरद्वाजका अपमान?

(फिर नेपथ्यमें)

शोकसे हथियार छोड़े त्रिभुवनगुरु,
आंसुओं द्वारा भीगे मुखवाले आचार्य द्रोणके,
सफेद केशोंवाले सिरपर हाथ रखकर आततायीपन करके,
यह धृष्टद्युम्न अपने तम्बूमें जा रहा है, तुम सब (इसे) सहो ।।२०।।

२८. (क्रोध-सहित कांपते हुये, कृप और सूतको देखकर) यह क्या है?—
धनुष लिये राजाओं के सामने,
आजीवन उपवासके समान व्रतमें स्थिर,
शस्त्र-रहित मेरे बापूके पके केश वाले
शिरपर शस्त्रका प्रयोग किया ।।२१।।

कृपः—वत्स, एवं किल जनः कथयति।

अश्वत्थामा—किं तातस्य दुरात्मना परिमृष्टमभूच्छिरः?

सूतः—(सभयम्) कुमार, आसीदयं तस्य तेजोराशेर्देवस्य नवः परिभवावतारः।

२९. अश्वत्थामा—हा तात, हा पुत्रप्रिय, मम मन्दभाग्यस्य कृते शस्त्रपरित्यागात्तथाविधेन क्षुद्रेणात्मा परिभावितः।

अथवा,—

परित्यक्ते देहे रणशिरसि शोकान्धमनसा,
शिरः श्वा काको वा द्रुपदतनयो वा परिमृशेत्।
असंख्यातास्त्रौघद्रविणमदमत्तस्य च रिपोर्,
ममैवायं पादः शिरसि निहितस्तस्य न करः ॥२२॥

३०. आः दुरात्मन् पांचालापसद,—

तातं शस्त्रग्रहणविमुखं निश्चयेनोपलभ्य,
त्यक्त्वा शंकां खलु विदधतः पाणिमस्योत्तमांगे।
अश्वत्थामा करधृतधनुः पांडुपांचालसेना—
तूलोत्क्षेपप्रलयपवनः किं न यातः स्मृतिं ते ॥२३॥

युधिष्ठिर, युधिष्ठिर, अजातशत्रो, अमिथ्यावादिन्, धर्मपुत्र, सानुजस्य ते किमनेनापकृतम्?

३१. अथवा किमनेनालीकप्रकृतिजिह्मचेतसा? अर्जुन, सात्यके बाहुशालिन्वृकोदर, माधव, युक्तं नाम भवतां सुरासुरमनुजलोकैकधनुर्धरस्य द्विजन्मनः परिणतवयसः सर्वाचार्यस्य विशेषतो मम पितुरमुना द्रुपदकुलकलंकेन मनुजपशुना स्पृश्यमानमुत्तमांगमुपेक्षितुम्? अथ वा सर्व एवैते पापिनः। किमेतैः?

कृतमनुमतं दृष्टं वा यैरिदं गुरुपातकं,
मनुजपशुभिर्निर्मर्यादैर्भवद्भिरुदायुधैः।

कृप—वत्स, लोग ऐसा ही कहते हैं।

अश्वत्थामा—क्या तातके सिरको दुष्टात्माने छुआ ?

सूत—(भयके साथ) कुमार, उस तेजोराशि देवताका यह नया अपमान था।

२९. अश्वत्थामा—हा तात, हा पुत्रप्रिय, मुझ अभागेके लिये शस्त्र छोड़कर वैसे क्षुद्र (आदमी) द्वारा तुम अपमानित हुये। अथवा—

युद्धभूमिमें शोकसे अंधे मन हुये तुम्हारे देह छोड़ देनेपर,
सिरको कुत्ता, कौवा, या द्रुपदका लड़का (चाहे जो) छूये !
असंख्य अस्त्र-समुदायोंके घनके मदसे मत्त रिपुके
सिर पर मेरा यह पैर न कि उसका हाथ पड़े ॥२२॥

३०. आह, दुष्ट कमीने पंचालके—

बापूको पूरी तौरसे शस्त्रग्रहणसे विमुख जानकर,
शंका छोड़कर उनके सिरपर हाथ रखते,
पांडवों और पांचालोंकी सेनारूपी कपासको उड़ानेवाला,
प्रलयका पवन धनुष-पाणि अश्वत्थामा क्या तुझे याद नहीं आया ॥२३॥

युधिष्ठिर, युधिष्ठिर, अजातशत्रु न-अमिथ्यावादी, धर्मपुत्र, भाइयों सहित तेरा बापूने क्या अपकार किया था ?

३१. अथवा इस झूठे स्वभावतः कुटिल-चित्तसे क्या (कहना) ? अर्जुन, सात्यकि, बाहुशाली, भीम, कृष्ण, आपके लिये क्या उचित है, कि सरासर मनुज लोकोंमें अद्वितीय धनुर्धर, ब्राह्मण, वृद्ध, सर्वाचार्य विशेषकर मेरे पिताके सिरपर, द्रुपद-कुल-कलंक इस मनुज-पशु के हाथ लगानेकी उपेक्षा करते ? अथवा ये सभी पापी हैं। इनसे क्या (लेना)—

जिनने इस महान् पातकको किया, अनुमति दी या देखा,
कृष्ण और भीम-अर्जुन सहित

नरकरिपुणासार्धं तेषां सभीमकिरीटिनाम्
अयमहमसृङ्मेदोमांसैः करोमि दिशां बलिम् ॥२४॥

कृपः—वत्स, किं न संभाव्यते भारद्वाजतुल्ये बाहुशालिनि-दिव्यास्त्रग्रामकोविदे भवति ?

३२. अश्वत्थामा—भो भोः पाण्डवमत्स्यसोमकमागधयाः क्षत्रियापसदाः—

पितुर्मूर्ध्नि स्पृष्टे ज्वलदनलभास्वत्परशुना,
कृतं यद्रामेण श्रुतिमुपगतं तन्न भवताम्।
किमद्याश्वत्थामा तदरिरुधिरासारविघसं,
न कर्म क्रोधान्धः प्रभवति विधातुं रणमुखे ॥२५॥

सूत, गच्छ त्वं सर्वोपकरणैः सांग्रामिकैः सर्वायुधैरुपेत महाहवलक्षणं नामास्मत्स्यन्दनमुपनय।

३३. सूतः—यदाज्ञापयति कुमारः। (इति निष्क्रान्तः)

कृपः—वत्स, अवश्यप्रतिकर्तव्येऽस्मिन्दारुणे विकारग्नौ सर्वेषामस्माकं कोऽन्यस्त्वामन्तरेण शक्तः प्रतिकर्तुम् ?

किंतु,—

अश्वत्थामा—किमतः परम् ?

कृपः—सैनापत्येऽभिषिच्य भवन्तमिच्छामि समरभुवमवतारयितुम्।

३४. अश्वत्थामा—मातुल, परतन्त्रमिदमकिञ्चित्करं च।

कृपः—वत्स, न खलु परतन्त्रं नाकिञ्चित्करं च। पश्य,—
भवेदभीष्मद्रोणं धार्तराष्ट्रबलं कथम्।
यदि तत्तुल्यकक्षोऽत्र भवान्धुरि न युज्यते ॥२६॥

कृतपरिकरस्य [illegible] न क्षमं परिपन्थीभवितुं किं पुनः [illegible] मन्ये परिकल्पिता-

मर्यादाहीन हथियारबन्द मनुज-पशु आप जिन लोगोंने।
उनके खून, चर्बी और मांसोंसे यह मैं दिशाओंको बलि देता हूं ।।२४।।

कृप—भारद्वाजके समान बाहुशाली दिव्यास्त्रसमूहोंके पंडित तुमसे क्या संभव नहीं है?

३२. अश्वत्थामा—हे हे पांडव, मत्स्य-देशियो, सोमको, मगधवाले क्षत्रिय-कलंको,—

जलती अग्नि जैसे चमकते फर्सेवाले परशुरामने पिताके सिरको छुआ था, यह आप लोगोंके कानमें आया या नहीं।
उन शत्रुओंके रुधिरकी सामग्री से रणांगनमें क्रोधांध
अश्वत्थामा वह कर्म, क्या आज नहीं कर सकता ।।२५।।

सूत, जाओ संग्रामके सभी साधनों, सभी हथियारोंसे युक्त महाहव (महायुद्ध) लक्षण नामक हमारे रथको ले आओ।

३३. सूत—जो कुमार आज्ञा देते हैं। (बाहर चला गया)

कृप—वत्स, इस दारुण अपमान-अग्निके अवश्य बदला लेनेमें तेरे बिना कौन है, जो यह प्रतिकार कर सकता है। किन्तु—
अश्वत्थामा—इससे आगे क्या?

कृप—सेनापति पदपर अभिषेक करके आपको समरभूमिमें हम उतारना चाहते हैं।

३४. अश्वत्थामा—मामा, यह (पद) परतंत्र और तुच्छ है।

कृप—वत्स, नहीं यह परतंत्र है और न तुच्छ। देखो—

भीष्म और द्रोणके बिना कौरवोंकी सेना कैसी होगी,
यदि उनके समान आप इस धुरेमें नहीं जोड़े जाते ।।२६।।

आप जैसेके तैयार होने पर तीनों लोक भी विरोधी नहीं हो सकता, युधिष्ठिरकी सेनाकी तो बात ही क्या? सो मैं यह समझता हूं, सारी

भिषेकोपकरणः कौरवराजो न चिरात्त्वामेवाभ्युपेक्षमाणस्तिष्ठतीति ।

३५ अश्वत्थामा—यद्येवं त्वरते मे परिभवानलदह्यमानमिदं चेतस्तत्प्रतीकारजलावगाहनाय । तदहं गत्वा तातवधविषण्णमानसं कुरुपतिं सैनापत्यस्वयंग्रहणप्रणयसमाश्वासनया मन्दसंतापं करोमि ।

कृपः—वत्स, एवमिदम् । अतस्तमेवोद्देशं गच्छावः ।

(इति परिक्रामतः)

(२) **कर्णेन विवादः—**

३६. (ततः प्रविशतः कर्णदुर्योधनौ)

दुर्योधनः—अंगराज,—

तेजस्वी रिपुहतबन्धुदुःखपारं,
बाहुभ्यां व्रजति धृतायुधप्लवाभ्याम् ।
आचार्यः सुतनिधनं निशम्य संख्ये,
किं शस्त्रग्रहसमये विशस्त्र आसीत् ॥२७॥

अथवा सूक्तमिदमभियुक्तैः प्रकृतिर्दुस्त्यजेति । यतः शोकान्धमनसा तेन विमुच्य क्षत्रधर्मकार्कश्यं द्विजातिधर्मसुलभो दैन्यपरिग्रहः कृतः ।

३७. कर्णः—राजन्, न खल्विदमेवम् ।

दुर्योधनः—कथं तर्हि ?

३८. कर्णः—एवं किलास्याभिप्रायो यथाश्वत्थामा मया पृथिवीराज्येऽभिषेक्तव्य इति । तस्याभावाद् वृद्धस्य मे ब्राह्मणस्य वृथा शस्त्रग्रहणमिति तथा कृतवान् ।

दुर्योधनः—(सशिरःकम्पम्) एवमिदम् ।

अभिषेक-सामग्री तैयार किये दुर्योधन जल्दी ही तुम्हारी प्रतीक्षा करते खड़े हैं।

३५. अश्वत्थामा—अगर ऐसा है, तो अपमानरूपी अग्निसे जलता हुआ यह मेरा चित्त उसके प्रतीकाररूपी जलमें अवगाहन करनेके लिये जल्दी कर रहा है। सो मैं जाकर बापूके वधसे विषण्ण कुरु-पतिको स्वयं सेनापति-पद ग्रहण के प्रेम द्वारा धैर्य बंधा (उनका) संताप कम करता हूं।

कृप—वत्स, ऐसा ही। अतः उसी स्थानपर हम दोनों चलें।

(दोनों परिक्रमा करते हैं)

२. कर्णसे विवाद—

३६. (तब कर्ण और दुर्योधन प्रवेश करते हैं)

दुर्योधन—अंगराज—

रिपुसे मारे गये बन्धुओंके दुःख-सागरमें,
हथियार पकड़ी बाहु रूपी नौका में चलते,
तेजस्वी आचार्य युद्धमें पुत्रके मारनेकी बात सुनकर,
क्या हथियार पकड़ने के समय बेहथियार (हो गये) थे?॥२७॥

अथवा नीतिज्ञों ने ठीक ही कहा है, कि स्वभावका अतिक्रमण नहीं किया जा सकता, जिससे कि शोकांध मन हो उन्होंने क्षत्रियके कठोर धर्मको छोड़ ब्राह्मणोंकी धर्म सुलभ दीनता को अपनाया।

३७. कर्ण—राजन्, यह ऐसा नहीं है।

दुर्योधन—तो कैसा है?

३८. कर्ण—उन (द्रोण) की यह मनशा थी, कि पृथिवीके राज्यपर मैं अश्वत्थामाका अभिषेक करूंगा। (अब) उसके अभावमें मुझ वृद्ध ब्राह्मणका शस्त्र ग्रहण करना व्यर्थ है, यह सोचकर वैसा किया।

दुर्योधन—(सिर हिलाकर) क्या ऐसा है?

३९. कर्णः—एतदर्थं च कौरवपाण्डवपक्षपातप्रवृत्तमहासंग्रामस्य राजकस्य परस्परक्षयमपेक्षमाणेन तेन प्रधानपुरुषवध उपेक्षा कृता।

दुर्योधनः—उपपन्नमिदम्।

४०. कर्णः—अन्यच्च राजन्, द्रुपदेनाप्यस्य बाल्यात्प्रभृत्यभिप्रायवेदिना न स्वराष्ट्रे वासो दत्तः।

दुर्योधनः—साधु अंगराज, साधु। निपुणमभिहितम्।

कर्णः—न चायं ममैकस्याभिप्रायः। अन्येऽभियुक्ता अपि नैवेदमन्यथा मन्यन्ते।

४१. दुर्योधनः—एवमेतत्। कः सन्देहः?—

दत्त्वा भयं सोऽतिरथो बध्यमानं किरीटिना।
सिन्धुराजमुपेक्षेत नैवं चेत्कथमन्यथा॥२८॥

४२. कृपः—(विलोक्य) वत्स, एष दुर्योधनः सूतपुत्रेण सहास्यां न्यग्रोधच्छायायामुपविष्टस्तिष्ठति। तदुपसर्पावः।

(तथा कृत्वा)

उभौ—विजयतां कौरवेश्वरः!

४३. दुर्योधनः—(दृष्ट्वा) अये, कथं कृपोऽश्वत्थामा च? (आसनादवतीर्य कृपं प्रति) गुरो, अभिवादये। (अश्वत्थामानमुद्दिश्य) आचार्यपुत्र,—

एह्यस्मदर्थहततात परिष्वजस्व,
क्लान्तैरिमैर्मम निरन्तरमंगमंगैः।
स्पर्शस्तवैष भुजयोः सदृशः पितुस्ते,
शोकेऽपि नो विकृतिमेति तनूरुहेषु॥२९॥

(अश्वत्थामा बाष्पमुत्सृजति)

३९. कर्ण—और इसीलिये कौरव और पांडवके पक्षपातसे महासंग्राममें सम्मिलित राजाओंके एक दूसरेके हाथों नाश होनेकी प्रतीक्षा करते उन्होंने प्रधान पुरुषोंके वधकी उपेक्षा की।

दुर्योधन—यह ठीक है?

४०. कर्ण—और भी राजन्, बचपन से ही इनकी नीयत जाननेवाले द्रुपदने भी इन्हें अपने राज्यमें नहीं रहने दिया।

दुर्योधन—ठीक अँगराज, ठीक। तुमने ठीक कहा।

कर्ण—यह मेरी अकेले की राय नहीं है, दूसरे नीतिज्ञ भी इसे अन्यथा नहीं, मानते।

४१. दुर्योधन—यह ऐसा ही। क्या समझें—

उस महारथीने अभय पाये अर्जुन द्वारा मारे जाते,
सिन्धुराजकी उपेक्षा की, ऐसा नहीं तो और कैसे (यह) होता ॥२८॥

४२. कृप—(देखकर) वत्स, यह दुर्योधन सूत-पुत्र (कर्ण) के साथ इस बरगदकी छायामें बैठा है। सो पास चलें।

(वैसा करके)

दोनों—कौरवेश्वरकी विजय हो।

४३. दुर्योधन—(देखकर) अये, कृप और अश्वत्थामा! (आसनसे उतर कर कृप से) गुरु, अभिवादन करता हूं। (अश्वत्थामाकी ओर) आचार्यपुत्र,—

आओ हमारे लिये मृत पिता हुये
मेरे थके पीड़ित अंगोंसे अंगका गाढ़ालिंगन करो।
तुम्हारे पिताके समान इन तुम्हारी भुजाओंका यह स्पर्श,
शोकमें भी रोमोंमें विकृत नहीं होता ॥२९॥

(आलिंगन करके पास बैठाता है)

(अश्वत्थामा आंसू बहाता है)

४४. कर्णः—द्रौणायने, अलमत्यर्थमात्मानं शोकानले प्रक्षेप्तुम्।
दुर्योधनः—आचार्यपुत्र, को विशेष आवयोरस्मिन्व्यसन-महार्णवे ? पश्य,—

तातस्तव प्रणयवान्स पितुः सखा मे,
शस्त्रे यथा तव गुरुः स तथा ममापि।
किं तस्य देहनिधने कथयामि दुःखं,
जानीहि तद्गुरुशुचा मनसा त्वमेव ॥३०॥

कृपः—वत्स, यथाह कुरुपतिस्तथैवैतत्।

४५. अश्वत्थामा—राजन्, एवं पक्षपातिनि त्वयि युक्तमेव शोकभारं लघूकर्तुम्। किंतु,—

मयि जीवति यत्तातः केशग्रहमवाप्तवान्।
कथमन्ये करिष्यन्ति पुत्रेभ्यः पुत्रिणः स्पृहाम् ॥३१॥

४६. कर्णः—द्रौणायने, किमत्र क्रियते यदा तेनैव सर्वपरिभव-परित्राणहेतुना शस्त्रमुत्सृजता तादृशीमवस्थामात्मा नीतः।

४७. अश्वत्थामा—अंगराज, किमाह भवान्किमत्र क्रियत इति ? श्रूयतां यत्क्रियते,—

यो यः शस्त्रं बिभर्ति स्वभुजगुरुमदः पाण्डवीनां चमूनां,
यो यः पांचालगोत्रे शिशुरधिकवया गर्भशय्यां गतो वा।
यो यस्तत्कर्मसाक्षी चरति मयि रणे यश्चयश्च प्रतीपः,
क्रोधान्धस्तस्य तस्य स्वयमपि जगतामन्तकस्यान्तकोऽहम्
॥३२॥

अपि च, भो जामदग्न्यशिष्य कर्ण,—

देशः सोऽयमरातिशोणितजलैर्यस्मिन्ह्रदाः पूरिताः,
क्षात्रादेव तथाविधः परिभवस्तातस्य केशग्रहः।
तान्येवाहितशस्त्रघस्मरगुरूण्यस्त्राणि भास्वन्ति मे,
यद्रामेण कृतं तदेव कुरुते द्रोणात्मजः क्रोधनः ॥३३॥

४४. कर्ण—द्रौणायनि छोड़ो, अपनेको भारी शोकानलमें में न डालो।
दुर्योधन—आचार्य-पुत्र, इस दुःखसागरमें हम दोनोंमें कौन विशेष (दुःखी) है? देखो—

तुम्हारे बाप, प्रेमी, मेरे पिताके सखा थे।
शस्त्रमें जैसे वह तुम्हारे गुरु थे, वैसे मेरे भी।
उनके देहके निधनके दुःखको कैसे कहूँ,
(इसे) उनके लिये शोकाकुल मनसे तुम ही समझ लो ।।३०।।

कृप—वत्स, जैसा कुरुपति कहते हैं, यह वैसा ही है।

४५. अश्वत्थामा—राजन्, तुम्हारे ऐसे प्रेम के होते शोकके भारको हलका करना उचित ही है। किन्तु,—

मेरे जीते जी बापूका जो (यह) केश पकड़ा गया।
(उसे देखकर) दूसरे पिता कैसे पुत्रकी लालसा करेंगे ।।३१।।

४६. कर्ण—द्रौणायनि, क्या किया जाये, जबकि उन्होंने भी सारे अपमानोंसे परित्राण के हेतु हथियार छोड़ अपनेको वैसी अवस्थामें पहुंचा दिया?

४७. अश्वत्थामा—अंगराज, क्या आप कहते हैं, कि क्या किया जाये? सुनिये जो किया जाये—

पांडवकी सेनामें अपनी भुजाका भारी अभिमानी जो-जो शस्त्र-धारी,
पंचाल-वंशमें जो-जो शिशु वयस्क या गर्भस्थ है।
जो-जो उस कर्मका साक्षी हो विचर रहा है और जो रणमें मेरे विरुद्ध है। उसका और स्वयं संसारके अन्त करनेवालेका भी मैं क्रोधांध अन्तक हूं ।।३२।।

और भी, हे परशुराम-शिष्य कर्ण,—

यह वह देश है, जिसमें शत्रुओंके रुधिररूपी जलसे जलाशय भरे गये।
क्षत्रियके बापूके केश पकड़नेका ही वहां अपमान हुआ।
वही भक्षक चमकनेवाले महान् हथियार मेरे पास है।
परशुराम ने जो किया, वही क्रोधी द्रोण-पुत्र (भी) करेगा ।।३३।।

४८. दुर्योधनः—आचार्यपुत्र, तस्य तथाविधस्यानन्यसाधारणस्य ते वीरभावस्य किमन्यत्सदृशम् ?

कृपः—राजन्, सुमहान्खलु द्रोणपुत्रेण वोढुमध्यवसितः समरभरः । तदहमेवं मन्ये भवता कृतपरिकरोऽयमुच्छेत्तुं लोकत्रयमपि समर्थः, किं पुनर्यौधिष्ठिरबलम् ? अतोऽभिषिच्यतां सैनापत्ये ।

४९. दुर्योधनः—सुष्ठु युज्यमानमभिहितं युष्माभिः, किंतु प्राक्प्रतिपन्नोऽयमर्थोऽङ्गराजस्य ।

कृपः—राजन्, असदृशपरिभवशोकसागरे निमज्जन्तमेनमंगराजस्यार्थे नैवोपेक्षितुं युक्तम् । अस्यापि तदेवारिकुलमनुशासनीयम् । अतः किमस्य पीडा न भविष्यति ?

५०. अश्वत्थामा—राजन्, किमद्यापि युक्तायुक्तविचारणया?—
प्रयत्नपरिबोधितः स्तुतिभिरद्य शेषे निशाम्,
अकेशवमपाण्डवं भुवनमद्य निःसोमकम् ।
इयं परिसमाप्यते रणकथाद्य दोःशालिनां,
अपैतु नृपकाननातिगुरुरद्य भारो भुवः ॥३४॥

५१. कर्णः—(विहस्य) वक्तुं सुकरमिदं दुष्करमध्यवसितुम् । बहवः कौरवबलेऽस्य कर्मणः शक्ताः ।
अश्वत्थामा—अंगराज, एवमिदम् । बहवः कौरवबलेऽत्र शक्ताः, किंतु दुःखोपहतः शोकावेगवशाद् ब्रवीमि न पुनर्वीरजनाधिक्षेपेण ।

५२. कर्णः—द्रौणायनि, दुःखितस्याश्रुपातः कुपितस्य चायुध - द्वितीयस्य संग्रामावतरणमुचितं नैवंविधाः प्रलापाः ।

५३. अश्वत्थामा—(सक्रोधम्) अरे रे राधागर्भभारभूत, सूतापसद, ममापि नामाश्वत्थाम्नो दुःखितस्याश्रुभिः प्रतिक्रियामुपदिशसि न शस्त्रेण ? पश्य,—

४८. दुर्योधन—आचार्य-पुत्र तुम्हारे जैसे असाधारण वीरतावाले के लिये उचित और क्या हो सकता है ?

कृप—राजन्, द्रोण-पुत्रको समरके अतिमहान् भार उठानेके लिये तत्पर किया है। सो मैं समझता हूं, आपके तैयार होने पर यह तीनों लोकको उच्छिन्न करनेमें समर्थ हैं, युधिष्ठिर-सेनाकी तो बात ही क्या ? इसलिये इनको सेनपति-पद पर अभिषिक्त करें।

४९. दुर्योधन—तुमने ठीक और उचित ही कहा, लेकिन पहले ही यह पद अंगराजको मिल चुका है।

कृप—राजन्, अंगराजके लिये असाधारण अपमानके शोक-सागरमें डूबते (इन्हें) उपेक्षित नहीं करना चाहिये। इन्हें भी उसी शत्रुकुलको दंडित करना है। अतः क्या इनको दुःख नहीं होगा ?

५०. अश्वत्थामा—राजन्, आज उचित-अनुचित के विचार करनेसे क्या ?
स्तुतियोंसे प्रयत्नपूर्वक जगाये तुम आज रातको सोओ।
आज संसार बिना केशव, बिना पांडव और बिना सोमकका होगा,
आज बाहुवालोंकी यह रणकथा समाप्त हो रही है।
आज नृपोंरूपी वनका अति भारी भार पृथिवी से दूर हटे ॥३४॥

५१. कर्ण—(विहँसकर) यह कहना आसान है, करना कठिन है। कौरव-सेनामें बहुतेरे यह काम करने में समर्थ हैं।

अश्वत्थामा—अंगराज, यह ऐसा ही। कौरव-सेनामें बहुतसे इसमें समर्थ हैं, किन्तु मैं दुःख का मारा शोकावेगके कारण (यह) कह रहा हूं, वीर लोगोंके तिरस्कार के लिये नहीं।

५२. कर्ण—द्रौणायनि, दुःखितका आंसू बहाना कुपितका हथियार ले संग्राममें उतरना उचित है, न कि ऐसा प्रलाप करना।

५३. अश्वत्थामा—(क्रोधपूर्वक) अरे, रे, राधाके गर्भके भार, नीच सूत, मुझ दुःखित अश्वत्थामाको आंसुओंसे प्रतिकार करनेका उपदेश देता है, शस्त्रसे नहीं ? देख—

निर्वीर्यं गुरुशापभाषितवशात्किं मे तवेवायुधं,
संप्रत्येव भयाद्विहाय समरं प्राप्तोऽस्मि किं त्वं यथा ?
जातोऽहं स्तुतिवंशकीर्तनविदां किं सारथीनां कुले,
क्षुद्रारातिकृताप्रियं प्रतिकरोम्यस्रेण नास्त्रेण यत् ।।३५।।

५४. कर्णः—(सक्रोधम्) अरे रे वाचाट, वृथाशस्त्रग्रहणदुर्विदग्ध, बटो,—

निर्वीर्यं वा सवीर्यं वा मया नोत्सृष्टमायुधम् ।
यथा पांचालभीतेन पित्रा ते बाहुशालिना ।।३६।।

अपि च,—

सूतो वा सूतपुत्रो वा यो वा को वा भवाम्यहम् ।
दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम् ।।३७।।

५५. अश्वत्थामा—(सक्रोधम्) अरे रे रथकारकुलकलंक, अरे राधागर्भभारभूत, तातमप्यधिक्षिपसि ? अथवा,—

स भीरुः शूरो वा प्रथितभुजसारस्त्रिभुवने,
कृतं यत्तेनाजौ प्रतिदिनमियं वेत्ति वसुधा ।
परित्यक्तं शस्त्रं कथमिति स सत्यव्रतधरः,
पृथासूनुः साक्षी त्वमसि रणभीरो क्व नु तदा ।।३८।।

५६. कर्णः—(विहस्य) एवं भीरुरहम् ? त्वं पुनर्विक्रमैकरसं स्वपितरमनुस्मृत्य न जाने किं करिष्यसीति ? महान्मे संशयो जातः । अपि च रे मूढ,—

यदि शस्त्रमुज्झितमशस्त्रपाणयो,
न निवारयन्ति किमरीनुदायुधान् ।
यदनेन मौलिदलनेऽप्युदासितं,
सुचिरं स्त्रियेव नृपचक्रसंनिधौ ।।३९।।

भारी शापके कथनके कारण क्या तेरी तरह मेरा आयुध निर्वीर्य है ?
क्या तेरी तरह अभी ही मैं भय से समर छोड़कर आया हूँ ?
क्या मैं वंशकी प्रशंसा करना जाननेवाले सारथियोंके कुलमें पैदा हुआ, जो कि छुद्र दुश्मनके लिये किये अप्रियका प्रतिकार में खून और हथियार से न करूं ।।३५।।

५४. कर्ण—(क्रोध-सहित) अरे-अरे बकवादी, झूठ ही शस्त्र पकड़ने में दुष्पंडित ब्राह्मण-पुत्र—
निर्वीर्य हो या सवीर्य, मैंने हथियार नहीं छोड़ा।
जैसा कि पांचालसे डरकर बाहुशाली तेरे पिताने किया ।।३६।।
और भी—

सूत या सूत-पुत्र, मैं जो कोई भी हूं।
किसी कुलमें जन्मना दैवके अधीन है, किन्तु पौरुष मेरे अधीन है ।।३७।।

५५. अश्वत्थामा—(क्रोध-सहित) अरे रे, बढ़ई कुलके कलंक, राधाके गर्भके भार, बापूकी निन्दा करता है ? अथवा—

वह भीरु थे या शूर, (पर) त्रिलोकमें अपने भुजके पराक्रमके लिये प्रसिद्ध थे। उन्होंने युद्धमें प्रतिदिन जो किया, उसे यह वसुधा जानती है। कैसे उन्होंने शस्त्रको छोड़ा, इसके यह सत्यव्रतधारी, युधिष्ठिर साक्षी हैं, हे रणसे भीरु, तब तुम कहां थे ।।३८।।

५६. कर्ण—(विहंसकर) इस प्रकार मैं तो भीरु हूं, और पराक्रमके एकमात्र सारभूत अपने पिताका अनुसरण करते न जाने तू क्या करेगा? मुझे और भी महासंशय हो गया है, रे मूढ़,

यदि हाथमें हथियार न लिये छोड़े हथियार को
नहीं रोकते, तो हथियार लिये शत्रुओंको क्या (करेंगे) ?
जो कि सिर दलन करनेमें उदासीन रहे।
जैसे नृप-सेनाके समीप स्त्री देरतक (उदास रहे) ।।३९।।

५७. अश्वत्थामा—(सक्रोधं सकम्पं च) दुरात्मन्, राजवल्लभ, प्रगल्भ, सूतापसद, असंबद्धप्रलापिन्,—
कथमपि न निषिद्धो दुःखिना भीरुणा वा,
द्रुपदतनयपाणिस्तेन पित्रा ममाद्य।
तव भुजबलदर्पाध्मायमानस्य वामः,
शिरसि चरण एष न्यस्यते वारयैनम् ॥४०॥
(इति तथा कर्तुमुत्तिष्ठति)

५८. कृपदुर्योधनौ—वत्स, मर्षय मर्षय। (इति निवारयतः)
(अश्वत्थामा चरणप्रहारं नाटयति)
कर्णः—(सक्रोधमुत्थाय, खड्गमाकृष्य) अरे दुरात्मन्, ब्रह्मबन्धो, आत्मश्लाघ,—
जात्या काममवध्योऽसि चरणं त्विदमुद्धतम्।
अनेन लूनं खड्गेन पतितं द्रक्ष्यसि क्षितौ ॥४१॥

५९. अश्वत्थामा—अरे मूढ, जात्या काममवध्योऽहम्, इयं सा जातिः परित्यक्ता (इति यज्ञोपवीतं छिनत्ति)। पुनश्च सक्रोधम्—
अद्य मिथ्याप्रतिज्ञोऽसौ किरीटी क्रियते मया।
शस्त्रं गृहाण वा त्यक्त्वा मौलौ वा रचयांजलिम् ॥४२॥
(उभावपि खड्गमाकृष्यान्योन्यं प्रहर्तुमुद्यतौ। कृपदुर्योधनौ निवारयतः)

६०. दुर्योधनः—आचार्यपुत्र, शस्त्रग्रहणेनालम्।
कृपः—वत्स, सूतपुत्र, शस्त्रग्रहणेनालम्।

६१. अश्वत्थामा—मातुल, मातुल, किं निवारयसि? अयमपि तातनिन्दाप्रगल्भः सूतापसदो धृष्टद्युम्नपक्षपात्येव।
कर्णः—राजन्, न खल्वहं निवारयितव्यः—
उपेक्षितानां मन्दानां धीरसत्त्वैरवज्ञया।
अत्रासितानां क्रोधान्धैर्भवत्येषा विकत्थना ॥४३॥

५७. अश्वत्थामा—(क्रोधसे कांपते) दुरात्मा, राजप्रिय, ढीठ, नीच सूत, बेहूदी बकवास करनेवाले—

दुःखी या भीरु मेरे पिताने।
द्रुपद-पुत्रके हाथको कैसे भी न रोका हो, पर आज
भुजबलके दर्पका शोर मचाने वाले तेरे सिरके ऊपर
मैं यह बांया चरण रख रहा हूं, इसे रोक ॥४०॥

(वैसा करनेके लिये खड़ा हो जाते हैं)]

५८. कृप और दुर्योधन—वत्स रुको, रुको (दोनों निवारण करते हैं)
(अश्वत्थामा चरण प्रहार करने का अभिनय करता है)

कर्ण—(क्रोधसहित उठकर खड्ग खींच कर)
अरे दुरात्मा, ब्रह्मबन्धु, आत्मश्लाघी, जाति से चाहे तू अबध्य है, लेकिन यह (तेरा)चरण तो उठ चुका है। (अब) इसे तू खड्गसे कटा पृथिवी पर गिरा देखेगा ॥४१॥

५९. अश्वत्थामा—अरे मूढ़ जाति से मैं अबध्य हूं, तो ले यह मैंने उस जाति को छोड़ा। (जनेऊ को तोड़ देता है, फिर क्रोध के साथ)—आज उस अर्जुन को मैं झूठी प्रतिज्ञावाला बनाता हूं, हथियार को उठा या उसे छोड़कर सिर पर हाथ जोड़ ॥४२॥

(दोनों ही खड्ग खींचकर एक दूसरे पर प्रहार करने के लिए उद्यत हैं। कृप और दुर्योधन रोकते हैं)

६०. दुर्योधन—आचार्य-पुत्र, शस्त्र उठाने से रुको।
कृप—वत्स, सूत-पुत्र शस्त्र उठानेसे रुको।

६१. अश्वत्थामा—मामा,मामा, क्यों रोकते हो ? बापू की निन्दा करने वाला यह ढीठ नीच सूत, धृष्टद्युम्नका पक्षपाती है।

कर्ण—राजन्, मुझे न रोकिये—धीरों द्वारा उपेक्षित मन्दोंकी अवज्ञासे क्रोधांधों द्वारा निडर की ऐसी बकवास होती है ॥४३॥

६२. अश्वत्थामा——राजन्, मुंच मुंचैनम् । आसादयतु मद्भुजान्तरनिष्पेषसुलभमसूनामवसादनम् । अन्यच्च, राजन्, स्नेहेन वा कार्येण वा यत्त्वमेनं ताताधिक्षेपकारिणं दुरात्मानं मत्तः परिरक्षितुमिच्छसि तदुभयमपि वृथैव ते । पश्य,—

पापः प्रियस्तव कथं गुणिनः सखायं,
सूतान्वयः शशधरान्वयसंभवस्य ?
हन्ताकिरीटिनमहं नृप, मुंच कुर्यां,
क्रोधादकर्णमपृथात्मजमद्य लोकम् ॥४४॥

(इति प्रहर्तुमिच्छति)

६३. कर्णः——(खड्गमुद्यम्य) अरे वाचाट, ब्राह्मणाधम, अयं न भवसि ? राजन्, मुंच मुंच । न खल्वहं वारयितव्यः । (हन्तुमिच्छति) ।

(दुर्योधनकृपौ निवारयतः)

६४. दुर्योधनः——कर्ण, गुरुपुत्र, कोऽयमद्य युवयोर्व्यामोहः ?

कृपः——वत्स, अन्यदेव प्रस्तुतमन्यात्रावेग इति कोऽयं व्यामोहः ? स्वबलव्यसनं चेदमस्मिन्काले राजकुलस्यास्य युष्मत्त एव भवतीति वामः पन्था ।

अश्वत्थामा——मातुल, न लभ्यतेऽस्य कटुप्रलापिनो रथकारकुलकलंकस्य दर्पः शातयितुम् ?

कृपः——वत्स, अकालः खलु स्वबलप्रधानविरोधस्य ।

६५. अश्वत्थामा——मातुल, यद्येवम्,—

अयं पापो यावन्न निधनमुपेयादरिशरैः,
परित्यक्तं तावत्प्रियमपि मयास्त्रं रणमुखे ।
बलानां नाथेऽस्मिन्परिकुपितभीमार्जुनभये,
समुत्पन्ने राजा प्रियसखबलं वेत्तु समरे ॥४५॥

(इति खड्गमुत्सृजति)

६२. अश्वत्थामा—राजन्, छोड़ें इसे। यह मेरी भुजाओं के बीच पीसा जाकर सुलभ प्राण-नाशको प्राप्त करे। और भी, राजन्, यदि तुम स्नेह या कार्यवश बापूके निन्दक इस दुरात्माकी मुझसे रक्षा करना चाहते हो, तो वह दोनों तुम्हारे लिये वृथा ही है। देखिये—
गुणी चन्द्रवंशोत्पन्न तुम्हारा प्रिय सखा,

यह सूतवंशी पापी कैसे (हो सकता) है। मैं आज धरतीको अर्जुन बिना करूंगा। राजन्, छोड़ो। क्रोधसे आज मैं संसार को बिना कर्ण और बिना युधिष्ठिर का करूंगा ।।४४।।

(प्रहार करना चाहता है)

६३. कर्ण—(खड्ग उठाकर) अरे बकवासी अधम ब्राह्मण, यह न है तू ? राजन् छोड़ें, छोड़ें, मुझे न रोकें। (मारना चाहता है)

(दुर्योधन और कृप रोकते हैं)

६४. दुर्योधन—कर्ण, गुरुपुत्र, आप दोनोंको आज यह क्या मूढ़ता सूझी है ?
कृप—वत्स, दूसरे का अवसर है और दूसरे में आवेग ! यह कौनसा व्यामोह है ? और इस कालमें इस राजवंश की अपनी सेना पर तुमसे ही आफत आ रही है, यह उलटा रास्ता है।

अश्वत्थामा—मामा, इस कूट प्रलाप करनेवाले बढ़ई-वंशके कलंक के दर्प को तोड़ना क्या नहीं मिलेगा ?

कृप—वत्स, अपनी सेनाके प्रधान के विरोध का यह काल नहीं।

६५. अश्वत्थामा—मामा यदि यह है, तो—

यह पापी जब तक दुश्मन के बाणों से मर नहीं जाता, तब तक के लिये मैंने युद्धमें प्रिय (अपने) अस्त्रको भी छोड़ दिया। कुपित भीम-अर्जुन का भय उत्पन्न होने पर इसके सेनापति होनेके समय युद्धमें राजा अपने प्रिय मित्र (मेरे) बलको देखें ।।४५।।

(खड्ग छोड़ देता है)

६६. कर्णः—(विहस्य) कुलक्रमागतमेवैतद् भवादृशां यदस्त्र - परित्यागो नाम ।

अश्वत्थामा—ननु रे, अपरित्यक्तमपि भवादृशैरायुधं चिरपरित्यक्तमेव निष्फलत्वात् ।

६७. कर्णः—अरे मूढ,—

धृतायुधो यावदहं तावदन्यैः किमायुधैः ?
यद्वा न सिद्धमस्त्रेण मम तत्केन सेत्स्यति ॥४६॥

(नेपथ्ये)

६८. आः दुरात्मन्, द्रौपदीकेशाम्बराकर्षणमहापातकिन्, धार्तराष्ट्रापसद, चिरस्य खलु कालस्य मत्संमुखीनमागतोऽसि । क्षुद्रपशो, क्वेदानीं गम्यते ? अपि च, भो भो राधेयदुर्योधनसौबलप्रभृतयः पाण्डवविद्वेषिणश्चापपाणयो मानधनाः, शृण्वन्तु भवन्तः,—

कृष्टा येन शिरोरुहे नृपशुना पांचालराजात्मजा,
येनास्याः परिधानमप्यपहृतं राज्ञां गुरूणां पुरः ।
यस्योरःस्थलशोणितासवमहं पातुं प्रतिज्ञातवान्,
सोऽयं मद्भुजपंजरे निपतितः संरक्ष्यतां कौरवाः ॥४७॥

(सर्वे आकर्णयन्ति)

६९. अश्वत्थामा—(सोत्प्रासम्) अंगराज, सेनापते, जामदग्न्यशिष्य, द्रोणोपहासिन्, भुजबलपरिरक्षितसकललोक, "धृतायुधः" (३।४६ इति पठित्वा) इदं तदासन्नतरमेव संवृत्तम् । रक्षैनं सांप्रतं भीमाद् दुःशासनम् ।

७०. कर्णः—आः, का शक्तिर्वृकोदरस्य मयि जीवति दुःशासनस्य छायामप्याक्रमितुम् ? युवराज, न भेतव्यं न भेतव्यम् । अयमहमागतोऽस्मि । (इति निष्क्रान्तः)

६६. कर्ण—(विहंस कर) अस्त्र छोड़ना तो आप जैसोंकी कुल-परंपरा चली ही आई है।

अश्वत्थामा—तो रे, आप जैसों द्वारा न छोड़ा हथियार भी निष्फल होनेसे चिरपरित्यक्त ही है।

६७. कर्ण—अरे मूढ़—

जब तक मैं अस्त्रधारी हूं, तब तक दूसरे हथियारोंका क्या करना है?
जो (काम) मेरे अस्त्रसे सिद्ध नहीं होगा, उसे कौन सिद्ध करेगा ।।४६।।

(नेपथ्यमें)

६८. आह दुरात्मा, द्रौपदीके केश और वस्त्रके खींचनेवाले महापातकी, नीच धृतराष्ट्र-पुत्र, तू चिरकाल बाद मेरे सम्मुख आया है। क्षुद्र पशु, अब कहां जायेगा? और भी, हे-हे कर्ण, दुर्योधन, सुबल-पुत्र आदि पाण्डवद्वेपी धनुर्धर-अभिमानियों, आप सुनें—

जिस नरपशु पंचाल राजकी पुत्रीको केशोंसे घसीटा,
राजाओं और गुरुजनोंके सामने जिसने इसके वस्त्रको छीना।
जिसकी छातीके रुधिर रूपी मदिराके पीनेकी मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूं,
उस मेरे भुजारूपी पिंजड़ेमें पड़े इसकी कौरव रक्षा करें ।।४७।।

(सब सुनते हैं)

६९. अश्वत्थामा—(कुछ मुस्करा कर) परशुराम-शिष्य, द्रोणके उपहास करनेवाले, अपने भुजबलसे सकल लोकके रक्षक सेनापति अंगराज, "जब तक मैं अस्त्रधारी हूं" इसका (अवसर) बहुत जल्दी ही आ पहुंचा। अब भीमसे इस दुःशासनकी रक्षा करो।

७०. कर्ण—आह, मेरे जीते-जीते भीमकी क्या शक्ति है, कि दुःशासनकी छायाको भी लांघ सके। युवराज, न डरें, न डरें। यह मैं आया।

(बाहर चला गया)

अश्वत्थामा—राजन् कौरवनाथ, अभीष्मद्रोणं संप्रति कौ-रवबलमालोडयन्तौ भीमार्जुनौ राधेयेनैवंविधेनान्येन वा न शक्येते निवारयितुम् । अतः स्वयमेव भ्रातुः प्रतीकारपरो भव ।

७१. दुर्योधनः—आः, शक्तिरस्ति दुरात्मनः पवनतनयस्यान्यस्य वा मयि जीवति शस्त्रपाणौ वत्सस्य छायामप्याक्रमितुम् ? वत्स, न भेतव्यं न भेतव्यम् । कः कोऽत्र भोः ? रथमुपनय । (इति निष्क्रान्तः)

(नेपथ्ये कलकलः)

७२. अश्वत्थामा—(ससंभ्रमम्) मातुल, कष्टं कष्टम् ! एष भ्रातुः प्रतिज्ञाभंगभीरुः किरीटी समं दुर्योधनराधेयौ शर-वर्षैरभिद्रवति । सर्वथा पीतं दुःशासनशोणितं भीमेन ! न खलु विषहे दुर्योधनानुजस्यैनां विपत्तिमवलोकयितुम् ! अनृतमनुमतं नाम मातुल, शस्त्रं शस्त्रम्,—

सत्यादप्यनृतं श्रेयो धिक्स्वर्गं नरकोऽस्तु मे ।
भीमाद् दुःशासनं त्रातुं त्यक्तमत्यक्तमायुधम् ॥४८॥

(इति खड्गं ग्रहीतुमिच्छति)

(नेपथ्ये)

७३. महात्मन् भारद्वाजसूनो, न खलु सत्यवचनमुल्लंघयितुम-र्हसि ।

कृपः—वत्स, अशरीरिणी भारती भवन्तमनृतादभिरक्षति ।

७४. अश्वत्थामा—कथमियममानुषी वाग्नानुमनुते संग्रामा-वतरणं मम ! सर्वथा पाण्डवपक्षपातिनो देवाः । भोः, कष्टं कष्टम् !—

अश्वत्थामा——राजन् कौरवनाथ, कौरव सेनाको इस समय ढूंढ़ते भीम और अर्जुन को भीष्म और द्रोणके बिना यह राधेय या दूसरा कोई नहीं रोक सकता। इसलिये स्वयं ही भाईकी रक्षा के लिये तत्पर हो जाओ।

७१. दुर्योधन——आह, हाथमें हथियार लिये मेरे जीते जी दुरात्मा भीम या और किसीकी मजाल है, कि बच्चेकी छाया भी लांघ सके? वत्स, न डरो। यहां कौन है? रथ ले आ। (बाहर चला गया)

(नेपथ्यमें कोलाहल)

७२. (घबराहटमें) मामा, कष्टम्। भाईकी प्रतिज्ञाके भंगसे भयभीत यह अर्जुन, तुरन्त दुर्योधन और कर्णकी ओर बाण-वर्षा करते दौड़ रहा है। दु:शासनके रक्तको भीमने अवश्य अब पिया। दुर्योधनके छोटे भाईकी इस विपत्तिको मैं देख नहीं सकता। चाहे प्रतिज्ञा झूठी हो, मामा, हथियार-हथियार——

सत्यसे भी झूठ बेहतर है, स्वर्गको धिक्कार, मुझे नर्क (भले) होवे। भीमसे दु:शासनकी रक्षा करने के लिये त्यागे आयुधको मैंने अत्यक्त कर दिया॥४८॥

(खड्ग पकड़ना चाहता है।)

(नेपथ्यमें)

७३. महात्मा भारद्वाज-पुत्र, तुम्हें शपथ उल्लंघन नहीं करना चाहिये। कृप——वत्स, दैवी वाणी, तुम्हारी झूठसे रक्षा कर रही है।

७४. अश्वत्थामा——क्या यह अमानुषी वाणी मेरे युद्धमें उतरनेको नहीं पसन्द करती! जब (तो) देवता पांडवके पूरे पक्षपाती हैं। हा कष्टम्-कष्टम्——

दुःशासनस्य रुधिरे पीयमानेऽप्युदासितम् ।
दुर्योधनस्य कर्ताऽस्मि किमन्यत्प्रियमाहवे ॥४९॥

मातुल, राधेयक्रोधवशादनार्यमस्माभिराचरितम् । अतस्त्वमपि तावदस्य राज्ञः पार्श्ववर्ती भव ।

७५. कृपः—गच्छाम्यहमत्र प्रतिविधातुम् । भवानपि शिबिरसंनिवेशमेव प्रतिष्ठताम् ।

(परिक्रम्य निष्क्रान्तौ)

—अंक: ३

दु:शासन का खून पिये जाते समय भी मैं उदासीन हूं।
तो युद्धमें मैं दुर्योधनका क्या प्रिय करूंगा ।।४९।।
मामा, कर्णके ऊपर आये क्रोधके कारण हमने अनुचित बात की,
इसलिये तुम राजाके ही साथी बनो ।

७५. कृप—मैं यहां प्रतिकार करनेके लिये जा रहा हूं । आप भी तम्बुओंके स्थानमें रहें।

(परिक्रमा करके दोनों बाहर चले गये)

—अंक ३

३८. मुरारि (८०० ई०)

३८. मुरारि (८०० ई०)—यह मुद्गल-गोत्री श्री वर्धमानक और तुमतीके पुत्र, तथा माहिष्मती (वर्तमान महेश्वर, इन्दौर) के राजाके सभापंडित थे। इनके जन्म देनेका सौभाग्य मालव भूमिको है। इनकी सिर्फ

अनर्घराघव

१. विमानयात्रा—

१. सीता—(हसन्ती पुष्पकं प्रति) विमानराज, गगनमार्ग-चंक्रमणकौतूहलोल्लसितमानसास्मि। तद्‌गम तावत्।

२. रामः—(सकौतुकस्मितम्) देवि, रत्नगर्भागर्भरत्नशलाके, पश्य पश्य—

यथा यथा परं व्योम विमानमधिरोहति।
तथा तथापसर्पन्ति परतः परितो दिशः॥२४॥

३. किं च—

आसन्नतपनाश्यानत्वचःपुष्पकपीडिताः।
गगनार्णवयादांसि स्तिम्यन्ति स्तनयन्निव॥२५॥

४. अपि च—

अमी ते गम्भीरस्तनितरवरौद्रा नयनयोर्,
अनायुष्यं पुष्यन्त्यवतमसमुच्चैर्जलमुचः।
विसर्पद्भिर्येषामुपरि परमिन्दोः परिमलैर्,
असंबाधज्योत्स्नातिमिरचयचित्रं वियदभूत्॥२६॥

५. सुग्रीवः—(अधोऽवलोक्य सकौतुकं रामं प्रति) देव, दूरा-दवागवलोकय तावत्—

३८. मुरारि (८०० ई०)

एक रचना "अनर्घराघव" (नाटक) मिलता है, जो सात अंकोंका है। अपभ्रंश-कालके कविताके दुर्गुण अपने चरम रूपमें इस नाटकमें प्रकट हुए हैं। यदि मुरारिने नाटककी जगह काव्य लिखा होता, तो अच्छा होता।

अनर्घराघव

१. विमानयात्रा—

१. सीता—(हंसती हुई पुष्पकसे) विमानराज, आकाशमार्गकी यात्राके कौतूहलसे मेरा मन उल्लसित है, सो थोड़ा नीचेसे)

२. राम—(कौतुक और मुस्कानके साथ) रत्नगर्भा पृथिवीके गर्भकी उत्तम-रत्न देवि, देख-देख—

जैसे-जैसे विमान आकाशके ऊपर चढ़ रहा है।
वैसे-वैसे चारों ओर दिशायें दूर हट रही हैं ।।२४।।

३. और भी—

सूर्यके नजदीक सूखे चमड़ेवाली, गगनसागरकी बिजलियां,
पुष्पकसे पीड़ित हो गरजती गीली सी हो रही हैं ।।२५।।

४. और भी—

ये वे गम्भीर बिजलीके शब्दसे भयंकर मेघ,
ऊंचे पुष्ट अन्धकारको आयु-क्षीण करते हैं।
जिनके ऊपर चन्द्रसे परे फैलती गंधोंके कारण
विरल चांदनीयुक्त आकाश अन्धकार-समूहसे चितकबरा हो गया ।।२६।।

५. सुग्रीव—(नीचे देखकर कौतूहल-पूर्वक रामसे) जरा दूर नीचे देखें—

निह्नुतोन्नतनतप्रविभक्तिः स्वस्ववर्णविनिविष्टपदार्था ।
अम्बुराशिपरिवेषवती भूश्चित्रकुट्टिममिव प्रतिभाति
॥२७॥

६. अपि च देव,—
अयमनेन महोदधिभोगिना वलयितो वसुधाफणमण्डलः ।
जगदनर्घमवाप्य भवादृशं किमपि रत्नमहंकुरुतेतराम् ॥२८॥

७. सीता—(पुरो दर्शयन्ती) क एष कल्पानलज्वालाकला-पक्वथ्यमानजलनिधिलवणस्तवकनिर्मलाभ्रंलिहशिखरसह-स्रमधुरो महीधरः प्रलोक्यते ?

८. विभीषणः—देवि,
पुरः प्रालेयशैलोऽयं यस्मिन्मकरकेतवे ।
मृतसंजीवनी दुर्गा महौषधिरजायत ॥२९॥

९. सीता—(सकौतुकम्) अपि इहैव चन्द्रशेखरनयनानले आहुतीभूतो भगवान्मन्मथः ?

१०. विभीषणः—आं देवि, आम् । इयमुत्तरेण देवदारुवन-लेखा विषमशरदुरन्तसाक्षिणी—
पुरा पुरां भेत्तुरिह त्रिनेत्रीशृंगाटकेऽतुल्यरुषि स्थितेऽपि ।
धग्धाग्धगित्यज्वलदेकमन्ये तद्धूमपीडामपि नासहेताम्
॥३०॥

११. रामः—किमुच्यते—
नीललोहितललाटलांछने लोचने जयति कोपपावकः ।
रक्षितस्य जगदन्तहेतवे यस्य संज्वलनमात्मभूरभूत् ॥३१॥

१२. सीता—(रामं प्रति) आर्यपुत्र, तथा निरनुक्रोशः कथं पुनः प्रतिनिवृत्तो महादेवो देव्यै ?"

ऊभड़-खाभड़ भेदको छिपाये अपने-अपने रंगोंसे युक्त पदार्थोंयुक्त,
सागरके घिरावेवाली पृथिवी विचित्र चौतरे सी जान पड़ती है ।।२७।।

६. और भी—

इस सागररूपी नागसे लपेटा यह वसुधारूपी फण-मंडल,
जगत्‌में आप जैसे अनर्घ रत्नको पाकर अभिमान कर रहा है ।।२८।।

७. सीता—(सामने देखती) प्रलयकी अग्निज्वालाओंसे उबलते समुद्रके नमकके गुच्छों जैसा निर्मल, आकाशचुम्बी सहस्र शिखरोंसे, मधुर यह कौन सा पर्वत दिखाई दे रहा है ?

८. विभीषण—देवि,—

सामने यह हिमालय है, जिसमें कामदेवके लिये
मृतसंजीवनी पार्वती जैसी महौषधि भी उत्पन्न हुई ।।२९।।

९. सीता—(कुतूहलपूर्वक) क्या यहीं महादेवकी नयनज्वालामें भगवान् कामदेव आहुति बने ?

१०. विभीषण—हां, देवि, हां। यह उत्तरमें देवदारवनोंकी रेखा कामदेवके मृत्युकी साक्षी है—

यहां पहले त्रिपुरारिके तीन नेत्रों रूपी सिंगाड़के अतुल रोषयुक्त होनेपर
एक धक्-धक् जल गया, बाकी दो उस धूमकी पीड़ा भी नहीं सह सके
।।३०।।

११. राम—क्या कहते हैं—

शंकरके ललाटको अलंकृत करनेवाले नेत्रमें (स्थित) कोपकी ज्वालाकी जय हो। जगत् नाशके लिये रक्खी जिसका ईंधन कामदेव हुआ ।।३१।।

१२. सीता—(रामसे) आर्यपुत्र, ऐसे निष्ठुर महादेव फिर कैसे देवीकी ओर झुके ?

१३. रामः—

स्मरपरिभवनिःसहायदीर्घैरथ सुभगंकरणैरियं तपोभिः।
तदकृत यदसौ निजेऽपि देहे जयति जगत्पतिरात्मना द्वितीयः ॥३२॥

१४. विभीषणः—(सपरिहासम्)—

चिरमनया तपस्सित्वा कपालविषविषधरैकचित्तस्य।
चक्रे हरस्य मूर्तिः फलमर्धं फलदमर्धं च ॥३३॥

१५. सीता—(विहस्य तं प्रति सकौतुकम्) कतरस्मिन्पुनः संनिवेशे भगवत्याः सर्वमंगलायाः पाणिग्रहणमंगलमासीत्।

१६. विभीषणः—इदं पुरस्तादोषधिप्रस्थं नाम नगराजनगरम्। अत्र हि—

संप्रदातरि महौषधीमये भूधरे सुखमुवाह पार्वतीम्।
मूढकंकणफणीन्द्रनिर्भयां तारकेश्वरकिशोरशेखरः ॥३४॥

१७. रामः—आं देवि, इहैव—

पितरि निजतुहिनसंपत्कल्पितहेमन्तविभ्रमे गौरी।
निर्मदभुजंगभूषणमभीषणं प्रियकरं भेजे ॥३५॥

१८. सीता—(सस्मितम्) आर्यपुत्र, अप्येतस्मिन्नेव मदनतनुदहनव्यतिकरनिरात्मीयः स्फुटमविश्वसन्त्या गौर्या चन्द्रचूडः संघटितो निजशरीरेण ?

१९. रामः—(विहस्य) आं देवि—

एतस्या हि तुषारभूधरशिरःसीम्नि प्रियार्धेन च,
स्वेनार्धेन च तादृशे पशुपतौ वृत्तेऽर्धनारीश्वरे।
शेषेणार्धयुगेन सप्रहसनं गौरीसखीभिस्तदा,
चक्रेदक्षिणवामयोर्विनिमयादन्योऽर्धनारीश्वरः ॥३६॥

१३. राम—

गौरीने कामदेवके पराजयपर एकाकिनी लम्बे सौभाग्यकारी तपस्याओं-द्वारा ऐसा काम किया, जो कि अपने लोकनाथ (उनके) साथ निज देहमें ही द्वितीय (हो) विराजते हैं ।।३२।।

१४. विभीषण—(परिहासके साथ)—

गौरीने चिरकाल तक तपस्या करके कपालमें विष और सांपके एक-मात्र चित्तवाले, शंकरकी मूर्ति बन फलको आधा और फल देने वालेको आधा कर दिया ।।३३।।

१५. सीता—(विहंसकर कौतूहलके साथ उससे) भगवती सर्वमंगला (गौरी) का विवाहमंगल कौन से स्थानमें हुआ था ?

१६. विभीषण—यह सामने पर्वतराज का नगर ओषधिप्रस्त नामक है। यहीं द्वितीयाके चन्द्रमाके शिरोभूषणवाले शंकरने दाता महौषधिमय पर्वतपर, मुग्ध कंकणरूपी नागराजसे निर्भय पार्वतीको सुखसे व्याहा ।।३४।।

१७. राम—हां देवि, यहीं—

अपने हिमकी सम्पत्तिसे कल्पित हेमन्त ऋतुकी शोभावाले पिताके पास गौरीने, मद-रहित भुजंग के भूषणवाले अ-भयंकर प्रियकरको प्राप्त किया ।।३५।।

१८. सीता—(मुस्कुरा कर) आर्यपुत्र, क्या यहींपर कामदेवके शरीरके दहनके व्यापारसे निःशरीर शिव, साफ विश्वास न करती गौरीके साथ अपने शरीरसे एक हो गये ?

१९. राम—(विहंसकर) हां देवि—

इसी हिमालयके सिरकी सीमापर प्रियाके आधे और
अपने आधेद्वारा इस प्रकार पशुपतिके अर्धनारीश्वर बननेपर,
बाकी दोनों आधोंके साथ मजाक करते गौरीकी सखियोंने,
दाहिने और बायेंको बदलकर दूसरा अर्धनारीश्वर बनाया ।।३६।।

२०. अपिच—

संभोगानतिरिच्यमानविभवो यद्विप्रलम्भो रसस्-,
तद्दिव्यं मिथुनं परस्परपरिस्यूतं नमस्कुर्महे।
एकस्याः प्रतिबिम्बसंभृतविपर्यासे मुहुर्दर्पणे,
सव्यांगस्थितिकौतुकं शमयति स्वामी स यत्रापरः ॥३७॥

२१. विभीषणः—देव,

स्वच्छन्दैकस्तनश्रीरुभयमतमिलन्मौलिचन्द्रःफणीन्द्र-
प्राचीनावीतवाही सुखयतु भगवानर्धनारीश्वरो वः।
यस्यार्धे विश्वदाहव्यसनविसृमरं ज्योतिरर्धे कृपोद्यद्-,
वाष्पं चान्योन्यवेगप्रहृतिसिमसिमाकारि चक्षुस्तृतीयम्
॥३८॥

२२. अपि च—

स्वेदार्द्रवामकुचमण्डलपत्रभंग -
संशोषिदक्षिणकरांगुलिभस्मरेणुः।
स्त्रीपुंनपुंसकपदव्यतिलंघनी वः
शंभोस्तनुः सुखयतु प्रकृतिश्चतुर्थी ॥३९॥

२३. अन्यतश्च दर्शयन्—

आधत्ते दनुसुनुसूदनभुजाकेयूरवज्रांकुर-
व्यूहोल्लेखपदावलीवलिमयैरंगैर्मुदं मन्दरः।
आधारीकृतकूर्मपृष्ठकषणप्रक्षीणमूलोऽधुना
जानीमः परतः पयोधिमथनादुच्चैस्तरोऽयं गिरिः ॥४०॥

२४. रामः—(निर्वर्ण्य सस्मितम्)—

तत्तादृक्फणिराजरज्जुकषणं संरूढपक्षच्छिदा-
धातारुंतुदमप्यहो कथमयं मन्थाचलः सोढवान्?
एतेनैव दुरात्मना जलनिधेरुत्थाप्य पापामिमां,
लक्ष्मीमीश्वरदुर्गतव्यवहृतिव्यस्तं जगन्निर्मितम् ॥४१॥

२०. और भी—

संभोग से न अतिरेक विभववाला जिनका शृंगाररस है,
उस परस्पर सम्मिलित दिव्य जोड़ेको हम नमस्कार करते हैं।
दर्पणमें एकके प्रतिबिम्बके जरा उलटे धारण करनेपर,
जहां वह दूसरा (स्वामी) बामांगकी स्थितिके कौतूहलको शांत करता है ॥३७॥

२१. विभीषण—देव,

स्वच्छन्द एक स्तनकी शोभा युक्त (गौरी), उभय सम्मतिसे मिलते नागराजके यज्ञोपवीतधारी भगवान् अर्धनारीश्वर चन्द्रशेखर, आपको सुखी करें; जिसके आधेमें विश्व जलानेकी आफत फैलानेवाली ज्योति है, और आधेमें, दयासे निकलता आंसू और पारस्परिक वेगके प्रहारसे सिमसिमानेवाला तीसरा नेत्र ॥३८॥

२२. और भी—

पसीनेसे भीगे बायें कुचमण्डलके पत्रांकनको,
सुखानेवाली दाहिने हाथकी अंगुलीमें भस्मकी धूलवाले,
स्त्री-पुरुष-नपुंसक पदोंसे परे
चौथी प्रकृति शम्भुका शरीर तुम्हें सुखी करे ॥३९॥

२३. और दूसरी ओर भी दिखाते—

यह अति उच्च पर्वत मन्दर, दानवनाशककी भुजाके केयूर वज्रांकुर-समूह के विदारणके पदोंकी बलिवाले अंगोंसे आनंदित है।
हम समझते हैं आधार-भूत कूर्मकी पीठके घर्षणसे पतली जड़वाला,
समुद्र मथनसे अधिक ऊंचा हुआ यह पर्वत परे दीख रहा है ॥४०॥

२४. राम—(अच्छी तरह देखकर मस्कुराते)—

वैसे नागराजरूपी रस्सीके घर्षणयुक्त, जमे पंखके छेदने के आघात की चोटको अहो कैसे इस मथनेवाले पहाड़ने बर्दाश्त किया ?
इसी दुरात्माने जलसे इस पापिनी लक्ष्मीको उठाकर,
ईश्वरों (राजाओं) के बुरे व्यवहारोंसे संसारको दुखित बनाया ॥४१॥

२५. सीता:—(सोद्वेगम्) अनेनैव मस्तुशेषीकृतदुग्धसागरेण चन्द्रमुद्धृत्य प्रोषितभर्तृकस्य स्त्रीजनस्योपरि चारहली विस्तीर्णा।

(सर्वे हसन्ति)

२६. विभीषणः—(तदेव रामसूक्तं भावयन्) अहह—

प्रक्षेप्तुमुदधौ लक्ष्मीं भूयोऽपि चलते मनः।
किं तु प्रक्षिप्त एवायं पुनरायाति चन्द्रमाः ॥४२॥

२७. (विमृश्य चाकाशे)—

कस्मैचित्कपटाय कैटभरिपुरःपीठदीर्घालयां,
देवि, त्वामभिवाद्य कुप्यसि न चेत्तत्किंचिदाचक्ष्महे।
यत्ते मन्दिरमम्बुजन्म किमिदं विद्यागृहं यच्च ते
नीचान्नीचतरोपसर्पणमपामेतत्किमाचार्यकम् ॥४३॥

२८. लक्ष्मणः—(सहासम्) हन्त, सुरासुरमल्लभटीतूर्यतालनर्तकी सकलराजकुलखलीकारखर्जुला साहसिकजनसहस्रान्धकार-खेलनखद्योती मधुमथनजीमूतविलासविद्युल्लता किमेव-मुपालभ्यते? इयं हि—

गुणवद्भिः सह संगममुच्चैःपदमाप्तुमुत्सुका लक्ष्मीः।
वीरकरवालवसतिर्ध्रुवमसिधाराव्रतं चरति ॥४४॥

२९. सीता :—(साभ्यसूयमिव) निजदैवदुर्विलासविचारालसो लोको लक्ष्मीदेव्या दुर्यशो वचनानि गायति। (पुरो दर्श-यन्ती) क एष दृश्यते दिवसकूटीकृतज्योत्स्नाविच्छर्द-प्रतिरूपो गिरिः?

२५. सीता—(उद्वेगके साथ) इसी मट्ठेके रूपमें बचे क्षीर-सागरने चंद्रमाको निकाल कर परदेशी प्रोषितपतिकाओंके ऊपर अपना पौरुष जमाया ।

(सब हंसते हैं)

२६. विभीषण—(रामके सुवचनका ख्याल करते)—अहह
लक्ष्मीको फिर समुद्रमें फेंकनेको मन मचलता है,
किन्तु फेंका हुआ भी यह (चंद्र) लौट आता है ।।४२।।

२७. (सोचकर आकाशकी ओर)—
हे देवि, विष्णुके वक्षस्थलपर दीर्घकालसे बसने वाली तुझे अभिवादन कर, यदि क्रुद्ध न हो, तो कपटके बारेमें कुछ कहता हूं ।
तेरा मंदिर कमल है, क्या यह तेरा विद्यागृह है ?
नीचसे नीचके पास पानीका जाना यह क्या (तेरी) निपुणता है ।।४३।।

२८. लक्ष्मण—(परिहासके साथ) हन्त, देवासुर मल्ल-भटोंके वाद्यके तालपर नाचनेवाली, सारे राजवंशोंके निपातनकी खुजलीवाली, हजारों साहसी जनोंके शस्त्रोंके अन्धकारमें खेलनेवाली, मुरारि रूपी मेघकी बिजलीको क्यों इस तरह ताना देते हैं ? यह—
गुणवानोंके साथ संगम और उच्च पदके पानेमें उत्सुक,
वीरोंकी तलवारपर बसनेवाली लक्ष्मी निश्चय ही असिधारा-व्रतका पालन करती है ।।४४।।

२९. सीता—(खिन्न सी) अपने भाग्यकी विडंबनाका विचार न करते लोग लक्ष्मीदेवीका अपयश गाते हैं । (सामने दिखलाती) दिनका शिखर बना, प्रकाश-समूहकी यह प्रतिमूर्ति कौन सा पहाड़ दिखाई देता है ?

३०. विभीषणः—देवि,

सोऽयं कैलासशैलः स्फटिकमणिभुवामंशुजालैर्ज्वलद्भिर्,
छाया पीतापि यत्र प्रतिकृतिभिरुपस्थाप्यते पादपानाम्।
यत्रोपान्तोपसर्पत्तपनकरधृतस्यापि पद्मस्य मुद्रां,
उद्दामानो दिशन्ति त्रिपुरहरशिरश्चन्द्रलेखामयूखाः ॥४५॥

३१. रामः—हन्त, शतधा दृश्यमनोऽपि न चक्षुरकौतुकं करोति।
गिरिः कैलासोऽयं दशवदनकेयूरविलसन्,
मणिश्रेणी पत्राङ्कुरमकरमुद्राङ्कितशिलः।
अमुष्मिन्नारुह्य स्फटिकमयशार्वागविमले,
निरीक्षन्ते यक्षाः फणिपतिपुरस्यापि चरितम् ॥४६॥

३२. अपि च—

दशमुखभुजमण्डलीनां दृढपरिपीडितपीतमेखलोऽयम्।
जलगृहकवितर्दिकासुखानि स्फटिकगिरिर्गिरिशस्य निर्मि-
मीते ॥४७॥

३३. विभीषणः—(सीतां प्रति) देवि, दृश्यन्ताममी—

कैलासाद्रितटीषु धूर्जटिजटालंकारचन्द्रांकुर-
ज्योत्स्नाकन्दलिताभिरिन्दुदृषदामद्भिर्नदीमातृकाः।
गौरीहस्तगुणप्रवृद्धवपुषः पुष्यन्ति धात्रेयका-
भ्रातृस्नेहसहोढषण्मुखशिशुक्रीडासुखाः शाखिनः ॥४८॥

३४. अपि चास्य नित्यमधित्यकावासी परमेश्वरः—

सहस्राक्षैरंगैर्नमसितरि नीलोत्पलमयीम्-,
इवात्मानं मालामुपनयति पत्यौ मखभुजाम्।

३०. विभीषण—देवि,

सो यह कैलास पर्वत है, जहां स्फटिक-मणिकी भूमियोंकी धधकती किरणों द्वारा वृक्षों की छिपी हुई छाया भी प्रतिमूर्तियों से उपस्थित की जाती हैं। जहां पासमें पहुंची सूर्य-किरणोंसे धारित भी पद्मकी मुद्रा को, त्रिपुरारिके सिरके चन्द्रमाकी उद्दाम किरणें प्रकट करती हैं ॥४५॥

३१. राम—हन्त, सौ बार देखनेपर भी यह नेत्रको कौतूहलहीन नहीं बनाता।—

रावणके केयूरमें शोभते मणियोंके पत्रांकुरमें,
मकरकी मुद्रा से अंकित शिलावाला यह कैलासपर्वत है।
इस स्फटिकमय सर्वांग-विमलके ऊपर चढ़कर,
यक्ष लोग नागराजके नगरकी वातोंका निरीक्षण करते हैं ॥४६॥

३२. और भी—

रावणके भुज-समूहोंके द्वारा चारों ओर जोरसे दबाई पीली मेखलाओं-वाला, यह स्फटिकगिरि शंकरके लिये जलगृहकी वेदीके सुखका निर्माण करता है ॥४७॥

३३. विभीषण—(सीतासे) देवि, इन्हें देखें—

कैलासपर्वतके किनारोंपर शंकरकी जटाके आभूषण चंद्रलेखाकी,
ज्योत्स्नासे द्रवित चंद्रकान्तके जलोंकी नदीकी भूमिवाले,
गौरीके हाथके गुणोंसे बढ़े शरीरवाले,
दूधभाइके स्नेहके साथ कार्तिकेयकी वाल-क्रीड़ा द्वारासे (ये) बढ़े वृक्ष फूल रहे हैं ॥४८॥

३४. और भी, इस कैलासकी अधित्यकामें शंकर नित्य रहते हैं—
जब देवेंद्र सहस्र आंखों और अंगोंसे नमस्कार करते
अपने को नीलकमलमयी मालाकी तरह भेंट कर रहे थे,
और कुमार क्रीड़ाके आग्रहसे उसे पकड़नेकी इच्छा कर रह थे,

जिघृक्षौ च क्रीडारभसिनि कुमारे सह गणैर्-,
हसन्वो भद्राणि द्रढयतु मृडानीपरिवृढः ॥४९॥

३५. किं च—

यन्त्राट्यभ्रमिघूर्णमानवसुधाचक्राधिरूढे भृशं,
मेरौ पार्श्वनिविष्टवासरनिशाचक्रे परिभ्राम्यति।
तैजस्यस्तडितो भवन्तु शतशो दृष्टा हि जाताः कथं,
तामस्योऽपि स वः पुनातु जगतामन्तेष्टियज्वा विभुः ॥५०॥

३६. लक्ष्मणः—

जयति परिमुषितलक्ष्मा भयादनुपसर्पतेव हरिणेन।
इह केसरिकरजांकुरकुटिला हरमौलिविधुलेखा ॥५१॥

३७. सीता—(सपरिहासम्) एतस्य दंदशूकनरकरोटिमुण्ड-मालामण्डनस्य श्मशानवासिनो भूषणतेव रोहिणीवल्लभस्य कलंकः।

३८. विभीषणः—(विहस्य) शंके भगवानपि न मृगांकमलंकारकामः कलयति। तथा हि—

सहचरपिशाचपरिषत्प्रसत्तये कामचारतो रजनीम्।
कारयितुमिव कपाली शिरसि निशाकरमयं वहति ॥५२॥

(सर्वे हसन्ति)

३९. रामः—(सबहुमानम्)—

श्रीकण्ठस्य कपर्दबन्धनपरिश्रान्तोरगग्रामणी-
संदष्टां मुकुटावतंसकलिकां वन्दे कलामैन्दवीम्।
या बिम्बप्रतिपूरणाय परितो निष्पीड्य संदंशिका-
यन्त्रेणेव ललाटलोचनशिखिज्वालाभिरावर्त्यते ॥५३॥

(पुष्पकं प्रति) विमानराज, मनागुन्नम्यताम्। आलोकयतु मैथिली सुमेरुशिखराणि।

उस समय गणोंके साथ हंसते गौरीको आलिंगन करनेवाले शंकर तुम्हारा मंगल करें ।।४९।।

३५. और क्या—

जिसके नाट्यके चक्करमें घूमती वसुधा मंडल पर आरूढ़,
पास स्थापित रात-दिनके चक्रवाले परिभ्रमण करते मेरुपर,
देखी शतशः तेजोमयी विजलियां हुई कैसे तामसी हुई,
वह संसारके अन्त्येष्टि यज्ञ करनेवाले शंकर तुम्हें पवित्र करें ।।५०।।

३६. लक्ष्मण—

भयसे पास न आते हरिन द्वारा चुराये लक्षणवाली,
केसरीके नखके अंकुर जैसी कुटिल शंकरके सिरकी निष्कलंक चन्द्रलेखा की जय हो ।।५१।।

३७. सीता—(परिहासके साथ) सर्प-नर-कपाल-मुंडमालाके मंडनवाले इन श्मशानवासीका ही भूषण है चन्द्रमाका कलंक ।

३८. विभीषण—(विहंसकर) मुझे सन्देह है, कि आभूषणकी इच्छासे भगवान् चन्द्रमाको नहीं धारण करते, क्यों कि—

साथी पिशाच-परिषद्की प्रसन्नताके लिये स्वेच्छासे रात्रिके
बनानेकेलिये मानो यह कपाली (शंकर) सिरपर चन्द्रमा धारण करते हैं ।।५२।।

(सब हंसते हैं)

३९. राम—(आदरके साथ)—

जटाके बांधनेसे दबी नागराज द्वारा डंसी गई,
कली सी शंकरकी मुकुट-भूषणरूपी चन्द्रकलाकी मैं वंदना करता हूं ।
जो कि बिम्बको पूरा करनेकेलिये चारों ओरसे संडसी से
दबा कर ललाटके नेत्रकी अग्नि-ज्वालाओं द्वारा पलटाई जा रही है ।।५३।।

(पुष्पकसे) विमानराज, जरा सा ऊपर हो, जिसमें मैथिली सुमेरुके शिखरोंको देख सकें,

४०. विभीषण:—(सीतां प्रति) देवि, पश्य, पश्य-

मेरोर्मेदुरयंति संमदमधः संपातिभिर्ज्योतिषां,
आटोपैर्विटपो परिस्थिततरुच्छायाभृतोऽधित्यकाः।
निष्पीतासु च मासि मासि विबुधैरिन्दोः कलासु क्रमाद्,
उद्दामप्लवमानलांछनमृगच्छिन्नाग्रदर्भांकुराः ॥५४॥

४१. लक्ष्मण:—(सीतां प्रति)—

एतासु पर्वतनितम्बतटीषु पश्य,
मध्यंदिनेऽपि हरिचन्दवाटिकेयम्।
पक्षस्थितद्युमणिविम्वतयातिदीर्घ-
च्छयावितानमधुरा मुदमादधाति ॥५५॥

४२. अपि च—

भूमेः स्वर्णतया फलोत्तरतरुस्मेरस्य मेरोस्तटी-
सीमन्तोऽयमनूरुसारथिरथप्रस्थानघण्टापथः।
अस्मिन्नुद्ध्रियते कथंचन हयैरुद्दामचंडातप-
ज्वालाजालविलीनकांचनशिलाजम्बालमग्नः प्रधिः ॥५६॥

४३. (निरूप्य च सहर्षस्मितम्) कथमुपर्युपरि पुष्करावर्तका-
नभ्रमुबल्लभः! (विमृश्य)—

अद्यायं विबुधेन्द्रबान्धववधूसंभुक्तसंतानक-
स्रग्दाम्नीममरावतीं विहरते निर्वैरमैरावणः।
यं दोर्मात्रपरिच्छदो युधि मुदोत्क्षिप्य प्रतीच्छन्मुहुः,
संतेने दशभिर्निजैरपि मुखैः सांराविणं रावणः ॥५७॥

४४. सुग्रीव:—सत्यमगोचरो गिरां दशकण्ठक्रीडितानि—

एकैके निवसन्ति ते भुजभृतः कस्मै निगृह्णामहे,
वीरक्षेत्रमियं पुनर्वसुमती पौलस्त्यमाविभ्रती।

४०. विभीषण—(सीतासे) देवि, देखो, देखो—

नीचे गिरते तेजके समूहोंसे वृक्षोंके ऊपर स्थित वृक्ष छायाको
धारण करनेवाली मेरुकी उच्चस्थलियां आनंद बढ़ा रही हैं।
जो कि महीने-महीने देवताओं द्वारा पी जाती इन्दुकी कलाओंमें क्रमसे,
तीव्र तिरते लांछन-मृगके चरे कुशके अंकुरोंवाली हैं।।५४।।

४१. लक्ष्मण—(सीतासे)—

देखो, पर्वत-नितम्बके इन तटोंपर
दोपहरको भी यह हरिचन्दनकी वाटिका,
पासमें स्थित सूर्यबिम्बके होनेसे अतिदीर्घ
छायारूपी वितानसे मधुर हो आनंद पैदा कर रही है।।५५।।

४२. और भी—

भूमिके सुनहली होनेसे फल-प्रधान वृक्षोंसे हंसते मेरुतट की रेखावाला
सूर्यके-रथके चलनेका यह राजमार्ग।
यहां अतितीव्र सूर्य-ज्वालाके जालोंमें विलीन सुवर्णशिलाकी
कीचड़में डूबे चक्कोंको घोड़े जैसे-तैसे कठिनाई से खींच रहे है।।५६।।

४३. (देखकर और हर्ष-मुस्कानके साथ) क्या मेघोंके ऊपर-ऊपर **ऐरावत**?
(सोचकर)—

आज यह ऐरावत इन्द्रके बान्धवोंकी बधुओंके उपभोगके देव-द्रुम
की मालावाली **अमरावतीमें** निर्द्वन्द्व होकर बिहार कर रहा है।
जिसे बाहु-मात्र हथियारयुक्त **रावण** युद्धमें
अपने ऊपर फेंक कर दसों मुहोंसे खुशीसे चिल्लाता रहा।।५७।।

४४. सुग्रीव—रावणके खेल सचमुच ही कहनेमें नहीं आ सकते—
वे एक-एक बाहुधारी निवास करते हैं, हम किनको पकड़ें।
फिर वीरोंका क्षेत्र यह धरती रावणको धारण करती है।
वाली के ललकारनेपर इसको जो किया, उसे नजर से

वाली स्वाह् वयमानमेनमपि यच्चक्रे कृते चक्षुषा,
पश्यामः श्रवसी कृते च शृणुमस्तद्बवतुमल्पे वयम् ॥५८॥

४५. राम :—(सबहुमानम्)—

स किं वाच्यो वाली भुजकुलिशमूलेन दशतो
दशग्रीवं यस्य प्रतिजलधि संध्याविधिरभूत्।
कथं वा निर्वाच्यः स च दशमुखो यस्य दमने,
मनागासीद्वालिव्ययचरितमेवोपकरणम् ॥५९॥

४६. सीता—(रामं प्रति) आर्यपुत्र, किं पुनरेतद्दलितकर्पूरशलाकाखण्डगौरं गगनांगणे दृश्यते ?

४७. विभीषणः—(सीतां प्रति) देवि, चन्द्रलोकोपकण्ठमधिरूढो विमानराजः। दृश्यतां च भगवानयम्—

यं प्राक्प्रत्यगवागुदञ्चि ककुभां नामानि संबिभ्रतं,
ज्योत्स्नाजालझलंझलाभिरभितो लुम्पन्तमन्धं तमः।
प्राचीनादचलादितस्त्रिजगतामालोकबीजाद्बहिर्,
निर्यान्तं हरिणांकमंकुरमिव द्रष्टुं जनो जीवति ॥६०॥

४८. अपि च—

स श्रीकण्ठकिरीटकुट्टिमपरिष्कारप्रदीपांकुरो,
देवः कैरवबन्धुरन्धतमसप्राग्भारकुक्षिंभरिः।
संस्कर्ता निजकान्तिमौक्तिकमणिश्रेणीभिरेणीदृशां,
गीर्वाणाधिपतेः सुधारसवतीपौरोगवः प्रोदगात् ॥६१॥

४९. अपि च—

प्राणायामोपदेष्टा सरसिरुहवने यौवनोन्मादलीलागोष्ठीनां पीठमर्दस्त्रिभुवनवनितानेत्रयोः प्रातराशः।
कामायुष्टोमयज्वा शमितकुमुदिनीमौनमुद्रानुरागः,
शृंगाराद्वैतवादी विभवति भगवानेष पीयूषभानुः ॥६२॥

हम देखते और कानमें से सुनते हैं, पर थोड़ा कहनेमें भी असमर्थ हैं ।।५८।।

४५. राम—(आदरके साथ)—

उस बालीके बारेमें क्या कहना, जिसने बाहुके बज्र मूलसे दबाते
रावणको इस समुद्रकी ओर फेंक कर संध्या-वंदन किया।
दशमुख के बारेमें भी कैसे कहा जाय, जिसके दमनमें
बालीका मारना भी थोड़ा सा साधन था ।।५९।।

४६. सीता—(रामसे) आर्यपुत्र, आकाशमें चूरा किये कपूरकी शलाकाके टुकड़े सा सफेद यह क्या दिखलाई दे रहा है?

४७. विभीषण—(सीतासे) देवि, विमानराज चन्द्रलोकके पास चढ़ गया है। और इन भगवान्‌को देखें—

पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिणकी दिशाओंको धारण करते,
प्रकाश-जालसे जगमगाते चारों ओर घोर अन्धकारको दूर करते,
तीनों लोकोंके आलोकके बीज, इस उदयाचलसे,
बाहर निकलते जिस चन्द्रको अंकुरकी तरह देखते लोग जीते हैं ।।६०।।

४८. और भी—

वह शंकरके किरीटके चौतरेंकी सजावटके दीपककी टेम,
कमलिनीके प्रिय देव, घोर अंधकार रूपी पहाड़को कोखमें धारण करनेवाले, अपनी कान्तिरूपी मुक्ता-मणियों द्वारा मृगनयनियोंको सजानेवाले इन्द्रके अमृत-भोजनालयका मुख्य रसोइया (चंद्र) उग गये ।।६१।।

४९. और भी—

प्राणायामके उपदेष्टा, कमलवनोंमें यौवनके उन्मादकी क्रीड़ा-गोष्ठियोंके विदूषक, तीनों लोकोंकी बनिताओंके नेत्रोंके कलेवा,
कामकी आयु, यज्ञके यजमान, कुमुदिनीकी मौन मुद्राके हटानेके अनुरागी, शृंगारके अद्वैतवादी यह भगवान् सुधाकर शोभ रहे हैं ।।६२।।

५०. लक्ष्मणः—(विलोक्य सकौतुकम्)—
कर्णोत्तंसयवांकुरं करतले कृत्वा हसित्वा मिथः,
संहूतः पुरुहूतपौरयुवतीवर्गेण कौतूहलात्।
ग्रासार्तिक्षुभितोऽयमंकहरिणः कुर्वीत किं किं कला-
कन्थामिन्दुमयीमजस्रघटनोद्घाटश्लथावस्थिताम्।६३॥

३९. त्रिविक्रम (९१५ ई०)

गद्य-पद्य मिश्रित काव्यको चम्पू कहा जाता है। अपभ्रंश-कालमें ही इस कविताकी शैलीका प्रचार बढ़ा। बहुतसे चम्पू लिखे गये हैं, जिनमें सबसे उत्कृष्ट त्रिविक्रमका "नलचम्पू" है। राष्ट्रकूट-वंशके राजा द्वितीय कृष्णके पौत्र जगत्तुंगके पुत्र इन्द्रराजके दरबारी भट्ट त्रिविक्रम थे। कविके पिताका नाम देवादित्य और दादाका नाम श्रीधर था, जो शांडिल्यगोत्री

नलचम्पू[1]

(१) दक्षिणापथ—

१. अस्तिविस्तीर्णमेदिनीमण्डलमण्डनायमानो नगनगरपुर-विहारारामरमणीयः, सीतासहायसंचरितरघुपतिपाद-पद्मपवित्रारण्यः, पुण्यतरतरंगगंगागोदावरीवारिवारि-तदुरितदावानलप्रसरः, मन्दर इव बलिराजजनितपरिवर्तनः कैलास इव महेश्वरलोककृतवसतिः, मेरुरिव सुवर्णप्रकृ-तिकमनीयोः, यदुवंश इव दृष्टशूरपुरुषावतारः, सोमान्वय इव बुधप्रधानोः, वेदपाठ इवानेकैः सवनैरुपेतः, पर्वते पर्वते स्थाणुभिः, पुरे पुरे पुराणपुरुषैः, जले जले कमलोद्-भवैः, पदे पदे देवकुलैः, वने वने वरुणैः, स्थाने स्थाने नन्दनो-

१ काशी संस्कृत सिरीज, बनारस १९३२

५०. लक्ष्मण—(देखकर कौतूहलके साथ)—

कर्णभूषणवाले जौके अंकुरको हाथमें ले आपसमें हंसकर,
इन्द्रके नगरकी युवतियों ने कुतूहलके साथ जिसे बुलाया,
भूखसे क्षुभित यह मयंक निन्तर घटने-बढ़नेसे,
थकावटवाली इन्दुमयी किन-किन कलाओंकी कथरी बनाये ।।६३।।
—अंक ७

३९. त्रिविक्रम (९१५ ई०)

आनें थे। इन्द्रराजने राज्याभिषेकके समय ब्राह्मणोंको सुवर्ण तुलादान दिया था, जिसका उल्लेख बरारके नौसारी ग्रामसे मिले ९१५ ई० के अभिलेखसे मिलता है। इस अभिलेख (प्रशस्ति) के लेखक त्रिविक्रम भट्ट थे। नलचम्पू उत्कृष्ट काव्य है। बाद के चम्पू लेखक त्रिविक्रमके पास तक नहीं पहुंच सके। अपभ्रंशके अन्तिम कालके महाकवि श्रीहर्षने भी "नव-साहसांकचरित" के नामसे एक चम्पू लिखा था, जो अब प्राप्य नहीं है।

नलचम्पू

१. दक्षिणापथ—

१. है विस्तृत पृथिवीमंडलका आभूषणसा पर्वत-नगर-पुर-बिहार और आरामोंसे रमणीय, सीताके साथ रघुपतिके चरणकमलके चलनेसे पवित्र अरण्यवाला, पवित्र तरंगोंवाली गंगा-गोदावरीके जलसे निवारित पापरूपी दावानलके प्रसारवाला, मन्दरकी तरह बली राजा द्वारा घुमाया, कैलासकी तरह शंकरके लोगोंकी बस्ती बना, मेरुकी तरह सुवर्णकी प्रकृति द्वारा कमनीय, यदुवंशकी तरह शूर पुरुषोंके अवतारको देखे, सोमवंशकी तरह बुध (ग्रह, विद्वानों) जैसे प्रधान पुरुषवाला, वेद-पाठकी तरह अनेक सवनों (सोम छाननों) से युक्त, पर्वत-पर्वत में स्थाणुओं (शंकरकी) मूर्तियों द्वारा, पुर-पुरमें पुराण-पुरुषों (वृद्धजनों या विष्णु) द्वारा, जल-जलमें कमलोद्भवों (रम्भा या कमलोंकी उत्पत्ति) द्वारा, पद-पदपर देवालयों, वन-वनमें वरुणों,

ध्यानै:, अर्गल: स्वर्गस्य, तापीप्रायोऽप्यनतपापो जनस्य, विन्ध्याद्रिमुद्रितायां दिशि देशानामुत्तरोऽपि दक्षिणो देश: ।

२. यत्र, शास्त्रे शस्त्रे च वेदे वैद्ये च भरते भारते च कल्पे शिल्पे च प्रधानो, धनी, धन्यो, धान्यवान्, विदग्धो वाचि, मुग्धो मुखे, स्निग्धो मनसि, वसति निरन्तरमशोको लोक: ।

३. यत्र, क्रुद्धधूर्जटिललाटलोचनानलज्वालाकवलनाकुल:-, त्रासादपांगावलोकनमात्रनिर्जितपरमेश्वरमनसां विलासिनीनामुच्चकुचकुम्भयो: शृंगारसर्वस्वम्, अधरपल्लवेषु मधु, भ्रूभंगेषु, धनु:, कटाक्षेषु पुष्पबाणान्निधाय निलीनोंऽगेषु जघनस्थलस्थापितरतिर्मकरकेतन: ।

४. यासां तारुण्यमेव सर्वांगेषु शोभार्थमाभरणम्, उत्तुंगस्तनमण्डललावण्यमेव मुखकमलावलोकनाय दर्पण:, तारतरनयनकान्तिरेव मुखमण्डलमण्डनाय चन्दनललाटिका, भ्रूभंगा एव विभ्रमाय मृगमदपत्रभंगा:, कटाक्षा एव युवजनजयाय परमास्त्राणि, बन्धूककुसुमकान्तिदन्तच्छद एव लोकलोचनमनोमोहनाय माहेन्द्रमणि:, मुखकमलपरिमलागतमधुकरमधुरझंकार एव विनोदाय वीणाध्वनि: ।

५. किं बहुना—

ता एव निर्वृतिस्थानमहं मन्ये मृगेक्षणा: ।
मुक्तानामास्पदे येन तासामेव स्तनान्तरम् ॥२६॥

(वृक्षों या वरुण देवता), स्थान-स्थानपर नंदनोद्यानों (आनंददायक बगीचों या देवोद्यानों) द्वारा स्वर्गके अर्गल (कपाट) की तरह, तापी (ताप्ती या तपानेवाली) प्रायः भी जनोंके लिये, तापरहित, विंध्य पर्वत द्वारा आनंदित, दिशामें देशोंमें अनुपम उत्तम (उत्तर, उत्तम) दक्षिणदेश।

२. जहां, शास्त्र, शस्त्र, वेद, वैद्य, भरत, भारत, कल्प और शिल्पमें प्रमुख धनी, धनधान्यवाले, बोलनेमें चतुर, मुखपर भोले, मनमें स्नेहयुक्त, सदा शोकरहित लोग बसते हैं।

३. जहां, (कामदेव) रहता है (जो) क्रुद्ध शंकरके ललाट-लोचनकी ज्वाला-के ग्रास करनेसे व्याकुल, भयसे नेत्रों द्वारा अवलोकन मात्रसे शंकरके मनको जीतनेवाली रमणियोंके उच्च स्तनकुंभोंके शृंगारके सर्वस्व, अधर-ओष्ठ-पल्लवोंमें मधु, तिरछी भौंओंमें धनुष, कटाक्षोंमें पुष्पबाणों (फूलरूपी बाण या कामदेव) को रखकर अंगोंमें विलीन, जंघा-स्थलमें स्थापित रतिवाला है।

४. जहां है स्त्रियोंकी तरुणाई ही सारे अंगोंमें शोभाके लिये आभूषण, उच्च स्तनमंडलका लावण्य ही मुखकमलके अवलोकनके लिये दर्पण, अधिक चंचल नयनोंकी कान्ति ही मुखमंडलके मंडनके लिये चन्दनका ललाट-तिलक, भौंहोंका तिरछा होना ही शोभन कस्तूरीके खिचे पत्र-अंकन, कटाक्ष ही तरुण जनोंके जीतनेके लिये परम अस्त्र, अँड़हुलके फूलकी कान्तिवाले ओठ ही लोगोंके लोचन और मनको मोहनेवाली इन्द्रमणि (लाल), मुखकमलकी गंधसे पास आये भ्रमरोंकी मधुर झंकार ही विनोदके लिये वीणा ध्वनि।

५. अधिक क्या—

मैं समझता हूं, वही मृगनयनियां सुखका स्थान है,
इसलिये उनके ही स्तनोंके बीच मोतियोंका निवास-स्थान है ॥२६॥

६. मन्ये च, ताभिरेव विविधकलाकुम्भीभिः कुम्भोद्भवोऽपि भगवान् प्रलोभितो भविष्यति, येनाद्यापि न मुंचति दक्षिणां दिशमेव।

७. अथवा—

देशो भवेत्कस्य न वल्लभोऽसौ,
स्त्रीसंकुलः सुस्थितकामकोटिः।
दग्धैककाम त्रिदिवं विहाय,
यस्मिन्कुमारोऽपि रतिं चकार ॥२७॥

(२) कुंडिनपुरम्—

८. तस्यान्तर्भूतवैदर्भमण्डलस्यालंकारभूतमनाकुलममरपति-पुरप्रतिस्पर्धि परितः परिखाप्रान्तरूढप्रौढहृद्योद्यानमाला-वलयितमदभ्रशुभ्राभ्रंलिहप्रासादशिखरशिखाभोगभग्न-रविरथतुरंगवेगम्, एकत्राग्निहोत्रमन्त्रपवित्राहुतिहृतसमस्त समस्तदिव्यान्तरिक्षभौमोत्पातसंघातैः कृतमन्युभिरपि मन्युशून्यैः, उक्तसूक्तैरपि निरुक्तपरैः, सन्मार्गस्थैरपि गृहस्थैः, सकलत्रैरपि ब्रह्मचारिभिः, अभ्यस्ततिथिभिरप्य-तिथिकुशलैः, सामप्रयोगप्रधानैरपि दण्डावलम्बिभिः, शल-पथानुसारिभिरप्येकमार्गैः, ब्राह्मणैरध्यासितम्।' एकत्र कुरुभिरिव द्रोणपुरःसरैः, प्रासादैरिव तुलाधारिभिः, नैयायिकैरिवानुमेयानुमाननिपुणैः, वैशेषिकैरिव द्रव्यानुगु-णकर्मविशेषपण्डितैः, वैयाकरणैरिव रूपसिद्धिप्रधानैः रुद्रैरिवानेकग्रन्थिवद्धकपर्दकैः, विपणिवणिग्जनैरधिष्ठितम् एकत्र विटकौलदम्भदीक्षाभिरिव कुचरूपलोभितलोकाभिः कुकविकाव्यपद्धतिभिरिव भग्नयतिगणवृत्ताभिः, निशा-चरीभिरिव रजनिरागिणीभिः, सर्वतोमुखजघनचपला-भिरप्यनार्याभिः, कर्णाटचेटीभिर्भरितम्। एकत्र बालकमिव

६. और मैं समझता हूं, विविध कलाओंकी उन्हीं कुंभियों द्वारा भगवान् कुंभज (अगस्त्य) भी प्रलोभित हैं, जो कि अभी भी (वह) दक्षिण दिशाको नहीं छोड़ते।

७. अथवा—

स्त्रीयुक्त सुन्दर स्थित काम कोटिवाला वह देश किसको नहीं प्रिय होगा, जहां अद्वितीय कामके जले स्थान में स्वर्गको छोड़कर कार्तिकेय भी रति करते हैं ।।२७।।

२. कुंडिनपुर—

८. उस (दक्षिण) देशके भीतर है **विदर्भ**मंडलका अलंकार सा कुंडिन पुर नगर, अव्याकुल (जो कि) इन्द्रपुरसे स्पर्धा करनेवाला, चारों तरफ परिखाओंके किनारे उगे प्रौढ़ मनोहर उद्यानमालासे वेष्ठित, अत्यधिक शुभ्र मेघचुंबी, प्रासाद-शिखरोंकी शिखाकी ऊंचाईयों से सूर्यके रथके तुरंगोंके वेगको भग्न किये। जहां (ऐसे ब्राह्मण बसते थे जो), एक जगह अग्निहोत्रके मन्त्र द्वारा पवित्र आहुतियोंसे सारे दिव्य आकाश और भूमिके उत्पातको नष्ट करते, क्रोध किये भी क्रोध (मन्यु क्रोध या यज्ञ) से शून्य, वेदोंके सूक्तोंके वाचक भी निरुक्त (बिना कहे या निरुक्तशास्त्र) में निष्णात, सन्मार्ग (धर्म या सच्चे मार्गों) पर अवस्थित भी गृहस्थ, सकलत्र (सकलरक्षक या पत्नी-सहित) भी ब्रह्मचारी, तिथिके अभ्यस्त करनेवाले भी (अतिथि, मेहमान) की सेवामें चतुर, **साम** (सामवेद या शान्तिकी नीति) के प्रयोगोंमें प्रधान भी दंड (राजनीतिक दंड या संन्यासियोंके दंड) के अवलम्बन लेनेवाले, **शतपथ** (सौ मार्ग या शतपथ ब्राह्मण) के अनुगामी भी एक मार्गवाले, एक जगह **कुरुओं**की तरह **द्रोण** (द्रोणाचार्य या नापतोल) को आगे किये, प्रासादोंकी तरह तुला (तराजू) धारण करनेवाले, **नैयायिकों**की तरह अनुमेय और अनुमान में निपुण, **वैशेषिकों**की तरह द्रव्यके अनुसार गुण, कर्म, विशेषमें पंडित, **वैयाकरणों**की तरह रूप (रूप या प्रयोग) की सिद्धिमें प्रधान, रुद्रोंकी तरह अनेक गांठोंमें बंधे कपर्दक (जटाजूट या कौड़ी) वाले, बाजारके बनिया लोगोंसे अधिष्ठित। एकत्र लम्पट वाममार्गके पाखंडकी दीक्षाओंकी तरह स्तनों और रूपसे लोभित लोगोंको लुभानेवाली, कुकवि

कुलालाकीर्णम्। एकत्र वृद्धिमिव कुजराजितम्। एकत्र चित्रविद्ययेव प्रवर्धमानसकलशिशुशोभितया विन्यस्त-स्वस्तिकया सर्वतोभद्रभूषणया भवनमालयालंकृतम्। एकत्र नाटकैरिव पताकांकसंधिसंगतैः, दुष्टकिरातैरिव दृष्टकूटकर्मभिः, शस्त्रैरिव सुधारैः, विचित्रैरपि सचित्रैः, सतुलैरप्युतलैर्देवकुलैः संकुलम्। विशालमपि शाला-संपन्नम्, चतुश्चरणसंयुक्तमपि चरणरहितम्, विट्संभृतमपि शुचिमार्गम्, सर्वत्र चत्वराधिकमपि स्थिरप्रकृति मज्जन्महाराष्ट्रकुटुम्बिनीमुखमण्डलविधीयमानोत्फुल्ल-कमलशोभायास्तुंगतरंगरंगत्तरुणार्जुनराजीवराजमान-राजहंसविराजितवारेर्वरदायास्तीरे रामणीयकरसकुण्डं **कुण्डिनं** नाम नगरम्।

९. यस्य नातिदूरे दर्शनदूरीकृतदुरितोपप्लवाऽऽप्लवनजनित-पातकभंगा गंगामुपहसन्ती स्वर्गमार्गाश्रयनिश्रेणी पुण्य-पयाः **पयोष्णी** वहति।

१०. यस्य च पश्चिमदेशे प्रणतसुरासुरमौलिनीलमणिमरीचि-चंचरीकचक्रचुम्बितचरणाम्भोजस्य **भोजकट**कूपजन्मनो जरापातितययातेः प्रचण्डदण्डदाण्डिक्यदण्डनाडम्बरितगण्ड-पाषाणविदलित**वैदर्भ**मण्डलस्य भगवतो **भार्गव**स्याश्रमः।

की काव्य-पद्धतियोंकी तरह यति-गण-वृत्त (छन्दके या यतियोंके आचार) को भग्न करनेवाली, निशाचरियोंकी तरह रातमें अनुराग करनेवाली, चारों ओर जघनचपला (छन्द या पुंश्चली) अनार्याओं (आर्या छन्द रहित या दुष्टा), **कर्नाटकी** दासियोंसे भरा। एक जगह बालककी तरह कुम्हारोंसे आकीर्ण। एक जगह वृद्धिकी तरह वृक्षोंसे राजित (या बुरी जरासे पराजित)। एक जगह चित्रविद्याकी तरह बढ़ते हुये सारे शिशुओंसे शोभित। स्वस्तिक लिखित सर्वतोभद्रके भूषणवाली भवन-पंक्तियोंसे अलंकृत। एक जगह नाटकोंकी तरह पताका-अंक-सन्धिसे युक्त (पताकाओंके लांछन के सम्पर्क-सहित), दुष्ट **किरातों**की तरह दृष्टकूट (देखे पर्वत या कपटमें चतुर) कर्म-वाले, शस्त्रोंकी तरह सुन्दर धारावाले (या चूनेवाले), विचित्र भी सचित्र, तुला-सहित भी अतुल देवालयोंसे संकुल। विशाल भी शाला-ओंसे युक्त, चार चरणोंसे युक्त भी चरण (संचार)-रहित, विटों (लंपटों) से युक्त भी पवित्र मार्गवाला, सर्वत्र बहुतेरे चौतरोंवाला भी स्थिर स्वभाववाला (अधिक त्वरा), स्नान करती **महाराष्ट्री** स्त्रियोंके मुखमंडल द्वारा किये उत्फुल्ल कमल शोभावाली ऊंची तरंगोंके रंगसे तरुण अर्जुन (श्वेत कमल) से विराजमान, राजहंसों-से विराजित पानीवाली **वरदा** नदीके किनारे रमणीय रसोंके कुंड-प्रवाहसा वह कुंडिन नगर था।

९. जिससे थोड़ी दूरपर दर्शनसे पापोंके संकट वहाती पातक भंग करनेवाली गंगाका उपहास करती स्वर्ग-मार्गके आश्रयके लिये सीढ़ी सी **पुण्यजला पयोष्णी** नदी बहती है।

१०. जिसके पश्चिम में प्रणाम करते सुर-असुरके सिरोंकी शिरोमणियों-की किरणरूपी भंवरों द्वारा चुंबित चरणकमलवाले, **भोजकटकूप**-में उत्पन्न, जरा द्वारा गिराये ययाति वाले प्रचण्ड दण्ड द्वारा दांडिक्य राजाके दंडनके आडम्बरयुक्त गंड पत्थरसे चूर करनेवाले **विदर्भ-मंडल**के भगवान् भार्गव (परशुराम) का आश्रम है।

११. यत्र च विपत्त्राः सन्ति साधवो न तु तरवः, विजृम्भमाणकमलानि सरांसि न जनमनांसि, कुवलयालंकाराः क्रीडादीर्घिका न सीमन्तिन्यः, विपदाक्रान्तानि सरित्कूलानि न कुलानि।

१२. किं बहुना—

देशानां दक्षिणो देशस्तत्र वैदर्भमण्डलम्।
तत्रापि वरदातीरमण्डलं कुण्डिनं पुरम्॥२८॥

—उच्छ्वासः २

(३) कुमारायोपदेशः—

१३. अस्ति च तस्य नरपतिसूनोः समानशीलवयो विद्यालंकारकान्तिकलापपरिपूर्णदेहः शरीरमात्रद्वितीयोऽप्यद्वितीयहृदयमेकं जीवितमपर उच्छ्वासः सालंकायनसूनुः श्रुतशीलो नाम मन्त्री मित्रं च।

१४. एकदा तु पूर्वदिग्वधूकुंकुमपंकपल्लवितवदनागमाने निरुद्धान्धतमसि सौगन्धिकबन्धुनि बन्धूककुसुमारुणे वियति तरतीव तरुणतरे तरणिमण्डले, मण्डयति कुसुम्भकुसुमकेसरप्रकरायमाणे गगनांगणमम्भोजमुकुलनिद्रामुपि रोचिषां चये, चलिते च विचरितुमुपवनतरुराजिकर्णोत्पले निद्राविरामविधुतपक्षे पक्षिकुले, कृतप्राभातिककर्मणः सभांगणमण्डपमध्यवर्तिनो दत्तसेवावसरस्य राज्ञः प्रविष्टे, मन्त्रिणि सालंकायने, प्रणामपर्यस्तकर्णोत्पलधवलितसभांगणे यथासनमुपविष्टे प्रस्तुतसेवालोपरंजितराजनि राजन्यचक्रे, प्रक्रान्ते शास्त्रीयविनोदे, श्रुतशीलेन सममन्यैश्च क्रीडासहायैरनुचरैरनुगम्यमानो नलः सेवासुखमनुभवितुमागतवान्।

११. जहां विपत्र (बिना पत्र या विपद) से रक्षा पानेवाले वृक्ष होते हैं, साधु नहीं; फूलते कमलोंवाले (या फैलते मलवाले) सरोवर होते हैं, न कि लोगोंके मन, कुवलय (कमल या खराब वलय) भूषणवाली क्रीड़ा पुष्करणियां, न कि महिलायें; पक्षियोंके चरण (या विपत्ति से आक्रान्त) होते हैं नदियोंके तट, न कि कुल।

१२. अधिक क्या—

देशोंमें उत्तम है **दक्षिणदेश**, और वहां भी **विदर्भमंडल**।
वहां भी **वर्धा** नदीके तटके मंडलवाला कुंडिनपुर।।२८।।

—उच्छ्वास २

३. कुमार के लिए उपदेश—

१३. उस राजपुत्र का एक समान शील-आयु-विद्यारूपी अलंकार कान्तिके समूहोंसे परिपूर्ण देहवाला, शरीर मात्रसे दूसरा भी अद्वितीय हृदयवाला, जीवनकी दूसरी स्वाँस सा सालंकायन-पुत्र श्रुतशील नामक मन्त्री और मित्र था।

१४. एक बार प्रातःकाल (था, जबकि) आकाशके पूर्व दिशारूपी वधूका मुख केसर-पंकसे पत्रांकित[1] (था), मुखसे अन्धकार निरुद्ध था, सौगंधिक बंधुवाला था और उसमें अडहुलके फूलके समान अतितरुण अरुण सूर्यमंडल तैरसा रहा था। (जो सूर्य) कुसुमके फूलकी केसर बिखेरता आकाशके आंगनको मंडित करता, कमलकी कलियोंकी निद्राकी चोर किरणोंसे युक्त (था)। और जब उपवनकी तरुपंक्तियोंके कर्ण-कमलों जैसे, निद्रा समाप्तकर कँपित पंख (कंपाते) पक्षी विचरणके लिये चल रहे थे। (जब) प्रातःकालीन कर्म समाप्त कर सभाके आंगनके मंडपमें वर्तमान, सेवाका अवसर देते राजा का मन्त्री **सालंकायन** प्रविष्ट हुये। (जब) प्रणामके लिये फैले करकमलोंसे सफेद हुये सभाके आंगनमें अपने-अपने आसनके अनुसार सेवासे राजाको प्रसन्न किये राजन्य लोग बैठ गये। (जब) शास्त्रीय विनोद शुरू हो गये। (तब) श्रुतशील और दूसरे (बाल-) क्रीड़ाके मित्रों, अनुचरों को पीछे लिये **नल** सेव-सुखको अनुभव करनेके लिये (वहां) आये।

---

१ चंदन से खोर बनाया

१५. आगत्य च क्षितितलमिलन्मौलिमण्डलः प्रणम्य पितुः पादारविन्दद्वयमदूरदत्तमासनं भेजे।

१६. उपविष्टे च तस्मिन्ननभिवादनादुत्पन्नमन्युरीपत्कोपकम्पितकरपरामृष्टकूर्चाग्रिमग्रन्थिरग्रणीर्मन्त्रिमण्डलस्य भ्रूभंगभीषणया शोणकोणान्तरतरत्तरलतारया दृशाऽभिमुखमस्य सालंकायनः प्रणयपरुषाक्षरमभाषत।

१७. कुमार, राजहंसोऽपि अहंसरूप इति मा स्म मोहवान्भूः। अनुभवति च मूढः शस्त्रसंघात इव कोशशून्यताम्। अविभवः पुरुषो मेष इव कम्बलस्योपयोगं गच्छति।

१८. प्रद्युम्नजातोऽपि बाणयुद्धव्यतिकरकारिण्या सदोषया यौवनावस्थया निरुद्धोऽनिरुद्ध इव को नाम न क्लेशमनुभवति ?

१९. तत् तात, सुविषमेघवर्तिनि विद्युद्विलास इवास्थिरे स्थितस्तारुण्ये मा स्म विस्मर स्मयेन विनयम्।

२०. अविनीतोऽग्निरिव दहति। अजातनयश्छाग इव नाभिनन्द्यते जनेन।

किं च ब्रूमः—

२१. सुसहायशून्यस्य भवतो यस्यामीमांसाभियोगा राक्षसा इव, अन्यायाः पारदारिका इव, अयोगक्रिया लोकहारा इव, अश्रुतागमाः शोकवेगा इव सहायाः।

२२. न च ते दुःशिक्षितनृपकलभव्याकरणमार्गेषु निपुणा नर्तकीव मित्रमण्डली।

तदायुष्मन्नहितया प्रकृत्या भुजंग इव भयाय लोकस्य, उग्रसेनः कंसानुरागं जनयेत्।

१५. आकर (नल) पृथिवीतलसे शिरोमुकुटको छू पिताके दोनों चरणारविन्दोंको प्रणाम कर पासमें दिये आसनपर विराजमान हुये।

१६. उनके बैठ जानेपर अभिवादन न करनेसे थोड़ेसे कुपितसे (हुये) कंपित हाथसे डाढ़ीकी अगली गांठको छूते भौं तिरछी करनेसे भीषण लाल कोनेवाली भीतर तिरती चंचल पुतलीवाली दृष्टिसे उनके सामने मंत्रिमंडलके प्रमुख **सालंकायन**ने प्रेमसे कठोर अक्षरवाली (बात) कही।

१७. "कुमार, राजहंस भी अहंस रूप होता है, इसलिये मोहमें न पड़ो। मूढ़ (आदमी), शस्त्र समूहकी तरह कोश के खाली होने को अनुभव करता है।

बिना विभववाला पुरुष मेषकी तरह कम्बल वस्त्र (या किस बलके) उपयोगको प्राप्त होता है।

१८. **प्रद्युम्न**से उत्पन्न (कामवश) भी **बाण** (असुर के) युद्धके क्लेशके करनेवाली दोषयुक्त यौवनावस्थासे **अनिरुद्धकी** तरह कौन नहीं क्लेशको अनुभव करता?

१९. सो तात, मेघमें रहनेवाली बिजलीकी चमककी तरह अस्थिर अति विषयुक्त तरुणाईमें, स्थित (तुम) उपहास करते विनयको न भूलो।

२०. अविनीत (विनयहीन), अग्निकी तरह जलता है, अजातनय (बकरी का बच्चा या विनयहीन) बकरे की तरह जनों द्वारा अभिनंदित नहीं होता।

और क्या कहूं —

२१. आप सुन्दर मित्रसे रहित हैं, जिसके **अमीमांसा** (अविचार या मीमांसा में अभिलाप) से योग राक्षसोंकी तरह, **अन्याय** (न्याय-रहित या अन्यस्त्रीगमन) परस्त्रीगामियोंकी तरह, लोहारोंकी तरह अयोग (लोहा-सम्बन्धी या योगरहित) क्रियायें, अश्रुत आगम (न सुने शास्त्र या आंसुओंका आना) शोकवेगकी तरह मित्र होते ह।

२२. तुम्हारी मित्रमंडली निपुण नर्तकीकी तरह ठीकसे न सीखी, हे राजकुमार, व्याकरणके मार्गोंमें निपुण नहीं है।

सो आयुष्मान्, अहित प्रकृतिके द्वारा भुजंगकी तरह लोकके भयके लिये **उग्रसेन** (राजा या क्रूर सेनावाला) कंसानुराग (**कंसका** अनुराग या किसका अनुराग) पैदा करेंगे।

अमृतमथनोद्यतहरिबाहुपंजर इव मन्दरसानुगतः को न घृष्यते ।
शुनीमिवास्थिरतां परिहर ।
कुशीलताग्राही का स्म तैलिक इव केवलं खलोपभोगाय भूः ।
आवर्जय गुणान्,
निर्गुणे धनुषीव सुवंश्येऽपि कस्याग्रहो भवति ?

२३. अभ्यस्व कलाः,
निष्कलो वीणाध्वनिरिव प्रशस्यते न पुरुषः ।
त्यज जाड्यम्,
जाड्ययोगेन हिमानी दूष्यतां याति ।
मा स्म मुखरो भूः,
कर्णाटचेटीमिव मुखरतां न शंसन्ति साधवः ।

२४. भज माधुर्यम्,
धवलबलीवर्दपंक्तिरिव समाधुर्यधर्या वाणी मनो हरति ।
वर्जय वैपरीत्यम्,
विपरीतं शबमिव को न परिहरति ।
कमलदीर्घाक्ष, शिक्षाक्रमेऽस्मिन्नपरमप्यभिधीयसे—
मा गाः स्त्रियाः श्रियो वा विश्वासम्,
अधिकमलवसतिरनार्यसंगता स्त्री श्रीश्च कं न प्रतारयति ?

२५. या कालकूटद्वितीया नीरोत्थितापि नार्द्रहृदया भवति, स्वीकृतापि विवाहेन कंसानलंघनचापलेनोद्वेजयति ।

२६. अस्याः कारणेऽभ्रान्तः समस्तो मन्दरागः सदालोकः, लोलनेत्रीकृता धृष्टा भुजंगमण्डली, प्राप्तो जलधी राजकुमार पराभवम् ।

अमृत-मंथनके लिये उद्यत विष्णुके बाहुरूपी पंजरकी तरह मन्दरके शिखरपर अवस्थित (मन्द रससे युक्त) कौन नहीं घिसा जायेगा?
अस्थिरताको कुतियाकी तरह छोड़ो।
तेलीकी तरह कुशीलता (कुशकी लता) का ग्रहण करनेवाला केवल खल (दुष्ट या खली) के उपभोगके लिये मत बनो।
गुणोंको प्राप्त करो,
निर्गुण (प्रत्यंचा-रहित या गुण-रहित) धनुषकी तरह सुन्दर वंश (बांस या कुल) वाले के प्रति किसका आकर्षण होता है?

२३. कलाका अभ्यास करो, कलारहित (या अमधुर) पुरुष वीणाकी ध्वनिकी तरह प्रशंसित नहीं होता।
जड़ताको छोड़ो,
जड़ता (सर्दी) के योगसे **हिमानी** दूषित होती है।
मुखर मत हो,
कर्णाटकी दासीकी तरह मुखरताको साधु लोग अच्छा नहीं कहते।

२४. मधुरता का सेवन करो,
मधुरता सहित (या समान धुरेवाली) वाणी सफेद बैलोंकी पांतीकी तरह मनको हरण करती है।
विपरीतताको छोड़ो।
विपरीतको मुर्देकी तरह कौन नहीं छोड़ता?
हे कमलकी तरह बड़ी आंखोंवाले, इस शिक्षा-क्रममें और भी तुम्हें हम बतलाते हैं—
स्त्री या श्रीपर विश्वास मत करो।
अधिक कमल (अधिक मलिनता या कमलमें) रहनेवाली अनार्यो (आर्या छन्द रहित) वाली स्त्री और श्री किसको नहीं वंचित करती?

२५. जो (लक्ष्मी) कालकूट विषसी दूसरी नीरोषित (न रोषित या जलमें बसी) भी आर्द्रहृदया नहीं होती; विवाह द्वारा स्वीकृत भी कंसानु-लंघन (किसको या कंस-असुरके न अमारण) रूपी चपलतासे उद्विग्न नहीं करती।

२६. इसके कारण समस्तमन्दराग (सारा दृढ़ानुराग, समस्त मन्दर पर्वत) सदालोक (सदा लोक या सुन्दर आलोक) अभ्रान्त है, चंचल नेत्र बनाई (ढीठ, घर्षित) भुजंगों (सांपों या लम्पटों) की मंडली राज-कुमार, पराभाव-प्राप्त समुद्र है।

२७. अनयावष्टब्धः को न गुरुवारणयोग्यो भवति ? को न वाजि-पृष्ठमारोहति ? कः कंकणश्रवचनतः प्रकटयति ? कः कण्ठे हारावमोचनं न कुरुते ? को न कांचनशृंखलामनुभवति ? कुरंग इवान्धीभूतः को वागुरावंचनं करोति, ? कः कार्मुक-निर्मुक्तशिलीमुख इव न वैलक्षमागच्छति ?

२८. कस्य न पराभूतिर्भवति ? कस्य नापूर्वं यशः समुच्छलति ?

२९. किमतोऽप्यस्याः परमुच्यते ?

यादेव प्रियं शार्दूलमिव शूरं, महत्तरं भयान्नोपसर्पति । सुन-यनादेवरं सिंहमिव बलभद्रं दृष्ट्वा प्रपलायते, न वसुदेवे-ऽपि चक्षुः पातयति ।

३०. केवलमनवरतशिक्षितवैदग्ध्यकलापराधात्मिकात्रपापरा परिहृत्य गुणिनो गुरूनपरपुरुषे मायाविनि कृतकेशिवधे धृतमन्दरागे रागं बध्नाति ।

३१. तदायुष्मन्नतिगम्भीरगुहा गिरीन्द्रभूरिव हृदयहरा श्रेयोऽ-र्थिनां शरणं न स्त्री श्रीर्वा ।

शृंगारप्रधानास्तात, गाव इव विचारिताः सरसा भवन्ति न स्त्रियः ।

३२. तदेताः कन्दर्पकण्डूकषणविनोदमात्रोपकारिण्यो नात्यन्त-विश्वासयोग्याः सर्वथा विश्वस्तं विश्वासमिव नरं कुर्वन्ति स्त्रियः ।

३३. श्रियोऽपि दानोपभोगाभ्यामुपयोगं नयेत् । न लोभं कुर्यात् । बहुलाभोनुगतः किरणकलापोऽपि संतापयति जनम् ।

२७. इस (स्त्री) द्वारा आश्रित कौन गुरुवरण (गुरुके द्वारा या भारी निषेध करने) योग्य नहीं होता? कौन नहीं समरभूमिमें पड़ता? कौन वंचनासे कंकण (जलकण) को नहीं प्रकटित करता? कौन कंठमें हारबंधन नहीं करता? कौन नहीं सुवर्ण-शृंखलाको नहीं अनुभव करता? हरिन की तरह अन्धा हुआ कौन फंदे (मृगतृष्णा) से वंचना करता है? कौन धनुपसे छूटे बाणकी तरह नहीं विरुद्ध लक्ष्य को नहीं प्राप्त होता?

२८. किसका नहीं पराभव होता? किसका नहीं अपूर्वयश पराभव (परम वैभव) उछलता?

२९. इससे भी अधिक इसके बारेमें क्या कहा जाय?
यादवके प्रिय (अथवा संतापप्रिय) शार्दूलकी तरह महत्तरके पास भयसे नहीं जाती। सुनयनादेवर (सुन्दर नीतिके नादसे वर या सुनयनाके देवर) को सिंहकी तरह **बलभद्रको** देखकर पलायन करती, **वसुदेव** (धन देनेवाले या **कृष्ण**-पिता) पर भी नजर नहीं डालती।

३०. केवल लगातार शिक्षा-प्राप्त पांडित्य कलाके अपराधवाली लज्जा-परा हो गुणी गुरुओंको छोड़कर मायावी केशी-बधक **मन्दराग** (पर्वत या मन्द स्नेह) वालेमें राग करती है।

३१. सो आयुष्मान् भला चाहनेवालों के लिये अति गहरी गुहायुक्त महा-पर्वतकी भूमिकी तरह हृदय हरनेवाली स्त्री या श्री शरण नहीं है। हे तात, वाणियों, (गौओं, किरणों) की तरह विचार की गई (या चुराई गई) शृंगारप्रधान स्त्रियां सरस नहीं होतीं।

३२. सो काम की खुजलाहट मिटाने (विनोद) मात्रमें उपकारिणी ये स्त्रियां अत्यन्त विश्वास-अयोग्य सब तरहसे विश्वस्त (पुरुष) को श्वास-रहित सा करती हैं।

३३. पुरुषों को चाहिये श्री (लक्ष्मी) को भी दान और उपभोग द्वारा उपयोगमें लाये, लोभ न करे। बहुलोभानुगत (बहुत लोभी या बहुत सूर्यमें अवस्थित) किरण-समूह भी लोगोंको संतप्त करता है।

३४. अतः पुत्र, प्राप्स्यसि नचिरान्निजकुलकमलराजहंसीं राज्यश्रियम् । अनवरतं कृतयशोदानन्देहि नारायण इव त्वयि चिरं रंस्यते खल्वियं लक्ष्मीः ।

३५. पाहि प्रजाः । प्रजापो ब्राह्मण इव क्षत्रियोऽपि न लिप्यते पातकैः ।

मा च वृद्धिं प्राप्य गुणेषु द्वेषं कार्षीः । व्याकरणे हि वृद्धिर्गुणं बाधते, न सत्पुरुषेषु ।

३६. वत्स, मा चैवं चेतसि कृथाश्छान्दसोऽयम् । छान्दसश्च गुरुर्वक्रस्वभाव एव भवति तत्किमनेनेति ? यस्माच्चतुरानन्दिपदः पुण्यश्लोको भवान् । अतोऽङ्गभावं यान्ति ते वक्रोक्तयोऽपि गुरवः । सरलतया लघवोऽप्यन्तरंगा भवन्ति, किंतु ते ह्यवसाने कुटिलतामपि दर्शयन्ति ।

३७. तत्किं बहुना—

तथा भव यथा तात, त्रैलोक्योदरदर्पणे ।
विशेषैर्भूषितस्तैस्तैर्नित्यमात्मानमीक्षसे ॥१७॥

३८. किं चान्यत्—

बिभर्ति यो ह्यर्जुनवारि पौरुषं,
करोति नक्रे च न वा रिपौ क्षमम् ।
न तेन राज्ञा सहसागराजिता,
भवेन्मही किं सहसागरा जिता ॥१८॥

३९. अपि च—

किं तेन जातु जातेन मातुर्यौवनहारिणा ?
आरोहति न यः स्वस्य वंशस्याग्रे ध्वजो यथा" ॥१९॥

३४. इसलिये पुत्र, जल्दी ही तुम अपने कुल-कमलकी राजहंसी राज्यलक्ष्मी को पाओगे, बराबर कृतयशोदानंदेहि (किये यशवाले दानको दो, या यशोदाको आनन्द करनेवालेमें) नारायणकी तरह तुम्हारे साथ यह लक्ष्मी चिरकाल तक रमण करेगी।

३५. प्रजाओंका पालन करो। (प्रजा पालन करनेवाला, अधिक जपनेवाला) ब्राह्मणकी तरह क्षत्रिय भी पातकसे लिप्त नहीं होता। और बुद्धि प्रापक गुणोंसे द्वेष न करो। व्याकरणमें वृद्धि गुणको बाधा देती है, सत्पुरुषोंमें नहीं।

३६. और वत्स, मनमें ऐसा न करो, कि यह छन्द (इच्छा) से है। छान्दस (वैदिक या छन्दशास्त्रवाला) गुरु (बृहस्पति या गुरु वर्ण),[१] वक्र-स्वभाववाला ही होता है। सो इससे क्या? क्योंकि आप चार आनंदी पदवाले पुण्य श्लोक (प्रशंसित या शुद्ध श्लोक) हैं। इसलिये वे वक्रोक्तिवाले गुरु भी अंगभाव (एकता) को प्राप्त होते हैं। सरलताके कारण लघु भी अन्तरंग होते हैं, किन्तु वे अवसान (अन्त) में कुटिलता भी दिखलाते हैं।

३७. सो अधिक कहनेसे क्या :—

हे तात, वैसा होओ कि त्रैलोक्य-उदर (रूपी) दर्पणमें,
उन-उन विशेषोंसे भूषित हो नित्य आत्मा (अपने को) देखो ।।१७।।

३८. और दूसरा क्या?—

अर्जुनको रोकनेवाला जो पौरुषको और नम्र रिपुमें रोषको धारण
नहीं करता; उस राजाके साथ सागर-सहित जीती पृथिवी नहीं रहती
सगर-पुत्रोंके साथ जीती (हो) तो (भी) क्या ।।१८।।

३९. और भी—

माताके यौवनको अपहरण करनेवाले उस पुत्रसे क्या,
जो कि अपने वंश (कुल या बांस) के अग्र स्थानपर ध्वजाकी तरह नहीं
चढ़ता" ।।१९।।

---

१. यहाँ शास्त्रके लघु गुरुके श्लेषों का प्रयोग है।

४०. एवमुक्त्वा विश्रान्तवाचि वाचस्पतिसमे मन्त्रिणि राजापि प्रेमार्द्रया दृशा नलमवलोक्य वक्तुमारभत—

४१. तात, युक्तमुक्तो हि **शालंकायनेन**। कस्यान्यस्य निर्यान्ति वदनारविन्दादेवंविधाः पदे पदेऽर्थसमर्था मृद्व्यो मृष्टाः श्लिष्टाश्च वाचः ?

—उच्छ्वासः ४

(४) दमयन्ती-वार्ताहरः—

४२. राजा तु तदाकर्ण्य क्षणमाग्रहोपरोधिविस्मयहर्षरसैः समकालमाप्लावितमनाः, प्रथममुत्फुल्लया दृशा, ततो मुग्धस्मितार्घ्येण, तदनु सर्वांगीणभूषणप्रदानेन, तमभ्यर्च्य, "पान्थ, कथय केयमुत्तुंगकल्लोलदोलाधिरूढानुच्चचंचूत्क्षिप्तमृदुमृणालवलयात्कूजतः कलहंसानक्षसूत्रिणः प्रवर्त्तितब्रह्मयशोद्गारमुखरमुखांस्तीरतापसानिव दिवमारोपयितुमुद्वहन्ती सरित् ? तरुणतरुतलमलंकुर्वाणः प्रसन्नसरस्वतीकः कश्च भवान् ?" इति सप्रणयमपृच्छत् ।

४३. सोऽपि ? "सभ्रमरया कूलकीचकवेणुलतया सदृशी नावातरणयोग्या किमियमप्रसिद्धा महानदी देवस्य" इत्यभिधाय कथयितुमारब्धवान्—

भानोः सुता **संवरणस्य** भार्या तापी सरित्सेयमघस्य हन्त्री
यस्याः कुरुः सूनुरभूत्स यस्य नाम्ना कुरुक्षेत्रमुदाहरन्ति ॥१५॥

४४. एतस्याः सलिलावगाहसमये कुर्वन्ति नित्यं नृणां,
नीरन्ध्रोन्नतकर्कशस्तनतटीसंघट्टपिष्टोर्मयः ।
भ्राम्यद्भृंगनिभालकैः क्षणमिव व्यालोलनेत्रैर्मुखैर्,
उत्फुल्लोत्पलगर्भपंकजवनभ्रान्तिं **महाराष्ट्रिकाः** ॥१६॥

४०. बृहस्पति समान मंत्रीके ऐसा कहकर चुप हो जाने पर राजाने भी प्रेमार्द्र दृष्टिसे नलको देखकर कहना शुरू किया—

४१. तात, सालंकायनने तुम्हें ठीक कहा है। दूसरे किसके मुख-कमलसे इस प्रकार पद-पदपर अर्थयुक्त मधुर, चिकने, श्लेषयुक्त वचन निकल सकते हैं।

४. दमयंती का दूत—

४२. राजाने उसे सुनकरके क्षण भर आग्रहके अनुरोधसे विस्मय और हर्षके रसोंसे एक साथ आप्लावित-मन हो पहले उत्फुल्ल दृष्टिसे, फिर मुग्ध मुस्कानके अर्घ्यसे, उसके बाद सर्वांगीन भूषण-प्रदान द्वारा उसकी अर्चना करके प्रेमपूर्वक पूछा—"बटोही, बतला यह उत्तुंग लहरोंके झूले पर चढ़े, ऊंचे चंचुओंसे ऊपर मृदु मृणालोंके बलयों के फेंकनेवाले, कूजन करते अक्षशतधारी हंसोंकी, मुखसे ब्रह्मकी कीर्तिके उद्गारमें लगे तीर-निवासी तापसोंकी सी स्वर्गमें रखने के लिये बहती कौन सी नदी है? तरुण वृक्षतलको अलंकृत करते प्रसन्न वाणीवाले आप कौन हैं?"

४३. उसने भी—"भंवर (भ्रमर)-युक्त वेग वाली, किनारेकी कीचक-बांसोंकी लता सहित समान नावसे पार होने लायक क्या यह महानदी देवको ज्ञात नहीं है, यह कहकर बात करनी शुरू की—

सूर्यकी पुत्री संवरणकी पत्नी यही पाप-नाशिनी ताप्ती नदी है।
जिसका पुत्र कुरु हुआ, जिसके नामसे कुरुक्षेत्रको पुकारते हैं।।१५।।

४४. इसके जलमें स्नान करनेके समय,
घने उन्नत कर्कश स्तनोंके तटके घर्षण से उर्मियोंको पीसती मराठिनें घूमते हुये भ्रमरों जैसे अलकोंवाले चंचल-नेत्रयुक्त (अपने) मुखोंसे क्षण भर, फूले नीलकमल गर्भवाले कमलवनका भ्रम पुरुषोंके, मनमें नित्य पैदा करती हैं।।१६।।

४५. अपि च—

यद्येतस्याः सकृदपि मरुन्नर्तिताम्भोजराजि-
प्रेंखत्पत्रव्यजनविधुतं वारि नीहारहारि।
राधोभाजां पिवति कुसुमैर्वासितं पादपानां,
पीयूषाय स्पृहयति ततः किं क्वचिन्नाकलोकः ॥१७॥

मामपि **पुष्कराक्ष**नामानं वार्तिकमवगच्छतु देवः ।

४६. तथाहि—

स्थित्वा त्वदागमनमार्गमुखे गवाक्षे,
वार्ताविशेषमधिगन्तुमिहायताक्ष्याः ।
संप्रेषितो निषधनाथ, तयास्मि यस्याः,
क्रीडागिरिस्त्वमसि मुग्धमनोमृगस्य ॥१८॥

४७. एष्यति च श्वस्तनेऽह्नि मार्गश्रमक्लान्तमितो नातिदूर इवोत्तुंगतरसरलसालसर्जार्जुननिचुलनिचयान्तरचलच्चटुल-चकोरमयूरहारीतहंसकुलकोलाहलिनि **पयोष्णी**पुलिनपरिसरे स्थितं तया प्रहितमाप्तं क्रीडाकिन्नरमिथुनम्, इयं च वाच्यतां तया स्वहस्तकिसलयलिखिताक्षरगर्भा भूर्जपत्रिका इत्यभिधाय पुरोऽस्य लेखपत्रिकां व्यसृजत् ।

४८. राजापि पार्श्वपरिजनेनोत्क्षिप्यार्पितां तामतिबहल-पुलकांकुरकण्टकितप्रकोष्ठकाण्डेन पाणिना स्वयमुन्मुच्य सादरमवाचयत्—

"नलोऽपि मां प्रत्यनलोऽसि यत्तद् भवादृशां नैषध नैष धर्मः ।
तथाबलानां बलवद् ग्रहीतुं न मानसं मानसमुद्र युक्तम् ।१९।

४५. और भी —

यदि वायु में नाचते कमलोंकी पंक्तियोंके
चंचल पत्रके व्यजन द्वारा हिलता हिम-हारक,
वृक्षोंके फलोंसे वासित, इसकी धाराके जलको एक बार भी,
पीये, तो क्या स्वर्गवासी (जन) कभी अमृतकी लालसा करेंगे? ।।१७।।

मुझे भी देव **पुष्कराक्ष** नामक संदेशवाहक समझें ।

४६. सो —

हे **निषधराज**, तुम्हारे आनेके मार्गकी ओरके जंगलेपर बैठी,
विशेष समाचार जाननेके लिये,
उस दीर्घनयनीने विशेष समाचार जाननेके लिये,
मुझे यहां भेजा, जिसके कि, मुग्ध चित्तरूपी मृगके तुम क्रीड़ा-पर्वत हो ।।१८।।

४७. कलके दिन और यहां से न-अतिदर ऊंचे आम-साखू-सर्ज-अर्जुन-निचुलके समूहोंके भीतर, चंचल मुखर चकोर-मोर-हारिल-हंसोंके कोलाहलवाली **पयोष्णीके** तटके पास अवस्थित उसका भेजा मार्ग के श्रमसे थका विश्वसनीय पालतू किन्नरोंका जोड़ा आयेगा। और उसके अपने हस्त-पल्लवसे लिखित अक्षरवाली इस चिट्ठी को भी पढ़िये।" यह कहकर उसने उनके सामने चिट्ठी रख दी।

४८. राजाने भी साथके परिजनोंको अलग हटाकर दी गई उस पत्रिकाको अति-अधिक रोमांचित बाहुवाले हाथसे स्वयं खोलकर आदरके साथ पढ़ा —

"हे **नैषध**, तुम नल भी मेरे लिये अनल हो, जो कि आप जैसोंका यह धर्म नहीं (नैप धर्म) है। अबलाओंको जबर्दस्ती पकड़नेके लिये मानरूपी समुद्रसे युक्त मानस का होना ठीक नहीं ।।१९।।

४९. अपि च—

निपतति किल दुर्बलेषु दैव तदवितथं ननु येन कारणेन।
बलवति न यथा तथाबलानां प्रभवति कृष्टशरासनो मनो-
भूः ॥२०॥

५०. अपि च—

कदा किल भविष्यन्ति कुण्डिनोद्यानभूमयः।
उत्फुल्लस्थलपद्मा भवच्चरणभूषिताः ॥२१॥" इति

५१. लेखलिखितप्रणयसुभाषितामृतरसप्लवेनाप्लावितहृदयः— "विधे, विधेहि मे पक्षिण इव पक्षयुगमुड्डीय येन तां पश्यामि" इति चिन्तयन्नरपतिः पुरतः स्थितं तं प्रियावार्तिकमाश्लिष्यन्निवोच्चरोमांचनिचयेन , पिबन्निवाभिलापतृषितया दृशा, स्नपयन्निव मधुरस्मितामृतरसेन, पुनः पुनः सादरमभाषत—

५२. "पुष्कराक्ष, सा सर्वथा विजयते राजपुत्री, यस्याः प्रसन्नमुदारसत्कान्तिश्लिष्टं सुकुमारमनेकालंकारभाजनं वयो वचनं च, सप्रश्रयः प्रगल्भो विवेकवान्विदग्धबुद्धिर्भवद्विधः परिजनश्च।

५३. तत्कथय, कथनीयकीर्तिः क्वास्ते? कथमास्ते? कं विनोदमनुतिष्ठति? केन व्यापारेण परिणामयति वासरं वाऽसौ भवत्स्वामिसुता?" इति।

एवमुक्तः स पुनः पल्लवयन्ननुरागकन्दलं नलमलपत्—
"त्वद्देशागतवायसाय ददती दध्योदनं पिण्डितं,
त्वन्नाम्नः सदृशे दृशं निदधती वर्ण्येऽपि मुग्धा नले।
त्वत्सन्देशकथार्थिनी मृगयते ताम्राजहंसान्मुनः,
क्रीडोद्यानतरंगिणीतरुतलच्छायासु वापीषु च ॥२२॥

४९. और भी—

दैव दुर्बलोंके ऊपर झपटता है, सो असत्य नहीं है; क्योंकि खिन्न धनुषवाला कामदेव बलवान पर वैसी प्रभुता नहीं दिखाता, जितनी अबलाओंपर।

५०. और भी—

कब कुंडिन नगरके उद्यानकी भूमियां फूले गुलाब,
समान होती आपके चरण द्वारा भूषित होंगी ॥२१॥

५१. पत्रमें लिखे प्रेमके सुभाषितके अमृतरसकी धारासे आप्लावित-हृदय हो—"हे विधि, पक्षियोंकी तरह मेरे दो, पंख बना दे जिसमें मैं उड़कर उसे जा देखूं।" यह सोचते राजाने सामने खड़े प्रियाके उस समाचारवाहक को आलिंगन करने से ऊंचे रोमांचोंसे युक्त हो अभि-लाषाकी प्यासी दृष्टि से पीते से, मधुर मुस्कानके अमृतरस द्वारा मानो उसे नहलाते से आदरपूर्वक बार-बार बात की—

५२. "पुष्कराक्ष, वह राजपुत्री सर्वथा विजयी है, जिसके प्रसन्न वचन और आयु-उदार-सच्ची कान्तिसे युक्त सुकुमार अनेक अलंकारोंका भाजन आप जैसा प्रेम-युक्त, प्रौढ़-विवेकी, चतुर बुद्धिवाला परिजन है।

५३. सो बतलाओ, वह प्रशंसनीय कीर्तिवाली कहां है, कैसे है, किस मनो-विनोदमें लगी है किस व्यापारके द्वारा आपकी वह स्वामिपुत्री दिन बिताती है।"

ऐसा कहने पर उसने अनुरागके कंदको पल्लवित करते नलसे कहा—
तुम्हारे देशसे आये कौवेको पिंड बनाकर दही-भात देती,
तुम्हारे नामाराशि, जंगली अनल पर भी नजर डालती वह मुग्धा,
तुम्हारे सन्देशकी कथाकी इच्छुक उन राजहंसोंको,
क्रीड़ा-उद्यानकी पुष्करणीके वृक्षोंकी छायाओंमें और वावड़ियोंमें ढूंढ़ती है ॥२२॥

५४. अपि च, सांप्रतं तया—

त्वद्देशागतमारुतेन मृदुना संजातरोमांचया,
त्वद्रूपांचितचारुचित्रफलके निर्वापयन्त्या दृशम् ।
त्वन्नामामृतसिक्तकर्णपुटया त्वन्मार्गवातायने,
नीचैः पंचमगीतिगर्भितगिरा नक्तंदिनं स्थीयते" ॥२३॥

५५. एवमनुगुणमनुरागस्य, सदृशं शृंगारस्य, सहोदरमादरस्य, प्रियं प्रेमप्रपंचस्य, प्रोत्साहनमनंगस्य, अनुकूलमुत्कण्ठायाः, समुचितमभिनिवेशस्य, कौतुकजननं जल्पति पुष्कराक्षे, श्रवणकुतूहलिनि विस्मृतान्यव्यापारे तन्मयतामिवानुभवति भूभुजि; जरठीभवत्सु पूर्वाह्णवेलालवेषु, गगनमध्यासन्नवर्तिनि व्रजति तीव्रतां व्रध्नमण्डले, स्खलयति पथि पथिकानसह्योर्मिणि घर्मजाले, जलाशयाननुसरत्सु पिपासाकुलतरलिततारकेषु श्वासिषु श्वापदेषु, पंकिलकूलकर्दमविमर्दोद्यतेषु सरित्परिसरवनविहारिकरिवराहमहिषमण्डलेषु, विटपिकोटरकुटीरनीडनिलयनिलीयमानेषु संपुटितपक्षेषु पक्षिषु, कूलकुलायकोणकूणितकोकूयमानकुक्कुहेषु, गिरिसरित्सुरंगांगणेषु, रंगत्कुरंगचर्वितखर्वदूर्वानिलनीलनिम्नशाद्वलस्थलस्थितये हिण्डमानासु कारण्डवशिखण्डिमण्डलीषु, शिशिरनिवासवांछया कूजत्सु करंजनिकुंजपुंजितकपिंजलकपोतपोतकेषु, वहति मनाङ्म्लानकोमलकुसुमकाशकोष्णामन्दमकरन्दबिन्दूद्गारिणि तापीतीरतरंगस्पर्शसेव्ये मध्याह्नमरुति, श्रमवशविलोलमीलन्नयननीलोत्पलासु बहलतरुतलच्छायामाश्रयन्तीषु सीदत्सैनिकनितम्बिनीषु प्रस्तावपाठकः पपाठ—

५४. और भी, इस वक्त वह—

तुम्हारे देशसे आये कोमल वायु द्वारा रोमांचित,
तुम्हारे रूपसे अंकित सुन्दर चित्रपट से दृष्टिको सुखी करती,
तुम्हारे नाम-अमृतसे सिंचे कर्णपुटों युक्त तुम्हारे मार्गकी ओरके जंगले पर, एकान्तमें पंचमगीतोंसे गर्भित बाणी के साथ रात-दिन रहती है ।।३२।।

५५. इस प्रकार पुष्कराक्षसे अनुरागके अनुरूप, शृंगार (रस) के उपयुक्त, आदर योग्य, प्रियप्रेम कथा, अनंग-प्रोत्साहक, उत्कंठाके अनुकूल, आग्रह, उचित कुतूहलजनक बात करते कानको कुतूहलित करनेवाले राजा अन्य व्यापारोंको छोड़, (जब) तन्मयता अनुभव कर रहे थे, जब मध्याह्न बेलाके क्षण बूढ़े हो रहे थे, सूर्यमण्डल आकाश-मध्यके पास हो तीव्र हो रहा था, पथपर घामकी असह्य तरंगें गिर रही थीं; प्यासे व्याकुल चंचल पुतलियों युक्त सांस लेते हिंस्र जन्तु जलाशयोंका अनुसरण कर रहे थे, नदीके पासके वन में बिहार करने-वाले गज-सूअर-भैंसे पंकवाले तटोंके कीचड़को भुर्ता कर रहे थे, पक्षी वृक्षोंके कोटरोंके कुटीरों-नीड़ोंके घरोंमें पंख बटोरे छिपे थे, तटके घोसलोंके कोनेमें सिमटे कुक्कुह पक्षी कू-कू कर रहे थे, नदीके सुरंगों के आंगनमें कारंडव और मोरोंकी मंडलियों चल रही थीं; हरिन चर्बित छोटी दूबकी नलीके निम्न हरियालीवाले स्थलोंमें रहनेके लिये घूम रहे थे, करंजके कुंजोंमें एकत्र हो कपिजल और कबूतरके बच्चेके ठंडे निवास की इच्छासे कूज रहे थे; स्पर्शो सुखद से थोड़े मुर्झाये कोमल कुसुम काशके उष्ण तीव्र मकरन्द-बिंदुओं के उगलनेवाला ताप्ती-तीरकी तरंगके स्पर्शसे सुखद मध्याह्न वायु बह रहा था, परिश्रमके कारण चंचल मुंदती नयनरूपी नीलकमलोंवाली घने वृक्षोंके नीचेकी छायामें आश्रय ले सैनिक स्त्रिया बैठी थीं, तब स्तुति-पाठकने पढ़ा—

(५) सेनावासः—

५६. विचित्राः पत्रालीर्दलयति गलत्स्वेदसलिलैर्,
अमन्दं मृद्नाति प्रमदकरिकुम्भस्तनतटीः ।
प्रबन्धेनाक्रामं जनजघनजंघोरुयुगलं,
श्रमः सेनांगेषु प्रसरति शनैः कामुक इव ॥२८॥

५७. अपि च—

कूजत्क्रौञ्चं चटुलकुररद्वन्द्वमुन्नादिहंसं,
क्रीडत्क्रोडं निपतितलतापुष्पकिंजल्कहारि ।
अस्याः सान्द्रद्रुमवनतलश्रान्तसप्ताश्वनीनं,
रोधः सिन्धोः स्थगयति भवत्सैनिकानां प्रयाणम् ॥२९॥"

५८. राजा तु तदाकर्ण्य "बाहुक, बहूनां बहुमतो बाहुल्यादिहैव वासः, तद्वद सैनिकान्—अवतरत तापीतीरतरुलताश्रयान्, आश्रयत श्रमच्छिदच्छायाः, कुरुत पटकुटीः, कारयत कार्यमानानि, मुंचतामन्दमृदुशाद्वलेष्ववबलान्बलीवर्दकान्, कूर्दयत कर्दमे महिषान्, खादयत वेसरीभिर्वंशकरीरांकुरान्, प्रचारयत क्रमेण क्रमेलकान्, अवगाहावसाने पृष्ठावकीर्णपुलिनपंकपांसवो विहरन्तु स्ववशं वंशस्तम्बेषु स्तम्बेरमाः, तरुबन्धेषु बध्नीत तीव्रवेगान्वेगसरान्, अवतरन्तु तापीतीरतरंगेषु तुरंगाः, शिशिरतरंगानिलान्दोलितविविधविकचमंजरीजालजटिलेषूत्फुल्ललताखण्डमण्डपेषु मध्याह्नसमयमतिवाहयन्तु किंनरमिथुनानि" इति सेनापतिमादिदेश ।

—उच्छ्वासः ६

५. सेनाका पड़ाव—

५६. चूते पसीनेके जल द्वारा विचित्र पत्र-पंक्तियोंको दलन करता,
मस्त गजके कुंभरूपी स्तनतटोंको तीव्रताके साथ मर्दन करता,
लोगोंके जघनों, जंघों और दोनों उरुओंपर जोरसे आक्रमण करता,
कामुक की तरह यह श्रम धीरे-धीरे सेनाओं में फैल रहा है ।।२४।।

५७. और भी —

कूजते क्रौंचों, मुखरित कुरर-जोड़ियों, उन्मत्त हंसों;
खेलते सूअरोंवाली, गिरे लता-पुष्पोंकी केसर-हारिका,
घने वृक्षों वनलतामें शान्त सात मार्गोवाली,
इस नदी की धार आपके सैनिकोंके प्रयाणको स्थगित कर रही है ।।२५।।

५८. राजाने उसे सुनकर सेनापति को आदेश दिया—हे बाहुक, बहुलताके कारण बहुतोंको पसंद यहां ही निवास हो, सो सैनिकोंको कहो, कि ताप्तीके तीर के वृक्षोंके आश्रयोंमें उतरो, श्रम दूर करनेवाली छायाओं का आश्रय लो, तम्बुओंको लगावो, झोपड़ियोंको कराओ, निर्बल बैलोंको हरियालियोंमें छोड़ो, कीचड़में भैसोंको कुदाओ, बेसरियोंको बांसके करीरोंके अंकुर खिलाओ, क्रमसे ऊंटोंको चराओ, नहानेके बाद पीठपर तटके पंक-धूलियोंको बिखेरते हाथी स्वतंत्रता-पूर्वक बांसके जंगलों में बिहार करें, तीव्र गतिवाले घोड़ोंको पेड़ोंमें बांध दो। ताप्तीतीरके तरंगोंमें तुरंग उतरें। किन्नर-जोड़े ठंडी तरंगयुक्त वायु-चालित फूली विविध मंजरियोंके जालोंसे जटिल उत्फुल्ल लता-वनोंके मंडपोंमें मध्याह्न काल बितावें।"

—उच्छ्वास ६

४०. क्षेमेन्द्र (१०६० ई०)

इनके पिताका नाम प्रकाशेन्द्र और दादाका नाम सिन्धु था। अभिनव गुप्त इनके साहित्य गुरु थे। यह कश्मीरके राजा अनन्त (१०२८-१०६३ ई०) और राजा कलश (१०७३-८९ ई०) के कालमें हुए। "दशावतार चरित"को इन्होंने लौकिक संवत्सर ४१ (१०६६ ई०) में समाप्त किया था। यह एक बड़े ही धनाढ्य कुलमें पैदा हुए थे, और बहुत ही उदार तथा विनोदप्रिय थे। यह संस्कृतके उन कवियोंमें हैं, जिन्होंने अनेकों बड़े-बड़े ग्रंथ लिखे हैं। इनके ग्रंथ हैं—(१) "रामायणमंजरी", (२) "भारत मंजरी", (३) "बृहत्कथामंजरी", (४) "दशावतारचरित", (५)

१. सेव्यसेवकोपदेशः

(१) सेवावृत्तिः—

१. दर्पादिकः परो लोभाद् द्वावन्धौ सेव्यसेवकौ।
धनोष्मदैन्यविकृती मुखे कः कस्य पश्यति ॥२॥
२. दुर्वारमोहलोभान्धो यदि न स्यादयं जनः।
कः क्रूरक्रोधविधुरं सहेत धनिनां मुखम् ॥४॥
३. यः पृथ्वीमपि दर्पान्धो न पश्यति पुरःस्थिताम्।
स दैन्यलघुतां यातं कथं सेवकमीक्षते ॥५॥
४. अगतिं वाहयत्येको बधिरं स्तौति चापरः।
अहो जगति हास्याय निर्लज्जौ सेव्यसेवकौ ॥६॥
५. दूरं हुंकारमात्रेण विसृष्टो मार्गणः सदा।
गुणभ्रष्टः क्रियाहीनो नोद्वेगं याति सेवकः ॥७॥
६. मन्ये सुकृतिना तेन भागीरथ्यां कृतं तपः।
वैराग्यभागी रथ्यां यः सेवासु न विगाहते ॥८॥
७. कथितक्लेशबापेन शापेनेव विपाकिना।
सेवातापेन पच्यन्ते न ह्यदुष्कृतिनो नराः ॥९॥

४०. क्षेमेन्द्र (१०६० ई०)

"बोधिसत्वावदानकल्पलता", (६) "कलाविलास", (७) "चतुर्वर्गसंग्रह", (८) "चारुचर्या", (९) "नीतिकल्पतरू", (१०) "समयमातृका", (११) "सेव्यसेवकोपदेश", (१२) "देशोपदेश"। पहले पांचों ग्रंथ बड़े-बड़े हैं। "दशावतारचरित" काव्यकी दृष्टिसे उत्कृष्ट है। इनकी "बोधिसत्वावदानकल्पलता" का अनुवाद तिब्बती भाषामें मौजूद है, और यही एक ऐसा काव्य ग्रंथ है, जिसके संस्कृत मूलको भी वहां अनुवादके साथ सुरक्षित रक्खा गया है। इन्हींको संस्कृतका एकमात्र विनोदी कवि कहा जा सकता है। इन्होंने क्लिष्ट भाषाका प्रयोग नहीं किया है।

१. सेव्य-सेवकोपदेश

१. नौकरी—

१. एक दर्पसे दूसरा लोभसे, दोनों स्वामी और सेवक अन्धे हैं।
किसके मुंहपर धनकी गर्मी और दीनताका विकार वह नहीं देखता ॥२॥

२. दुर्निवार मोह और लोभसे अन्धा यदि यह जन नहीं होता,
तो कौन क्रूर क्रोधसे बिगड़े धनियोंके मुंहको सहता? ॥४॥

३. जो धनी दर्पसे अन्धा हो सामने अवस्थित पृथिवीको भी नहीं देखता,
वह गरीबीकी तुच्छताको प्राप्त सेवकको कैसे देखेगा ॥५॥

४. एक अगति को ले जाता है और दूसरा बहरेकी तारीफ करता है।
अहो, निर्लज्ज स्वामी और सेवक संसारमें हास्यके लिये हैं ॥६॥

५. दूरसे ही हुँकार करने मात्रसे सदा मार्गण (मंगता या वाण) छोड़ा जाता है। गुण (या प्रत्यंचा) से भ्रष्ट क्रियाहीन सेवक उद्विग्न नहीं होता ॥७॥

६. मैं समझता हूं, उस पुण्यात्माने भागीरथीके किनारे तप किया है,
जो वह वैराग्यभागी हो रथ्या (सड़क) पर सेवामें नहीं लगता ॥८॥

७. कहनेके क्लेशसे बोये शापकी तरह विपाक देनेवाले,
निष्पाप लोग सेवारूपी संतापमें नहीं मरते-पचते ॥९॥

८. अदैन्यपुण्यमनसां यशस्तेषां विराजते ।
सेवापंककलंकानां यैर्न पात्रीकृतं शिरः ॥१०॥

९. प्रभुप्रणामे जठरं दैन्यमूलं विलोकयन् ।
प्रवेष्टुं सेवकः पृथ्वीं विलक्षः क्षितिमीक्षते ॥११॥

१०. सेवाध्वजोऽञ्जलिर्मूर्ध्नि हृदि दैन्यं मुखे स्तुतिः ।
आशाग्रहगृहीतानां कियतीयं विडम्बना ॥१२॥

११. अकालागमनक्रोधविधुरेश्वरचक्षुषा ।
क्षिप्रं स्मर इवायाति सेवको दग्धमूर्तिताम् ॥१३॥

१२. पुनः सेवावमानानां तेन दत्तं तिलोदकम् ।
प्रविश्य वाहिनीं येन खड्गपात्रीकृतं वपुः ॥१४॥

१३. कणवृत्तिपरिक्लिष्टः कष्टं सेवकचातकः ।
घनाशानिरतो नित्यमुद्ग्रीवः परिशुष्यति ॥१५॥

१४. निःसन्तोषः परित्यज्य भ्रमरः पुष्पितं वनम् ।
सेवते दानलोभेन मातंगमपि सेवकः ॥१६॥

१५. जडसेवापरिक्लिष्टस्तीव्रदम्भवकव्रतः ।
कृच्छ्रेण क्षणिकां प्रीतिमासादयति सेवकः ॥१७॥

१६. नित्यमुन्नतिकामोऽपि मानभंगादधोमुखः ।
यत् सत्यमुभयभ्रष्टस्त्रिशंकुरिव सेवकः ॥१८॥

१७. स्वमांसविक्रयासक्तः प्रभुवेतालघट्टितः ।
निःसत्त्वः प्रलयं याति रात्रिसेवासु सेवकः ॥१९॥

१८. भूमिशायी निराहारः शीतवातातपक्षतः ।
मुनिव्रतोऽपि नरकक्लेशमश्नाति सेवकः ॥२०॥

८. अदरिद्रतारूपी पुण्यके मनवाले उन (पुरुषों) का यश विराजता है;
जिन्होंने कि अपने सिरको सेवारूपी कीचड़के कलंकका पात्र नहीं बनाया ॥१०॥

९. प्रभुको प्रणाम करते समय दीनताका कारण पेटको समझ,
लज्जित हो सेवक पृथिवीमें घुस जानेके लिये पृथिवीको देखता है ॥११॥

१०. सिरपर सेवारूपी पताका, जुड़े हाथों हृदयपर मुखपर, दीनता, स्तुति
आशारूपी भूत से पकड़े हुये लोगोंकी यह कितनी विडम्बना है ॥१२॥

११. असमय आये क्रोधसे बिगड़ी स्वामीकी आंखोंसे,
सेवक तुरन्त ही कामदेवकी तरह दग्ध-शरीर हो जाता है ॥१३॥

१२. फिर से सेवारूपी अपमानोंको उसने तिलांजलि देदी,
जिसने कि सेनामें प्रवेश करके अपने शरीरको तलवारका पात्र बनाया ॥१४॥

१३. दाने-दाने की जीविकासे अतिदु:खित सेवकरूपी चातक कष्ट से,
घनों की आशामें नित्य निरत हो ऊपर मुंह उठाये सूखता है ॥१५॥

१४. संतोष-रहित हो भंवरा फूले वनको छोड़कर सेवक,
मातंग (गज या चाण्डाल) की भी दान (मद) के लोभसे सेवा करता है ॥१६॥

१५. जड़ोंकी सेवासे दु:खित, तीव्र दम्भ वाला बगला भगत,
सेवक कठिनाईसे क्षण भरकी कृपा प्राप्त करता है ॥१७॥

१६. नित्य उन्नतिका इच्छुक भी मानके भंगसे मुंह नीचा किये,
जो सचमुच ही त्रिशंकुकी तरह सेवक दोनों ओर से भ्रष्ट है ॥१८॥

१७. अपने मांसके बेचनेमें लगा, प्रभुरूपी पिशाच द्वारा पिटता,
सेवक निर्जीव हो रातकी सेवकाइयोंमें नष्ट होता है ॥१९॥

१८. भूमिपर सोनेवाला, भूखा, सर्दी-गर्मी और हवासे पीड़ित,
मुनिके व्रतवाला भी सेवक नर्कके क्लेश भोगता है ॥२०॥

१९. करोति सेवकः सेवां तावदाशामिवायताम् ।
यावद् भोगरसज्ञेन यौवनेन वियुज्जते ॥२१॥

२०. चक्षुर्द्वार्यंजलौ पाणिः स्तुतौ जिह्वा नतौ शिरः ।
अहो नु सेवकैः कायः परोपकरणीकृत : ॥२२॥

२१. हन्त, यांचावमानेन सेवको लघुतां गतः ।
सेवापंकपदे मग्नो यदन्विष्टो न लभ्यते ॥२३॥

२२. अविश्रान्त्या विरक्तस्य दीर्घोच्छ्वासेन शुष्यतः ।
जरेव दुःसहा जन्तोः सेवा संकोचकारिणी ॥२४॥

२३. त्रुट्यति क्लिन्नतन्त्रीव मालेव म्लायति क्षणात् ।
सेवा नारचयत्येव दिनच्छेदेन नश्यति ॥२५॥

२४. सेवासंक्षपितांगानां राजरथ्यासु शुष्यताम् ।
तीव्रतृष्णाविषार्तानां शरणं शमवारिदः ॥२६॥

२. कलाविलासः

(१) वणिक्—

२५. लोभः सदा विचिन्त्यो लुब्धेभ्यः सर्वतो भयं दृष्टम् ।
कार्याकार्यविचारो लोभाक्रुष्टस्य नास्त्येव ॥१॥

२६. मायाविनिमयविभ्रमनिह्नववैचित्र्यकूटकपटानाम् ।
संचयदुर्गपिशाचः सर्वहरो मूलकारणं लोभः ॥२॥

२७. सत्त्वप्रशमतपोभिः सत्वधनैः शास्त्रवेदिभिर्विजितः ।
लोभो वटप्रविष्टः कुटिलं हृदयं किराटानाम् ॥३॥

२८. क्रयविक्रयकूटतुलालाघवनिःक्षेपरक्षणव्याजैः ।
एते हि दिवसचौरा मुष्णन्ति मुदा जनं वणिजः ॥४॥

१९. सेवक तब तक लम्बी आशासे सेवा करता है,
जब तक कि भोग-रसकी जानकार तरुणाईसे वह वियुक्त नहीं हो जाता ।।२१।।

२०. आंखें दरवाजेपर, हाथ अंजुलियोंमें, जिह्वा स्तुतिमें, सिर नमस्कारमें लगा। अहो, सेवकोंने अपनी कायाको परोपकारके लिये बना दिया ।।२२।।

२१. हन्त मांगनेके अपमानसे सेवक हलका बन,
सेवारूपी कीचड़में (ऐसा) डूबा है, कि खोजनेपर भी नहीं मिलता ।।२३।।

२२. विश्राम न लेनेसे विरक्त, लम्बी सांससे सूखता,
बुढ़ापेकी तरह प्राणियोंके लिये संकोच करनेवाली सेवा दुस्सह है ।।२४।।

२३. सेवा गीली वीणाकी तरह टूटती है, क्षण भरमें मालाकी तरह मुरझा जाती है। वह जुड़ती नहीं, दिनके बीतने से नष्ट हो जाती है ।।२५।।

२४. सेवामें क्षीण अंगवालों, सड़क पर सूखतों,
तृष्णारूपी तीव्र विषसे पीड़ितोंके लिये शान्तिरूपी मेघ शरण है ।।२६।।

२. कला-विलास

१. बनिया—

२५. लोभका सदा ख्याल रखना चाहिये, लोभियों से सब तरफ से भय दीखता है। लोभमें पड़ेको कर्तव्य-अकर्तव्यका विचार नहीं होता ।।१।।

२६. मायारूपी विनिमयका भ्रम, छिपाना, विमनस्कता-कूट और कपटोंका मूल कारण, संचयरूपी दुर्गका पिशाच, सबका हरणकर्त्ता लोभ है ।।२।।

२७. शान्ति और तपस्यावाले सत्वके धनी शास्त्रज्ञोंसे पराजित,
लोभ, कंजूसोंके कुटिल हृदयरूपी बरगदमें घुस गया है ।।३।।

२८. खरीद-बेंच, झूठी तराजू, चालाकी, जोगाना, रक्षण और सूद द्वारा दिनके चोर ये बनिये खुश हो लोगोंको लूटते हैं ।।४।।

२९. हृत्वा धनं जनानां दिनमखिलं विविधकूटमायाभिः।
वितरति गृहे किराटः कष्टेन वराटकत्रितयम् ॥५॥

३०. आख्यायिकानुरागी व्रजति सदा पुण्यपुस्तकं श्रोतुम्।
दष्ट इव कृष्णसर्पैः पलायते दानधर्मेभ्यः ॥६॥

३१. द्वादश्यां पितृदिवसे संक्रमणे सोमसूर्ययोर्ग्रहणे।
सुचिरं स्नानं कुरुते न ददाति कपर्दिकामेकाम् ॥७॥

३२. दत्वा दिशि दिशि दृष्टिं याचकचकितोऽवगुण्ठनं कृत्वा।
चौर इव कुटिलचारी पलायते विकटरथ्याभिः ॥८॥

३३. न ददाति प्रतिवचनं विक्रयकाले शठो वणिग् मनी।
निःक्षेपपाणिपुरूषं दृष्ट्वा संभाषणं कुरुते ॥९॥

३४. उत्तिष्ठति नमति वणिक्पृच्छति कुशलं ददाति च स्थानम्।
निःक्षेपपाणि पुरुषं दृष्ट्वा धर्म्यां कथां कुरुत ॥१०॥

३५. कश्चिद्वदति तमेत्य द्रविणं निःक्षिप्य "हन्त, गन्तास्मि"।
"भ्रातः, परं प्रभाते विष्टिदिनं किं करोम्यद्य ॥११॥

३६. तच्छ्रुत्वा विकसितदृग्वदति स मिथ्यैव नाटयन्खेदम्।
कार्ये प्रसारिताक्षः पुनः पुनः पार्श्वमवलोक्य ॥१२॥

३७. "त्वदधीनं स्थानमिदं किं तु चिरं न्यासपालनं कठिनम्।
विषमौ च देशकालौ साधोस्तव तदपि दासोऽहम् ॥१३॥

३८. भद्रा न दूषितैषा निःक्षेपक्षेमकारिणी शस्ता।
इत्यनुभूतं बहुशः कार्यज्ञैस्त्वं तु जानासि ॥१४॥

३९. विष्टिदिने किमपि पुरा न्यस्तं केनापि मित्रेण।
तूर्णं पुनश्च शनकैर्नीतं क्षेमेण कुशलेन ॥१५॥

२९. सारे दिन नाना प्रकारकी धोखा-धड़ियोंसे लोगोंके धनको हरण कर,
कंजूस घरमें मुश्किलसे तीन कौड़ी खर्च करता है ॥५॥

३०. वह कहानीके प्रेम से सदा धर्म पुस्तक सुननेके लिये जाता है, (पर)
काले सांप से डंसे की तरह दान और धर्मसे भागता है ॥६॥

३१. वह द्वादशीको, श्राद्धके दिन, संक्रान्ति और चन्द्र-सूर्यके ग्रहणोंमें,
देर तक स्नान करता है, पर दान एक कौड़ी नहीं देता ॥७॥

३२. कुटिल-आचारी (बनिया) हरेक दिशा की ओर नजर डालकर याचकसे
मुंह छिपा चकित हो, चोरकी तरह विकट सड़कसे भागता है ॥८।

३३. बेचनेके समय शठ मौन बनिया जवाब नहीं देता।
देनेके लिये हाथ उठाये पुरुषको देखकर वह बातचीत करता है ॥९॥

३४. बनिया आदरार्थ उठता, नमस्कार करता, कुशल पूछता बैठने
के लिये स्थान देता है। धरोहर सहित हाथवाले पुरुषको देखकर
धार्मिक कथा कहता है ॥१०॥

३५. कोई उसके पास आकर धन धरोहर रखकर कहता है "जाऊंगा"।
"हे भाई, सबरे बेगारका दिन है, आज क्या करूं" ॥११॥

३६. सो सुनकर प्रफुल्लित आंखवाला झूठ ही खेदका अभिनय करते
काममें आंखोंको फैलाये बार-बार बगल झांकते बनिया बोलता है।
॥१२॥

३७. "यह स्थान तुम्हारा है, लेकिन धरोहरको देर तक रखना कठिन है।
हे साधु, देश और काल बुरा है, तो भी मैं तेरा दास हूं" ॥१३॥

३८. यह भद्रा (नक्षत्र) दोषयुक्त नहीं, बल्कि धरोहरके लिये क्षेमकारिणी
कही गई है। कामके जानकारोंने यह बहुत बार देखा है, तुम नहीं
जानते ॥१४॥

३९. पहले किसी मित्रने ही विशिष्ट दिन कुछ धरोहर रखी।
और जल्दी फिर चुपके (उसे) क्षेम-कुशलक साथ ले गया ॥१५॥

४०. इत्यादि मुग्धबुद्धेरसमंजसवर्णनं रहः कृत्वा।
गृह्णाति कनकनिकरं नृत्यंस्तत्तन्मनोरथैः पापः॥१६॥

४१. तत्संचूर्णनजातैः क्रयविक्रयलाभराशिभिरनन्तैः।
भाण्डप्रतिभाण्डचयैरुपहसति धनाधिनाथं राः॥१७॥

४२. पूर्णाः कदर्यवणिजां निःसंभोगा निधानधनकुम्भाः।
सीदन्ति कुचतटा इव दुःखफला बालविधवानाम्॥१८॥

४३. दानोपभोगविरहितहिरण्यरक्षाकृतक्षणाः सततम्।
संसारजीर्णमन्दिरविषममहामूषका वणिजः॥१९॥

—सर्गः २

(२) कायस्थः—

४४. मोहो नाम जनानां सर्वहरो हरति बुद्धिमेवादौ।
गूढतरः स च निवसति कायस्थानां मुखे न लेखे च॥१॥

४५. चन्द्रकला इव पूर्णा निष्पन्ना सस्यसंपत्तिः।
ग्रस्ता क्षणेन दृष्ट्वा निःशेषा दिविरराहुकालयैव॥२॥

४६. ज्ञाताः संसारकला योगिभिरपयातसंमोहैः
ज्ञाता दिविरकला न केनापि बहुप्रयत्नेन॥३॥

४७. कूटकलाशतशिबिरैर्जनधनविवरैः क्षयक्षपातिमिरैः।
दिविरैरेव समस्ता ग्रस्ता जनता न कालेन॥४॥

४८. एते हि कालपुरुषाः पृथुदण्डनिपातहतलोकाः।
गणनागणनपिशाचाश्चरन्ति भूर्जध्वजा लोके॥५॥

४९. कस्तेषां विश्वासं यममहिषविषाणकोटिकुटिलानाम्।
व्रजति न यस्य विषाक्तः कण्ठे पाशः कृतान्तस्य॥६॥

४०. इत्यादि मूढ़ बद्धिवालेसे एकान्त में असंबद्ध बातें करते,
पापी बनिया नाना मनोरथोंके साथ नाचता सुवर्ण-समूहको हरता है ॥१६॥

४१. उनके पीसनेसे उत्पन्न क्रय-विक्रयके लाभ की राशिसे,
और क्रेय-विक्रेय अनंत वस्तु-समूहोंसे वह कुबेरका भी उपहास करता है ॥१७॥

४२. कंजूस बनियोंक बिना भोगे खजानोंके धनोंसे भरे घड़े,
बाल-विधवाओंके दुःखदायक स्तन-तटोंकी तरह (यों ही) पड़े रहते हैं ॥१८॥

४३. दान और उपभोगसे रहित सुवर्णकी रक्षार्थ समय दिये,
बनिये सदा संसाररूपी पुराने मन्दिरके दुष्ट चूहे हैं ॥१९॥

२. कायस्थ—

४४. लोगोंका सर्वापहारक मोह पहले बुद्धिको ही हरता है,
पर वह कायस्थोंके मुंह और लेखमें छिपकर रहता है ॥१॥

४५. चन्द्रमाकी कलाकी तरह पूर्ण खेती तैयार हुई, पर वह
सारी देखकर क्षण भरमें कायस्थरूपी राहुकी कलासे ग्रस ली गई ॥२॥

४६. मोह-रहित योगियोंने संसारकी कलायें जान लीं,
लेकिन किसीने बहुत प्रयत्न करके भी कायस्थकी कलाको नहीं जाना ॥३॥

४७. जालसाजीकी, सैंकड़ों कलाके शिविरवाले, जनोंके धनके गड्ढे, नाशकी
रातके अंधकार कायस्थोंने ही सारी जनताको ग्रसा, कालने नहीं ॥४॥

४८. ये ही मोटे डंडेसे पीट लोगोंको मार डालनेवाले काल-पुरुष हैं,
जो हिसाबी भोजपत्र (पुर्जी) की पताका लिये ये किसानोंके बीच विचरते हैं ॥५॥

४९. यमराजके भैंसेके सिरकी नोककी तरह कुटिल इन कायस्थोंका क्या
विश्वास है, जिनके कंठमें मृत्यु-देवताका फंदा नहीं पड़ता ॥६॥

५०. कलमाग्रनिर्गतमसीबिन्दुव्याजेन सांजनाश्रुकणैः ।
कायस्थलुण्ठ्यमाना रोदिति खिन्नेव राज्यश्रीः ॥७॥

५१. अंकन्यासैर्विषमैर्मायावनितालकावलीकुटिलैः ।
को नाम जगति चरितैः कायस्थैर्मोहितो न जनः ॥८॥

५२. मायाप्रपंचसंचयवंचितविश्वैर्विनाशितः सततम् ।
विषयग्रामग्रासैः कायस्थैरिन्द्रियैर्लोकः ॥९॥

५३. कुटिला लिपिविन्यासा दृश्यन्ते कालपाशसंकाशाः ।
कायस्थभूर्जशिखरे मण्डललीना इव व्यालाः ॥१०॥

५४. एते हि चित्रगुप्ताश्चित्रधियो गुप्तकारिणो दिविराः ।
रेखामात्रविनाशात्सहितं कुर्वन्ति ये रहितम् ॥११॥

५५. लोके कलाः प्रसिद्धाः स्वल्पतराः संचरन्ति दिविराणाम् ।
गूढकलाः किल तेषां जानाति कलिः कृतान्तो वा ॥१२॥

५६. वक्रलिपिन्यासकला सकलांकनिमीलनकला च ।
सततप्रवेशसंग्रहलोककला व्ययविवर्धनकला च ॥१३॥

५७. ग्राह्यपरिच्छेदकला देयधनादानकारणकला च ।
शेषस्य विवेककला संकलितराशिसर्वभक्षणकला च ॥१४॥

५८. उत्पन्नगोपनकला नष्टविशीर्णप्रदर्शनकला च ।
क्रयमाणैर्भरणकला योजनचर्यादिभिः क्षयकला च ॥१५॥

५९. निःशेषभूर्जदाहादागमनाशश्च पर्यन्ते ।
येन विना धनहारी भूर्जग्रहणे निरालोकः ॥१६॥

६०. सकलंकस्य क्षयिणो नवनवरूपस्य वृद्धिभाजश्च ।
दिविरस्य कलाः कुटिलाः षोडश दोषाकरस्यैताः ॥१७॥

५०. कमलके कोरसे निकली स्याहीके विंदुके बहाने अंजनयुक्त (अपने) अश्रुबिन्दुओंसे कायस्थों द्वारा लूटी जाती राजलक्ष्मी मानो खिन्न होकर रो रही ॥७॥

५१. मायारूपी बनिताकी अलकोंकी तरह कुटिल बुरे अंकोंके रखनेसे, कौन आदमी जगत् में **कायस्थों**के आचरणसे मोहित नहीं हुआ ॥८॥

५२. माया-प्रपंचसे-संचयसे संसारको वंचित करनेवाले, विषय-समूहके ग्रासकों, कायस्थों (शरीरस्थ इन्द्रियों) ने लोकका नाश किया ॥९॥

५३. कालके फंदेके सदृश कुटिल अक्षरोंका लेखन दिखाई देता है। कायस्थके पुर्जे[1] के शिखरपर मानो कुंडली मारे सांप बैठे हैं ॥१०॥

५४. ये दिविर (कायस्थ) गुप्तकर्मा विचित्र बुद्धिवाले **चित्रगुप्त** हैं, जो रेखाके मिटाने मात्रसे सहित को रहित कर देते हैं ॥११॥

५५. कायस्थोंकी कलायें संसारमें अति अल्प ही प्रसिद्ध हो चालू हैं, उनकी गुप्त कलाओंको **कलियुग** जानता है या **यमराज** ॥१२॥

५६. कुटिल लिपि लिखनेकी कला और सारे अंकोंके पोंछनेकी कला, निरन्तर प्रवेश और संग्रहकी लोक-कला और खर्च बढ़ानेकी कला ॥१३॥

५७. ग्राह्य वस्तुके काटनेकी कला, देह-धनके लेनेकी कला, बाकीके विवेककी कला, जमा की राशिके बिल्कुल खा जानेकी कला और ॥१४॥

५८. पैदाइशके छिपानेकी कला, नष्टको बिखेर दिखलानेकी कला, खरीदे के भरनेकी कला, जोड़नेके काम आदि से घटानेकी कला और ॥१५॥

५९. सारी चिट्ठियों के जलानेसे अन्तमें आमदनी का नाश कर देना और जिसके बिना धन हरने वाले भूर्ज (चिट्ठी) के अंधेरे में लेना ॥१६॥

६०. कलंकयुक्त क्षीण होते नये-नये रूप की और बढ़नेवाली, चन्द्रमा की यह सोलह कुटिल कलायें कायस्थ होती हैं ॥१७॥

६१. कूटस्थाः कायस्थाः सर्वनकारेण सिद्धमन्त्रेण।
गुरव इव विदितमाया वृत्तिच्छेदं क्षणेन कुर्वन्ति ॥१८॥
----सर्गः ६

(३) गायनाः—

६२. अर्थो नाम जनानां जीवितमखिलक्रियाकलापस्य।
तमपि हरन्त्यतिधूर्ताः श्लक्ष्णगला गायना लोके ॥१॥

६३. निःशेषं कमलाकरकोषं जग्ध्वापि कुमुदमास्व।
क्षीणा गायनभृंगा मातंगप्रणयतां यान्ति ॥२॥

६४. घटपटशकटस्कन्धा बहुडिम्भा मुक्तकेशककलापाः।
एते योनिपिशाचा भूपभुजो गायना लोके ॥३॥

६५. तमसि वराकश्चौरो हाहाकारेण याति संत्रस्तः।
गायनचौरः प्रकटं हाहाकृत्वैव हरति सर्वस्वम् ॥४॥

६६. पापाधधनिनिगमसा धाधामामासमासगाश्रागा।
कृत्वा स्वरपदपालीं गायनधूर्ताश्चरन्त्येते ॥५॥

६७. कुटिलावर्तभ्रान्तैर्वेषविकारैश्च मुखविकारैश्च।
गायति गायनसंघो मर्दलहस्तश्चिरं मौनी ॥६॥

६८. आमन्त्रणजयशब्दैः प्रतिपदहुंकारघर्घरारावैः।
स्वयमुक्तसाधुवादैरन्तरयति गायनो गीतम् ॥७॥

६९. जलपतिते सक्तुकणे मत्स्यैर्भुक्तेऽस्ति कापि धर्माप्तिः।
गायनदत्तासु परं कोटिष्वपि नास्ति फललेशः ॥८॥

७०. मुग्धधनानां विधिना रुद्धानामन्धकूपकोपेषु।
विहितो विवृतमहास्यो गायननामा प्रणालौघः ॥९॥

६१. जालसाज कायस्थ सर्वत्र नकार रूपी सिद्ध-मंत्र से, माया जानने वाले गुरुओं की तरह क्षणमें जीविका नाश कर देते हैं ।।१८।।

—सर्ग ६

३. गायन उस्ताद—

६२. लोगोंके सारे क्रिया-कलापों का प्राण धन है। उसे संसार में अच्छे गलेवाले महा धूर्त गायक हर लेते हैं ।।१।।

६३. सारे कमलाकर (कमल या लक्ष्मी समूह) कुमुद (बुरे आमोद) को खाकर भी, क्षीण हुए गायक रूपी भंवरे मातंगों (मतवालों) का प्रेम पाते हैं ।।२।।

६४. घड़ा-वस्त्र-गाड़ियों, बहुत बच्चों, खुले केश-कलापों वाले, ये जन्म से पिशाच गायक संसार में राजाओं के भक्षक हैं ।।३।।

६५. अन्धकार में बेचारा चोर हाहाकार के साथ डरता हुआ चुराने जाता है। गायक रूपी चोर खुल्लमखुल्ला हा-हा करके ही सर्वस्व हरण करता है ।।४।।

६६. पा-पा-ध-ध नी-नी ग-म-सा धा-ध मा-मा स-मा गा-धा-मा स्वर पदोंकी पंक्ति कहते ये धूर्त गायक विचर रहे हैं ।।५।।

६७. कुटिल चक्कर से घूमते, भेस और मुंहके विकारोंके साथ मादल हाथमें लिए मौन हो गायक-संघ देर तक गाता है ।।६।।

६८. सम्बोधन में 'जय' शब्द, एक-एक पद पर हुंकार और घर्-घर् ध्वनियोंसे अपने कहे साधुवादों द्वारा गीतको गायक व्यवधानित करता है ।।७।।

६९. जलमें गिराये सत्तूके कनके में मछलियों के खानेसे कुछ धर्म मिल सकता है, लेकिन गायकों को दिये करोड़ों का भी लेश मात्र फल नहीं है ।।८।।

७०. अंधेरे कूंयेके खजानों में मूढ़ों के छिपाये धनोंके लिये ब्रह्माने खुले महामुंहवाला गायक नामक भारी पनाला बना दिया ।।९।।

७१. नैतत्प्रकटितदशना गायनधूर्ताः सदैव गायन्ति।
एते गतानुगतिकान्हसन्ति धूर्ता गृहीतार्थान् ॥१०॥

७२. प्रातर्गायनधूर्ता भवन्ति धीराः सहारकेयूराः।
मध्याह्ने द्यूतजिता नग्ना भग्ना निराधाराः ॥११॥

७३. स्तुतिवागुरा निबद्धैर्वचनशरैः कपटकूटरचनाभिः।
गीतैर्गायनलुब्धा मुग्धमृगाणां हरन्ति सर्वस्वम् ॥१२॥

७४. नष्टस्वरपदगीतैः क्षणेन लक्षाणि गायनो लब्ध्वा।
"दास्याः सुतेन दत्तं किमिति" वदन्दुःखितो याति ॥१३॥

७५. वर्जितसाधुद्विजवरवृद्धायाः सकलशोककलितायाः।
शापोऽयमेव लक्ष्म्या गायनभोज्यैव यत्सततम् ॥१४॥

७६. देवः पुरा सुराणामधिनाथो नारदं चिरायातम्।
पप्रच्छ लोकवृत्तं महीतले भूमिपालानाम् ॥१५॥

७७. सोऽवददवनिपतीनां जयिनां बहुदानधर्मयज्ञानाम्।
चरता मया नृलोके सुरपतियोग्याः श्रियो दृष्टाः ॥१६॥

७८. ते तु त्वां स्पर्धन्ते विभवैर्वरुणं धनाधिनाथं च।
शतमखसंज्ञामसकृद्बहुतरयज्ञा हसन्त्येव ॥१७॥

७९. श्रुत्वा तन्मुनिवचनं जातद्वेषः शतक्रतुः कोपात्।
हर्तुं धनं पिशाचान्विससर्ज भुवं नरेन्द्राणाम् ॥१८॥

८०. ते गीतनाममन्त्राः सुरपतिदिष्टाः पिशाचसंघाताः।
हर्तुं सकलनृपाणां धनमखिलं भूतलं प्रययुः ॥१९॥

८१. मायादासः प्रथमं डम्बरदासश्च वञ्चदासश्च।
क्षयदासलुण्ठदासौ स्वरहरदासः प्रसिद्धदासश्च ॥२०॥

७१. ये गायक दांत दिखलाते सदा गाते नहीं है, बल्कि ये धूर्त गता-नुगतिक धन देने वालों का उपहास करते हैं ।।१०।।

७२. धूर्त गायक सवेरे हार और केयूर के सहित धीर बने रहते हैं, दोपहर को जूये में (सब) हार नग्न-भग्न और निराधार होते हैं ।।११।।

७३. स्तुतिरूपी जालमें बंधी वचन बाणोंवाली, कपट और कूट की रच-नाओं युक्त, गीतोंसे गायक-शिकारी मूढ़ रूपी मृगोंके सर्वस्व को हरण करते हैं ।।१२।।

७४. नष्ट स्वर, पदोंवाली गीतोंसे क्षण भरमें लाखों पाकर "दासीके बेटेने क्या दिया" यह कहते दुखित हो वहां से जाते हैं ।।१३।।

७५. साधु द्विजवरों और वृद्धों को त्यागनेवाली, सारे शोकोंसे युक्त लक्ष्मी के लिये यही शाप है, जो कि वह निरन्तर गायकोंके उपभोग के लिये है ।।१४।।

७६. देवताओं के नाथ इन्द्र देवने देर से आये नारद से संसार में भूपति-योंके लोक-वृत्तान्त के बारे में पूछा ।।१५।।

७७. उन्होंने कहा—"मैंने मनुष्य लोक में विचरते बहुत दान-धर्म-यज्ञवाले विजयी भूमिपतियों की इन्द्र-योग्य लक्ष्मियोंको देखा ।।१६।।

७८. वे वैभव में तुम्हारी, वरुण और कुवेर की स्पर्धा करते हैं, शतक्रतु (इन्द्र) के नाम पर अनेक बार बहुत से यज्ञ करने वालों पर हँसते हैं" ।।१७।।

७९. मुनिके उस वचन को सुनकर द्वेष उत्पन्न कर कुपित हो इन्द्रने नरेन्द्रों के धनको हरने के लिये पृथिवी पर पिशाचोंको भेज दिया ।।१८।।

८०. वे (ही) गीत नामक मंत्रवाले पिशाचोंके समूह इन्द्रके आदेश से सारे राजाओंके सब धन को हरने के लिये भूतलपर गये ।।१९।।

८१. जिनके नाम हैं पहले मायादास और डम्बरदास और वज्रदास, क्षयदास और लंठदास, स्वरहरदास और प्रसिद्धदास ।।२०।।

८२. वाडवदासश्चाष्टौ ते गत्वा मर्त्यलोकमतिभयदाः।
विवृतास्यघोरकुहरा गायनसृष्टिं ससर्जुरतिविकटाम् ।२१।

८३. यैरेतैर्हृतविभवा दिशि दिशि हृतसकललोकसर्वस्वाः।
यज्ञादिषु भूपतयो जाताः शिथिलोद्यमाः सर्वे ॥२२॥

८४. एतेऽपि कर्णविवरैः प्रविश्य गीतच्छलेन भूपानाम्।
सहसा हरन्ति हृदयं कर्णपिशाचा महाघोराः ॥२३॥

८५. तस्मादेषां राष्ट्रे न ददाति विकारिणां प्रवेशं यः।
तस्य सकलार्थसंपद्यज्ञवती भूमिराधीना ॥२४॥

८६. नटनर्तकचक्रचराः कुशीलवाश्चारणा विटाश्चैव।
ऐश्वर्यशालिशलभाश्चरन्ति तेभ्यः श्रियं रक्षेत् ॥२५॥

८७. गायनसंघस्यैक्यादुत्तिष्ठति गीतनिःस्वनः सुमहान्।
अस्थाने दत्ताया लक्ष्म्या इव संभ्रमाक्रन्दः ॥२६॥

—सर्गः ७

३. देशोपदेशः

८८. देवो जयति हेरम्बः स्वदन्तबिसखेलनैः।
यस्यौच्चैस्ततप्रभाः शुभ्रा हसन्तीव दिशो दश ॥१॥

८९. जयन्ति वेश्या व्यसनाभ्रविद्युतो,
जयन्ति कौटिल्यकला नटा विटाः।
जयत्यजस्रं जनवृक्षपातिनी
प्रकृष्टमायातटिनी च कुट्टनी ॥२॥

९०. ये दम्भमायामयदोषलेश-
लिप्ता न मे तान्प्रति कोऽपि यत्नः।

८२. बाड़वदास—ये आठों मृत्यु-लोकमें जाकर अत्यन्त भयदायक हुये।
खुले मुंहरूपी घोर गड्ढेवाले गायकोंकी अति विकट सृष्टि उन्होंने बनाई।।२१।।

८३. इनके द्वारा विभव लुटे, सारे लोकके सर्वस्वहारे हरेक दिशामें,
सभी भूपति यज्ञ आदि के करनेमें शिथिल हुये।।२२।।

८४. गीतके बहानेसे राजाओंके कर्ण-विवरमें घुसकर,
ये महाघोर कर्ण-पिशाच तुरन्त हृदयको हर लेते हैं।।२३।।

८५. इसलिये इन बिगाड़ुओंको जो राष्ट्रमें प्रविष्ट होने नहीं देता,
उसके अधीन सारी अर्थ-संपत्ति यज्ञवाली भूमि होती है।।२४।।

८६. नट, नर्तक, चक्रचर, अभिनेता, बंदीजन और भंड़ये (ये)
ऐश्वर्यशाली टिड्डी विचर रहीं हैं, उनसे लक्ष्मीकी रक्षा करें।।२५।।

८७. गायन-समूहोंकी एकतासे गीतकी (जो) अति महान् ध्वनि उठती है,
अयुक्त स्थानमें दी गई लक्ष्मीका मानो वह भयसे क्रन्दन है।।२६।।

—सर्ग ७

३. देशोपदेश

८८. अपने दंत रूपी भसींडके साथ खेलनेवाले खलोंके साथ गणेशदेवकी जय है, जिसकी वह (शुभ्र) प्रभायें मानो दसो दिशाओंको अट्टहास कर रही हैं।।१।।

८९. व्यसनरूपी मेघकी बिजलियों-वेश्याओंकी जय है।
कौटिल्यकी कलाके अभिनय करनेवाले वेश्या-लंपटोंकी जय है।
निरन्तर जनरूपी वृक्षोंको गिरानेवाले
भारी मायारूपी नदी और कुटनीकी जय है।।२।।

९०. जो दंभ मायामय दोषोंसे अत्यन्त लिप्त हैं,
उनके लिये मेरा कोई प्रयास नहीं है।

किन्त्वेष हासव्यपदेशयुक्तया,
देशोपदेशः क्रियते मयाद्य ॥३॥

९१. उपहासेन लज्जितोऽत्यन्तं न दोषेषु प्रवर्तते।
जनस्तदुपकाराय ममायं स्वयमुद्यमः ॥४॥

(१) खलः—

९२. सदा खण्डनयोग्याय तुषपूर्णाशयाय च।
नमोऽस्तु बहुबीजाय खलायोलूखलाय च ॥५॥

९३. समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
वृत्तिच्छेदकृताभ्यासः खलो निर्वाणदीक्षितः ॥६॥

९४. खलः सुजनपैशुन्ये सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः
सर्वतः श्रुतिमान् लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥९॥

९५. खलो वक्त्येव सर्वस्य दोषं वक्ति खलस्य कः।
दोषो मलिनवस्त्रस्य कदा केन विचार्यते ॥१५॥

९६. खलेन धनमत्तेन नीचेन प्रभविष्णुना।
पिशुनेन पदस्थेन हा प्रजे, क्व गमिष्यसि ॥१७॥

९७. गुणान् स्तौतीत्यसम्बंद्धं स्निह्यतीत्यसमंजसम्।
ददातीति विरुद्धार्थं खलो हन्तीति नानृतम् ॥२१॥

—उपदेशः १

(२) कदर्यः—

९८. थूत्कृतस्य जनैर्नित्यं निर्निद्रस्य निशास्वपि।
उलूकस्येव लुब्धस्य न कल्याणाय दर्शनम् ॥४॥

यह व्यंग कथनके बहाने,
मैं आज देशके लिये उपदेश कर रहा हूं ॥३॥

९१. परिहाससे अत्यंत लज्जित होकर आदमी दोषमें प्रवृत्त नहीं होता,
उसी उपकारके लिये यह मेरा अपना परिश्रम है ॥४॥

१. खल-वर्णन—

९२. हमेशा खंडनके योग्य और भूसा भरे अंतरवाले,
बहुत बीजवाले खल (या खलिहान) और ओखलको नमस्कार हो ॥५॥

९३. शत्रु और मित्रमें एक समान और वैसे ही मान-अपमानमें भी,
निराहार में अभ्यस्त खल निर्वाणकी दीक्षा ले चुका है ॥६॥

९४. सुजनोंकी चुगली करनेमें सर्वत्र आंख-सिर-मुखवाला सर्वत्र
कानोंवाला खल लोकमें सबको व्याप्त कर स्थित है ॥१०॥

९५. खल सबके दोषको कहता है, खलका कौन कहता है?
मलिन वस्त्रवालेके दोषको कब कोई विचारता है ॥१५॥

९६. धनमत्त, नीच, प्रभावशाली, अधिकारप्राप्त
चुगलखोर खलसे भाग कर हा जनता, तू कहां जायेगी ॥१७॥

९७. गुणोंकी तारीफ करता है, यह गलत है, स्नेह करता है यह हो नहीं सकता, देता है यह उलटी बात है। (हां) खल मारता है, यह झूठ नहीं है ॥२१॥

—उपदेश १

२. कंजूस—

९८. लोग सदा उसे थूकते हैं, रातको भी उसे नींद नहीं।
उल्लू जैसे कंजूसका दर्शन मंगलकारक नहीं होता ॥४॥

९९. धनं भूमिगृहं दाराः सर्वथा जन्मसंचितम्।
परार्थमेव पर्यन्ते कदर्यस्य जिनस्य च ॥६॥

१००. सहस्राक्षस्तृणतुषे वज्रहस्तो गृहव्यये।
अशनाच्छादनच्छेदात्कदर्यः पाकशासनः ॥७॥

१०१. नीरसस्य कदर्यस्य माधुर्यं वचने कथम्।
गृहे लवणहीनस्य लावण्यं वदने कुतः ॥८॥

१०२. कदर्यश्चर्मवसनो रुक्षोऽस्नानात्सदा जटी।
मलेन श्यामलगलः शूली विलवणाशनात् ॥९॥

१०३. कोऽन्यः कदर्यसदृशो दाता जगति जायते।
नाश्नात्यदत्वा योऽर्थिभ्यो गले हस्तं गृहेऽर्गलम् ॥१२॥

१०४. पटी पितामहक्रीता तत्पर्वाप्तिश्च शाटकः।
दिव्यवस्त्रस्य लुब्धस्य क्षीयते न युगैरपि ॥१४॥

१०५. दिव्यवस्त्रस्य लुब्धस्य त्यक्तपुण्यदिनस्थितेः।
अदृष्टलवणा भार्या प्रातिवेश्यैर्निमन्त्र्यते ॥१५॥

१०६. मुष्टिमानेन दत्वापि लुब्धो धान्यं गृहव्यये।
मृतो मुष्टिं समादाय क्लेशमूल्यं न गच्छति ॥१६॥

१०७. कदर्यः स्वजनं दृष्ट्वा यदृच्छोपनतं गृहे।
करोति दारकलहव्याजेनानशनव्रतम् ॥१८॥

१०८. कदर्यः कुशलप्रश्नं न करोति शृणोति वा।
अभ्यागतस्य सायाह्ने पश्चाद् भोजनशंकया ॥१९॥

१०९. जीवतः संचिताद्यस्य न निर्याति कपर्दिका।
म्रियमाणस्य तस्यैव सक्तुत्सर्वं प्रयाति च ॥२२॥

९९. धन, भूमि, घर, स्त्री, जन्म भरका संचित सब कुछ
कंजूस और वृद्धका अन्तमें दूसरेके लिये ही है ।।६।।

१००. घास-भूसेके खर्चेमें हजार आंखोंवाला, घरके खर्चेमें मुट्ठीबांधे,
और असन-बसनके छेदन करनेमें कंजूस इन्द्र समान है ।।७।।

१०१. नीरस कंजूसके वचनमें मधुरता कैसे हो सकती है?
लवणहीनके घरमें मुखमें लावण्य कहांसे ।।८।।

१०२. कंजूस, चमड़ा पहननेवाला रूखा, न-नहानेसे सदा जटाधारी,
मैलसे काले कंठवाला, बिना लवणके खानेसे शंकर है ।।९।।

१०३. संसारमें कंजूसके समान कौन दूसरा दाता पैदा हुआ,
जो कि याचकोंके गलेमें हाथ और घरमें अर्गला दिये बिना खाना
नहीं खाता ।।१२।।

१०४. दादाकी खरीदी धोती और उससे भी पहले मिला शाटक,
दिव्य वस्त्रधारी कंजूसके लिये युगों तक भी क्षीण नहीं होता ।।१४।।

१०५. उत्सव-रहित त्योहार छोड़े कंजूसकी,
आंखसे नमक न देखे पत्नीको पड़ोसी न्योतते हैं ।।१५।।

१०६. कंजूस घरके खर्चेके लिये अनाजको मुट्ठीसे नापके देकर भी,
मुट्ठी के लिये मरकर हुये क्लेशके मूल्यको नहीं पाता ।।१६।।

१०७. कंजूस अकस्मात् घरपर आये स्वजनको देखकर,
गृहिणीसे कलहके बहाने अनशन व्रत कर लेता है ।।१८।।

१०८. पीछे भोजन देनेके डरसे कंजूस शामको अभ्यागतसे,
न कुशल प्रश्न करता, न सुनता है ।।१९।।

१०९. जीते जी जिसके संचित धनमेंसे एक कौड़ी नहीं बाहर जाती,
मरते हुये उसीका सब एक ही बार चला जाता है ।।२२।।

११०. नैष्ठुर्यं नैरपेक्ष्यं च शाठ्यं क्रौर्यमनार्जवम् ।
कृतविस्मरणं यच्च तत्कदर्यस्य लक्षणम् ॥२६॥

१११. अचुल्लीपाकमस्मेरमसुखं निर्जनञ्च यत् ।
यदुत्सवकथाहीनं तत्कदर्यगृहं विदुः ॥२८॥

११२. नृत्यत्यवृष्टिषु पुरा ह्यतिवृष्टिषु नृत्यति ।
दुर्भिक्षोपप्लवाकांक्षी कदर्यो धान्यगौरवात् ॥३४॥

११३. विरमति मतिहीनो लाभलोभेन वित्तं,
जरयति यतिरूपः संयमादिन्द्रियेच्छाम् ।
चरति च रतिविघ्नं सव्ययत्वाद् गृहिण्याः,
स्वधननिधनरक्षाचार्यवर्यः कदर्यः ॥३६॥

—उपदेशः २

४१. विल्हण (१०८० ई०)

यह कश्मीरके रहनेवाले थे। इनके पिताका नाम ज्येष्ठकलश, दादाका नाम राजकलश और परदादाका नाम मुक्तिकलश था। मां नागदेवी थीं। इष्टराय और आनंद इनके दो भाई थे। अपने ऐतिहासिक महाकाव्य "विक्रमांकदेवचरित" में इन्होंने अपने बारेमें बहुत सी बातें लिखी हैं। विद्या-समाप्तिके बाद तरुण विल्हणने अनुकूल दरबार ढूंढ़नेके लिए प्रस्थान किया। मथुरा, कन्नौज, प्रयाग और दूसरे स्थानोंमें होते वह कल्याण नगरमें पहुंचे, जहां चालुक्य-वंशके राजा छठें विक्रमादित्य (१०७६-११२७ ई०)

११०. निष्ठुरता, निरपेक्षता, शठता, क्रूरता, कुटिलता,
और उपकारका विस्मरण–यह है कंजूसका लक्षण ।।२६।।

१११ जहां बिना पाक चूल्हा, न मुस्कुराता मुख है, और जो निर्जन है,
उत्सवकी जहां कथा नहीं, उसे कंजूसका घर जानते हैं ।।२८।।

११२. वृष्टि न होने पर पहले जो नाचता, अतिवृष्टिपर जो नाचता है,
अनाजके दामके बढ़नेके ख्यालसे कंजूस सूखे और बाढ़को चाहता
है ।।३४।।

११३. लाभके लोभसे वह मतिहीन धन नहीं भोगता, (और)
संयम के कारण यतिकी तरह इन्द्रियोंकी इच्छाओंको नष्ट करता है।
खर्चीलेपनके कारण गृहिणीकी रतिमें विघ्न करता है,
कंजूस अपने धनके नाशकी रक्षामें बड़ा आचार्य है।

—उपदेश २

४१. बिल्हण (१०८० ई०)

का शासन था। इन्हींके बारेमें १८ सर्गोंमें बिल्हणने उक्त काव्य लिखा। इनका दूसरा ग्रंथ "बिल्हण-चरित' है, जिसमें गुजरातके राजा वीरसिंहकी कन्या शशिकलासे कवि के प्रेमका वर्णन है। संभवतः कल्याणसे वह गुजरात गये, और वहीं बस गये। बिल्हणने कल्पना और पौराणिक आख्यानोंको छोड़कर वास्तविक जीवनको चित्रित करनेका एक नया मार्ग दिखलाया, लेकिन संस्कृतके कवियोंने उनका अनुसरण नहीं किया।

बिल्हणचरितम्[1]

(१) बिल्हण-शिष्या—

१. स्वर्गावनीविमलमण्डलखण्डतुल्ये,
भूमण्डले महिलपत्तननामधेये।
वारांगगुर्जरजनैः परिसेव्यमाने
भोगी बभूव नृपतिः किल वीरसिंहः ॥२॥

२. चत्वार एव निजधर्मरताः सदैव,
वर्णाश्च यस्य नगरे रजनीकरस्य।
चंचद्गवाक्षपथि वीक्षणदृश्यवक्त्रैः—
बिम्बोदयं प्रकटयन्ति दिनेऽपि नार्यः ॥३॥

३. यो वैरिवीरवरवारणदर्पसिंहो,
विद्याविनोदविविधाभिरसः कलावान्।
गाम्भीर्यधैर्यगुरुदानगुणैः स लोकं,
पाति स्म वीरनृपतिर्निजराजधर्मैः ॥४॥

४. इत्थं नृपेण रजनीकरवक्त्रबिम्बा,
राज्ञोऽप्यवन्तिनृपतेरतुलस्य पुत्री।
पाणिग्रहेण विधिना विहिता सुनारा
मुख्या बभूव सकलासु वरांगनासु ॥५॥

५. कालक्रमेण विमलां कमलासमानां,
चन्द्राननां नयननिर्जितपद्मपत्राम्।
चन्द्रोदयेऽथ नृपतेः किल पट्टराज्ञी,
जज्ञे कलां शशिकलामिति सत्यनाम्नीम् ॥६॥

---

१ काव्यमाला १३, निर्णय सागर प्रेस, बंबई

बिल्हण-चरित

१. बिल्हण की शिष्या—

१. स्वर्गभूमिके निर्मल मंडलके खंडके समान,
महिलपत्तन[1] (अणहिल पाटन) नामवाले भूमिपर,
सुन्दर-शरीर गुर्जर जनों द्वारा सेवित,
वीरसिंह नामक भोगी नृपति था ॥२॥

२. जिस चन्द्रमाके नगरमें चारों,
वर्ण सदा अपने धर्ममें रत रहते थे।
और दिनमें भी सुन्दर गवाक्षोंसे देखनेमें दृश्य मुखोंसे,
स्त्रियां (चंद्र-)बिम्बके उदयको प्रकट करती थीं ॥३॥

३. जो शत्रु-वीरोंके श्रेष्ठ गजोंके दर्पके लिये सिंह,
विद्या-विनोदमें विविध प्रकार रस लेनेवाला, कलावान् था।
वह गाम्भीर्य, धैर्य, बड़े दान गुणोंवाला
वीर-सिंह नृपति राजधर्मोंसे प्रजा-पालन करता था ॥४॥

४. इस प्रकार राजाने चन्द्रमासी मुख बिम्बवाली,
अतुल नृपति अवन्ति-राजकी पुत्री को,
विधिपूर्वक व्याह कर सुपत्नी बनाया,
(वह) सारी सुन्दरियोंमें प्रधाना थी ॥५॥

५. काल पाकर राजाकी पटरानीने
विमल लक्ष्मी समान चन्द्रमुखी,
नयनसे पद्मपत्रको जीतनेवाली,
शशिकला सच्चे नामवाली कलाको जन्म दिया ॥६॥

६. सा वर्धते शशिकला शशिनः कलेव,
राज्ञो विशिष्टतनया ह्यधिकैकभाग्या।
अल्पैर्दिनैः कतिपयैरपि राजधानीं,
आगत्य वाक्यसुधया जनकं तुतोष ॥७॥

७. राजीवपत्रनयना नरराजकन्या,
यल्लीलयापि वचनं मधुरं बभाषे।
तद्वीरसिंहनृपतेरमृतोपमानं,
चित्ते बभूव सुखदायि दिवा निशायाम् ॥९॥

८. श्रीराजहंसनमितेन पुरोहितेन,
राज्ञे निवेद्य विजिताखिलतत्कथेन।
"काश्मीरकः कविरसौ गुणिनं दिदृक्षुः,
त्वामागतः क्षितिप, बिल्हणनामधेयः ॥११॥

९. मुक्तेन्दुकुन्दकुसुमस्फटिकावदाता,
सर्वामरेन्द्रभुजगेन्द्रनरेन्द्रवन्द्या।
मन्त्रार्थतन्त्रजननी जननी श्रुतीनां,
श्रीशारदास्ति विषयं तत आगतोऽयम्" ॥१२॥

१०. कृत्वा नतिं विषयपूर्वमथाशिषं तां,
जग्राह वीरनृपतिः कविराजतोऽपि।
मायाप्रपंचजगदर्णवभीतभीतः,
सिद्धोपदेशमिव धर्मपरश्च लोकः ॥१३॥

११. तस्मै विहस्य कविराजमथ क्षितीशः,
प्रीत्या सुताध्ययनकारककोविदार्थी।
दत्त्वा निकाममुदिताय मनोरथश्रीः,
श्रीवीरसिंहनृपतिर्मुदमाससाद ॥१५॥

६. यह शशिकला शशिकी कलाकी तरह बढ़ती,
अधिकाधिक भाग्यशालिनी राजाकी विशिष्ट कन्या,
थोड़े ही दिनोंमें राजधानीमें
आकर (अपने) वचनामृतसे पिताको संतुष्ट करने लगी ।।७।।

७. कमल-पत्र जैसे नेत्रोंवाली नरराजकी कन्या,
कीलासे ही जो मधुर वचन बोलती थी।
सो बीरसिंह राजाके चित्तको अमृत-समान
दिन-रात सुखदायक होता था ।।९।।

८. श्री राजहंससे नमस्कृत उसके कथनसे जीतनेवाले
पुरोहितने राजासे निवेदन किया—
"हे क्षितिपति, यह काश्मीरी बिल्हण नामक कवि
गुणीके देखनेका इच्छुक (तुम्हारे पास) आया है ।।११।।

९. मुक्ता-चन्द्र-कुन्दकुसुम-स्फटिककी तरह श्वेत,
सारे अमरेन्द्रों, भुजगेन्द्रों, नरेन्द्रों द्वारा वंदनीया,
मन्त्र-अर्थतंत्रकी उत्पादिका, श्रुतियोंकी जननी,
श्री शारदा का जो एक(मात्रा) देश है, वहांसे यह आया है ।।१२।।

१०. पहिले नमस्कार करके फिर कविराजसे आशीर्वाद,
वीर नृपतिने (ऐसे) ग्रहण किया,
जैसे माया-प्रपंचरूपी भवसागरसे भयभीत,
धर्मपरायण आदमी सिद्धोपदेशको ग्रहण करता है ।।१३।।

११. कविको बिहँसकर मनोवांछित लक्ष्मी दी।
फिर राजाकी प्रसन्नतासे
पंडित को खोजनेवाले श्रीवीरसिंह नृपतिने
अति मुदित हो पुत्री को पढ़ाने के लिये दिया ।।१५।।

१२. स्नानानुलेपनमनोरमभोजनानि,
दिव्यांबराणि बहुमानपुरःसराणि।
काश्मीरकः कविवरोऽथ निशम्य रात्रौ
प्रातः पुरोहितयुतो नृपतिं ददर्श ॥१६॥

१३. सद्यः प्रबन्धविधिना गुरुणा कवित्वं,
यद्रम्यपद्यरचनामधुना कवीन्द्रः।
विद्यानगागहनवासपयोनिधित्वं,
धीरं तुतोष स यथा न तथान्य एव ॥१७॥

१४. एवं विलोक्य लसितार्थपदं कवीन्द्र-
मामन्त्र्य तत्र तनयां कवये निवेद्य।
"अध्यापय प्रमुदितो भगवन्निमां त्वं
कृत्वा प्रसादम"थ चन्द्रकलामुवाच ॥१८॥

१५. उन्निद्रबुद्धिकुसुमः कविशेखरोऽयं,
काश्मीरकः शशिकले कुरु पादपूजाम्।
क्रीडां विहाय सुकसारिगतां सखीनां,
शास्त्रं गृहाण वचनं कविबिल्हणस्य" ॥१९॥

१६. राजा विमृश्य गुणिनो गुरुभावभक्तिं,
व्यक्ताक्षरक्रमवतीमपि राजपुत्रीम्।
दृष्ट्वा व्यपाठयदतिप्रयतः कवीन्द्रः,
स्लोकैर्दिनैः शशिकला विदुषी बभूव ॥२०॥

१७. सा प्राकृतानि विमलानि च संस्कृतानि
शास्त्राण्यधीत्य किल चन्द्रकला सुशीला।
श्रीबिल्हणं निजगुरुं प्रणिपत्य साक्षात्,
तं हर्षयां नृपतिमास सरस्वतीं च ॥२१॥

१२. स्नान अनुलेपन, मनोरम भोजन,
बहुमानके साथ दिव्य वस्त्र को।
कश्मीरी कविवरने रातको सुनकर,
प्रातः पुरोहितके साथ नृपतिका दर्शन किया।।१६।।

१३. तुरन्त बड़े प्रबंध का रचना कवित्व,
और रम्य-पद्य-निर्माण के द्वारा,
विद्यारूपी नदीके बहन-निवास-सागरत्वसे,
कवीन्द्रने वीर को जैसा तुष्ट किया, वैसा अन्य नहीं ।।१७।।

१४. इस प्रकार उल्लसित अर्थ-पदवाले कवीन्द्रको देख
अपनी पुत्रीको वहाँ बुला राजाने कविसे निवेदन किया—
"हे भगवन्, तुम खुशीसे कृपाकर इसे पढ़ाओ"
फिर उसने शशिकलासे कहा—।।१८।।

१५. "हे शशिकला, यह फूले बुद्धि रूपी पुष्पवाले,
कश्मीरी कविश्रेष्ठ हैं, इनकी पाद-पूजा कर,
सखियोंके तोते-मैनोंके खेलको छोड़,
कवि बिल्हणके वचन-शास्त्रको ग्रहण कर"।।१९।।

१६. राजाके साथ विचार कर गुणीके प्रति बड़ी भावभक्तिवाली;
अक्षर-क्रम जाननेवाली राजकन्याको,
देखकर कवीन्द्रने अत्यन्त तत्परतासे पढ़ाया,
(और) थोड़े ही दिनोंमें शशिकला विदुषी हो गई।।२०।।

१७. उस सुशीला शशिकलाने प्राकृत और
निर्मल संस्कृत शास्त्रोंको पढ़कर।
अपने गुरु श्रीबिल्हणको प्रणाम करके,
उन्हें, नृपति और सरस्वतीको (भी) हर्षित किया।।२१।।

(२) राजकन्या-प्रेम—

१८. तस्या गृहे प्रवरकुंकुमपुष्पवासि-
कर्पूरगौरसरसागरुचन्दनाढ्ये ।
श्रृंगारसारगहनं किल कामशास्त्र-
मध्यापयत्यमलचन्द्रकलां कदाचित् ॥२२॥

१९. विज्ञातमन्मथकला स्मरबाणविद्धा,
तस्यान्यजन्मरमणी नरनाथपुत्री ।
भाव्यर्थभावितमनोभवतुल्यकान्ते,
कान्ते रसान्विदधति स्म दृशोविकारान् ॥२३॥

२०. प्रेमादरात्तरलितेन विलोचनेन,
वक्त्रेण चारुहसितेन सुधाधरेण ।
ईषद्विजृम्भितकुचद्वितयेन बाला,
विद्वांसमाशु वशिनं च वशीचकार ॥२४॥

२१. श्रीपद्मपत्रनयनां वरपद्महस्तां,
पद्मप्रकृष्टचरणां शुचिपद्मगन्धाम् ।
तां पद्मिनीमिव सुपद्मनिकेतनां च,
मेने कविः शशिकलामिव कामवल्लीम् ॥२५॥

२२. सा प्राह तं कविमवेक्ष्य मनोऽनुरागं,
"स्वामिन्, द्वयं भवति सर्वजनानुशान्त्यै ।
तत्त्वं शिवस्य शिवदायि च कामतत्त्वं,
त्वं संप्रति स्मरगुरुः स्मरयोग्यमत्र" ॥२६॥

२३. इत्युक्त एव विजने स विचार्य सर्वं,
गान्धर्वराजविधिना जगृहेऽथ पाणिम् ।
कामी युवा स्मरकलाकुशला च बाला,
दैवात्तयोरघटितं घटितं बभूव ॥२७॥

२. राजकन्यासे प्रेम—

१८. उसके श्रेष्ठ केसर-पुणके गंधवाले
कपूरसे गौर सरस अगर-चंदनयुक्त घरमें,
किसी समय पर शृंगार-सारवाला गहन कामशास्त्र
निर्मल शशिकलाको पढ़ाते ।।२२।।

१९. दूसरे जन्मकी कविकी पत्नी राजपुत्रीने,
कामकलाको जान कामबाणसे बिद्धा हो,
भावी अर्थो द्वारा प्रभावित काम-तुल्य कमनीय,
प्रियतममें (अपने) नेत्रोंसे रस-विकार पैदा किये ।।२३।।

२०. प्रेम-आदरसे तरल नेत्रों द्वारा,
सुन्दर हास और अमृत-अधरवाले-मुख तथा
थोड़े उद्बुद्ध दोनों स्तनों द्वारा उस बालाने,
(उस) संयमी और विद्वान्‌को जल्दी अपने वशमें कर लिया ।।२४।।

२१. लक्ष्मी के कमल-पत्र सी आँखोंवाली श्रेष्ठ पद्मसे हाथोंवाली,
पद्म से उत्तम चरणोंवाली, पवित्र पद्म सी गंधवाली,
पद्मिनी (लक्ष्मी) की तरह ही सुन्दर पद्मके गृहवाली,
काम-लतासी शशिकलाको कविने समझा ।।२५।।

२२. उसने कविको देखकर अपने मनके अनुरागके बारे में कहा :
"हे स्वामी, सभी जनोंकी शान्तिके लिये दो बातें होती हैं :
शिवका तत्वज्ञान और शिव (कल्याण)-दायक कामतत्व ।
इस समय तुम यहां काम जैसे योग्य कामगुरु हैं" ।।२६।।

२३. एकान्तमें ऐसा कहनेपर उस कविने सब विचार कर,
गंधर्व विवाह-विधिसे उसका पाणिग्रहण किया ।
कामी तरुण था और बाला काम-कलामें कुशल थी,
दैवसे उन दोनोंके लिये अघटित (घटना) घटित हो गई ।।२७।।

२४. सा कामशास्त्रविधिना किल कामकेली-
लीलाविलासनिलयं चकमे कवीशम् ।
अन्योन्यनूतनसुयौवनमोहितां च,
वाक्यैः सुधारससमैः स ररंज बालाम् ॥२८॥

२५. राजप्रियोऽपि विविधागमपारगोऽपि,
भुंक्ते स गूढ़चरितो नरराजपुत्रीम् ।
शास्त्रोदितान्यनुदितानि च मोहनानि;
पश्यन्नहर्निशमतीव निगूढचेताः ॥२९॥

(३) रहस्यभेदः—

२६. आः कस्य सांप्रतमहो कुपितो विधाता,
कृत्वेति ते हृदि ततः प्रणिपत्य भूपम् ।
"देवाभयं शशिकला पुरुषोपभुक्ता,
सत्याय ते स गुरुरीक्षित एव नूनम्" ॥४६।.

२७. रक्षाजनेन कविनामनिवेदितेन,
भूपो बभूव किल दोलितचित्तवृत्तिः ।
"किं सत्यमस्ति कथितं वितथं तु किंवा,
जीवप्रियं द्वितयमेव कविः सुता मे" ॥४७॥

२८. निर्वासनं स्वनगरात्खरपृष्ठयानं,
नाशं करस्य वधबन्धनकं समस्तम् ।
अंगीचकार कुसुमेषुनिपीडितांगः,
काश्मीरको नृपसुतारमणानुगूढ़ः ॥५५॥

२९. अलमतिचपलत्वात्स्वप्नमायोपमत्वात्,
परिणतिविरसत्वात्संगमेनांगनायाः ।
इति यदि शतकृत्वस्तत्त्वमालोकयामस्,
तदपि न हरिणाक्षीं विस्मरत्यन्तरात्मा ॥५८॥

२४. उसने काम-शास्त्रकी विधिसे काम-क्रीड़ा के
लीला-विलासके भवन कवीशको प्यार किया।
और परस्पर (अपने) सुन्दर नवयौवन से मोहित उस बाला रंजन
का, सुधारस-तुल्य (अपने) वचनोंसे कविने किया।।२८।।

२५. राजाका प्रिय, विविध शास्त्रोंमें पारंगत,
शास्त्रमें कहीं-न-कही मोहन बातोंको,
देखते रात-दिन छिपकर,
वह कवि राजकन्याका उपभोग करता ।।२९।।

३. रहस्यका प्रकट होना—

२६. "इस समय आह, किसके ऊपर विधाता कुपित हुआ।
यह मनमें करके राजाको प्रमाण कर (पहरेदार ने कहा)—
"हे देव, अभय दें, शशिकलाको पुरुषने उपभोग किया है।
तुम्हें सच (बतानेके) लिये, निश्चित उस गुरुको ही देखा है" ।।४६।।

२७. रक्षक पुरुषके कविका नाम कहने पर,
भूपका चित्त चंचल हो गया,
"क्या सत्य है, अथवा असत्य,
कवि और पुत्री दोनों ही मेरे लिये प्राणोंसे प्रिय हैं" ।।४७।।

२८. गदहेकी पीठपर चढ़ने अपने नगरसे निर्वासनके दण्ड,
हाथ काटने सारे बध-बन्धनको,
नृप-सुताके रमणमें रत
काम-पीड़ित कश्मीरीने स्वीकार किया।।५५।।

२९. अंगनाके संगममें अति-चपलता स्वप्न-मायाकी समानता,
अन्तमें विरसता के कारण
यदि सौ बार तत्त्व पर विचार करते हैं,
तो भी मेरी अन्तरात्मा मृगनयनीको नहीं भूलना चाहती।।५८।।

३०. के वा न सन्ति भुवि वारिधरावतंसा,
हंसावलीवलयिनो जलसंनिवेशाः।
किं चातकः फलमवेक्ष्य स वज्रधारां,
पौरंदरीं कलयते नववारिधाराम् ॥५९॥

३१. "श्रीवीरसिंह नृपवीर विपक्षवीर,
मत्तेभसिंह नरसिंह नरेन्द्रसिंह।
वैदेशिकः स्वकुललांछनतां विधत्ते,
तद्वीक्ष्य किं क्षमसि किं श्रुतमेव नाम्नि" ॥६१॥

३२. वंशार्चितेन कथिते वचने नृवीरो
जज्वाल वह्निरिव वातविवृद्धवेगः।
आनीय तद्गृहसखीश्चरितं च पृष्ट्वा
ताभ्यः समस्तमपि भूपतिराससाद ॥६२॥

(४) शूलारोहणदण्डः—

३३. ज्ञात्वा स्वयं सकलमर्थमनर्थमूलं,
प्रोवाच रोषवशगः शुभमन्त्रिणस्तान्।
"चौरस्य किं भवति" मन्त्रिभिरेवमुक्तं—
"शूलाधिरोहणमिति", "क्रियतां च तस्य" ॥६३॥

३४. भूपाज्ञया सपदि वर्षधरैर्विगाढं,
तं नीयमानमुपलक्ष्य जनस्त्ववोचत्।—
"चौरः किमेष सुकविः प्रभुरत्नहारी"
लोकोक्तिरेवमभवन्नगरे समस्ते ॥६४॥

३५. द्वारस्थितामथ निरीक्ष्य नरेन्द्रपुत्रीं
नेत्रच्छटां प्रदधतीं स उवाच कान्ताम्।
"बालेऽधुना सुरवधूरमणाय यामि,
तन्नागमिष्यति पुनः कवि बिल्हणस्त्वाम्" ॥६५॥

३०. संसारमें मेघोंके आभूषणवाले,
हंस-पंक्तिके कंकणवाले, जल-शरीरयुक्त कौन नहीं है।
क्या चातक फलको सोचकर पुरन्दरकी
नवीन जलधारावाली वज्र धाराको ग्रहण करता है" ॥५९॥

३१. "हे वीरसिंह वीर नृपति शत्रु-वीर रूपी
मस्त गजके सिंह, हे नरसिंह, हे नरेन्द्रसिंह,
वैदेशिक बिल्हण अपने कुलको लांछित कर रहा है।
उसे देखकर क्यों क्षमा करते हो? क्या सुना ही नहीं" ॥६१॥

३२. कुलपूज्य पुरोहित के कहे वचनसे वीरसिंह
वायुसे प्रबल हुये अग्निकी तरह भभक उठा।
शशिकला का गृह सखियोंको बुला उसके चरित्रके बारेमें पूछकर
उनसे सब बातें भूपतिने जान लीं ॥६२॥

४. सूली का दंड—

३३. अनर्थकी जड़ सभी बातोंको स्वयं जानकर,
रुष्ट हो, उसने अपने भले मंत्रियोंसे कहा—
"चोरका क्या दंड होता है?" तब मंत्रियोंने कहा—
"सूलीपर चढ़ाना"; "तो कविको यह करो" ॥६३॥

३४. राजाकी आज्ञासे तुरन्त हिजड़ोंने उसे जोरसे पकड़ लिया।
उसे ले जाये जाते देखकर लोगोंने कहा—
"यह सुकवि क्या प्रभुके रत्नका हरने वाला चोर है?"
इस प्रकार सारे नगरमें लोगों में बात फैली ॥६४॥

३५. तब उस कविने द्वारपर अवस्थित नेत्र-शोभा-धारिणी
प्रिया नरेन्द्र-कन्या से कहा:
"बाले, देवांगनाओंके साथ रमण करनेके लिये मैं जा रहा हूं।
सो कवि बिल्हण अब फिर तेरे पास नहीं आयेगा" ॥६५॥

३६. वध्यावनीमथ निरोपितशूलरौद्रां,
नीत्वा कविं तु वधकाः कथयांबभूवुः—
"स्नानं विधेहि परिचिन्तय देवमाद्य-
मन्ते मतिर्भवति या सुकवे गतिः सा" ॥७२॥

(५) प्रियास्मरणम्—

३७. "अद्यापि तां कनकचम्पकदामगौरीं,
फुल्लारविन्दवदनां नवरोमराजीम्।
सुप्तोत्थितां मदनविह्वलसालसांगी,
विद्यां प्रमादगलितामिव चिन्तयामि ॥७५॥

३८. अद्यापि तद्विकसिताम्बुजमध्यगौरं,
गोरोचनातिलकपाण्डुरमध्यदेशम्।
ईषन्मदालसविघूर्णितदृष्टिपातं,
कान्तामुखं पथि मया सह गच्छतीं च ॥७६॥

३९. अद्यापि तद्विकचकुन्दसमानदन्तं,
तिर्यग्विवर्तितविलोलविलोचनान्तम्।
तस्या मुखं मयि मनागपि विस्मरामि,
चित्तात्कृतज्ञ इव हन्त कृतोपकारम् ॥८२॥

४०. अद्यापि तत्सरलमंजुलतुंगभासं,
किंचिन्स्मितोच्छ्वसितपाण्डुरगण्डभागम्।
पश्यामि पूर्णशरदिन्दुसमानकान्ति,
कान्ताननं विकचपंकजपत्रनेत्रम् ॥८३॥

४१. अद्यापि तन्मदनकार्मुकभंगुरभ्रु,
दन्तद्युतिप्रकरकर्बुरिताधरोष्टम्।
कर्णावसक्तपुलकोज्वलदन्तपत्रं,
तस्याः पुनः पुनरपीह मुखं स्मरामि ॥८४॥

३६. सूली देनेके भयंकर वध्यस्थान मे,
कविको ले जाकर वधकोंने कहा —
"हे सुकवि, स्नान करो, पहले देवताका ध्यान करो।
अन्तमें जो मति सो गति होती है" ।।७२।।

५. प्रिया की याद—

३७. "अब भी मैं सुवर्ण-चम्पक-माला सी गोरी,
फुल्ल कमलमुखवाली, नवीनरोमपंक्तिवाली,
सोयेसे उठी, कामसे विह्वल-अलस अंगवाली,
प्रमाद से गिरी विद्याधरी की तरह मैं उसी को सोचता हूं।।७५।।

३८. अब भी उस फूले कमल के गर्भ जैसे गौर,
गोरोचनके तिलकसे पांडुवर्ण मध्यदेशवाले,
मदके खुमारसे थोड़ी चकराती दृष्टिपातवाले,
कान्ता-मुख और मेरे साथ पथसे जाती उसको सोचता हूं।।७६।।

३९. आज भी उस फुल्ल कुंद समान दांतवाले,
तिरछे घूमे चंचल नेत्रके कोरोंवाले,
उसके मुंहको, मेरे ऊपर किये उपकारको
हन्त चित्तसे कृतज्ञकी तरह जरा भी नही भूलता हूं।।८२।।

४०. आज भी उस सरल मंजुल उच्च प्रभा-युक्त
कुछ मुस्कराते उच्छ्वसित गुलाबी कपोलवाली,
पूर्ण शरद्‌चन्द्रमाके समान कान्तिवाली,
फुल्ल पंकज-पत्र जैसे नयनवाली कान्ताके मुखको मैं देख रहा हूं।।८३।।

४१. आज भी मदन के धनुषसे कुटिल भौंहोंवाले,
दांतोंके प्रकाशोंसे प्रतिबिंबित अधरोष्ठवाले,
कानोंमें लगे पुलक उज्ज्वल खौरके दन्त-पत्रवाले
उसके मुखको फिर-फिर यहां याद करता हूं।।८४।।

४२. अद्यापि तां मयि कृतागसि धृष्टभावं,
संभावयत्यपि मुहुर्विनिगृहीतवाचम् ।
अन्तर्निरुद्धगुरुकोपसबाष्पकण्ठीं,
निःश्वासशुष्यदधरां रुदतीं स्मरामि ॥८९॥

४३. अद्यापि तामितरतश्च पुरश्च पश्चा-
दन्तर्बहिः परित एव परिभ्रमन्तीम् ।
पश्यामि फुल्लकनकाम्बुजसंनिभेन,
वक्त्रेण चारुपरिवर्तितलोचनेन ॥९३॥

४४. अद्यापि तानि मम चेतसि विस्फुरन्ति,
बिम्बोष्ठमृष्टपरिकीर्णशुचिस्मितानि ।
पीयूषपूरमधुराणि त्वदुत्तराणि,
वाक्यानि मन्मथभवानि मृदूनि यस्याः ॥९८॥

४५. अद्यापि तामरुणयत्यरुणेन्तरिक्ष-
मापृच्छमानमपि नाम विधारयन्तीम् ।
उत्थाप्य निश्चलदृशो मम निःश्वसन्तीं
चिन्ताकुलां किमपि नम्रमुखीं स्मरामि ॥१०६॥

४६. अद्यापि तां विलुलिताकुलकेशपाशां
किञ्चित्समुन्मिषितघूर्णितजिह्मनेत्राम् ।
सुप्तोत्थितां विदधतीं मुहुरंगभंगं,
पश्यामि चारुमधुरं बहुशः स्मरन्तीम् ॥११०॥

४७. अद्यापि ता सुवदनां वलभीनिषण्णां,
तद्गेहसन्मुखमहो खलु दृष्टमत्र ।
मर्मोत्तरं प्रियसखीषु कृतस्मितासु,
लज्जां विलक्ष्य हसितां हृदि चिन्तयामि ॥१११॥

४२. आज भी गुरु ढीठ अपराधीके प्रति,
क्षण भर वचन रोकनेवाली,
भीतर रुंधे भारी कोपके कारण अश्रु-सहित कण्ठवाली,
सांससे सूखते अधरोंके साथ रोती उसे मैं याद करता हूं ॥८९॥

४३. आज भी उसे दूसरी जगह, आगे पीछे,
भीतर, बाहर चारों ओर
फुल्ल सुवर्ण कमल सदृश मुख और,
सुन्दर तिरछे लोचनोंके साथ घूमती देखता हूं ॥९३॥

४४. आज भी बिम्बाधरसे मिश्रित विकीर्ण शुभ्र मुस्कान,
अमृतधारासे मधुर, तेरे वे उत्तर,
जिसके काम-प्रसूत मृदु वाक्य हैं;
मेरे चित्तमें उठ रहे हैं ॥९८॥

४५. आज भी उसे पूछते, आकाशके अरुणसे
लाल होते समय धारण करती,
मेरे निश्चल नेत्रोंको उठा लम्बी सांस लेती,
चिन्ताकुल कुछ फीके मुखवाली मैं याद करता हूं ॥१०६॥

४६. आज भी चंचल-व्याकुल केशपाशों,
कुछ खुले चकराते तिरछे नेत्रोंवाली,
सोकर उठ जरा अंगड़ाई लेती,
सुन्दर मधुर बहुत बार याद करती उसे मैं देखता हूं ॥११०॥

४७. आज भी अटारीपर बैठी,
यहां उसके घरके सामने अहो देखा।
मुस्काराते प्रिय सखियों को गुप्त उत्तर (दे)
लज्जा करके सुखी हंसते उसे हृदयमें सोचता हूं ॥१११॥

४८. अद्यापि तामुपवने परिवारयुक्तां,
संचिन्तयाम्युपगतां च महोत्सवाय।
मां पार्श्वसंनिहितलोकभयात्सशंकं,
व्यावर्तितेक्षणमनुक्षणमीक्षमाणाम्" ॥११८॥

४९. "त्वं विद्वन्गुरुरेव वाडवजनैः पूज्यः सतां सर्वदा
किं कुर्मः कथयाम संप्रति वयं लज्जान्विताधोमुखाः।
राजाज्ञां न करोति पण्डितवराधीनो यतः सेवकः,
कः कोपं सहते पराभवपदं प्राप्नोति को मानवः" ॥१२६॥

५०. "भवत्कृते चांजनमंजुलाक्षि, शिरो मदीयं यदि याति यातु।
नीतानि नाशं जनकात्मजायै दशाननेनापि दशाननानि"
॥१३१॥

५१. "प्रासादे सा पथि पथि च सा पृष्ठतः सा पुरः सा,
पर्यंके सा दिशि दिशि सा नोर्ध्वतः सा ह्यधः सा।
हृद्यन्तः सा बहिरपि च सा नास्ति दृश्यं द्वितीयं,
सा सा सा सा त्रिभुवनगता तन्मयं विश्वमेतत् ॥१३२॥

५२. मम यदि सुकृतं स्यात्पूर्वजन्मार्जितं चेद्,
यदि सकलसुराणामर्चनं मेऽस्ति किञ्चित्।
यजनहवनवेदाध्यासनं यन्ममास्ति,
तदपि शशिकला मे प्राणनाथा तदास्तु" ॥१३५॥

× × ×

५३. इत्थं विज्ञाप्य देवेभ्यस्तूष्णीं तस्थौ कवीश्वरः।
अत्रान्तरे चन्द्रलेखा चिन्तां चक्रे तदोचिताम् ॥१३७॥

× × ×

५४. इत्थं विचार्य हृदये मरणाय बुद्धिं,
मुक्त्वा सुहर्म्यमवरुह्य सुसप्तभूमिम्।
बद्ध्वा दृढं नृपसुता परिधानवस्त्रं,
तस्थौ मनो निजगुरोश्च निराशयन्ती ॥१४१॥

४८. बगलमें पास लोगों के भयसे शंका कर
दृष्टि घुमाये मुझे क्षण-क्षण देखती,
आज महोत्सवके लिये परिवारके साथ,
उपवनमें गई उसको याद करता हूं ॥११८॥

४९. "हे विद्वान्, तुम गुरु बाड़वजनों संतों द्वारा सदा पूजनीय हो।
क्या करें, लज्जासे अधोमुख हो इस वक्त हम कहते हैं।
पंडितवरके अधीन सेवक यदि राजाज्ञा नहीं पूरा करे,
तो कौन (राजाके) कोप को सहेगा, कौन मनुष्य पराभवके स्थानको पायेगा" ॥१२६॥

५०. "हे काली कोमल आंखोंवाली आपके लिये यदि मेरा सिर जाता है, तो जावे। सीताके लिये दशाननने भी अपने दशों आनन नष्ट किये" ॥१३१॥

५१. प्रासाद पर वह, प्रत्येक रास्तेपर वह, पीछे वह, आगे वह,
पलंगपर वह, दिशा-विदिशाओंमें वह, ऊपर वह, नीचे वह,
हृदयके भीतर वह और बाहर भी वह, मेरे लिये दूसरा दृश्य नहीं है।
वह-वह-वह-वह त्रिभुवन (उससे) व्याप्त है, यह विश्व तन्मय है॥१३२॥

५२. यदि पूर्व जन्मका अर्जित मेरा पुण्य है,
यदि मारे देवताओंकी कुछ पूजा की है,
मेरा यज्ञ, हवन, वेदपाठ है,
तो शशिकला मेरे प्राणोंको प्राप्त हो" ॥१३५॥

५३. इस प्रकार देवताओंसे प्रार्थना करके कवीश्वर चुप हो गये।
तब इसी बीच शशिकलाने उचित (उपाय) सोचा ॥१३७॥

५४. हृदयमें यह विचार, मरणका संकल्प कर,
सुन्दर सातमंजिलें प्रासादको छोड़-उतर
राजकन्या पहननेके वस्त्रको दृढ़तासे बांधकर
निज गुरुके मनको निराश करती खड़ी हुई ॥१४१॥

(६) मातृहृदयम्—

५५. एतस्मिन्नन्तरे नार्यस्तदा तद्भुवमागताः ।
परीक्षेपेण धावन्त्यो कुर्वन्त्यश्चाश्रुपातनम् ॥१४२॥
सुतारान्तःपुरे ताश्च प्रविष्टाः साश्रुलोचनाः ।
विह्वला विश्वसंत्यश्च त्राहि त्राहि पुनः पुनः ॥१४३॥

५६. या नार्यः समुपागता द्विजवरं द्रष्टुं समेत्याथ ताः,
शोकादात्मभुवो यथा सुवचनैः संपीडिताः सत्कवेः ।
संचिन्त्याशु गता नृवीरनृपतेरन्तःपुरं सुप्रभं,
विज्ञाता महिषी तदेव वचनं सख्याः समक्षं तदा ॥१४५॥

५७. स्त्रीणां वाक्यं तदा श्रुत्वा सत्यं सख्या उदाहृतम् ।
सुतारा विह्वलांगी सा मूर्च्छिता पतिता भुवि ॥१४६॥

५८. ज्ञातं देवि यदद्य शोकजननं विप्राय मा भा भृशं
भाव्यं तद् भविता सगोप्यवचनं धर्मस्तथा श्रूयताम् ।
पुत्री ब्रह्मवधे प्रणश्यति ध्रुवं लोकापवादं महज्,
ज्ञात्वेत्थं नृपवीरसिंहनृपतिं विज्ञापयाशु स्फुटम् ॥१४८॥

५९. नरवर दुहिता ते मृत्युमेष्यत्यदूरं,
कविवरनिहते सा सत्यमेतत्समक्षम् ।
द्वयमिह समुपेतं ब्रह्महत्या सुतायाः,
निगमजनविरुद्धं सर्वथा नैव कार्यम् ॥१४९॥

६०. दुःखेन दीनवदना सुतायाश्चरितेन सा ।
मन्दं मन्दं तथोत्थाय निरुत्साहं गता नृपम् ॥१५०॥

(७) प्रिया-प्राणयोर्लाभः—

६१. इत्थं निशम्य वचनं नृपपट्टराज्ञी,
स्त्रीणां वचः सुनयजं कलिकल्मषघ्नम् ।
गत्वा जगन्नृपवरं सहसाश्रुपूर्णा,
स्त्रीणां तदेव वचनं चरितं सुतायाः ॥१५१॥

६. माताका हृदय

५५. इसी बीच उस भूमिमें दूसरोंको हटाती
अश्रुपात करती दौड़ती नारियां आ गई ।।१४२।।
वह सुताराके अन्तःपुरमें अश्रुलोचना विह्वल,
सांस लेती फिर-फिर "त्राहि-त्राहि" करती प्रविष्ट हुई ।।१४३।।

५६. जो स्त्रियां द्विजवरको देखने आई थीं, वह,
सत्कविके स्व-निर्मित सुवचनोंसे मानो शोकसे पीड़ित,
सोचकर तुरन्त **वीरसिंह** राजाके सुप्रकाशित अन्तःपुरमें गई।
सखियोंके सामने उस वचनको तब राजमहिषीने जाना ।।१४५।।

५७. तब स्त्रियोंके सत्य वचनको सखियों से सुनकर,
रानी **सुतारा** विह्वल मूर्च्छित हो भूमिपर गिर पड़ी ।।१४६।।

५८. "हे देवि, आज शोक उत्पादक (बात) जानी, यदि ब्राह्मणको तुरन्त न बचाया, (तो) होनेवाला हो जायेगा, सो तुम धर्मके वैसे गुह्य वचनको सुनो—ब्राह्मणके मारे जानेपर (तुम्हारी) पुत्री अवश्य मरेगी। इस तरह भारी लोकापवादको, जानकर वीरसिंह नृपतिको तुम जल्दी साफ निवेदन करो" ।।१४८।।

५९. नरवर तुम्हारी बेटी अति दूर मृत्युको प्राप्त होगी।
कविवर के मारे जाने पर वह, यह सच सामने है।
यहां दोनों मौजूद हैं, ब्रह्महत्या और पुत्रीकी हत्या :
जो पुरवासी जनोंके विरुद्ध सर्वथा अ-करणीय है ।।१४९।।

६०. दुःखसे और पुत्रीके आचरणसे भी वह दीनमुखी (रानी)
धीरेसे उठकर उत्साह-रहित राजाके पास गई ।।१५०।।

७. प्रिया और प्राण मिले—

६१. राजाकी पटरानीने इस प्रकार
सुनीतियुक्त कलिके पाप-नाशक वचनको सुन,
जाकर जगत्‌के श्रेष्ठ राजासे एक एक आंसू भर,
स्त्रियों के उस वचन और पुत्रीके आचरणको सुनाया ।।१५१।।

६२. तदामात्यादयः सर्वे पुरोहितसमं जनाः।
श्रीनृवीरं नमस्कृत्य प्रोचुः प्रांजलयो वचः ॥१५३॥

६३. "स्त्रीहत्या ब्रह्महत्या द्वे त्याज्या सद्भिः सदा प्रभो।
गर्हितं सर्वशास्त्रेषु जनाय वचनं महत्" ॥१५४॥

६४. एवं विचार्य बहुधा नृपवीरसिंहः,
पथ्यं वचस्तदनु धर्मवतीं च मेने।
आदिष्टवान्वरकवेर्मरणे निषेधं,
तस्थौ तदागमनमेव निरीक्षमाणः ॥१५९॥

६५. तं भूपतिः कविवरं च विमोचयित्वा,
दत्वा सुतामपि वरिष्ठगुणाय तस्मै।
देशं तथा पुरशताधिकमेकरम्यं,
वासांसि हस्तितुरगांश्च रथांश्च पत्तीन् ॥१६०॥

६६. इत्थं भूमिपतेः परात्परतरं लब्ध्वा प्रसादं परं,
काश्मीरः कविशेखरो मुदमगाच्छ्रीबिल्हणः सत्कविः ॥
आदिष्टो नृपवीरसिंहप्रभुणा नेष्टं निजं मन्दिरं,
संप्राप्तो वरपंचशब्दनिनदैर्मार्गेऽतिथीन्पूजयन् ॥१६२॥

—बिल्हणकाव्यम्

४२. आचार्यो गोवर्धनः (११०० ई०)

बंगालके अन्तिम राजा लक्ष्मणसेन (१११६ ई०) के यह दरबारी कवि थे। इनकी एक ही कृति "आर्यासप्तशती" मिलती है, जिसे उन्होंने प्राकृतकी "गाथासप्तशती" से प्रेरणा पाकर लिखा था। अपभ्रंश-कालके संस्कृत कवियोंकी कंटीली झाड़ियों या रेगिस्तानोंमें घसिटनेके बाद गोवर्धनके पास

६२. तब अमात्य आदि पुरोहितके साथ सभी लोगोंने,
श्रीनरवीरको हाथ जोड़कर नमस्कार कर वचन कहा ॥१५३॥

६३. "हे प्रभु, स्त्री-हत्या और ब्रह्म-हत्या दोनों भलोंके लिये त्याज्य है।
सारे शास्त्रोंमें निंदित और लोगों के लिये बड़ी (बुरी) बात है"
॥१५४॥

६४. इस प्रकार वीरसिंह राजाने बहुत तरहसे विचार कर फिर उस पथ्य वचनको धर्मयुक्त भी माना (और) कविवरके मरणके निषेधकी आज्ञा दी, और उनके आगमनकी प्रतीक्षामें वह खड़ा रहा ॥१५९॥

६५. भूपतिने कविवरको मुक्त कर
उस श्रेष्ठ गुणीको सुता भी देकर,
सौसे अधिक गांववाले एक रमणीय प्रदेश,
वस्त्र, हाथी-घोड़े, रथ और पैदल-सैनिकोंको प्रदान किया ॥१६०॥

६६. इस प्रकार भूपतिकी उत्तम श्रेष्ठ कृपाको पा,
कश्मीरी कवीश्वर सत्कवि श्रीबिल्हण प्रसन्न हुये।
राजा वीरसिंह प्रभुका आदेश पाकर रास्तेमें अतिथियोंको पूजते
पांचों श्रेष्ठ बाजोंके साथ वह अपने सुन्दर मन्दिरमें गये ॥१६२॥

—बिल्हण काव्य

४२. आचार्य गोवर्धन (११०० ई०)

आकर बड़ी सान्त्वना मिलती है। इनकी एक-एक आर्या गागरमें सागर है। भाषा भी दुरूह नहीं और भाव भी हृदयग्राही हैं। पं० बलदेव उपाध्यायके अनुसार यह "मानव-हृदयकी अनुभूतियोंका सच्चा पारखी है।" इनकी कविताको हम बिहारीकी "सतसई" से तुलना कर सकते हैं।

आर्या सप्तशती

१. व्यासगिरां निर्यासं सारं विश्वस्य भारतं वन्दे ।
भूषणतयैव संज्ञां यदङ्कितां भारती वहति ॥३१॥

२. सति काकुत्स्थकुलोन्नतिकारिणि रामायणे किमन्येन ।
रोहति कुल्या गंगापूरे किं बहुरसे वहति ॥३२॥

३. अतिदीर्घजीविदोषाद्व्यासेन यशोऽपहारितं हन्त ।
कैर्नोच्येत गुणाढ्यः स एव जन्मान्तरापन्नः ॥३३॥

४. साकूतमधुरकोमलविलासिनी कण्ठकूजितप्राये ।
शिक्षासमयेऽपि मुदे रतलीला कालिदासोक्तिः ॥३५॥

५. भवभूतेः संबन्धाद् भूधरभूरेव भारती भाति ।
एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा ॥३६॥

६. जाता शिखण्डिनी प्राग्यथा शिखण्डी तथावगच्छामि ।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूवेति ॥३७॥

७. यं गणयन्ति गुरोस्तु यस्यार्ते धर्मकर्म संकुचितम् ।
कविसहृदुशनसमिव तं तातं नीलाम्बरं वन्दे ॥३८॥

८. सकलकलाः कल्पयितुं प्रभुः प्रबन्धस्य कुमुदबन्धोश्च ।
सेनकुलतिलकभूपतिरेको राकाप्रदोषश्च ॥३९॥

—ग्रन्थारम्भव्रज्या

९. अयि कूलनिचुलमूलोच्छेदनदुःशीलवीचिवाचाले ।
बहुविषमपंकसारा न चिरात्कावेरि भवितासि ॥३॥

१०. अन्यमुखे दुर्वादो यः प्रियवदने स एव परिहासः ।
इतरेन्धनजन्मा यो धूमः सोऽगुरुभवो धूपः ॥१३॥

१. **व्यास**की वाणीकी गोद, विश्वके सार **भारत**की वंदना करता हूँ, जिसमें अंकित नाम को सरस्वती भूषणके तौरपर धारण करती है ॥३१॥

२. रघुवंश कुलके उन्नत करनेवाले **रामायण**के रहते औरसे क्या काम ? बहुत रसवाली **गंगा**की धाराके बहते नहरिया क्या बढ़ायेगी ॥३२॥

३. अहो, अत्यन्त दीर्घजीवी होनेके दोषसे **व्यास**ने यश हर लिया।
कौन नहीं कहेंगे, कि वही दूसरा जन्म ले **गुणाढ्य** हुये ॥३३॥

४. कौतूहलयुक्त मधुर कोमल हाव-भावोंवाली, अनुरक्त लीलाकी शिक्षाके समय कंठमें प्राय: पूजित होती **कालिदास**की उक्तियां आनंद-के लिये हैं ॥३५॥

५. **भवभूति**के सम्बन्धसे, भारती पहाड़ी भूमि भी शोभा देती,
अधिक प्रौढ़ता पानेके लिये वाणी **बाण** हो गई ॥३७॥

७. जिसको बृहस्पति सा लोग गिनते हैं, जिसका पृथिवीमें धर्म-कर्म है। कविके तेजमें शुभ्र समान उन बापू **नीलांबर**की वंदना करता हूं ॥३८॥

८. प्रबन्ध और चन्द्रमाकी सारी कलाओंके कल्पित करनेमें समर्थ, **सेन**-कुलके तिलक एक राजा (**लक्ष्मणसेन**) है, और एक पूर्णमासीकी सन्ध्या ॥३९॥

—ग्रंथारंभ

९. तटके वृक्षोंके मूलोच्छेद करनेकी दुराचारिणी लहरोंसे युक्त बकवासी हे कावेरि, अचिर ही, बगलों के भोजन रूपी पंक तेरा सार होके रहेगा ॥३॥

१०. दूसरेके मुंहमें जो बुरी बात है, वही प्रियके मुखमें परिहास है।
दूसरे ईंधनसे उत्पन्न जो धुंआ है, वह अगरसे उत्पन्न धूप है ॥१२॥

११. अतिपूजितनारेयं दृष्टिः श्रुतिलंघनक्षमा सुतनु ।
जिनसिद्धान्तस्थितिरिव सवासना कं न मोहयति ॥२१॥

१२. अवधीरितोऽपि निद्रामिषेण माहात्म्यमसृणया प्रियया ।
अवबोधितोऽस्मि चपलो बाष्पस्तिमितेन तल्पेन ॥५०॥

—आकारव्रज्या

१३. आरोपिता शिलायामश्मेव त्वं स्थिरा भवेति मन्त्रेण ।
मग्नापि परिणयापदि जारमुखं वीक्ष्य हसितेव ॥८०॥

१४. उल्लसितशीतदीधितिकलोपकण्ठे स्फुरन्ति तारौघाः ।
कुसुमायुधविधृतधनुर्निर्गतमकरन्दबिन्दुनिभाः ॥१३६॥

१५. ऋजुना निधेहि चरणौ परिहर सखि, निखिलनागराचारम् ।
इह डाकिनीति पल्लीपतिः कटाक्षेऽपि दण्डयति ॥१४०॥

१६. एकेन चूर्णकुन्तलमपरेण करेण चिबुकमुन्नमयन् ।
पश्यामि बाष्पधौतश्रुति नगरद्वारि तद्वदनम् ॥१८६॥

१७. कुत इह कुरंगशावक केदारे कलममंजरीं त्यजसि ।
तृणबाणस्तृणधन्वा तृणघटितः कपटपुरुषोऽयम् ॥१९२॥

१८. गृहिणीगुणेषु गणिता विनयः सेवा विधेयतेति गुणाः ।
मानः प्रभुता वाम्यं विभूषणं वामनयनानाम् ॥२०३॥

१९. ग्रन्थिलतया किमिक्षो किमपभ्रंशेन भवति गीतस्य ।
किमनार्जवेन शशिनः किं दारिद्र्येण दयितस्य ॥२१५॥

२०. चिरपथिकद्राघिममिलदलकलताशैवलावलिग्रथिता ।
करतोयेव मृगाक्ष्या दृष्टिरिदानीं सदानीरा ॥२२४॥

११. हे सुतनु, संपूजित पुतली (तारा)-युक्त यह दृष्टि (नेत्र) श्रुति (वेद) का लंघन कर सकती है। बुद्धके सिद्धान्तोंकी स्थितिसी वासनायुक्त (वह) किसे नहीं मोहित करती ।।२१।।

१२. निद्राके बहानेसे प्रिया द्वारा तिरस्कृत, बड़ाई से स्नेहयुक्त मुझ, चपलको आंसूसे भीगे बिस्तरेने जगा दिया ।।५०।।

— आकार पगडंडी

१३. "पत्थरकी तरह तू स्थिर हो" इस मंत्रके साथ शिलापर पैर रखवा, विवाहरूपी आफतमें फंसाई वह जारके मुखको देखकर हंस पड़ी ।।८१।।

१४. उल्लास करती चन्द्रमाकी कलाओंके पास, तारे जगमगाते हैं, जैसे कामदेवके चढ़ाये धनुषसे निकले मधुके बिन्दु ।।१३६।।

१५. हे सखि, सीधेसे कदम रख, नगरकी सारी रीति छोड़ दे। "डाकिनी है" कह, यहांका ग्रामपति नजर डालनेपर भी दंड देता है ।।१४०।।

१६. नगरके दरवाजेपर एक हाथसे अलकको और दूसरेसे ठुड्डीको उठाते, आंसूसे धुले कानोंवाले उसके मुखको देखता हूं ।।१४६।।

१७. हे हरिनके बच्चे, इस खेतमें धान-मंजरीको तू क्यों छोड़ता है, यह (तो) तिनकेके बाण तिनकेके धनुषवाला तिनकेका बनाया झूठा पुतला है ।।१९२।।

१८. गृहिणीके गुणोंमें नम्रता, सेवा और आज्ञाकारिता गुण गिने गये हैं। सुनयनाओंके तो मान, प्रभुता और सौंदर्यको भूषण कहा गया है ।।२०३।।

१९. गांठवाली होनेसे ऊखका, अपभ्रंश भाषा होनेसे गीतका क्या बिगड़ता है? कुटिल होनेसे चन्द्रमाका, और दरिद्रतासे प्रेमीका क्या बिगड़ता है ।।२१५।।

२०. चिरकालीन पथिककी लम्बी मिलती अलकरूपी लताकी सेवारोंसे गुंथी करतोया नदी सी मृगनयनीकी दृष्टि इस समय सदा नीलवाली है ।।२२४।।

२१. जलबिन्दवः कतिपये नयनाद् गमनोद्यमे तव स्खलिताः ।
कान्ते, मम गल्लाभ्यां भूरेतैरेव पिच्छिलिता ॥२३५॥

२२. ज्योत्स्नागर्भितसैकतमध्यगतः स्फुरितयामुनः पूरः ।
दुग्धनिधौ नागाधिपतल्पतले सुप्त इव कृष्णः ॥२४५॥

२३. त्वमसूर्यंपश्या सखि पदमपि न विनातपवारणं भ्रमसि ।
छाये, किमिह विधेयं मुंचन्ति न मूर्तिमन्तस्त्वाम् ॥२५४॥

२४. निष्कारणापराधं निष्कारणकलहरोषपरितोषम् ।
सामान्यमरणजीवनसुखदुःखं जयति दांपत्यम् ॥३३४॥

२५. "नाथे"ति परुषमुचितं "प्रिये"ति "दासेत्य"नुग्रहो यत्र ।
तद् दांपत्यमितोऽन्यत्कारा रज्जुः पशुः पुरुषः ॥३३६॥

२६. न सवर्णो न च रूपं न संस्क्रिया कापि नैव सा प्रकृतिः ।
बाला त्वद्विरहापदि जातापभ्रंशभाषेव ॥३४२॥

२७. बौद्धस्येव क्षणिको यद्यपि बहुवल्लभस्य तव भावः ।
भग्ना भग्ना भूरिव न तु तस्या विघटते मैत्री ॥४०८॥

२८. मूलानि च निचुलानां हृदयानि च कूलवसतिकुलटानाम् ।
मुदिरमदिरा प्रमत्ता गोदावरि किं विदारयसि ॥४२९॥

२९. मग्नोऽसि नर्मदाया रसे हृतो वीचिलोचनक्षेपैः ।
यद्युच्यसे तरुवर, भ्रष्टो भ्रंशोऽपि ते श्लाघ्यः ॥४६०॥

३०. विन्ध्यमहीधरशिखरे मुदिरश्रेणीकृपाणमयमनिलः ।
उद्यद्विद्युज्ज्योतिः पथिकवधायैव शातयति ॥५५९॥

२१. गमनके प्रगत करनेके समय तेरे नयनसे कुछ जलकी बूंदें गिरीं, उन्हींसे हे प्यारी, मेरे जानेकी भूमि पिच्छिल हो गई ।।२३५।।

२२. चांदनीके भीतरवाली बालूके बीच अवस्थित जमुनाकी धारा जगमगा रही है ; मानों क्षीरसागरमें शेषशय्याके ऊपर कृष्ण सोये हैं ।।२४५।।

२३. हे छायाशालि, तू कभी सूर्यको न देखनेवाली बिना छतेके एक पद भी नहीं चलती । यहां क्या करना है, कि सारे मूर्ति (आकार) वाले तुझे नही छोड़ते ।।२५४।।

२४. अकारण अपराध, अकारण कलह-रोष और परितोषवाले, एक साथ मरण-जीवन सुख-दुखवाले दांपत्यजीवनकी जय हो ।।२२४।।

२५. "नाथ" कहना कठोर है, "प्रिय", "दास" जिसमें अनुग्रह है, वह दाम्पत्य 'ठीक' है, इससे भिन्न नारी रस्सी है और पुरुष पशु ।।२३६।।

२६. न सवर्ण है और न रूप है, न कोई कार्य है, न ही वह प्रकृति है । तेरे विरहकी आफतमें पड़ी वह बाला अपभ्रंश भाषा सी हो गई है ।।३४२।।

२७. यद्यपि बहुत प्रियतमाओंवाले तेरे भाव बौद्ध-सिद्धान्तकी तरह क्षणिक हैं । लेकिन तिरछी-तिरछी (टूटी) भौंहोंकी तरह उसके साथकी मित्रता नष्ट नहीं होती ।।४०८।।

२८. मंददायक मदिरासे मस्त हे गोदावरि, वृक्षोंकी जड़ोंको और किनारेकी बस्तियोंकी कुलटाओंके हृदयको, तू क्यों विदारित करती है ।।४२९।।

२९. हे तरुवर, नर्मदाके जलमें डूबे, तरंगरूपी लोचनोंके आघातसे तुम वंचित हो रहे हो । यदि कहते हो, कि मैं भ्रष्ट हूं, तो तुम्हारा ध्वंस (भ्रंश) भी श्लाघनीय है ।।४४०।।

३०. विंध्याचलके शिखरपर मेघ-पंक्ति रूपी कृपाणको उठाये, उगती बिजलीकी ज्योतिवाला यह वायु प्रिया-वियुक्त पथिकोंके मारनेके लिये ही है ।।५५१।।

३१. सा विच्छाया निशि निशि सुतनुर्बहुतुहिनशीतले तल्पे ।
ज्वलति त्वदीयविरहादौपधिरिव हिमवतः पृष्ठे ॥६३८॥

३२. सर्वं वनं तृणाल्या पिहितं पीताः शिलांशुरविताराः ॥
प्रध्वस्ताः पन्थानो मलिनेनोद्गम्य मेघेन ॥६६८॥

३३. पूर्वविभिन्नवृत्तां गुणाढ्यभवभूतिबाणरघुकारैः ।
वाग्देवीं भजतो मम सन्तः पश्यन्तु को दोषः ॥६९७॥

३४. उदयनबलभद्राभ्यां सप्तशती शिष्यसोदराभ्यां मे ।
द्यौरिव रविचन्द्राभ्यां प्रकाशिता निर्मलीकृत्य ॥७०१॥

४३. जयदेवः (११०० ई०) .

जयदेव भी राजा लक्ष्मणसेनके दरबारी कवि तथा गोवर्धनके सम-कालीन थे। इनका जन्म किन्दुबिल्व स्थानमें हुआ था, जिसे कुछ लोग बंगालमें और कुछ उड़ीसामें बतलाते हैं। राधाकृष्णके रास-बिलासको इन्होंने अपनी सरस गीतोंमें बांधा है। इनका यही एकमात्र ग्रंथ प्राप्य है। राधाकृष्णके प्रेमके नग्न वर्णन करनेमें इन्होंने हमारी आजकी भाषाओंके

गीतगोविन्दम्

(१) मङ्गलाचरणम्—

"मेघैर्मेदुरमंबरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमैर्,
नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राधे गृहं प्रापय ।"
इत्थं नंदननिदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्वकुंजद्रुमं,
राधामाधवयोर्जयन्ति यमुनाकूले रहःकेलयः ॥१॥

वाग्देवताचरितचित्रितचित्तसद्मा,
पद्मावतीचरणचारणचक्रवर्ती ॥

३१. वह मालिना सुतनु रात-रात अत्यन्त हिम जैसी शीतल शय्यापर,
तुम्हारे विरहमें हिमालयके पृष्ठपर औषधिकी तरह जल रही है ॥६३८॥

३२. मलिन मेघने उन्मत्त होकर सारे वनको तृणोंसे ढँक दिया,
चन्द्र-सूर्य और ताराओंको पी लिया, रास्तोंको ध्वस्त कर दिया ॥६६८॥

३३. गुणाढ्य, भवभूति, बाण, कालिदास जैसे पहलोंके नाना विभिन्न वृत्तोंवाली वाणी देवीकी सेवा करते मेरा कौन दोष है, इसे संतजन देखें ॥६९७॥

३४. मेरे शिष्य और सहोदर उदयन और बलभद्रने,
सूर्य-चन्द्र द्वारा आकाशकी तरह, निर्मल करके यह सप्तशती प्रकाशित की ॥७०१॥

४३. जयदेव (११०० ई०)

कवियोंके लिये मार्ग प्रशस्त किया। "गीतगोविन्द" की लोकप्रियता इसीसे मालूम होगी, कि मध्यदेशमें अनपढ़ ग्रामीण तक गीतगोविन्द सुननेके लालायित रहते हैं, चाहे वह उसे कुछ भी न समझते हों। संस्कृतमें गीतोंके न रचे जानेका कारण यही था, कि गीतोंके लिए लोकभाषाका लोहा माना जाता था, (पृ. ९७२।१९,) और वह उसीमें लिखी और गाई जाती थीं। "गीत-गोविन्द"ने ललित गीतोंके निर्माणकी परम्परा चलाई, लेकिन वह आगे नहीं बढ़ी।

गीतगोविन्द

१. मंगलाचरण—

"मेघोंसे आकाश ढंका है, वनभूमियां तमालके वृक्षोंसे श्यामल हैं।
रात है, यह कृष्ण भीरु है, सो राधे, इसे तू ही घर पहुंचा।"—
इस प्रकार नन्दके आदेशसे चले मार्गके कुंजके वृक्षों में,
यमुना-तटके पथमें राधा और माधवकी होती क्रीड़ाओं की जय।१।
वाणीदेवीके चरित्रसे चित्रित चित्तसद्मवाला,
पद्मावतीके चरणके चारणोंमें चक्रवर्ती,

श्रीवासुदेवरतिकेलिकथासमेतं,
मेतं करोति जयदेवकविः प्रबन्धम् ॥२॥

(२) वसन्तः[१]—

ललितलवंगलतापरिशीलनकोमलमलयसमीरे ॥
मधुकरनिकरकरम्बितकोकिलकूजितकुंजकुटीरे ॥१॥
विहरति हरिरिह सरसवसंते ।
नृत्यति युवतिजनेन समं सखि विरहिजनस्य दुरंते ॥ध्रुव०॥
उन्मदमदनमनोरथपथिकवधूजनजनितविलापे ।
अलिकुलसंकुलकुसुमसमूहनिराकुलबकुलकलापे ॥२॥
मृगमदसौरभरभसवशंवदनवदलमालतमाले ॥
युवजनहृदयविदारणमनसिजनखरुचिकिंशुकजाले ॥३॥
मदनमहीपतिकनकदण्डरुचिकेसरकुसुमविकासे ॥
मिलितशिलीमुखपाटलिपटलकृतस्मरतूणविलासे ॥४॥
विगलितलज्जितजगदवलोकनतरुणकरुणकृतहासे ।
विरहिनिकृन्तनकुन्तमुखाकृतिकेतकिदन्तुरिताशे ॥५॥
माधविकापरिमलललिते नवमालिकयाऽतिसुगन्धौ ।
मुनिमनसामपि मोहनकारिणि तरुणाकारणबन्धौ ॥६॥
स्फुरदतिमुक्तलतापरिरम्भणमुकुलितपुलकितचूते ॥
वृन्दावनविपिने परिसरपरिगतयमुनाजलपूते ॥७॥
श्री जयदेवभणितमिदमुदयति हरिचरणस्मृतिसारम् ॥
सरसवसन्तसमयवनवर्णनमनुगतमदनविकारम्[२] ॥८॥

---

१. रूपक ताल, अष्टपदी

श्रीकृष्णकी रति-क्रीड़ाकी कथासे युक्त,
इस मंगलगानको जयदेव कवि बनाता है ।।२।।

२ वसन्त—

ललित लवंगोंकी लतामें लिप्त कोमल दक्षिण पवनवाले,
भ्रमर समूहोंसे दंतुरित, कोकिल-कूजनके कुंजोंके कुटीरवाले ।।१।।
इस सरस वनमें कृष्ण यहाँ बिहार कर रहे हैं,
हे सखि, विरही जनोंके अपार रम्य वसंतमें युवतियोंके साथ वह नाच रहे हैं ।।ध्रुव ।।

(जिस वसन्तमें) मस्त मदनके मनोरथसे प्रोषितपतिकायें विलाप करती हैं, कुसुमों पर भ्रमरों की भीड़ और मौलसरीके गुच्छोंपर नहीं भीड़ रहती है ।।२।।
कस्तूरीकी गंधमें खूब अवीन नवपत्रोंकी मालायें तमालोंपर रहती हैं,
तरुणोंके हृदय-विदारणके लिये कामके नख जैसे टेसू होते हैं ।।३।।
काम नृपतिके सुवर्णदंडसे चमकते केसरके फूल फूलते हैं,
भंवरोंसे मिली पाटलियोंके, काम-तूणीर बनते हैं ।।४।।
विगलित हो लज्जित संसारको देख, तरुण जब करुण हास करते हैं,
विरहियोंके छेदनेके लिये भाले की नोकके आकारवाले केवड़े चारों ओर फूलते हैं ।।५।।
जब बेलाकी गंधसे ललित, बनमालिकासे, अत्यन्त सुगंधित,
मुनियोंके मनोंके भी मोहक तरुणोंके अकारण बन्धु ।।६।।
फूल मोतियोंकी लताके आलिंगनसे आम मुकुलित और पुलकित होते हैं,
वृन्दावनके उद्यानमें, यमुनाजलसे पवित्र पास-पड़ोस में वसंत है ।।७।।
सरस वसन्तके समयके वनका वर्णन कामविकारसे युक्त,
श्री जयदेव द्वारा भणित यह पद हरि चरणोंमें भक्ति उत्पन्न करता है।८।
—सर्ग १

(३) विरहिणी¹—

निंदति चन्दनमिंदुकिरणमनुविंदति खेदमधीरम् ॥
व्यालनिलयमिलनेन गरलमिव कलयति मलयसमीरम् ॥
सा विरहे तव दीना ।
माधव, मनसिजविशिखभयादिव भावनया त्वयि लीना ॥ध्रु०।
अविरलनिपतितमदनशरादिव भवदवनाय विशालम् ॥
स्वहृदयमर्मणि वर्म करोति सजलनलिनदलजालम् ॥
सा विर० ॥२॥
कुसुमविशिखशरतल्पमनल्पविलासकलाकमनीयम् ।
व्रतमिव तव परिरंभसुखाय करोति कुसुमशयनीयम् ॥
सा विर० ॥३॥
वहति च चलितविलोचनजलभरमाननकमलमुदारम् ॥
विधुमिव विकटविधुंतुददन्तदलनगलितामृतधारम् ।
सा विरहे० ॥४॥
विलिखति रहसि कुरंगमदेन भवन्तमसमशरभूतम् ॥
प्रणमति मकरमधो विनिधाय करे च शरं नवचूतम् ॥
सा विर० ॥५॥
प्रतिपदमिदमपि निगदति "माधव तव चरणे पतिताहम् ।
त्वयि विमुखे मयि सपदि सुधानिधिरपि तनुते तनुदाहम् ॥
सा विरहे० ॥६॥
ध्यानलयेन पुरः परिकल्प्य भवंतमतीव दुरापम् ॥"
विलपति हसति विषीदति रोदिति चंचति मुंचति तापम् ।
सा विरहे० ॥७॥
श्रीजयदेवभणितमिदमधिकं यदि मनसा नटनीयम् ॥
हरिविरहाकुलवल्लवयुवतिसखीवचनं पठनीयम् ॥
सा विरहे० ॥८॥ —सर्गः ४

१. राग कर्नाट, ताल एकताला, अष्टपदी

३. विरहिणी—

चन्दनकी निन्दा करती है, चन्द्र-किरणों से अधीर हो खेद पाती है। सर्प-भक्षकों मिलने के कारण मलय (दक्षिण) पवनको गरल भी समझती है। वह राधा तुम्हारे विरह में दीना है। हे माधव कामवाणों के भय से तुम्हारी भावनासे तुममें लीन सी है ॥ ध्रु० ॥१॥ लगातार (ऊपर) गिरते कामवासना बाण से रक्षाके लिये अपने हृदय-मर्म पर आर्द्र कमलदलों का विशाल कवच बनाती है ॥२॥

शृंगार-कलाओं से बहुत सुन्दर कुसुमरूपी बाण की शर-शय्या के कुसुम पर तुम्हारे आलिंगनके सुख के लिये सोकर मानों व्रत करती है ॥३॥

चंचल नेत्ररूपी भौंरों मुख-महाकमल को तिरस्कृत करने वाले, दन्तोंके काटनेसे बहती अमृतधारवाले, चन्द्रमा को वहन करती एकान्त में कस्तूरी से कामदेव समान आपको चित्रित करती है, नीचे मकरको बना हाथ में नवआम्र-पल्लव रूपी शरको रख प्रणाम करती है ॥५॥

वह क्षण-क्षण यह भी कहती है—हे माधव, मैं तेरे चरणों में पड़ी हूं। तेरे विमुख होने पर चन्द्रमा भी मेरे लिये तुरन्त देह-दाह करता है ॥६॥

ध्यान में निमग्न होने से सामने भी आपको अत्यन्त दुर्लभ समझकर विलाप करती है, हंसती है, दुखित होती है, रोती ह, पूजा करती है तृप्त होती है ॥७॥

श्रीजयदेव का यह गान यदि मनमें अधिक अभिनय करता है, तो कृष्ण के विरह से व्याकुल सखी गोपी-युवती के वचन को पढ़ना चाहिये ॥८॥

—सर्ग ४

(४) अभिसारिका[1]—

रतिसुखसारे गतमभिसारे मदनमनोहरवेशम् ॥
न कुरु नितम्बिनि गमनविलम्बनमनुसर तं हृदयेशम् ॥
धीरसमीरे यमुनातीरे वसति वने वनमाली ॥
गोपीपीनपयोधरमर्दनचंचलकरयुगशाली ॥ध्रु०॥१॥
नामसमेतं कृतसंकेतं वादयते मृदुवेणुम् ॥
बहु मनुते तनुते तनुसंगतपवनचलितमपि रेणुम् ॥धीरस०२॥
पतति पतत्रे विचलति पत्रे शंकितभवदुपयानम् ॥
रचयति शयनं सचकितनयनं पश्यति तव पंथानम् ॥
धीरसमीरे० ॥३॥
मुखरमधीरं त्यज मंजीरं रिपुमिव केलिसु लोलम् ॥
चल सखि कुंजं सतिमिरपुंजं शीलय नीलनिचोलम् ॥
धीरसमीरे० ॥४॥
उरसि मुरारेरुपहितहारे घन इव तरलबलाके ॥
तडिदिव पीते रतिविपरीते राजसि सुकृतविपाके ॥
धीरसमीरे० ॥५॥
विगलितवसनं परिहृतरसनं घटय जघनमपिधानम् ॥
किसलयशयनं पंकजनयनं निधिमिव हर्षनिधानम् ॥
धीरसमीरे ० ॥६॥
हरिरभिमानी रजनिरिदानीमियमपि याति विरामम् ॥
कुरु मम वचनं सत्वररचनं पूरयमधुरिपुकामम् ॥
धीरसमीरे० ॥७॥
श्रीजयदेवे कृतहरिसेवे भणति परमरमणीयम् ॥
प्रमुदितहृदयं हरिमतिसदयं नमत सुकृतकमनीयम् ।
धीरसमीरे यमुना० ॥८॥

—सर्गः ५

---

१. राग गुर्जर, ताल एकताला, अष्टपदी

४. अभिसारिका—

रति-सुख के सार अभिसार में गये मदन जैसे मनोहर वेषवाले, उस हृदय को हे नितम्बिनी, अनुसरण कर, गमनमें विलम्ब न कर। मन्द समीरवाले जमुना तीर के वनमें वनमाली वसते हैं, गोपियों के पीन-पयोधर का मर्दन करने में जिनके कर युगल चंचल है ।।१।।

(तेरे) नाम का संकेत करते मधुर बंशी बजाते तनमें लगी पवन द्वारा चलित धूलिको भी बहुत बढ़ाकर मानते हैं ।।२।।

पक्षी के गिरने, पत्रके चलने पर आपके आने की शंका करते चकित दृष्टिसे सेज बनाते और तेरी बाट जोहते है ।।३।।

रिपुकी तरह क्रीड़ा के अत्यन्त लोभी अधीर, मुखर (इस) पाजेब को छोड़ दे। सखी, चल, अन्धकार-पुंज वाले नीले निचोल-कुंजका सेवन कर ।।४।।

चंचल बक पंक्तिवाले मेघ जैसे मुरारिके हारयुक्त बिजलीसे पीले सुवर्णके अंग वाले विपरीत रति से वक्षस्थल पर तू सोयेगी ।।५।।

हे कमलनेत्रे, नव पल्लवकी सेज पर निधिकी तरह हर्षके आनन्द के निधान खराके वस्त्रवाले कटि-भूषण-रहित जघन को ढांक ले ।।६।।

कृष्ण अभिमानी है, यह रात भी बीती जारही है, मेरी बात मान, जल्दी सज जा और कृष्ण की कामना को पूरी कर ।।७।।
हरिके सेवक श्रीजयदेव के परम रमणीय (इस) कथन पर, प्रमुदित-हृदय अत्यन्त दयावान् सुभगोंसे कमनीय हरिको नमस्कार करो ।।८।।

—सर्ग ५

(५) राधामाधवलीला —

राधावदनविलोकनविकसितविविधविकारविभंगम् ॥
जलनिधिमिव विधुमण्डलदर्शनतरलिततुंगतरंगम् ॥
हरिमेकरसं चिरमभिलषितविलासम् ॥
सा ददर्श गुरुहर्षवशंवदवदनमनंगविकारम् ॥ ध्रु० ॥ १ ॥
हारममलतरतारमुरसि दधतं परिरभ्य विदूरम् ॥
स्फुटतरफेनकदम्बकरंबितमिव यमुनाजलपूरम् ॥
हरिमेकरसं० ॥ २ ॥
श्यामलमृदुलकलेवरमण्डलमधिगतगौरदुकूलम् ॥
नीलनलिनमिव पीतपरागपटलभरवलयितमूलम् ॥
हरिमेकरसं० ॥ ३ ॥
तरलदृगंचलचलनमनोहरवदनजनितरतिरागम् ॥
स्फुटकमलोदरखेलितखञ्जनयुगमिव शरदि तडागम् ॥
हरिमेकरसं० ॥ ४ ॥
वदनकमलपरिशीलनमीलितमिहिरसमकुण्डलशोभम् ॥
स्मितरुचिरुचिरसमुल्लसिताधरपल्लवकृतरतिलोभम् ॥
हरिमेकरसं० ॥ ५ ॥
शशिकिरणच्छुरितोदरजलधरसुन्दरकुसुमसुकेशम् ।
तिमिरोदितविधुमण्डलनिर्मलमलयजतिलकनिवेशम् ॥
हरिमेकरसं० ॥ ६ ॥
विपुलपुलकभरदन्तुरितं रतिकेलिकलाभिरधीरम् ॥
मणिगणकिरणसमूहसमुज्ज्वलभूषणसुभगशरीरम् ॥
हरिमेकरसं० ॥ ७ ॥
श्रीजयदेवभणितविभवद्विगुणीकृतभूषणभारम् ॥
प्रणमत हृदि विनिधाय हरिं भवजलसुकृतोदयसारम् ॥
हरिमेकरसं[1]० ॥ ८ ॥ —सर्गः ११

---

१. राग बराडी, एकताला, अष्टपदी

९. राधामाधव लीला—

उसने भारी हर्षसे लिप्त मुख हो काम-विकारवाले हरिको देर तक देखा ।। ध्रु० ।।१।।

(जो कि) राधाके मुखके देखनेसे नाना भाव-भंगियोंवाले,
चन्द्रमण्डलके दर्शनसे चंचल ऊंची तरंगोंवाले सागर जैसे
अभिलषित शोभायुक्त (और) एक-रस (हैं)।
(जो) दूरसे आलिंगन करके अति-निर्मल तारयुक्त हार धारण किये हैं ।।२।।

मानो अति स्पष्ट फेनोंसे लिप्त जमुनाजलकी धारा जैसे
श्यामल मृदुल शरीर-मंडल पर श्वेत रेशम पहने हैं।
मानो पीले केसरोंसे वेष्टित जड़वाला नीलकमल हो ।।३।।

चंचल नेत्रकोण चलनेसे मनोहर, कामसे उत्पन्न अति रागवाले,
मानो शरद्‌काल में फूले कमलके उदरमें खेलते दो खंजनोंवाला तड़ाग हो ।।४।।

मुखकमलके संसर्गसे मिले मुंदे सूर्य कुंडल की शोभायुक्त,
मुस्कुराहटकी चमकसे समुल्लसित अधर-पल्लवके लिये अत्यंत लोभ-वाले ।।५।।—

चन्द्रकिरणोंसे अंकित उदरवाले, मेघ जैसे सुन्दर कुसुम केशवाले,
अन्धकारमें उगे चन्द्रमंडलसे निर्मल चन्दनकी तिलक लगाये ।।६।।

भारी रोमांचोंसे दंतुरित रति-क्रीडाकी कलामें अधीर,
मणियोंके किरणोंसे उज्ज्वल भूषणों द्वारा सुंदर शरीरवाले ।।७।।

श्रीजयदेवके कथनके वैभवसे दूना भूषण धरे,
भवजलके सुकर्मोंके फलके सार, हरिको हृदयमें रखकर प्रणाम करो ।।८।।

—सर्ग ११

४४. मंखकः (११३० ई०)

कश्मीरके यह महाकवि, राजा जयसिंह (११२९-५० ई०) के सभा पंडित थे। इन्होंने अपने बारेमें "श्रीकंठचरित" महाकाव्यमें काफी बातें दी हैं। इससे उस समयके कितने ही व्यक्तियों और कवियोंका भी पता लगता है। कान्यकुब्जके महाराज गोविन्दचन्द्रके एक दरबारी पंडितका भी इन्होंने उल्लेख किया है। कश्मीर जैसा प्रकृतिकी सुषमाका भण्डार देश इन्हें वर्णन करनेके लिए मिला था, लेकिन इन्हें संस्कृतके दूसरे कवियोंका

श्रीकण्ठचरितम्

(१) पूर्वे कवयः—

१. मधुकणमुचो वाचो येषां विसारि रसं क्रम-
प्युरुतरपरीपाकोद्रेकाः गिरा इव बिभ्रति।
त इह कवयो मन्ये नान्ये पुनर्दुरतिक्रम-
क्रमकठिनतायोगाद्येषां विमुह्यति शेमुषी ॥५०॥

२. परश्लोकान् स्तोकान् प्रतिदिवसमभ्यस्य ननु ये,
चतुष्पादीं कुर्युर्बहव इव ते सन्ति कवयः।
अविच्छिन्नोद्गच्छज्जलधिलहरीरीतिसुहृदः,
सुहृदया वैशद्यं दधति किल केषांचन गिरः ॥५१॥

३. दिव्ये वाक्प्रसरक्रमे सुकवितुः प्रत्यक्षवाचस्पतेः,
श्रोतृस्तोतृकथासु कः खलु पटुः स्याच्चर्मचक्षुर्जनः।
लभ्यः शेषफणी कुतोऽत्र स तु यश्चक्षुःसहस्रद्वये-
नाकर्ण्यैनमथ स्तुतौ वितनुयाज्जिह्वासहस्रद्वयीम् ॥५२॥

४४. मंखक (११४० ई०)

अनुकरण करते आमों और आम्र मंजरियोंके वर्णनमें आनंद आता था, चाहे कश्मीरमें हिमपातके कारण आम एक साल भी न ठहर सकता हो। इनके वंशके लोग राज्यके बड़े-बड़े पदोंपर रहते आये थे, इसका उल्लेख इन्होंने अपने काव्यमें किया है। इनका परिवार शिवका अनन्य भक्त था, इसी से शिवको ही लेकर "श्रीकंठचरित" काव्यको लिखा, जिसमें २५ सर्ग हैं। अपभ्रंश-कालके अन्य कवियोंके दोष-गुण इसमें भी देखे जाते हैं।

श्रीकण्ठचरित

१. पहलेके कवि—

१. दुरतर श्रमकी दुर्बलताके सम्बन्धसे श्रोताओंकी बुद्धिको जो विरक्त करते हैं, उन्हें नहीं बल्कि मैं उन्हें कवि यहां समझता हूं, जिनकी वाणियां मधुकण छोड़नेवाली किसी विस्तृत रस को अधिक विशाल परिपाकके उत्कर्षवाले पिकोंकी तरह धारण करती हैं ॥५०॥

२. थोड़ेसे दूसरोंके श्लोकोंको प्रतिदिन रट कर,
जो चौगाई बनाते हैं, ऐसे बहुतेरे कवि हैं।
किन्तु, अविच्छिन्न उठती समुद्र-लहरियोंकी रीतियुक्त सुहृद,
किन्हीं-किन्हींकी (ही) सुमनोहर वाणी विशद होती है ॥५१॥

३. प्रत्यक्ष बृहस्पति जैसे सुकविकी वाणीके दिव्य प्रसारमें
श्रोता और स्तुतिकर्ताकी बातोंमें कौन चर्म-चक्षु मनुष्य निपुण हो सकता है? यहां वह शेषोंके फण कहां मिल सकते हैं, जो कि दो हजार आंखोंसे, सुनकर फिर दो हजार जिह्वाओंसे इसकी प्रशंसा करेंगे ॥५२॥

४. मेण्ठे स्वर्द्विरदाधिरोहिणि वशं याते सुबन्धौ विधेः,
शान्ते हन्त च भारवौ विघटिते बाणे विषादस्पृशः ।
वाग्देव्या विरमन्तु मन्तुविधुरा द्राग्दृष्टयश्चोष्टते,
शिष्टः कश्चन स प्रसादयति तां यद्वाणिसद्वागिनीं ॥५३॥

५. त्रयस्त्रिंशत्कोट्यो दधतु विबुधा द्वेषकलुषां,
धियं नित्यं काव्ये त्रिदशचरिते के वयममी ।
भुवः खण्डेऽप्यस्मिन्वत स विधिनैकोऽपि विबुधो,
न सृष्टो यः काव्यं धृतविमलबुद्धिः कलयते ॥५४॥
—सर्गः २

(२) **कश्मीरदेशः—**

६. कुबेरगुप्ताः ककुभो ललाटिका यदेति कश्मीरपदाभिधेयताम्
सतीसरोनाम तदस्ति मण्डलं विचित्रसर्गावभृथः प्रजापतेः
॥१॥

७. विभान्ति यत्रानघदैर्घ्यसौहृदादहंयुभिर्यूपपरिग्रहैर्दिशः ।
कलेः प्रवेशानवकाशसिद्धये स्वयं सुखेष्वंकुरितार्गला इव
॥२॥

८. विभाव्यते सान्द्रहिमार्द्रमूर्तिभिःप्रवर्तिताट्टालकमुद्रमद्रिभिः
मणित्रजैश्वर्यजितेनसूत्रितप्रदक्षिणांक्षीरसरस्वतीव यत् ॥३॥

९. स्थलाधिदेवी कुरुविन्दशेखरप्रभांकुरैः कुंकुमगर्भकेसरैः ।
करोति यस्य क्षितिरक्षतायुषं जगत्रयस्त्रैणनियोगकक्रियाम्
॥६॥

४. मेंठ कविके देव-गजपर आरूढ़ होने और सुबन्धुके विधिके वश हो जाने,
हन्त भारविके शान्त होने और बाणके विषादयुक्त होने के बाद,
शोकयुक्त सरस्वती देवीकी दृष्टियां जरा रुकें, क्योंकि,
कोई शिष्ट सरस्वती की सूक्ति उसे प्रसन्न करनेकी चेष्टा कर रहा
है ॥५३॥

५. तीस करोड़ देवता (जब) देव-चरित्रकाव्यमें,
सदा इससे मलिन बुद्धि रखते हैं, फिर हम कौन हैं ?
इस भूखंड (कश्मीर) में आ एक भी ऐसा पंडित नहीं पैदा हुआ,
जो विमल बुद्धि हो काव्य रचता ॥५५॥

—सर्ग २

२. कश्मीर देश—

६. कुबेर (उत्तर) की दिशाका ललाटभूषण, जो कश्मीर नामको प्राप्त है, वहां सतीसर नामक मंडल (है, जो) ब्रह्माकी अद्भुत सृष्टिका अवभृत (यज्ञस्नान) सा है ॥१॥

७. जहां निष्पाप दीर्घ-मित्रतासे अहंयु यूपोंके धारणसे दिशायें शोभा देती हैं। मानो कलियुगके प्रवेशके लिये अवकाश न देने के लिये मुखोंमें स्वयं अर्गल अंकुरित हैं ॥२॥

८. घने हिमसे आर्द्र अंगवाले पर्वतों द्वारा जो अट्टालिका प्राकार सा दीखता है। मणियोंके ऐश्वर्यको जीतनेवाला (जो) क्षीरसरस्वती द्वारा घिरी प्रदक्षिणावाला है ॥३॥

९. स्थलकी अधिष्ठात्री पृथ्वी कुमकुमके गर्भयुक्त केसरवाले कुरुविन्दके शोभाकी प्रभारूपी अंकुरों द्वारा,
भीतों लोगोंकी स्त्रियोंको तिलक लगाती, चिरंजीवी क्रियाको करती

१०. वितस्तया यत्र लुठत्तटद्रुमप्रसूनसौहार्दभृतालिसंपदः ।
पुरस्क्रियन्ते हठमज्जनोत्सवभ्रमत्सुरस्त्रीकबरीसगाभगाः
॥७॥

११. रसायनैर्यत्र पुरंध्रिविभ्रमनिध्यायमयैरात्तनवीनयौवनः ।
पतत्सुधास्वच्छझलारतगःक्षणे जहाति मूर्तं पलितं रतिप्रियः
॥८॥

१२. विवृण्वती कौतुकतन्तुरालोलं भुवं यदीयामभिगम्य शारदा ।
घनै रजोभिश्चरणारविन्दजैः करोति सारस्वतदृक्प्रसादनम्
॥१०॥

१३. स यत्र भर्गः कपटेश्वराख्यया निरस्तलोकत्रयकल्मषक्लमः ।
दधद्वपुः काष्ठमयं जले स्वपित्यनुद्गमायैव दृगग्नितेजसः
॥१४॥

१४. बिभर्ति मार्तण्डवपुर्यदन्तिके पदं प्रभुस्वान्तिगदैकभेषजम् ।
उपेत्य पौरप्रमदामुखेन्दुभिः स्वकान्तिपूरैर्मसृणीकृतातपः
॥१५॥

१५. गुणैर्मयूखैरिव शुद्धिमत्तरैर्निकाममुत्तंसितसार्वदिक्स्रजम् ।
धृतप्रसिद्धि प्रवराख्यया पुरं विगाहते यस्य किरीटरत्नताम्
॥२१॥

१६. जयन्ति ते यत्र चकोरचक्षुषां परं विलासा रतितन्त्रसूरयः ।
विवृण्वते मान्मथशौर्यकत्थनप्रथासु ये तथ्यतया समर्थनाम् ॥
॥२२॥

१७. पयोनिधिप्रेमभुवोर्महासरिद्धितस्तयोर्यत्र चकास्ति संगमः ।
वनं घनाब्दैर्गिभेत्त योजयत्स्वयाःस्वनाब्दैरिव धर्मगर्भिताम् ॥२४॥

१०. जहां वितस्ता के पास सरसे तटके वृक्षोंके फलोंकी मित्रता धारे भंवरोंके झुंड स्नानोत्सवके लिये भ्रमण करती देवागंनाओंकी चोटियोंके समान हैं ॥७॥

११. जहां रमणियोंके विलास-क्रियारूपी रसायनों द्वारा नवीन यौवन प्राप्त कर, कामदेव नपके समय गिरते हिमके व्याजसे साकार श्वेत केश छोड़ता है ॥८॥

१२. जिसकी भूमिमें आकर शारदा अपने कौतूहलरूपी धागोंको सुलझाती, अपने चरणारविन्दोंसे उत्पन्न घने रजों द्वारा ज्ञान-दृष्टि प्रदान करती है ॥१०॥

१३. जहां तीनों लोककी पापरूपी थकावटको निरस्त किये कपटेश्वर नामक शंकर, नेत्र-अग्निके तेजको न उठाने के लिये काष्ठमय शरीर धारण कर जलमें सोते हैं ॥१४॥

१४. निज कान्तिकी धाराओंवाले, नागरिक, प्रमदाओंके मुखकमलों द्वारा आतप को नरम किये, मार्तण्ड अज्ञान-रोगके एक मात्र औषध जिसके पास मूर्ति धारण करते हैं ॥१५॥

१५. अति शुद्ध किरणों जैसे गुणों द्वारा सारी दिशाओंको अत्यन्त अलंकृत करता, प्रवरपुर (श्रीनगर) नामसे प्रसिद्ध जिसका मुकुट-मणि है ॥२१॥

१६. जहां चकोर-नयनियोंके काम-तन्त्रमें निपुण सुन्दर विलास विजयी हैं, जो लब्धताके तौरपर कामदेवके शौर्यकी श्लाघाकी प्रथाओंका समर्थन करते हैं ॥२२॥

१७. घने (जल) भंवरों सदृश, नये आलवालोंके साथ पुण्यलताको जोड़ते, जहां सागरके प्रेमकी भूमि (डल) और महानदी वितस्ताका संगम शोभा देता है ॥२४॥

१८. इतस्ततः कुंकुमरेणुधोरणीवियोगिनीवव्यपटानिव क्षिपन् ।
न यत्र वायुः सहते नतभ्रुवामकाण्डमानग्रहकेलिडिण्डिमम्
॥२६॥

१९. हिमागमे यत्र गृहेषु योषितां ज्वलत्कटुस्निग्धसर्गा हसन्तिका ।
विभाति जेतुं मदनेन शूलिनं धृता नतिर्वह्निमयीव चक्षुपाम्
॥२९॥

२०. अनुक्षणानेकनिपीतशात्रवप्रतापवह्निप्रतिवर्पणादिव ।
असह्यतां कस्य न नाम निर्गलज्,
जगाम यद्धामविलोलनांचलम् ॥४९॥

(३) **कविवंशः—**

२१. वितीर्य पुष्पस्रजमुन्मदालिभिः पुरस्कृतां दैवशुभाक्षरैरिव ।
असूत्रयद्यस्य स सुस्सलक्ष्मापतिर्बृहत्तन्त्रपतित्वकल्पनम् ।
॥५०॥

२२. निवेशिते सुस्सलभूविडौजसा स्वयं गरीयस्यपि संधिविग्रहे ।
विधाय चक्रे स्वयशोमयीं लिपिं
स लेखवर्गस्य विमुद्रमाननम् ॥६२॥

२३. अथोदभूत्तस्य कनिष्ठसोदरः स मंखको यस्य शिशोरतन्वत ।
शिरस्युपोढा गुरुपादरेणवः सरस्वतीनिर्माणचूर्णनैपुणम्
॥६३॥

२४. अधीतवैदग्ध्यविशेषमक्रमात्कलासु शास्त्रे व्यवहारकर्मसु ।
विशेषवात्सल्यवतीव यं सुतं मुखैरचुम्बद्बहुभिः सरस्वती
॥६५॥

२५. अनन्तरं सुस्सलदेवनन्दनो यमादराज्जयसिंहभूपतिः ।
व्यधात्प्रजापालनकार्यपूरुषं रुषं वितन्वन्नविनीतजन्तुषु ।६६।

१८. केसर-धूलिकी पंक्तिवाला, वियोगिनियोंके वक्ष-सम्बन्धी लाल वस्त्रोंको सा इधर-उधर फेंकता, वायु जहां तिरछी भौंहोंवालियोंके असमय गान करने के कीर्तिनगाड़ेको नहीं सहता ।।२६।।

१९. जाड़ोंमें जहांपर स्त्रियोंके घरोंमें बहुत छिद्रोंवाली जलती कांगडियां, शंकरको जीतनेके लिये कामकी अग्निमय नेत्र-पंक्तियोंसी सोहती है ।।२९।।

२०. तुरंत अनेक शत्रुओंके प्रताप-अग्निको बराबर पीकर वमन करता सा, जिसकी सुंदरियोंका गिरता अंचल, किसको सह्य हो सकता था ।।४९।।

३. कवि का वंश—

२१. देवके शुभ अक्षरों जैसे मस्त भ्रमरोंसे युक्त पुष्पमालाको प्रदान कर, सुस्सल राजाने जिसे धर्माधिकारी पद प्रदान किया था ।।५०।।

२२. पृथिवीन्द्र सुस्सल द्वारा स्वयं बड़े सन्धि-विग्रह-मंत्रीके पदपर स्थापित किये जाने पर, जिसने अपनी यशोमयी लिपि लिखकर लेखक-वर्गके मुंहको मूंद दिया ।।६२।।

२३. फिर उसका छोटा सहोदर मंखक हुआ, जिस शिशुको सिर पर रक्खी गुरुकी चरण-धूलियां सरस्वतीके वशीकरण-चूर्णकी निपुणता को प्राप्त हुई ।।६३।।

२४. कलाओंमें, शास्त्रमें, न्यायालयकर्ममें एक साथ पढ़कर विदग्ध हुआ देख, जिस पुत्रको सरस्वतीने विशेष वात्सल्यसा मानो बहुत मुखोंसे चूमा ।।६५।।

२५. पीछे सुस्सलदेवके पुत्र राजा श्रीजयसिंह ने आदरके साथ (मंखकको), दुष्ट प्राणियोंपर रोष करते प्रजा-पालन-कारी पुरुष बनाया ।।६६।।

२६. लीलामुक्तमनुष्यविग्रहमयग्रन्थिग्रहः शार्ङ्गिणस्,
तीर्थे सोऽथ तिथौ वहत्त्वचनिभृत्पुत्रीपतेरभ्यगात् ।
वामार्धध्वजराजदण्डपतितत्रस्तापरार्धस्खलत् ,
केलीकांकणदन्दशूकबहुलोत्फालावचूले वपुः ॥७०॥

२७. इत्थं याते पितरि जगति ब्रह्मभूयं स आसीद् ,
अन्तस्तेषां विषमविषमाहंकृतिः शोकशंकुः ।
चेतोभित्तेरनुपधिबृहद्बन्धुरेको विवेको,
लब्धोद्रेको निभृतनिभृतं तं शनैरुच्चखान ॥७१॥

२८. एकादश्यां व्रतनियमवानेकदा तत्कनीया-
नेकाकी सन् भवनवलभीं मंखकः सोऽधिशिश्ये ।
वागीश्वर्या वदनवसतेः केवलं वाह्यहंसी-
व्यंजन्गण्डस्थलपरिणमच्चन्द्रबिम्बच्छलेन ॥७२॥

२९. स्वप्ने तत्र ददर्श स स्वपितरं देहं वहन्तं शिल-
त्तापिच्छच्छदकेतकच्छविवपुःखण्डद्वयीकल्पितम् ।
एकार्धेन वसन्तमग्रचरणद्वारेण मन्दाकिनी-
मन्यार्धेन च बिभ्रतं पटुरटद्वीचिं जटावर्त्मनि ॥७३॥

३०. द्वैराज्यकारि सुमनोनिवहस्य कर्ण-
पूरश्रियः किमपि वाङ्मयमभ्यगीष्टाः ।
तत्किं पुनासि न सुत, क्षणदाकुटुम्ब-
लेखावचूलचटुचुम्बितभिरुचितदेवीम् ॥७५॥

३१. पितृभारतीविवृतपौष्टिकक्रियाक्रममाण-
भक्तिसहवासि मानसः ।
इति स प्रबन्धयति मंखको गिरं
विरचय्य शंकरचरित्रकिंकरीम् ॥७८॥

—सर्गः ३

२६. फिर पार्वती-पतिकी तिथि (शिवरात्रि) को
विष्णुतीर्थमें मंखक ने मनुष्य-शरीरके बंधनसे अप्रयास मुक्त हो,
बांये अर्धांगमें ध्वज राज दंड से गिरे संत्रस्त दाहिने अर्ध भागसे गिरते
क्रीड़ा-कंकणकी शर्वका उमा शरीर प्राप्त किया ॥७०॥

२७. इस प्रकार पिताके तुरन्त ब्रह्मरूप हो जानेपर, जो उनके
भीतर अति विषम अहंकार शोकका कांटा था,
उसे अकारण महाबन्धु विवेक ने चित्त-भित्तिसे
प्रसन्नता प्राप्त कर चुपके चुपके धीरेसे उखाड़ दिया ॥७१॥

२८. एकादशीको एक बार व्रत-नियम रखे भाइयोंमें सब से छोटा, मंखक एकाकी मकानकी अटारीपर, सरस्वतीके मुख-वसतीके केवल वाहन हंसको, कपोलके पूर्ण चन्द्रमंडलके बहाने व्यक्त करता सो गया ॥७२॥

२९. वहां स्वप्नमें उसने अपने पिताको देखा-एक आधेसे शरीरको. मिलते तापिच्छ पत्र केवड़ेके शोभावाले दो खंडोंसे निर्मित, अगले चरणसे वमन करते दूसरे आधेसे जटा-मार्गमें लहरोंवाली घरघराती गंगाको धारण करते ॥७३॥

३०. दो राज्य करनेवाले कर्ण-भूषणयुक्त श्रीसे पुष्प-समूहसे कुछ वाङ्मयको तुमने पढ़ा है। सो हे पुत्र, क्यों नहीं तू शंकरका महात्म्य वर्णन करनेवाली युक्तियोंसे वाणीदेवीको पवित्र करता ॥७५॥

३१. पिताकी वाणीसे खुली पौष्टिक क्रियाको बढ़ाती भक्तिसे युक्त मनवाला, मंखक शंकर-चरित्रकी दासी वाणी की रचना करता है ॥७८॥

—सर्ग ३

(४) मदनाभियानम्—

३३. तद्वपुष्युपहितं विरराज क्रीडया कदलिगर्भतनुत्रम् ।
नीलिमाढ्यनयनाञ्च कथंचित्तत्र यस्य घटते परभागः ॥१॥
३४. कामिसंततिहृदन्तरवासक्रान्तरागलहरीरमरीतिः ।
पाटलापटलमभ्युदगच्छद्धीरपट्टघटनाविललाटम् ॥२॥
३५. माधवग्रथितया कृतरोधं गोधया विकचचम्पकमय्या ।
उज्झितेऽपि वलये कृतकेलिस्वर्णकंकणमिवास्त भुजाग्रम्
॥३॥
३६. चापमाप करपंकरुहांकं पाटलं दलदशोककुलेन ।
सर्वतः परिणताधररागे चुम्बनादिव जगज्जयलक्ष्म्याः ॥४॥
३७. तद्धनुर्गुणलताग्रनिषण्णैः क्षोभयंत्रिजगदप्यलिजालैः ।
सांजनैर्विरहिणीनयनाम्भःसीकरैरिव कराञ्चितमासीत् ॥५॥
३८. सोऽस्त्रपुष्पनिवहैर्भृतगर्भः पृष्ठवर्त्मनि ररंग निषंगः ।
यत्र सौरभहृतभ्रमरौघे मज्जति स्म शिथिलः गन्धभारः ॥६॥
३९. अन्वरोधि दधता गुरुरंहः सैंहलेन रथता पवनेन ।
सौरभादुपनतैरलिचक्रैर्योऽप्रसंगतरथांग इवासीत् ॥७॥
४०. आतपत्रपदवीमधिशिश्ये मण्डलो रजनिभर्तुरखण्डः ॥
छिन्नमध्वगसरोजमुखीनां योन्तरातपविशोषमपुष्यत् ॥८॥
४१. आकुलन्कलकलाननवल्गन्नग्रतः परभृतोऽजनि बन्दी ।
यः पृषत्कसहकारपरागैरप्यनीयत परं परितोषम् ॥९॥

४. मदनका आक्रमण

३३. वह शरीरपर केलेके पत्तोंका कवच रखके लीलाके साथ विराज रहा था। नीलिमाके दो नयनोंके कारण वहां उसमें कुछ भी भेद नहीं होता था ।।१।।

३४. कामी जनोंके हृदयके भीतरके वस्त्रमें लगी अनुरागकी लहरीके समान, पाटला पुष्पके समूहोंका वीरों-पट्ट ललाटपर बंधा था ।।२।।

३५. युद्धके समय क्रीड़ाके सुवर्ण-कंकणधारी भुजकी हथेलीकी तरह कंकण छोड़नेपर भी, चैत्रकी गुंथी फूले चम्पकोंवाली प्रत्यंचा द्वारा वह आच्छादित था ।।३।।

३६. फूले अशोकोंसे हस्त-पद्मयुक्त लाल धनुषको पकड़े, मानो जगत्-विजयरूपी लक्ष्मीके चुम्बनसे गहरा अधर-राग सर्वत्र (लगा) ।।४।।

३७. उस धनुषकी ज्या-लताकी नोकपर बैठे भ्रमर-बच्चों द्वारा तीनों लोकको भी शोभित करते विरहिणी के अंजनयुक्त नेत्रोंके अश्रु-कणों द्वारा (वह) मानो प्रकाशित हो रहा था ।।५।।

३८. अस्त्ररूपी पुष्पोंसे भरा तूणीर उसकी पीठपर सोह रहा था, जहां सुगंधसे आकृष्ट भंवरोंमें (उसका) शिथिल केश डूब रहा था ।।६।।

३९. भारी वेग-धारी सिंहलकी ओरसे आये, (दखिना) वायुको किसने रोक दिया, सुगन्धके कारण आये भ्रमरों द्वारा जो आगे लगे चवकेसा था ।।७।।

४०. रजनी-पति (चंद्र) के पूर्ण मण्डलने छत्रका रूप धारण किया, [illegible] कमलमुखियोंकी अन्तर्ज्वालाको विचित्र तौरसे विशेष बढ़ा दिया ।।८।।

४१. व्याकुल कलरव करती कोयलें आगे आगे बन्दीजन बनीं, जो कि बाणरूपी आमोंके परागों से बहुत परितुष्ट थीं ।।९।।

४२. आवहन् प्रविकसद्बकुलमालान्यकृति मुनिहृद्भवनेषु ।
दृप्ततां दधदधिप्रतिहारं पञ्चमोऽप्युपगतो प्रथमत्वम् ॥१०॥

४३. उन्नतस्य अभिति स्वयमग्रं केतनस्य तिमिरग्रहदाशिरस्तः ।
वाहिनीर्विरहिणीक्षणवार्भिर्यः प्रांशयति वारिधिरेव ॥११॥

४४. कौतुकादिति जगत्त्रयलक्ष्मीमुद्यतो रतिपतिः परिणेतुम् ।
संननाह दयितार्पितनेत्रप्रान्तकान्तिपुनरुक्ततनुत्रः ॥१२॥

(५) रतिवारणा—

४५. "प्रिय खण्डयितुं वियोगिनीः कतरस्तेऽभियानसम्भ्रमः ?
अबलादलनात् क्व वा स्थिते वद वीरव्रतकीर्तिडिण्डिमः ॥१३॥

४६. स्वयमेव कथं प्रवर्तसे त्रिजगज्जेतुमपोढसंकटः ।
घटते मधुनेन्दुनाथवा न तदेकेन पदातिनापि ते ॥१४॥

४७. स निहत्य बभूव राघवः स्त्रियमेकामपि दुर्यशोनिधिः ।
तव नाथ कथं नु कीर्तनं त्रिजगत्स्त्रैणवधात्प्रवर्त्स्यति ॥१५॥

४८. शमिनामथ धैर्यलुप्तये यतसे बिभ्रदाशुगं धनुः ।
अधिकं वद किं त्वयेप्सितं स्वशरीरव्ययतोऽपि यत्फलम् ॥१६

४९. तव दुर्मदता कियत्यहो हरनेत्राग्निशिखाङ्कुरैः श्रितैः ।
घटनादधुनापि यस्य नो भुजकण्डूरुपशान्तिमश्नुते ॥१७॥

५०. विजहीहि मुधा तपोधनानवजेतुं स्मर चापचापलम् ।
पुरतः पुनरप्यहं सहे नहि वैधव्यविषादविक्रियाम् ॥१८॥

४२. प्रवेश करते तीव्र मानके तिरस्कारको युवतियोंके हृदय-भवनमें लाते, प्रतीहारोंके कर्म धारण करने में पंचम (राग) भी प्रथम हो गया ॥१०॥

४३. ऊंचे ध्वजके अग्रभागपर तुरंत स्वयं तिमि (मत्स्य) लेट गई, जो (अपने) निवारणके विचार से विरहिणियोंके नेत्र-जलकी नदियां बनाता है ॥११॥

४४. तीनों लोककी लक्ष्मीको व्याहनेके लिये उद्यत प्रियाके ऊपर डाली दृष्टिके कोनोंकी कान्तिके समान कवचवाला कामदेव, कौतुक-पूर्वक सन्नद्ध हुआ ॥१२॥

५. रतिका रोकना—

४५. "हे प्रिय, विरोगिनियोंके दलन के लिये तेरा यह कौन सा प्रयास है? बतला, अबलाओंके दलन करनेसे वीर व्रतवालोंकी कीर्तिका कहां नगाड़ा बजता है ॥१३॥

४६. कवचबद्ध हो तीनों लोकको जीतनेके लिये स्वयं ही तुम क्यों प्रस्थान करते हो? क्या वह एक वसंतसे या चन्द्रमारूपी प्यादेसे नहीं हो सकता ॥१४॥

४७. राम एक ही स्त्रीको मारकर अपयशके निधान बने। हे नाथ, तीनों जगत्‌की स्त्रियोंके वध करनेसे कैसे तुम्हारा यश होगा ॥१५॥

४८. यदि यतियोंके धैर्यको लुप्त करने [illegible] जो प्रयत्न करते हो, तो अपने शरीरके [illegible] अधिक अच्छा फल पाया ॥१६॥

४९. अहो तुम कितने दुर्मद है, जिसकी भुजाकी खुजलाहट शंकरके नेत्र-अग्निकी ज्वालाके तीक्ष्ण अंकुरोंके संसर्गसे आज भी शान्त नहीं होती ॥१७॥

५०. हे काम, तपस्वियोंको जीतनेके लिये धनुषकी व्यर्थ चपलताको छोड़ो। पहले ही से वैधव्य (पाप) दुःखके विचारसे [illegible] में नहीं सह सकती ॥१८॥

५१. शमिषु त्यज तर्जनोद्यमं सफलानुग्रहनिग्रहा हि ते।
ननु निश्चितनिष्फलश्रमो व्यवसायोऽयमनर्थसंश्रयः ॥१९॥

५२. त्रिजगद्विजये स्म संभृतं ललना एव तवैकसाधनम्।
कतरेण पथाथ जेष्यसि प्रथमं ता यदि हस्यनागमः ॥२०॥

५३. भवतोज्झित एव विग्रहः सुमनोमार्गणपूरणैषिणा।
तव नाथ, तथाप्ययं कथं परबाधाय मुधैव दुर्ग्रहः ॥२१॥

५४. अधुनाऽप्यनुभूयते त्वया स्मर शापात्फलमब्जजन्मनः।
किमयं क्रियते तदप्यहो बहुमन्वन्तरशापसंग्रहः ॥२२॥

५५. कुसुमैर्निहताः कथं व्यथामुपयान्तीति वृथैव मन्यसे।
मणिमन्त्रपथातिवर्तिनां विषमेषां हि पुरोऽमृतायते" ॥२३॥

५६. सनयैः सभयैश्च विस्तरैर्वचसामित्यरुणत्स्मरं रतिः।
स तु तत्करतोंऽशुकाञ्चलं द्रुतमाकृष्य मदेन निर्ययौ ॥२४॥

५७. विलोचनाम्भःसरितो व्यनवित सा मुखेन मीनांकगथानु-
बन्धिनीः।
ह्रदेषु यासां प्रतिबिम्बिताश्चिरं व्रजन्ति सख्यो जलमानुषी-
लिपिम् ॥२५॥

५८. भुजंग, तस्या विरहापचारिणः प्रवर्धमानोऽभ्यधिकं मधावपि।
त्वदाप्तिसंकल्पचमत्क्रियौषधैर्निशीथिनीनां श्वयथुर्वि-
लुप्यते ॥२६॥

५९. ससौरभश्वासहृतैर्मधुव्रतैः स्मरोप्तहालाहलबीजबन्धुभिः।
निपत्य तस्याः पुलोऽश्रुसारणिभूता हलोल्लेखरुजेव
जन्यते ॥२७॥

५१. यतियोंकी तर्जनाका प्रयत्न छोड़ो, वे अनुग्रह और निग्रह करनेमें समर्थ होते हैं। तुम्हारा यह प्रयत्न निश्चय निष्फल-श्रम अनर्थकर है ॥१९॥

५२. तीनों जगत्के विजयमें लगे तेरे पास ललना एक ही साधन है। यदि पहले उन्हीं निरपराधिनियोंको मारता है, तो कौन उपायसे तू जीतेगा ॥२०॥

५३. विद्वानों (फूलों) के मार्गण (मांगने या बांस) के पूरनेके इच्छुक हो आपने विग्रह छोड़ा ही है। हे नाथ, तो भी दूसरेको व्यर्थ पीड़ित करनेके लिये यह दुराग्रह क्यों ॥२१॥

५४. हे काम, ब्रह्माके शापका फल अब भी तू भोग रहा है। तो भी हाय, दूसरे बहुतसे मुनियोंके शापोंको यह क्यों जमा कर रहा है ॥२२॥

५५. 'फूलोंके मारे क्या दुखी होते हैं', यह तू वृथा ही सोचता है। मणि और मंत्रकी पहुंचके बाहर (तेरे) इन बाणोंसे विष भी अच्छा है" ॥२३॥

५६. रतिने नययुक्त भययुक्त विस्तृत वचनोंसे कामको रोका, किन्तु वह उसके हाथसे वस्त्रके छोरको खींचकर मदके साथ जल्दीसे निकल गया ॥२४॥

५७. रतिने कामदेवके पथका अनुगमन करनेवाली आंसूकी नदियोंको अपने मुखसे प्रकट किया। जिन (नदियों) के दहोंमें प्रतिबिम्बित सखियां चिर कालसे जलमानुषियोंकी लेखा बन रही हैं ॥२५॥

५८. हे लम्पट, रतिके विरह द्वारा अपचारित हुआ मधुमासमें अत्यधिक बढ़ता, तुझे पानेके संकल्पकी चमत्कारिक औषधियों द्वारा रात्रियोंका बढ़ना रुकता है ॥२६॥

५९. सुगंधित सांससे आकृष्ट, कामके बोये हलाहल-बीजके प्रेमी भ्रमरों द्वारा सामने गिरकर रतिके आंसूकी नहर धारण करनेवाली हल्की जुदाईकी सीमा सी पैदा हुई ॥२७॥

६०. कुचस्थले सा बिसकाण्डतन्तुभिर्बिभ्रती हारलतापरिग्रहम्।
व्यनक्ति लब्धं मदनादवश्यलां कृतोपवीतामिव देहकन्द -
लीम् ॥२७॥

६१. अनल्पसंकल्पवशेन मन्यते दिशस्त्वदाकारकृतावगाहनाः ।
ततश्च सा तासु मुहुर्विमुग्धधीर्विमुंचतीर्ष्याकलुषं विलो-
चनं ॥२९॥

६२. शशांककान्तोपलकुट्टिमेषु सा बिभर्ति संक्रान्तवपुः प्रति-
क्षपम् ।
रसातले कर्तुमिवोद्यता शशिच्छविच्छटासंगभयेन मज्जनम्
॥३०॥

६३. वियोगवत्याः शबले कुचस्थले सकज्जलश्रोच्छलदश्रुचक्रकैः
कथंचनोच्छ्वासधुते विभाव्यते, निवेद्यमानाम्बुजिनीदलाव-
लिः ॥३१॥

६४. व्यनक्त्युपान्ते श्रवसोर्वलत्तनुः सकज्जलां सा नयनाम्बु-
पद्धतिम् ।
स्वकां स्वसारं रविजेन निम्नगां, पुरो विसृष्टामिव दूत्य-
सिद्धये ॥३२॥

६५. स्तनाग्ररम्भादलडम्बरेषु सा पतद्भिरासांजनमश्रुणः कणैः ।
यियासतां दूरमनंगशासनाल्लिखत्यसूनां पथि पट्टकानिव
॥३३॥

६६. ततः किमन्यद्बहुनाधुनापि नेदपैषि चातुर्यरसान्वितैः पदैः ।
न जायते ते तदकीर्तिकल्मषप्ररोहकल्माषनिवेशनं
यशः ॥३४॥

६७. निपीय दूतीवदनात्तजन्मनः क्षणं श्रुतिभ्यामिव वाक्य
विप्रुषः ।
जवाद्युवानो दधतः पदात्पदं ययुः प्रियाणां नयनोच्च-
लुम्प्यताम् ॥३५॥

६०. कंठ-स्तनस्थानमें कमलतंतुओं द्वारा हार धारण करनेको प्रकट करती, और मध्यम अवस्थाका पानेका यज्ञोपवीत धारण करती देव-कन्याको प्रकट कर रही थी ॥२८॥

६१. बहुत मंगलोंके कारण दिशाओंको तीरे आकारसे ढांकनेवाली मानती, और इसलिये उनमें बार-बार विमोहित, वह ईर्ष्यालु-नेत्रा हो नजर आती थी ॥२९॥

६२. चन्द्रकान्त-पत्थरके चबूतरोंपर अपने शरीरको प्रतिबिम्बित करती प्रतिरात्रि शोभा रही, वह मानो चांदनीकी छटाके संसर्गके भयसे रसातलमें डूबने के लिये तैयार थी ॥३०॥

६३. उस वियोगिनीके मलिन स्तन-स्थलपर कज्जलसहित गिरते आंसुओं द्वारा, रखी हुई कामलिनियोंके पत्रोंकी पंक्तियां सांसके कंपनसे गिरी तरह जान पड़ती थीं ॥३१॥

६४. छटपटाते शरीरवाली वह कज्जलयुक्त आंसुओंके रास्तेको दोनों कानोंके पास प्रकट कर रही थी। मानो यमने दूती के कामकेलिए अपनी बहिन यमुना नदीको वहां छोड़ा हो ॥३२॥

६५. वह स्तनके ऊपरके कदलीपत्रोंके ऊपर कज्जलयुक्त गिरते आंसुओंके कणों द्वारा, कामदेवकी आज्ञासे दूर जानेके इच्छुक प्राणोंके लिये मार्गपत्र लिख रही थी ॥३३॥

६६. फिर अब बहुत कहनेसे क्या, जल्दी करते पैरोंसे यदि तू जारहा है, तो उस अपयशरूपी पापके उत्पादक मलस्थानीय यश मुझे नहीं प्राप्त होगा ॥३४॥

६७. गुणियों द्वारा जन्म देनेवाले (काम) के बाणों रूपी बूंदोंको मानो कानोंसे क्षण भर पीकर, बगले पैरके बाद पैर रखते हरण (कौन) प्रियतमाओंके भवनोंके पास गये ॥३५॥

६८. अभ्रंलिहोल्लोलकुले कुचेषु क्षिप्तं क्षिणत्यक्षतमौक्तिकाली:।
बभूव वैमानिककामिनीनामयत्नतो हारलतानिवेश: ॥३६॥

६९. इन्दौ सुदूरोच्छलदूर्मिमुक्तैर्मुक्ताफलैराप्तनवावगूहे।
दक्षस्य कन्यास्वचुकुपु: प्रसंगमासाद्य तदेतरता
रत्नाभि: ॥३७॥

७०. तुंगोर्मिभंगेषु सुरर्षिलोक: प्रसंगतोऽप्यग्रमवाप्तवत्सु।
आचान्तये प्रोद्धृतसीधुशेषभयेन पस्पर्श न तत्पयांसि ॥३८॥

७१. छन्नेऽम्बरेऽनर्गलवीचिचक्रादुत्थाय मीनैर्मकरैस्तनैवै:।
मौहूर्तिकानां प्रबभूव दृष्टिर्न राशिसंचारविनिश्चयेषु ॥३९॥

७२. दूरोच्छलल्लोहितकांशुजालैरालम्बमाना नवमंगरागम्।
खे सौम्यकाव्यांगिरसादयोऽपि ते,
न कस्य शोभभ्रममेव चक्रु: ॥४०॥
—सर्ग: १२

(६) कविगण:—

७३. बाणोपम: प्रबन्धो लंखक, तव पत्रलब्धदूरगति:।
विध्यति कस्य न हृदयं विविधरसमज्यानिवेशेन ॥४६॥

७४. एकं श्रीजयसिंहपार्थिवपतिं काश्मीरमीनध्वजं,
तस्योपासितसंधिविग्रहमलंकारं द्वितीयं स्तुम:।
भूभार: प्रथमेन पन्नगपते: क्ष्मां रक्षता वारितो,
नीतोऽन्येन कृतार्थतां प्रवचनैर्भाष्योपदेशश्रम: ॥६१॥

७५. प्रक्रमैर्हृद्यवक्रिम्णो मुरारिमनुधावत:।
श्रीराजशेखरगिरो नीवि यस्योक्तिसंपदाम् ॥७४॥

६८. स्तनोंपर अक्षतारूपी मोतियोंको जल्दी फेंकता वह मेघचुम्बी चंचल स्थलोंपर वैमानिक कामिनियोंके लिये बिना प्रयत्नके हार-लता बन गया ॥३६॥

६९. सुदूर उछलती लहरोंसे छोड़ी मोतियों द्वारा नव-आलिंगन-प्राप्त चन्द्र पर दूसरी ताराओंके संसर्गकी आशंका करती दक्षकी कन्यायें कुपित हुई ॥३७॥

७०. प्रसंगसे अग्रता प्राप्त उत्तुंग लहरियोंमें देवर्षियोंने, तलछट मदिराके भयसे आचमनके लिये उसके जलको नहीं छुआ ॥३८॥

७१. निराबाध लहरोंसे उठे अनेक मीनों और मकरों द्वारा आकाशके ढंक जानेपर, ज्योतिषियोंकी दृष्टि राशियोंके संचारके निश्चयमें समर्थ नहीं हुई ॥३९॥

७२. दूरसे उछलते लाल किरण-जालों द्वारा नये अंगरागको लगाये आकाशमें लटकते बुध-बृहस्पति-शुक्र आदि ने भी किसीको मंगलका भ्रम नहीं पैदा किया ॥४०॥

—सर्ग १२

८. कविगण—

७३. हे लंकक, बाणके समान तेरा ग्रंथ(और)पत्र द्वारा प्राप्त(तेरी)दूर गति, विविध सभाओंमें (अपनी) प्रतिष्ठा द्वारा किसके हृदयको नहीं बेधती ॥४६॥

७४. एक श्रीजयसिंह राजारूपी कश्मीरके, कामदेवको दूसरे उसके सन्धि-विग्रह-मन्त्री अलंकारकी हम स्तुति करते हैं। प्रथम (जयसिंह) ने पृथिवीकी रक्षा करते शेषके भूभारको हटाया। दूसरेने अपने प्रवचनों द्वारा महाभाष्यके उपदेशके परिश्रमको कृतार्थ किया ॥६१॥

७५. अपने प्रक्रमों द्वारा वक्रोक्तिमें मुरारिका अनुकरण करते श्री राजशेखरकी वाणी जिसकी वचन-सम्पदाकी (अक्षय) निधि है ॥७४॥

७६. श्रीमद्राजपरीसंधिविग्रहस्य नियोगिनम् ।
अथानर्न्नं वचोभिस्तं जल्हणं विनयाञ्चितैः ॥७५॥

७७. यो रंजयति सद्वर्गरसनाभरणोज्ज्वलैः ।
न कस्य स्वप्रबन्धोक्तिवर्णैः पूर्णैरिवाननम् ॥७६॥

७८. पुनानमाभिजन्येन कृत्यं पाण्डित्यपङ्कलैः ।
निसर्गात्तमसंदिग्धं श्रीगोविन्दमविन्दत ॥७७॥

७९. श्रीमानलकदत्तोऽयमनल्पं काव्यशिल्पिषु ।
स्वगरश्रमसर्वस्वन्यासासभ्यमभन्यत ॥७८॥

८०. तमापचस्करे येन निजवाङ्मयदर्पणः ।
बिल्हणप्रौढिसंक्रान्तौ यथा योग्यत्वमग्रहीत् ॥७९॥

८१. तत्तद्बहुकथाकेलिपरिश्रमनिरंकुशम् ।
तं प्रश्रयप्रयत्नेन कल्याणं समगीमनत् ॥८०॥

८२. व्यनक्ति पृथु सामर्थ्यमाख्याया एव योऽक्षरैः ।
जयेऽभिनवगुप्तस्य प्रकटः प्रथमो गुरुः ॥९८॥

८३. पाणिनीयातपत्रेण पवित्रं यस्य तन्मुखम् ।
संगं स्वप्नेऽप्यवाप्नोति नापशब्दरजःकणैः ॥१००॥

८४. स्वस्येश्वरस्य यो व्यंजन्मण्डले मन्त्रसंस्क्रियाम् ।
धत्ते सदागमप्रीतिं दैशिकानां धुरि स्थितम् ॥१०१॥

८५. अन्यः स सुहलस्तेन ततोऽवंद्यत पण्डितः ।
दूतो गोविन्दचन्द्रस्य कान्यकुब्जस्य भूभुजः ॥१०२॥

—सर्गः २५

७६. श्री राजसंधि-विग्रहके अधिकारी उरा जल्हणको विनययुक्त वाणियोंसे पूजा।

७७. जो सत्पुरुषोंके वर्गकों में रसके संचारसे उज्ज्वल, अपने ग्रंथ कथित पूर्ण वर्णोंसे किसके मुखको नहीं रंजित करता ।।७४।।

७८. उत्कृष्टतासे पांडित्य-पद्धतिके कार्यको पवित्र करते, स्वभावतः ही असंदिग्ध गोविन्दको श्री प्राप्त हुई ।।७७।।

७९. इस श्रीमान् अलकदत्तने काव्यशिल्पियोंमें, अपने पराये श्रमकी सम्पत्तिकी भारी धरोहरको माना ।।७८।।

८०. जिसने बिल्हण जैसी प्रौढ़तामें पहुंचनेमें, जिसके द्वारा योग्यता पाई ।।७८।।

८१. उन-उन बहुत सी कथाओंकी क्रीड़ामें निरंकुश उसे प्रश्रय दे प्रयत्न-पूर्वक कल्याणकर माना ।।८०।।

८२. नामके ही अक्षरों द्वारा जो (अपनी) बड़ी सामर्थ्यको प्रकट करता है, जो अभिनवगुप्तके विजयमें प्रथम गुरु प्रकट हुआ ।।९४।।

८३. पाणिनीय (व्याकरण) के छत्रसे जिसका वह मुख पवित्र है, स्वप्नमें भी (जो) अशुद्ध शब्दरूपी मलसे लिप्त नहीं होता ।।१००।।

८४. जो अपने स्वामीके मंडलमें मंत्र-संस्कारको व्यक्त करते, आचार्योंका धुरीण होते सदा आगमों में प्रेम रखता है ।।१०१।।

८५. वह दूसरा सुहल है, जिससे कान्यकुब्जके राजा गोविन्दचन्द्रके दूत पंडित ने वंदना की ।।१०२।।

४५. वाग्भट्ट (११४० ई०)

यह कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्रके समकालीन जैन कवि थे, जिन्होंने १५ सर्गोंमें तीर्थंकर नेमिनाथके सम्बन्धमें "नेमिनिर्माण काव्य" लिखा है। बौद्धोंने प्राकृतके आरंभिक युगमें ही संस्कृत कवितासे नाता तोड़ लिया, केवल वैयाकरण चन्द्रगोमी अपवाद थे, जिन्होंने "लोकानंद" नाटक लिखा, जो अब तिब्बती अनुवादमें ही मिलता है। बौद्धों और जैनों दोनोंने संस्कृत कविताकी ओरसे दृष्टि हटाकर दर्शनकी ओर ध्यान दिया, और कविताका क्षेत्र ब्राह्मणोंके लिए छोड़ दिया। वाग्भट्ट जैसे कुछ और जैन कवियोंने भी

नेमिनिर्वाणम्

वसन्तः—

१. अथ विकासिकुशेशयलोचनस्तमवलोकयितुं कुतुकादिव।
उपययौ मधुरर्पितकामिनीस्मरवशो रवशोभितकोकिलः ॥१७॥

२. पथिकमानसकाननपावकस्मरमिव प्रतिबोधयितुं दधे।
यमदिशा शिशिरात्ययतः स्फुरत्कमलयामलया मलया-
निलः ॥१८॥

३. कुसुमचापनृपायुधहर्म्यतामवहति स्म भृशं कतरद्वनम्।
मिथुनपानघटी सुभगीभवत्तरुतलं रुतलम्पटषट्पदम् ॥१९॥

४. अपतुषारतया विमलत्विषा हिमकरेण सहेलमनीयत।
मलयशैलभुवा मरुताभितो विचरता च रताकुलतां जगत्
॥२०॥

५. अपि तरुस्तिलकः पुलकं दलन्मुकुलराजिमिषादपुषत्तनौ।
मृगदृशीभिरवेक्षित एव तत्किमुदितो मुदितो न युवा जनः
॥२१॥

४५. वाग्भट्ट (११४० ई०)

कविताके क्षेत्रमें हाथ बढ़ाया, लेकिन उन्हें सफलता नहीं हुई। बौद्धोंने तो शायद इसी ख्यालसे इधर प्रयास भी नहीं किया। लेकिन, इन दोनों धर्मोंने लोकभाषा साहित्यको समृद्ध करनेकी कोशिश की। बौद्धोंके काव्य अपभ्रंशमें मिलते हैं।

वाग्भट्टकी कृति शब्दाडम्बरपूर्ण है, जो उस समयके दरबारी पंडितोंका ही अनुरंजन कर सकती थी।

नेमिनिर्वाण

वसन्त-वर्णन—

१. तब कामिनियोंको कामके वशमें करनेवाले कोकिलके कलरवसे शोभित, फुल्ल-कमललोचन मधुमास मानो उन्हें देखनेके कौतूहलसे, आया ॥१७॥

२. शिशिर ऋतुकी समाप्ति पर फूलते निर्मल कमलवाला दक्षिण दिशासे मलयानिल (आ), पथिकोंके मानस-दावानलरूपी कामको मानो जगाने लगा ॥१८॥

३. कामदेव नृपकी आयुधागारताको कौनसा वन अधिक धारण करता था। गुंजनमें रत भ्रमरोंवाला वृक्षतल-युगल मद्य-घटकी सुंदर जोड़ी हो रहा था ॥१९॥

४. धुंधके न होनेसे निर्मल-प्रकाश चन्द्रमाने मलयपर्वतके वायुके साथ विचरते जगत्को रागसे व्याकुल कर दिया ॥२०॥

५. तिलक-वृक्ष भी खिलती कलिके बहाने शरीरमें पुलकित हुआ, मृगनैनियों द्वारा देखे जाने पर क्यों न तरुण-जन मुदित होवें ॥२१॥

६. मन्दिरचन्दनराजिमृगीदृशां
कमपि लास्यविधिं दिशति स्म यः ।
अनिलमुज्ज्वलसौरभमाकुला
स्तमलयो मलयोत्थितमन्वयुः ॥२२॥

७. मृदुसमीरणघूर्णितविग्रहं किशलयारुणकान्तिमतर्पयत् ।
मदिरयेव वधूमुखदत्तया युवकुलं वकुलं मदविह्वलम् ॥२३

८. वहति शैत्यममन्दमनिलश्च खे विरहिदेहविदारणदारुणः ।
कुसुमचापनृपस्य जगज्जये विधुरितो धुरि तोमरतां ययौ
॥२४॥

९. अमरघोरणिदर्शिततोरणैर्मधुमहोत्सवदेशमतुलां गते ।
प्रणयिनः प्रमदासु वितेनिरे कुरबकैरवकैतवमानिताः ॥२५॥

१०. निजकलत्रकुचाननमण्डलस्मृतिशवसमरज्वरसम्भ्रमैः ।
समभवन्सरितः पथि दुस्तराः सरसकोकरुकोकनदश्रियः
॥२६॥

११. कुसुमबाणसितातपवारणाद्विगिरिकिलात्पुरभित्त्वजयाश्रयम् ।
किमपि नो कुसुमेषु समाददे विदलितादलितानयमीहनः
॥२७॥

१२. गिरिषु कन्दरकिन्नरकामिनीजनितगीतरवश्रवणाद्भृत् ।
हरिणघोरणिरुन्मदमानसा धृतिमिता नमितायतलोचना
॥२८॥

१३. विशदचन्द्ररुचः स्फुटचम्पकप्रकरचारुदिशो मधुवासराः ।
विदधुरुन्मनसं न कमुत्कटस्मरबला खलालसकोकिलाः
॥२९॥

१४. मुहुरुदस्तपतद्वलयावलिः प्रवसता रमणेन तनुर्भृशम् ।
अभिललाष समागममंगना न सह का सहकारविलोकिनी
॥३०॥

६. मनोहर चन्दन-वाटिकाओंमें स्थित मृगनैनियोंको जो किसी नृत्यका ढंग सिखलाता था; उज्ज्वल सुगंधवाले फैले (उस) मलयानिलका आकुल भ्रमरोंने अनुगमन किया ।।२२।।

७. मृदु वायु से हिलते शरीरवाले, नवपल्लवसे अरुण कान्तिवाले बकुल-वृक्षको मधुसे विह्वल तरुणोंने वधूके मुखसे मिली मदिरा जैसा समझा ।।२३।।

८. विरहिणियोंके देहके विदारण करनेवाला दारुण वायु तीव्र गतिसे आकाशमें सर्दी ला रहा था, काम-नृपके दिग्विजयके लिये चन्द्र निष्कलंक तोमर बन गया था ।।२४।।

९. मधु-महोत्सवके गृह-समान अमरोंकी पुरीमें दिखाये तोरणों द्वारा निश्चल मनसे प्रेमियोंने कामिनियोंपर कुरबक सजाये ।।२५।।

१०. अपनी पत्नीके स्तन-मुखमंडलके स्मरणसे उत्तप्त कामज्वर द्वारा पीड़ित बटोहियोंके लिये, रास्तेकी सरस कोंपलें और सुन्दर कमलसे शोभित नदियाँ दुस्तर हो गईं ।।२६।।

११. विचलित भ्रमरोंके तानसे आकृष्ट मनवालोंने पुष्पोंसे, कामके भोगे श्वेत छत्रसे सुगंधरूपी जयश्रीको नहीं लिया ।।२७।।

१२. पर्वत-कन्दराओंकी किन्नर-कामिनियोंके गाये गीतोंके शब्दोंके सुननेसे, मुद्रित विस्तृत आँखोंवाली मृगनैनियाँ उन्मत्त मानस हो सीमित धैर्यवाली हुईं ।।२८।।

१३. स्वच्छ चन्द्रकी चाँदनीयुक्त फूले चम्पकके समूहसे सुन्दर दिशाओंवाले, शब्दकी लालसावाली कोयलों जैसे उत्कट कामसेनावाले मधुमासके दिन किसे नहीं उत्सुक करते ।।२९।।

१४. प्रवासी कान्तके कारण दुबली, ऊपर उठानेसे गिरती वलयोंवाली आमको देखती कौन सी अंगना समागमके लिये विलाप नहीं करती थी ।।३०।।

१५. किसलयैः कुसुमैश्च निरन्तरैः प्रतिदिशन्नमशोकमहीरुहः ।
परिवृतः सहसा कमलेक्षणाक्रमहतो महतो रागसंनिभैः
॥३१॥

१६. उपहृतैः स्वयमग्रिमवल्लकीकिशलयप्रसवैरनुनिर्झरे ।
अनुनदीतटगुल्मकटमन्मथैर्द्विरदनैरदनैर्निजवल्लभाः ॥३२॥

१७. शशिनि कौसुमतल्पतले जलेऽप्यनुपशान्तवपुर्दवथुव्यथा ।
अरतिमिष्टतमेन वधूश्चिरं विरहिता रहितारपिकीरवे
॥३३॥

१८. अनुनयैर्न हृदः प्रमदामदं रहयति स्म गतागपि सा पुरा ।
स्वयमगामि मधौ प्रियसंनिधाविह तया हतया मदनेषुभिः
॥३४॥

१९. मकरकेतुकलत्रमुखश्रियं यदवहत्सरसीषु सरोरुहम् ।
अगमयन्मणिकुण्डलतां स्त्रियस्तदलसं दलसंगिशिलीमुखम्
॥३५॥

२०. मधुरकूजितसूचितवल्लभागममहाय मुहुर्बलिभोजिने ।
करतलेन बलिर्ददतेतमामबलया वलयावलिकाङ्गिणा ॥३६॥

२१. मृदुसमीरचलालकसंचया रणझणन्मणिकिङ्किणिका मुहुः ।
ललितकेलिमसेवत दोलया रसमये समये च न का वधूः ॥३७॥

२२. बहलकिंशुकवीथिकया मधुश्रिय इवाधरपल्लवलीलया ।
तनुरनीयत खेदमनिद्रिता रुचिरया चिरयातपतेर्भृशम् ।३८।

२३. अनुवनं मधुरध्वनिकोकिलाकलकले सति कर्णपथातिथौ ।
न पथिकः प्रमदां कतमस्तदा स्मरति स्म रतिनायकनोदितः
॥३९॥

२४. उदितनिर्मलमण्डलचन्द्रमः कररसायनसेकगुणादिव ।
क्षितिरुहः कुसुमैर्बभुरुद्गतैः शबलिता बलितात्मतनुश्रियः
॥४०॥

१५. उद्यानके तोरणोंके समान प्रत्येक दिशामें घने नव-पल्लवों और कुसुमोंसे ढंका अशोकवृक्ष कमलनैनियोंके पैरों से सहसा पीटा गया ।।३१।।

१६. नवीन नहापर अत्यधिक कामार्त गजोंने अपनी प्रियाको, लाये सल्लकी-की फुनगीके नव-पत्रों आदि द्वारा स्वयं मनाया ।।३२।।

१७. कुसुम शय्याओंके जलमें चन्द्रमाके होते भी तापकी पीड़ा शरीरमें अन-उपशांत न करनेवाली कोयलके शब्दों से (वसंत में) विरहिणी वधुओंकी उत्कंठमक गाथ चिर विरति (की) ।।३३।।

१८. जो पहले अनुनयों द्वारा हृदयमें प्रमदाके मानको जरा भी नहीं हटी वह इस मधुमासमें मदन-बाणोंसे निहता स्वयं प्रियके पास आई ।।३४।।

१९. मानिनयों जो कमल रतिके मुखकी शोभा धारण करता था, वह भ्रमरोंयुक्त पत्रोंके साथ अलस हो स्त्रियोंका मणिकुंडल बना ।।३५।।

२०. मधुर कूजनसे प्रियके आगमनके मित्र, बलि-भोजी कौवेको, चूड़ियों-की पांती हिलते करतलोंसे अबलाने बलि प्रदान किया ।।३६।।

२१. मृदु वायुके चलनेमें हिलते अलकों तथा झनझुन करती मणि-किंकि-णियोंवाली किस तरुणीने इस रसमय समयमें क्षणभर झूले की ललित क्रीड़ाका सेवन नहीं किया ।।३७।।

२२. मधुकी स्त्रियोंकी तरह बहुत रेणुओंकी वीथियों जैसी अधर-पल्लवकी रुचिर लीलाके साथ, चिरसे गये पति वाली बालाने अनिद्रित रह शरीरमें बहुत खेद पाया ।।३८।।

२३. वनोंमें मधुर ध्वनिवाले कोयलोंके कलकलके कानोंमें आनेपर कौन सा पथिक पुरुष काम द्वारा प्रेरित हो प्रमदाको नहीं याद करता ।।३९।।

२४. उगे निर्मल मंडलयुक्त चन्द्रमाके किरणरूपी रसायनके सींचनके गुणसे मानो, (नारियां) वृक्षोंके फूले फूलों द्वारा निज शरीर को शोभासे संयुक्त दीखने लगीं ।।४०।।

१५. किशलयैः कुसुमैश्च निरन्तरैः प्रतिदिगन्तमशोकमहीरुहः ।
परिवृतः सहसा कमलेक्षणाक्रमहतो महतोरणसंनिभैः ॥३१॥

१६. उपहृतैः स्वयमग्रिमसल्लकीकिशलयप्रमुखैरनुनिन्यिरे ।
अनुनदीतटमुत्कटमन्मथैर्द्विरदनैरदनैर्निजवल्लभाः ॥३२॥

१७. शशिनि कौसुमतल्पतले जलेऽप्यनुपशान्तवपुर्दवथुव्यथा ।
अरतिमिष्टतमेन वधूश्चिरं विरहिता रहितारपिकीरवे ॥३३॥

१८. अनुनयैर्न हृदः प्रमदामदं रहयति स्म मनागपि या पुरा ।
स्वयमगामि मधौ प्रियसंनिधाविह तया हतया मदनेषुभिः ॥३४॥

१९. मकरकेतुकलत्रमुखश्रियं यदवहत्सरसीषु सरोरुहम् ।
अगमयन्मणिकुण्डलतां स्त्रियस्तदलसं दलसंगिशिलीमुखम् ॥३५॥

२०. मधुरकूजितसूचितवल्लभागममहाय मुहुर्बलिभोजिने ।
करतलेन बलिर्ददतेतमामवलया वलयावलिवर्षिणा ॥३६॥

२१. मृदुसमीरचलालकसंचया रणझुणन्मणिकिंकिणिका मुहुः ।
ललितकेलिमसेवत दोलया रसमये समये च न का वधूः ॥३७॥

२२. बहलकिंशुकवीथिकया मधुस्त्रिय इवाधरपल्लवलीलया ।
तनुरनीयत खेदमनिद्रिना रुचिरया चिरयातपतेर्भृशम् ।३८।

२३. अनुवनं मधुरध्वनिकोकिलाकलकले सति कर्णपथातिथौ ।
न पथिकः प्रमदां कतमस्तदा स्मरति ना रतिनायकनोदितः ॥३९॥

२४. उदितनिर्मलमण्डलचन्द्रमः कररसायनसेकगुणादिव ।
क्षितिरुहः कुसुमैर्बभुरुद्गतैः शवलिता बलितात्मतनूश्रियः ॥४०॥

१५. उत्सवके तोरणके समान प्रत्येक दिशामें घने नव-पल्लवों और कुसुमोंसे ढंका अशोकवृक्ष कमलनैनियोंके पैरों से सहसा पीटा गया ।।३१।।

१६. नदीके तटपर अत्यधिक कामार्त गजोंने अपनी प्रियाको, लाये सल्लकी-की फुनगीके नव-पत्रों आदि द्वारा स्वयं मनाया ।।३२।।

१७. कुसुम शय्यावाले जलमें चन्द्रमाके होते भी तापकी पीड़ा शरीरमें अन-उपशांत न रुकनेवाली कोयलके शब्दों से (वसंत में) विरहिणी वधुओंकी इष्टतमके साथ चिर विरति (की) ।।३३।।

१८. जो पहले अनुनयों द्वारा हृदयसे प्रमदाके मानको जरा भी नहीं हटी वह इस मधुमासमें मदन-बाणोंसे निहता स्वयं प्रियके पास आई ।।३४।।

१९. सरोवरमें जो कमल रतिके मुखकी शोभा धारण करता था, वह भ्रमरोंयुक्त पत्रोंके साथ अलस हो स्त्रियोंका मणिकुंडल बना ।।३५।।

२०. मधुर कूजनसे प्रियके आगमनके मित्र, बलि-भोजी कौवेको, चूड़ियों-की पांती हिलते करतलोंसे अबलाने बलि प्रदान किया ।।३६।।

२१. मृदु वायुके चलनेसे हिलते अलकों तथा रुनझुन करती मणि-किंकि-णियोंवाली किस तरुणीने इस रसमय समयमें क्षणभर झूले की ललित क्रीड़ाका सेवन नहीं किया ।।३७।।

२२. मधुकी स्त्रियोंकी तरह बहुत टेसुओंकी वीथियां जैसी अधर-पल्लवकी रुचिर लीलाके साथ, चिरसे गये पति वाली बालाने अनिद्रित रह शरीरमें बहुल खेद पाया ।।३८।।

२३. वनोंमें मधुर ध्वनिवाले कोयलोंके कलकलके कानोंमें आनेपर कौन सा पथिक पुरुष काम द्वारा प्रेरित हो प्रमदाको नहीं याद करता ।।३९।।

२४. उगे निर्मल मंडलयुक्त चन्द्रमाके किरणरूपी रसायनके सींचनके गुणसे मानो, (नारियां) वृक्षोंके फूले फूलों द्वारा निज शरीर को शोभासे संयुक्त दीखने लगीं ।।४०।।

२५. नवकुसुम्भकरम्बितमम्बरं समदना दधतीव निरैक्ष्यत ।
विकचकिंशुकवीथिकयोल्लसत्तरुणयारुणया वनमेदिनी
॥४१॥

२६. मधुरसातिशयं दधदुच्चकैरकृत चूततरुर्मधुपावलिम् ।
सततमात्मनि निश्चलसौहृदां भ्रमवतीमवतीर्णनवध्वनिम्
॥४२॥

२७. कृतकुशेशयकोशविकाशया समदकोकिलयाथ मधुश्रिया ।
धवलपक्षविहंगततेः पतत्कुमुदया मुदयाप्यत चेतसः ॥४३॥

२८. धवलधामनि निर्मलमूर्तितां स्वरविकस्वरतां पिकयोषितः ।
कृतवता मधुना विकृतिर्दधे प्रथयताथ यतात्मसु मन्मथम्
॥४४॥

२९. तुहिनतानवमातपतीव्रतां विदधतः सुतरां मधुवासराः ।
विरहिणामतिदुःसहतां गताः सुगुरवो गुरवोऽपचयं क्षपाः
॥४५॥

—सर्गः ६

४६. मरुला (११५० ई०)

संस्कृतकी इन महिला कवयित्रीके बहुत थोड़े ही पद्य मिलते हैं। इनके देश-कालके बारेमें कुछ नहीं ज्ञात है। धनददेव नामके एक कविने सुसीला, विज्जा और मोरिकाके साथ मारुलाकी कविताकी भी बड़ी प्रशंसा

२५. आकाश नवीन कुसुमोंसे फूले वस्त्र वाला वनभूमि मदनयुक्त गी, फूले टेसूकी वीथियोंसे उल्लसित हो तेज ललाईसे शोभित थी ।।४१।।

२६. आमका वृक्ष मधुके रसमें अधिक लिप्त भ्रमर-पंक्तियोंको ऊंचे धारण करता, अपनेमें निश्चल मित्रतावालोंकी भ्रमयुक्त नई ध्वनिको निरन्तर धारण करता था ।।४२।।

२७. कमलके कोशोंको उत्फुल्ल करती, मस्त कोकिलवाली, मधुमासकी सफेद पक्षवाले विहंगोंके गिरनेकी कुमुद वाली शोभाने चित्तको मोदसे भर दिया ।।४३।।

२८. चांदनीमें कोयलोंकी निर्मल-मूर्तिता और स्वरकी मधुरताको (प्रकट कर), मधुमासने यतियोंमें काम बड़ा विकार पैदा किया ।।४४।।

२९. चैतके दिन सर्दीकी कमी और धूपकी तीव्रताको अत्यधिक करते, विरहियोंके लिये अति दुस्सह और लंबी रातें अति भारी हुई ।।४५।।

—सर्ग ६

४६. मरुला (११५० ई०)

की है। शृंगार-प्रधान कविता बतलाती है, कि इनका सम्बन्ध किसी सामन्ती दरबारसे था।

विरहः—

१. गोपायन्ती विरह-जनितं दुःखमग्रे गुरूणां,
किं त्वं मुग्धे नयन-विसृतं बाष्प-पूरं रुणत्सि ?
नक्तं नक्तं नयन-सलिलैरेष आर्द्रीकृतस्ते,
शय्योपान्तः कथयति दशामातपे शोष्यमाणः[१] ॥१॥

२. कृशा केनासि त्वं ? प्रकृतिरियमंगस्य ननु मे,
मलाधूम्रा कस्माद्? गुरु-जन-गृहे पाचकतया ।
स्मरस्यस्मान् कच्चित् ? नहि नहीत्येवमगमत्,
स्मरोत्कम्पं बाला मम हृदि निपत्य प्ररुदिता[२] ॥२॥

४७. श्रीहर्ष (११६० ई०)

श्रीहर्ष अन्तिम कान्यकुब्ज नृपति जयचन्द (मृत्यु ११९३ ई०) के दरबारी पंडित थे। वह अभिमान के साथ अपने बारेमें कहते हैं कि "मुझे कान्यकुब्जेश्वर दो पान और आसन देते हैं।" उनका यह भी दावा है, कि मैं समाधिमें ब्रह्म-साक्षात्कार करता हूँ। इनके पिताका नाम हीर और माताका नाम मामल्ल देवी था। श्रीहर्ष कविसे अधिक दार्शनिक थे। शांकर वेदान्तपर इनका लिखा ग्रंथ "खंडनखंडखाद्य" अब भी सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। मेरे प्रतिभाशाली दिवंगत तरुण मित्र विज्ञानमार्तण्डने एक बार एक बड़े पंडितके सामने वाद रोप दिया था, कि खंडनखंडखाद्य वेदान्तक नहीं बौद्ध-दर्शनका ग्रंथ है। बेचारे पंडितने जब आरम्भके रामकी महिमा-वाले मंगलाचरणको उद्धृत किया, तो विज्ञानमार्तण्डने कहा—उसका

---

१. मन्दाक्रान्ता, २. शिखरिणी।

४३. मरुला

विरह—

१. गुरुओंके सामने विरहसे उत्पन्न दुःखको छिपाती, हे मुग्धे, क्यों तू आंगनमें फैले आंसुओंकी धारको रोक रही है। रात-रातको अश्रुजलसे भीगा हुआ तेरे बिस्तरेका यह धूपमें सूखता छोर तेरी दशाको बतला रहा है।।१।।

२. क्यों तू दुबली है? यही मेरे अंगकी प्रकृति है। मलिन धूमिल क्यों है? गुरुजनोंके घरमें रसोईदारिन होनेसे। क्या हमें याद करती है? "नहीं-नहीं" यह कहकर बाला मेरी छातीपर गिरकर कामसे कांपती रोने लगी।।२।।

४७. श्रीहर्ष (११६० ई०)

ग्रंथके विषयसे सम्बन्ध नहीं है। कविके तौरपर उन्होंने लुटिया डुबो दी है। हिन्दीके महाकवि केशवदाससे ही इनकी तुलना की जा सकती है। नैषधके थोड़े ही अंश हैं, जिन्हें उत्कृष्ट कविता कहा जा सकता है। लेकिन, श्रीहर्ष भी क्या करते, जब कविताकी तुला उस समय दूसरी ही मानी जाती थी। "नैषधीयचरित" इनका महाकाव्य २२ सर्गों और २८३० श्लोकोंमें समाप्त हुआ है। इनके दूसरे ग्रंथ थे (२) "स्थैर्यविचारणप्रकरण", (३) "विजय-प्रशस्ति", (४) "खंडनखंडखाद्य", (५) "गौडोर्वीशकुलप्रशस्ति", (६) "अर्णववर्णन", (७) "छन्दःप्रशस्ति", (८) "शिवशक्तिसिद्धि", (९) "नवसाहसांकचरितचम्पू"। इन नौ ग्रंथोंमें सिर्फ दो ही मिलते हैं। "छन्दः-प्रशस्ति" और "गौडोर्वीशकुलप्रशस्ति" लिखनेसे मालूम होता है कि पंडितराज जगन्नाथकी तरह इन्हें भी कई दरबारोंकी खाक छाननी पड़ी थी।

नैषध

(१) हंसविलापः—

१. पतत्रिणा तद्रुचिरेण वंचितं,
श्रियः प्रयान्त्याः प्रविहाय पल्वलम् ।
चलत्पदाम्भोरुहनूपरोपमा चुकूज कूले कलहंसमण्डली
॥१२७॥

२. "न वासयोग्या बसुधेयमीदृशस्
त्वमंग यस्याः पतिरुज्झितस्थितिः" ।
इति प्रहाय क्षितिमाश्रिता नभः
खगास्तमाचुक्रुशुरारवैः खलु ॥१२८॥

३. न जातरूपच्छदजातरूपता द्विजस्य दृष्टेयमिति स्तुवन्मुहुः ।
अवादि तेनाथ स मानसौकसा
जनाधिनाथः करपंजर-स्पृशा ॥१२९॥

४. "धिगस्तु तृष्णातरलं भवन्मनः
समीक्ष्य पक्षान्मम हैम जन्मनः ।
तवार्णवस्यैव तुषारसीकरै
र्भवेदमीभिः कमलोदयः कियान् ॥१३०॥

५. न केवलं प्राणिवधो वधो मम
त्वदीक्षणाद्विश्वसितान्तरात्मनः ।
विगर्हितं धर्मधनैर्निबर्हणं
विशिष्य विश्वासजुषां द्विषा-मपि ॥१३१॥

६. पदे पदे सन्ति भटा रणोद्भटा न तेषु हिंसारस एष पूर्यते ।
धिगीदृशं ते नृपते कुविक्रमं कृपाश्रये यः कृपणे पतत्रिणि
॥१३२॥

नैषध

१. हंसका विलाप—

१. उस रुचिर पक्षीसे वंचित, डबरेको छोड़कर प्रयाण करती हंसोंकी मंडली लक्ष्मीके नल चरणकमलके नूपुरसी किनारेपर कूजन करने लगी ॥१२७॥

२. "मित्र, जिस पृथिवीका तू मर्यादा-छोड़ा पति है, वह बसने योग्य नहीं" यह कहते मानो पृथिवीको छोड़ आकाशमें आश्रय ले पक्षियोंने कलरव करते निंदा की ॥१२८॥

३. "सोनेके पक्षसे सुन्दर ऐसे पक्षीको नहीं देखा"—बारबार प्रशंसा करते राजाको हाथके पिंजड़ेमें फंसे मानसवासी (हंस) ने तब कहा ॥१२९॥

४. "मेरे सुनहले पंखोंको देखकर लोभसे चंचल हुये आपके मनको धिक्कार है। हिमके फुहारोंसे समुद्रकी तरह इनसे कितनी तेरी लक्ष्मी-वृद्धि होगी ॥१३०॥

५. तुझे देखकर हृदयमें विश्वास किये मेरा वध केवल प्राणिवध नहीं होगा, विश्वास किये शत्रुओंके हनन को खास कर धर्मधनी लोग निंदते हैं ॥१३१॥

६. स्थान-स्थानमें रणमें उद्भट योद्धा हैं, उनसे (लड़नेमें) तेरी यह हिंसाकी भूख पूरी नहीं होती? हे नृपति, कृपापात्र बेचारे पक्षीके विषयमें तेरे ऐसे बुरे साहसको धिक्कार ॥१३२॥

७. फलेन मूलेन च वारिभूरुहां मुनेरिवेत्थं मम यस्य वृत्तयः ।
त्वयाद्य तस्मिन्नपि दण्डधारिणा कथं न पत्या धरणी ह्रणी-
यते" ॥१३३॥

८. इतीदृशैस्तं विरचय्य वाङ्मयैः सचित्रवैलक्ष्यकृपं नृपं खगः ।
दयासमुद्रे स तदाशयेऽतिथीचकार कारुण्यरसापगा गिरः
॥१३४॥

९. "मदेकपुत्रा जननी जरातुरा नवप्रसूतिर्वरटा तपस्विनी ।
गतिस्तयोरेष जनस्तमर्दयन्,
अहो विधे त्वां करुणा रुणद्धि न ॥१३५॥

१०. मुहूर्तमात्रं भवनिन्दया दया दयासखायः स्रवदश्रवो मम ।
निवृत्तिमेष्यन्ति परं दुरुत्तरस्त्वयैव मातः सुतशोकसागरः
॥१३६॥

११. मदर्थसंदेशमृणालमन्थरः प्रियः कियद्दूर इति त्वयोदिते ।
विलोकयन्त्या रुदतोऽथ पक्षिणः
प्रिये स कीदृग्भविता तव क्षणः ॥१३७॥

१२. कथं विधातर्मयि पाणिपंकजा
त्तव प्रियाशैत्यमृदुत्व- शिल्पिनः ।
वियोक्ष्यते वल्लभयेति निर्गता
लिपिर्ललाटंतपनिष्ठुरा क्षरा ॥१३८॥

१३. अयि स्वयूथ्यैरशनिक्षतोपमं ममाद्य वृत्तान्तमिमं बतोदिता ।
मुखानि लोलाक्षि दिशामसंशयं
दशापि शून्यानि विलोकयिष्यसि ॥१३९॥

१४. ममैव शोकेन विदीर्णवक्षसा
त्वया विचित्रांगि विपद्यते यदि ।
तदास्मि दैवेन हतोऽपि हा हतः
स्फुटं यतस्ते शिशवः परासवः ॥१४०॥

७. जिरा मेरी जीविका मुनिकी तरह पृथिवी और जलमें उगनेवाले फल और मूलमें है, उस पर भी आज तूने दंड प्रहार किया है, ऐसे स्वामीसे पृथिवी क्यों ना लज्जित हो" ॥१३३॥

८. ऐसे वचनोंसे पक्षीने राजाको विचित्र लज्जा और कृपायुक्त बनाकर, उसके दया-समुद्र हृदयमें कारुण्यरसकी नदी जैसी वाणी प्रवेशित की ॥१३४॥

९. "बुढ़ापेसे पीड़ित माताका मैं ही एक पुत्र हूं। बेचारी मेरी तरुणहंसी नई प्रसूता है। उन दोनोंका यही जन अवलम्ब है। उसे मारते हा दैव, तुझे करुणा नहीं रोकती ॥१३५॥

१०. मेरे दयालु सखा आंसू बहा मुहूर्तभर संसारकी निन्दा करके चुप हो जायेंगे, परन्तु हे माता, पुत्र-सम्बन्धी शोक-सागर तो तेरे ही लिये दुस्तर होगा ॥१३६॥

११. 'मेरे लिये सन्देश और कमलनाल को लाता मन्द गति (से आता) प्रिय कितनी दूर है' तेरे यह कहनेपर रोते पक्षियोंको देखकर हे प्रिये, तेरा वह क्षण कैसा होगा ।१३७॥

१२. प्रिय-अशीतलता-मृदुताके रचयिता हे विधाता, तेरे हस्तकमलसे 'प्रिया से वियुक्त होगा' मेरे विषयमें ललाटको तपानेवाले निष्ठुर अक्षरोंकी यह लिपि कैसे निकली ॥१३८॥

१३. अरी चंचल नेत्रोंवाली, वज्र-प्रहारसे मेरे आजके इस वृत्तान्तको अपने साथियों द्वारा कहे जानेपर दसों दिशाओंके मुखोंको शून्य सा तू निश्चय देखेगी ॥१३९॥

१४. हे विचित्रअंगोंवाली, यदि मेरे शोकसे छाती फटकर तू मरी, तो हाय दैवका मारा मैं फिर मारा गया, क्योंकि (तब) अवश्य तेरे बच्चे निष्प्राण हो जायेंगे ॥१४०॥

१५. तवापि हाहा विरहात्क्षुधाकुलाः
कुलायकूलेषु विलुठ्य तेषु ते।
चिरेण लब्धा बहुभिर्मनोरथैः
गताः क्षणेनास्फुटितेक्षणा मम ॥१४१॥

१६. सुताः, कमाहूय चिराय चुंकृतै
र्विधाय कम्प्राणि मुखानि कं प्रति।
कथासु शिष्यध्वमि''ति प्रमील्य स
स्नुतस्य सेकाद्बुबुधे नृपाश्रुणः ॥१४२॥
—सर्गः १

(२) स्वयंवरसभा—

१७. प्रियाह्वियालम्ब्य विलम्बमाविला
विलासिनः कुण्डिन-मण्डनायिनम्।
समाजमाजग्मुरथो रथोत्तमास्तमा समुद्रादपरे परे नृपाः
॥१॥

१८. ततः स भैम्या ववृते वृते नृपैर्
विनिःश्वसद्भिःसदसि स्वयं वरः।
चिरागतैस्तर्कितत‌द्विरागितैः
स्फुरद्भिरानन्दमहार्णवैर्नवैः ॥२॥

१९. चलत्पदस्तत्पदयन्त्रणेङ्गितस्फुटाशयामासयति स्म राजके।
'श्रमं गता यानगतावपीयमि'
त्युदीर्य धुर्यः कपटाज्जनीं जनः ॥३॥

२०. नृपानुपक्रम्य विभूषितासनान्सनातनी सा सुषुवे सरस्वती।
विहारमारभ्य सरस्वतीः सुधासरःस्वतीवार्द्रतनूरनूत्थिताः
॥४॥

२१. ''वृणीष्व वर्णेन सुवर्णकेतकीप्रसूनवर्णाङ्गि गुणार्णवं नृपम्।
निजामयोध्यामपि पावनीमयं भवन्मयो ध्यायति नाव-
नीपतिः ॥५॥

१५. हा-हा तेरे भी न रहनेसे वे शिशु क्षुधाकुल हो घोसलेके किनारोंसे लुढ़ककर, बहुत लालसाओंके बाद देरसे मिले, न खुली आंखोंवाले मेरे (बच्चे) गत हो जायेंगे ॥१४१॥

१६. हे बच्चो, किसको देर तक चुचकारते बुलाते किसके लिये मुखोंको कम्पित करते, तुम कथा-शेष (मृत) हो जाओगे" यह कह मूर्छित हो राजाके गिरे आंसुओं से भीगकर वह हंस होशमें आया ॥१४२॥

२. स्वयंबरकी सभा—

१७. तब प्रियतमाकी लज्जाके कारण विलम्ब करके व्याकुल-हृदय, विलासी, उत्तम रथी, समुद्रके वारपारवाले राजा कुंडित नगरके श्रेष्ठ समाजमें आये ॥१॥

१८. तब देरसे आये अपनेमें उसकी विरक्तिसे उसास लेते राजाओंसे घिरी, उद्वेलित नवीन आनंद-सागरोंसी सभामें दमयन्तीने स्वयंबर चुना ॥२॥

१९. पैदल ढोनेवालोंने राजसमूहमें 'यानमें स्थित भी यह थक गई है" यह कहकर, इस बहानेसे मानो पदकी चापके संकेत से भाव स्पष्ट करनेवाली दमयंती को (वहां) रख दिया ॥३॥

२०. वह सुधा सरोवरोंमें विहार करके अत्यंत भीगे शरीर हो निकली सनातन सरस्वती, आसनको भूषित करनेवाले राजाओंके पास जा बोली ॥४॥

२१. "रंगमें सुनहले केतकीके फूलके रंगवाले, जो उस आदरणीय ऋतुपर्णको चुनो, जो यह पृथिवीपति तेरेमें तन्मय अपनी पावनी अयोध्याको भी नहीं याद करता ॥५॥

२२. न पीश्यितां नाम चकोरजिह्वया कथंचिदेतन्मुखचन्द्र-चन्द्रिका ।
इमां किमाचामयसे न चक्षुषी
चिरं चकोरस्य भवन्मुख स्पृशी ॥६॥

२३. अपां विहारे तव हारविभ्रमं करोतु नीरे पृषदुत्करस्तरन् ।
कठोरपीनोच्चकुचद्वयीतटत्रुटत्तरः सारवसावोर्मिजः ॥७॥

२४. अखानि सिन्धुः समपूरि गंगया
कुले किलास्य प्रसभं स भन्त्स्यते ।
विलंघ्यते चास्य यशःशतैरहो सतां
महत्संमुखधावि पौरुषम् ॥८॥

२५. एतद्यशः क्षीरधिपूरगाहि पतत्यगाधे वचनं कवीनाम् ।
एतद्गुणानां गणनांकपातः
प्रत्यर्थिकीर्तीः खटिकाः क्षिणोति ॥९॥

२६. भास्वद्वंशकरीरतां दधदयं वीरः कथं कथ्यतां,
अध्युष्टापि हि कोटिरस्य समरे रोमाणि सत्वांकुराः ।
नीतः संयति बन्दिभिः श्रुतिपथं यन्नामवर्णावली -
मन्त्रः स्तम्भयति प्रतिक्षितिभृतां दोस्तम्भकुम्भीनसान्
॥१०॥

२७. तादृग्दीर्घविरिंचिवासरविधौ जानामि यत्कर्तृतां,
शंके यत्प्रतिबिम्बमम्बुधिपयःपूरोदरे वाडवः ।
व्योमव्यापिविपक्षराजकयशस्ताराः पराभावुकः,
कासामस्य न स प्रतापतपनः पारं गिरां गाहते ॥११॥

२८. द्वेष्याकीर्तिकलिन्दशैलसुतया नद्यास्य यद्दोर्द्वयी
कीर्तिश्रेणिमयी समागममगाद् गंगा रणप्रांगणे ।
तत्तस्मिन्विनिमज्ज्य बाहुजभटैरारम्भि रम्भापरी-
रम्भानन्दनिकेतनन्दनवनक्रीडादराडम्बरः" ॥१२॥

२२. चाहे इसके मुखचन्द्रकी चांदनीको चकोर सी (अपनी) जिह्वाद्वारा न पियो, पर चिरसे तुम्हारे मुखपर लगी (इसकी) चकोर सी दोनों आंखोंको क्यों न पिलाओ? ।।६।।

२३. जलविहारमें पानीपर तिरता शब्द करता सरयूकी लहरोंसे उत्पन्न (तेरे) कठोर स्थूल उच्च स्तनोंके पास अधिक टूटता, बिंदुसमूह तुम्हारी हार शोभा बने ।।७।।

२४. इसके कुलमें समुद्र खोदा आ गंगा द्वारा भरा (आगे) गया, बलपूर्वक बांधा जायेगा, और इसकी सैकड़ों कीर्तियोंसे लंघित होगा। अहो सत्पुरुषोंका पौरुष बड़ोंके आगे आगे दौड़ता है ।।८।।

२५. इसके यशरूपी क्षीरसागरके प्रवाहमें अवगाहन करनेवाले कवियोंके वचन अथाहमें पड़ जाते हैं। इसके गुणोंके गिननेके अंकका लिखना दुश्मनोंके यशोंको घटाता है ।।९।।

२६. सूर्यवंशी अंकुरको धारण करते इस वीरके बारेमें क्या कहा जाये, इसके करोड़ों रोम प्रसिद्ध युद्धमें वीरताके अंकुर हैं।
संग्राममें बन्दियोंसे उच्चारित जिसके नामाक्षरोंकी पंक्तिका मन्त्र, सुने जानेपर शत्रु-राजाओंके भुजस्तम्भ रूपी सर्पोंका स्तम्भन कर देता है ।।१०।।

२७. वैसे लम्बे ब्रह्मदिनके निर्माणमें जिसके कर्तृत्वको मैं जानती शंका करती हूं, कि इसके प्रतिबिम्बके सागर-जलके प्रवाहके उदरमें बड़वानल है। शत्रु-राजाओंके आकाशव्यापी यशरूपी ताराओंका (यह) तिरस्कारक है, इसका ऐसा प्रताप-सूर्य किनको वचनातीत न होगा ।।११।।

२८. इसकी दोनों भुजाओंके कीर्ति-समूहोंकी गंगाने जो रणक्षेत्रमें, शत्रुके अयशरूपी कालिन्द-पर्वतकन्या (जमुना) के साथ संगम किया। उसमें डुबकी लगा क्षत्रिय योद्धाओंने रम्भाके आलिंगनके आनन्द-भवनवाले नन्दनवनकी क्रीड़ाकी मुहब्बतका आडम्बर शुरू किया" ।।१२।।

२९. इति श्रुतिस्वादितलद्गुणस्तुतिः
सरस्वतीवाङ्मयविस्मयोत्थया ।
शिरस्तिरःकम्पनयैव भीमजा न तं मनोरन्वयमन्वमन्यत
॥१३॥

३०. युवान्तरं सा वचसामधीश्वरा
स्वरामृतन्यक्कृतमत्तकोकिला ।
शशंस संसक्तकरैव तद्दिशा
निशापतिज्ञातिमुखीमिमां प्रति ॥१४॥

३१. "न पाण्ड्यभूमण्डनमैणलोचने
विलोचनेनापि नृपं पिपाससि ।
शशिप्रकाशाननमेनमीक्षितुं तरंगयापांगदिशा दृशोस्त्वपः
॥१५॥

३२. भुवि भ्रमित्वानवलम्बमम्बरे विहर्तुमभ्यासपरम्परापरा ।
अहो महावंशममुं समाश्रिता
सकौतुकं नृत्यति कीर्तिनर्तकी ॥१६॥

३३. इतो भिया भूपतिभिर्वनं
वनादटद्भिरुच्चैरटवीत्वमीयुषी ।
निजापि सा वापि चिरात्पुनः
पुरी पुनः स्वमध्यासि विलासमन्दिरम् ॥१७॥

३४. आसीदासीमभूमीवलयमलयजालेपनेपथ्यकीर्तिः,
सप्ताकूपारपारीसदनजनघनोद्गीतचापप्रतापः ।
वीरादस्मात्परः कः पदयुगयुगपत्पातिभूपातिभूयश्,
चूडारत्नोडुपत्नीकरपरिचरणामन्दनन्दन्नखेन्दुः ॥१८॥

३५. भंगाकीर्तिमषीमलीमसतमप्रत्यर्थिसेनाभट -
श्रेणीतिन्दुककाननेषु विलसत्यस्य प्रतापानलः ।
तस्मादुत्पतिताः स्फुरन्ति जगदुत्संगे स्फुलिंगाः स्फुटं,
भालोद्भूतभवाक्षिभानुहुतभुग्जम्भारिदम्भोलयः ॥१९॥

२९. इस प्रकार सरस्वतीके वचनसे विस्मय उत्पादनके साथ उसके गुणोंकी प्रशंसाको कानोंसे अस्वादित करनेवाली दमयन्तीने उस मनु-वंशजको सिरके तिरछे कंपन द्वारा अस्वीकार किया ॥१३॥

३०. अपनी स्वर-सुधासे मत्त कोयलको तिरस्कार करती वाणियोंकी स्वामिनीने इधर हाथ कर इस चंद्रमुखीके सामने दूसरे युवाकी प्रशंसा की ॥१४॥

३१. "हे हरिणाक्षी, पांड्य देशके मंडन इस राजाको नेत्रोंसे भी क्यों नहीं पान करना चाहती ? इस चन्द्र-प्रकाशसे मुखवालेको देखनेके लिये अपने नेत्रोंके प्रकाशको तरंगित कर ॥१५॥

३२. अहा ! पृथिवीपर घूमकर आकाशमें निरालम्ब विहार करनेके अभ्यासकी परंपरामें उत्तम कीर्ति-नर्तकी, इस महाकुलीनके आश्रित हो खुशीके साथ नाचती है ॥१६॥

३३. इसके भयसे वन-वन भटकते भूपति लोग जंगलबनी अपनी नगरी में देरसे फिर कर अपने विलास-मंदिरमें बसे ॥१७॥

३४. भूमण्डलके छोर तक चन्दन-लेपके भूषण जैसी कीर्तिवाले, सात समुद्र पारके घरवाले जनों द्वारा गाया जाते अपने धनुषके प्रतापयुक्त, इस वीरसे दूसरा कौन है, जिसके चरण-युगलमें एक साथ गिरनेयुक्त राजाओंके बहुत से चूड़ारत्नरूपी नक्षत्रोंकी किरणोंकी सेवासे नख-चन्द्र अधिक हर्षित हो ॥१८॥

३५. [illegible] अपयशरूपी स्याहीसे अत्यन्त मलिन शत्रुओंकी सेनाके योद्धाओंकी पंक्तिरूपी त्रिभुवनके वनोंमें इसकी प्रताप-अग्नि विलास करती है। उससे उड़ती शंकरके ललाटकी आंखकी सूर्य-अग्नि-इन्द्र-वज्र सी ज्वालायें संसारकी गोदमें साफ चमक रही हैं ॥१९॥

३६. गनद्दन्तिबलैर्विलोक्य निखिलामालिंगितांगीं भुवं,
संग्रामांगणसीम्नि जंगमगिरिस्तोमभ्रमाधायिभिः ।
पृथ्वीन्द्रः पृथुरेतदुग्रसमरप्रेक्षोपनम्रामर -
श्रेणीमध्यचरः पुनः क्षितिधरक्षेपाय धत्ते धियम् ॥२०॥

३७. शशंस दासींगितविद्विदर्भजा
"मितो ननु स्वामिनि पश्य कौतुकम् ।
यदेष सौधाग्रनटे पटाञ्चले चलेऽपि काकस्य पदार्पणग्रहः"
॥२१॥

३८. ततस्तदप्रस्तुतभाषितोत्थितैः
सदस्तदस्वेति हसैः सदःसदाम् ।
स्फुटाजनि म्लानिरतोऽस्य भूपतेः
सिते हि जायेत शितेः सुलक्ष्यता" ॥२२॥

३९. ततो नु देव्या जगदे महेन्द्रभूपुरंदरं सा जगदेकवन्द्यया ।
तदार्जवावर्जिततर्जनीकया जनी कयाश्चितपरन्वितस्वरूपया
॥२३॥

४०. "स्वयंवरोद्वाहमहे वृणीष्व हे महेन्द्रशैलस्य महेन्द्रमागतम् ।
कलिंगजानां स्वकुचद्वयश्रिया
कलिं गजानां शृणु तत्र कुम्भयोः ॥२४॥

४१. "अयं किलायात" इतीरिपौरवाग्-
भयादयादस्य रिपुर्वृथा वनम् ।
श्रुतास्तदुत्स्वापगिरस्तदक्षराः
पठद्भिरत्रासि शुकैर्वनेऽपि सः ॥२५॥

४२. इतस्त्रसद्विद्रुतभूभृदुज्झिता प्रियाथ दृष्टा वनमानवीजनैः।
शशंस पृष्टाद्भुतमात्मदेशजं
"शशित्विषः शीतलशीलतां किल" ॥२६॥

४३. इतोऽपि किं वीरयसे न कुर्वतो नृपान्धनुर्बाणगुणैर्वशंवदान् ।
गुणेन शुद्धेन विधाय निर्भरं तमेनमुर्वी वलयोर्वशी वशम्
॥२७॥

३६. युद्धक्षेत्रकी सीमामें जंगम पर्वतोंका भ्रम पैदा करनेवाले,
इसके गजोंकी सेनाओंसे सारी पृथिवीको ढँका देखकर,
इसके उग्र समरके देखनेके लिये झुके देवताओंकी पंक्तिके मध्यमें हो,
राजा पृथु फिर पर्वतको फेंकनेकी सोचते थे" ।।२०।।

३७. संकेत समझनेवाली दासीने दमयंतीसे कहा—"स्वामिनी, जरा इधर तमाशा देखें—यह महलके शिखरपर नाचते चंचल ध्वजपर कौवा पैर रखनेकी कोशिश कर रहा है ।।२१।।

३८. तब उस अप्रासंगिक कथनसे उत्पन्न सभासदोंकी हंसीसे वह सभा उज्ज्वल हो गई। इससे इस राजा पर स्पष्ट मलिनता छा गई—सफेद पर काला अच्छी तरह प्रकाशित होता है (ना) ।।२२।।

३९. इसके बाद जगत्की एक मात्र वंदनीया परम-चेतन-स्वरूपा, देवी (सरस्वती) ने अपनी ऋजुतासे तर्जनी को खींच दमयंती से महेन्द्र के राजा का बखान किया ।।२३।।

४०. "हे सुभ, स्वयंवर-ब्याहके उत्सवमें आये महेन्द्रगिरिके महाराजको चुनो। वहां कलिंग-कन्याओंके अपने दो स्तनोंकी शोभाके साथ गजोंके कुम्भोंकी होडको सुनो ।।२४।।

४१. "यह आ गया" इस प्रेरक नागरिक-वचनके भयसे इसका शत्रु व्यर्थ ही वनमें भाग गया। फिर वनमें भी स्वप्नमें उसके अक्षरोंके वचनको तोतोंसे पढ़े जाते सुन वह भयभीत हो गया ।।२५।।

४२. इस तरह भीत हो भागे राजाकी छोड़ी प्रियाने देखकर वन्य स्त्रियों द्वारा अपने देशकी अद्भुत बात पूछनेपर कहा: "चंद्रमाकी किरणें (वहां) शीतल स्वभाव की हो गई है" ।।२६।।

४३. धनुष, बाण और गुणों द्वारा राजाओंको वशंवद करते इसे भी अंग्र गुणसे अधीन कर इसे भूमण्डलकी उर्वशीके अधीन कर क्या वीर नहीं बनाओगी ।।२७।।

४४. एतद्भीतारिनारी गिरिबिलविगलद्वासरा निःसरन्ती,
स्वक्रीडाहंसमोहग्रहिलशिशुभृशप्रार्थितोऽभ्रचन्द्रा ।
आक्रन्ददूभूरि यत्तन्नयनजलमिलच्चन्द्रहंसानुबिम्ब -
प्रत्यासत्तिप्रहृष्यत्तनयविहसितैराश्वसीन्न्यश्वसीच्च ॥२८॥

४५. अस्मिन्दिग्विजयोद्यते 'पतिरयं मे स्ता'दिति ध्यायिनी
कम्पं सात्त्विकभावमंचति रिपुक्षोणीन्द्रदारा धरा ।
अस्यैवाभिमुखं निपत्य समरे यास्यद्भिरूर्ध्वं निजः
पन्था भास्वति दृश्यते बिलमयः प्रत्यर्थिभिः पार्थिवैः ॥२९॥

४६. विद्राणे रणचत्वरादरिगणे त्रस्ते समस्ते पुनः,
कोपात्कोऽपि निवर्तते यदि भटः कीर्त्या जगत्युद्भटः ।
आगच्छन्नपि संमुखं विमुखतामेवाधिगच्छत्यसौ,
द्रागेतच्छुरिकारयेण ठणिति च्छिन्नापसर्पच्छिराः" ॥३०॥

४७. ततस्तदुर्वीन्द्रगुणाद्भुतादिव स्ववक्त्रपद्मेऽङ्गुलिनालदायिनी।
विधीयतामाननमुद्रणेति सा
जगाद वैदग्ध्यमयेंगितैव ताम् ॥३१॥

४८. अनन्तरं तामवदन्नृपान्तरं तदध्वदूवतारलरंगरंगणा ।
तृणीभवत्पुष्पशरं सरस्वती स्वतीव्रतेजः परिभूतभूतलम्
॥३२॥

४९. "तदेव किं न क्रियते नु का क्षतिर्यदेप तद्दूतमुखेन कांक्षति
प्रसीद कांचीमयमाच्छिनत्तु ते
प्रसह्य कांचीपुरभूपुरदरः ॥३३॥

५०. मयि स्थितिर्नम्रतयैव लभ्यते दिगेव तु स्तब्धतया विलंघ्यते
इतीव चापं दधदाशुगं
क्षिपन्नयं नयं सम्यगुपादिशद्द्विषाम् ॥३४॥

४४. इससे भयभीत गिरि-गुहामें दिन बिताकर निकलती
खिलौने हंसके मोह के लिये हठीले अपने बच्चे द्वारा उगे चंद्रके लेनेके लिये बहुत प्रार्थिता, शत्रुनारी बहुत रोई, जिससे उसके नयनजलसे लिप्त चन्द्र और हंसके प्रतिबिंब की समीपतासे खुश हुये पुत्रकी हंसीसे उसने धीरज धरा और उसास लिया ॥२८॥

४५. इसके दिग्विजयके लिये उद्यत होनेपर रिपु-राजाकी स्त्री पृथिवी 'यह मेरा पति होवे' यह सोचती सात्विक भावसे कंपित हुई।
इसके सामने समर में गिरकर ऊपर जानेवाले शत्रुराजा
सूर्यमें छिद्रके रूपमें अपना (गमन-) मार्ग देखते हैं ॥२९॥

४६. युद्धक्षेत्रसे सारे रिपुओंके भगे और भयभीत होनेपर,
यदि अपनी कीर्तिसे संसार में उद्भट कोई योद्धा कोप करके लौटता है, तो सन्मुख आनेपर भी उसे विमुख ही होना पड़ता है, (क्योंकि) जल्दी ही इसके छुरेके वेगसे उसका सिर ठन-ठन करता काट फेंका जाता है" ॥३०॥

४७. तब उस पृथिवीपालके अद्भुत गुणोंसे ही अपने मुखकमलमें अंगुली रूपी नालको देती, दमयंती चतुरतापूर्ण संकेतसे मानो सरस्वतीसे बोली "मुख बन्द करो" ॥३१॥

४८. फिर सरस्वती ने उसकी ओर आंखकी पुतलीके तरंगोंको चलाती दमयंतीसे कामदेवको तृण सा बनानेवाले, अपने तीव्र प्रतापसे भूतलको जीतनेवाले दूसरे राजाके बारेमें कहा ॥३२॥

४९. "क्या हानि, वही क्यों न करो, जो कि यह दूत द्वारा चाहता है।
कृपया यह कांचीपुरीका राजा बलपूर्वक तेरी करधनीको तोड़े ॥३३॥

५०. "मेरे प्रति नम्रतासे ही रहना (शील) होगा, घृष्टता करनेसे दिशाओं में भागना पड़ेगा' यही कहते मानो धनुष पकड़ बाण फेंकते इसने दुश्मनों को उचित नीतिका उपदेश किया ॥३४॥

५१. अदः संमितसमुखवीरयौवतत्रुटद्भुजाकम्बुमृणालहारिणी ।
द्विपद्गणस्त्रैणदृगम्बुनिर्झरे यशोमरालावलिरस्य खेलति
॥३५॥

५२. सिन्दूरद्युतिमुग्धमूर्धनि धृतस्कन्धावधिदयामिके,
व्योमान्तस्पृशि सिन्धुरेऽस्य समरारम्भोद्धुरे धावति ।
जानीमो नु यदि प्रदोषतिमिरव्यामिश्रसंध्याधिये-
वास्तं यान्ति समस्तबाहुजभुजातेजःसहस्रांशवः ॥३६॥

५३. हित्वा दैत्यरिपोरुरः स्वभवनं शून्यत्वदोषस्फुटा -
सीदन्मर्कटकीटकृत्रिमसितच्छत्रीभवत्कौस्तुभम् ।
उज्झित्वा निजसद्मपद्म पिहि तद्युक्तावनद्धीकृतं,
लूतातन्तुभिरन्तरद्य भुजयोः श्रीरस्य विश्राम्यति ॥३७॥

५४. सिन्धोर्जैत्रमयं पवित्रमसृजत्तत्कीर्तिपूर्तिद्भुतं,
यत्र स्नान्ति जगन्ति सन्ति कवयः के वा न वाचंयमाः ।
यद्बिन्दुश्रियमिन्दुरंचति जलं चाविश्य दृश्येतरो,
यस्यासौ जलदेवतास्फटिकभूर्जागर्ति योगेश्वरः ॥३८॥

५५. अन्तःसंतोषबाष्पैः स्थगयति न दृशस्ताभिराकर्णयिष्यन्
अंगे नानस्तिरोमा रचयति पुलकश्रेणिमानन्दकन्दाम् ।
न क्षोणीभंगभीरुः कलयति च शिरःकम्पनं तन्न विद्मः,
शृण्वन्नेतस्य कीर्तिः कथमुरगपतिः प्रीतिमाविष्करोति ।३९।

५६. आचूडाग्रममज्जयन्नति पटुर्यच्छल्यदण्डानयं,
संरम्भे रिपुराजकुंजरघटाकुम्भस्थलेषु स्थिरान् ।
सा सेवास्य पृथुः प्रसीदति तया नास्मै कुतस्त्वत्कुच -
स्पर्धागर्धिषु तेषु तान्धृतवते दण्डान्प्रदण्डानपि" ॥४०॥

—सर्गः १२

५१. संग्राममें सामने आये वीरोंकी युवतियोंकी बांहकी टूटती चूड़ी-रूपी मृणालको हरनेवाली इसकी यशरूपी हंसावली शत्रु-स्त्रियोंके नेत्र-अश्रुके निर्झरमें खेलती हैं ॥३५॥

५२. सिन्दूरके प्रकाशसे सुन्दर सिरवाले, कन्धे तक कालिमा धारण किये, आकाशके छोरको छूनेवाले, लड़नेमें चतुर इसके गजोंके दौड़ते समय हम जानते हैं, कि गोधूलिके अन्धकारसे मिश्रित संध्या-रागके ख्याल से ही, सारे क्षत्रियोंकी भुजाओंके तेजरूपी सूर्य अस्त हो जाते हैं ॥३६॥

५३. शून्यतादोषसे मकड़ी कीड़े द्वारा निर्मित स्पष्ट स्थिर श्वेत छत्रसे कौस्तुभ सहित विष्णुकी छातीरूपी मकड़ीके तन्तुओंसे साथ बंधे हुये अपने निज घररूपी पद्मको भी छोड़कर लक्ष्मी, आज इसकी भुजाओंके भीतर विश्राम करती है ॥३७॥

५४. इसने सागरको जीतनेवाले अपने अद्भुत पवित्र-कीर्ति-सरोवरको बनाया, जहाँ नहाते उज्ज्वल होते कौन से कवि वाणीपर संयम करनेवाले नहीं होते। द्रष्टव्यसे परे चन्द्रमा भी जलमें प्रवेश कर जिसकी बिन्दुकी शोभा पाता है, जिसका स्फटिकमय जलदेवता नागेश्वर जागता है ॥३८॥

५५. इसकी कीर्तियोंको सुनते शेष कैसी प्रसन्नता प्रकट करता है, (कि) उनसे सुनता आंखोंको भीतरी सन्तोषके आंसुओंसे नहीं ढांकता, अंगमें बिना रोमके आनन्द कन्दवाली रोमांच परम्परा नहीं रचता, पृथिवीके टूटनेके डरसे शिर: नम्र नहीं करता, सो हम नहीं जानते ।३९।

५६. विजयमें चतुर इसने संग्राममें शत्रुराजाओंके गजोंके कुम्भोंमें, दृढ़ भालाके फलोंको छेद नग भंग किया, सो इसकी बड़ी सेवा है । तेरे स्तनके प्रतिस्पर्धी उन गजकुम्भोंमें दण्डों-प्रदण्डोंको डालनेवाले इस पर क्यों नहीं प्रसन्न होती ॥४०॥

(३) सन्ध्या—

५७. उपास्य सान्ध्यं विधिमन्तिमाशा
रागेण कान्ताधरचुंबितेताः ।
अवाप्तवान्सप्तमभूमिभागे भैमीधरं सौधमसौ धरेन्द्रः ॥१॥

५८. प्रत्युद्व्रजन्त्या प्रियया विमुक्तं पर्यंकमंकस्थितगज्जशय्यम् ।
अध्यास्य तामप्यधिवास्य सोऽयं
संध्यामुपश्लोकयति स्म सायम् ॥२॥

५९. "विलोकनेनानुगृहाण तावद्दिशं जलानामधिपस्य दारान्
अक्षालि लाक्षापयसेव येयमपूरि पंकैरिव कुंकुमस्य ॥३॥

६०. उच्चैस्तरादम्बरशैलमौलेश्च्युतो रविर्गैरिकगण्डशैलः ।
तस्यैव पातेन विचूर्णितस्य संध्यारजोराजिरिहोज्जिहीते
॥४॥

६१. अस्ताद्रिचूडालयपक्वणालिक्लेकस्य किं कुक्कुटपेटकस्य ।
यामान्तकूजोल्लसितैः शिखौघै
र्दिग्वारुणी द्रागरुणोकृतेयम् ॥५॥

६२. पश्य द्रुतास्तंगतसूर्यनिर्यत्करावलीहैंगुलवेत्रयात्रम् ।
निषिध्यमानाहनि संध्ययापि रात्रिप्रतीहारपदेऽधिकारम्
॥६॥

६३. महानटः किं नु सभानुरागे
संध्याय्य संध्यां कुनटीमपीशाम् ।
तनोति तन्वावियतापि तारश्रेणिस्रजा सांप्रतमग्रहारम्
॥७॥

६४. भूषास्थिदाम्नस्त्रुटितस्य नाट्या
त्पद्यांडुकोटीकपटंवहद्भिः ।
दिग्मण्डलं मण्डयतीह खण्डैः सायंनटस्तारकराट्किरीटः
॥८॥

३. संध्या—

५७. सन्ध्याविधिकी उपासना कर पश्चिम दिशाके लाल होते समय प्रियाके अधरके चुम्बनके इच्छुक, राजा (नल) दमयंतीके निवास के सातवें मंजिलमें पहुंचे ॥१॥

५८. सत्कारके लिये उठकर सन्मुख आती प्रियाके छोड़े सज्जित सेजवाले पलंगपर बैठकर, उसे भी बैठा नल शामको सन्ध्याकी प्रशंसा करने लगे ॥२॥

५९. "वरुणकी स्त्री (इस) पश्चिम दिशाको देखनेकी कृपा करो, जो यह लाक्षाके पानीसे धोई सी केसरके पंकसे भरी सी है ॥३॥

६०. सूर्य अति उच्च आकाशगिरिके शिखरसे गिरा गेरूका छोटा शैलसा है, उसीके गिरनेसे चूर-चूर हुई सन्ध्याके रजकी पंक्ति यहां फैल रही है ॥४॥

६१. अस्ताचल शिखरके घरकी कुटियोंकी पंक्ति पर बैठे पहरके अन्तवाले कुक्कुटोंके कूजनसे उल्लसित शिखाओंवाली यह वारुणी दिशा शीघ्र लाल बन गई ॥५॥

६२. देखो, यहां जल्दी अस्त हुये सूर्यसे निकलते किरणरूपी ईंगुरके बेंत द्वारा सन्ध्या रातके द्वारपालके पदके अधिकारको दिनमें निषेध कर रही है ॥६॥

६३. सखि, क्या महानट आकाश सभाके अनुरागमें सन्ध्या रूपी मनःशिलाको सोचकर, सूक्ष्म ताराओंकी माला द्वारा अङ्गहार तो नहीं बना रहा है ॥७॥

६४. मुकुटधारी गगन-पति सन्ध्यारूपी नट नृत्यसे टूटे हड्डीके माला-रूपमें भाँति-भाँति ताराओंका धारण करते उसके खंडोंसे यहां दिशाओंको मंडित कर रहा है ॥८॥

६५. कालः किरातः स्फुटपद्मकस्य वधं व्यधाद्यस्य दिनद्विपस्य ।
तस्यैव संध्या रुचिरास्रधारा
ताराश्च कुम्भस्थलमौक्तिकानि ॥९॥

६६. संध्यासरागः ककुभो विभागः शिवाविवाहे विभुनायमेव ।
दिग्वाससा पूर्वमवैमि पुष्पसिन्दूरिकापर्वणि पर्यधायि
॥१०॥

६७. सतीमुमामुद्वहता च पुष्पसिन्दूरिकार्थं वसने सुनेत्रे ।
दिशौ द्विसंधीमभिरागशोभे
दिग्वाससोभे किमलम्भिषाताम् ॥११॥

६८. आदाय दण्डं सकलासु दिक्षु
योऽयं परिभ्राम्यति भानुभिक्षुः ।
अब्धौ निमज्जन्निव तापसोऽयं
संध्याभ्रकाषायमधत्त सायम् ॥१२॥

६९. अस्ताचलेऽस्मिन्निकषोपलाभे
संध्याकषोल्लेखपरीक्षितो यः ।
विक्रीय तं हेलिहिरण्यपिण्डं तारावराटानियमादित द्यौः
॥१३॥

७०. पचेलिमं दाडिममर्कबिम्बमुत्तार्य संध्या त्वगिवोज्झितास्य ।
तारामयं बीजभुजादसीयं
कालेन निष्ठ्यूतमिवास्थियूथम् ॥१४॥

७१. ताराततिर्बीजमिवादमादमियं निरष्ठेवि यदस्थियूथम् ।
तन्निष्कुलाकृत्य रविं त्वगेषा
संध्योज्झिता पाकिमदाडिमं वा ॥१५॥

७२. संध्यावशेषे धृतताण्डवस्य चण्डीपतेः पत्पतनाभिघातात् ।
कैलासशैलस्फटिकाश्मखण्डैरमण्डि पश्योत्पतयालुभिर्द्यौः"
॥१६॥

६५. (सन्ध्या) कालरूपी किरात ने जिस फूले पद्मवाले दिनरूपी गजका वध किया, उसीकी रुचिर रक्तधारा संध्या है और कुंभस्थानके मोती तारागण हैं ॥९॥

६६. मैं समझता हूं, सध्यासे दिशाएं लाल हैं, मानो पार्वतीके व्याहमें दिगंबर प्रभुने पहले पुष्प-सिंदूरिकाके अवसरपर यहीं उसे पहनाया, ॥१०॥

६७. हे सुनयना, पार्वतीका व्याह करते शंकरने पुष्पसिंदूरिकाके लिये, दो संखियोंके पास रागसे शोभित दिशारूपी दोनों वस्त्रोंको प्रदान किया ॥११॥

६८. जो यह सूर्यरूपी भिक्षु, दंड ग्रहण कर सभी दिशाओंमें घूम रहा है, (सो) यह तपस्वी शामको समुद्रमें डूबता सा संध्याके बादलरूपी काषायको धारण किये है ॥१२॥

६९. जो कि, कसौटीके पत्थर सदृश इस अस्ताचलमें सन्ध्याके घर्षणके चिह्नसे परीक्षा कर, उस सूर्यके सुनहरे पिंडको बेंचकर द्युलोकने ताराख्पी कौड़ियोंको लिया ॥१३॥

७०. इस पके अनाररूपी सूर्यबिम्बका निकाला चमड़ा संध्या है। बीज खानेवाले कालने इसकी तारामय गुठलियां थूक सी दी हैं ॥१४॥

७१. अथवा इसने बीजको खा-खाकर जो गुठलियोंका पुंज थूका, सो यह तारासमूह है। सूर्यका बीज निकाल कर या पके अनारको छील कर (जो) चमड़ा छोड़ा यह सन्ध्या है ॥१५॥

७२. देखो, सन्ध्याके अन्तमें ताण्डव करते शंकरके गिरते पैरोंके प्रहारसे, कैलासपर्वतके ऊपर उड़ते स्फटिक-पाषाण-खंडों द्वारा द्युलोक भूषित है" ॥१६॥

(४) चन्द्रिका—

७३. इत्थं ह्रिया वर्णनजन्मनैव संध्यामपक्रान्तवतीं प्रतीत्य ।
तारातमोदन्तुरमन्तरिक्षं निरीक्षमाणः स पुनर्बभाषे ॥१७॥

७४. "रामेषुमर्मव्रणनार्तिवेगाद्रत्नाकरः प्रागयमुत्पपात ।
ग्राहौघकिर्मीरितमीनकम्बु नभो न भोः कामशरासनभ्रु
॥१८॥

७५. मोहाय देवाप्सरसां विमुक्तास्ताराः शराः पुष्पशरेण शंके ।
पंचास्यवत्पंचशरस्य नाम्नि प्रपंचवाची खलु पंचशब्दः
॥१९॥

७६. नभोनदीकूलकुलायचक्रीकुलस्य नक्तं विरहाकुलस्य ।
दृशोरपां सन्ति पृषन्ति ताराः पतन्ति तत्संक्रमणानि धाराः
॥२०॥

७७. अमूनि मन्येऽमरनिर्झरिण्या यादांसि गोधा मकरः कुलीरः ।
तत्पूरखेलत्सुरभीतिदूरो मग्नान्यधः स्पष्टमितः प्रतीमः
॥२१॥

७८. स्मरस्य कम्बुः किमयं चकास्ति
दिवि त्रिलोकीजयवादनीयः ।
कस्यापरस्योडुमयैः प्रसूनैर्वादित्रशक्तिर्घटते भटस्य ॥२२॥

७९. किं योगिनीयं रजनी रतीशं याजीविषत्पद्ममम्मुहृच्च ।
योगर्द्धिमस्या महतीमलग्नमिदं वदत्यम्बरचुम्बि कम्बु
॥२३॥

८०. प्रबोधकालेऽह्नि बाधितानि ताराखपुष्पाणि निदर्शयन्ती ।
निशा हि शून्याध्वनि योगिनीयं
मृषा जगद्दृष्टमपि स्फुटाभम् ॥२४॥

८. चाँदनी—

७३. इस प्रकार वर्णनद्वारा उत्पन्न लज्जासे संध्याको हट गई जानकर, मानो ताराओं और अंधकारसे मिश्रित आकाशको देखते नल ने फिर कहा ॥१७॥

७४. "मकरसमूह-सहित मत्स्य और शंखवाला आकाश नहीं, कामदेवकी धनुषरूपी भौंह है। बल्कि रामके वाणसे हृदयमें (लगे) घावके दुःखके वेगसे उछलता समुद्र है ॥१८॥

७५. युद्धमें कामदेवने देवों-अप्सराओंके मोहनेके लिये तारारूपी वाण छोड़, मैं समझता हूं, पंचमुख (सिंह) की तरह पंचशर (कामदेव) के नाममें पांचका शब्द बहुतका वाचक है ॥१९॥

७६. रातको विरहाकुल आकाशगंगाके तटके घोंसलेके चक्रवाकोंकी दोनों आंखोंके जल-बिंदु उससे लग्न तारे हैं, जो धाराओंके रूपमें गिरते हैं ॥२०॥

७७. मैं समझता हूं, यह आकाशगंगाके जल-जन्तु गोह-मगर-नाके उस आकाशगंगाकी धारामें खेलते देवोंको डरसे दूर नीचे टूटे यहां हम स्पष्ट देखते हैं ॥२१॥

७८. तीनों लोकोंके विजयमें बजाया जानेवाला क्या यह कामदेवका शंख आकाशमें चमक रहा है ? कौनसे दूसरे योद्धाकी बाजेकी शक्ति तारामय फूलों द्वारा बनती है ॥२२॥

७९. क्या यह (वही) रात्रि योगिनी है, जिसने रति-पतिको जिलाया, और पद्मको मूर्छित किया। इसकी बड़ी अ-छन्न योगसिद्धिको यह आकाशचुम्बी शंख बतला रहा है ॥२३॥

८०. प्रलोभके समय दिनमें तिरस्कृत आकाश-पुष्प तारोंके शून्यमार्गमें ... जगत्को यह रात्रियोगिनी भी साफ दिखलाती है ॥२४॥

८१. एणः स्मरेणांकमयः स पश्चाकृतो भवद्भ्रूयुगधन्वना यः ।
मुखे तवेन्दौ लसता स तारा पुष्पालिबाणानुगतो गतोऽयम्
॥२५॥

८२. लोकाश्रयो मण्डपमादिसृष्टिब्रह्माण्डमाशात्यनुकाष्ठमस्य ।
स्वकान्तिरेणूत्करवान्तिमन्ति घुणव्रणद्वारनिभानि भानि
॥२६॥

८३. शचीसपत्न्यां दिशि पश्य भैमी शक्रेभदानद्रवनिर्झरस्य ।
पोप्लूयते वासरसेतुनाशादुच्छृंखलः पूर इवान्धकारः ॥२७॥

८४. रामालिरोमावलिदिग्विगाहि ध्वान्तायते वाहनमन्तकस्य ।
यद्वीक्ष्य दूरादिव विभ्यतः
स्वानश्वान्गृहीत्वापसृतो विवस्वान् ॥२७॥

८५. पक्वं महाकालफलं किलासीत्,
प्रत्यग्गिरेः सानुनि भानुबिम्बम् ।
भिन्नस्य तस्यैव दृषन्निपाता
द्बीजानि जानामितमां तमांसि ॥२९॥

८६. पत्युर्गिरीणामयशः सुमेरुप्रदक्षिणाद् भास्वदनादृतस्य ।
दिशस्तमश्चैत्ररथान्यनामपत्रच्छटाया मृगनाभिशोभि ॥
॥३०॥

८७. ऊर्ध्वं धृतं व्योम सहस्ररश्मेर्दिवा सहस्रेण करैरिवासीत् ।
पतत्तदेवांशुमता विनेदं नेदिष्ठतामेति कुतस्तमिस्रम् ॥३१

८८. ऊर्ध्वार्पितन्युंजकटाहकल्पे यद् व्योम्नि दीपेन दिनाधिपेन ।
न्यधायि तद्भूमभिलद्गुरुत्वं
भूमौ तमः कज्जलमस्खलत्किम् ॥३२॥

८९. ध्वान्तैणनाभ्या शितिनाम्बरेण
दिशः शरैः सूनशरस्य तारैः ।
मन्दाक्षलक्ष्या निशि मामनिन्दौ
सेर्ष्या भवायान्त्यभिसारिकाभाः ॥३३॥

८१. तेरे मुखचन्द्रमें प्रकाशमान दोनों भौंहोंरूपी धनुषवाले कामदेवने जो कलंकमय मृग बनाया, सो (मृग) तारापुष्पोंकी बाणसहित पंक्ति हो गया ॥२५॥

८२. लोकाधारभूत आदि-सृष्टिकी ब्रह्मांडरूपी मंडपसे अपनी कान्तिरूपी धूलिसमूहके वमनरूप नक्षत्र काष्टमें घुनके काटे द्वारसे दीखते हैं ॥२६॥

८३. दमयन्ती, देखो पश्चिम दिशामें ऐरावतके बहते मदके चश्मेकी धाराकी तरह, दिनके बांधके नाशसे अंधकार मुक्त-धाराकी तरह खूब बह रहा है ॥२७॥

८४. रामके सेतुकी रोमावलिसा दिशाओंमें फैलता अन्धकार यमराजका वाहन बन रहा है, जिसको देखकर सूर्य दूरसे ही मानो डरते हुये अपने घोड़ोंको पकड़कर भाग चला ॥२८॥

८५. अस्ताचलके पादमें पके महाकालके फल सा सूर्यबिम्ब था, पत्थरके गिरनेसे उसीके टूटे बीजोंको मैं अन्धकार समझता हूं ॥२९॥

८६. चैत्ररथ (बन) के दूसरे नामको पत्रांकनवाली दिशाका कस्तूरीसा काला अन्धकार, सुमेरुकी प्रदक्षिणा करते सूर्य द्वारा अनादृत गिरिपति (हिमालय) की अकीर्ति है ॥३०॥

८७. काले नभको दिनमें मानो सूर्यकी हजार किरणोंने ऊपर पकड़ा था। सूर्यके बिना वही गिरता हुआ क्या अंधकारसे समीपता पा रहा है ॥३१॥

८८. दीपकरूपी सूर्यने ऊपर रक्खे उलटे कड़ाहसे आकाशमें जो काजल पारा, सो उसकी बहुतायतसे भारी बना अन्धकार क्या पृथिवीपर गिर रहा है ॥३२॥

८९. अंधकाररूपी कस्तूरी जैसे काले आकाशने, दिशाओंको कामदेवके तीर रूपी बाणोंसे मुक्त किया, वे (हो) चन्द्रहीन रात्रिमें [illegible] अभिसारिकाओंसे 'ईर्ष्यालु होओ', कह मेरे पास आते हैं ॥३३॥

९०. भास्वन्मयीं मीलयतो दृशं द्राङ्
मिथोमिलत्यंचलमादिपुंसः ।
आचक्ष्महे तन्वि तमांसि पक्ष्म
श्यामत्वलक्ष्मीविजितेन्दुलक्ष्म ॥३४॥

९१. विवस्वतानायिषतेव मिश्राः स्वगोसहस्रेण समं जनानाम् ॥
गावोऽपि नेत्रापरनामधेया-
स्तेनेदमान्ध्यं खलु नान्धकारैः ॥३५॥

९२. ध्वान्तस्य वामोरु विचारणायां वैशेषिकं चारु मतं मतं मे ।
औलूकमाहुःखलु दर्शनं तत्क्षमं तमस्तत्त्वनिरूपणाय ॥३६॥

९३. म्लानिस्पृशः स्पर्शनिषेधभूमेः सेयं त्रिशंकोरिव संपदस्य ।
न किंचिदन्यत्प्रति कौशिकीये दृशौ विहाय प्रियमातनोति
॥३७॥

९४. मूर्धाभिषिक्तः खलु यो ग्रहाणां
तद्भासमास्कन्दत ऋक्षशोभम् ।
दिवान्धकारं स्फुटलब्धरूपमालोकतालोकमुलूकलोकः
॥३८॥

९५. 'दिने मम द्वेषिणि कीदृगेषां प्रचार' इत्याकलनाय चारीः ।
छाया विधाय प्रतिवस्तुलग्नाः
प्रावेशयत्प्रष्टुमिवान्धकारः ॥३९॥

९६. ध्वान्तस्य तेन क्रियमाणयेत्थं
द्विषः शशी वर्णनयाऽथरुष्टः ।
उद्यन्नुपाश्लोकि जपारुणश्रीर्नराधिपेनानुनयेच्छयेव
॥४०॥

९७. "पश्यन्वृतोऽप्येष निमेषमद्रेरधित्यकाभूमितिरस्करिण्या ।
प्रवर्षति प्रेयसि चन्द्रिकाभिश्चकोरचंचूचुलुकप्रमिन्दुः
॥४१॥

९०. हे कृशांगी, सूर्यरूपी आंखको मीचते विष्णुके, शीघ्र मिलती दोनों अंचल वाली, श्यामताकी शोभासे चन्द्र-कलंक जीतनेवाली, पलकोंको मैं अन्धकार कहता हूं ॥३४॥

९१. सूर्यने अपनी हजार गौवों (किरणों) के साथ मिली नेत्र पर्यायवाची लोगोंकी गायोंको भी ले लिया, उससे ही यह अंधता है, अंधकारसे नहीं ॥३५॥

९२. हे सुजंघे, अंधकारपर विचार करते **वैशेषिक**का मत मेरे विचारमें सुन्दर है, तमकी वास्तविकताके निरूपणमें वह दर्शन समर्थ है, इसीलिये उसे उल्लूवाला दर्शन कहा गया ॥३६॥

९३. इस अन्धकारकी यह सम्पत्ति त्रिशंकुकी तरह कालिमायुक्त स्पर्श-हीन स्थानवाली है, इसे छोड़कर उल्लूकी आंखोंमें और कुछ भी प्रिय नहीं लगता ॥३७॥

९४. नक्षत्रोंका जो राजा (था), उसके प्रकाशवाली नक्षत्र-शोभाको हटाया, उल्लू लोगोंने स्पष्ट दीखते रूपको दिनका अन्धकार देखा ॥३८॥

९५. 'मेरे शत्रु दिनमें, इनका कैसे प्रचार है' यह जाननेके लिये अंधकारने चलती छाया को प्रतिवस्तुमें पता लगानेके लिए प्रवेश कर दिया ॥३९॥

९६. इस प्रकार उसके द्वारा की गई शत्रु-अन्धकारकी इस प्रशंसासे रुष्ट हो, मनागोंकी इच्छामें ही मानो नलने जपाकुसुमसे लाल शोभावाले लगते संध्याकी प्रशंसा की ॥४०॥

९७. "हे प्रिये, देख, पहाड़की ऊपरी भूमिरूपी पर्देसे क्षण भर ढंका हुआ यह चन्द्र चकोरोंके चोंचोंके चिल्लुओंमें भर खूब अपनी चांदनी बरस रहा है ॥४१॥

९८. ध्वान्ते द्रुमान्तानभिसारिकास्त्वं
शंकस्व संकेतनिकेतमाप्ताः ।
छायाच्छलादुज्झितनीलचेला
ज्योत्स्नानुकूलैश्चरितादुकूलैः ॥४२॥

९९. त्वदास्यलक्ष्मीमुकुरं चकोरैः स्वकौमुदीमादयमानमिन्दुम् ।
दृशा निशेन्दीवरचारुभासा पिबोरु रम्भातरुपीवरोरु
॥४३॥

१००. असंशयं सागरभागुदस्थात्पृथ्वीधरादेव मथः पुरायम्
अमुष्य यस्मादधुनापि सिन्धौ स्थितस्य शैलादुदयं
प्रतीमः ॥४४॥

१०१. निजानुजेनातिथितामुपेतः प्राचीपतेर्वह्निनवारणेन ।
सिन्दूरसान्द्रे किमकारि मूर्ध्नि तेनारुणश्रीरयमुज्जिहीते
॥४५॥

१०२. यत्प्रीतिमद्भिर्वदनैः स्वसाम्या-
दचुम्बि नाकाधिपनायिकानाम् ।
ततस्तदीयाधरयावयोगादुदेति बिम्बारुणबिम्ब एषः ।४६।

१०३. विलोमितांकोत्किरणाद्दुरूहदृगादिना दृश्यविलोचनादि ।
विधिर्विधत्ते विधुना वधूनां किमाननं कांचनसंचकेन
॥४७॥

१०४. अनेन वेधा विपरीतरूपविनिर्मितांकोत्किरणांकनेन ।
त्वदाननं दृश्यदृगाद्यलक्ष्यदृगादिनेवाकृत संचकेन ॥४८॥

१०५. अस्याः सुराधीशदिशः पुरासीद्यदम्बरं पीतमिदं रजन्या ।
चन्द्रांशुचूर्णव्यतिचुम्बितेन तेनाधुना नूनमलोहितायि
॥४९॥

१०६. तानीव गत्वा पितृलोकमेनमरंजयन्त्यानि स जामदग्न्यः ।
छित्त्वा शिरोस्त्राणि सहस्रबाहो-
र्विस्राणि विश्राणितवान्पितृभ्यः" ॥५०॥

९८. अन्धकारमें छायाके व्याजसे नीले वस्त्रोंको छोड़, चांदनीके अनुकूल वस्त्रोंसे युक्त अभिसारिकाओंको वृक्षोंके नीचे संकेत-स्थानमें पहुंची तू समझ ।।४२।।

९९. हे कदलीसी मोटीजांघवाली, चकोरोंसे अपनी चांदनीको मस्त बनाते तेरे मुखकी शोभाके दर्पण जैसे चंद्र निशाके कमलकी सुंदर प्रभावाली आंखसे पान कर रहे हैं ।।४३।।

१००. निस्सन्देह पूर्व समयमें सागरस्थ यह पर्वत ही मथानी हो उठा, क्योंकि आज भी समुद्रमें स्थित पर्वतसे हम उसका उदय समझते हैं ।।४४।।

१०१. क्या अपने अनुज इन्द्रके वाहन ऐरावतने अतिथि बने (चंद्र) के सिरपर सिन्दूर लगाया, जो कि वह लाल शोभायुक्त उग रहा है ।।४५।।

१०२. अपनी समानता के कारण, जो कि इन्द्रकी नायिकाओंके प्रेमयुक्त वदनोंसे चूमा गया, उसीसे उनके अधर-रागसे युक्त होनेसे यह लाल बिम्बवाला होकर उग रहा है ।।४६।।

१०३. क्या ब्रह्मा चन्द्रके सुनहले सांचेमें, बन्धुओं के कलंक उलटाये उत्तम किरणोंसे दुरूह आंखों आदि द्वारा दृश्य नेत्र आदि युक्त मुखको बनाता है ।।४७।।

१०४. ब्रह्माने उलटे रूपसे निर्मित अंककी किरणोंके अंकन द्वारा तेरे मुखको दृश्य-दृष्टि आदिसे अलक्ष्य आंखों आदिवाले सांचेसे बनाया ।।४८।।

१०५. इस पश्चिम दिशाका जो पहले अम्बर था, उसे रात्रिने पी लिया। चन्द्रकिरणोंके चूर्णों से परस्पर चुम्बित उसके द्वारा निश्चय अब वह लाल हुआ ।।४९।।

१०६. परशुरामने सहस्रबाहुके सिरको काटकर गंधयुक्त रक्तसे पितरोंको तर्पित किया, वही रक्त था, जिसने पितृलोकमें जाकर इस चन्द्रको रंग दिया ।।५०।।

(५) गर्वोक्तिः—

१०७. श्रीहर्षं कविराजराजिमुकुटालंकारहीरः सुतं
श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रियचयं मामल्लदेवी च यम् ।

१०८. यथा यूनस्तद्वत्परमरमणीयापि रमणी,
कुमाराणामन्तःकरणहरणं नैव कुरुते ।
मदुक्तिश्चेदन्तर्मदयति सुधीभूय सुधियः,
किमस्या नाम स्यादरसपुरुषानादरभरैः ॥१॥

१०९. दिशि दिशि गिरिग्रावाणः स्वां वमन्तु सरस्वतीं,
तुलयतु मिथस्तामापातस्फुरद्ध्वनिडम्बराम् ।
स परमपरः क्षीरोदन्वान्यदीयमुदीयते,
मथितुरमृतं खेदच्छेदि प्रमोदनमोदनम् ॥२॥

११०. ग्रन्थग्रन्थिरिह क्वचित्क्वचिदपि न्यासि प्रयत्नान्मया,
प्राज्ञंमन्यमना हठेन पठिती मास्मिन्खलः खेलतु ।

. . . .

त्वेतत्काव्यरसोर्मिमज्जनसुखव्यासज्जनं सज्जनः ॥३॥

१११. ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वराद्,
यः साक्षात्कुरुते समाधिषु परं ब्रह्म प्रमोदार्णवम् ।
यत्काव्यं मधुवर्षि धर्षितपरास्तर्केषु यस्योक्तयः,
श्री श्रीहर्षकवेः कृतिः कृतिमुदे तस्याभ्युदीयादियम् ॥४॥

—सर्गः २२

५. आत्म-प्रशंसा—

१०७. कविराजोंके मुकुटालंकार श्रीहीरने और मामल्लदेवीने जिस इन्द्रिय-विजेता श्रीहर्ष पुत्रको जन्माया ।

१०८. परम रमणीय रमणी भी जैसे जवानको,
वैसे बच्चोंके हृदयको हरण नहीं करती। मेरी रचना अमृत बनकर पंडितोंको भीतरसे जब मस्त करती है, तो अरसिक पुरुषोंके अनादरसे इसको क्या ॥१॥

१०९. दिशा-दिशामें पर्वत पाषाण अपनी वाणी वमन करें,
सामान्यतः निकली ध्वनिके आडंबरका उससे परस्पर तुलना करें। किन्तु वह दूसरा ही क्षीरसागर है, जिससे यह मथनेवालेके खेदका नाशक प्रमोददाता अमृतरूपी भोजन उपजता है ॥२॥

११०. मैंने यहां कहीं-कहीं प्रयत्नके साथ ग्रंथकी गांठ रख छोड़ी है, जिसमें झूठे पंडित खल पढ़ाकू हठसे न खुल खेलें। जिन्होंने श्रद्धासे गुरुकी सेवा की, दृढ़ गांठोंको ढीला किया, वे सज्जन इस काव्यकी रसलहरीमें डूबने के सुखमें अवस्थान करें ॥३॥

१११. जो कान्यकुब्ज-ईश्वरसे दो पान और आसन पाता है, जो समाधियोंमें आनंदसागर परब्रह्मका साक्षात्कार करता है, जिसका काव्य मधुवर्षी और जिसकी उक्तियां तर्कमें दूसरोंको पराजित करनेवाली हैं, उस श्री श्रीहर्ष कविकी यह कृति पंडितोंके आनंदके लिये और ॥४॥

—सर्ग २२

भाग ६

५. आधुनिक काल (१६०० ई०)

४८. पद्मावती (१६०० ई०)

४९. पंडितराज जगन्नाथ (१६४० ई०)

५०. गौरी (१६५० ई०)

५. आधुनिक काल (१६०० ई०)

अपभ्रंश काल और भारतमें हिन्दू-शासनका अन्त एक साथ होता है। श्रीहर्ष और कान्यकुब्ज-अधिपति जयचन्द्रके बाद अब भारतमें भाषा, और संस्कृतिसे भिन्न ही नहीं, बल्कि विरोधी शासक दिल्लीको राजधानी बना कर शासन करने लगे। भारत के सबसे बड़े-बड़े सांस्कृतिक केन्द्र अब उन तुर्कोंके आधीन थे, जो काफिरोंकी भाषा, संस्कृति और साहित्यको कोई भी सम्मान या संरक्षण देनेके लिये तैयार नहीं थे। उनसे कोई संस्कृतका कवि अब सत्कार और सहायताकी आशा नहीं रख सकता था। जब तक हिन्दू-धर्म देशमें था, तब तक संस्कृतकी अवश्यकता थी, इसलिए संस्कृतका पठन-पाठन उन्होंने नहीं छोड़ा, किन्तु उसकी उत्कृष्ट कलाकी ओर उनका ध्यान नहीं जा सकता था। मुस्लिम-प्रहारसे हिन्दू-धर्मकी धज्जियां उड़ने लगीं: उसके पूजा-स्थान नष्ट हो गये, उसके तीर्थ अनेक बार अपवित्र किये गये, यात्रियोंपर विशेष कर (जजिया) लगाये गये। ऐसे समयमें संस्कृत कविताके उत्कर्षके लिए प्रयत्न करना कैसे सम्भव हो सकता था? इसीलिये कोई आश्चर्य नहीं, यदि मुस्लिम-शासनकी प्रथम शताब्दियोंमें संस्कृतका कोई उच्च कवि नहीं मिलता।

जर्जर होते हिन्दू-धर्ममें पुनः प्राण-संचार करनेके लिये इसी आरम्भिक कालमें वैष्णव सन्त पैदा होते हैं, जिन्होंने हिन्दू-धर्मको ऐसे रूपमें लोगोंके सामने रखना चाहा, जिसे जन-मन सुगमतासे ग्रहण कर सके और उसपर चलनेकी कोशिश करे। ये सुधारक यद्यपि हिन्दू सामन्तोंके भी श्रद्धाभाजन थे, लेकिन अब केवल उनके ही ऊपर रहना ठीक नहीं था, जन-शक्ति ही हिन्दू-धर्म और संस्कृतिका संरक्षण कर सकती थी। इसलिए सूर, तुलसी जैसे कवि पैदा हुए, जो लोक-भाषाको अपनानेके लिये मजबूर थे। हिन्दू सामन्त भी लोक-भाषामें लिखी कविताओंका ही रसास्वादन कर सकते थे, इसलिये भी लोक-भाषाके कवियोंको सुभीता था।

लेकिन, इस सारे कालमें संस्कृतका साहित्य जीवित रहा। हमारे

महाकवियोंकी कृतियोंको बड़ी आदरसे पढ़ा जाता था। वाराणसी (बनारस) गहड़वारोंके समयसे ही संस्कृतके अध्ययनका विशाल केन्द्र बन चुकी थी। शताब्दियां बीतनेके साथ तीर्थके तौरपर ही नहीं, बल्कि विद्या-केन्द्रके तौरपर भी उसकी ख्याति बढ़ी। सारे भारतके विद्वानोंकी नजर उसकी तरफ लगी रहती थी। पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिणके श्रेष्ठ विद्वान् काशीमें रहना अपने सौभाग्यकी बात समझते थे। इसी कारण आन्ध्रसे आये ब्राह्मण पेद्दु भट्ट थे, जिनके यशस्वी पुत्र जगन्नाथ थे। उनके रूपमें संस्कृत कविताने फिर एक बार अपना चमत्कार दिखलाया। जगन्नाथकी जीवनीसे पता लगता है, कि उस समय उनके जैसोंको कितने कष्ट उठाने पड़ते थे। वह नवाब आसफ खांको रिझाकर उन्हें कुछ सहायता मिली। फिर कामरूप (आसाम) के राजा प्राणनारायणकी तारीफमें लगे। पर उससे भी उन्हें इतनी प्राप्ति नहीं हुई, कि अपना जीवन निश्चिन्त बिता सकते। अन्तमें उनका भाग्य खुला, जब शाहजहांका पुत्र दाराशिकोह संस्कृत-साहित्य और तत्वज्ञानकी तरफ झुका। वह काशीसे दिल्ली-वल्लभके दरबारमें गये और वहां सुखी जीवन बिताकर अन्तमें वृन्दावन सेवन करने लगे। पंडितराजके समयके आसपास दो कवित्रियां भी हैं। इन तीनोंकी कवितायें अपभ्रंशकालीन कविताके दोषोंसे मुक्त हैं। उत्कृष्ट कविताकी अंतिम झलक हमें इनकी सूक्तियोंमें मिलती है।

४८. पद्मावती (१६०० ई०)

पद्मावतीके समय और जन्मस्थानके बारेमें कुछ कहना मुश्किल है। इनके पद्योंसे भी देश या स्थानका कोई पता नहीं लगता। गुजराती स्त्रियोंका

४८. पद्मावती

(१) राजा—

१. हरिण्यस्त्वरण्येऽग्रगण्यं शरण्यं,
नृपाणां यमालोक्य लोलाक्षिगोलाः।
करे चारुचापं गले नीलचोलं,
मृगानुव्रजन्तं स्मरं भावयन्ति[1] ॥१॥

(२) कृपणः—

२. कोषे निषण्णस्य च बद्धमुष्टेर्,
मलिम्लुचाकारविभीषणस्य।
आकारतः केवलमस्ति भेदः
कृपाणकस्यापि धनाणकस्य[2] ॥२॥

(३) खलः—

३. स्वभावसिद्धं वक्रत्वं खलस्य च हलस्य च।
मुखाक्षेपं तयोः सोढुमलमेकैव सा क्षमा[3] ॥३॥

(४) शरीरावयवाः—

४. किं चारुचन्दनलताकलिता भुजंग्यः?
किं पत्रपद्ममधुसंवलिता नु भृंग्यः?
किं वाननेन्दुजितराहुरुचो विषाल्यः?
किं भान्ति गुर्जरवरप्रमदाकचाल्यः[4] ॥४॥

---

१. छन्द भजंगप्रयात, २. उपजाति, ३. अनुष्टप्, ४. वसन्ततिलक

४८. पद्मावती (१६०० ई०)

विशेष पक्षपात होनेसे जान पड़ता है, यह गुजराती थीं। एक पद्यमें किसी राजाका वर्णन और कई नख-शिखके ललित पद्य इनका संबंध सामन्ती दरबारसे बतलाते हैं।

४८. पद्मावती

(१) राजा—

१. राजाओंमें से जिसे अग्रगण्य शरण जानकर चंचल नेत्रोंवाली हरिनियां जंगलमें गई, वह हाथमें सुन्दर चाप, गलेमें नीले चोगे, मृगके पीछे जाते (उसे) कामदेव समझती हैं ।।१।।

(२) कँजूस—

२. मलिन आकारके कारण भयंकर, मुट्ठी बांधे खजानेमें बैठे, कंजूस और पैसेके आनेमें केवल आकार का ही भेद है ।।२।।

(३) खल—

३. खल और हलका टेढ़ापन स्वभावसिद्ध है। उन दोनोंके मुखके आक्षेपको एकही क्षमा (पृथिवी) सह सकती है ।।३।।

(४) नख-शिख—

४. क्या (वह) सुन्दर चन्दनलतामें लिपटी नागिनें हैं? क्या पद्मके मधुमें लिपटी भ्रमरियां हैं? अथवा मुखचन्द्र को हरानेवाले राहु सी विषपंक्तियां हैं। अथवा गुजरातकी वर महिलाओंकी चोटियां हैं ।।४।।

५. तव रुचिरमुखेन्दोः कान्तिपीयूषधारां,
चतुरतरचकोरीचक्रमास्वाद्य सद्यः।
अनुगतबहुमाध्वीचंचुजाड्यापनुत्यै,
कलयति शशिबिम्बे कांजिकभ्रान्तिमेतत् ॥५॥

६. दन्तालिदाडिमीबीजभक्षणोत्कण्ठितात्मनः ।
मन्ये मारशुकस्येयं नासाचंचुर्विजायते[१] ॥६॥

७. कस्तूरीतिलकं तस्या जनयति शोभां भ्रुवोरन्तः ।
कोदण्डमध्यलग्नं फलमिव पंचेषुबाणस्य ॥७॥

८. न भाति कण्ठः किमु काम-भूपतेर्,
विभाति जैत्रं किल कम्बुरेव ।
अद्यापि संभाति यतस्तदीया
रेखामिषादंगुलियन्त्रणेयम्[२] ॥८॥

९. किं शृंगारसमुद्रकल्पलतिके किं वा मृणालीलते
किं वक्षोजमहीध्रचन्दनलते किं मारपाशीलते ।
किं लावण्यसुधाब्धिविद्रुमलते पत्रांगुलीसंयुते
भातः किं कलगुर्जरीसुललिते वाहूलते मन्मते[३] ॥९॥

(५) सिंहः—

१०. मान्योऽसि मानमंजुल सिंह मृगेन्द्र प्रचण्डभुजदण्ड ।
यः प्रौढदिग्गजोद्भवपललरतो हंसि नो हरिणान्[४] ॥१०॥

(६) अश्वः—

११. वारितः प्रस्फुरत्येव समुदंचितकेसरः ।
अत्यन्तं भ्रमरीकीर्णो वाजी राजीवसन्निभः[५] ॥११॥

---

१. मालिनी, २. उपगीति ३. शार्दूलविक्रीडित, ४. आर्या, अनुष्टुप,
५. वसन्ततिलक ।

५. तेरे रुचिर मुखचन्द्रकी शोभाकी अमृतधाराको अति चतुर चकोरियां आस्वादन कर बहुत मिठाई पाये चोंचकी जड़ताको तुरन्त हटानेके लिये वह चन्द्रमंडलमें कांजीका भ्रम करती हैं ।।५।।

६. दंत-पंक्तियोंरूपी अनार-दानेके भक्षणके लिये उत्कंठित, मैं समझती हूं, कामदेवरूपी तोते का यह नासाचंचु है ।।६।।

७. उसका दोनों भौहोंके बीचमें कस्तूरीका तिलक ऐसी शोभा पैदा करता है, मानो चापके बीचमें लगा कामदेवके बाणका फल है ।।७।।

८. क्या काम-नृपतिका कंठ नहीं शोभता, राजाका विजय-शंख शोभा दे रहा है, आज भी जो कि उसकी रेखाके बहाने, अंगुलीकी दाब यह दिखाई देती है ।।८।।

९. क्या शृंगार-समुद्रकी दो कल्पलतायें, अथवा मृणालियोंकी लतायें हैं ? क्या स्तनगिरि की चन्दनलता या कामपाशरूपी लता है ? क्या लावण्यामृत-सागरकी मूंगेकी लता-पत्ररूपी अंगुलियोंसे युक्त है ? मेरी रायसे तो सुन्दर गुजरातिनोंकी दो ललित बाहुलतायें शोभ रही हैं ।।९।।

५. सिंह—

१०. हे मानमें मंजुल, प्रचण्ड भुजदण्डवाले मृगेन्द्रसिंह, तुम माननीय हो, जो कि प्रौढ़ दिग्गजोंके मांसके प्रेमी बन हरिनोंको नहीं मारते ।।१०।।

६. अश्व—

११. भंवरियोंसे आकीर्ण कमलं जैसा अश्व, रोकनेपर अयाल उठाये अत्यंत चंचल हो उठता है ।।११।।

(७) अन्योक्तिः—

१२. मा काक कोकिलशतानुगत प्रसर्पद्-
दर्पाविमत्य खगराजमितो व्रजेथाः ।
ज्ञास्यन्ति चेत् करटकं तु भवन्तमेते,
हास्यन्ति कर्करवदुज्ज्वलरत्नसंघात्[१] ॥१२॥

(८) प्रभातं—

१३. प्रभातवेला स्मरराजपुत्री,
नीराजनाभाजनमर्कबिम्बम् ।
आयाति नीराजितुमब्धिपुत्रीं
पाणौ गृहीत्वाङ्कुरितांशुभालम्[१] ॥१४॥

(९) तारा-गणः—

१४. त्रिलोकीजयप्रस्थितस्यात्मयोने -
र्लसत्कुंकुमारात्रिपात्रं दधाना ।
स्फुरत्कान्तिताराक्षतान् भावयन्ती
पुरन्ध्री निशा याति तन्मंगलाय[२] ॥१५॥

(१०) ग्रीष्मः—

१५. तुषाराकराक्लेशितामुष्णरोचिः,
समाज्ञाय जायां प्रियां पद्मिनीं च ।
सखायं निजं ग्रीष्मकालं विधाय,
ज्वलज्ज्योतिरुद्द्योतते तज्जयैषी ॥१६॥

१६. धूली-कर्करिणः प्रचण्ड-तपन-ज्वालालि-माला-धराः,
स्पर्शादिव सरिज्जलं तरु-दलं संशोषयन्तः क्षणात् ।
पीतोन्मुक्त— फणीश-फूत्कृति-विष -ज्वालालि-युक्ता इव
स्वच्छन्दं परितो भ्रमन्ति बहुशो ग्रीष्मस्य वाता अमी[३] ॥१७॥

१. उपजाति, २. भुजंगप्रयात, ३. मन्दाक्रान्ता ।

७. अन्योक्ति—

१२. सैकड़ों कोयलोंको पीछे लिये चलते, हे कौवे, दर्पसे तिरस्कार करके गहांसे पक्षिराजके पास मत जा। यदि ये आपको कौआ जानेंगे, तो उज्ज्वल रत्नोंमेंसे कंकड़ीकी तरह तुझे निकाल फेंकेंगे ॥१२॥

८. प्रातः—

१३. प्रभात वेला कामराजा की पुत्री, अंकुरित-किरण मालावाले सूर्य-बिम्बके आरती-पात्रको हाथमें लेकर, सागर-पुत्री (लक्ष्मी) की आरती उतारने आ रही है ॥१४॥

९. तारागण—

१४. तीनों लोकोंके जय के लिये प्रस्थान करते कामदेवके लिये, सोहते कुमकुमका आरती-पात्र लिये, झिलमिलाती कान्तिवाले ताराख्पी अक्षतोंकी भावना करती, निशारूपी महिला उसके मंगलाचारके लिये जा रही है ॥१५॥

१०. ग्रीष्म—

१५. प्रिया-पत्नी पद्मिनीको चन्द्र द्वारा कलंकित जानकर उष्ण-किरणवाला सूर्य, ग्रीष्मकालको अपना मित्र बना, उसकी जयकी इच्छासे जलती ज्योतिवाला हो प्रकाशता है ॥१६॥

१६. धूलि से कर्कराते प्रचण्ड सूर्यकी ज्वालाओंकी माला धारे, स्पर्शसे ही नदीके जल, वृक्षके पत्तको क्षणमें सुखानेवाले पीकर छोड़े नागराजके फूत्कार-युक्त विषकी ज्वालाओंसे युक्त, ग्रीष्मकी ये हवायें चारों ओर स्वच्छन्द घूम रही हैं ॥१७॥

(११) वर्षा—

१७. नायं गर्जः, किमुत ? मदन-प्रौढ़-निसाण-शब्दो
नैते मेघाः, किमुत? मदनस्योद्धुराः सिन्धुरास्ते।
नैषा विद्युत्, किमुत? जयिनी तत्-करे कापि शुक्तिर्,
नैन्द्रश्चापः, किमुत? जगतां मोहनास्त्रं स्मरस्य ॥१८॥

४९. पण्डितराज जगन्नाथ (१६४० ई०)

यह आन्ध्रासे बनारसमें आकर बसे पेरम भट्टके पुत्र और अपने समयके प्रकाण्ड पंडित थे। साहित्य, व्याकरण और दर्शनपर इनका अनद्भुत अधिकार था। कविता करनेमें इन्होंने अपभ्रंशकालीन जटिल शब्दोंकी परम्पराको नहीं, बल्कि कालिदासको अपना गुरु बनाया। शाहजहांके पुत्र दाराशिकोहको संस्कृत पढ़नेका बहुत शौक था। उसीको पढ़ानेके लिए यह काशीसे दिल्ली आये। इस समय यह तरुण थे, इसीलिए लिखा है "दिल्ली-वल्लभपाणिपल्लवतले नीतं नवीनं वयः"। यह संस्कृतके महान् पंडित होते भी कूपमंडुकतासे बिलकुल मुक्त थे। मुगल-दरबारमें एक मुसलमान तरुणीसे प्रेम हो गया, और उसे इन्होंने पत्नीके तौरपर स्वीकार कर लिया। चारों ओरसे उन्हें हिन्दू धर्मसे भगानेकी कोशिश की गई, लेकिन जगन्नाथ अपने स्थानपर अडिग रहे। परवर्ती लोगोंको जगन्नाथके पूर्ण धर्मात्मा होनेपर पूरा विश्वास था। वह कहते हैं, "गंगालहरी" को इन्होंने अन्तिम समयमें अपनी धर्मनिष्ठताको सिद्ध करनेके लिए बनाया। अपनी मुसलमान पत्नीके साथ काशीमें गंगाकी सीढ़ियोंपर जा बैठे, और लहरीके एक-एक

११. वर्षा—

१७. यह गरज नहीं है, तो क्या? मदनके जबर्दस्त नगाड़ोंके शब्द हैं। यह मेघ नहीं है, तो क्या? मदनके धुरोंवाले घोड़े हाथी हैं। यह विजली नहीं है, तो क्या? उसके हाथ में कोई विजयिनी शक्ति है। यह चाप नहीं है, तो क्या? जगत्‌के लिये कामदेवका मोहनास्त्र है ॥१८॥

४९. जगन्नाथ (१६४०) ई०

पद्यके गानेके साथ गंगा एक-एक सीढ़ी ऊपर चढ़ती आई, और लहरीके समाप्त होनेके साथ दोनोंको गंगा अपनी गोदमें लेकर चली गई। बादशाहने इन्हें "पंडितराज" की उपाधि दी थी।

दिल्ली आनेसे पहले इन्हें और दरबारोंमें भी भटकना पड़ा था। असम (कामरूप) के राजा प्राणनारायणके दरबारमें जाकर इन्होंने "प्राणाभरण" काव्य लिखा था। मुगल सामन्त नवाब आसफ खांकी प्रशंसामें "आसफविलास" (गद्यकाव्य) और दाराशिकोहकी प्रशंसामें "जगदाभरण" लिखा। इन्होंने प्रौढ़ मीमांसक अप्पयदीक्षितके ग्रंथ "चित्रमीमांसा" का खंडन "चित्रमीमांसाखंडन" द्वारा किया। अपने समयके महान् वैयाकरण भट्टोजिदीक्षितकी "मनोरमा" का खंडन "मनोरमाकुचमर्दन" द्वारा किया। "रसगंगाधर" इनका अलंकारका बहुत प्रौढ़ ग्रंथ है, जो दुर्भाग्यसे अपूर्ण ही रह गया। इनकी पांच लहरियां—(१) "करुणा लहरी", (२) "गंगा लहरी", (३) "अमृतलहरी", (४) "लक्ष्मीलहरी" और (५) "सुधा लहरी" प्रसिद्ध हैं। पिछले सात सौ वर्षोंमें इतनी सर्वतोमुखीन प्रतिभावाला महान् और विचारोंसे अति उदार पंडित भारतमें नहीं हुआ।

१. लक्ष्मीलहरी

लक्ष्मीस्तुतिः—

१. समुन्मीलत्वन्तःकरणकरुणोद्गारचतुरः,
करिप्राणत्राणप्रणयिनि दृगन्तस्तव मयि।
यमासाद्योन्माद्यद्द्विपनियुतगण्डस्थलगलन्,
मदक्लिन्नद्वारो भवति सुखसारो नरपतिः ॥२॥

२. समीपे संगीतस्वरमधुरभंगी मृगदृशां
विदूरे दानान्धद्विरदकलभोद्दामनिनदः।
बहिर्द्वारं तेषां भवति हयहेषाकलकलो
दृगेषा ते येषामुपरि कमला देवि सदया ॥४॥

३. प्रभातप्रोन्मीलत्कमलवनसंचारसमये,
शिखाः किंजल्कानां विदधति रुजं यत्र मृदुलाः।
तदेतन्मातस्ते चरणमरुणश्लाघ्यकरुणं
कठोरा मद्वाणी कथमियमिदानीं प्रविशतु ॥८॥

—काव्यमाला २

२. अमृतलहरी

यमुनास्तुतिः—

४. दानान्धीकृतगन्धसिन्धुरघटागण्डप्रणालीमिलद्-
भृङ्गालीमुखरीकृताय नृपतिद्वाराय बद्धाञ्जलिः।
त्वत्कूले फलमूलशालिनि मम श्लाघ्यामुरीकुर्वतो
वृत्तिं हन्त मुनेः प्रयान्तु यमुने वीतज्वरा वासराः ॥३॥

५. अन्तर्मौक्तिकपुंजमंजिम बहिः स्निग्धेन्द्रनीलप्रभं,
मातर्मे मुदमनातनोतु करुणावत्या भवत्याः पयः।

१. लक्ष्मीलहरी

लक्ष्मीकी स्तुति—

१. हे गज-प्राणरक्षक (विष्णु) की प्रेमिके, हृदयसे करुणाके उद्गारमें निपुण तेरा नयनकोर मेरे ऊपर खुले। जिसे पाकर राजा, मस्त दसों हजार गजोंके कपोलोंके मदसे भीगे द्वार और सुखसारवाला होता है ॥२॥

२. हे कमलादेवि, उनके समीपमें मृगनैनियोंके संगीतस्वरकी मधुर लहर, दूर मदसे अन्धे तरुणगजोंकी उद्दीप्त चिघाड़, बाहर द्वारपर घोड़ेके हिनहिनानेका कल-कल होता है; जिनके ऊपर तेरी यह दयायुक्त दृष्टि पड़ती है ॥४॥

३. सबेरेके खिलते कमलवनोंमें घूमनेके समय, किंजल्कोंकी मृदुल शिखा जब (तुझे) व्यथा करती है; तो हे माता, इस अरुण और प्रशंसनीय करुणावाले तेरे चरणमें, यह मेरी कठोर वाणी कैसे प्रवेश पायेगी ॥८॥

—काव्यमाला, गुच्छ २

२. अमृतलहरी

यमुनाकी महिमा—

४. दानसे अन्धे बने गंधगजोंके कपोलोंमें लगे, भंवरोंसे मुखरित राजाके द्वारको मैंने हाथ जोड़ लिया। हे यमुने, फल-मूलवाले तेरे तटपर श्लाघनीय मुनिवृत्तिको स्वीकार कर, अहो मेरे दुःख-रहित दिन बीतें ॥३॥

५. हे माता, भीतर मुक्ता-पुंजसे सुन्दर स्निग्ध इन्द्रनील-मणिकी प्रभावाली करुणावती आपका जल मुझे आनंद प्रदान करे। जो रूपोंके धारण

यद्रूपद्वयधारणादिव नृणामाचूडमामज्जतां,
तत्कालं तनुतेतरां हरिहराकारामुदारां तनुम् ॥८॥

६. मातर्वारिणि पापहारिणि तव प्राणप्रयाणोत्सवं,
संप्राप्तेन कृतां नरेण सहतेऽवज्ञां कृतान्तोऽपि यत् ।
यद्वा मण्डलभेदनादुदयिनीश्चण्डद्युतिर्वेदना:,
श्चित्रं तत्र किमप्रमेयमहिमा प्रेमा यदोत्पत्तिकः ॥९॥

३. सुधालहरी

सूर्यस्तुतिः—

७. उल्लासः फुल्लपंकेरुहपटलपतन्मत्तपुष्पंधयानां,
निस्तारः शोकदावानलविकलहृदां कोकसीमन्तिनीनाम् ।
उत्पातस्तामसानामुपहतमहसां चक्षुषां पक्षपातः,
संघातः कोऽपि धाम्नामयमुदयगिरिप्रान्ततः प्रादुरासीत् ॥१

८. निर्भिद्य क्ष्मारुहाणामतिघनमुदरं येषु गोत्रां गतेषु,
द्राघिष्ठस्वर्णदण्डभ्रमभृतमनसः संनिधित्सन्ति पादान् ।
यैः संभिन्ने दलाग्रप्रचलहिमकणे दाडिमीबीजबुद्ध्या
चंचूचांचल्यमंचन्ति च शुकशिशवस्,
तेंऽशवः पान्तु भानोः ॥५॥

९. शीते शोकं, शशांके कृशतमरुचितामाशुनाशं निशायां
धिक्कारं ध्वान्तवर्गे, कुमुदपरिषदि प्रोद्गमं दीनतायाः ।
पाण्डित्यं पुण्डरीकेष्वनुदिनमधिकां कान्तिमाशासु तन्वन्,
नन्वंचत्यन्वहं द्यामुषसि करुणया विश्ववन्द्यो विवस्वान्
॥११॥

करनेसे वह मानो सिरसे डुबकी लगाये आदमियोंको तत्काल हरि और हरके उत्तम शरीरको प्रदान करता है ॥४॥

६. हे माँ, तेरे पापहारी जलमें (मेरे) प्राण प्रयाण-उत्सव पायें, नर द्वारा की गई अवज्ञाको जब कि यमराज भी नहीं सहन करता। अथवा सूर्यमण्डलके भेदनसे उत्पन्न चंडप्रकाशवाली वेदनायें हैं, जिससे उत्पन्न होता वहाँ कोई अद्भुत अचिंत्य महिमा प्रेम ॥९॥

—काव्यमाला १

३. सुधालहरी

सूर्यकी महिमा—

७. फूले कमल-पत्रोंपर पड़े मस्त भ्रमरोंका उल्लास है, शोकरूपी दावानलसे विकल हृदयवाली चक्रवाक-पत्नियोंका निस्तार है। अन्धकारोंके लिये उत्पात, नष्ट तेजवाले नेत्रोंका पक्षपात है, यह कोई प्रकाशका समूह उदयाचलके किनारेसे प्रकट हो रहा है ॥१॥

८. वृक्षोंके अति घने उदरको भेदकर जिनके पृथिवीपर आनेपर, अति लम्बे सुवर्णदण्डके भ्रमसे धारण किये मतवाले, किरणोंको जोड़नेकी इच्छा करती हैं; जिनसे खिले पत्रके अग्रभागपर चंचल ओस-कणोंमें अनारका बीज समझकर, तोतोंके बच्चे चोंचोंकी चंचलता दिखाते हैं, वे भानुकी किरणें रक्षा करें ॥५॥

९. सार्दी पर शोक, चन्द्रमामें भीम रोशनी, रातमें तुरन्त नाश, अन्धकारोंमें धिक्कार, कमल-समूहोंमें दिनका पैदा करने, पद्मिनियोंमें प्रतिदिन निपुणता, दिशाओंमें अधिक कान्तिको विस्तारित करते, विश्ववंद्य सूर्य प्रतिदिन आकाश और इमारतें करुणासे भरते हैं ॥१॥

—काव्यमाला १

४. प्राणाभरणम्

कामरूपनृपस्तुतिः—

१०. "विद्राणैव गुणज्ञता समुदितो भूयानसूयाभरः,
कालोऽयं कलिराजगाम जगतीलावण्यकुक्षिंभरिः" ।
एवं भावनया मदीयकविते मौनं किमालम्बसे,
जागर्तु क्षितिमण्डले चिरमिह श्रीकामरूपेश्वरः" ॥२॥

११. किं ब्रूमस्तव वीरतां वयममी यस्मिन्धराखण्डल -
क्रीडाकुण्डलितभ्रु शोणनयनं दोर्मण्डलं पश्यति ।
माणिक्यावलिकान्तिदन्तुरतरैर्भूषासहस्रोत्करैर्,
विन्ध्यारण्यगुहागृहावनिरुहास्तत्कालमुल्लासिताः ॥४॥

१२. माहात्म्यस्य परोऽवधिर्निजगृहं गम्भीरतायाः पिता,
रत्नानामहमेक एव भुवने को वापरो मादृशः ।
इत्येवं परिचिन्त्य मा स्म सहसा गर्वान्धकारं गमोः,
दुग्धाब्धे भवता समो विजयते श्रीप्राणनारायणः ॥५॥

१३. आस्वादेन रसो, रसेन कविता, काव्येन वाणी तया,
लोकान्तःकरणानुरागरसिकः सभ्यः, सभा चामुना ।
दारिद्र्यानलदह्यमानजगतीपीयूषधाराधर ,-
क्षोणीनाथ तथा भवांश्च भवता भूमण्डलं भासते ॥११॥

१४. सृष्टः सृष्टिभुवा पुरा किल परित्रातुं जगन्मण्डलं,
त्वं चण्डातपनिर्दयं तपसि यज्ज्वालाजटालैः करैः ।
संरम्भारुणलोचनो रणभुवि प्रस्थातुकामोऽधुना,
जानीमो भवता न हन्त विदितः श्रीकामरूपेश्वरः ॥१५॥

१५. मयि त्वदुपमाविधौ वसुमतीश वाचंयमे ,
"न वर्णयति मामयं कवि"रिति क्रुधं मा कृथाः ।
चराचरमिदं जगज्जनयतो विधेर्मानसे,
पदं न विदधेतरां तव समो द्वितीयो नरः ॥१९॥

४. प्राणाभरण

असम-राजाकी प्रशंसा—

१०. "मानो गुणज्ञता भाग गई, ईर्ष्याका अधिक भार जमा हो गया। संसारके सौंदर्यको खा जानेवाला यह कलि आ गया" यह सोचकर हे मेरी कविता, तू क्यों मौन धारण कर रही है। यहां पृथिवीमण्डलपर श्रीकामरूपेश्वर जाग जो रहे हैं ॥२॥

११. हम तेरी वीरताके बारे में क्या कहें, जिस पृथिवीचन्द्रकी क्रीड़ासे तिरछी भौहों, लाल नयनों, भुजमण्डलको देखते, मणियोंकी कान्तिसे उछलते हजारों भूषणोंसे विंध्य पर्वतके गुहागृहोंवाले वृक्ष तत्काल उल्लसित हो गये ॥४॥

१२. जो बड़प्पनकी अन्तिम सीमा, गम्भीरताका निजगृह है, "भुवनमें रत्नोंका मैं ही एक रक्षक हूं, मेरे समान दूसरा कौन है" इस प्रकार सोचते, हे क्षीरसागर, एकाएक गर्वके अन्धकारमें मत पड़, (राजा) आपके समान **श्रीप्राणकी** विजय है ॥५॥

१३. (जैसे) आस्वादसे रस, रससे कविता, कवितासे वाणी, उससे लोगोंके मनके अनुरागका रसिक सभ्य, और उससे सभा, दरिद्रतारूपी अग्निसे जलते संसारके लिये अमृत मेघ है, वैसे ही हे पृथिवीनाथ, आप उस सभासे और आपसे भूमंडल प्रकाशित है ॥११॥

१४. हे सूर्य, पुराने समयमें ब्रह्माने संसारमंडलकी रक्षाके लिये तुम्हें बनाया। तुम ज्वालाकी जटाओंवाली किरणोंसे प्रचंड धूपसे निष्ठुर तप रहे हो। मैं समझता हूं, रणभूमिमें क्रोधसे लाल आंखोंवाले प्रस्थानके इच्छुक, तुम्हें हन्त ! **श्रीकामरूपेश्वरका** ज्ञान नहीं है ॥१५॥

१५. हे पृथिवीश्वर, तुम्हारी उपमा देनेमें जबानपर संकोच करते देख "यह कवि मेरी प्रशंसा नहीं करता" यह कह मेरे ऊपर क्रोध मत करो। इस चराचर जगत्के उत्पन्न करनेवाले ब्रह्माके मनमें, तेरे समान दूसरे नरने पद (स्थान) नहीं पाया ॥१९॥

१६. भुजभ्रमितपट्टिशोद्दलितदृप्तदन्तावलं,
भवन्तमरिमण्डलक्रथन पश्यतः सगरे।
करालकुलिशाहतिस्फुटविभिन्नविन्ध्याचलः,
न कस्य हृदयं झटित्यधिरुरोह जम्भाहितः ॥२०॥

१७. प्राचीसंध्यासमुद्यन्महिमदिनमणेर्मानभाणिक्यकान्तिर्,—
ज्वालामाला-कराला-कवलितजगतः क्रोधकालानलस्य।
आशाकान्तापदाम्भोरुहतलविगलन्मंजुलाक्षारसाभा,
सा भाति क्षोणिशोभाकरण तव दृशोः संगरे शोणिमश्रीः
॥२५॥

१८. स तु वर्षतु वारि वारिदस्त्वमुदाराशय रत्नवर्षणः।
स कुहूरजनीमलीमसस्त्वमिहान्तर्बहिरेव निर्मलः ॥३१॥

१९. तैलंगान्वयमंगलालयमहालक्ष्मीदयालालितः,
श्रीमत्पेरमभट्टसूनुरनिशं विद्वल्ललाटन्तपः।
संतुष्टः कमताधिपस्य कवितामाकर्ण्य तद्वर्णनं,
श्रीमत्पण्डितराजपण्डितजगन्नाथो व्यधासीदिदम् ॥५२॥

५. भामिनीविलासः

(१) अन्योक्तयः—

२०. तावत्कोकिल विरसान् यापय दिवसान् वनान्तरे निवसन्।
यावन्मिलदलिमालः कोऽपि रसालः समुल्लसति ॥७॥

२१. कमलिनि मलिनीकरोपि चेतः,
किमिति बकैरवहेलिताऽनभिज्ञैः॥
परिणतमकरंदमार्मिकास्ते,
जगति भवंतु चिरायुषो मिलिंदाः ॥८॥

२२. नितरां नीचोऽस्मीति त्वं खेदं कूप मा कदापि कृथाः।
अत्यन्तसरसहृदयो यतः परेषां गुणगृहीतासि ॥९॥

१६. हे शत्रुमंडलके नाशक, युद्धमें आपके मस्त गजोंको भुजके पट्टिशसे दलित किये देख, दाढ़में स्थित कराल वज्र के प्रहारसे फूटा विंध्याचल, किसके हृदयमें जल्दी नहीं आरूढ़ होगा ।।२०।।

१७. हे पृथिवीकी शोभा करनेवाले, युद्धमें तुम्हारी आंखोंकी लाल शोभा, पूर्वमें उषाकालमें उगते महिमावाले सूर्यकी मणिकी कान्तिवाले, जगत्को कवलित करनेवाले क्रोधरूपी कालाग्निकी कराल ज्वालायें-दिशारूपी कान्ताके चरण-कमल, तलसे गिरते मंजु महावरके रसमें प्रकाशमान हैं ।।२५।।

१८. वह मेघ तो जल बरसाता है, उदार हृदयवाले तुम रत्न बरसानेवाले हो । मेघ अमावस्याकी रातकी तरह काला है, और यहां तुम भीतर और बाहरसे निर्मल हो ।।३१।।

१९. तैलंग-वंशके मंगल भवनकी महालक्ष्मीकी दयासे लालित, विद्वानोंके ललाटको रात-दिन तपानेवाले श्रीमान् पेरमभट्टके पुत्रने, कामरूपाधीशकी प्रशंसावाली कविता सुनकर संतुष्ट हो इसे रचा ।।५२।।

—काव्यमाला १

५. भामिनीविलास

१. अन्योक्ति—

२०. हे कोयल, तब तक वनांतरोंमें रहती नीरस दिनोंको बिताओ, जब तक भंवरोंकी मालावाला कोई आम नहीं उल्लसित होता ।।७।।

२१. हे कमलिनि, अनभिज्ञ बगलों द्वारा तिरस्कृत हो क्यों चित्तको खिन्न करती हो? परिपक्व केसरके मर्मज्ञ संसारमें वे भ्रमर दीर्घ-जीवी होवें ।।८।।

२२. हे नूपें, "मैं अत्यंत नीच हूं" ऐसा खेद तुम कभी मत करो; क्योंकि तुम दूसरोंके गुण (रस्सा) के ग्राहक अत्यंत सरस हृदयवाले हो ।।९।।

२३. नीरक्षीरविवेके हंसालस्यं त्वमेव तनुषे चेत् ।
विश्वस्मिन्नधुनान्यः कुलव्रतं पालयिष्यति कः ॥१३॥

२४. गाहितमखिलं गहनं परितो दृष्टाश्च विटपिनः सर्वे ।
सहकार, न प्रपेदे मधुपेन भवत्समं जगति ॥२१॥

२५. दवदहनजटालज्वालजालाहतानां,
परिगलितलतानां म्लायतां भूरुहाणाम् ॥
अपि जलधर, शैलश्रेणिश्रृंङ्गेषु तोयं,
वितरसि बहु कोयं श्रीमदस्तावकीनः ॥३६॥

२६. शृण्वन् पुरः परुषगर्जितमस्य हंत,
रे पांथ, विस्मितमना न मनागपि स्याः ॥
विश्वार्तिवारणसमर्पितजीवितोऽयं,
नाकर्णितः किमु सखे भवताऽम्बुवाहः ॥३७॥

२७. लूनं मत्तमतंगजैः कियदपि च्छिन्नं तुषारार्दितैः,
शिष्टं ग्रीष्मजभानुतीक्ष्णकिरणैर्भस्मीकृतं काननम् ॥
एषा कोणगता मुहुः परिमलैरामोदयन्ती दिशो,
हा कष्टं ललिता लवंगलतिका दावाग्निना दह्यते ॥५६॥

२८. युक्तं सभायां खलु मर्कटानां शाखास्तरूणां मृदुलाऽऽसनानि।
सुभाषितं चीत्कृतिरातिथेयी दंतैर्नखाग्रैश्च विपाटनानि ॥८५
—विलासः १

(२) श्रृङ्गारः—

२९. न मनागपि राहुरोधशंका न कलंकानुगमो न पाण्डुभावः ॥
उपचीयत एव कापि शोभा
परितो भामिनि ते मुखस्य नित्यम् ॥१॥

३०. तन्मंजुमंदहसितं श्वसितानि तानि
सा वै कलंकविधुरा मधुराननश्रीः॥
अद्यापि मे हृदयमुन्मुदयन्ति हंत
सायंतनाम्बुजसहोदरलोचनायाः ॥५॥

२३. हे हंस, दूध-पानी के भेद करनेमें यदि तुम ही आलस्य करोगे, तो आज संसारमें अन्य कौन कुलके व्रतका पालन करेगा ।।१३।।

२४. हे आम, भंवरेने सारे वनोंको ढूंढ डाला, चारों ओर सारे वृक्ष देख डाले; पर तुम्हारे समान जगत्में किसीको उसने नहीं पाया ।।२१।।

२५. हे मेघ, वनकी अग्निकी भारी लपटोंसे आहत, गलित लताओंवाले मुरझाते वृक्षोंके (और) पर्वतश्रेणियोंके शिखरोंपर बहुत जल बांट रहे हो कौन सा है जो कि तुम्हारा यह लक्ष्मीरूपी मद है ।।३६।।

२६. हे पथिक, सामने इसके परुष गर्जनको सुनते, हन्त, तुम जरा भी चकित न हो । मित्र, संसारकी पीड़ाओंके निवारणके लिये जीवन समर्पित किये, इस मेघके बारेमें क्या तुमने नहीं सुना ।।३७।।

२७. मस्त हाथियोंने (उसे) कितना ही नोंचा, पालेसे पीड़ित हो वह कितना छिन्न-भिन्न, गर्मीके सूर्यकी तेज किरणोंसे भस्म करके छोड़ा (यह) कानन है । जहां कोनेमें स्थित क्षण भर सुगंधिसे दिशाओंको यह खुशबूदार करती, हाय, सुंदर लवंगकी लता वनकी आगसे जल रही है ।।५६।।

२८. वानरोंकी सभामें वृक्षोंकी शाखाका कोमल-आसन होना उचित है । चिल्लाना उनका सुभाषित है और दांतों और नखोंसे खरोंचना अतिथि-सत्कार ।।८५।।

—विलास १

२. शृंगार—

२९. राहुके ग्रसनेकी जरा भी शंका नहीं है, न कलंकका सम्पर्क और न पीलेपन का । हे भामिनि, तेरे मुंहके चारों ओर सदा ही कोई शोभा बढ़ती जा रही है ।।१।।

३०. गागंमलीन कमल जैसे नेत्रोंवालीकी वह कोमल मन्द हास, वह उल्लास और वह कलंकरहित मधुर मुखड़ा आज भी हन्त, मेरे हृदयको पागल बनाते रहें ।।५।।

३१. कथय कथमिवाशा जायतां जीविते मे
मलयभुजगवान्ता वांति वाताः कृतान्ताः ॥
अयमपि खलु गुंजन्मुंजु माकंदमौलौ
चुलुकयति मदीयां चेतनां चंचरीकः ॥२८॥

३२. उपनिषदः परिपीता गीतापि च हंत मतिपथं नीता ॥
तदपि न हा विधुवदना मानससदनाद्बहिर्याति ॥३९॥

३३. प्राणापहरणेनासि तुल्यो हालाहलेन मे ॥
शशांक केन मुग्धेन सुधांशुरिति भाषितः ॥४३॥

३४. प्रादुर्भवति पयोदे कज्जलमलिनं (यदा) बभूव नभः ।
रक्तं च पथिकहृदयं कपोलपाली मृगीदृशः पांडुः ॥८६॥

३५. श्यामं सितं च सुदृशो न दृशोः स्वरूपं,
किं तु स्फुटं गरलमेतदथामृतं च ॥
नो चेत्कथं निपतनादनयोस्तदैव ,
मोहं मुदं च नितरां दधते युवानः ॥९२॥

३६. स्तनाभोगे पतन् भाति कपोलात्कुटिलोऽलकः ॥
शशांकबिम्बतो मेरौ लंबमान इवोरगः ॥१०६॥

३७. मीनवती नयनाभ्यां करचरणाभ्यां प्रफुल्लकमलवती ॥
शैवालिनी च केशैः सुरसेयं सुन्दरी सरसी ॥१११॥

—विलासः २

(३) करुणो रसः—

३८. चिता शशाम सकलाऽपि सरोरुहाणा-
मिंदोश्च बिंबमसमां सुषमामयासीत् ॥
अभ्युद्गतः कलकलः किल कोकिलानां
प्राणप्रिये यदवधि त्वमितो गताऽसि ॥७॥

—विलासः ३

३१. बता, कैसे मुझे जीवनकी आशा हो? मलयाचलके सांपोंके वमन किये यमराज जैसे वायु चल रहे हैं। आमके शिखरपर मधुर गूंजता यह भंवर भी मेरी चेतनाको पी रहा है ।।२८।।

३२. उपनिषद् सब पी डाली, हन्त गीताको भी समझ लिया। तो भी हाय, चन्द्रमुखी (मेरे) हृदय-मंदिरसे बाहर नहीं जाती ।।३९।।

३३. हे चन्द्र, प्राण के कारण अपहरण मेरे लिये तुम हलाहलके तुल्य हो, फिर किस मूढ़ने तुम्हें अमृत-किरण कहा ।।४३।।

३४. मेघके प्रकट होनेपर आकाश काजल सा मलिन, पथिकका हृदय लाल और मृगनयनीका कपोल पीला हो गया ।।८६।।

३५. सुनैनी की आंखोंका रूप श्याम और श्वेत नहीं, बल्कि स्पष्ट यह गरल अथवा अमृत है; नहीं तो इनके पड़नेसे उसी समय क्यों तरुण अत्यंत मोह और आनंदको प्राप्त होते हैं ।।९२।।

३६. कपोलसे वक्षस्थलपर गिरता कुंचित अलक, चन्द्रबिम्बसे मेरुपर लटकते सांप सा मालूम होता है।।१०६।।

३७. दोनों नयनोंसे मछलीवाली, हाथों-पैरोंसे फूले कमलवाली, और केशोंसे सेवारवाली यह सुन्दरी सुरस पुष्करिणी है ।।१११।।

—विलास २

३. करुणा रस—

३८. हे प्राणप्रिय, जबसे तुम यहांसे गये, और चन्द्रबिम्ब भी अद्वितीय सुषमाको प्राप्त हुआ, (तबसे) कमलोंकी सारी चिन्ता शान्त हो गई, कोयलोंका कलकल उठ गया है ।।७।।

—विलास ३

(४) शान्तो रसः—

३९. मद्वाणि मा कुरु विषादमनादरेण
मात्सर्यमग्नमनसां सहसा खलानाम् ॥
काव्यारविंदमकरन्दमधुव्रताना
मास्येषु धास्यतितमां कियतो विलासान् ॥४२॥

४०. धुर्यैरपि माधुर्यैर्द्राक्षाक्षीरेक्षुमाक्षिकादीनाम् ॥
वन्द्यैव माधुरीयं पण्डितराजस्य कवितायाः ॥४४॥

४१. शास्त्राण्याकलितानि नित्यविधयः सर्वेऽपि संभाविताः,
दिल्लीवल्लभपाणिपल्लवतले नीतं नवीनं वयः ॥
संप्रत्युज्झितवासनं मधुपुरीमध्ये हरिः सेव्यते,
सर्वं पण्डितराजराजितिलकेनाकारि लोकाधिकम् ॥४५॥

४२. दुर्वृत्ता जारजन्मानो हरिष्यंतीति शंकया ॥
मदीयपद्यरत्नानां मंजूषैषा मया कृता ॥४६॥

—विलासः ४

५०. गौरी (१६४० ई०)

अन्य स्त्री कवयित्रियोंकी तरह गौरीके भी काल और देशके बारेमें मालूम नहीं है। यह किसी राजाकी प्रशंसा करती है, जिससे जान पड़ता

(१) शिवः—

१. उत्फुल्लगल्लपरिफुल्लमुखारविन्द -
सौगन्ध्यलुब्धमधुपाकुलया रतांते,
अत्युग्रपीनकुचद्वन्द्वचकयाऽतिगाढ़ -
मालिंगितो गिरिजया गिरिशः पुनातु[1] ॥१॥

---

१. छन्द वसन्ततिलक

४. शान्त रस—

३९. हे मेरी वाणी, ईर्ष्या-मग्न मनवाले खलोंके तुरंत अनादरसे विषाद मत कर, काव्यरूपी कमल-मधुके भ्रमरोंके मुखोंमें (जा) तू कितना भारी आनन्द पायेगी ।।४२।।

४०. पंडितराजकी कविताकी मधुरता, अंगूर, क्षीर, ईख, मधु आदिकी श्रेष्ठ मधुरताओंसे भी बढ़कर है।।४४।।

४१. पंडितराजोंके तिलक (जगन्नाथ) ने शास्त्रोंको पढ़ा, सारे नित्य नियम पालन किये, दिल्लीके स्वामीके पाणिपल्लवके नीचे जवानी बिताई, अब वासनाओंको छोड़कर मथुरामें हरिका सेवन कर रहे हैं। पंडित-राजोंके-तिलकने सब काम लोकोत्तर किया।।४५।।

४२. दुराचारी जार-पुत्र चुरायेंगे, इस शंकासे मैंने अपने पद्यरत्नोंकी यह पिटारी बनाई।।४६।।

५०. गौरी (१६४० ई०)

है, कि इनका दरबारसे सम्बन्ध था। संस्कृतमें शायद पहलेपहल इन्होंने बन्दूक (भुशुंडी) की तारीफ की है। गौरीकी कविता बहुत सरस और सरल है।

१. शंकर—

१. उत्फुल्ल गलेवाले फूले मुखारविन्दकी सुगंधिको पा लुब्ध भ्रमरोंसे आकुल, अत्युच्च पीन स्तनके चूचुकवाली पार्वती द्वारा रतिके अन्तमें अतिगाढ़ालिंगित शंकर तुम्हें पवित्र करें।।१।।

(२) द्विषत्कीर्तिः—

२. कालिन्दीयति कज्जलीयति कलानाथांकमालीयति,
व्यालीयत्यहिमण्डलीयति मुहुः श्रीकण्ठकण्ठीयति ।
शैवालीयति कोकिलीयति महानीलाभ्रजालीयति,
ब्रह्माण्डे रिपुदुर्यशस्तव नृपालंकारचूडामणे[१] ॥३॥

(३) भुशुण्डी—

३. महाचण्डीव संभाति भुशुण्डी भवतः करे।
प्रतापज्वरसंभ्रांतगोलिका जीवहारिणी[२] ॥४॥

४. वह्निचूर्णपरिपूर्णनिजान्तर्-
गोलिका गरलवक्त्रविकाशा ।
बाहुभीषणभुजंगधृतेयं
भाति दुष्टभुजगीव भुशुण्डी[३] ॥५॥

(४) प्रतापः—

६. नो चापाकलनं न पत्रिधरणं नो ज्यासमाकर्षणं,
नो बाहुस्फुरणं न बाणगमनं सन्दृश्यते ते रणे।
किन्तु प्रौढकरीन्द्रकुम्भविगलन्मुक्तागणप्रस्फुरत्-
प्रत्यर्थिक्षितिपालमौलिमणिभिर्विद्योतते भूरियम्[४] ॥६॥

(५) अरि-नार्यः—

७. चन्द्रानना चन्द्रकचारुगात्री ,
सा कोपवित्रस्तचकोरनेत्रा ।
शैलेयभुग्भिः स्मरभाववद्भिः
संसेव्यतेऽद्रावरिभामिनी ते[५] ॥७॥

---

१. शार्दूलविक्रीडित; २. अनुष्टुप्; ३. स्वागता ४. शार्दूलविक्रीडित,
५. इन्द्रवज्रा,

२. शत्रुका अपयश—

२. हे नृप-भूषण-चूड़ामणि, ब्रह्मांडमें तुम्हारे शत्रुओंका अपयश जमुना बन रहा है, कज्जल बन रहा है, चन्द्रमाकी कलंकमाला बन रहा है; व्याल बन सर्पकुण्डली बन रहा है, बार-बार शिवका कंठ बन रहा है। सेवार-कोयल-महानील मेघजाल सा बन रहा है ॥२॥

३. बन्दूक—

३. प्रतापरूपी ज्वरसे घूमती गोलीवाली, और प्राणहारिणी बन्दूक आपके हाथमें महाचंडी सी दीख पड़ती है ॥४॥

४. बारूदसे अपने भीतर भरी गोलीवाली, विष-मुखका विकास करनेवाली यह बन्दूक बाहुरूपी भीषण सांपसे पकड़ी दुष्ट सर्पिणी सी जान पड़ती है ॥५॥

४. प्रताप—

६. तुम्हारा रण में न धनुष चढ़ाना, न बाण पकड़ना, न प्रत्यंचा खींचना, न बांहका हिलना, न बाणका जाना दीखता है। लेकिन, यह भूमि प्रौढ़ गजराजके कुंभस्थलसे गिरती मोतियोंसी चमचमाती शत्रु-राजाओंकी शिखामणियोंसे प्रकाशित हो रही है ॥६॥

५. शत्रुकी नारियाँ—

७. चन्द्रमुखी, मोर जैसी सुन्दर गात्रवाली, कोपसे डरे चकोर जैसे नेत्रों-वाली, तुम्हारे शत्रुकी स्त्रीकी कामभावाविष्ट मधुमक्खियां पहाड़में सेवा कर रही हैं ॥७॥

(६) जल-क्रीडा—

८. विनिःसरन्ती रतिजित्वरांगी,
नीरात् सरागाम्बुजलोचनश्रीः।
आलोकि लोकैः स्वरुचा स्फुरन्ती
जलाधिदेवीव जलेशवन्द्या[1] ॥९॥

९. वेधाश्चकोरखंजनमीनमृगाणां च गंजनात्तुष्टः।
अर्पितवान् भूमिषतो मारकतं छत्रयुग्मकं सुदृशोः ॥१०॥

(७) शरीरम्—

१०. मुखे शृंङ्गारसरसि लावण्यामृतपूरिते।
कामक्रीडाहितं भाति नयनं शफरी-युगम् ॥११॥

११. अपांगस्तव तन्वंगि विचित्रोऽयं भुजंगमः।
दृष्टमात्रः सुमनसामपि मूर्छाविधायकः ॥१२॥

१२. सुधाविद्रुमसत्सारैर्धात्राऽस्यारचितोऽधरः,
यतोऽनंगभुजंगेन दष्टं जीवयति क्षणात् ॥१३॥

१३. विद्रुमं विद्रुमं कमलं कमलं पुनः।
इति संचिन्त्य विधिना कुंकुमारुणितौ पदौ ॥१४॥

१४. विभाति बाला चरणांगुलीनां
नखावलीरागविमिश्रितश्रीः।
शृंङ्गारकल्पद्रुमकोरकाणां
दलान्तरे पंक्तिरिव प्रसन्ना[2] ॥१५॥

(८) वायुः—

१५. परिमलबहुलां सुपल्लवांगीं,
कुसुमयुतां परिरभ्य हेमवल्लीम्।
विरचितसरसीसु मज्जनोऽसौ,
रसिक इवैति शनैः शनैः समीरः[3] ॥१६॥

॥ इति ॥

---

१. उपजाति, २. गोति, ३. अनुष्टप्, पुष्पिताग्रा।

६. जल-विहार—

८. रति जीतनेवाले अंगोंवाली, लाल कमल जैसी लोचनशोभावली, अपनी आभासे चमकती, जलसे (बाहर) निकलती, लोगोंको वह (सुंदरी) वरुणसे-वंदनीय जलकी-देवी सी दीख पड़ी ॥९॥

९. विधाताने चकोर-खंजन-मीन और मृगोंको पराजित करनेसे तुष्ट होकर (उस) सुनयनीको भौहोंके बहानेसे पन्नेके दो छत्र प्रदान किये ॥१०॥

७. नखशिख—

१ लावण्यरूपी अमृतसे भरे शृंगारके सरोवर मुखमें, काम-क्रीड़ाके लिये नयनरूपी दो मछलियां शोभित हो रही हैं ॥११॥

११. हे पतली शरीरवाली, यह तेरी दृष्टि विचित्र सर्प है, जो कि देखने मात्रसे देवताओंको भी मूर्छित कर देती है ॥१२॥

१२. अमृत और मूंगेके अच्छे सारोंसे विधाताने उसके अधरको रचा, जो कि वह काम-भुजंगसे डंसेको क्षणभरमें पुनरुज्जीवित कर देती है ॥१३॥

१३. चूंकि मूंगासे मूंगा, फिर कमलसे कमल है, यह सोचकर विधाताने उसके पैरोंको कुमकुमसे लाल कर दिया ॥१४॥

१४. चरणकी अंगुलियोंकी नख-पंक्तिके रंगसे मिश्रित शोभावाली बाला, शृंगारके कल्पवृक्षकी कलियोंकी पंखुडियोंके भीतर स्वच्छ पांती की तरह शोभित है ॥१५॥

८. वायु—

१५. बहुत सुगन्धित सुन्दर पल्लवसे युक्त अंगोंवाली, फूलीं सुवर्ण-लताका आलिंगन कर, सरोवरोंमें स्नान किये यह, वायु रसिककी तरह धीरे-धीरे आ रहा है ॥१६॥

॥ समाप्त ॥

परिशिष्ट

१. नामानुक्रमणी

२. विशेषशब्दानुक्रमणी